* श्रीहरिः *

सनातनहिन्दुधर्मव्याख्यानदर्पण

पूर्वार्द्ध

रचयिता—
श्रीयुत स्वा० आलाराम सागर संन्यासी
धर्मोपदेशक

सनातनधर्म के विविध विषयों पर

३० व्याख्यान

प्रकाशक-ब्रह्मप्रेस इटावा।

PRINTED AND PUBLISHED

By

PANDIT BRAHMADEVA MISHRA

AT THE

BRAHMA PRESS ETAWAH.

द्वितीयवार १००० } संवत् १९७२ सन् १९१६ { मूल्य २)

* श्रीहरिः *

* भूमिका *

प्रिय पाठक वर्ग! एक समय वह था जब भारतवर्ष में सर्वत्र सनातन वैदिक धर्मका प्रचार था, यहां के वर्ण और आश्रम धर्मों का ठीक २ पालन करते हुए सर्व जन सुखपूर्वक कालयापन किया करते थे ऐसा कोई प्राणी अन्वेषण करने पर भी नहीं दिखलाई पड़ता था जो स्वप्न में भी सनातनधर्म के किसी अंश पर तर्क करने को उपस्थित हो, हां जिज्ञासुके तौर पर अवश्य ही समय २ पर धर्म श्रद्धालु जन ऋषि मुनि और महात्मा विद्वानों के समीप उपस्थित हो अपनी शङ्काओं का निराकरण किया करते थे, पर उस प्रश्नोत्तर में न बनावट थी न दुराग्रह, क्योंकि वह तो केवल अपने भ्रमनिवारणार्थ किया जाता था, पर समय पलट गया, भारतका सौभाग्य सूर्य कलिरूपी राहु और यवनों के निरन्तराक्रमण रूपी मेघमालाओं से आच्छादित हो गया, महाभारत के घोर युद्ध के बाद फिर भारतके धर्माकाश में श्रद्धा और विश्वास रूपी सूर्य और चन्द्र का पूर्ण प्रतिबिम्ब देखने को न मिला, इतिहास के पुराने पन्नों के उलटने पर एक ही समय ऐसा दिखलाई पड़ता है कि जब इस मेघमाला और राहु का निराकरण होकर धर्माकाशमें सूर्य प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ा था, और वह समय था साक्षात् शङ्करावतार आद्य भगवान् स्वा० शङ्कराचार्य का उदयकाल, उन्होंने अपने तपोबल रूपी खड्ग और वेद रूपी गदासे सारे अवैदिक मतों का निराकरण करके अटकसे कटक तक और कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक सनातनधर्म की धवल पताका गाड़दी और सम्पूर्ण भारतवर्ष में सनातनधर्म की दुन्दुभि बजा दी उस समय मतवादी इस तरह विलुप्त हो गये थे जैसे कि सिंह को देखकर वनके अन्य क्षुद्र जीव, स्वा० शङ्कराचार्यके पास कोई दिग्विजयी सेना नहीं थी वे कोई चक्रवर्ती राजा नहीं थे, फिर क्या था, था उनके पास वेदका अन्तिम सिद्धान्त वेदान्तरूपी अमोघास्त्र और सत्यधर्म प्रचारकी बलवती इच्छा. इन्हीं दोनों साधनों को लेकर उन्होंने युगान्तर उपस्थित कर दिया और

वह काम कर दिखाया कि जो धनबल जनबल और शस्त्र बल से नहीं हो सकता है, जीर्ण कौपीनधारी इस एक महात्मा ने जो काम कर दिखाया वह अतुल धन और चतुरङ्गिणी सेना से भी नहीं हो सकता, मतवादियों के फैलाये हुए अज्ञानान्धकार और मिथ्यावाद को उन्होंने विलुप्त कर डाला कहा भी है कि—

तावद्गर्जन्तिवै धूर्त्ताजम्बुकाविपिनेयथा ।
यावत्सद्वेदसिद्धान्तः केशरीवन्नगर्जति ॥

मतवादी अज्ञानान्धकार फैलाने वाले तभी तक उपद्रव मचाते हैं कि जब तक वेदसिद्धान्तज्ञ उन्हें नहीं मिलता, वास्तव में अन्य मिथ्या मत जम्बुकवत् हैं और वेदसिद्धान्त केशरी ही है, क्या सूर्य के प्रकाश होने पर भी कभी अन्धकार ठहर सकता है. पर दुःखका विषय है कि स्वा० शङ्कराचार्य के तिरोहित होने पर फिर कोई ऐसा प्रबल प्रतापी उत्पन्न नहीं हुआ जो वैदिक दुन्दुभि बजाकर भूले भटकों को रास्ता बताता और अज्ञान निद्रामें सोते हुओं को जगाता।

इसके बाद यवनों के बार २ के आक्रमण और सैकड़ों वर्षों तक उन का आधिपत्य रहने से भारतवर्ष की जो धार्मिक क्षति हुई वह अकथनीय है, जनसमुदाय का धार्मिक बन्धन इन दिनों में इतना शिथिल होगया था कि केवल साधारण झटके से भी वह टूट सकता था, विदेशी भाषाओं का प्रचार और विधर्मियों के संसर्ग ने लोगों के मन में उच्छृंखलता उत्पन्न कर दी, प्रत्येक मनुष्य अपना महत्व इसी में समझने लगा कि वह यदि प्राचीन धर्मसम्बन्धी रीति रवाजों और आचार व्यवहारों को कुछ ओट उड़ा सके तो मानो उसने त्रिभुवन का राज्य पा लिया।

परन्तु यवनों के शासन समय में भी लोगों की स्वतन्त्रता और उच्छृंखलता इतनी नहीं बढ़ पायी थी कि वे खुल्लमखुल्ला देवी देवताओंकी निन्दा करते या अपने आचार विचारों की ओट उड़ाते, उस समय की स्वतन्त्रता ने केवल मनों पर ही आधिपत्य कर पाया था आचार व्यवहार पर आक्रमण करते हुए उसे भय लगता था, पर यह भाव भी चिरस्थायी नहीं रहा समय ने पलटा खाया और भारत का शासनसूत्र उस पराक्रमी जाति के हाथ आया कि जिस के आधिपत्य में भगवान् भुवनभास्कर अस्त नहीं

होते, जिस समय अङ्गरेज़ों ने भारतवर्ष का शासन अपने हाथमें लिया वह समय राजनैतिक दृष्टिसे सर्वथा उपयुक्त था उस समय आवश्यकता थी कि यहां का शासनसूत्र किसी ऐसी ही पराक्रमशाली जातिके हाथ पड़े, उस समय मुगलों के शासन की जड़ खोखली होगई थी परमपराक्रमी शिवाजी ने जिस भाव से हिन्दूराष्ट्र स्थापन करने की चेष्टा की थी और उसमें आंशिक सफलता लाभ की थी वह भाव पीछे उनके उत्तराधिकारियों में नहीं रहा और यही कारण था कि भारतवर्ष का शासनसूत्र न पेशवाओं के हाथ रहा और न मुग़लों के।

अंगरेजों के आने से भारतवर्ष को निस्सन्देह अनेक लाभ पहुंचे पर धार्मिक सम्बन्ध उनका और भारतवर्ष का एक न था इसीलिये राजनीतिक दृष्टि से अनेक लाभों के पहुंचने पर भी भारतवर्ष की धार्मिक दशा में कोई बड़ा परिवर्त्तन नहीं हुआ, श्रीमती भारतेश्वरी विक्टोरिया ने भारत का शासनसूत्र ग्रहण करते समय एक घोषणापत्र निकाला था और उसके द्वारा उन्होंने अपनी समस्त प्रजाओं को धार्मिक अंश में स्वतन्त्रता प्रदान थी, पर श्रद्धा और विश्वास की कमी और सम्प्रदायों की विभिन्नता से हमलोग उससे भी यथेष्ट लाभ न उठा सके, इधर एक शताब्दि के अन्तर्गत जो परिवर्त्तन भारतवर्ष में हुए उनसे इसकी धार्मिक व्यवस्था में बड़ी बाधा पहुंची इन्हीं दिनों में ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज का उद्गम हुआ, पहिले २ ये दोनों एक ही रास्ते पर चलते रहे ब्राह्मसमाज के प्रवर्त्तक राजा राममोहनराय और आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती दोनों ने ही देशहित की दृष्टि से अपने २ सम्प्रदायों की नीव डाली थी पर भारतवर्ष वह देश है कि जहां के निवासियों के मन धार्मिक उपादानों से बने हुए हैं विशेष कर सनातन हिन्दू धर्म और उसके मुख्य ग्रन्थ वेद पर यहां के साधारण समुदाय की सर्वदा आस्था रही है, इसी कारण राजा-राममोहनराय के प्रवर्त्तित ब्राह्मसमाज की उतनी उन्नति नहीं हुई जितनी कि स्वा० दयानन्द के आर्यसमाज की, आर्यसमाज वैदिक होनेका दम भरता है और स्वा० दयानन्द ने भी अपने बनाये ग्रन्थोंमें जगह २ वेद की प्रशंसा की है, पर त्रुटि यही थी कि स्वा० दयानन्द वेदों के ज्ञाता नहीं थे और पाश्चात्य विचारों की कुवासना का गन्ध भी उन तक पहुंच चुका था इसी कारण स्वा० दयानन्द ने अपने सिद्धान्तों की रचना प्रथम की और

फिर उनके वेदानुकूल होनेकी घोषणा की, यदि वे ऐसा न करके प्रथम अपने सिद्धान्त निश्चित न करके जो सिद्धान्त वेदों का है उसी को अपना मानते तो आज आर्यसमाज का स्वरूप कुछ और ही होता, सनातनधर्मके अन्तर्गत शैव, शाक्त, वैष्णव आदि अनेक सम्प्रदाय हैं पर धार्मिक विभिन्नतामें ये एक दूसरे से पृथक् नहीं माने जाते, पर आर्यसमाज एक पृथक् ही सम्प्रदाय माना जाता है, इसका कारण सिर्फ यही है कि स्वामी दयानन्द जी से हुए भ्रम का शोधन उनके पीछे उनके अनुयायियों ने भी नहीं किया और यही कारण है कि दिन २ सनातनधर्म और आर्यसमाज दोनोंका पारस्परिक सम्बन्ध टूटता जाता है और ३६ का सा सम्बन्ध दोनों में स्थापित होगया है, स्वा० दयानन्द और उनके अनुयायियों ने सनातनधर्म पर बड़े २ प्रहार किये हैं पर सनातनधर्म के वेद मूलक होने से इन प्रहारों से सनातनधर्मको कोई भारी क्षति नहीं पहुंची यदि कुछ क्षति पहुंची भी है तो उसका कारण आर्यसमाज नहीं, किन्तु लोगों की समयजनित धार्मिक उच्छृंखलता है तथापि साधारण लोग इन आक्षेपों से सनातनधर्म पर कितनी ही मिथ्या भ्रान्तियां करलेते हैं इनका निराकरण होने की आवश्यकता है।

स्वा० आलाराम जी सागर संन्यासी का नाम समस्त भारतवर्ष में व्याप्त है आपने अपने अदम्य उत्साह और अध्यवसाय से समस्त भारतवर्षमें सनातनधर्मका प्रचार करके लोगोंके भ्रम निवारण किये हैं आर्यसामाजिक आक्षेपों का निराकरण आपने वेदान्त की युक्तियों से किया है और आर्यसमाज के ग्रन्थों में हजारों दरोगहलफी की बातें दिखाकर उनको मिथ्या सिद्ध किया है यह पु० उन्हीं स्वा० जी के व्याख्यानों का संग्रह है इतना बड़ा व्याख्यानों का संग्रह अभी तक कहीं नहीं छपा इस द्वितीयावृत्ति में इस पुस्तक में कितने ही सुधार किये गये हैं आशा है कि धर्म प्रेमी जन भूल चूककी त्रुटियों को क्षमा कर इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे।

प्रकाशक—

सनातनहिन्दुधर्मव्याख्यानदर्पण

के

व्याख्यानों की

अनुक्रमणिका

नं०	व्याख्यान नाम	पृष्ठ संख्या
१	वेदोक्तजगदुत्पत्तिमण्डन	१
२	वेदोक्तवेदोत्पत्तिमण्डन	१९
३	निराकारध्यान खण्डन	३७
४	जीवेश्वर स्वरूप	५५
५	वेदान्तसिद्धान्त मण्डन	७३
६	वेदोक्त मुक्तिमण्डन	९३
७	वेदोक्त योगविद्या मण्डन	११४
८	ईश्वरभक्तिमण्डन	१३४
९	शुद्धि अशुद्धिखण्डन	१५४
१०	सत्यार्थप्रकाशखण्डन	१७१
११	हिन्दु तथा आर्य शब्द समालोचना	१९०
१२	जीवदयाप्रकाशमञ्जुरी	२१०
१३	ईश्वरावतार मण्डन	२२८
१४	ब्रह्मचर्याश्रम निरूपण	२४७
१५	वर्णव्यवस्थाव्याख्यान	२६९
१६	गृहस्थवानप्रस्थाश्रमव्याख्यान	२८९
१७	संन्यासाश्रम व्याख्यान	३०९

१८	आर्यसमाजोक्त १० नियम खण्डन ...	३३३
१९	मदिरापानादि खण्डन ...	३५१
२०	धृतिक्षमादिधर्म व्याख्यान ...	३६९
२१	इन्द्रियनिग्रहधीर्विद्यासत्याक्रोध ...	३९०
२२	आर्यसमाजोक्त ३० प्रश्नोत्तर ...	४०९
२३	स्त्रीशिक्षा तथा पातिव्रतधर्म ...	४२७
२४	विधवाविवाह तथा नियोगखण्डन ...	४४९
२५	विद्याऽविद्या ...	४७२
२६	अष्टादशपुराण समीक्षा ...	४९५
२७	अष्टादश पुराण मण्डन ...	५१५
२८	दयानन्दोक्तवेदभाष्य दरोगहलफी ...	५३५
२९	सर्वासवस्वनाशक खंडन ...	५५६
३०	ईश्वरमूर्त्तिमण्डन ...	५८०

॥ ओ३म् ॥

वेदोक्त जगदुत्पत्तिमण्डन ।

व्याख्यान नं १
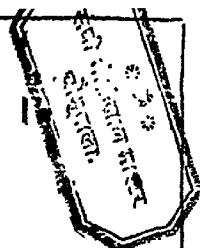
सर्व हिन्दु धर्मवीरोंको विदित किया जाता है कि इस व्याख्यानमें वेदोक्त जगदुत्पत्तिका मण्डन किया जायगा । परन्तु प्रथम वेदविरुद्ध दयानन्दोक्त जगदुत्पत्तिका खण्डन भी सुनिये । जैसे कि (७ सत्या० समुल्लास ८) (जन्माद्यस्य यतः । अ०१ । पा०२ सू० २) इस वेदान्त सूत्रके दयानन्दकृत भाष्य में लिखा है कि—जगत्का उपादान कारण प्रकृति अनादि है ॥

(७ सत्या० समुल्लास १) (न विद्यते आदिःकारणं यस्य सोऽनादिः) इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "जिस का आदि कारण कोई भी न हो वह अनादि है,, यद्यपि दयानन्दने वहां ईश्वरको अनादि कहा है तथापि अनादि शब्दका अर्थ दयानन्दकृत यही सिद्ध है कि जिसका आदि कारण कोई भी न हो । सो जब प्रकृति को दयानन्द ने अनादि कहा तो प्रकृति का भी आदि कारण न हुआ । (किंच) (७ सत्या० समुल्लास ८) (मूले मूलाभावादमूलं मूलम्) इस सांख्यसूत्र के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि—"कारण का कारण नहीं होता उससे भी प्रकृति अनादि है,, । (७ सत्या० समुल्लास ८) (द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते०) इस ऋग्वेद मन्त्रके भाष्य में भी दयानन्द ने प्रकृति को अनादि ही कहा है । (७सत्या० स्वमन्तव्य नं० ६) उसमें भी बाबाजी ने प्रकृतिको अनादिही कहा है । (७सत्या० समुल्लास १४) (नम्बर २७) दयानन्द का लेख है कि "जगत्का कारण प्रकृतिके गुण कर्म स्वभाव अनादि हैं" । (७सत्या०समुल्लास८)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलानिति शान्त उपासीत । नेह नानास्ति किंचन ॥

इसके भाष्यमें दयानन्द ने कहा है कि "उपादान कारण प्रकृति सब संसार के बनानेकी सामग्री है वह जड़है" इत्यादि और भी दयानन्दके अनेक लेखहैं कि जिनसे जगत्के उपादान कारण प्रकृतिको स्वरूपसे अनादि लिखा है । अब उन लेखोंसे विरुद्ध दयानन्दके लेख देखिये जैसे कि—(७सत्या० समुल्लास ८)

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्म-

हतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यःस्थूलभूतानि पुरुष इतिपञ्चविंशतिर्गणः।सां०अ०१सू०६

इस सांख्यसूत्र के दयानन्दकृतभाष्य में कहा है कि "(सत्त्व–रज–तम–) तीन वस्तु मिल कर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है। यहां दयानन्द ने प्रकृति की उत्पत्ति लिखी है। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि यहां दयानन्द ने सांख्यशास्त्र के कर्ता कपिल मुनिका मत दर्शाया है। दयानन्द का वेदमत है, दयानन्दके भक्तोंका यह कथन सर्वथा अविद्या मूलक है क्योंकि दयानन्दने जगदुत्पत्ति प्रकरण में यह कहीं नहीं लिखा है कि हमने यह कपिलमुनिका मत दर्शाया है, स्वीकार नहीं कर लिया। उससे दयानन्द के भक्त दयानन्द के भी विरोधी हैं।

(किंच) (३ सत्य० समुल्लास ९) (स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्) इस योगसूत्र के भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि– "प्रकृति के अवयव आकाशादिरूप परमाणु हैं" । यहां दयानन्द के भक्त बतलावें कि दयानन्दने प्रकृतिके अवयव क्यों लिखे हैं? । यदि अवयव लिखे हैं तो उससे भी प्रकृति उत्पत्तिवाली सिद्धहो चुकी, क्योंकि पदार्थ विद्यासे विदित होता है कि अवयवों के मिलापसे अवयवी उत्पन्न होता है जैसे कि घटके अवयव कपाल हैं, तो कपालोंमें घटकी उत्पत्ति अनुभव सिद्ध है। पटके अवयव तन्तु हैं उससे तन्तुओंमें पट उत्पन्न होता है। वैसेही दयानन्दने आकाशादि रूप परमाणुओंकोप्रकृतिके अवयव वर्णन किया है उन अवयवोंमें प्रकृतिकी भी उत्पत्ति सिद्ध हो चुकी।

दयानन्दके भक्त कहते हैं कि यहां दयानन्दने योगशास्त्र के कर्त्ता पतंजलि मुनिका मत दर्शाया है दयानन्दको मत वेद है। दयानन्दके भक्तोंका यह कथन भी लालवुझक्कड़ोंका खेल है (बूझे २ लालवुझक्कड़ और न सूझे कोय। पकड़ कुल्हाड़ा काटी हाथको जल्दी छूट न होय) वह चेष्टा दयानन्दके भक्तों की है। सूत्र में प्रकृतिका वाचक एक भी पद नहीं किन्तु प्रकृति को सावयव कथन करना दयानन्द ही का स्वकपोलकल्पित मत है।

(किंच) (३ सत्या० समुल्लास ८)

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। मनु० अ० १।५।)

इसके भाष्यमें जगत्के उपादान कारण प्रकृतिको दयानन्दने साकार कहा है। अब दयानन्दके भक्त बतलावें कि प्रकृतिको साकार लिखना दयानन्दने

किसका मत दर्शाया है ? । यदि कहो कि यह भी किसीका मत ही है तो पता क्यों नहीं बतलाते ? और उस श्लोक में साकार प्रकृतिका वाचक कोई पद क्यों नहीं दिखलाते ? । यदि नहीं दिखलाते तो सिद्ध हो जावेगा कि प्रकृतिको साकार लिखना भी दयानन्द ही की स्वकपोलकल्पना है । साकार लिखने से भी प्रकृति उत्पत्ति वाली सिद्ध हो चुकी ।

(किंच) (यजुर्वे० अ० १४ मं० ३१) इसके भाष्यमें भी दयानन्दने प्रकृतिके अवयव रजोगुण तमोगुण सतोगुण लिखे हैं । और उनकी उत्पत्तिभी लिखी है। अब दयानन्दके भक्त बतलावें कि दयानन्दका वह वेदमत है अथवा वेद विरुद्ध मत है ? । यदि वेदविरुद्ध मत कहो तो दयानन्द और दयानन्दके भक्त वेद के विरोधी सिद्ध हो जांयगे । यदि कहो कि दयानन्दका यह वेद मत है तो दयानन्दोक्त वेद मतमें भी जगत्का उपादान कारण प्रकृति उत्पत्तिवाली सिद्ध हो चुकी । कहीं प्रकृतिको अनादि लिखना कहीं उत्पत्तिवाली लिखना यह दोनों प्रकार के दयानन्द के लेख पूर्वापर विरुद्ध हैं ।

(७ सत्या० समुल्लास १३) उसकी समाप्तिमें दयानन्द ही का लेख है कि "पूर्वापर विरुद्धलेख झूंठीदरोगहलफी होती है " दयानन्द के इस लेख की दयासे जगदुत्पत्ति विषयक दयानन्दोक्त दोनों प्रकारके लेख झूंठे हैं। सिद्धान्त यह कि दयानन्द के लेखोंसे जगत्का उपादानकारण प्रकृति न अनादि सिद्ध होती है और न उत्पत्तिवाली प्रकृति सिद्ध हो सकती है। किन्तु दोनों प्रकारसे विलक्षण प्रकृतिको मानना पड़ेगा । यदि दोनों प्रकार से विलक्षण मानें तो वेदान्तियोंके चेले बनना होगा । क्योंकि वेदान्त के ग्रन्थोंमें दो प्रकार से विलक्षण ही को अनिर्वचनीय कहा है ॥

(किंच) (७ सत्या० समुल्लास १३) उसमें दयानन्द का लेख है कि जो आप झूंठा और दूसरोंको झूंठपर चलावे उसको शैतान कहना चाहिये । अब दयानन्दके भक्त दयानन्द ही के लेखोंकी निगरानी करलेवें कि उनका कैसा परिणाम निकलता है ।

(७ सत्या० समुल्लास ३) (अर्थकामेष्वसक्तानां० मनु० अ० २ ।१३।) इसके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि "जैसे कोई कहे कि विना माता पिताके योगसे लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रमसे विरुद्ध होनेसे असत्य है" दयानन्दके इस लेखका सिद्धान्त यह कि माता पिताके समागमके बिना लड़का लड़की का होना सर्वथा असम्भव है ॥ १ ॥

(७ सत्या० समुल्लास ३। नचतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसंभवाभावप्रामाण्यात्। न्या० सू० अ० २ आ० २ सू० १)

इस न्याय सूत्रके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि "कोई कहे कि माता पिताके विना सन्तानोत्पन्न हुए इत्यादि सब असम्भव है" दयानन्दके इस लेखका भी यही अभिप्राय है कि माता पिताके समागमके विना कभी लड़का लड़की उत्पन्न नहीं हो सकते ॥ २॥

(७ सत्या० समुल्लास ११) (प्राग्यगानीतिहासाम्०) इस के भाष्य में दयानन्द बाबा जी का लेख है कि "वाहरे वाह भागवतके बनाने वाले लाल बुझक्कड़ क्या कहना तुझको ऐसी २ मिथ्या बातें लिखनेमें तनिक भी लज्जा और शरम न आई निपट अन्धाही बन गया स्त्री पुरुष के रज वीर्य के संयोगसे तो मनुष्य बनते ही हैं परन्तु ईश्वरकी सृष्टिक्रम के विरुद्ध पशु पक्षी सर्पादि भी उत्पन्न नहीं हो सकते दयानन्द के इस लेख का भी यही गूढ़ाशय है कि माता पिता के समागम द्वारा रजवीर्यकी मिलावट हुए विना जो मनुष्यादिकी उत्पत्तिको कहता है वह मनुष्य लाल बुझक्कड़ निर्लज्ज बेशर्म विचार नेत्रोंसे अन्धा और झूठा है। ऐसा मनुष्य माता के गर्भ ही में अथवा जन्मते ही मर जाता तो अच्छा था ॥ ३॥

(७ सत्या० समुल्लास ८। मम मातापितरौनस्तोऽहमेव जातः। मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च ॥

इसके भाष्यमें दयानन्द का लेख है कि मेरे माता पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं मेरे मुखमें जीभ नहीं है पर बोलता हूं। ऐसी असंभव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगोंकी है दयानन्दके इस लेख का भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि जो कहता है कि माता पिताके समागम के विना लड़का लड़की उत्पन्न हुए हैं वह मनुष्य पागल है। इत्यादि औरभी दयानन्दके अनेक लेख हैं कि जिनका यही सार है कि मातापिता के विना नर नारीकी उत्पत्ति का होना सर्वथा असम्भव है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों सेभी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि जैसे ब्रह्माण्डभरमें वर्त्तमान समय में यह सिद्ध नहीं हो सकता कि अमुक जिले अथवा अमुक कसबे या नगरमें विनामाता पिताके सन्तानोत्पन्न हुआ हो। प्रत्यक्षकी सहायतासे भूत भविष्यत्‌काभी अनुमान होता है कि मातापिताके समागमके विना कभी स्त्री पुरुष न उत्पन्न हुए और न कभी होंगे। सार यह है कि दयानन्दके पूर्वोक्त लेखोंसे सिद्ध हो चुका कि

माता पिता के समागम जन्य रज वीर्य के संयोग ही से लड़का लड़की उत्पन्न होते हैं, इस के विना नर नारी की सृष्टि का होना सर्वथा असंभव है। फिर उसके विरुद्ध देखिये बाबाजी ने नर नारी के समागम विना ही आदि सृष्टि के स्त्री पुरुषोंकी उत्पत्ति लिखमारी है। जैसे कि (७ सत्या० समुल्लास ८)

(तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्याओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः सएव पुरुषोऽन्नरसमयः। तैत्तिरीयोपनि० अ० २ अनु० १)

इस श्रुति के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि 'सृष्टिके आदिमें ईश्वर ने आकाश को इकट्ठा किया उससे अवकाश उत्पन्न हुआ, आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल—जलके पश्चात् पृथिवी—पृथिवीके पश्चात् ओषधि—ओषधियों से अन्न—अन्नसे वीर्य—वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है" यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि आकाश और अवकाश दोनों शब्दों का अर्थ भिन्न २ है अथवा एक ही अर्थ है ?। यदि एक ही अर्थ कहो तो आकाश से अवकाश उत्पन्न हुआ यह दयानन्दका लेख मिथ्या सिद्ध होगा। यदि कहो कि आकाश अवकाश दोनोंशब्दों के भिन्नार्थ हैं तो उक्त मन्त्र के भाष्य में दयानन्द ने आकाश ही का दूसरा नाम अवकाश लिखा है वह लेख मिथ्या होगा। कालीमहिषा न्याय,से आप लोगों का किसी प्रकार से भी छूटना न होगा॥

(किंच) आकाशादि भूत उत्पत्तिके पहिले थे अथवा नहीं? यदि नहीं कहो तो अभाव से भाव का होना कथन करना लालबुझक्कड़ों का तमाशा सिद्ध होगा। यदि कहो कि उत्पत्ति से पहिले आकाशादिकों का सद्भाव था तो आकाशादिक भूतोंकी उत्पत्तिका कथन मिथ्या होगा। दयानन्दोक्त मत में आकाश सर्वथा व्यापक पदार्थ है। यदि वह सत्य है तो कहिये आकाश को निराकार ईश्वर ने कहां से इकट्ठा किया ?। प्रत्यक्ष देखा जाताहै कि फैले हुए कूड़े कचरे को भंगी लोग इकट्ठा करते हैं। क्या दयानन्दोक्त निराकार ईश्वर भी वैसे ही करता है?। भला यह तो बतलाइये कि वीर्यमें पुरुष शरीरका अभाव था अथवा सद्भाव ?। यदि सद्भाव कहो तो वीर्यसे पुरुष के शरीर की उत्पत्ति का लेख असङ्गत होगा, क्योंकि भावपदार्थ की उत्पत्ति का कथन प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विरुद्ध है। यदि उत्पत्ति के प्रथम वीर्य में

पुरुष शरीर का अभाव कहो तो अभाव से भाव का होना पदार्थ विद्या के विरुद्ध है। खैर जो हो, दयानन्दने उक्त श्रुतिके अर्थमें माता पिताके समागम के बिना ही आदि सृष्टि के स्त्री पुरुष उत्पन्न हुए लिखे हैं। तदनुसार दयानन्दी मत में आदि सृष्टि असम्भव सिद्ध हो चुकी।

(७ सत्या० समुल्लास ८)

नासतो विद्यतेभावो नाभावोविद्यतेसतः। उभयोरपि-दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ भगवद्गीता० अ० २ ।

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि " जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है, उसकी प्रथमावस्था में जो सूक्ष्म प्रकृति रूप कारण से उत्पन्न होता है उस का नाम महत्तत्व है। जो उस से कुछ स्थूल होता है उस का नाम अहंकार है। अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय उत्पन्न होते हैं। ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। पांच सूक्ष्म भूत भी अहंकार से उत्पन्न होते हैं। उन से पांच स्थूल भूत उपजते हैं जिन को हम प्रत्यक्ष देखते हैं। उन से ओषधियां वृक्षादि, उन से अन्न, अन्न से वीर्य्य, वीर्य्य से शरीर उत्पन्न होता है, परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बनाकर उन में जीवों का संयोग कर देता है तो तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है,, दयानन्द के इस लेख से सूक्ष्म पदार्थों की बनावट ही प्रकृति सिद्ध होती है। यहां दयानन्दके भक्तों से पूछना चाहिये कि खाली वीर्य्य ही से आदि सृष्टि के शरीर उपजे थे? अथवा रज वीर्य्यके साथ मिला था, यदि खाली वीर्य्य ही से आदि सृष्टिके शरीरों की उत्पत्ति कहो तो, स्त्री पुरुष के रज वीर्य्य के संयोग से सन्तानोत्पन्न होते हैं, दयानन्द का यह लेख मिथ्या होगा। यदि दयानन्दके इस लेख को सत्य मानें तो कहिये आदि सृष्टि में वीर्य्य और रज केवल ईश्वर ही में उपजे थे? अथवा वीर्य्य निराकार ईश्वर में और रज प्रकृतिमें उपजा था?। अथवा ईश्वर और प्रकृति से भिन्न स्त्री पुरुषोंमें रज वीर्य्य उपजे थे?। यदि कहो कि निराकार ईश्वर से भिन्न स्त्री पुरुषों में रज वीर्य्य उपजे थे तो कहिये उस रज वीर्य्य का संयोग स्त्री पुरुष के मैथुन से हुआ था अथवा मैथुन के बिना ही रज वीर्य्यका संयोग हुआ था?। यदि बिना ही मैथुनके रजवीर्य्यका संयोग कहो तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से इस अपसिद्धान्त का खण्डन हो जायगा। यदि

मैथुनसे रजवीर्य्यके संयोगका होना कहो तो आदि सृष्टिके शरीरोंका कारण दूसरे स्त्री पुरुषोंके रज वीर्य मानने पड़ेंगे। यदि आप इसी सिद्धान्त को मानेंगे तो दयानन्द मत वाली आदि सृष्टिका लेख कुत्तेके सींगके समान मिथ्या सिद्ध हो जायगा। और 'आदि सृष्टि मैथुनी नहीं थी' दयानन्दका यह लेख भी वन्ध्या स्त्री के समान मिथ्या सिद्ध हो जायगा। प्रकरण यह कि 'निराकार ईश्वर में ही रज वीर्य उपजे थे' दयानन्द के भक्तों का यह पक्ष तो सर्वथा पदार्थ विद्या के विरुद्ध है। क्योंकि साकार शरीरों ही में रजवीर्यकी उत्पत्ति अनुभव सिद्ध है यदि ईश्वर में वीर्यकी और रजकी प्रकृतिमें उत्पत्ति मानें तो ईश्वर साकार मनुष्य और प्रकृति साकार स्त्री मानने पड़ेगी॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्मातासपितासपुत्रः

इस यजुर्वेद मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दने जगदुत्पत्तिमें निराकार ईश्वर को पिता और प्रकृतिको माता करके वर्णन किया है। यदि दयानन्दके भक्त इस लेखको सत्य मानें तो आदि सृष्टिके स्त्री पुरुष सबके सब भगिनी भ्राता सिद्ध होंगे क्योंकि उनके माता पिता ईश्वर और प्रकृति एक हैं। यदि इसी सिद्धान्तको ठीक मानें तो दयानन्दोक्त आदि सृष्टिमें भगिनी भ्राताओं के विवाह अथवा नियोग सिद्ध होंगे। यदि ऐसे न मानें तो 'आदि सृष्टिके पिता ईश्वर और माता प्रकृति है' यह लेख वन्ध्या स्त्रीके पुत्रके समान मिथ्या होगा। यदि इस लेखको सत्य कहें तो दयानन्दोक्त आदि सृष्टिके माता पिता ईश्वर और प्रकृति भी साकार सावयव सिद्ध होंगे। जैसे कि प्रत्यक्ष सृष्टिके माता पिता साकार सावयव देखे और सुने जाते हैं। यदि दयानन्दके भक्त ऐसा ही मानें तो दयानन्दोक्त आदि सृष्टिके माता पिता ईश्वर प्रकृतिके दूसरे माता पिता मानने पड़ेंगे। न मानें तो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरोध होगा। यदि ईश्वर और प्रकृतिके माता पिताओंको मान भी लेवें तो दयानन्दी मतमें ईश्वर प्रकृति माता पिताओंमें अनवस्था दोष आवेगा। प्रागलोप विनिगमन विरह चक्रका आत्माश्रय अन्योन्याश्रय इत्यादि दोषोंका भी प्रसंग होगा। दयानन्दोक्त आदि सृष्टिका अत्यन्ताभाव सिद्ध होगा।

(किञ्च) दयानन्द ने जो कहा कि "आदि सृष्टिमें मनुष्यादि शरीरोंको वीर्यसे जब ईश्वर बना लेता है तो पश्चात् उसके वह ईश्वर उन शरीरों में जीवों का प्रवेश करता है"। यहां दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि

आदि सृष्टिमें दयानन्दोक्त ईश्वर क्या मुर्दे शरीरोंकी रचना करता है ? । अथवा जीते शरीरोंकी यदि जीते शरीरोंकी कहो तो बतलाइये कि जीवके संयोगसे शरीर जीता भान होता है, अथवा जीवके संयोग विना ही शरीर जीता प्रतीत होता है ? । यदि जीवके संयोग विना ही शरीरको जीवित कहो तो दयानन्द लेखराम आदिके शरीरों से जब जीव वियुक्त हो गये थे तो दयानन्दके भक्तोंने उन्हें मुर्दे जानकर किस लिये जला दिया था ? । यदि जीवके संयोग ही से शरीरों को जीवित कहो तो आदि सृष्टिके स्त्री पुरुष शरीरोंमें तो पहिले जीव ही नहीं थे उससे दयानन्दोक्त आदि सृष्टि में वीर्यसे उपजे स्त्री पुरुषोंके शरीर मुर्दे सिद्ध हो चुके । यदि दयानन्दके भक्त ऐसे ही मानें तो दयानन्द मतवाले ईश्वरको चाहिये था कि उन मुर्दे शरीरोंको अग्नि में फूक देता । यदि न माने तो आर्यमत वाली संस्कार विध्युक्त अन्त्येष्टि संस्कार कि जिस में कमसे कम २० सेर घृत डालके मुर्देका फूंक देना कहा है । वह संस्कार निष्फल प्रवृत्ति का जनक होगा । सिद्धान्त यह कि उक्त लेख में भी दयानन्दने आदि सृष्टि के स्त्री पुरुषोंका जन्म माता पिता के विना ही लिखा है ॥

(७ सत्या० समुल्लास ८)—मनुष्या ऋषयश्चये । ततो मनुष्या अजायन्त ।

इसको दयानन्दने यजुर्वेदका मन्त्र कहा है । परन्तु यजुर्वेदमें इस प्रकार की मिलावटके मन्त्रका प्रध्वंसाभाव है । जो हो, इस के भाष्य में दयानन्दका लेख है कि " सृष्टि की आदिमें ईश्वर ने अनेक मनुष्य रचे थे और वे मनुष्य युवावस्था ही में ईश्वरने रचे थे, यदि ईश्वर आदि सृष्टि के मनुष्यों को बाल्यावस्था ही में रचता तो उन का पालन करने वाला कोई न मिलता, यदि वृद्धावस्था में बनाता तो उनसे मैथुनी सृष्टि न होती, इस से ईश्वरने युवावस्था ही में सृष्टि की है „ दयानन्दका यह लेख भी सृष्टिक्रम और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके विरुद्ध है । क्योंकि सृष्टिक्रम से जाना जाता है कि सूक्ष्म ही से पदार्थ स्थूल होता है । प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे भी जाना जाता है कि बाल्यावस्थाके पश्चात् ही यौवनावस्थाका शुभागमन होता है । "यौवनावस्थामें स्त्री पुरुष मुर्दे शरीरोंको बनाना फिर उनमें जीवों का प्रवेश कराकर उन शरीरों को जीवित करना„ यदि इस सिद्धान्त को दयानन्द के भक्त सत्य मानें तो पुराणोंके लेख जो कि मुर्दों को जीवित करनेके हैं वे भी सत्य मानने पड़ेंगे ॥

यदि पुराणोंके मुर्दोंका जिलाना आप मिथ्या मानें तो आदि सृष्टि के दयानन्दोक्त यौवनावस्थावाले मुर्दोंका जिलानाभी मिथ्या सिद्ध हो जायगा। कहीं माता पिताके रजवीर्य बिना सन्तानका होना लिखना कहीं माता पिताके रजवीर्यके संयोगसे सन्तानका होना लिखना दरोगहलफी से दयानन्दके ये दोनों प्रकारके लेखभी झूंठे हैं। और भी दयानन्दोक्त जगदुत्पत्ति प्रकरणमें अनेक प्रकारके परस्परके विरोध हैं। दरोग हलफी से सो सर्व झूंठे हैं। जैसे कि (सन् १८७५ के सत्या० के समुल्लास ११ वेंमें) आदिसृष्टिकाहोना हिमालयमें लिखा है। दूसरे सत्यार्थप्रकाशके ८ वें समुल्लासमें आदि सृष्टिका होना तिब्बतमें लिखा है परन्तु दरोगहलफीसे दोनों लेख झूंठे हैं। जगदुत्पत्ति प्रकरणमें वेदान्ती लोगोंने जिन मतोंका खंडनकर डाला है। उन्हीं खंडन किये मतोंको बटोरकर बाबाजी दयानन्दने अपना मत खड़ा किया है। जब वेदान्त ग्रन्थोंको ब्रह्मासड भरके लोग विचार लेगें तो दयानन्दोक्त आर्यमतको वन्ध्या स्त्रीके लड़के के समान मिथ्या जान कर तिलाञ्जलि दे डालेंगे। स्थालीपुलाकन्यायसे अब खंडन हुए मतोंको दर्शाया जाता है॥

दयानन्दने सत्यार्थप्रकाशके सातवें समुल्लासमें दावेसे कहा है कि हमारा वेद मत है परन्तु(१ ऋग्वेदादि० भाष्य भू० (नासदासीन्नोसदासीत्तदानींना०) इस ऋग्वेदके मन्त्रको लिखा है और उसके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि— जब यह कार्य सृष्टि नहीं भई थी तब त्रिगुणात्मक प्रधान और परमाणु भी नहीं थे प्रकरणमें दयानन्दने त्रिगुणात्मक प्रधानहीका दूसरा नाम प्रकृति कहा है (७ सत्या० समुल्लास ७) (प्रधानशक्तियोगाच्चेत्संगापत्तिः०) इसके भाष्यको दयानन्दके भक्त देख लेवें वहां त्रिगुणात्मक प्रकृति ही को प्रधान कहा है॥

जब दयानन्दोक्त ऋग्वेद मन्त्रके भाष्यमें सृष्टिके आदिमें प्रकृति परमाणुका अभाव था तो अभाव से भावका होना सर्वथा असम्भव है यदि ऐसा मत दयानन्दोक्त कपोलकल्पित है तो वेदमत सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वेद ईश्वरकी विद्या है ईश्वरकी विद्या वेदमें असम्भव बात कभी नहीं आसक्ती यदि वेदमें ऐसी असम्भव बात मानें तो वेदका कर्त्ता ईश्वर ही विद्वान् सिद्ध नहीं हो सकता किन्तु असम्भव बात कथन करनेवालेको सरस्वती जी पागल अन्धा झूंठा और लाल बुझक्कड़ की पदवी दे चुके हैं।

(किंच)(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका आवृत्ति १)(इदंविष्णुर्विचक्रमेत्रेधा निदधे पदम्०) इसके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि"प्रकृति और परमा-

गुही ईश्वरकी सामर्थ्य है" । यदि दयानन्दके भक्त दयानन्दके इस लेखको सत्य मानें तो " सृष्टिके आदिमें प्रकृति परमाणुका अभाव था„ दयानन्द का यह लेख असम्भव अनर्थ प्रतिपादक होता है क्योंकि सामर्थ्य व लेसे सामर्थ्य भिन्न नहीं सिद्ध होती यदि दयानन्दकृत (नासदासीन्नो०) इस वेदमन्त्रके भाष्य को सत्य मानें तो दयानन्द मतवाला निराकार ईश्वर सामर्थहीन गोबरगणेश सिद्ध हो जायगा क्योंकि उस मन्त्रके भाष्यमें सरस्वती बाबा ने प्रकृति परमाणु का भी अभाव लिखा है ।

वेद ईश्वरकृत हैं ईश्वर कृत वेदमें ऐसी गड़बड़ नहीं हो सकती जैसी कि दयानन्दकृत बनावटी भाष्यमें पाई जाती है (७ सत्या० समुल्लास ८) दयानन्दका लेख है कि जगत् का उपादानकारण प्रकृति और परमाणु साकार हैं यदि दयानन्दके इस लेख को सत्य मानें तो दयानन्द मतवाला ईश्वर निराकार सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि साकार सावयव प्रकृति परमाणुओं को दयानन्दने ईश्वरकी सामर्थ्य माना है । साकार सावयव सामर्थ्य वाले ईश्वर को निराकार निरवयव मानना लालबुझक्कड़ोंकी लीला है । न्याय और वैशेषिकमतके परमाणुओंको जगत्का उपादानकारण माना है । यद्यपि न्याय और वैशेषिक मतवाले परमाणुओंको जगतका समवाय कारण मानते हैं । तथापि जिसको वेदान्तीलोग उपादानकारण कहते हैं उसीको न्याय और वैशेषिक मतवाले समवायिकारण कहते हैं । वेदान्तके ग्रन्थोंमें सन्देहहुआहै कि यह परमाणु साकार सावयव हैं अथवा निराकार निरवयव ? ।

यदि परमाणुओंको निराकार निरवयव कहें तो सृष्टिके आदिमें परमाणुओंका संयोग न होगा क्योंकि संयोग द्रव्यके एक देशमें होता है परमाणुओंके देश मानें तो परमाणुओंका निराकार निरवयव कथन असंगत होगा यदि कहो कि परमाणु साकार सावयव हैं तो उनको अनादि कथन करना सिद्धान्तीओं का तमाशा है। इत्यादि और भी अनेक वेदान्तकी युक्तियों से न्याय वैशेषिक मतवाला परमाणुओंमें जगतका आरम्भवाद सर्वथा निरर्थक सिद्ध कर डाला है । रहा सांख्य मत उसमें प्रकृतिको जगत् का उपादानकारण लिखा है उसको भी जगदुत्पत्तिमें दयानन्दने माना है । परन्तु वेदान्तके ग्रन्थोंमें उसकाभी खण्डन किया है । प्रकृति शब्द ही चार मन्त्र संहिता वेदों में कहीं नहीं पाया जाता ।

हां दयानन्द कृत वेद भाष्य में तो प्रकृति शब्द अनेक बार लिखा है सो वेदमत नहीं किन्तु वह दयानन्द का मत है सत्य नहीं ॥

(सत्या०समुल्लास ७) (अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णांबह्वीः प्रजासृज:मानां० श्वेताश्वतरोपनि० अ० ४ मं० ५)

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि प्रकृति परिणामिनी होने से कारण अवस्थान्तर हो जाती है ॥

पूर्वरूपं परित्यज्यान्यथाभाव: परिणाम: ।

इसका भी यही अभिप्राय है कि जो अपने पूर्वरूप को त्यागकर दूसरे रूप को प्राप्त होना परिणाम कहाता है, यहां यदि सांख्यमत वाले कहैं कि प्रकृति अपने स्वरूपको त्यागके जगत् रूप परिणाम हो जाती है, तो प्रकृतिको साकार सावयव मानना पड़ेगा यदि प्रकृति को निराकार निरवयव मान कर परिणामिनी कहें और जगत् रूप परिणाम ही प्रकृति होजाती है ऐसे मानें तो निराकार निरवयव ईश्वर भी परिणामी सिद्ध होगा। यदि ईश्वर को वैसा न मानें तो प्रकृति भी वैसी सिद्ध न होगी। साकार सावयव जगत्के उपादान कारण प्रकृति को निराकार निरवयव मानना प्रत्यक्षादि प्रमाणों के और पदार्थ विद्या के भी विरुद्ध है। यदि प्रकृति को साकार सावयव कहें तो प्रकृति अनादि न होगी किन्तु उत्पत्ति वाली सिद्ध होगी। यदि सांख्य मतवाले ऐसे ही मानें तो प्रकृति का उपादान कारण दूसरा मानना पड़ेगा। यदि ऐसे ही मानें तो सांख्य मत में उपादान कारणोंकी अनवस्था का प्रसंग होगा॥

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृति:० ।

इस सूत्र में सांख्य वाले कहते हैं कि सत्त्व रजस् तमस् तीनों गुणोंकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। यहां सांख्यमत वालों से प्रष्टव्य यह है कि तीन गुणोंकी मिलावट से पहिले ही साम्यावस्था थी, अथवा तीन गुणोंकी मिलावट से साम्यावस्था उत्पन्न होती है? वा तीन गुणों ही का नाम साम्यावस्था है यदि कहो कि तीन गुणोंकी मिलावट से प्रथम ही साम्यावस्था थी तो वह साम्यावस्था तीन गुणों से भिन्न थी अथवा अभिन्न, यदि अभिन्न कहो तो शेष तीन गुण ही सिद्ध होंगे साम्यावस्था रूप प्रकृति वन्ध्याओं की कन्या के समान मिथ्या होगी ॥

यदि साम्यावस्थाको तीन गुणोंसे भिन्न कहैं तो गुणोंही की साम्यावस्था प्रकृति है, यह कथन मिथ्या होगा। यदि तीन गुणों की मिलावट से प्रकृति-

रूप साम्यावस्था को कहें तो प्रकृति कार्य होगा, और तीन गुण उस के कारण होंगे। सो गुणसे गुण अथवा गुण से द्रव्य का होना पदार्थ विद्या के विरुद्ध है। साम्यावस्था को यदि प्रकृति न त्यागेगी तो अवस्थान्तर न होगी। यदि अवस्थान्तर न होगी तो प्रकृतिसे जगत्कार्य न होगा। यदि तीन गुणों का आधार प्रकृति को मानें तो प्रकृति कार्य है, जो कार्य होता है वह अपने कारण का आधार नहीं हो सकता। यदि कहो कि तीन गुण अपना आधार आप ही हैं तो आत्माश्रय दोष होगा। यदि तीन गुणोंके आधार दूसरे तीन गुण मानें तो अनवस्थादि दोषों का लाभ होगा, यदि जीव को तीन गुणों का आधार मानें तो सांख्यमत में असङ्गता की हानि होगी। जीव अल्पज्ञहै जगत्के उपादान कारण गुणोंका आधार हो ही नहीं सकता। सांख्यमत में (ईश्वरासिद्धेः) इत्यादि सूत्रोंसे सर्वज्ञ ईश्वर जगत् का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, हां दयानन्द ने सांख्यमतवाले को कपोल कल्पित ईश्वरवादी कहा है। परन्तु ईश्वर को तीन गुणों का आधार कहें तो तीनों गुणों के दोष ईश्वर में सिद्ध होंगे, और गुणों को निराधार मानें तो गुणत्व की हानि होगी गुणों की साम्यावस्था को यदि चेतन न मानें तो सांख्यसूत्रों से यह सिद्धान्त सिद्ध न होगा। यदि साम्यावस्था को जड़ मानें तो उस को अवस्थान्तर होने का ज्ञान ही न होगा, इत्यादि और भी अनेक युक्तियां वेदान्त में लिखी हैं कि जिन युक्तियोंसे सिद्ध हो चुका है कि सांख्यमत की प्रकृति किसी प्रकार से भी जगत् का उपादान कारण सिद्ध नहीं हो सकती, खण्डन हो चुके ॥

प्रकृति वादी सांख्यमत को गान के बाबा जी ने गपोड़ा हांका है कि हमारा वेद मत है। दयानन्द के भक्त कहते हैं कि हिन्दुस्तान में तो सांख्य के कर्त्ता कपिल मुनिजी को ईश्वर का अवतार मानते हैं फिर वेदान्ती लोग सांख्य मत के प्रकृतिवाद को कैसे मिथ्या कह सकतेहैं?। यह शंका भी भ्रान्तिमूलक है क्योंकि मुख्यपन्थ वेदान्त के ग्रन्थ से सिद्ध हो चुका है कि कपिल मुनि नास्तिक और आस्तिक भेदसे दो हुए हैं। आस्तिक कपिल मुनि वेदान्ती हुए और वही ईश्वर के अवतार थे उन्हीं ने कपिल गीता बनाई है और उन्हीं ने माता को ब्रह्मज्ञान का तरीका बतलाया है। सांख्य दर्शनके कर्त्ता अनीश्वर वादी होनेके कारण नास्तिक थे। विचारसागरके सातवें तरंगका लेख है कि सांख्यदर्शन को सारग्राही दृष्टि ही से वेदान्ती लोगों ने माना है। सांख्यमतको मुख्य वेदान्ती लोगों ने नहीं माना।

जब तक पूर्ण रीति से भारतवर्ष में वेदान्त का प्रचार नहीं होता तब तक ही खण्डन हो चुके न्याय वैशेषिक और सांख्य दर्शन को अज्ञानी लोग सत्य मानेंगे, जगदुत्पत्ति वाद में पूर्व मीमांसा और योगदर्शन को भी वेदान्त के ग्रन्थोंमें खण्डन किया है । अन्तःकरण की शुद्धिके लिये और मनको एकाग्र करनेके लिये सारग्राही दृष्टि ही से न्यायादिको वेदान्ती लोगों ने माना है

नास्तिक लोग बौद्ध कहते हैं कि शून्य ही जगत्का कर्त्ता है, सो भी ठीक नहीं क्योंकि शून्य नाम अभाव का है अभावसे भाव जगत् का होना युक्ति से विरुद्ध है ॥ जब शून्य रूप अभावका प्रतियोगी मानें तो शून्यही सिद्ध न होगा क्योंकि भावपदार्थ अभाव नहीं हो सक्ता, यदि शून्य को जड़ मानें तो शून्य को जगत् रचना का ज्ञान न होगा, यदि कहें कि शून्य चेतन है तो चेतन को शून्य कथन करना मिथ्यावादियों की लीला है ॥

यदि शून्य का साक्षी न मानें तो शून्य सिद्ध न होगा, यदि साक्षी मानें तो वह साक्षी चेतन ईश्वर ही जगत् कर्त्ता सिद्ध हो जावेगा । नास्तिक कहते हैं कि कर्म्म ही जगत् का कर्त्ता है, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि बिना शरीर के कर्म्मों का होना असंभव है और कर्म्मोंके विना शरीर भी नहीं हो सक्ता। यदि कर्म्मों के पहिले शरीर को मानें तो जगत्के कर्त्ता कर्म्म हैं यह कथन असङ्गत होगा, यदि शरीर के पहिले कर्म्मों को मानें तो शरीरसे कर्म होते हैं यह कथन मिथ्या, होगा, यदि कर्म्मों को चेतन मानें तो अनुभव से विरोध होगा, क्योंकि कर्म्म नाम क्रियाका है, क्रियाका कर्त्ता जीव चेतन है, क्रिया जड़ है यह बात अनुभव सिद्ध है, यदि क्रिया रूप कर्म्मों को जड़ ही मानें तो जड़ कर्म्मों को भी जगत् रचनाका ज्ञान न होगा, जगत्के कर्त्ता ईश्वर को नास्तिक नहीं मानते सो उनकी भूल है क्योंकि विना कर्त्ता के जैसे घड़ा वा वस्त्र नहीं बन सक्ता वैसे चेतन कर्त्ता के बिना जगत् की रचनाका होना असंभव है । देखा जाता है कि बागीचेमें माली लोग आम्रादि के बीज को डाल देते हैं परन्तु उस बीजमें से चित्र विचित्र पत्र फल फूलादि निकालने का ज्ञान माली को नहीं हैं । आम्रादि वृक्षों में जो जल सिंचन किया जाता है उस को भी पत्र फल फूलादिके दर्शन कराने का ज्ञान नहीं है । बागीचे की मृत्तिका को भी वैसा ज्ञान नहीं, किन्तु आम्रादि बीजके बाह्याभ्यन्तर सत् चित् आनन्द स्वरूप सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् सर्वव्यापक ईश्वर ही चित्र विचित्र फल फूलादि की बीज से उत्पत्ति का कर्त्ता है । स्त्री के गर्भाशय में

रज वीर्य्य तो एकत्र हो जाते हैं, परन्तु रज, वीर्य्य, स्त्री वा पुरुष को ऐसा ज्ञान नहीं कि चित्र विचित्र हाथ पैर नाकादि जगत् रचना को उत्पन्न कर दर्शा देवें। हाथ पैर नाकादि विचित्र रचनासे यही निश्चय होता है कि स्त्री के गर्भाशय में सत्‌चित् आनन्द स्वरूप ईश्वर पूर्ण है कि जिस के ज्ञान इच्छा प्रयत्न रूपी निमित्त कारणसे रजवीर्य्य उपादानसे नानाभांतिकी शरीर रूपी जगत् रचना देखी जाती है। इत्यादि युक्तियों से कारण वादके प्रकरणमें और भी युक्ति शून्य वेदके विरुद्ध मतोंका वेदान्त के ग्रन्थों में खण्डन किया है। जिस को जिज्ञासा हो वहां देख लेवे ॥

अब वेदान्त की रीति से जगदुत्पत्ति का प्रकार लिखा जाता है। जैसे कि—

(यजुर्वे० अ० १४ मं० २३ ॥ विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो०)
(भाष्यम्) (विविधं वर्त्ततेयस्मिन् स विवर्त्तः) अथवा
(पूर्वरूपमपरित्यज्य अन्यथाभावो विवर्त्तः)

इस का सिद्धान्त यह है कि सत्यासत्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय मायामें जो नानाभांति का चित्र विचित्र जगत् है उसका ब्रह्मचेतन में भान होता है। वह ब्रह्मचेतन अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को न त्यागके नानाभांतिके चित्र विचित्र प्रपंच का अभिमान कर्त्ता प्रतीत हो रहा है। जैसे कि स्फटिक मणिमें निरावरण संनिधिता संबन्ध से रक्त पुष्प की रक्तताका स्फटिकमणि में भान होता है वैसे ही अनिर्वचनीय माया के प्रपंच का भान शुद्ध ब्रह्मचेतन में अनुभव सिद्ध है। प्रत्यक्ष में अनुमान की कुछ भी आवश्यकता नहीं (अहंकाणः) (अहंबधिरः) (अहंसुखी) (अहंदुःखी) इत्यादि लोकानुभव से यथावत् सिद्ध होता है कि काणत्व बधिरत्वादि धर्म्म शरीरादि के हैं परन्तु शुद्ध ब्रह्मचेतनात्मा में भान होते हैं ॥

जैसे स्वप्न के समय नींद ही स्वप्न रचनाका निमित्तकारण है, नींदही में नाम रूप और क्रियात्मक स्वप्न रचना है, परन्तु स्वप्न रचना के घट पटादिक कार्य्योंके उपादान कारण कपाल तन्त्वादि भिन्न२ देखे जातेहैं। स्वप्न रचनाका द्रष्टा शुद्ध ब्रह्मचेतन निर्विकार है। वह न किसी का उपादानकारण और न वह किसीका निमित्त कारण है किन्तु लोह चुंबक न्यायसे माया ही में स्वप्नके चित्र विचित्र जगत् रचना के पदार्थ शुद्ध ब्रह्मचेतन में भान होते हैं, । स्वप्न रचना में भी (अहंकाणः) इत्यादि अत्यन्त जड़ दुःख रूप अनिर्वचनीय नींद रूपी मायाके धर्म शुद्ध ब्रह्मचेतन में भान होते हैं ॥

वस्तुतः शुद्ध ब्रह्मचेतन में जैसे स्वप्न प्रपंच का बाध है वैसे ही शुद्ध ब्रह्म चेतन में जाग्रत् के मायारूप चित्र विचित्र प्रपंच का भी अत्यन्ताभाव है। जगदुत्पत्ति प्रकरण में मुख्य करके वेदान्त के ग्रन्थों में सृष्टि दृष्टि वाद और दृष्टि सृष्टि वाद दो भेद हैं। सृष्टि दृष्टि का सिद्धान्त यह है कि प्रथम घट पटादि नानाभांति के प्रपंच की सृष्टि और पश्चात् उसके शुद्ध ब्रह्मचेतन में प्रपंच की दृष्टि का व्यवहार होता है इसीका नामवेदान्ती लोगोंने सृष्टि दृष्टि वाद का वर्णन किया है। यह सिद्धान्त सृष्टि दृष्टि वादका मन्दजिज्ञासुके समझानेके लिये है। इस सृष्टि दृष्टि वादमें शरीरादि सृष्टि ईश्वर रचित है। वो किसी को दुःखदायक नहीं किन्तु ईश्वर रचित शरीरादि में जो ममता है वह जीवसृष्टि है, यही जीवको दुखदायक है। (इसमें उदाहरण) किसी नगर में से दो धनियों के लड़के व्यापार के लिये देशान्तर में चले गये, उनमें से एक धनी का लड़का देशान्तर में मर गया, दूसरे धनीका लड़का जीता रहा, जीते हुए लड़के ने अपने पिताको अपना और मरे लड़केका समाचार भेज दिया परन्तु समाचार देनेवाला दुष्ट था उसने जीवते लड़के के पिता से कहाकि आपका पुत्र मरगया है और मरगये लड़केके पिताको कहा कि आपका लड़का जीता है। थोड़ेही दिनोंमें हाथी पर सवार होके आवेगा इसको सुनकर जीवते पुत्रका पिता तो अत्यन्त दुःखी होकर रोने पीटने लगा, और मरे पुत्र के पिता ने आनन्द मंगल किया, अब विचारना चाहिये कि जिस धनीका ईश्वर रचित पुत्र विदेश में जीता है और जीवरचित मरगया है। उस धनीको बड़ा ही दुःख हुआ और जिस धनीका ईश्वर रचित पुत्र मरगया है परन्तु जीव रचित जीता है उस धनीको बड़े सुखका लाभ हुआ। इस उदाहरण से यहां सिद्ध हो चुका कि जीवरचित सृष्टि ही जीवको दुःख सुखका कारण है। ईश्वर रचित सृष्टि किसीको दुःख सुखका कारण नहीं इसीका नाम सृष्टि दृष्टिवाद है।

(जब दृष्टि तब सृष्टि) इसका नाम दृष्टि सृष्टि वाद है। जैसे स्वप्नके पदार्थों की जब तक दृष्टि है तब तक सृष्टि है जब दृष्टि नहीं तब स्वप्नकी सृष्टि भी नहीं यह दृष्टि सृष्टिवाद उत्तम जिज्ञासुके समझानेके लिये है। इसमें सृष्टिकाकोई भी क्रम नहीं अभिप्राय यह कि इस सर्वोत्तम दृष्टि सृष्टि सिद्धान्त में ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, ध्याता,ध्येय प्रमाता प्रमाण प्रमेय, द्रष्टा दृष्टि द्रष्टव्य, स्मर्ता स्मृति स्मर्तव्य अवगन्ता अवगति अवगन्तव्य इत्यादि त्रिपुटियोंका समकाल ही में दर्शन और समकाल ही में अदर्शन हो जाता है (णश् अदर्शने) जनी मा-

दुर्भावे इस व्याकरण के सिद्धान्त से भी जन्म और नाशका अर्थ दर्शन अद-र्शन ही सिद्ध होता है। दृष्टि सृष्टि वाद में जगत्का कर्ता ईश्वर और जगत् का कारण माया तथा जगत् रचना कर्म्म इस त्रिपुटीका भी 'सत्काल ही में भान होता है। यद्यपि स्वप्न रचनामें क्रम भी भान होता है जैसे कि प्रथम माता पिता और पश्चात् उसके पुत्रका होना होता है और स्वप्न रचना के समय यह भी निश्चय होता है कि यह चन्द्र सूर्य्य तारा पर्वत पहाड़ नदी सा-गरादि मेरे जन्म से भी पहिले के बने हैं तथापि इस प्रकारका भान भी नींद रूपी माया की विचित्रता है। दीर्घकाल और क्रमसे जगत् रचना का शुद्ध ब्रह्मचेतन में भान यह सर्व अनिर्वचनीय माया रूपी नींद से कल्पित है। यदि विचार के नेत्रोंसे देखो तो जाग्रत् शरीरके कण्ठ की नाड़ी में ही स्वप्न रचनाका भान होता है अत्यन्त लघुकण्ठकी नाड़ीमें पर्वत पहाड़ नदी सागर चन्द्र सूर्य्य हाथी घोड़ा रेलादिकी रचना होना सर्वथा असंभव है। परन्तु मायारूपी नींदसे सर्व रचनाका भान होता है मिणट दो मिणट आधी मिणट व पांच मिणटके कालमें लक्षों वर्षोंका भान सर्वथा असंभव है। परन्तु आधी मिणटमें स्वप्न रचना के लक्षों वर्षोंके दीर्घकालका भान होता है। वैसे ही जाग्रत्के प्रपञ्च रचना और दीर्घकालका भान शुद्ध ब्रह्म चेतन में होता है, (सन्ध्ये सृष्टिराहहि अ० ३ पा० २ सू० १) इस व्यास सूत्रके भाष्यमें ब्राह्म-णभाग वेदका प्रमाण देकर श्रीमान् भगवान् शङ्कराचार्यजी ने भी पूर्वोक्त दृष्टि सृष्टिवाद ही को दर्शाया है जैसे कि—

(शत० कां०१४ कं०११ ॥ न तंत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति। अथ रथान् रथयोगान्पथः सृजते। न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भवन्त्यानन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते)

इस वेद प्रमाणका सिद्धान्त यह है कि स्वप्नवास्थाके समय न रथ इक्के घोड़ा गाड़ी बैलगाड़ी रेलादि हैं न उन के चलने योग्य सड़कें हैं और न उन को खींचनेवाले घोड़े बैलादि हैं परन्तु मायारूपी नींदके समकाल ही में रथादि असवारी और उनको खींचनेवाले घोड़ा बैलादि और उनके चलने योग्य सड़कादि का दर्शन होने लगजाता है। और एकही समय उनसे सब का अदर्शन हो जाता है। विषय भोगोंका आनन्द स्वप्न रचनाके समय है

नहीं और सामान्य वा विशेष आल्हाद है नहीं परन्तु एक मिनट के समय भोगानन्द और सामान्य विशेष भोगोंमें आल्हादका भान होता है। और नींद के अदर्शन से समकाल ही में उन सबका अदर्शन हो जाता है वैसे ही जाग्रत् रचना का प्रपंच है।

दयानन्द के भक्त कहते हैं कि स्वप्न के समय जाग्रत् के पदार्थों का स्मरण होता है। सो भी ठीक नहीं क्योंकि जाग्रत् के समय दयानन्द के भक्तोंके माता पिता मरजाते हैं, उनका अन्त्येष्टि संस्कार कर देते हैं, परन्तु स्वप्न के समय माता पिता की गोद में बैठे नमस्ते का हल्ला मचाने लगजाते हैं। यदि जाग्रत् के पदार्थों ही का स्वप्न के समय भान होता तो स्वप्न के समय भी दयानन्द के भक्त अपने माता पिता को मुर्दे ही देखते, इसी युक्ति से सिद्ध हो चुका कि स्वप्न के समय जाग्रत् के पदार्थों का स्मरण नहीं होता। इस दृष्टि सृष्टिवाद के सिद्ध करनेके लिये वेदान्त के ग्रन्थों में नानाप्रकार की युक्तियें लिखी हैं। जिन को जिज्ञासा हो वह देख कर सन्देह नष्ट कर लेवें। दृष्टिसृष्टिवाद भी दो प्रकार का है, एक तो यह कि दृष्टि कहिये ज्ञानके समकाल सृष्टि सो दृष्टि सृष्टि, जैसे कि पूर्व स्वप्न के दृष्टान्त से हम वर्णन करचुके हैं, दूसरा यह कि दृष्टि कहिये ज्ञानस्वरूप ही सृष्टि सो दृष्टिसृष्टि, इसका अभिप्राय यह कि प्रकरण में ज्ञान नाम ब्रह्मचेतन का है। (घटोऽस्ति) (पटोऽस्ति) इत्यादि स्थानों में जो सत्ता है वह सत्ता घट पटादि पदार्थों की नहीं, किन्तु वह ब्रह्म स्वरूप सत्ता है क्योंकि सत्ता पदार्थ त्रिकाल अबाध्य है, घट पदार्थ का ब्रह्मस्वरूप सत्ता में त्रिकाल बाध है। इसी प्रकार से सर्व नामरूप पदार्थों में निश्चय कर लीजिये वह सत्ता स्वरूप ब्रह्म ही ज्ञानस्वरूप है। जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों प्रकार का प्रपंच बाध समानाधिकरण से सत्य सुख ज्ञान ब्रह्म स्वरूप है इसी का नाम दृष्टि नाम ज्ञान स्वरूप सृष्टि ही दृष्टि सृष्टि वाद है ॥

(ऋग्वेद० मण्ड० ६ सू० ४७ मं० १८—रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ॥ इन्द्रोमायाभिः०)

इत्यादि मन्त्रों में माया और इन्द्र शब्द हैं प्रकरण में सत्यासत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय प्रकृति माया का अर्थ है। और इन्द्र शब्द का प्रकरण में शुद्ध ब्रह्म चेतन अर्थ हैं, जैसे शुद्ध दर्पण में अनेक प्रतिबिम्ब भान होते हैं,

परन्तु वस्तुतः शुद्ध ब्रह्ममें कुछ भी नहीं, वैसे ही नाना भांति के चित्रविचित्र प्रतिबिम्ब शुद्ध ब्रह्म चेतन रूपी दर्पण में भान होते हैं। परन्तु वस्तुतः शुद्ध ब्रह्म चेतन में कुछ भी नहीं, यह बात अनुभव सिद्ध है कि जाग्रत् प्रपंच का स्वप्नमें अदर्शन और जाग्रत्में स्वप्नके प्रपंच का अदर्शन होता है। सुषुप्ति में जाग्रत् और स्वप्न दोनों प्रकार के प्रपंचका अदर्शन हो जाता है। परन्तु शुद्ध ब्रह्म चेतनात्मा तीनों अवस्थाओंमें एक रस स्वप्रकाशसे भान होता है। उस से शुद्ध ब्रह्म चेतनात्मा त्रिकाल अबाध है। उसका न जानना ही जगत् की आदि है और उनके यथार्थ ज्ञान ही का नाम प्रलय है। दयानन्दोक्त जगदुत्पत्ति प्रलय प्रत्यक्षादि प्रमाणों और पदार्थ विद्याके विरुद्ध है। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि "विचार सागरादि वेदान्तके ग्रन्थोंमें तो तैत्तिरीय श्रुति के अनुसार जगदुत्पत्ति प्रलयका क्रम लिखा है,,। तो उत्तर यह है कि वहां मन्द जिज्ञासुको लय चिन्तन द्वारा अद्वितीय नित्य मुक्त नित्य शुद्ध सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित ब्रह्मचेतनात्मा के निश्चय कराने के लिये ही जगदुत्पत्तिका क्रम वर्णन किया है। जैसे बारूदका हाथी थोड़ी देर के बाद अग्नि में भस्म करदिया जाता है। उसके कान पूंछ टेढ़े भी होवें तो भी उन को सीधा करने के लिये कोई भी परिश्रम नहीं करता। वैसे ही वेदान्ती लोगोंने जगदुत्पत्ति का क्रम वर्णन किया है वस्तुतः उत्तम जिज्ञासु के लिये जगदुत्पत्ति प्रकरण में दृष्टि सृष्टि वाद दर्शाया है यही वेदोक्त सत्य मत है। दयानन्दोक्त वेद के विरुद्ध जगदुत्पत्ति प्रलय को हमने शश शृङ्गके समान मिथ्या सिद्ध कर डाला है॥ ओम् शान्तिः ३॥ इति॥
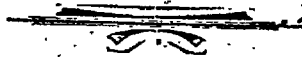
वेदोक्त वेदोत्पत्ति मण्डन ।

व्याख्यान २

सर्व जनों को विदित हो कि इस व्याख्यान में वेदोत्पत्ति का मण्डन किया जाता है । परन्तु प्रथम स्थाली-पुलाक-न्याय से दयानन्दोक्त वेदोत्पत्ति का खण्डन दर्शाया जाता है ।

(तथाहि) (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका प्रथमावृत्ति पृ० २८ पं० १४) दयानन्द का लेख है कि " वेद तो शब्द अर्थ और सम्बन्धस्वरूप है ,मसी-कागज की बनावट पुस्तक वेद नहीं ,, अर्थात् अक्षरों की बनावट वेद नहीं (७ सत्या०द्व समुल्लास ७) (छन्दोब्राह्मणानि च०) इस पाणिनीय व्याकरण सूत्रके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "पुस्तक तो कागज स्याहीका बना है वह नित्य नहीं हो सकता किन्तु जो शब्दार्थ और सम्बन्ध है वही नित्य है,, इत्यादि दयानन्दके लेखोंका सिद्धान्त यह है कि पुस्तक वेद नहीं, किन्तु पुस्तक मनुष्यकृत है । फिर इसके विरुद्ध देखो-(६ आर्याभिविनय)

(य० अ० ४० मं०८ स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी०)

इस मन्त्र के भाष्यमें दयानन्द का लेख है कि "वेदके बिना अन्य कोई पुस्तक ईश्वरोक्त नहीं, जैसा ईश्वर पूर्ण विद्वान् है वैसा ही वेद पुस्तक भी है" (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका प्रथमावृत्ति पृ०३३८ पं० २८) दयानन्दका लेख है कि "जिस वक्त चारों वेदोंका भाष्य बन और छपकर बुद्धिमानों के ज्ञान गोचर होगा तब भूगोलभर में विदित हो जावेगा कि ईश्वरकृत सत्य पुस्तक एक वेद ही है" इत्यादि दयानन्द के लेखोंका सिद्धान्त यह है कि पुस्तक ही वेद है । कहीं पुस्तकको वेद होनेका खण्डन और कहीं पुस्तकको वेद होनेका मण्डन लिखा है । उससे दयानन्द के वेदोत्पत्ति विषयक दोनों ही लेख परस्पर विरुद्ध हैं ॥

(सत्या०समुल्लास १३) दयानन्द ही का लेख है कि "परस्पर विरुद्ध लेख झूठी दरोगहलफी है,, इस लेख की दयासे पुस्तक को वेद अथवा शब्दार्थ सम्बन्ध को वेद लिखना दयानन्द के यह दोनों लेख झूठे सिद्ध होचुके ॥

(७ सत्या० समुल्लास १३) दयानन्द ही का लेख है कि "जो आप झूठा और दूसरे को झूठ पर चलावे उसको शैतान कहना चाहिये,, (ऋग्वे० मण्ड० १ सू० १७३ मं० ५ आवृत्ति १) (तमुष्टुहीन्द्रं०) इस वेद मन्त्रके दयानन्द कृत भाष्य में लिखा है कि "सच्च बोलनेका नाम स्तुति और झूठ बोलनेका नाम निन्दा है" (ऋ० मण्ड० ५ सू० ८७ मं० ६ अपारो वो० इसके दयानन्द कृत भाष्य में कहा है कि राजा को चाहिये कि जो निन्दा करनेवाला झूठा हो उसको सदा कारागार में रक्खे (ऋग्वे० मण्ड० १ सू० १२९ मं० ६ प्रत-द्वोचे० इस मन्त्रके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि "निन्दा करनेवाले को निकाल देओ" (ऋग्वे० मण्ड० ६ सू० ५२ मं० ३ दवंतामग्न०) इस मन्त्रके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "आप निन्दा करने वालेको वज्र से मार डालो,, (ऋग्वे० भाष्यभूमिका पृ० २९० पं० १० प्रथमावृत्ति) दयानन्द का लेख है कि "जो झूठ बोलने वाले हैं वही असुर हैं, उसीके (पृ० २३० पं०१४) दयानन्द का लेख है कि "डांकू और चोर ही असुर हैं,, उसीके (पृ० ३३७ पं० १३ य० अ० २३ मं० ११ उत्सक्थ्या अवगुदं धेहि०) इसके भाष्यमें दयानन्द ही का लेख है कि "राजाको चाहिये कि डाकू चोरों को उलटे टंगवा कर बुरी दशा से मरवा डाले,, (७ सत्या० समुल्लास ६) (यथोद्धरतिनिर्दाता० नतु०) इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि जैसे धान्यका निकालनेवाला छिलके से भिन्न कर धान्य की रक्षा कर लेता है वैसे ही राजा भी डाकू चोरोंको मार कर राज्य की रक्षा करें अब विद्वान् लोग पूर्वोक्त दयानन्दही के लेखों से जान लेवें कि दयानन्द की वेदोत्पत्ति सत्य है अथवा मिथ्या और वेदोत्पत्ति विषयक अपने ही लेखों से दयानन्द विद्वान् सिद्ध होता है? अथवा अविद्वान् ॥

(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका प्रथमावृत्ति वेदोत्पत्तिप्रकरण)

(बृहदारण्योपनि० अ०४ ब्रा०४कं०१०अरेऽस्यमहतोभूतस्यनिःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदःसामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः०)

इस प्रमाण को देकर दयानन्द ने कहा है कि चार मन्त्र संहिता वेदों ही को श्वास के समान ईश्वर ने रचा है यहां दयानन्द के भक्तोंसे पूछना चाहिये कि पूर्वोक्त ब्राह्मणवाक्य वावाजी ने सारा लिखा है अथवा आधा?। यदि कहो कि पूर्वोक्त प्रमाण सारा है आधा नहीं सो ठीक नहीं क्योंकि द-

यानन्द के भक्तों को चाहिये कि पक्षपात छोड़ कर वक्ष्यमाण रीति से सारा प्रमाण देखें । जैसे कि—

(बृहदारण्योपनिषद् अ० ४ ब्रा० ४ कं० १० । अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानीति)

इस प्रकरण में पुराण शब्द ब्राह्मणग्रन्थों का वाचक है अभिप्राय उक्त प्रमाणका यह कि इतिहास शतपथादिब्राह्मण विद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र अनुव्याख्यान, व्याख्यान इत्यादिकों को ईश्वर ही श्वास के समान अनायास से रचता है। उस से ईश्वर ही की विद्या शतपथादि ब्राह्मण हैं । शतपथ ब्राह्मण के आरम्भ में शुक्लयजुर्वेदमें ऐसा लिखा है, इस नामसे शतपथ ब्राह्मण को भी वेद कहा है । सिद्धान्त यह है कि उक्त प्रमाणसे संहिता भाग और ब्राह्मण भाग दोनों ही वेद हैं ॥

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आवृत्ति १ पृ० ८० । अथ कोयं वेदो नाम मन्त्रभागसंहितेत्याह । किञ्च—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति कात्यायनोक्तेर्ब्राह्मणभागस्यापि वेदसंज्ञा कुतो न स्वीक्रियतइति। मैवं वाच्यम् । न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति । कुतः। पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वेदव्याख्यानादृषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वात्,कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वान्मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्चेति)

(दयानन्दकृतभाषार्थः) (प्र०) वेद किस का नाम है ? (उ०) मन्त्र संहिताओं का (प्र०) कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है फिर ब्राह्मण भाग को भी वेदोंमें ग्रहण आप लोग क्यों नहीं करते हैं ? (उ०) ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सक्ते क्योंकि उन्हीं का नाम इतिहास पुराण कल्प गाथा और नाराशंसी भी है । वे ईश्वरोक्त नहीं हो सक्ते । किन्तु वे महर्षि लोगों के किये व्याख्यान हैं । एक कात्यायन को

छोड़ के किसी अन्य ऋषिने उसके वेद होने में. साक्षी नहीं दी है। और वे देहधारी पुरुषों के बनाये हैं। इन हेतुओं से ब्राह्मणों की वेद संज्ञा नहीं हो सक्ती और मन्त्र संहिताओं का वेद नाम इस लिये है कि वह ईश्वर रचित सर्व विद्याओं का मूल है., दयानन्दका यह लेख किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकता उससे वह लेख अप्रमाण है किन्तु (पूर्वोक्त) शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से ब्राह्मण भाग भी वेद सिद्ध हो चुका है। ब्राह्मण को वेद के न सिद्ध होने में दयानन्द ने तो एक भी प्रमाण नहीं दिया। सो देता कहां से जब किसी ऋषि कृत ग्रन्थ में भी ऐसा प्रमाण नहीं पाया जाता कि जिसमें ब्राह्मण भाग के वेदत्व का खण्डन लिखा हो। दयानन्द ने जो कहा कि "ब्राह्मण ग्रन्थ देहधारी पुरुषों के बनाये हैं" यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि आप के बाबा जी ने शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों के कर्त्ता देहधारी पुरुष वर्णन किये हैं। उन देहधारी पुरुषों के नाम भी लिखे हैं अथवा नहीं ? यदि कहो कि हां नाम लिखे हैं सो ठीक नहीं क्योंकि दयानन्द कृत किसी भी ग्रन्थ में शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्ताओं के नाम नहीं देखे जाते। शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों के टाइटिल पेज पर भी देहधारी पुरुषोंके नाम नहीं देखेजाते। हां शतपथ ब्राह्मणके प्रमाण से तो हम पूर्व दर्शा ही चुके हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थोंके कर्त्ता ईश्वर हैं। दयानन्द के भक्त कहते हैं कि मन्त्र संहिता भाग का ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं मिल सक्ता कि जिससे ब्राह्मण ग्रन्थ ईश्वर के रचे सिद्ध हो जावें दयानन्द के भक्तोंका यह कथन भी वेदों के अज्ञाता होने के कारण मिथ्या है क्योंकि अथर्ववेद संहिता (कां० ११ अनु० ४ मं० २४)

(ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरेसर्वे दिविदेवादिविश्रितः)

इस संहिता भाग के मन्त्र में भी पुराण शब्द स्पष्ट देखा जाता है। प्रकरण में यहां भी पुराण शब्द ब्राह्मण ग्रन्थोंका वाचक है। मंत्र का सिद्धान्त यह है कि ऋग् यजु साम अथर्व और ब्राह्मण इन सबोंका कर्ता एक ईश्वर है। जब वेद संहिता भाग के प्रमाण से भी ब्राह्मण ग्रन्थों का कर्ता ईश्वर सिद्ध हो चुका तो दयानन्द के भक्तों का सन्देह भी सर्वथा मिथ्या और लोक वंचनार्थ है। बाबा जी दयानन्द की बुद्धि पर तो अविद्या रूपी पत्थर पड़े ही थे परन्तु उनके भक्तों की बुद्धि भी अविद्या रूपी पत्थरों की मारी विपत्ति अन्धकार में बाबाजी के मिथ्या लेखों ही को टटोल रही है॥

दयानन्द ने जो कहा कि "कात्यायन के विना दूसरे किसी ऋषि ने भी ब्राह्मण ग्रन्थोंके वेद होने की साक्षी नहीं दी दयानन्दका यह लेख भी सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि अब शतपथ ब्राह्मणके प्रमाण और संहिता भाग वेद मन्त्रसे सिद्ध हो चुका कि संहिता भाग और ब्राह्मण भाग दोनों ही ईश्वर प्रणीत हैं। तो ईश्वरकी साक्षीसे जीवकी साक्षी बड़ी नहीं हो सकती। जाना जाता है कि दयानन्द और दयानन्दके भक्त अव्वल दर्जे के नास्तिक हैं। क्योंकि (नास्तिको वेदनिन्दकः) इस मनुस्मृतिके श्लोक का यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि जो ईश्वर की आज्ञा से विमुख है वही नास्तिक है।

यदि ऋषिकृत ग्रन्थोंही के प्रमाणोंकी आवश्यकता हो तो लीजिये। ऋषिकृत ग्रन्थों ही के प्रमाण लीजिये। कात्यायन मुनिकी साक्षी तो ब्राह्मण ग्रन्थोंके वेद होने में दयानन्द भी लिख चुके हैं। अब दूसरे ऋषियोंकी तथा ब्राह्मणभाग संहिताभागकी साक्षी सुनिये जैसे कि शतपथ कां० १३ ब्रा० १ कं० १३ ॥ पुराणं वेदः ॥ इस शतपथकी साक्षीने भी ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं।

(शतपथ कां० १४ ब्रा० ८ कं० ६ ॥ प्रजायतऽऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्०)

इस शतपथ के प्रमाण से भी ब्राह्मण ग्रन्थ वेद है ॥

(अथर्व० कां० १५ अनु० १ मं० ४ । सबृहतीर्दिशमनु व्यचलत् तमितिहासश्च पुराणंच०)

(इस अथर्व संहिताभागके मन्त्र की साक्षीकाभी यही सिद्धांत है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं) (सामवेद अ० १७ मं० २ प्रपा० ८ मं० ३ तं गायया पुराण्या०) (ऋ० मण्ड० ९ सू० ९८ मं० ४ ॥ तं गायया पुराण्या०) इस सामवेद और ऋग्वेद मन्त्रकी साक्षीका भी यही अभिप्राय है कि ब्राह्मण भाग भी वेद है।

(तैत्तिरीयारण्यकप्र०२अनु०९मं०२ ॥ यदृचोऽध्यगीषत ताः पयआहुतयो देवानामभवन्यद्यजूꣳषि घृताहुतयो यत्सामानि सोमाहुतयो यदथर्वाङ्गिरसो मध्वाहुतयो यद्ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीर्मेदाहुतयो देवानामभवन्नित्यादि०)

इस प्रमाणका सिद्धान्त यह कि ऋग्वेदका स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) देवताओंको दूधकी आहुतियोंके तुल्य प्रसन्न करता यजुर्वेदका स्वाध्याय देवताओंको घी की आहुतियोंके तुल्य सामवेद का स्वाध्याय सोमरस की अथर्ववेदका स्वाध्याय सहतकी और ब्राह्मण ग्रन्थोंका स्वाध्याय देवताओंको मेदकी आहुतियोंके तुल्य प्रसन्न करता है। इस तैत्तिरीयारण्यक प्रमाण की साक्षीसे भी ब्राह्मणभागका वेद होना सिद्ध है। (शुक्रनीति० अ० ४ श्लो० २७१ मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनाम प्रोक्तमृगादिषु०) इस शुक्राचार्य की साक्षीसे भी ब्राह्मण और संहिता दोनों भाग वेद हैं।

(शुक्रनीति० अ० ४ श्लो० २७२। उच्चारात् मन्त्रसंज्ञं तद्विनियोगि च ब्राह्मणम्०)

इस शुक्राचार्यकी साक्षी से भी ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं। (मन्त्रब्राह्मणमित्याहुः) इस बौधायन मुनिकी साक्षी से भी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों भाग वेद हैं। (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) इस आपस्तम्ब मुनि की साक्षीसे भी ब्राह्मण और मन्त्र दोनोंभाग वेद हैं। (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदस्त्रिगुणं यत्र पठ्यते) इस परिशिष्टकी साक्षीसे भी ब्राह्मण तथा संहिता दोनों भाग वेद हैं। (विधिमन्त्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात् । पूर्वमी० अ० २पा०१सू० ३०) इस जैमिनिमुनिकी साक्षी से भी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों भाग वेद हैं।

(मनु० अ० २ श्लो० १५ । उदितेऽनुदितेचैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथावर्ततेयज्ञ इतीयंवैदिकीश्रुतिः)

इस में मनुजी की आज्ञा है कि सूर्योदयके अनन्तर वा पहिले या सूर्य और नक्षत्र दोनों के अनुदय काल में होम होता है यह वेद की श्रुति है। इस मनु जी की साक्षी से भी ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं। क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थोंमें ही सूर्य के अनुदय और उदयकाल में होम करने की आज्ञा है।

(मनु० अ० २ श्लो० १० श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयोधर्मशास्त्रन्तुवैस्मृतिः । तेसर्वार्थेष्वमीमांस्येताभ्यांधर्मोहिनिर्बभौ)

इसमें मनु का सिद्धान्त है कि वेदको श्रुति और धर्मशास्त्र को स्मृति कहते हैं इसमें शंका नहीं हो सकती क्योंकि दोनोंही से धर्मका प्रकाश हुआ है इस मनु जी की साक्षीसे भी ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं। क्योंकि विशेष करके ब्राह्मण ग्रन्थों ही में सनातन हिन्दूधर्म का वर्णन है।

(स योऽनुदिते जुहोति यथा कुमाराय वा वत्साय वा जाताय स्तनं प्रतिदध्यात् तादृक् तदथ य उदिते जुहोति यथा कुमाराय वा वत्साय वा जाताय स्तनं प्रतिदध्यात् तादृक तत् । ऐतरेय ब्रा० पञ्चिका ५ अ० ५ खं० ३१)

इस ऐतरेय ब्राह्मण की साक्षीसे भी मनुस्मृत्युक्त सिद्धान्त ही सिद्ध होता है कि होम की विशेष आज्ञा देने से ब्राह्मण भाग भी वेद है। (आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च) इस अथर्ववेदीय कौशिक सूत्र की साक्षी से भी ब्राह्मण भाग वेद है।

(निरुक्त अ० १ पा० १ खं० १॥ समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यइति)

इस निरुक्तकार यास्क मुनि की साक्षी से भी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों भाग वेद हैं। क्योंकि उक्त निरुक्त वाक्य में समाम्नाय शब्द दो वार लिखाहै॥

*अब निष्पक्ष लोग विद्या की लालटेन जलाकर और विचार नेत्रों को खोलकर निगरानी कर लेवें कि एक कात्यायन मुनि की साक्षीके विना ब्राह्मण भाग के वेद न होने से दयानन्द का लेख सत्य है अथवा मिथ्या ? जाना जाता है कि बाबा जी ने पूर्वोक्त ग्रन्थों का पठन पाठन नहीं किया था। यदि किया होता तो ऐसा मिथ्या भाषण बाबा जी कभी न करते कि विना कात्यायन मुनि के और किसी ऋषि ने ब्राह्मण भाग को वेद नहीं माना। सिद्धान्त यह है कि युक्ति और वेदादि प्रमाणों से ब्राह्मण और मन्त्र दोनों भाग ही ईश्वर कृत वेद हैं दयानन्द का लेख मिथ्या है॥

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आवृत्ति १ पृ० ८६ पं० १८) दयानन्द का लेख है कि "ब्राह्मण ग्रन्थों की वेदोंमें गणना नहीं हो सक्ती, क्योंकि (इषेत्वो-र्जेत्वा०) इस प्रकार से उनमें प्रतीक धर २ के वेदों का व्याख्यान कियाहै। और मन्त्र भाग संहिताओं में ब्राह्मण ग्रन्थों की एक भी प्रतीक कहीं देखने में नहीं आती। इससे जो ईश्वरोक्त मूल मन्त्र अर्थात् चार संहिता हैं, वेही वेद हैं ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं," यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि दयानन्द का उक्त लेख सत्य है अथवा मिथ्या ।। यदि मिथ्या कहो तो दयानन्द मिथ्या वादी होगा। यदि कहो कि दयानन्द का उक्त लेख सत्य है तो सो भी ठीक नहीं, क्योंकि पूर्व हम ने मन्त्र संहिता के मन्त्र तथा

ऋषि कृत ग्रन्थों के अनेक प्रमाण देकर ब्राह्मण भाग को भी वेद सिद्ध कर डाला है। परन्तु दयानन्द ने एक भी प्रमाण ऐसा नहीं दिया कि जिस से ब्राह्मण भाग वेद नहीं यह लेख सत्य सिद्ध हो जाता ॥

रहा प्रतीक का लेख उस पर भी ऐसा प्रमाण दयानन्द ने कोई नहीं दिया कि जिस से दयानन्द के भक्त सिद्ध कर दिखावें कि प्रतीक हेतु से ब्राह्मण भाग वेद नहीं। मन्त्र भाग संहिताओं में यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों की प्रतीक तो नहीं आतीं तथापि मन्त्र भाग संहिता में मन्त्र भाग संहिता के मन्त्रों की प्रतीक तो अवश्य ही आती हैं जैसे कि—

(यं० अ० ३२ मं० ३ ॥ न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भइत्येषः । मामाहिᳪसीदित्येषः । यस्मान्नजातइत्येषः ॥)

इस यजुर्वेद संहिता के मन्त्र में यजुर्वेद संहिता ही के तीन मन्त्रों की तीन प्रतीकें दी हैं। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि वह तीन मंत्र भी प्रकाशित कर दीजिये कि जिस से हम लोगों को विदित हो जावे कि मन्त्र संहिता भाग में भी प्रतीक हेतु विद्यमान है। तो इस का उत्तर यह है कि—

(य० अ० १३ मं० ४ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रेभूतस्य जातः०) (य०अ०१२मं०१०२ मामाहिᳪसीज्जनिता यः पृथिव्याः०) (य०अ०८मं०३६ ॥ यस्मान्नजातःपरोऽअन्योअस्ति०)

इस तीन प्रतीक हेतु से यजुर्वेद संहिता भी वेद न होना चाहिये। दयानन्द ने जो कहा कि "ईश्वरोक्त चार संहिता ही वेद हैं ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं" बाबा जी का यह लेख सर्वथा लालबुझक्कड़ों की लीला है। (बूझे सूझे लाल बुझक्कड़ और न बूझैकोय। निराकार की है टोपी अथवा कलंगी होय) अभिप्राय यह कि मंत्र संहिता प्रमाण ही से ब्राह्मण भाग ईश्वरोक्त सिद्ध हो चुका है। (शतपथ० कां० ५ ब्रा० ५ कं० १८ ॥ ब्रह्म हि ब्राह्मणः) प्रकरण में इस शतपथ के वचनस्थ ब्रह्म शब्द वेद का वाचक है। अभिप्राय उक्त वाक्य का यह है कि ब्राह्मण भाग भी निश्चित वेद है ॥

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्तिप्रकरण) (यथा-ब्राह्मणग्रन्थेषु मनुष्याणां नामलेखपूर्वका लौकिकाइतिहासाः सन्ति नचैवं मन्त्रभागे इत्यादि)

दयानन्द कृत भावार्थः—दयानन्द कहता है कि "जैसे ब्राह्मण ग्रन्थों में मनुष्योंके नामलेख पूर्वक अनेक इतिहास आते हैं, वैसे मन्त्रभाग में नहीं, इससे ब्राह्मण भाग वेद नहीं हो सकता„ दयानन्द का यह लेख भी सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि मन्त्र संहिताभागमें मनुष्योंके इतिहास यथावत् आते हैं। जैसे कि-

(स बृहतीं०) इस अथर्ववेद के मन्त्र में ब्राह्मण ग्रन्थों का समाचार कहा है। यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि ईश्वर को ब्राह्मणग्रन्थों के इतिहासों का ज्ञान था अथवा नहीं? यदि नहीं कहो तो ईश्वर अज्ञानी होगा, यदि कहो कि ब्राह्मण ग्रन्थोंके इतिहासों का ईश्वर को ज्ञान था तो बतलाइये कि ब्राह्मण ग्रन्थों के इतिहास सत्य हैं अथवा मिथ्या?। यदि सत्य कहो तो सिद्ध यह होगा कि मन्त्रसंहिता में भी मनुष्यों के नाम और इतिहास यथावत् लिखे हैं। यदि कहो कि ब्राह्मणग्रन्थों के इतिहास मिथ्या हैं, तो ईश्वर भी मिथ्यावादी सिद्ध होगा। क्योंकि उसने मिथ्या इतिहास युक्त ब्राह्मण ग्रन्थों के नाम भी वेद में लिख दिये। उभयतःपाशा रज्जुन्याय से दयानन्द के भक्तों का छूटना नहीं हो सकता। (किंच) ऋ० मण्ड० १० सू० १०८) इस सूक्त की ११ ऋचाओं से राजा इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति का इतिहास है। (सायणाचार्यकृत भाष्य को देखकर सन्देह नष्ट कर लीजिये) (ऋ० मण्ड० १० सू० १० ओचित्सखायम्०) इत्यादि सूक्त के १४ मन्त्रों में यमयमी भगिनी भ्राता का इतिहास लिखा है। उस से मन्त्रसंहिता भी वेद न होने चाहिये। यदि इतिहास होने पर भी संहिता भाग वेद है तो इतिहास युक्त ब्राह्मणभाग भी वेद सिद्ध हो चुका। दयानन्द ने जो कहा कि मन्त्र संहिता में विशेष मनुष्योंके नाम नहीं, इसका उत्तर भी पूर्वोक्त मन्त्रों ही से सिद्ध हो चुका॥ (किंच)

(ऋ० मण्ड० १ सू० २७ मं० ४॥ इममूषुत्वमस्माकं सनिंगायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्रवोचः)

इस ऋग्वेद संहिता भागके मन्त्रभाष्य में स्वयं दयानन्द ने अग्नि आदि चार मनुष्यों के विशेष नाम लिख मारे हैं। यदि मनुष्यों के विशेष नाम होने ही से ब्राह्मणभाग को वेद न मानें तो मन्त्र संहितामें अग्नि आदि चार मनुष्यों के विशेष नाम होने से मन्त्र भाग भी वेद न होना चाहिये। दयानन्द के भक्त कहते हैं कि "मन्त्र और छन्द यह दोनों नाम ही मन्त्र संहिता के हैं। उससे संहिताभाग ही वेद है, ब्राह्मण भाग वेद नहीं" यह लेख दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ही से दयानन्दके भक्तों ने लिया है, सो भी असङ्गत है। क्योंकि संस्कारविधि सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थ में दयानन्दने

स्वयं ही उपनिषदोंकी श्रुतियां लिखकर उनका नाम मन्त्र लिखा है। ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाण लिखकर उनका नाम मन्त्र लिखा है। इस से भी ब्राह्मण भाग वेद ही सिद्ध हुआ ॥

(५ सत्या० समुल्लास ७ पृ० २१७ पं० २) (स पूर्वेषामपि गुरुः काले०) इस योग सूत्र के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उस का व्याख्यान ग्रन्थ होनेसे ब्राह्मण नाम हुआ" इस लेखको देखकर दयानन्द के भक्त कहते हैं कि "ब्राह्मण ग्रन्थ वेद का व्याख्यान होने ही से ब्राह्मण कहाते हैं. जो व्याख्यान होता है वह मूल नहीं हो सक्ता" यह शंका भी सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि जैसे (अष्टाध्यायी अ० १ पा० सू० १ (अइउण्) इस सूत्रके भाष्य में (अथ शब्दानुशासनम्) (अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते । शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्) इत्यादि प्रमाणोंका प्रकरण में सिद्धान्त यही सिद्ध होता है कि जैसे पतञ्जलि मुनि जीने स्वयं ही अनेक कारिका रची हैं। और स्वयं ही उनका व्याख्यान करने वाले हैं। मूल कारिका और व्याख्यान दोनों ही पतञ्जलि मुनि प्रणीत हैं। और दोनों ही व्याकरण ग्रन्थ हैं । वैसे ही मन्त्र संहिता भाग मूलके कर्त्ता भी ईश्वर और ब्राह्मणभाग व्याख्यान के कर्त्ता भी ईश्वर ही हैं । उससे मन्त्र संहिता और ब्राह्मण दोनों भाग ही वेद हैं ॥

(किञ्च) दयानन्द ने जो कहा कि "ब्रह्म नाम वेद का व्याख्यान होने ही से इन का नाम ब्राह्मण है,, इस लेख के विरुद्ध लेख भी बाबा जी ने लिख मारा है । (जैसे कि ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका प्रथमावृत्ति)(पृ० ८७ पं० ३१) दयानन्द ने लिखा है कि "ब्रह्म नाम ब्रह्मा का है, ब्रह्मा ने वेदों का व्याख्यान किया है । उस व्याख्यान का नाम ब्राह्मण ग्रन्थ है,, । बाबा जी का यह लेख भी युक्ति प्रमाण शून्य होने के कारण मिथ्या है। क्योंकि प्रमाण तो इसपर दयानन्द ने एक भी नहीं दिया, और ब्राह्मण ग्रन्थों के आरम्भ में भी 'अथ ब्रह्माकृत' ऐसे कहीं नहीं लिखा, और ब्राह्मण ग्रन्थोंके ईश्वर कृत होने में हम मन्त्र संहिता के प्रमाण भी दे चुके हैं, जो हो । वेदोत्पत्ति विषयक कहीं ब्रह्म नाम वेदका और कहीं ब्रह्म नाम ब्रह्मा का लिखना यह भी दयानन्द की झूंठी दरोगहलफी है ॥

(आर्याभिविनय) (स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्र०) इस मन्त्र के भाष्यमें दयानन्दने निराकार ईश्वरको वेदका कर्त्ता कहा है, सो दयानन्द का कथन सर्वथा मिथ्या है । क्योंकि वेद साकार पदार्थ है । साकार पदार्थका उपादान अथवा निमित्त कारण निराकार कथन करना प्रत्यक्षादि प्रमाणों और पदार्थ

विद्याके विरुद्ध है। क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण से देखा जाता है कि साकार घटका उपादान कारण मृत्तिका अथवा कपाल भी साकार हैं। वैसेही साकार घटका निमित्त कारण कुलाल भी साकार है। उससे साकार वेद का भी उपादान वा निमित्त कारण निराकार नहीं हो सक्ता, किन्तु साकार ही सिद्ध होगा। उससे ईश्वर को निराकार कथन करना दयानन्दका अज्ञान है। लक्षण और प्रकरण से उक्त मन्त्रका सिद्धान्तार्थ यह है कि जैसे जीवों के शरीर हैं। वैसा ईश्वर का शरीर नहीं किन्तु शुद्ध सत्व गुणप्रधान माया शक्ति ही ईश्वर का शरीर है। दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि ईश्वरके कण्ठताल्वादि ८ अङ्ग हैं अथवा नहीं ?। यदि नहीं कहो तो ईश्वर वेद का कर्त्ता न होगा क्योंकि वेदाङ्ग व्याकरणका सिद्धान्त है कि जब नाभिदेशमें वायुका संयोग होता है, तो कण्ठताल्वादि ८ अङ्गोंसे शब्दका उच्चारण होता है (१ सत्या० समुल्लास ३) (आप्तोपदेशः शब्दः) इस सूत्रके भाष्यमें दयानन्दने शब्द ही को वेद नाम से वर्णन किया है। शब्द रूप वेदके उच्चारण करनेके लिये अवश्य ही ईश्वर के कण्ठताल्वादि ८ अङ्ग मानने पड़ेंगे। यद्यपि जीवके जैसे ईश्वरके भौतिक अष्टाङ्ग नहीं, तथापि मायाशक्तिरूप ईश्वरके अष्टाङ्ग अवश्य सिद्ध होते हैं। उससे भी वेदका कर्त्ता ईश्वर सकार है (१ सत्या० समुल्लास१) (सपूर्वेषामपि०) इसके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि "जैसे वर्त्तमान समय में हम लोग अध्यापकोंसे पढ़ ही के विद्वान् होते हैं, वैसे सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियोंका परमेश्वर गुरु अर्थात् पढ़ाने हारा है" दयानन्द के इस रूपकालङ्कार से भी ईश्वर साकार सिद्ध होता है। परन्तु अग्नि आदि को ईश्वर ने वेद पढ़ाये यह लेख दयानन्दका प्रमाण शून्य होने से मिथ्या है। इसका खण्डन आगे करेंगे। प्रकरण यह कि दयानन्दके उक्त लेख से वेद का वक्ता ईश्वर साकार ही सिद्ध होता है ॥

(१ सत्या० समुल्लास १) (य० अ० ४० मं० ८।) स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः०) इसके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि "जैसे मुख जिह्वाके व्यापार किये विना ही मनमें अनेक शब्दोंका उच्चारण होता रहता है, वैसे ही जीवोंको अन्तर्यामी रूप से ईश्वर ने उपदेश किया है। कानोंको अंगुलीसे मून्दकर देखो सुनो कि बिना मुख जिह्वाके वा बिना ताल्वादि स्थानों के कैसे २ शब्द हो रहे हैं" दयानन्द का यह लेख भी मिथ्या है। क्योंकि सत्यार्थप्रकाशके ८ वें समुल्लासमें दयानन्दने मनकी उत्पत्ति लिखी है। उत्पत्तिवाला पदार्थ निराकार सिद्ध नहीं हो सक्ता। जहां मोनी

मनुष्य पुस्तक विचारता है वहां भी सूक्ष्म उच्चारण होता है। कण्ठताल्वादि-स्थानोंमें चेष्टा होती है, यह बात लोकानुभवसे सिद्ध है। ईश्वरका मन माया शक्तिरूप सिद्ध होता है। कान में अङ्गुलियां देनेसे वर्णात्मक शब्दका उच्चारण नहीं होता किन्तु वह शब्द ध्वन्यात्मक है। उससे भी वेदका कर्त्ता ईश्वर साकार ही सिद्ध होता है। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि "देखो एक फोनोग्र फ बाजा बना है उसके ताल्वादि ८ अंगोंका अत्यन्ताभाव है,परन्तु उसमेंसे वर्णात्मक शब्दोंका उच्चारण होता है। वैसे ही ताल्वादि ८ अंगोंके बिना ही निराकार ईश्वर वेदका उच्चारण करता है" दयानन्द के भक्तों की यह शंका भी भ्रान्तिमूलक है। क्योंकि फोनोग्राफ बाजे में जब तक शब्दके उच्चारण करने वाला चेतन मनुष्य लिख कर वर्णात्मक शब्द की चेष्टा युक्त मनुष्य का फोटो खींच कर बनावट नहीं रखता तब तक फोनोग्राफ बाजे में से वर्णात्मक शब्द कभी उच्चारण नहीं हो सकता। बाजेवाला मनुष्य जब कागज पर वर्ण लिखता है। तब उसके ताल्वादि आठ अंगो में ही वर्णात्मक शब्द का सूक्ष्म उच्चारण होता है। फिर वह फोनोग्राफ में वर्णात्मक शब्द को रख देता है, और मसाला ऐसा भरदेता है कि जैसे फोटोग्राफ खींचने के समय दर्पण के भीतर प्रतिबिम्ब जा पड़ता है। वैसे ही मसाले की आकर्षण शक्ति से बाजा रखने वाले के कण्ठ ताल्वादि से उच्चारण हुए वर्णात्मक शब्दोंका प्रतिबिम्ब खींचा जाता है। सिद्धान्त यह हुआ कि फोनोग्राफ बाजेके उदाहरणसे भी वेद का कर्त्ता ईश्वर निराकार सिद्ध नहीं हो सकता॥

(किंच) (चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत०) इत्यादि वेद मन्त्रों से भी ईश्वरके मन इन्द्रियादि सिद्ध होते हैं। (यस्य वातः प्राणाऽपानौ०) इत्यादि वेद मन्त्रोंसे ईश्वर के प्राणादि भी सिद्ध होते हैं। उस से भी वेद का कर्त्ता ईश्वर निराकार सिद्ध नहीं होता। (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका वेदोत्पत्ति प्रकरण) दयानन्द का लेख है कि "जैसे कोई बाजा बजाता है, अथवा पुतलियों को नचाता है, वैसे ही ईश्वर ने वेद को उत्पन्न किया है दयानन्द का यह लेख भी उपहास का आस्पद है। और उक्त उदाहरण से भी ईश्वर साकार ही सिद्ध होता है। उक्त बाजे का उदाहरण भी दयानन्द ने फोनोग्राफ बाजे ही को देख करदिया होगा। उस उदाहरण से ईश्वरके निराकारत्वका सर्वथा अत्यन्ताभाव है। दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में शब्दार्थ सम्बन्धको वेद लिखा है, और कहा है कि "शब्दार्थ सम्बन्धरूप वेद अनादि और नित्य है"। बाबा जी का यह लेख भी असंगत है, क्योंकि पूर्व हमने दयानन्द ही के लेख से वेद को शब्दरूप सिद्ध कर डाला है। प-

रन्तु ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के प्रमाण को ले कर दयानन्द के भक्त शब्द अर्थ सम्बन्ध इन तीन पदार्थोंको वेद कहते हैं। यद्यपि दयानन्द की दरोगहलफी से इसका खण्डन हम पूर्व करचुके हैं। तथापि यहां भी कुछ दक्षिणा दी जाती है। आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि शब्द अर्थ सम्बन्ध इन तीन पदार्थों में से किस एक पदार्थ का नाम वेद है? । अथवा तीनों के समुदाय का नाम वेद है?। यदि प्रत्येक पदार्थ को वेद कहो तो क्या शब्दका नाम वेद है वा अर्थ का नाम किंवा सम्बन्ध का नाम वेद है? यदि अर्थ का नाम वेद कहो तो शब्द के अर्थ अनेक हैं वेद भी अनेक होने चाहिये, गधा कुत्ता आदि शब्दों के अर्थ भी वेद होने चाहिये। अभिप्राय यह है कि अर्थ तो वेद सिद्ध हो ही नहीं सकते। यदि दयानन्दके भक्त कहें कि सम्बन्ध का नाम वेद है, तो कहिये संयोग सम्बन्धका नाम वेद है वा समवाय अथवा अभेद सम्बन्ध का नाम वेद है, किंवा वाच्य वाचक वा लक्ष्य लाक्षणिक सम्बन्धका नाम वेद है?। चाहे किसी सम्बन्धका नाम भी वेद कहो सम्बन्ध साकार सावयव पदार्थ ही का सिद्ध होता है, निराकार निरवयव पदार्थ का सम्बन्ध किसी प्रकार से भी सिद्ध नहीं हो सकता। यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो आत्माश्रय अन्योन्याश्रय चक्रिका अनवस्था विनिगम विरह प्राग्लोपादि दोषों से सम्बन्ध ही कोई सिद्ध नहीं हो सकता। उस से सम्बन्ध को वेद कथन करना भी असंगत है। यदि केवल शब्द ही को वेद कहो तो शब्दार्थ सम्बन्ध तीन पदार्थों को वेद कथन करना मिथ्या होगा। और तीनों के समुदाय को समुदायियों से भिन्न मानें तो आत्माश्रयादि दोषों का लाभ होगा। यदि अभिन्न मानें तो शब्दार्थ सम्बन्ध ही शेष सिद्ध होंगे। समुदाय का अत्यन्ताभाव सिद्ध हो जावेगा। दयानन्द ने जो लिखा कि वेद अनादि और नित्य है सो भी दयानन्द का अज्ञान और हठ है। क्योंकि (सत्या० समुल्लास० ३) (महाभाष्य अ० १ पा २ आ० २)

(श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः)

इस प्रमाणको देकर दयानन्द ने शब्दको आकाशका गुण कहा है। यहां दयानन्दके भक्तों से पूछना चाहिये कि जिस आकाश का गुण शब्द है वह आकाश अनादि और नित्य है, अथवा सादि और अनित्य है?। यदि आकाश को अनादि और नित्य कहो तो (तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः)

इस श्रुतिको ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में दयानन्द ने लिखा है, और इस के भाष्य में आकाश की उत्पत्ति लिखी है। उस से आकाश अनादि नहीं सिद्ध हो सकता, अनादि न होने के कारण आकाश नित्य भी सिद्ध नहीं हो सकता। (सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः) इस के भाष्य में भी दयानन्द ने आकाश की उत्पत्ति ही लिखी है। उस से भी आकाश अनादि और नित्य सिद्ध नहीं होसकता। यदि दयानन्द के भक्त कहें कि आकाश सादि और अनित्य है, तो प्रष्टव्य यह है कि आकाश निराकार निरवयव है, अथवा साकार सावयव। यदि निराकार निरवयव कहो तो आकाश की उत्पत्तिका लेख मिथ्या होगा। यदि कहो कि आकाश साकार सावयव है, तो आकाश का गुण शब्दरूप वेद भी साकार सावयव सिद्ध होगा। साकार सावयव शब्दरूप वेद को अनादि और नित्य लिखना दयानन्द की अविद्या है॥

(किंच) (७ सत्या० समुल्लास ३) (कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः।) इस वैशेषिक सूत्र के भाष्य में भी दयानन्द की प्रतिज्ञा है कि शब्द आकाश ही का गुण है। उस से भी शब्दरूप वेद सादि और अनित्य सिद्ध होता है। क्योंकि जिस का गुणी सादि और अनित्य है वह गुण भी अनादि और नित्य सिद्ध नहीं हो सकता। पदार्थ विद्यासे सिद्ध है कि एक ब्रह्मचेतन के बिना सर्वदृश्य पदार्थ मिथ्या हैं। उससे शब्दार्थ सम्बन्धको वेद मान कर नित्य लिखना भी दयानन्दका महान् अज्ञान है दयानन्दके भक्त कहते हैं कि व्याकरणके कर्त्ता पाणिनीयादिक मुनियोंने शब्दको नित्य माना है। उससे शब्दरूप वेद नित्य है,, दयानन्दके भक्तोंका यह कथन भी मिथ्या है क्योंकि जब श्रुति प्रमाण और युक्तिसे शब्दरूप वेद सादि और अनित्य सिद्ध हो चुका तो विद्याके एकदेशी व्याकरण के कर्त्ताओं का लेख सत्य सिद्ध नहीं हो सक्ता। विद्याप्रकरण में केवल शब्दकी शुद्धि अशुद्धि आदि के ज्ञान का लाभ ही व्याकरण का फल है। सत्यासत्य का निर्णय होना व्याकरण का फल नहीं। उससे भी शब्दरूप वेद अनित्य और उत्पत्तिवाला है। बड़े२ रिफार्मेर दयानन्दके भक्त कहते हैं कि "जब वेदकी उत्पत्ति मानें तो उत्पत्तिसे प्रथम वेद का अभाव होगा, अभावसे भाव का होना पदार्थ विद्या के विरुद्ध है। यदि वेदकी उत्पत्ति मानें तो वेदको सादि और अनित्य कथन करना मिथ्या होगा,,। दयानन्दके भक्तोंकी यह शङ्का भी असंगत है क्योंकि (णश अदर्शने) (जनीप्रादुर्भावे) इन धातुपाठ के प्रमाणों ही से नाश शब्दका अर्थ अदर्शन और जन्म शब्द का अर्थ दर्शन सिद्ध होता है। अभि-

प्राय यह है कि उच्चारणसे प्रथम शब्दका अदर्शन और उच्चारणसे शब्द का दर्शन होता है। अभाव से भाव की शङ्का होना सर्वथा अज्ञान मूलक है। यदि और भी सूक्ष्म विचार किया जावे तो शब्दरूप वेद सत्यासत्यसे विलक्षण अनिर्वचनीयरूप है। अनिर्वचनीय पदार्थका परमार्थ से शुद्ध ब्रह्मचेतन में बाध निश्चय होता है। महाभाष्य व्याकरण के नियम ही से विदित होताहै कि (सुप्तिङन्तं पदम्) (पदसमुदायो वाक्यम्) इत्यादि प्रमाणों का भी यही सिद्धान्त है कि वर्णों के मिलाप से पदों का, पदोंके मिलाप से वाक्यों का, वाक्योंके मिलाप से मन्त्रों का, मन्त्रोंके मिलाप से वेदका दर्शन होता है। इस क्रमसे वेद अनादि और नित्य सिद्ध नहीं हो सके। उससे भी वेद को अनादि और नित्य लिखना दयानन्द का लाल बुझक्कड़पन है (बूझै बूझै लाल बुझक्कड़ और न बूझै कोय। निराकारके हैं ये घोड़े अथवा हाथी होय) यही तमाशा हजरत दयानन्द का था, जन्म नाशवाले वेदको अनादि और नित्य सिद्ध करने की चेष्टा करने लगपड़ा। युक्ति से भी जाना जाता है कि जब कोई गौ इस शब्द को उच्चारण करता है तो गकार, औकार, उकार, विसर्ग। ये चार वर्ण क्रम से उत्पन्न, स्थित और नष्ट होते हैं। प्रत्येक वर्ण के उत्पन्न, स्थित, नष्ट होने में तीन २ क्षण गुजरजाते हैं। इस हिसाबसे गौ शब्दके उच्चारणमें द्वादश १२ क्षण गुजरजाते हैं। कालकी अत्यन्त सूक्ष्मगति है। जैसे कोई महीन कागज की बीस तहें कर बीच में से सूई को पार कर देवे तो स्थूल बुद्धि वाले को सूई के पार होने में एक ही क्षण ज्ञात होगा। परन्तु सूक्ष्मदर्शी को बीस तहें कागजों में से सूचीके पार होने में साठ क्षण गुजरते ज्ञात होते हैं। वैसे ही गौ शब्द के उच्चारण में १२ क्षण ही सिद्ध होते हैं। यद्यपि मीमांसा और न्यायमत में शब्दरूप वेद को नित्य माना है। तथापि वेदान्त के ग्रन्थों में शब्द रूप वेद को अनिर्वचनीय सिद्ध कर डाला है। न्याय मीमांसा की युक्तियों को वेदान्तके ग्रन्थों में खण्डन कर डाला है। दयानन्द के भक्त कहते हैं कि शङ्कराचार्य जी ने भी वेद को नित्य कहा है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में दयानन्द ने शंकराचार्य जी का प्रमाण भी दिया है। दयानन्द के भक्तों का यह कथन भी असङ्गत है क्योंकि (७ सत्यार्थ० समुल्लास ११) दयानन्द ही का लेख है कि शंकराचार्य जी ने जगत् को मिथ्या सिद्ध किया था तो जगत् में आकाश भी आचुका और आकाश ही का गुण शब्द है, शंकराचार्य जी ने जब आकाशादि को मिथ्या सिद्ध किया तो आकाश का गुण शब्दरूप वेद भी मिथ्या

सिद्ध हो चुका। उससे भी दयानन्द वा दयानन्द के भक्त वेदको नित्य सिद्ध नहीं कर सकते। दयानन्द के भक्त कहते हैं कि "जब वेदको अनित्य माना जावे तो वेद से जीव को आनन्द का लाभ न होगा। यदि वेद को नित्य मानें तो वेद को अनित्य कथन करना मिथ्या होगा।" आर्यों की यह शङ्का भी मिथ्या है क्योंकि जैसे स्वप्न के अनित्य वैद्य स्वप्न के अनित्य रोगीको औषधि देते हैं, उस अनित्य औषधि के खाने से स्वप्न के अनित्य रोग का सत्यानाश होकर आनन्दका लाभ होता है। वैसे ही जाग्रत् के समय भी अनित्य वेद के पठन से ब्रह्मचेतनस्वरूप आनन्द का लाभ हो जाता है। वेद को अनादि और नित्य लिखना दयानन्द का अज्ञान है। (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका जगदुत्पत्तिप्रकरण) (मनु० अ० १ श्लो० २३)

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयंब्रह्मसनातनम्।
दुदोहयज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥

इस प्रमाण को देकर दयानन्द ने कहा है कि "सृष्टि की आदि में ईश्वर ने अग्नि वायु आदित्यादिको वेद दिये हैं" दयानन्द का यह कथन भी मिथ्या है क्योंकि उक्त श्लोकका अर्थ जो कि दयानन्द ने किया है वह वक्ता के तात्पर्य से विरुद्ध है किन्तु उक्त श्लोक के पदों से वक्ष्यमाण अर्थ निकलता है। जैसे कि ब्रह्मा जी ने यज्ञकी सिद्धि करनेके लिये ही क्रमसे अग्नि वायु सूर्य से तीनों वेदों को दुहा अर्थात् प्रकट किया अभिप्राय यह कि माया विशिष्ट ईश्वर ही ने ब्रह्मा रूप को धारण करके अग्नि आदि देवताओं के द्वारा तीन वेदों को प्रकट किया है॥

(महाभाष्य अ० १ पा० २ आ० १—अनेकार्था अपि धातवो भवन्ति) इस भाष्य से प्रमाणका भी यही सिद्धान्त है कि धातुओंके अनेकार्थ भी होते हैं। उस से (दुह) धातुका वही अर्थ ठीक है जो कि हमने पूर्व दर्शा दिया॥

अब ईश्वर ही ने ब्रह्मा रूप होकर वेद रचे हैं इस सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिये प्रमाण लिखे जाते हैं जैसे कि—

(गोपथ ब्रा० पूर्वभागे प्रपा०१ कण्डि०१६ ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे स खलु ब्रह्मा)

इस का सिद्धान्त यह कि माया विशिष्ट ईश्वर ही प्रथम ब्रह्मा रूप होकर वेदों का कर्त्ता हुआ है॥

(बृहदारण्योपनि० अ०१ । ब्रा०४ कं० १०-ब्रह्म वा-इदमग्रआसीत्तदात्मानमेवावेदहंब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्स-र्वमभवत्)

इत्यादि श्रुतियों से भी यही सिद्ध हुआ कि सृष्टि की आदि में ईश्वर ही ने ब्रह्मा रूपको धारण किया था । दयानन्दोक्त अग्नि आदि ऋषि ब्रह्मा के पश्चात् हुए हैं । (स पूर्वेषाम०) इस योग सूत्रसे दयानन्द ने अग्नि आदि-निकाले हैं । सो भी बाबा जीकी अविद्या है क्योंकि उक्त सूत्रमें अग्नि आ-दिक ऋषियों का वाचक एक भी पद नहीं है ॥

(मुण्ड० खं० १ मं०२-अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे०)

इस मन्त्र से साफ सिद्ध होता है कि अथर्वा ऋषि से प्रथम ब्रह्मा जी हुए अङ्गिरा ऋषि अथर्वा के पुत्र थे ॥

(मनु० अ० २ श्लो० १५७-अध्यापयामासपितॄन् शि-शुराङ्गिरसः कविः । पुत्रकाइतिहोवाच ज्ञानेनपरिगृह्यतान्)

इस में मनु जी ने कहा है कि—अथर्वा ऋषि अङ्गिरा ऋषिके चाचा थे । (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका वेदोत्पत्ति प्रकरण) (तस्माद्यज्ञात्स०) इस के भाष्य में दयानन्द ने (यज्ञो वै विष्णुः)'इस शतपथ की श्रुति को लिखकर यज्ञ शब्दका अर्थ व्यापक विष्णु निकाला है । यह अर्थ प्रकरणके विरुद्ध है । किन्तु (शतपथ० कां० ३ ब्रा० १ कण्डि० २२ ॥ ब्रह्माहि यज्ञम्) प्रकरण और लक्षण से इस श्रुति का अर्थ भी यही सिद्ध होता है कि सृष्टि के प्रथम माया विशिष्ट ईश्वर ही ने ब्रह्मरूप होकर अग्नि आदि ऋषियों द्वारा वेदों को प्रकट किया है । इत्यादि और भी अनेक प्रमाण मिलते हैं जिससे यही सि-द्धान्त सिद्ध होता है कि सृष्टि के समय माया आकार युक्त साकार रूप ब्रह्मा होकर ईश्वरने अग्नि आदि द्वारा यज्ञ सिद्धिके लिये वेदोंको प्रकट किया है । देखिये दयानन्द की अविद्या (३ सत्या० समुल्लास०) दयानन्दका लेख है कि (११२७) एक सौ सत्ताईस वेदों की शाखा हैं„ । फिर इसके विरुद्ध वही (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११) दयानन्दका लेख है कि "ऋग्वेद की २१, यजु-र्वेदकी १०१, सामवेद की १०००, अथर्व वेदकी ९, शाखाएं हैं„ इस लेख में बाबा जी ने ग्यारहसौ इकत्तीस वेदोंकी शाखाएं लिखी हैं। (फिर इसके विरुद्ध उसी सत्यार्थप्रकाश मन्तव्य २ में) दयानन्द ही ने ग्यारहसौ सत्ताईस वेदोंकी शाखायें लिखी हैं । दयानन्द के भक्त यदि वेदोंकी शाखा विषयक दयानन्द के प्रथम लेख को सच्चा कहें तो दूसरा लेख झूठा, यदि दूसरे लेख को सच्चा कहें तो

तीसरा लेख झूठा होता है। यदि तीसरे लेखको सच्चा कहें, तो अन्य दोनों लेख झूठे होते हैं। परन्तु दरोगहलफी से बाबा जी के सर्व लेख झूठे हैं। यद्यपि दयानन्द के भक्तों ने चौथे पांचवें छठे सातवें सत्यार्थप्रकाश में वेदों की शाखा विषयक कुछ दयानन्दका लेख बदला है। तथापि उससे दयानन्द सत्यवादी सिद्ध नहीं हो सक्ता। किन्तु उस से दयानन्द जो आर्य्यमत का प्रचारक है वह मिथ्यावादी सिद्ध हो चुका। दयानन्द ने वेदोंकी शाखा के वर्णन में प्रमाण भी कोई नहीं दिया।

अब हिन्दुमत की रीतिसे वेदोंकी शाखायें सप्रमाण वर्णनकी जाती हैं—

(तथाहि) (महाभाष्य अ० १ पा० १ आ० १) (चत्वारोवेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः, एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाऽऽथर्वणो वेद इति)

इस का सिद्धान्त यह कि अष्टाध्यायी पर महाभाष्य के कर्त्ता पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि (१०१) यजुर्वेद की शाखायें हैं। (१०००) एक हजार सामवेद की (२१) ऋग्वेद की (९) नव अथर्ववेद की शाखाएं हैं। अभिप्राय यह कि चारोंवेदों की ११०० सौ ३१ शाखाएं हैं।

बाबा जी वेदोंकी शाखा विषयमें सर्वथा अज्ञानी थे। वेदोंकी शाखा विषयक भी झूठी दरोग हलफी लिखमारी। (७ सत्या० समुल्लास ४) (वाच्यर्थानियताःसर्वे) इस के भाष्य में दयानन्द के लेख से सिद्ध होता है कि " झूठ बोलने हारा मनुष्य चोर है„ (७सत्या० समुल्लास ११) दयानन्द ही ने चोरको सजा लिखी है कि "राजा ने आज्ञा दी कि इस दुष्ट का कालामुख कर गलेमें फटे जूतोंका हार पहरा, गधेपर चढ़ा नाक कान काट, जूतोंसे पिटवा, और कुत्तों से चिथवाकर मरवा डालाजावे„ अब निष्पक्ष लोग न्याय की निगाह से देखलेवें कि पूर्वोक्त लेखरूपी पिशाच किसके गलेमें लपटते हैं ?। हिन्दुमत निर्दोष है क्योंकि हिन्दुमत के ग्रन्थों का वेदोत्पत्ति विषयक सिद्धान्त यह है कि सृष्टि के आदि काल में सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक माया विशिष्ट ईश्वर ने ही ब्रह्मारूप को धारणकर वेद अर्थात् ऋग्वेदादि पुस्तकोंको रचकर प्रकाशित करदिया। सृष्टि क्रम भी वेदान्तके ग्रन्थोंमें विपरीतलय चिन्तनके निमित्त ही दर्शाया है। वस्तुतः वेदान्त सिद्धान्तमें दृष्टिसृष्टि वादको मुख्य माना है। जैसे निद्रारूपी निमित्तकारणसे स्वप्नके समय वेद और अध्यापक वा छात्र आदि पदार्थ दृष्टिमें आते हैं निद्राके नष्ट होनेसे सर्वथा अत्यन्ताभाव है। वैसे ही जाग्रत्में माया निद्रासे वेदादि भान होते हैं। माया निद्रा दूर होनेसे त्रिकाल अबाध एक शुद्ध ब्रह्म चेतन ही है॥ ओं शान्तिः ३॥

निराकारध्यान खण्डन ।

व्याख्यान नं० ३

सर्व सज्जनोंको विदित किया जाता है कि आर्यसमाजी कहते हैं कि "हम निराकारका ध्यान करते हैं निराकारहीमें हमारा मन स्थिर होता है, इसी लेख को दयानन्द ने भी सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा और कहा है कि "साकारमें मन स्थिर नहीं हो सक्ता किन्तु साकारके प्रत्येक अङ्गमें मन घूमने लगजाता है,, आर्यसमाजियोंकी यह शंका सर्वथा निकम्मी है ॥ तथाहि—

आर्यसमाजियोंसे पूछना चाहिये कि मन साकार है वा निराकार ? यदि कहो कि मन निराकार है तो दयानन्दका लेख मिथ्या होगा, क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में दयानन्द ने मन को प्रकृति का कार्य कहा है, और प्रकृतिको साकार कहा है, साकार प्रकृति का कार्य मन भी निराकार नहीं हो सक्ता। यदि कहो कि मन साकार है, तो कहिये मन जड़ है अथवा चेतन ? । यदि कहो कि मन चेतन है तो युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरोध होगा क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों और युक्ति से सिद्ध होता है कि साकार पदार्थ घटादिके समान जड़ होता है। सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९वें में दयानन्द ने भी मनको जड़ लिखा है वह लेख भी मिथ्या होगा। यदि कहो कि मन जड़ है तो प्रत्येक अङ्ग में घूमने का मन को ज्ञान ही न होगा, किंच प्रत्येक अङ्ग में घूमने का कर्त्ता मन से भिन्न होगा, यदि कहो कि प्रत्येक अङ्ग में घूमनेका मन करण है तो प्रत्येक अङ्गमें घूमने का कर्त्ता मन से भिन्न होगा, यदि कहो कि प्रत्येक अङ्गमें घूमनेका मन कर्त्ता है तो घूमने का करण मनसे भिन्न होगा, किंच सत्यार्थप्रकाशके नववें समुल्लासमें दयानन्द ने कहा है कि "संकल्प विकल्प करनेके लिये जीवही मन होजाता है,, यदि दयानन्द का यह लेख सत्य है तो जीवसे भिन्न मन आकाश पुष्पके समान मिथ्या होगा। यदि कहो कि जीव मन नहीं हो सक्ता, तो दयानन्दका लेख मिथ्या होगा ॥

(किञ्च) सुषुप्ति अवस्थामें मन रहता है, अथवा नहीं ? यदि कहो कि सुषुप्ति अवस्था में मन नहीं रहता तो मन आत्मा का गुण न होगा, यदि कहो कि मन आत्मा का गुण नहीं तो दयानन्द का लेख झूंठा होगा, क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के तीसरे और सातवें समुल्लास में दयानन्द ने मन को आत्मा

का गुण कहा है। यदि सुषुप्तिमें आत्मा गुणी रहता है तो सुषुप्तिमें आत्मा का गुण मन भी नष्ट न होगा, यदि कहो कि सुषुप्तिमें मन रहता है तो कहिये सुषुप्तिमें मन स्थिर होकर रहता है, वा प्रत्येक अङ्गमें घूमता है ? यदि कहो कि स्थिर होकर रहता है तो कहिये सुषुप्तिके समय निराकारमें मन स्थिर होता है ? वा साकारमें। यदि साकारमें कहो तो आपका मन निराकारमें स्थिर न होगा और साकारके प्रत्येक अङ्गमें घूमने लगजायगा, यदि कहो कि सुषुप्तिके समय निराकारमें मन स्थिर होता है तो सत्यार्थप्रकाशके सातवें समुल्लासका लेख मिथ्या होगा क्योंकि वहां (यज्जाग्रतोदूरमुदैति दैवन्तदुसुप्तस्य०) इसके भाष्यमें दयानन्दने ईश्वरसे कहा है कि "हे दयानिधे! आपकी कृपासे मेरा मन जाग्रत् में दूर २ जाता है वही मेरा मन सोतेहुए सुषुप्तिको प्राप्त होता है। वा स्वप्नमें दूर २ जानेके समान व्यवहार करता है,,। दयानन्दके इस लेखसे जानाजाता है कि निराकार ईश्वर की कृपा ही से दयानन्द का मन किसी अवस्था में भी निराकारमें स्थिर नहीं रहता था। तो आर्यसमाजियोंका मन निराकार में कैसे स्थिर होगा ? किन्तु कभी नहीं। प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे जाना जाता है कि जीवात्मा जाग्रत् वा स्वप्न अवस्थामें जिन साकार पदार्थोंको मन आदि इन्द्रियोंसे देखता वा सुनता है वही पदार्थ मनमें जीव को भान होते हैं। सत्यार्थप्रकाशके सातवें समुल्लास में यद्यपि दयानन्द ने भी साकार कमर की हड्डी में मन को स्थिर करना कहा है तथापि वह दयानन्द की "दरोगहलफी,, है। किञ्च—

यदि आर्यसमाजी कहें कि हम ईश्वर का ध्यान करते हैं तो ईश्वर निराकार न होगा क्योंकि ध्यान तो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे साकार ही का अनुभव सिद्ध है। यदि ईश्वर को निराकार कहें तो ईश्वरका ध्यान न होगा, सिद्धान्त यह है कि जहां ध्याता, ध्यान, ध्येय, यह तीन पदार्थ होते हैं वहां ध्यान होता है, निराकार में ध्याता, ध्यान, ध्येय, इन तीन पदार्थों का वस्तुतः अत्यन्ताभाव सिद्ध हो चुका है। (किंच)

वेद मन्त्रों में भी निराकारके ध्यानका खण्डन ही कहा है जैसे कि—

यद्वाचानभ्युदितं येनवागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदंयदिदमुपासते॥१॥ यन्मनसानमनुते येनाहुर्मनोमतम्। तदेवब्रह्मत्वंविद्धि नेदंयदिदमुपासते ॥ २ ॥ यच्चक्षुषानप-

श्यति येनचक्षूंषिपश्यन्ति। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥३॥ यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येनश्रोत्रमिदंश्रुतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।४। यत्प्राणेननप्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।५।

अपिकृत ग्रन्थों में उपनिषदों को भी वेद ही कहा है। ब्राह्मण तथा अथर्वसंहिता से भी उपनिषद् ग्रन्थ वेद ही सिद्ध हो चुके हैं। उस से उक्त केनोपनिषद् के मन्त्रों को भी हम ने वेद मन्त्र कहा है। उपासना और ध्यान ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। पूर्वोक्त वेदमन्त्रों का सिद्धान्त यही सिद्ध होता है कि इन्द्रिय और मन से निराकार ब्रह्म नहीं जाना जाता, किन्तु इन्द्रिय और मन को वह निराकार ब्रह्म जानता है क्योंकि मन इन्द्रिय जड़ हैं, निराकार ब्रह्म चेतन है। जानना काम चेतन ही का है, जड़ का नहीं, जिससे मन इन्द्रियादि जड़ पदार्थ जानेजाते हैं वही निराकार ब्रह्म है जिस ईश्वरकी उपासना की जाती है वा ध्यान किया जाता है वह ईश्वर निराकार ब्रह्म नहीं है ॥ उक्त मन्त्रों का दयानन्द ने जो अर्थ किया है वह युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध होने के कारण मिथ्या है (यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह) इस वेद मन्त्रके प्रमाणसे भी निराकार ब्रह्म मन आदि इन्द्रियोंके अगोचर है (यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः) इस वेदके मन्त्र प्रमाणसे भी निराकारब्रह्म ध्यानके अगोचर सिद्ध हो चुका ॥ आर्यसमाजी कहते हैं कि—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते। ततोभूयइवतेतमो यउसंभूत्याᳬरताः ॥

इस वेद मन्त्र में साकार के ध्यान का खण्डन है, यह शङ्का आर्यसमाजियों की सर्वथा अविद्यामूलक है क्योंकि उक्त मन्त्र यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का है वह अध्याय ब्रह्मविद्या के प्रकरण का है। गिरिधराचार्य ने उसका अर्थ इस प्रकारसे किया है कि जो लोग कहते हैं कि शून्य ही आत्मा है और वह शून्यात्मा अनादि है वह लोग अज्ञान रूपी अन्ध घोर नरकमें गिरते हैं, जो कहते हैं कि स्थूल शरीर ही आत्मा है वह लोग उससे भी अधिक अज्ञानान्धकार रूपी घोर नरकमें प्राप्त होते हैं। प्रकरणमें गिरिधराचार्य का

अर्थ ही ठीक है आर्यसमाजियों का अर्थ ब्रह्मविद्या प्रकरण से विरुद्ध है। उस से भी साकार ही का ध्यान हो सक्ता है निराकार का ध्यान कथन असङ्गत है। प्रकरण में उपासते शब्दका अर्थ कथन करना है॥ आर्यसमाजी कहते हैं कि—

(सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी०)

इस वेदमन्त्र से ईश्वर निराकार सिद्ध होता है उस से ध्यान भी निराकार ही का करना ठीक है। आर्यसमाजियोंका यह कथन भी असंगत है क्योंकि यदि ईश्वर की शक्ति प्रकृतिको मानें तो ईश्वर साकार सिद्ध होगा। देखिये सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में दयानन्द ने प्रकृति को साकार कहा है। यदि प्रकृतिको ईश्वर की शक्ति न मानें तो ईश्वर शक्तिहीन होगा उस से जगत् की उत्पत्त्यादि का कर्त्ता ईश्वर न होगा। बिना प्रकृति के ईश्वर की कोई दूसरी शक्ति सिद्ध ही नहीं हो सक्ती। उस से भी आर्य्यमतवाला ईश्वर निराकार नहीं॥ प्रकरणानुसार उक्त मन्त्रका अर्थ इस प्रकार से ही हो सक्ता है जैसे कि (सपर्य्यगात्०) अर्थात् शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान माया युक्त सर्वव्यापक ईश्वर भौतिक शरीरसे रहित है, नाड़ी बन्धन और छेदसे रहित है, किन्तु शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान मायाशक्ति ही ईश्वर का शरीर है, माया प्रकृति यह दोनों नाम एक ही पदार्थके हैं, अपने पाप पुण्य कृत ईश्वर का माया मय शरीर नहीं, ईश्वर वेद का कर्त्ता है उससे भी ईश्वर साकार है। क्योंकि नाभि आदि आठ अङ्गोंसे शब्दका प्रादुर्भाव होता है। यद्यपि जैसे जीवके नाभि आदिक भौतिक अंग हैं वैसे ईश्वरके नहीं किन्तु माया शक्ति रूपी ईश्वरके नाभि आदिक अष्टांग हैं उन अंगों ही से वेद की उत्पत्तिका कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है, उससे भी ईश्वर निराकार नहीं, हां केवल चेतन निराकार है। मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वर चेतन कभी निराकार सिद्ध नहीं होता उस से भी निराकार का ध्यान कथन करना असंगत है (किंच आर्य्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि निराकारका ध्यान तो सिद्ध हो ही नहीं सक्ता, तब दूसरा लाभ आपको निराकारके माननेका कौनसा होता है ?। यदि कहो कि निराकार की प्रार्थना से हम को विद्या आजाती है सो भी ठीक नहीं क्योंकि यदि निराकार की प्रार्थना ही से विद्या आती तो आप कालिज वगैरहमें साका-

र मास्टरसे विद्या किस लिये पढ़ते हैं ?। निराकार ईश्वर ही से क्यों नहीं एम०ए०, बी०ए० पास कर लेते, ऐसा न होने से विद्याके लिये ईश्वर निराकारकी प्रार्थना वन्ध्यास्त्रीके सदृश निष्फल है। यदि कहो कि निराकारकी प्रार्थना से हम रोगको दूर कर देतेहैं सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि यदि निराकार ही रोग दूर कर देता तो आप डाक्टरोंके पास औषधि लेनेके लिये क्यों जाते हैं ?। दयानन्द भी तो निराकारकी प्रार्थना करता था परन्तु वह भी रोगसे रेंगता मराथा, गुरुदत्त भी निराकारकी प्रार्थना करता था परन्तु वह भी रोग ही से पिटता मरा था। निराकार जी इस समय भी आर्य्यसमाजियोंको रोग से रहित नहीं कर सके। उससे रोग नाशके लिये भी निराकार ईश्वर की प्रार्थना करना निष्फल है। यदि कहो कि निराकार की प्रार्थना से हमें पुत्रादि मिल जाते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि जब निराकार ही पुत्र पौत्रादि दे देता है तो फिर स्वयंवर विवाह वा पुनर्विवाह अथवा नियोग किंवा विधवा के लिये ग्यारह २ खसमों की खोज आर्य्यसमाजी किस लिये करते हैं?। कुतियाको इतना भी ज्ञान नहीं कि निराकार साहिब कौन से जंगलकी चिड़िया है?। परन्तु कुतियाके आठ पुत्र एक ही समय होजाते हैं। सूकरी को इतना भी मालूम नहीं कि निराकार कौनसा जानवर है? परन्तु सूकरी बारह पुत्रोंको एक ही समय पैदाकर लेती है। वैसे मुर्गीको भी निराकार का कुछ भी ध्यान वा ज्ञान नहीं परन्तु मुर्गी भी प्रति दिन एक पुत्र को पैदा करती जाती है। बहुतसे आर्यसमाजी पुत्रको तरसते मरजाते हैं परन्तु निराकार कुछ भी नहीं देता, उससे पुत्रके लिये भी साकार पदार्थ ही की आवश्यकता है निराकार ईश्वरकी प्रार्थना पुत्रके लिये भी निष्फल है। यदि कहो कि निराकारकी प्रार्थनासे हमें हाथी घोड़ा गाय बैल बकरी भेड़ी आदि मिल जाते हैं, सो भी ठीक नहीं क्योंकि जब हाथी घोड़ा आदि की आवश्यकता आर्यसमाजियोंको होतीहै तो साकार सौदागरोंहीसे दाम देकर खरीदते हैं,निराकारकी प्रार्थनासे किसी आर्यसमाजीको काणी कुतिया तक भी नहीं मिल सकती। यदि निराकारकी प्रार्थना हीसे घोड़े आदि मिल जाते तो बिन दामके आर्यसमाजियोंके तबेले घोड़ोंसे भर जाते,फीलखाने हाथियोंसे भरजाते, वाड़े बकरी भेड़ियोंसे भर जाते, गोशालायें गाय बैलोंसे भर जातीं। परन्तु ऐसा न होनेके कारण हाथी घोड़ा आदिके लिये भी निराकार ईश्वर की प्रार्थनाका करना निष्फल है। यदि कहो कि निराकार की प्रार्थनासे हमारे

शत्रु नष्ट हो जाते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि यदि निराकारकी प्रार्थनासे आर्य्यसमाजियोंके शत्रु नष्ट हो जाते तो लाहौर में लेखराम आर्यसमाजी निराकारकी प्रार्थना करता था फिर उसका कलेजा छुरीसे क्यों चीरा गया? । फरीदकोट रियासतका रेलवे स्टेशन मास्टर तुलसीराम आर्यसमाजी ईश्वरकी प्रार्थना करता था उसका कलेजा छुरीके साथ क्यों चीरा गया ?। हजारों जगह पर आर्यसमाजियोंको जेलखाना वा जुर्माना अथवा दोनों प्रकारकी सजा हुई है परन्तु निराकारने कुछ भी सहायता नहीं दी । साकार हुक्कामों हीके इजलासों में आर्यसमाजियों ने अपीलें दायर करदीं परन्तु वह अपीलें भी डिसमिस होगईं । उससे शत्रु नष्ट करने के लिये भी निराकार ईश्वरकी प्रार्थनाका करना अकिञ्चित्कर है ॥ यदि कहो कि चक्रवर्त्ती राज्य लेनेके लिये हम लोग निराकार ईश्वरकी प्रार्थना करते हैं सो भी ठीक नहीं, क्योंकि चक्रवर्त्ती राज्य ही यदि प्रार्थनासे मिल जाता तो कोई आर्यसमाजी साकार बादशाहकी नौकरी न करता किन्तु सब आर्यसमाजी चक्रवर्त्ती राजा हो जाते परन्तु ऐसा न होने से चक्रवर्त्ती राज्यके लिये भी निराकारकी प्रार्थना का करना निष्फल है । यदि कहो कि निराकारकी प्रार्थनासे हमें अन्न वस्त्रादि मिल जाते हैं, बदहज़मी जाती रहती है, सो भी ठीक नहीं क्योंकि अन्न आदि पदार्थ भी दाम देनेसे साकार बनियों ही से मिलते हैं, साकार, हकीम से लेकर चूर्ण खाने ही से बदहज़मी जाती है, निराकार ईश्वर कुछ भी नहीं देता उससे अन्न आदि लाभके लिये भी निराकार ईश्वरकी प्रार्थनाका करना निष्फल है । यदि कहो कि निराकारकी प्रार्थनासे हमारी कीर्ति जगत् भरमें होजाती है प्रार्थना ही से हम लोगोंमें मेल होता है, यह कथन भी अज्ञान मूलक है क्योंकि जब निराकारकी प्रार्थना ही से जगत् भरमें आर्यों की कीर्त्ति फैलजाती तो दयानन्द छल कपट दर्पण, अबोध ध्वान्त मार्त्तण्ड, दयानन्दमुखतुण्डदण्ड, दयानन्द मुख चपेटिका, दयानन्दतिमिर भास्कर, दयानन्द मुख मर्दन वज्र इत्यादि दयानन्द मतके खण्डन पर ग्रन्थ कभी न छपते, तथा घासपार्टी और मांसपार्टी सिरमुण्डी पार्टी इत्यादि भेद भी आर्यसमाजियों में कभी न होते, लाहौर दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालिज में आर्य्यसमाजियों में गाली गुफ्ते न होते, लकड़ी सोटे वा जूते न चलते । परन्तु ऐसा होनेसे निराकार ईश्वरकी प्रार्थना का लाभ जगत् में कीर्ति वा मिलाप भी आर्य्योंमें नहीं हो सक्ता । यदि कहोकि निरा-

कार की प्रार्थना से ईमानदार हो जाते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि आर्य-मत में जीवको कर्म्म करने में स्वतन्त्र माना है यदि यह लेख सत्य है तो ईमानदारी रखने के लिये भी निराकार ईश्वरकी प्रार्थनाका करना वाहियात है। इत्यादि प्रार्थना दयानन्दने आर्य्याभिविनय पुस्तकमें और भी लिखी है परन्तु वह सर्व मिथ्या हैं। निराकार ईश्वर कुछभी नहीं दे सक्ता उससे निराकार ईश्वरकी प्रार्थना वा स्तुति अथवा ध्यानका करना सर्व असङ्गत है और दयानन्दकृत ग्रन्थों के प्रमाणों ही से हमने ईश्वरकी निराकारता का सर्वथा अत्यन्ताभाव सिद्ध कर दिया है, अब वेदादि प्रमाणोंसे और भी निराकारता के ढोल की पोल खोली जाती है॥

(तथाहि) देखिये दयानन्दकृत आर्याभिविनय उसमें (वृषेव वाजी) इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्द ने जल्दी चलने से ईश्वर को घोड़े की पदवी दी है उससे भी ईश्वर निराकार नहीं हो सक्ता॥ केनोपनि० खं० ३ मं० १४ से॥

ब्रह्मह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा असहीयन्त। त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति।

इत्यादि श्रुतियोंका सिद्धान्त यह है कि एक समय देवासुरोंका संग्राम हुआ उसमें देवताओं का जयजयकार हुआ असुर हार गये, देवताओं को अभिमान हुआ कि जयजयकार का होना हमारी ही महिमा है। उस अभिमान को नष्ट करने के लिये ईश्वर ने चतुर्भुज स्वरूपको धारण किया और इन्द्रादि सर्व देवताओंके अभिमानको नष्ट करडाला॥ शतपथ० कां० १४ अ० ५ कं० ७

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्याऽअन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्० ॥७॥ योऽप्सु तिष्ठन् अद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरम्० ॥ ८ ॥ योऽग्नौ तिष्ठन् अग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरम्० ॥९॥ य आकाशे तिष्ठन् आकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरम्० ॥ १० ॥ यो वायौ तिष्ठन् वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुःशरीरम्० ॥११॥ य आदित्ये तिष्ठन् आदित्याद-

न्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरम्० ॥१२॥ यश्च-न्द्रतारके तिष्ठन् चन्द्रतारकादन्तरो यं चन्द्रतारकं न वेद यस्य चन्द्रतारकं शरीरम्० ॥१३॥ यो दिक्षु तिष्ठन् दिग्भ्यो-ऽन्तरो यं दिशो न विदुर्यस्य दिशः शरीरम्० ॥१४॥ यो विद्युति तिष्ठन् विद्युतोऽन्तरो यं विद्युन्न वेद यस्य विद्युच्छरीरम्० ॥ १५ ॥ यः सर्वेषु लोकेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो लोकेभ्योऽन्तरो यं सर्वलोका न विदुर्यस्य सर्वलोकः शरीरम्० ॥१६॥ यः स-र्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम्० ॥१७॥ यः प्राणे तिष्ठन् प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरम्० ॥१८॥ यश्चक्षुषि तिष्ठन् चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुश्श-रीरम्० ॥१९॥ यः श्रोत्रे तिष्ठन् श्रोत्रादन्तरो यं श्रोत्रं न वेद यस्य श्रोत्रं शरीरम्० ॥ २० ॥ यो मनसि तिष्ठन् मन-सोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः शरीरम् ॥ २१ ॥

इत्यादि और भी वेदादिके सहस्रों प्रमाण मिल सकते हैं कि जिससे सर्व शक्तिमान् ईश्वर साकार ही सिद्ध हो चुका है निराकार केवल शुद्ध चेतन है उसका ध्यान कथन करना उन्मत्त प्रलापके समान है ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि जब ईश्वर माया विशिष्ट चेतन साकार है तो उसका चक्षु इन्द्रियसे भान होना चाहिये इस शङ्काका समाधान यह है कि माया शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म है सूक्ष्म माया शक्ति विशिष्ट ईश्वर चेतन भी सूक्ष्म आकार वाला है वह भी ध्यान गोचर नहीं हो सकता, किन्तु मायाके परि-णाम स्थूल रामकृष्णादि प्रकार विशिष्ट ईश्वर चेतन ध्यानमें आ सक्ता है । परन्तु केवल चेतन निराकार है वह ध्यानके अगोचर सर्वका द्रष्टा है । जैसे घटका द्रष्टा घट और घटद्रष्टा घटका द्रष्टा नहीं वैसे ही स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि व्यष्टि आकारोंका द्रष्टा भी माया विशिष्ट चेतन ही है । केवल चेतनमें द्रष्टा

दृश्य यह नामभी न थे न हैं और न होंगे, योगी लोग जो कि समाहितचित्त हैं वह माया विशिष्ट सूक्ष्म साकार ईश्वरकोभी ध्यान में ला सकते हैं। परन्तु केवल चेतन ध्यानमें नहीं आ सकता उससे भी निराकारके ध्यान का कथन करना गवर्गंसह राजाकी चेष्टा है यद्यपि—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।
दृश्यतेत्वग्र्ययाबुद्ध्या सूक्ष्मयासूक्ष्मदर्शिभिः ॥

इस मंत्र प्रमाणसे चेतन बुद्धिगोचर सिद्ध होता है तथापि इस मंत्रमें परा विद्या है परा विद्याका सिद्धान्त यह है कि केवल सजातीय विजातीय स्वगत भेदसे रहित स्वप्रकाश चेतनात्माका जब जीवको संशय विपर्ययसे रहित निश्चयात्मक ब्रह्माकार वृत्तिरूपी ज्ञान होता है तो उस ज्ञानसे अज्ञान नष्ट हो जाता है। साथही अज्ञानका नाशक अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानभी नष्ट हो जाता है किन्तु विद्वान्के अन्तःकरणमें स्वप्रकाशतासे केवल चेतन भासता है वह केवल स्वप्रकाश निराकार चेतन ध्यानके गोचर नहीं हो सकता। उससे भी निराकारका ध्यान कथन असङ्गत है (किंच) आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि निराकारका ज्ञान आपको हुआ है अथवा नहीं ? यदि कहो कि निराकारका ज्ञान नहीं हुआ तो आप अज्ञानी सिद्ध होंगे। जैसे नेत्रहीन पुरुष दूसरेको मार्ग नहीं बतला सकता दरियामें डूबा जाता मनुष्य दूसरेको दरियाके पार नहीं कर सकता वैसेही ज्ञान हीन आप भी दूसरे को निराकारका ध्यान वा ज्ञान नहीं बतला सकते। यदि कहो कि निराकार का ज्ञान हमको हुआ है तो वह सामान्य ज्ञान है अथवा विशेष ज्ञान? यदि कहो कि निराकारका हमको सामान्य ज्ञान हुआ है, तो कहिये वह सामान्य ज्ञान परोक्ष है अथवा अपरोक्ष ? यदि कहो कि निराकारका सामान्य ज्ञान हमको परोक्ष हुआ है, तो परोक्ष ज्ञान गोचर निराकारका ध्यान बतलाना पदार्थ विद्यासे विरुद्ध है यदि कहो कि निराकारका सामान्य ज्ञान हमको अपरोक्ष हुआ है सो भी ठीक नहीं क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि जिस पदार्थका अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है उस पदार्थका ध्यान करना अविद्वानोंका प्रलाप है, यदि कहो कि निराकार का हमको अपरोक्ष विशेष्य ज्ञान हुआ है सो भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रकरण में अपरोक्ष और विशेष इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है।

(किंच) आर्यसमाजियोंसे पूछना चाहिये कि निराकारका जो आप को अपरोक्ष ज्ञान हुआ है वह ज्ञान यथार्थ है अथवा अयथार्थ यदि कहो कि निराकारका हमको अयथार्थ ज्ञान हुआ है तो बतलाइये कि वह निराकारका अयथार्थ ज्ञान मिथ्या पदार्थको लखाता है वा सत्य पदार्थको ? यदि कहो कि अयथार्थ ज्ञान मिथ्या पदार्थको लखाता है तो आपका निराकार ईश्वरभी मिथ्या होगा। यदि कहो कि निराकार का अयथार्थ ज्ञान सत्य है तो रज्जु में सर्पका, शुक्तिमें रजतका ज्ञान भी सत्य होना चाहिये। यदि कहो कि रज्जु में सर्प शुक्तिमें रजत, ज्ञान के विषय देशान्तर में सत्य हैं उनका ज्ञान भी सत्य है यह कथन भी असङ्गत है क्योंकि यदि रज्जु में सर्प, शुक्ति में रजत, ज्ञान के विषय देशान्तर में सत्य होते तो रज्जु में सर्प का द्रष्टा भयभीत हुआ पीछे को भाग जाता है, वह भय और भागना न होना चाहिये। शुक्ति में रजत द्रष्टा की रजत के ग्रहण में प्रवृत्ति न होनी चाहिये। अभिप्राय यह है कि रज्जु में सर्प, तथा शुक्ति में रजत का ज्ञान मिथ्या है और उस ज्ञान का विषय भी मिथ्या है। वैसे ही मिथ्या अपरोक्ष ज्ञानका विषय निराकार ईश्वर भी मिथ्या होगा यदि कहो कि निराकार का अपरोक्ष ज्ञान हमको यथार्थ हुआ है तो सन्देह यह होता है कि निराकार का यथार्थ ज्ञान आप को किसी प्रमाणसे हुआ है ? अथवा प्रमाणके विना ही यदि कहो कि निराकारका यथार्थ ज्ञान हमें प्रमाणके बिनाही हुआ है तो (लक्षणप्रमाणाभ्यां पदार्थसिद्धिः) इस न्याय से विरोध होगा। क्योंकि उक्त बचन का सिद्धान्त यह है कि जिस पदार्थ का लक्षण भी हो और उसमें प्रमाण भी हो उसी पदार्थकी सिद्धि हो सकती है जिसका लक्षणभी कोई न हो और उसमें प्रमाण न मिले वह पदार्थ कूर्म रोम वा कुत्तेके सींगके समान मिथ्या होता है, देखा जाता है कि घट को वर्तुलाकार लक्षणभी हो और निर्दोष नेत्रका सम्बन्ध भी घट पदार्थके साथ हो तब तो घट पदके अर्थकी सिद्धि हो सकती है। यदि दोनो में से एक भी न हो तो घट पदके अर्थकी सिद्धि नहीं हो सकती।

वैसे ही निराकारका यथार्थ ज्ञानभी लक्षण और प्रमाण के बिना नहीं हो सकता। यदि कहो कि (निर्गत आकारात् स निराकारः) यह निराकार का लक्षण है और निराकारके यथार्थ ज्ञानमें प्रमाण भी है तो प्रष्टव्य यह है कि पूर्वोक्त निराकारका तटस्थ लक्षण है ? अथवा स्वरूप लक्षण यदि कहो

कि पूर्वोक्त निराकारका तटस्थ लक्षण है सो ठीक नहीं क्योंकि जगत की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलयका कारणत्व ईश्वरका तटस्थ लक्षण है। इस से ईश्वर साकार सिद्ध होता है, इसकी विशेष व्याख्या जगदुत्पत्ति मण्डन व्याख्यानमें हो चुकी है। यदि कहो कि पूर्वोक्त स्वरूप लक्षण है सो भी ठीक नहीं क्योंकि दयानन्द हीके लेखोंसे आर्यमत वाले ईश्वरको हम साकार सिद्ध करचुके हैं। उससे ईश्वरका स्वरूप लक्षण भी वह नहीं हो सकता। यदि आर्यसमाजी कहें कि कि ईश्वरका यथार्थ अपरोक्ष ज्ञान हमको प्रमाण ही से हुआ है, तो सन्देह यह हो सक्ता है कि निराकारका यथार्थ ज्ञान आपको प्रत्यक्ष प्रमाणसे हुआ है वा अनुमान वा शब्द अथवा उपमान किंवा अर्थापत्ति वा अनुपलब्धि प्रमाणसे आपको निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान हुआ है। यदि कहो कि निराकारका यथार्थ ज्ञान हमको प्रत्यक्ष प्रमाणसे हुआ है, सो ठीक नहीं, क्योंकि आर्यसमाजके मूलाचार्य्य दयानन्दको प्रत्यक्ष प्रमाणका ज्ञान ही नहीं था। यदि प्रत्यक्ष प्रमाणका ज्ञान बाबा जीको होता तो सत्यार्थप्रकाशके तीसरे समुल्लासमें प्रत्यक्ष प्रमाणके लक्षण दर्शानेकी प्रतिज्ञा करके प्रत्यक्ष ज्ञानका लक्षण बाबाजी कभी न लिखते और प्रतिज्ञा हानि निग्रहस्थानमें कभी न गिरते। खैर जो हो प्रत्यक्ष प्रमाण भी श्रोत्र १ त्वक् २ चक्षु ३ रसन ४ घ्राण ५ मन ६ भेदसे षट् प्रकारका है। यदि आर्य्यसमाजी कहें कि श्रोत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे हमें निराकारका यथार्थ ज्ञान हुआ है, सो ठीक नहीं क्योंकि श्रोत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे शब्द वा शब्दत्वजाति तथा शब्दके अभावका ज्ञान होता है, निराकार ईश्वरको यदि शब्द किंवा शब्दत्वजाति वा शब्दका अभाव कहें तो निराकार जड़ होगा। यदि निराकारको चेतन कहो तो श्रोत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान न होगा। उभयपाशारज्जुन्यायसे आर्यसमाजी छूट नहीं सक्ते। यदि आर्यसमाजी कहें कि त्वक् रूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे निराकारका हमको यथार्थ ज्ञान हुआ है सो भी ठीक नहीं॥

क्योंकि त्वगिन्द्रियसे शीत उष्ण कोमल कठोर इत्यादि स्पर्श ही का वा स्पर्शके अभावका ज्ञान होता है, निराकार ईश्वर स्पर्श वा स्पर्शका अभाव नहीं। उससे त्वगिन्द्रियरूपी प्रत्यक्ष प्रमाण करके भी निराकारका यथार्थ ज्ञान नहीं होसक्ता। यदि कहो कि नेत्ररूपी-प्रत्यक्ष प्रमाणसे निराकारका यथार्थ ज्ञान होता है। सो भी ठीक नहीं, क्योंकि नेत्रसे श्वेत पीत श्याम हरितादि रूप ही का ज्ञान होता है, निराकार श्वेत पीत श्याम हरितादि

रूप भी नहीं, उससे निराकार ईश्वरका नेत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाण करके भी यथार्थ ज्ञान नहीं होसक्ता यदि कहोकि रसनरूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे निराकार का यथार्थ ज्ञान हमको होताहै, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि रसनेन्द्रियसे मधुर कटु अम्लादि रसका वा रसके अभावका ज्ञान होता है, निराकार मधुर कटु, अम्लादि रस वा रसका अभाव रूप भी नहीं, उससे रसनरूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सक्ता। यदि कहो कि घ्राणरूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे हमको निराकारका यथार्थ ज्ञान हुआ है, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि घ्राणेन्द्रियसे सुगन्ध दुर्गन्ध और सुगन्ध दुर्गन्धके अभावका ज्ञान होता है, निराकार ईश्वर सुगन्ध दुर्गन्ध वा सुगन्ध दुर्गन्धका अभाव भी नहीं, उससे निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान घ्राणेन्द्रिय रूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी नहीं हो सक्ता। यदि कहो कि मन इन्द्रियसे निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान होता है, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि मन इन्द्रियसे प्रारब्ध जन्य सुख दुःख वा सुख दुःखके अभावका यथार्थ ज्ञान होता है। निराकार प्रारब्ध जन्य सुख दुःख वा सुख दुःखका अभाव भी नहीं, उससे मन इन्द्रिय रूपी प्रत्यक्ष प्रमाण करके भी निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सक्ता। यद्यपि श्रोत्रादि इन्द्रिय जन्य अन्तःकरणकी वृत्ति जब शब्दादि विषयों के आकार होती है तब शब्दादि विषयावच्छिन्न वा विषयोपहित चेतनाश्रित अज्ञान ही नष्ट होता है उससे शब्दादि विषयावच्छिन्न वा विषयोपहित निराकार ईश्वर चेतन ही उस वृत्तिरूपी यथार्थ ज्ञानका गोचर है। यह वेदान्तका सिद्धान्त है वैसे आर्य्यमतमें भी निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान हो सक्ता है। तथापि यह कथन भी आर्य्यसमाजियोंका असङ्गत है क्योंकि वेदान्तका सिद्धान्त आर्य्यसमाजियोंको इष्ट नहीं, यदि सारग्राही दृष्टिसे आर्य्यसमाजी वेदान्त सिद्धान्तको मान भी लेवें तो भी निराकारका ध्यान सिद्ध नहीं हो सक्ता। क्योंकि वेदान्त सिद्धान्तमें वृत्ति ज्ञानको अज्ञानका नष्टकर देना ही गोचरता है, निरावरण चेतन स्वप्रकाश स्वरूप से भान होता है। ध्यान गोचरताका निराकार शुद्ध चेतनमें सर्वथा सर्वदा अत्यन्ताभाव है। उससे भी निराकारके ध्यानका कथन लोकवञ्चनार्थ है। अभिप्राय यह कि निराकारका यथार्थ ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं सिद्ध होता यदि आर्य्यसमाजी कहैं कि निराकारका यथार्थ ज्ञान हमको अनुमान प्रमाणसे हुआ है सो भी ठीक नहीं क्योंकि—

यत्र लिङ्गज्ञानेन लिङ्गिनो ज्ञानं जायते तदनुमानम् ।

यह न्यायसूत्रों पर वात्स्यायन मुनि कृत भाष्यमें लिखा है, इसका तात्पर्य यह है कि जहां लिङ्गके ज्ञानसे लिङ्गीका ज्ञान होता है वह अनुमान प्रमाण है प्रकरणमें लिङ्ग शब्दका अर्थ चिह्न अथवा हेतु है ॥ जैसे कि—

पर्वतो वन्हिमान् कस्मात् धूमवत्त्वात् यत्रयत्र धूमवत्वं तत्र तत्र वन्हिमत्त्वं यथामहानसः ।

यहां पर्वत पक्ष है, धूम हेतु है, अग्नि साध्य है, महानस दृष्टान्त है। जब प्रथम महानस नाम रसोईके स्थानमें अग्नि साध्य और धूम हेतुका व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध नेत्र रूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे देखा जाता है तो कालान्तरमें पर्वतसे धूयें रूपी हेतुका भी नेत्र रूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे ज्ञान होता है। उसके पश्चात् पर्वतमें अग्निका अनुमिति अर्थात् परोक्ष ज्ञान होता है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाणकी सहायता ही से अनुमान प्रमाण सफल प्रवृत्तिका जनक हो सक्ता है। परन्तु निराकार ईश्वरके यथार्थ ज्ञान होनेमें प्रत्यक्ष प्रमाण ही सिद्ध नहीं हुआ तो अनुमान प्रमाणसे निराकारका यथार्थ ज्ञान कैसे होगा? किन्तु कभी नहीं। उससे निराकारके यथार्थ ज्ञान होनेमें अनुमान प्रमाण भी असङ्गत है ॥

यदि आर्य्यसमाजी कहें कि शब्द प्रमाणसे निराकार ईश्वरका हमको यथार्थ ज्ञान होता है, सो भी ठीक नहीं क्योंकि (मुखं चन्द्रेण उपमिनोमि) वा (कमलेन लोचनमुपमिनोमि) इत्यादि उदाहरण जहां दिये जाते हैं, वहां उपमानोपमेय भाव होता है। जिसकी उपमा दी जाती है, उस पदार्थ में उपमेयकी सदृशताका ज्ञान उपमान प्रमाण है और जिसको उपमा दी जाती है उसमें उपमानकी सदृशताका ज्ञान उपमिति प्रमा है। प्रथम उदाहरणमें चन्द्रमें मुखकी सदृशताका ज्ञान उपमान प्रमाण है। मुख में चन्द्रकी सदृशताका ज्ञान उपमिति प्रमा है। द्वितीय उदाहरणमें नेत्रमें कमलकी सदृशताका ज्ञान उपमान प्रमाण है वैसे ही जंगलस्थ नीलगायमें गोकी सदृशताका ज्ञान उपमिति प्रमा है, कमलमें नेत्रकी सदृशताका ज्ञान उपमान प्रमाण है। और गो में नीलगायकी सदृशताका ज्ञान उपमिति प्रमा है। इत्यादि उदाहरण काव्य प्रदीप तथा न्यायके ग्रन्थोंमें लिखे हैं। उन उदाहरणोंमें भी प्रत्यक्ष प्रमाणकी सहायता देखी जाती है क्योंकि चन्द्र, कमल, तथा नीलगायादि पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाणजन्य ज्ञानगोचर हैं, निराकार प्रत्यक्ष

प्रमाण जन्य ज्ञानके अगोचर सिद्ध हो चुका है। उससे उपमान प्रमाण जन्य उपमिति ज्ञानके गोचर भी निराकार नहीं हो सकता।

(किंच) सत्यार्थप्रकाशके आठवें समुल्लासमें दयानन्दने जगत्‌को असत् जड़ और आनन्द रहित कहा है। जब जगत् असत् जड़ दुःख रूप है तो जगत्स्थ किसी पदार्थकी उपमा भी निराकारमें नहीं दी जा सक्ती। हां जब दो निराकार ईश्वर होवें तो बेशक उनमें उपमानोपमेय भाव हो सकता है। ऐसा न होनेके कारण उपमान प्रमाणसे भी निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सक्ता। यदि आर्यसमाजी कहें कि शब्द प्रमाणसे हमको निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान होता है, सो भी ठीक नहीं क्योंकि शब्द प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रमाणकी सहायता बिना सफल नहीं हो सकता, जैसे कि श्रोत्र-रूपी प्रत्यक्ष प्रमाण ही से शब्दका ज्ञान जब प्रथम होता है तो उसके पश्चात् शब्दके अर्थका ज्ञान होता है। यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो शब्द प्रमेय सिद्ध होता है, क्योंकि श्रोत्र प्रमाणसे शब्द जाना जाता है, जब श्रोत्र प्रमाणका शब्द प्रमेय है तो शब्दमें प्रमाणताका भी असंभव है, किन्तु शब्दमें प्रमेयताका संभव हो सक्ता है। यद्यपि वेदान्तमें भी शब्दको प्रमाण माना है और ब्रह्मचेतनको भी शब्द प्रमाणका गोचर कहा है, उससे शब्द प्रमेय नहीं होसकता तथापि वेदान्त सिद्धान्तकी रीतिका स्वीकार आर्यमतवाले नहीं करते, क्योंकि वेदान्तके ग्रन्थोंमें शब्दकी शक्ति और लक्षणके भेदसे दो प्रकारकी वृत्ति मानी है। शब्दकी शक्ति वृत्तिका गोचर साकार माया-विशिष्ट ब्रह्म वर्णन किया है, निराकार ब्रह्मचेतनको वेदान्ती लोग लक्षणा वृत्तिका गोचर कहते हैं। यहां वेदान्तका अभिप्राय यह है कि शब्दकी लक्षणावृत्तिसे भी तीसरा अन्तःकरणका परिणाम वृत्तिरूपी ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञानसे शुद्ध ब्रह्म चेतन का न जानना रूपी अज्ञान नष्ट हो जाता है। शेष ब्रह्मचेतन निराकार स्वप्रकाशतासे भान होता है। निराकारका ध्यान कथन करना प्रमादियोंकी लीला है। उससे निराकार ईश्वर शब्द प्रमाणके गोचर भी नहीं हो सकता। यदि आर्यसमाजी कहें कि हमको अर्थापत्ति प्रमाणसे निराकारका यथार्थ ज्ञान होता है सो भी ठीक नहीं, क्योंकि अर्थापत्ति प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रमाणकी सहायता बिना काम नहीं दे सकता। (अर्थस्यापत्तिः सार्थापत्तिः) अभिप्राय इसका यह है कि कल्पनासे जहां पदार्थ सिद्ध हो, वहां अर्थापत्ति प्रमाण होता है। जैसे कि यज्ञदत्तने देवदत्त को मोटा ताजा तो देखा परन्तु भोजनको खाता यज्ञदत्तने देवदत्तको दिनके समय नहीं देखा॥

यज्ञदत्तने सोचा कि देवदत्त बड़ा स्थूल दिखाई देता है, क्योंकि भोजन के बिना स्थूलताका होना सर्वथा असम्भव है। उससे यज्ञदत्तको निश्चय हो गया कि यह देवदत्त रात्रिको अवश्य ही भोजन खाता है। यहां भोजनके बिना स्थूलताके असम्भवका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण है। इससे रात्रिमें भोजन करनेका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमा है यज्ञदत्तको जो देवदत्तमें स्थूलताका ज्ञान होता है, वह ज्ञान भी नेत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाण जन्य है। निराकार प्रत्यक्ष प्रमाणके अगोचर है, उससे अर्थापत्ति प्रमाणसे भी निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। यदि आर्यसमाजी कहें कि निराकार ईश्वरका यथार्थ ज्ञान हमको अनुपलब्धि प्रमाणसे हुआ है, सोभी ठीक नहीं, क्योंकि पदार्थ की अप्रतीतिका नाम अनुपलब्धि प्रमाण है। उससे जो अभावका ज्ञान होता है वह अभाव प्रमा है॥

जैसे कि (गेहे घटो नास्ति) अर्थात् घरमें घड़ा नहीं है, यहां घरमें घड़ेकी अप्रतीति अनुपलब्धिप्रमाण, और घड़ेके अभावका ज्ञान अभाव प्रमा है। अभिप्राय यह है कि अनुपलब्धि प्रमाणसे निषेध मुख प्रतीति अभावका ज्ञान होता है कि निराकार निषेध मुख प्रतीति गोचर नहीं, किन्तु निराकार विधि मुख प्रतीति गोचर है। उससे अनुपलब्धि प्रमाण करके भी निराकारका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता, जब षट् प्रमाणों करके निराकार के यथार्थ ज्ञानका अत्यन्ताभाव सिद्ध हो चुका तो निराकारका यथार्थज्ञान वा ध्यान कथन करना केवल अविद्वानोंकी लीला है किन्तु ध्यान वा ज्ञान साकार पदार्थ ही का लोकानुभवसे सिद्ध होता है। आर्यसमाजी कहते हैं कि जब निराकारका ज्ञान भी नहीं हो सकता तो वेदान्त ग्रन्थ भी निष्फल होंगे। आर्यसमाजियोंकी यह शङ्का भी ठीक नहीं, क्योंकि हम सिद्ध करचुके हैं कि जैसे दीपक जगाया जाता है तो उसका इतना ही फल है कि उससे अन्धकार नष्ट हो जाता है। व्यवहार नष्ट नहीं होता, वैसे ही ब्रह्मज्ञानसे अज्ञान दूर हो जाता है। ज्ञानीकी चेष्टा जो कि प्रारब्धानुसार हो रही है। उसका नाश नहीं होता और अहं त्वं इदं ज्ञान गोचर ब्रह्मचेतन नहीं, किन्तु चेतन स्वरूप ज्ञान स्वप्रकाश और अन्तःकरणी वृत्तिज्ञान चेतनकी सहायता ही से अज्ञानको नष्ट करता है। परन्तु इस सिद्धान्तको आर्यमतमें माना ही नहीं उससे भी निराकारका ध्यान वा ज्ञान बतलाना सर्वथा मिथ्या है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि अन्तःकरण जड़ पदार्थ है उससे अन्तःकरण का परिणाम ब्रह्मज्ञान वेदान्त रीतिसे भी नहीं हो सक्ता। आर्यसमाजियों

की यह शङ्का भी असङ्गत है। क्योंकि वेदान्त रीतिसे जैसे जड़ दीपकके प्रकाशसे अन्धकार दूर हो जाता है वैसे ही जड़ अन्तःकरणके वृत्ति रूप परिणामसे अज्ञान नष्ट हो जाता है। चेतन स्वरूप ज्ञान निराकार है इससे वेदान्त सिद्धान्त निर्दोष है॥ (आर्य्यसमाजी कहते हैं कि)-

न शक्यतेवर्णयितुंतदा गिरा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।

इस उपनिषद् वचनका सिद्धान्त यह है कि जीवको परमात्माके योग का सुख होता है वह सुख वाणीसे कहा नहीं जा सकता उस आनन्दको जीवात्मा अपने अन्तःकरणमें ग्रहण करता है। प्रकरणमें आनन्दका अर्थ निराकार ईश्वर चेतन है, उससे निराकारका ध्यान भी हो सक्ता है यह शंका भी ठीक नहीं क्योंकि उक्त मंत्रमें समाधिका प्रकरण है ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना प्रकरणमें दयानन्दने योग सूत्रका प्रमाण देकर कहा है कि योगीको चाहिये कि जिह्वादिमें मनको स्थिर करे। इस लेखसे भी यही सिद्ध होता है कि साकार पदार्थ हीमें मन रुक सकता है, निराकारमें नहीं। (किंच) जिस आनन्दको आर्यमत वाला जीवात्मा अन्तःकरणमें ग्रहण करता है, वह आनन्द ईश्वर स्वरूप है, अथवा वह आनन्द ईश्वरका गुण है?। यदि कहो कि वह आनन्द ईश्वर स्वरूप है तो जीवको परमात्माके योगका सुख होता है यह कथन मिथ्या होगा। क्योंकि परमात्माके योग का सुख होता है इस लेखसे सुख पदका अर्थ परमात्मासे भिन्न प्रतीत होता है यदि कहो कि जो परमात्माके योगका जीवको सुख होता है वह सुख ईश्वर का गुण है तो बतलाइये वह सुख गुण भी परमात्मामें संयोग संबन्धसे रहता है वा समवायि संबन्धसे? ईश्वरमें सुख गुण रहता है यदि संयोग संबन्धसे कहो तो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे संयोग साकार पदार्थोंका देखा जाता है और संयोग एक देशमें होता है। जैसे दो घटोंका संयोग दो घटोंके देशमें है। वैसे ही ईश्वर और सुखका संयोग भी एक देशमें होगा उससे भी आर्यमत वाला ईश्वर और उसका सुख गुण दोनों ही साकार सिद्ध होंगे। यदि कहो कि ईश्वर और उसके सुख गुणका समवाय संबन्ध है तो सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लासमें दयानन्दने समवाय संबन्धको नित्य लिखा है। यदि वह लेख ठीक है तो जीवको परमात्माके योगका सुख होता है यह लेख मिथ्या होगा। क्योंकि आर्यमतमें संयोग ही को योग कहा है॥

(किंच) यदि परमात्माके योगका सुख वाणीसे नहीं कहा जा सकता तो वह वाणी शब्दरूपहै अथवा शब्दसे कोई भिन्न पदार्थ वाणी है। यदि

कहो कि शब्दसे भिन्न पदार्थ वाणी है तो (यथेमां वाचं कल्याणी०) इस वेद मन्त्रको दयानन्दने सत्यार्थ प्रकाशके तीसरे समुल्लासमें लिखा है उसका दयानन्दकृतभाष्य मिथ्या होगा क्योंकि उसके भाष्यमें ईश्वरकी वाणीको वेद कहा है फिर उसी समुल्लासमें (आप्तोपदेशः शब्दः) इस सूत्रके भाष्य में बाबा जी ने वेदही को शब्द कहा है, यदि दयानन्दके इन लेखोंको सत्य मानें तो आर्यसमाजियोंके ईश्वरके योगका सुख वेदरूपी वाणीके गोचर सिद्ध हो चुका उससे भी ईश्वर निराकार न रहा ॥

(किंच) पूर्वोक्त मन्त्रमें बुद्धि पड़ा है यदि आर्यसमाजियोंके ईश्वरके योगका सुख बुद्धिसे जाना जा सकता है, तो बुद्धिसे भी घट पटादि साकार पदार्थों ही का जीवको ज्ञान होता है उससे भी आर्यसमाजियोंका ईश्वर निराकार सिद्ध नहीं हो सकता ।

(किंच) सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १३में दयानन्द ने कहा है कि यदि वह निराकार है तो उनको किसने देखा दयानन्दके इस लेखसे भी यही बात सिद्ध होती है कि निराकारका ध्यान नहीं हो सकता । आर्याभिविनय ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्० ।

यह मन्त्र ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों वेदोंमें आता है, आवाहन भी साकारका हो सकता है निराकारका नहीं, दयानन्दने उक्त मन्त्रके भाष्य में ईश्वरका आवाहन कहा है । उससे भी आर्यमत वाला ईश्वर निराकार नहीं । (य० अ० ३२ मं० ४—एषोह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः०) इस मन्त्रके भाष्य में दयानन्दने ईश्वरको कहा है कि यह परमात्मा प्रसिद्ध सब ओरसे मुखादिअवयवों वाला है, दयानन्दके इस लेखसे भी ईश्वर साकार है, निराकारमें मुखादि अवयवोंका अत्यन्ताभाव है । ऋ० मण्ड० ३ सू० ५६ मं० ७ (त्रिरा दिवः सविता सोपवीति०) इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दने ईश्वर को सुन्दर हाथों वाले मनुष्यकी उपमा दी है, यदि यह भाष्य सच्चा है तो उससे भी ईश्वर निराकार नहीं हो सकता । ऋ० मण्ड० ४ सू० २६ मं० १ । (अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं०) इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दने लिखा है कि ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! मैं मन्त्रोंके अर्थ जानने वालेके सदृश हूं, उस मुझको तुम देखो । इस लेखसे भी आर्यमत वाला ईश्वर निराकार नहीं रह सकता क्योंकि निराकार पदार्थ देखा नहीं जा सकता, किन्तु साकार प-

दार्थ ही देखनेमें आता है। बाबा जी के लेखोंसे ईश्वर तो साकार सिद्ध होता जाता है परन्तु ध्यान इसरस निराकारका ही बतलाते हैं, यह लीला विद्याहीनोंकी है विद्वान् ऐसा मिथ्या भाषण कभी नहीं करते ॥ किंच ॥

न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाच ॥

इस मंत्रको दयानन्दने सत्यार्थ प्रकाशके ७ समुल्लासमें लिखा है और इसके भाष्यमें कहा है कि ईश्वर चेतन है इस लिये उसमें क्रिया भी है फिर वही सत्या० समुल्लास ३ ॥

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनंप्रसारणंगमनमितिकर्माणि ।

इस वैशेषिक सूत्रके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि ऊपर नीचेको चेष्टा करना संकोच विकाश जाना आना घूमना ही कर्म्म है (उणादि०) (पा० ४ सू० ४५। सर्वधातुभ्योमनिन्) इस सूत्रके भाष्यमें (क्रियते तत्कर्म क्रिया वा) दयानन्दने कहा है कि क्रिया ही का नाम कर्म है। यदि दयानन्दके इन लेखोंको सत्य कहें तो आर्यमत वाला ईश्वर भी नीचे ऊपर चेष्टा करने वाला संकोच विकाश होने वाला जाने आने घूमने वाला सिद्ध हो चुका। उस से भी प्रकृति विशिष्ट ईश्वरको निराकार कथन करना असङ्गत है। क्योंकि माया युक्त पदार्थ एकदेशी होताहै यह बात भी पदार्थ विद्यासे सिद्धहो चुकी है। ईश्वरको क्रिया युक्त लिखकर फिर निराकार लिखना पदार्थ विद्याके विरुद्ध है ॥ दयानन्दके निराकारत्व पर उदाहरण—एक समय लाल बुझक्कड़ साहब चेलोंके साथ चले जाते थे आगे एक बुर्ज देखनेमें आया, चेलों ने पूछा कि गुरू जी यह कौनसा पदार्थ है ?। लाल बुझक्कड़ने जवाब दिया कि बूझै बूझै लाल बुझक्कड़ और न बूझै कोई ॥ निराकारकी है ये कलंगी अथवा टोपी होई,, ॥ इस दोहेको सुनके लाल बुझक्कड़के चेले हुर्रेका हल्ला मचाने लग पड़े और लाल बुझक्कड़को धन्यवाद दिया, कहा कि गुरू जी भी होवें तो ऐसे ही होवें जो कि झट पट शङ्काका समाधान देने लग जावें वैसे ही आर्यसमाजियोंकी लीला देखी जाती है। जैसे दयानन्द सरस्वती जी लिख गये हैं उसी लकीरके फकीर हो बैठे हैं, विद्या और युक्तिसे विमुख हो रहे हैं, इस व्याख्यानमें हमने युक्ति और प्रमाणोंसे निराकारके ध्यानका खण्डन किया है इसके आगे जीवेश्वरके स्वरूपका व्याख्यान दर्शाया जावेगा॥

॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

अथ जीवेश्वर स्वरूप।

व्याख्यान नं० ४।

तथाहि—दूसरा सत्या० समुल्लास ७ (प्राणापाननिमेषोन्मेष०) इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि ईश्वरको त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है॥ यदि आर्यसमाजी इस लेखको ठीक कहें तो आर्यमत वाला ईश्वर अल्पज्ञ होगा, जो अल्पज्ञ हो वह ईश्वर नहीं हो सक्ता किन्तु वह जीव है। यद्यपि दयानन्दने कहीं २ ईश्वरको त्रिकालदर्शी भी कहा है तथापि वह दयानन्दकी दरोग हलफीहै। दरोगहलफीमें दोनों लेख मिथ्या होते हैं। इस रूलको दयानन्दने सत्यार्थप्रकाशके समुल्लास १३ में लिखा है॥

(किंच) ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका प्रकरण जगदुत्पत्ति (यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा०) इस मंत्रके भाष्यमें दयानन्दने कहाहै कि "जिसकी सामर्थ्यको अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं। इस पुरुषके मूर्खपनादि नीच गुणोंसे किसकी उत्पत्ति होती है?" दयानन्दके इस लेखका सिद्धान्त यह है कि ईश्वरमें मूर्खपनादि नीच गुण भी हैं। यदि आर्यसमाजी इस लेखको मिथ्या कहैं तो दयानन्द मिथ्यावादी ठहरेगा। यदि कहैं कि यह लेख सत्य है तो आर्यमत वाला ईश्वर मूर्ख और नीच सिद्ध होगा। यद्यपि अनेक स्थानोंमें दयानन्दने जीवके गुणोंसे ईश्वरको भिन्न भी कहा है तथापि वह भी दयानन्दकी झूंठी दरोगहलफी है। गुणसे द्रव्य अथवा गुण से गुणकी उत्पत्ति कथन भी पदार्थ विद्याके विरुद्ध है (किंच) दूसरा सत्या० समुल्लास १० (आर्य्याधिष्ठिता०) इसके भाष्यमें मूर्ख ही को दयानन्दने शूद्र और रसोई बनाने वाला कहा है इस लेखकी कृपासे आर्य्यमत वाला ईश्वर शूद्र रसोई बनाने वाला सिद्ध होता है। क्योंकि दयानन्द ही ने ईश्वरको मूर्खतादि गुण वाला कहा है (किंच) ऋग्वे० मण्ड० ३ सू० ५५ मं० ९ निवेवेतिपलितो दूत०॥

इस के भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि हे मनुष्यो! कि ईश्वर बुड्ढे श्वेत केशों वाले दूतके समान समाचार देता है। यदि आर्यसमाजी इस लेख को ठीक कहैं तो आर्यमत वाला ईश्वर श्वेत केशोंसे युक्त समाचार देने वाला बुड्ढा हलकारा वा चिट्ठीरसां ठहरेगा। यदि न मानें तो बुड्ढे केशों वाले दूत की उपमाका देना दयानन्दका मिथ्या जाल सिद्ध होगा। (जाकी उपमा दीजिये सो कहिये उपमान। जाकूं उपमा दीजिये सो उपमेय बखान) यद्यपि दयानन्दने कहीं२ ईश्वरको जवान भी कहा है तथापि वह भी बावा

जी दयानन्दकी झूंठी दरोगहलफी है । (किंच) दूसरा सत्या० समुल्लास ७ (अहं ब्रह्मास्मि) इस मंत्रके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि जो जीव समाधिस्थ परमेश्वरमें प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं ॥ यदि आर्यसमाजी इस लेखको सच्चा कहें तो ईश्वरका आधार एक अवकाश होगा (तस्माद्वा एतस्मादात्मन०) इसके भाष्यमें दयानन्दने आकाशही को अवकाश कहा है उससे आर्यमत वाले ईश्वरका आधार आकाश होगा यदि कहो कि दयानन्दने ईश्वरको निराधार सर्वाधार भी कहा है तो वह भी दयानन्दकी झूंठी दरोगहलफी है ॥

(अहंब्रह्मास्मि) दयानन्दकृत इसका अर्थ व्याकरणसे भी विरुद्ध है क्यों कि इस मंत्रमें उत्तम पुरुषकी क्रियाका एक वचन है, दयानन्दकृत इस अनर्थसे ईश्वर भी जीवके सदृश होगा (किंच) आर्याभिविनय (प्रियाभोजनानि प्रमोषीः०) इसके भाष्यमें दयानन्दने ईश्वरको चोर और चोरी करानेवाला कहा है परन्तु ऐसे लक्षणों वाला ईश्वर ही नहीं हो सक्ता । यदि कहोकि दयानन्दने ईश्वरको चोरी आदि दोषोंसे रहित भी कहा है उससे ईश्वर निर्दोष है परन्तु दयानन्दकी यह भी झूंठी दरोगहलफी है (किंच) आर्याभिविनय (वृषेव वाजी) इस मंत्रके भाष्यमें जलदी चलनेसे दयानन्दने ईश्वरको घोड़ा कहा है। इस लेखसे भी आर्यमतमें ईश्वर एकदेशी सिद्ध होता है । यदि आर्यसमाजी कहें कि दयानन्दने ईश्वरको अचल भी कहा है तो भी दयानन्दकी झूंठी दरोग हलफी है । दूसरे सत्यार्थप्रकाशके समुल्लास७ और समुल्लास १२ में दयानन्दके दो लेख ऐसे हैं कि जिनसे आर्यमतमें ईश्वर का सर्वथा अत्यन्ताभाव सिद्ध होता है क्योंकि समुल्लास ७ में तो दयानन्दने केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही से ईश्वरकी असिद्धि लिखी है। परन्तु समुल्लास१२में यों भी लिख दिया है कि जहां प्रत्यक्ष नहीं वहां अनुमान शब्द उपमान भी नहीं घट सक्ते । यद्यपि समुल्लास १२ में दयानन्द हीने लिखा है कि जगत् रचना लिङ्गको देखकर ईश्वरका प्रत्यक्ष होता है तथापि वह भी बावाजी दयानन्दकी दरोगहलफी है । और भी दयानन्दके ऐसे बहुतसे लेख हैं कि जिन से जाना जाता है कि आर्यमात्रमें नाम मात्रका ईश्वर माना है, परन्तु दयानन्दके लेखोंकी दयासे आर्यमतमें ईश्वरका सर्वथा अत्यन्ताभाव है । अब वेद और वेदानुसार ऋषिप्रणीतग्रन्थोंके प्रमाणोंसे ईश्वरका स्वरूप लिखा जाताहै। वेदान्तके ग्रन्थों और वेदोंमें ईश्वरका द्विविध लक्षण देखा जाताहै। उन

में से एक तटस्थ लक्षण और दूसरा स्वरूप लक्षण है, जैसे कि (ईशावास्यमिदं सर्व०) (यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येनजातानि जीवन्ति) (जन्माद्यस्य यतः) इत्यादि वेदोपनिषद् और सूत्र प्रमाणोंसे ईश्वरका तटस्थ लक्षण पाया जाता है। वेदांतके ग्रन्थोंमें तटस्थलक्षण उसको कहा है कि जो लक्ष्यमें कदाचित् प्रादुर्भूत हुआ अलक्ष्योंसे भिन्न करके लक्ष्यको लखाता है। जैसे कि जगत्को उत्पत्ति स्थिति प्रलयका कारणत्व ईश्वरका तटस्थलक्षण है, जगदुत्पत्तिके प्रथम और प्रलयके पश्चात् उस लक्षणका तिरोभाव है। किन्तु जगदुत्पत्ति स्थितिके समय उसका प्रादुर्भाव है उससे लक्ष्य ईश्वरमें तटस्थ लक्षणका कदाचित् दर्शन है और यह लक्षण अन्य मतोंमें जो जगत्के कारण माने हैं। उनसे भिन्न करके सर्वशक्तिमान् ईश्वर ही को जगत्का कारण लखाता है उससे जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयका कारणत्व ।मायाविशिष्ट ईश्वरका तटस्थ लक्षण है॥

(द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया०) (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म०) इत्यादि वेद और उपनिषदोंके प्रमाणोंसे ईश्वरका स्वरूप लक्षण सिद्ध होता है वेदान्तके ग्रन्थोंमें स्वरूप लक्षण उसको कहा है कि जो लक्ष्यका स्वरूप हुआ अलक्ष्योंसे भिन्न करके लक्ष्यको लखाता है। जैसे कि सत् चित् आनन्द अनन्त ईश्वरका स्वरूप लक्षण है। क्योंकि ईश्वरका स्वरूप हुआ असत् जड़ दुःख रूप अनीश्वरोंसे ईश्वरको भिन्न करके लखाता है। अब योगदर्शनके प्रमाणसे ईश्वरका स्वरूप वर्णन किया जाता है (तथाहि)—

क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषईश्वरः ।

इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि क्लेश और कर्म्मोंके फलसे जो रहित है वह विशेष पुरुष ईश्वर है—

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ।

इस योगदर्शनके सूत्रका सिद्धान्त यह है कि अविद्या १ अस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ यह पांच क्लेश हैं। विपरीत ज्ञानका नाम अविद्या है वेदान्तके ग्रन्थोंमें मूल और तूल भेदसे अविद्या दो प्रकार की है) जीवेश्वरके अभेदाच्छादक मूलाविद्या है। किञ्चित् उपाध्यवच्छिन्न चेतनाश्रित अविद्या तूलाविद्या है तूलाविद्या भी अनित्यमें नित्य अशुचिमें शुचि दुःखमें सुख अनात्ममें आत्म बुद्धिभेदसे चार प्रकार की है। अनित्य देहादिक पदार्थोंमें नित्य निश्चय करना अनित्यमें नित्य बुद्धि तूलाविद्या है, अपवित्र की

पुत्रादिके शरीरोंमें अथवा अपने शरीरमें पवित्रताका निश्चय होना अशुचि में शुचि बुद्धि तूलाविद्या है। काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि दुःख मय पदार्थोंमें सुखका निश्चय कर लेना यह दुःखमें सुख बुद्धि तूलाविद्या है। अन्न प्राण मनोविज्ञान आनन्द मय पांच कोश अनात्म पदार्थोंमें आत्मा का निश्चय करना अनात्ममें आत्म बुद्धि तूलाविद्या है। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध विषयोंमें लंपट हो जाना राग है। शमदमादि मोक्षके साधनोंसे वि- रोध रखना द्वेष है। सूक्ष्म अहंकारका नाम अस्मिता है। जो मनमें हो उसी बात पर दुराग्रह कर बैठनेका नाम अभिनिवेश है। इन पांच क्लेशोंसे जो भिन्न है वह पुरुषविशेष ईश्वर है। नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्त और काम्य यह चार प्रकारके कर्म्म हैं। जाति आयु और भोग इन कर्म्मोंका फल है। इन क- र्म्मोंके फलसे जो रहित है सो पुरुष विशेष ईश्वर है। प्रकरणमें पुरुष शब्द का अर्थ व्यापक है। पंचदशीकारकी रीतिसे साभास मायाविशिष्ट सर्वश- क्तिमान् परमात्मा ईश्वर है। अवच्छेद वादकी रीतिसे शुद्ध सत्व गुण प्रधान मायाविशिष्ट सर्वशक्तिमान् ईश्वर है। प्रतिबिंबवादकी रीतिसे शुद्ध सत्त्व गुण प्रधान माया और शुद्ध ब्रह्मचेतनके निरावरण संनिधिता संबन्ध से बिंबस्वरूप शुद्ध ब्रह्मचेतनमें बिम्बत्व ही ईश्वर है। यद्यपि वेदान्तके ग्र- न्थोंमें अनेक प्रकारसे ईश्वरको वर्णन किया है। तथापि ईश्वरमें आवरणका होना किसी भी वेदान्तके ग्रन्थमें नहीं लिखा। पूर्व जो पांच क्लेश और कर्म्म फलका निषेध किया है सो ईश्वरमें निषेध है। जीवमें पांच क्लेश और कर्म्म फल जाति आयु भोगका होना अनुभव सिद्ध है॥

इस प्रकरणका अभिप्राय यह निकला कि जो जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयका कारण सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक सर्वाधार पांचक्लेश और कर्म्म फल से भिन्न है वह ईश्वरहै। अब वक्ष्यमाण रीतिसे जीवका स्वरूप लिखा जा- ता है (तथाहि) अन्तःकरणावच्छिन्न अथवा साभास अन्तःकरण विशिष्ट चे- तन ही को वेदान्तके ग्रन्थोंमें जीव कहा है। यद्यपि (यएषहृदयान्तर्ज्योतिः पुरुषः) (असंगोह्ययं पुरुषः) इत्यादि मंत्रोंमें पूर्वोक्त जीवके लक्षणोंसे भेद प्रतीत होता है। तथापि उक्त श्रुतियोंमें जीव शब्दका लक्ष्यार्थ कूटस्थसाक्षि चेतन दर्शाया है। वेदान्त फिलासफीमें जीवका स्वरूप नहीं है जो कि पूर्व लिखा है। अब वेदान्तसे भिन्न मतोक्त शङ्कासमाधान पूर्वक जीवका खण्डन किया जाता है (तथाहि)

यावज्जीवंसुखंजीवेन्नास्तिमृत्योरगोचरः ।
भस्मीभूतस्यदेहस्य पुनरागमनंकुतः ॥
तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्तआत्मनि प्रमाणाभावात् ।

इत्यादि चार्वाक मतके चलाने वाले बृहस्पतिके रचे श्लोक हैं। शील-तरङ्गिणी नामक ग्रन्थमें जिसका दूसरा नाम बुध भी लिखा है, विचारसा-गरमें उसीका तीसरा नाम विरोचन भी पाया जाता है, वह कहता है कि प्रत्यक्ष प्रमाणगोचर शरीर ही आत्मा है, शरीरसे भिन्न और कोई आत्मा नहीं प्रमाण एक प्रत्यक्ष ही है, दूसरा कोई प्रमाण नहीं जब तक जीव जीता रहे तब तक खूब ही भोग भोगे, विषय सुखका अनुभव करे, यही पुरुषार्थ है, मरजाना ही मुक्ति है। जब शरीरात्मा जीव मर जाता है तो पुनर्जन्म किसी को नहीं होता, परलोक स्वर्गका अत्यन्ताभाव है, यह विरोचन चार्वाकका सिद्धान्त है। अत्यन्त वाचालको वह चार्वाक कहते हैं। अब चार्वाक मत वालोंसे पूछना चाहिये कि यदि शरीर ही आत्मा होवे तो सुख दुःखका ज्ञान किसीको न होना चाहिये क्योंकि शरीर जड़ है परन्तु ज्ञान चेतनको होता है। यदि कहो कि जड़को भी ज्ञान होता है तो जड़ घट पटादि पदार्थोंको भी ज्ञान होना चाहिये, इस पर यदि चार्वाक मतानुसारी कहें कि जैसे मादक द्रव्य खानेसे नशा उत्पन्न होता है वैसे ही भूमि जल अग्नि वायु इन चार तत्त्वोंके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है, साथ ही चेतन उत्पन्न होता है। शरीर नष्ट होनेके साथ ही चेतन नष्ट होजाता है। पाप पुण्यका फल भोगने वाला कोई नहीं। किंवा जैसे गर्मीसे जल पिघल जाता है सर्दीसे जमजाता है। वैसे ही भूम्यादि चार भूतोंमें दो शक्ति हैं एक शक्तिसे चेतन उत्पन्न होता है दूसरी शक्तिसे चेतन नष्ट होजाता है अथवा जैसे चूना कत्था और पानके संयोगसे रक्त रंग उत्पन्न होता है वैसे ही भूमि आदि चार तत्त्वोंके संयोगसे चेतन उत्पन्न होता है उससे शरीरात्माको सुख दुःखका ज्ञान भी प्रत्यक्ष प्रमाण गोचर है शरीरसे भिन्न कोई दूसरा आत्मा नहीं है इत्यादि चार्वाक मतवालोंका देहात्मवाद सर्वथा युक्ति और पदार्थ विद्याके विरुद्ध है। किन्तु नीचे लिखी रीतिसे चार्वाक मतवालोंके उदाहरणोंका खण्डन लिखा जाता है। चार्वाक मत वालोंसे पूछना चाहिये कि नशा जड़ पदार्थको होता है वा चेतनको ? यदि कहो कि जड़को नशा होता है तो नशाके पात्र

घट वाटली शरावादि जड़ पदार्थोंको भी नशा होना चाहिये । यदि कहो कि नशा चेतनको होता है तो कहिये भूमि आदि चार भूतों के संयोगसे पहिले चेतन था ? । अथवा नहीं था यदि कहोकि भूतोंके संयोगसे पहिले चेतन नहीं था तो बतलाइये अभावसे भाव उत्पन्न होता है, अथवा नहीं । यदि कहो कि अभावसे भी भाव उत्पन्न होता है, तो बालुमें तेलका अभाव है, बन्ध्या स्त्रीमें पुत्रका अभाव है । कुत्तेमें सींगका अभाव है, बालुमें तेलका वन्ध्यामें पुत्रका कुत्तेमें सींगका भी भाव होना चाहिये । यदि कहो कि भूतोंमें उत्पत्तिसे प्रथम चेतनका भाव है, तो भूतोंके संयोगसे चेतन उत्पन्न होता है यह कथन सर्वथा मिथ्या सिद्ध हो चुका क्योंकि भूतोंके संयोगसे प्रथम भी सुख दुःखका ज्ञाता चेतन था उससे मादक नशेका दृष्टान्त देकर चेतनकी उत्पत्ति कथन असंगत है । वैसे ही सर्दी गर्मीका उदाहरण देकर भी चेतनकी उत्पत्ति कथन ठीक नहीं, क्योंकि यदि शर्दी गर्मी रूप शक्तिको चेतन मानें तो वह जगत् कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होगा, यदि शक्तिको जड़ मानें तो उसको जमाने वा पिघलानेका ज्ञान भी नहीं होगा, वैसे ही भूमि आदिक चार तत्वोंमें शक्तिको चेतन मानें तो वह ईश्वर ही सिद्ध होगा, यदि भूतोंमें चेतनको जड़ मानें तो चेतनकी उत्पत्ति करनेका उसको ज्ञान न होगा, यदि कहो कि चेतन स्वयं ही उत्पन्न हो जाता है तो घट पटादि पदार्थ भी स्वयं ही उत्पन्न होने चाहिये ॥

जैसे कोई अपने स्कंध पर आप नहीं बैठ सकता वैसे ही चेतन भी आप से आप उत्पन्न नहीं हो सकता, उससे भूतोंके संयोगसे शरीरमें चेतनकी उत्पत्तिमें जलमें सर्दी गर्मी शक्तिका उदाहरण भी असंगत है । चेतनकी उत्पत्तिमें जो तीसरा चूना कत्था तांबूलका उदाहरण दिया है, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि चूना कत्था पानका मिलानेवाला एक चौथा चेतन आदमी है। आपसे आप चूना कत्था पान नहीं मिल सके वैसे ही भूम्यादि चार भूतों को जड़ मानें तो वह आपसे आप मिल नहीं सकेंगे क्योंकि जड़ पदार्थको मिलनेका ज्ञान ही नहीं । यदि भूतोंमें चेतन मानें तो वही चेतन जगत् कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होगा, इसका विशेष वर्णन जगदुत्पत्तिमण्डनके व्याख्यानमें होगा । अभिप्राय यह है कि चार्वाकमतकी युक्तिसे शरीर आत्मा सिद्ध नहीं होता। और चेतनकी उत्पत्ति भी सिद्ध नहीं होती किन्तु युक्ति और पदार्थ विद्या से शरीरसे भिन्न ही आत्मा सिद्ध होता है । किंच जैसे कोई कहे कि मेरा मकान है, इस अनुभवसे मेरा कथन करनेवाला मनुष्य मकान नहीं हो सकता

किन्तु मकानसे भिन्न देखा जाता है, वैसे ही मेरा शरीर है यह कथन भी लोकानुभव सिद्ध है। अनुभव सिद्ध बात किसी भी युक्ति और प्रमाणसे खण्डन नहीं हो सक्ती, उससे भी शरीर आत्मा नहीं। किंवा यौवनावस्थामें मनुष्य के "जो मैं बाल्यावस्थामें माताकी गोदीमें खेलता था वही मैं अब जंगी फौजमें सूबेदार वा रसालदार हूं" इस प्रत्यभिज्ञा ज्ञानसे भी शरीर आत्मा सिद्ध नहीं हो सक्ता। किन्तु यौवनावस्था युक्त शरीरमें आत्मा वही है जो कि बाल्यावस्था युक्त शरीरमें था, परन्तु बाल्यावस्थाके शरीरसे यौवनावस्थाका शरीर भिन्न है और प्रत्यभिज्ञा ज्ञानका कर्त्ता चेतन आत्मा भी शरीरसे भिन्न है।

किंच लड़ाईमें घायल हुए मनुष्यको जब नींद आती है तो उसको दुःखका ज्ञान नहीं होता, किन्तु जब जागता है तो फिर दुःखका अनुभव होता है। उससे भी शरीर आत्मा नहीं, क्योंकि जगत्में शरीरका पैर कटा हुआ है, एक कदम नहीं चल सकता, नींदमें अपने शरीरको पहाड़ पर चढ़ता देखता है, तो जाना जाता है कि जाग्रत्के शरीरसे स्वप्नका शरीर भी भिन्न है। परन्तु आत्मा स्वप्नमें भी वही है जो जाग्रत्के शरीरमें था, जाग्रत् और स्वप्नके शरीरका परस्पर व्यतिरेक है, परन्तु आत्माका दोनों शरीरों में अन्वय है। उससे भी शरीर आत्मा नहीं।

(किंच) जाग्रत् अवस्था युक्त शरीर प्रयागराजमें सोया है, परन्तु स्वप्नावस्था युक्त शरीर केदारनाथमें भ्रमण करता है। प्रयागराजस्थ जाग्रदवस्था और केदारनाथस्थ स्वप्नावस्था युक्त शरीरका भी परस्पर व्यतिरेक है। परन्तु आत्माका सर्वत्र अन्वय है, उससे भी शरीर आत्मा नहीं।

किंच कर्त्ता, करण, कर्मकी त्रिपुटीसे सुख दुःखका अनुभव होता है, जब शरीर ही को सुखके अनुभवका कर्त्ता मानें तो शरीरमें कोई करण भी सिद्ध न होगा। जब शरीरको करण मानें तो शरीरसे भिन्न सुख दुःखके अनुभवका कर्त्ता आत्मा सिद्ध होगा। उससे भी शरीर आत्मा नहीं।

(किंच) (अत्यन्तमलिनो देहो देहीचात्यन्तनिर्मलः) इस अनुभवसे भी हाड़ चाम मल मूत्र रूप शरीर आत्मा सिद्ध नहीं होता, स्थूल शरीर ही को वेदान्ती लोग अन्नमय कोश कहते हैं, वैद्यक शास्त्रसे जाना जाता है कि अन्न के दो भाग हो जाते हैं। उनमेंसे एक भाग तो मलमूत्र होकर निकल जाता है, और अन्न के दूसरे भागका हाड़ चाम मांस रुधिर रूप शरीर बनता है,

हाड़ चाम मल मूत्रके साथ कुत्ता अथवा खरका प्रेम होता है। जो हो, इस युक्तिसे भी शरीरमें मेरा शरीर है ऐसे अभिमानसे युक्त आत्मा शरीरसे भिन्न है इत्यादि और भी अनेक युक्तियां वेदान्तके ग्रन्थोंमें लिखी हैं कि जिनसे स्थूल शरीर आत्मा सिद्ध नहीं होता ॥ १ ॥

इन्द्रियात्मवादी कहता है कि इन्द्रिय ही आत्मा है। इन्द्रियात्मवादी का मुख्य सिद्धान्त यह है कि (मैं देखता हूं सुनता हूं) इस अनुभव से देखना सुनना आदि धर्म इन्द्रियोंका है देखने, सुनने आदि क्रियाके कर्त्ता इन्द्रिय ही आत्मा हैं। इन्द्रियात्मवादीका यह कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रत्येक स्थूल शरीरमें पांच २ ज्ञान और पांच कर्मेन्द्रिय देखे जाते हैं। यदि इन्द्रिय ही आत्मा होते तो प्रत्येक शरीरमें दश२ आत्मा होने चाहिये। यदि इन्द्रियात्मवादी ऐसे ही मानें तो जैसे एक केलेके स्तंभके साथ दश हाथी बन्धे हों तो उनकी विरुद्ध चेष्टासे केलेका स्तंभ शीघ्र ही नष्ट होजाता है। वैसे ही प्रत्येक शरीरमें दश २ इन्द्रियोंकी भी विरुद्ध चेष्टा है, नेत्रात्मा रूप की ओर श्रोत्रात्मा शब्दकी ओर चेष्टा करेगा तो इन्द्रियात्मवादीका शरीर शीघ्र ही नष्ट होजाना चाहिये।

(किंच) सुषुप्ति अवस्थामें किसी इन्द्रियकी चेष्टा नहीं देखीजाती, किन्तु सुषुप्ति अवस्थामें सुख ही का अनुभव है, क्योंकि जब मनुष्य सुषुप्ति अवस्थासे उठता है तो कहताहै कि आज हमने सुखसे आराम कियाहै, इस स्मृति ज्ञानसे भी यही सिद्ध होता है कि सुषुप्तिमें सुखका ज्ञाता आत्मा इन्द्रियोंसे भिन्न है। क्योंकि सुषुप्ति अवस्थामें इन्द्रियोंका सर्वथा अदर्शन है, यदि इन्द्रिय ही आत्मा होते तो सुषुप्तिमें आत्मा मर जाने चाहिये। मरनेके भयसे किसी को सुषुप्तिकी इच्छा न होनी चाहिये। अन्वय व्यतिरेक युक्तिसे भी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि सुषुप्ति अवस्थाका जाग्रत्में तथा जाग्रदवस्थाका सुषुप्तिमें और स्वप्न में इन दोनों का तथा जाग्रत और सुषुप्ति में स्वप्नका व्यतिरेक है और आत्मा का इन तीनों अवस्थाओं में अन्वय है। उससे भी आत्मा इन्द्रियोंसे भिन्न है। किंच यदि इन्द्रियोंको जड़ मानें तो उनको शब्दादि विषयों का ज्ञान न होगा। यदि इन्द्रियोंको चेतन कहें तो एक ही शरीर में दश चेतन मानने पड़ेंगे, यदि ऐसे ही मानें तो जैसे परस्पर विरुद्ध एक घरके दश मालिक घर ही को बरबाद कर देते हैं। वैसे ही एक शरीर रूपी घरके दश इन्द्रिय चेतन मालिक भी परस्पर विरुद्ध चेष्टा युक्त हैं,

शरीर रूपी घरका सत्यानाश कर डालेंगे। यदि कहो कि जैसे एक शरीरमें अनेक जूयें पड़जाती हैं परन्तु शरीरका सत्यानाश नहीं होता वैसे ही एक शरीरमें दश इन्द्रिय रूपी दश आत्माके रहनेसे भी शरीरका सत्यानाश नहीं होता। सो भी ठीक नहीं क्योंकि एक शरीरके शिर आदि अवयवोंमें जो अनेक जीव जूयें रहती हैं उन सबके अपने २ शरीर हैं। दश इन्द्रियों का एक ही शरीर देखा जाता है। यदि कहो कि जैसे एक शरीरके उदरमें अनेक कृमि पड़ जाते हैं और शरीरका नाश भी नहीं होता वैसे ही एक शरीरमें दश इन्द्रिय आत्मा रहते हैं, और शरीर भी ज्यों का त्यों बना रहता है। यह भी ठीक नहीं क्योंकि उदरस्थ कृमियोंके शरीर भी अपने २ और भिन्न २ हैं, दश इन्द्रियात्माका एक ही शरीर है उससे भी इन्द्रिय-आत्मा नहीं। (किंच) यदि इन्द्रिय समुदायको आत्मा कहें तो किसी मनुष्य का वागिन्द्रिय नहीं, किसीका नेत्र इन्द्रिय नहीं, किसीका श्रोत्रेन्द्रिय नहीं, इत्यादि यदि इन्द्रिय समुदाय ही आत्मा होता तो कुछ आत्मा मुर्दा और कुछ जीता रहना चाहिये। यदि कहो कि इन्द्रिय समुदाय आत्मा नहीं किन्तु कोई एक इन्द्रिय आत्मा है, सोभी ठीक नहीं। क्योंकि किसी एक इन्द्रियको आत्मा कहें तो शेष इन्द्रिय अनात्मा ठहरेंगे। और यह निर्णय नहीं होगा कि कौनसा इन्द्रिय आत्मा है॥

(किंच) सूरदास कहता है कि मेरे नेत्र नहीं, बधिर कहता है कि मेरे श्रोत्र नहीं, इस अनुभवसे भी इन्द्रियोंसे भिन्न ही आत्मा भान होता है, उससे भी इन्द्रिय आत्मा नहीं॥ किंच (असिना छिनत्ति) इस उदाहरणमें जैसे काटनेका करण तलवार तथा काटनेका कर्त्ता चेतन और काटना कर्म्म यह तीनों पदार्थ भिन्न २ भान होते हैं। कर्त्ता चेतन तलवार रूप करण वा तलवार रूप करण भी कर्त्ता चेतन रूप नहीं, तथा काटना रूप कर्म्म भी कर्त्ता और करण रूप नहीं, वैसे करण तथा कर्त्ता भी काटना रूपी कर्म्म नहीं किन्तु तीनों ही भिन्न २ हैं। वैसे ही (श्रोत्रेण शृणोमि) (चक्षुषा पश्यामि) इत्यादि अनुभवसे भी श्रोत्रादि इन्द्रिय करण तथा इन्द्रियोंसे भिन्न सुननेका कर्त्ता और श्रवणका होना रूपी कर्म, यह तीनों ही भिन्न २ अनुभव सिद्ध हैं। इन्द्रियात्मवादके खण्डनमें और भी वेदान्तके ग्रन्थोंमें अनेक युक्तियां लिखी हैं। उन युक्तियोंसे भी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि आत्मा इन्द्रियोंसे भी भिन्न है, उससे इन्द्रियात्मवाद भी असङ्गत है॥२॥

प्राणात्मवादी कहता है कि प्राणही आत्मा है। प्राणात्मवादी युक्ति यह देता है कि जब तक मनुष्यके शरीरमें प्राण रहते हैं, तब तक शरीरमें जीवन व्यवहार होता है। और शरीर मंगल मय भान होता है, जब शरीर में से प्राण निकल जाते हैं तो शरीरमें मरण व्यवहार होता है। और शरीर अमङ्गल रूप भान होने लग जाता है। प्राणात्मवादी यों भी कहता है कि एक समय प्रजापतिके इजलासमें इन्द्रिय और प्राणोंका मुकद्दमा पेश हुआ था। दोनोंके इजहारोंका सिद्धान्त यह था कि हममें कौन सर्वोत्तम है। प्रजापति जी ने दोनों इजहारोंको विचार कर फैसला दिया कि तुम दोनों ही शरीरमें प्रवेश कर प्रत्येक निकलते जावो। जिसके निकलनेसे शरीरमें मरण व्यवहार होगा वही तुम सबोंमें से सर्वोत्तम ठहरेगा। इस फैसलेको सुन इन्द्रियों और प्राणोंने वैसा ही किया। नेत्रेंद्रियके निकल जानेसे सूरदास होकर, श्रोत्रेन्द्रियके निकल जानेसे बधिर होकर भी शरीर ज्योंका त्यों रहा, सर्वेन्द्रियोंके निकल जाने पर भी शरीरमें मरण व्यवहार न हुआ, जब प्राणोंके निकलनेका उद्योग हुआ तो शरीर अमङ्गल और भयानक होकर मरने लगा, तो उसी समय इन्द्रियोंको भी निश्चय हुआ कि हम सबोंसे प्राण ही सर्वोत्तम हैं। यह कथा वेदमें लिखी है तो वेद प्रमाणसे भी जीवन मरण प्राणों ही के आधीन हैं, उससे भी प्राण ही आत्मा हैं। (प्राणाय नमो०) इस वेदके मन्त्रमें प्राण ही को नमस्कार करना कहा है। उससे भी प्राण ही आत्मा हैं॥

अब इस प्राणात्मवादका खण्डन युक्तियों और प्रमाणोंके द्वारा किया जाता है—प्राणात्मवादीसे पूछना चाहिये कि प्राण जड़ हैं, अथवा चेतन? यदि कहो कि प्राण जड़ हैं, तो प्राणोंको सुख दुःखादिका ज्ञान न होगा। यदि कहो कि प्राण चेतन हैं तो प्राण १ अपान २ समान ३ व्यान ४ उदान ५ नाग ६ कूर्म्म ७ कृकल ८ देवदत्त ९ धनंजय १० भेदसे प्राण दश हैं, प्रत्येक शरीरमें दश २ आत्मा होंगे, यदि कहो कि प्रत्येक शरीरमें दश २ आत्मा माननेसे कोई हानि नहीं, सो भी ठीक नहीं क्योंकि पूर्व हम प्रत्येक शरीरमें दश २ इन्द्रियात्मवादके खण्डनमें जितने दोष लिख चुके हैं। वही दोष दश प्राणोंको दश आत्मा कहनेमें आते हैं। यदि दश प्राणोंके समुदायको एक आत्मा कहो वा प्रत्येक प्राणको एक आत्मा कहो तो उसमें भी वही दोष आते हैं, जो कि इन्द्रिय समुदायको एक आत्मा वा किसी एक इन्द्रियको

आत्मा कहनेमें वर्णन किये हैं, उससे प्राणोंको आत्मा कथन करना भी सर्वथा असंभव है, वेदान्तके ग्रन्थों और वेद मन्त्रोंमें भी प्राणोंकी उत्पत्ति लिखी है, यदि उत्पत्तिसे पहिले प्राणोंका अभाव कहें तो अभावसे भाव का होना पदार्थ विद्याके विरुद्ध है। यदि उत्पत्तिमें प्रथम प्राणोंका भाव मानें तो वेदसे विरोध होगा, क्योंकि वेदोंमें प्राणोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। (न प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवलीयन्ते) इस वेद मंत्रका सिद्धान्त यह है कि ब्रह्मज्ञानीके प्राण ऊर्ध्व वा अधः को गमन नहीं करते किन्तु जहां शरीरका अन्त होता है वहांही शुद्ध ब्रह्मचेतनमें लय हो जाते हैं। इस प्रमाणसे भी प्राण आत्मा नहीं, क्योंकि मंत्रमें आत्माका लय कहा नहीं किन्तु प्राणोंही का लय कहा है। जब तक शरीरमेंसे जीव नहीं निकलता तब तक प्राणभी नहीं निकलते क्योंकि (प्राणापाननिमेषोन्मेष०) इस कणाद मुनिकृतसूत्रमें प्राणों को आत्माके ज्ञान करानेका लिङ्ग कहा है। प्रकरण में लिङ्ग शब्दका वाच्य चिन्ह है उससे भी प्राण आत्मा नहीं। प्राणोंके सहित जीवात्माके निकलने ही से शरीर अमङ्गल और भयंकर रूप हो जाता है। केवल प्राण निकलते ही नहीं उससे भी प्राण आत्मा नहीं। इन्द्रिय और प्राणोंके अभिमानी देवताओंका मुकद्दमाही प्रजापतिके इजलासमें सिद्ध होता है। केवल इन्द्रिय और प्राण जड़ होनेके कारण वह मुकद्दमा ही नहीं लड़ सकते। इन्द्रिय विशिष्ट वा प्राण विशिष्ट ब्रह्मचेतनही प्रकरण में देवता लिये जाते हैं। यद्यपि वेदान्त के ग्रन्थोंमें एक ही चेतन है तथापि वही दश इन्द्रिय दशप्राण विशिष्ट बीस प्रकारसे कहा जाता है। शुद्ध चेतन से विशिष्ट चेतन भिन्न सिद्ध होता है। विशेषण विशिष्ट कल्पित और शुद्ध अकल्पितहै विशिष्टमें भी विशेषण प्राणेन्द्रिय कल्पित और विशेष चेतन अकल्पित है, जो हो प्रकरणमें प्राणेन्द्रिय विशिष्ट चेतनोंही का प्रजापतिके कोर्टमें मुकद्दमा सिद्ध होता है। उससे भी प्राणेन्द्रियसे भिन्नही आत्मा सिद्ध होता है

(किंच) योगदर्शनकी रीतिसे योगीके लिये प्राणायाम करना कहा है, प्राणोंके निरोधका नाम प्राणायाम है। प्राणोंके निरोध का कर्त्ता प्राणोंसे भिन्नही आत्मा है उससे भी प्राण आत्मा नहीं। जिस मनुष्यको दमाका रोग हो जाता है वह यों भी कहता है कि मेरे प्राण अब छूटें तो मैं सुखी होऊं मेरे प्राण कहनेसे भी आत्मा प्राणोंसे भिन्न है। जब आदमी सो जाता है तब प्राण नहीं सोते किन्तु सोये हुए आदमीके प्राण जाग्रत्से भी शीघ्र च-

लते हैं, यदि प्राणोंको चेतनात्मा कहें तो सोये आदमीके पाससे माल उठाकर चोर भाग जाते हैं परन्तु प्राणात्मा किसी चोरकी टांगको नहीं पकड़ लेते वा चोरोंको पुलिसके हवाले नहीं करा देते उससे भी प्राण आत्मा नहीं। अथवा जब आदमी सोता है उस समय कोई उसका प्यारा आता है तो वह प्यारा सोये हुये मित्रको पुकार रहा है। यदि प्राण ही आत्मा होते तो उस प्यारेकी खातिरदारी अवश्य करते। खातिरदारी न करनेके कारणभी प्राण आत्मा नहीं इत्यादि औरभी अनेक युक्तियां प्राणात्मवाद खण्डन की वेदान्तके ग्रन्थोंमें लिखी हैं उससे प्राणात्म वाद भी असङ्गत है॥३॥

चार्वाकमत प्रचारक बुद्धके शिष्यही बौद्ध कहाते हैं, उनके माध्यमिक १ योगाचार २ सौत्रान्तिक ३ वैभाषिक ४ यह चार भेद हैं-

बौद्धानांसुगतोदेवो विश्वंचक्षणभंगुरम्।
आर्यसत्वाख्ययादत्वा चतुष्टयमिदंक्रमात्॥

यह श्लोक बौद्धोंके विवेकविलास ग्रन्थका है, इसमें बौद्ध मनुष्योंका नाम आर्य्य और बौद्ध स्त्रियोंका नाम आर्या है। बुद्ध का पहिला शिष्य माध्यमिक है। वह शून्यही को आत्मा मानता है। उसका सिद्धान्त यह है कि सर्व पदार्थ जन्मसे पहिले नहीं थे और नाशके पश्चात् न रहेंगे। मध्यमें भी सर्व पदार्थोंका परमार्थसे अभाव है उससे शून्यही आत्मा है। सो भी ठीक नहीं। क्योंकि शून्य आत्मवादीसे पूछना चाहिये कि शून्यका जानने वाला भी कोई है अथवा नहीं यदि कहो कि शून्यका जानने वाला ही कोई नहीं तो शून्य ही सिद्ध न होगा। यदि कहो कि शून्यका जाननेवाला है तो शून्यका साक्षी और शून्यसे भिन्न आत्मा सिद्ध होगा। यदि कहो कि शून्य अपनेको आप ही जानता है तो आत्माश्रय दोष होगा। यदि कहो कि शून्य का ज्ञाता दूसरा शून्य है तो अनवस्था दोष होगा इत्यादि वेदान्तकी युक्तियोंसे शून्य भी आत्मा सिद्ध नहीं होता। उससे बौद्ध माध्यमिक आर्योक्त शून्य आत्मवादभी असङ्गत है॥४॥

दूसरा बुद्धका शिष्य योगाचार है वह कहता है कि शरीरके बाह्य कोई पदार्थ नहीं किन्तु ज्ञानके भीतर सर्व पदार्थ भासते हैं जैसे (अयं घट:) यह घट ज्ञान आत्मा में है जहां ज्ञान है वहां ही घट है इस मतमें मन ही आत्मा है सो भी ठीक नहीं। क्योंकि जब कहीं ज्ञानचर्चाके लिये सभा लगी

हो वहां कोई श्रोता ऐसेभी कह देता है कि मेरा मन कहीं चला गया था, मैंने आपके वचनको न तो यथावत् सुना और न समझा है । अब विचारना चाहिये कि श्रोताके कहनेसे भी मन आत्मा सिद्ध नहीं होता, किन्तु मनके जाने आनेका जो ज्ञाता है वह मनसे भिन्न ही आत्मा है उस से मन आत्मा नहीं । यदि मनात्मवादीके मनसे ग्राह्य पदार्थ कोई नहीं किन्तु मन आत्मा ही में सर्व पदार्थ हैं, तो घट पदका अर्थ कलश भी आत्मामें होगा, उससे मनआत्मावादीका पेट फूल कर ढोल समान होजाना चाहिये । जल भी मनात्मवादीके आत्मामें है उससे मनात्मवादी डूब मरेगा । अग्नि भी मनात्मवादीके आत्मामें है उससे मनात्मवादी जल कर भस्म हो जाना चाहिये । रेलगाड़ी पहाड़ वगैरह आत्मामें होनेसे बौद्ध आर्य्य मनात्मवादी का सर्वथा सत्यानाश हो जाना चाहिये, उससे मनात्मवाद भी असंगत है ॥५॥

तीसरा बुद्ध का शिष्य बौद्ध आर्य सौत्रान्तिक है, वह विज्ञान नाम बुद्धि ही को आत्मा कहता है। इसीका नाम विज्ञानात्मवाद है, वह विज्ञानकी दो धारा कहता है, एकका नाम प्रवृत्ति विज्ञान धारा, और दूसरीका नाम आलय विज्ञान धारा कहता है, बुद्धिको वह क्षणिक मानता है (अयंघटः) (अयंपटः) इस प्रकारकी विज्ञान धाराका नाम प्रवृत्ति विज्ञान धारा और अहं २ इस प्रकारकी विज्ञान धाराको आलय विज्ञान धारा कहता है। वह यों भी कहता है कि प्रवृत्ति विज्ञान धारा मन और आलय विज्ञान धारा बुद्धि है । इस प्रकारकी दो धारा वाला विज्ञान ही आत्मा है । सो भी ठीक नहीं ॥ क्योंकि विज्ञानात्मवादी यदि दोनों धाराको साकार सावयव कहे तो वह दोनों धारा साकार सावयव घट पटादि पदार्थोंके समान उत्पत्ति नाश वाली होंगीं । यदि दोनों धाराको निराकार निरवयव कहे तो वह धारा क्षणिक न होगी, यदि क्षणिकवादी विज्ञान बुद्धिको अहम् अनुभव गोचर कहें तो मेरी बुद्धि ऐसा अनुभव किसीका न होना चाहिये, किन्तु मेरी बुद्धि इस अनुभवसे विज्ञान रूप बुद्धि भी आत्मा नहीं, उससे क्षणिक विज्ञानात्मवाद भी सर्वथा असंगत है ॥ ६ ॥

चौथा बुद्धका शिष्य वैभाषिक है, वह भी शून्यात्मवादीके साथ ही विशेष सम्बन्ध रखता है। क्वचित् भेद भी है, अभिप्राय यह कि चार्वाक मत वाले बुद्ध के शिष्य आर्य और आर्या बौद्ध हैं, युक्तिसे इन मतोंके आत्माकी खाक उड़ादी गई है, स्वाराज्य सिद्धि आदि वेदान्तके ग्रन्थोंमें इन मिथ्या मतोंका

विशेष खण्डन लिखा है, ब्राह्मसमाजी लोग कहते हैं कि एक जड़ और दूसरा चेतन यह दो पदार्थ मिल कर आत्मा उत्पन्न होता है, फिर नष्ट नहीं होता। प्रार्थनासे पाप कर्मोंको नष्ट कर देता है। यह मत भी ठीक नहीं क्योंकि जैसे प्रकाश और अन्धकारका मिलाप नहीं होता वैसे ही जड़ और चेतन दो पदार्थोंका मिलाप भी कभी नहीं हो सकता। उत्पत्ति वाले पदार्थ को नित्य कहना भी पदार्थ विद्याके विरुद्ध है यदि प्रार्थना ही से पाप नष्ट हो जावें तो ब्राह्मसमाजियोंको दुःख न होना चाहिये। क्योंकि पापका फल दुःख है। कई एक ब्राह्मसमाजी ब्रिटिशनीतिके विरुद्ध काम करके सज़ावार हुए भी हमने सुने हैं। प्रार्थनासे कुछ भी उनका बचाव नहीं हुआ उससे ब्राह्मसमाज आत्मवाद भी असंगत है॥ ७॥

ईसाई कहते हैं कि आत्माके सात सींग और सात नेत्र हैं। यह मत भी ठीक नहीं क्योंकि सात सींग और सात नेत्रों वाला आत्मा निराकार निरवयव नहीं हो सकता। हां ऐसा आत्मा साकार सावयव तो हो सकता है। परन्तु ईसाई यह नहीं बतला सकते कि सात सींग और सात नेत्रों वाला कोई जानवर हो सकता है, वा आत्मा। अभिप्राय यह कि सात सींग और सात नेत्रात्मवाद भी असंगत है॥८॥

राधा स्वामी शब्दात्मवादी हैं, शब्द ही को वह सुरत कहते हैं। और यों भी कहते हैं कि स्थूल सूक्ष्म कारण यह तीनों शरीर सुरतके ऊपर चढ़े हुए हैं। यह मत भी ठीक नहीं क्योंकि शब्द आकाशका गुण है जैसे आकाश जड़ है वैसे ही राधा स्वामी मत वाला शब्दात्मा भी जड़ होगा। न जाने राधास्वामी मत वाला आत्मा कोई घोड़ा वा हाथी वा रेलका इञ्जिन है, कि जिसके ऊपर तीनों ही शरीर चढ़े हुए हैं। जैसा देखा भूतदास, वैसा देखा प्रेतदास। अभिप्राय यह कि जैसे चार्वाकादिकोंका आत्मवाद असंगत है वैसे ही राधास्वामीका आत्मवाद भी असम्भव अनर्थप्रतिपादक है॥ ९॥

विभुपरिमाणात्मवादी कहते हैं कि आत्मा विभु और अनेक हैं। यह मत भी असंगत है। क्योंकि जब आत्माको विभु परिमाण मानके अनेक आत्मा मानें तो एक आत्माके सब शरीर होने चाहिये। और एक ही आत्माको सर्व आत्माओंके कर्मोंका अनायाससे ज्ञान होना चाहिये। इससे विभुपरिमाण आत्मवाद भी असंगत है॥ १०॥

मध्यम परिणामवादी कहते हैं कि आत्मा मध्यम परिमाण ही है यह मत भी ठीक नहीं । क्योंकि मध्यम परिमाणवादीका यह सिद्धान्त है कि जितना परिणाम शरीरका है उतना ही आत्माका परिमाण है। आत्मा बढ़ता घटता नहीं अब मध्यम परिमाणवादीसे पूछना चाहिये कि आत्मा साकार सावयवहै वा निराकार निरवयव। यदि साकार सावयव कहो तो आत्मा उत्पत्ति नाशवाला होगा, तथा घट पटादिके समान आत्मा जड़ होगा यदि कहो कि मध्यम परिमाण आत्मा निराकार निरवयव है तो कहिये वह आत्मा बढ़ता घटता है अथवा नहीं यदि नहीं कहो तो जब चीटीका आत्मा कर्मानुसार हाथीकी योनिमें जायगा तो जितना चीटीका शरीर है हाथीके शरीरमें वह आत्मा उतने टुकड़े ही से रहेगा शेष हाथीका शरीर मुर्दा होगा क्यों कि मध्यम परिमाण आत्मा बढ़ता घटता तो है ही नहीं किंवा मध्यम परिमाण हाथीका आत्मा यदि कर्मानुसार चीटीके शरीरमें जायगा तो थोड़ा सा टुकड़ा आत्माका चीटीके शरीरमें घुसेगा शेष वाहर ही लटकता रहेगा। इत्यादि और भी अनेक युक्तियोंसे मध्यम परिमाण आत्मवादका वेदान्तके ग्रन्थोंमें खण्डन लिखा है उससे मध्यम परिमाण आत्मवाद भी असङ्गत है।

अणुपरिमाण आत्मवादी कहता है कि (अणोरणीयान्) इस वेद के मन्त्रमें आत्मा अणु से भी अणु कहा है। वह यों भी कहता है कि जैसे शिरके एक केशके हजार टुकड़े किये जावें उनमें से जितना एक टुकड़ा होता है उतना ही आत्मा है। वह आत्मा शरीरके एकही टुकड़ेमें रहता है, यह अणु आत्मवादीका सिद्धान्त है सो भी ठीक नहीं क्योंकि जब अणुआत्मा को निराकार निरवयव मानें तो वह टुकड़ा नहीं हो सकता यदि साकार सावयव मानें तो अणु आत्मा उत्पत्तिवाला और सत्यानाशी होगा। शरीर के एक टुकड़े में रहने से यह निश्चय नहीं होगा कि अणु आत्मा शरीर के कौन से टुकड़े में है यदि पूर्वोक्त श्रुतिके (महतो महीयान्) इस वचन को देखा जाय तो आत्मा बड़े से बड़ा सिद्ध होता है उससे अणुआत्मवादी उभयपाशारज्जुन्याय से अलग नहीं हो सकेगा वेदान्त सिद्धान्त में कोई भी दोष नहीं आसकता क्योंकि वेदान्तके ग्रन्थोंमें उक्त श्रुतिका अर्थ यों किया है कि आत्मा सूक्ष्म साकार पदार्थों से भी निराकार सूक्ष्म से और व्यापक साकार पदार्थों से भी व्यापक निराकार है। यदि अणु परिमाण आत्मवादी शरीरके एकही टुकड़ेमें अणु आत्माको मानें तो शेष शरीर मुर्दा रहेगा। सर्व

शरीरके सुख दुःख का ज्ञान आत्मा को न होगा। यदि अणुआत्मवादी कहे कि जैसे सूर्य चन्द्र दीपक एक देशमें देखे जाते हैं परन्तु उनका प्रकाश गुण दूर २ तक रहता है वैसेही अणु आत्मा शरीरके टुकड़ेमें है। परन्तु इसका ज्ञान गुण सारे शरीरमें व्यापक है उससे सर्व शरीरके सुख दुःखका ज्ञानभी अणु आत्माको हो सकता है अणुआत्मवादीका यह कथनभी ठीक नहीं क्योंकि चन्द्र सूर्य दीपक आदि पदार्थ साकार सावयव हैं। लोह चुम्बक न्याय से चन्द्र सूर्यादि और ब्रह्मांडस्थ प्रकाशरूप परमाणुओंका सम्बन्ध होकर दूर तक प्रकाश गुण का भान होता है। चन्द्र सूर्यस्थ प्रकाश गुण कहीं भी निकलके नहीं जाता परन्तु अणु आत्मा के ज्ञान गुणको निकल जाता है। ऐसा कथन करना पदार्थ विद्याके विरुद्ध है। अणुआत्मवादी कहता है कि जैसे फुलवारीमें फूल लगे हैं परन्तु फूलोंका सुगन्ध गुण वायु से मिलकर दूर तक चला जाता है। वैसेही अणुआत्मा का ज्ञान गुण भी सारे शरीर में जा सकता है। अणुआत्मवादी का यह उदाहरण भी असङ्गत है। क्योंकि पदार्थ विद्यासे सिद्ध हो चुका है कि गुण और गुणीका नित्य समवाय वा अभेद सम्बन्ध है। जब तक गुणीमें क्रिया नहीं होती तब तक गुण का गमनागमन नहीं हो सकता। देखा जाता है कि जब जलकी ओर से वायु आता है तो उस में शीत गुण का ज्ञान होता है। जब अग्नि की ओर से वायु आता है तो वायु में उष्ण गुण का ज्ञान होता है। जो पदार्थविद्या के ज्ञाता नहीं वे कहते हैं कि वायु शीत अथवा उष्ण चल रहा है सो उनकी भूल है क्योंकि पदार्थविद्यासे जाना जाता है कि वायुरूप परमाणुओंकी आकर्षण शक्तिसे शीत गुण युक्त जल परमाणु और उष्ण गुणयुक्त अग्निपरमाणु दूर २ चले जाते हैं वह परमाणु जब त्वगिन्द्रियसे संयुक्त होते हैं तो मनुष्यको भ्रम हो जाता है कि इस समय वायु शीत अथवा उष्ण चलता है परन्तु ह कीकतमें शीत गुण जलके और उष्ण गुण अग्निके परमाणुओंका है। वैसेही दुर्गन्ध गुण पृथिवीरूप परमाणुओंका है परन्तु विद्याहीन कहते हैं कि वायु दुर्गन्ध वाला आता है सो उन की भूल है क्योंकि वायुरूप परमाणुओं से संयुक्त होकर पृथिवी रूप दुर्गन्ध गुणके परमाणु जब आते हैं तो घ्राणे न्द्रिय से उन परमाणुओं का संयोग होता है तो मनुष्यको भ्रम होता है। कि वायु दुर्गन्ध वाला है सो उसकी अविद्या है वैसे ही जब फुलवारी में से होकर वायु आता है तो मनुष्य कहता है कि वायु सुगन्धवाला चलता है

सो यह भी भ्रम है। क्योंकि सुगन्ध गुण भी पृथिवीरूप परमाणुओं का है। वायुरूप परमाणुओं से संयुक्त होकर फूलों में से पृथिवी रूप परमाणु निकल आते हैं, मनुष्यके घ्राणेन्द्रियसे संयुक्त होते हैं तो मनुष्यको सुगन्ध का ज्ञान होता है, देखिये प्रातःकालको फूलोंका हार गलेमें डाला जाता है तो सायंकालको उसका वजन कम हो जाता, तथाहि कपूरका भी वजन कम हो जाता है, क्योंकि फूल और कपूरमें से परमाणु निकल जाते हैं। यद्यपि कस्तूरीका वजन कम नहीं होता, तथा वृक्षसे लगे फूलोंका वजन कम नहीं होता, तथापि व्यतिरेकी अनुमानसे निश्चय होता है कि कस्तूरीमें से जितने परमाणु निकल जाते हैं उतने और भरती होते जाते हैं वृक्षमें लगे फूलोंमें से भी जितने परमाणु निकल जाते हैं उतने ही अंकुरके द्वारा दूसरे भरती हो जाते हैं। उससे कस्तूरी और वृक्षमें लगे फूलका वजन कम नहीं होता परन्तु जब अणु आत्माको भी वैसेही मानें तो अणु आत्माके भी परमाणु मानने होंगे। यदि ऐसेही मानें तो परमाणु निकल जानेसे अणु आत्माका भी किसी रोजको अत्यन्ताभाव हो जायगा उससे अणुआत्मवाद भी असंगत है, दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थोंमें कहा है कि दुःखादि गुणों वाला आत्मा है सो भी ठीक नहीं, क्योंकि दुःखोंसे छूट जानेही का नाम मुक्ति है, यदि दुःखादिको आत्माके गुण कहें तो किसी भी आर्य आत्माकी मुक्ति न होगी। उससे आर्य आत्मवादी भी असङ्गत है ऐसे ही कोई इच्छा कोई स्वभाव कोई रुधिरादिको आत्मा कहते हैं उनका खण्डन भी वेदान्त के ग्रन्थोंमें लिखा है वहां देख लीजिये। अब वेदान्त रीतिसे आत्माका स्वरूप लिखा जाता है।

(तथाहि) (योऽसावसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्) यह यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायका मंत्र है (अहं ब्रह्मास्मि) यह शतपथ ब्राह्मणका मंत्र है (ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति) यह उपनिषद्का मंत्र है इत्यादि औरभी अनेक वेदादि प्रमाणोंसे सिद्ध हुआ है कि जीव और ब्रह्मके स्वरूपमें जो चेतन है वह द्वैत रहित है जैसे एकही महाकाश घटकी स्थितिसे घटाकाश मठकी स्थितिसे मठाकाश कहा जाता है। वैसेही एक शुद्ध ब्रह्म चेतन अन्तःकरण की स्थितिसे जीव और मायाकी स्थितिसे ईश्वर कहा जाता है। जैसे घट मठके बिना केवल महाकाशमें घटाकाश मठाकाश संज्ञाका अत्यन्ताभाव है।

वैसेही अन्तःकरण, मायाके विना शुद्ध ब्रह्मचेतनमें जीवेश्वर संज्ञाका अत्यन्ताभाव है। उस चेतनहीका नाम आत्मा है यद्यपि दयानन्दने जीवेश्वरका स्वरूपसे भेद माना है। तथापि सो दयानन्दका अज्ञान है, क्योंकि जब जीव चेतन और ईश्वर चेतनको स्वरूपसे भिन्न कहें तो युक्तिसे जीवेश्वर भेद खण्डन हो जाता है। जैसे कि ईश्वर चेतनको सर्वव्यापक मानें तो जीव चेतनके भीतर भी व्यापक मानना होगा यदि ऐसे ही मानें तो जीव चेतन साकार और पोलके सहित सिद्ध होगा, यदि ऐसे ही स्वीकार करें तो जीव चेतन सत्यानाशी सिद्ध होगा। किन्तु द्वैत रहित एकही चेतन सिद्ध होगा॥ यदि कहो कि जीव चेतन निराकार निरवयव है तो जीव चेतन में ईश्वर चेतन व्यापक न होगा। अभिप्राय यह है कि उक्त वेद मन्त्रोंका जो दयानन्दने जीवेश्वरका भेद अर्थ किया है युक्ति रूपी मार्त्तण्डसे उस अनर्थ रूपी अन्धकारका सत्यानाश हो जाता है॥

अभिप्राय यह कि अन्तःकरण और माया साकार सावयव पदार्थ हैं उससे ईश्वरके राम कृष्णादि अवतार भी यथावत् सिद्ध होते हैं। और कर्म्मानुसार जीवकी योनिका भी रद बदल हो सक्ता है। जैसे स्वप्नके राजाकी नौकरी करनेसे द्रव्यका लाभरूपी फल भी जीवको मिल जाता है। नींदके अदर्शनसे राजा और नौकर दोनोंका अत्यन्ताभाव है। वैसेही माया वा अविद्या नींदसे ईश्वरकी भक्तिका फलभी जीवको मिल जाता है माया वा अदर्शनसे जीवेश्वरका सर्वथा बाध निश्चय होता है। यदि औरभी सूक्ष्म विचार किया जावे तो सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि चेतन आत्माका जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त तुरीय चारों अवस्थाओंमें अन्वय है। और अवस्थाओंका परस्पर व्यतिरेक है उससे चेतन आत्मा सजातीय विजातीय भेदसे रहित स्वप्रकाश से भान होता है। जाग्रतादि अवस्थायें अचेतन अनात्मा पर प्रकाश्य हैं। उनका चेतनमें अत्यन्ताभाव है। इस व्याख्यानमें जीवेश्वर और शुद्ध ब्रह्मचेतनके स्वरूपको वेदान्तकी युक्तियोंसे वर्णन किया है और वाच्यमें कल्पित भेद तथा लक्ष्य में वस्तुसे चेतनका अभेद सिद्ध किया है। अब व्याख्यान समाप्त हुआ॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

वेदान्तसिद्धान्तमण्डन

व्याख्यान नं० ५।

सर्वसनातन हिन्दु धर्मावलम्बी वीरोंको विदित किया जाता है कि इस व्याख्यान में वेदान्त सिद्धान्तका मण्डन होगा. परन्तु प्रथम दयानन्दोक्त वेदान्त सिद्धान्त विषयक कथित् शङ्काओंका खण्डन किया जाता है (तथाहि) (७ सत्या० समुल्लास ११) दयानन्द ने जीव ब्रह्म भेद मानने वाले वेदान्तियों को नवीन कहा है अपनेको सिद्धान्ती वर्णन किया है।

अब दयानन्दके भक्तों से पूछना चाहिये कि दयानन्द ने जो सिद्धान्ती शब्द लिखा है वह सिद्धान्त शब्द प्राचीन अर्थका वाचक है अथवा नवीन अर्थ का ?। यदि कहो कि सिद्धान्ती शब्द प्राचीन अर्थ का वाचक है तो शङ्कराचार्यादिक वेदान्ती दयानन्द से प्रथम हुए हैं वा पश्चात्। यदि कहो कि शङ्कराचार्यादिकों के पश्चात् दयानन्द हुए हैं तो शङ्कराचार्यादिक वेदान्तियोंको नवीन कथन करना मिथ्या होगा किन्तु शङ्कराचार्यादिक वेदान्ती ही प्राचीन सिद्धान्ती थे। हां सिद्धान्ती शब्दका नवीन अर्थ कहो तो दयानन्द नवीन सिद्धान्ती हो सकता है, क्योंकि वह शङ्कराचार्यादिक वेदान्तियों के पश्चात् हुआ है।

(किञ्च) (७ सत्या० समुल्लास ७) (अहं ब्रह्मास्मि) इसका दयानन्द बाबाने अर्थ किया है कि—"जीव और ब्रह्म एक नहीं, जैसे कोई किसीसे कहे कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वर में प्रेमबद्ध हो कर निमग्न होता है तो वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं.,। यहां दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि दयानन्द ने (अहं ब्रह्मास्मि) इसका अर्थ व्याकरणके अनुसार किया है वा व्याकरणके विरुद्ध, यदि व्याकरणके विरुद्ध कहो तो दयानन्द अविद्वान् होगा क्योंकि संस्कृत वाक्यका व्याकरणके विरुद्ध अर्थ करना विद्याहीनोंका तमाशा है। यदि कहो कि दयानन्दने उक्त वाक्य का व्याकरणके अनुसार अर्थ किया है तो कहिये उक्त वाक्यके (अस्मि) इस पद में प्रथम वा मध्यम अथवा उत्तम पुरुषकी क्रिया है। यदि प्रथम वा मध्यम पुरुषकी क्रिया कहो तो जैसे दयानन्द व्याकरणके अज्ञाता थे वैसे ही आप होंगे। यदि कहो कि उक्त वाक्यमें उत्तम पुरुष की क्रिया है तो कहिये उक्त वाक्यमें उत्तम पुरुषकी क्रियाका एक वचन है अथवा बहुवचन है। यदि बहुवचन कहो तो जैसे दयानन्द एक अथवा बहु वचनका अज्ञाता था वैसे

ही आप होंगे "जैसा देखा सर्पनाथ वैसा देखा नागनाथ„ यदि कहो कि उक्त वाक्य में उत्तम पुरुष की क्रिया का एक वचन है तो कहिये वहां सप्तमी विभक्तिका अर्थ है वा प्रथमा विभक्तिका यदि प्रथमा विभक्तिका कहो तो मैं और ब्रह्म एक अवकाशस्थ हैं यह दयानन्दकृत (अहं ब्रह्मास्मि) इस वाक्य का अर्थ मिथ्या होगा। यदि कहो कि (अह ब्रह्मास्मि) इस वाक्यमें विभक्ति का व्यत्यय हुआ है प्रथमा विभक्तिके स्थानमें सप्तमी विभक्तिका आदेश हो गया है। सो भी ठीक नहीं क्योंकि जितने दयानन्द कृत ग्रन्थ हैं उनमें मन्त्र संहिता ही वेद कहा है। ब्राह्मणग्रन्थोंको वेद नहीं कहा (७ सत्या० समुल्लास ७) इस में भी (अहंब्रह्मास्मि) इस वाक्यको दयानन्द ने कहा है कि यह वेदका नहीं और अष्टाध्यायी तथा महाभाष्यमें वेद मन्त्रस्थ विभक्ति ही का व्यत्यय लिखा है। उसमें भी उक्त वाक्यका दयानन्दकृत अर्थ मिथ्या होगा। यदि कहो कि उक्त वाक्यमें प्रथमा विभक्तिका एक ही वचन है तो (अहं ब्रह्मास्मि) इस वाक्यका मैं ब्रह्म हूं यही अर्थ सिद्ध होगा। यदि कहो कि जीव अल्पज्ञतादि धर्म्म और ईश्वर सर्वज्ञतादि धर्म्म युक्त है। उससे वह एक नहीं हो सक्ते तो उत्तर यह कि आप विचार नेत्रोंसे निगरानी कीजिये और वेदान्तके प्रमेय ग्रन्थोंका पठन पाठन कीजिये कि जिन में साफ लिखा है कि सर्वज्ञतादि अल्पज्ञतादि धर्म्मोंसे जीव और ब्रह्म एक नहीं हो सक्ते किन्तु जीवेश्वरके स्वरूपमें सच्चिदानन्द शुद्ध ब्रह्म एक है॥

किञ्च–दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि दयानन्दने जो कहा कि जीव कहता है कि मैं और ब्रह्म एक अवकाशस्थ हैं यहां आप बतलाइये कि अवकाश नाम आकाशका है अथवा किसी दूसरे पदार्थका, यदि किसी दूसरे पदार्थका नाम अवकाश कहो तो सत्यार्थ प्रकाशके आठवें समुल्लासका लेख मिथ्या होगा क्योंकि वहां दयानन्दने (तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः०) इस मन्त्रके भाष्यमें आकाश ही का दूसरा नाम अवकाश रक्खा है। यदि आप आकाशको अवकाश कहें तो आप ही फैसला कर लीजिये कि दयानन्दमत वाले ईश्वरका आधार आकाश हुआ अथवा नहीं, यदि नहीं कहो तो (मैं और ब्रह्म एक अवकाशस्थ हैं) दयानन्दका यह लेख खपुष्प समान झूठा होगा क्योंकि जो पदार्थ जिसमें रहता है वह आधार और रहने वाला आधेय कहा जाता है और उनका परस्पर आधाराधेय भाव सम्बन्ध होता है यदि आप इसी अपसिद्धान्त को मानें तो सिद्ध यह होगा कि दयानन्दोक्त ईश्वरसे आकाश जिसका दूसरा नाम अवकाश है वह बड़ा है और

वह आकाश उस ईश्वर का आधार है तथा वही आकाश जीवका भी आधार है अभिप्राय यह है कि (अहं ब्रह्मास्मि) दयानन्दकृत इस वाक्यके भाष्य में जीव और ब्रह्म दोनों का आधार एक आकाश सिद्ध हो चुका।

फिर इसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास १)—

विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः) ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजोवै हिरण्यमित्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे) (यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भं उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः)

इत्यादि वाक्यों के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि ईश्वर ही में सर्व आकाशादि भूत प्रवेश कर रहे हैं उसी में सूर्यादि तेज वाले लोक उत्पन्न होके उसी के आधार रहते हैं ॥ दयानन्द के इन लेखों का सिद्धान्त यह कि आकाशादि पदार्थोंका आधार एक ब्रह्म ही है परन्तु दरोगहलफी होने के कारण बाबा जी दयानन्द के दोनों प्रकारके लेख झूंठे हैं।

(७ सत्या० समुल्लास ११) (तद्विज्ञानार्थं०) इस मंत्र के भाष्यमें दयानन्दने झूंठको अधर्म कहा है ॥ (७ सत्या० समुल्लास ६) (वृषोहि भगवान्धर्मस्तस्य०) इस के भाष्य में दयानन्दका लेख है कि जो धर्म को लोप करता है वही शूद्र नीच है ॥ (७ सत्या० समुल्लास ६) गुरुं वा बालवृद्धौ वा०नाततायिवधे दोषो०) इनके भाष्यमें दयानन्दने लिखा है कि गुरु वा ब्राह्मण मातापिता वा शास्त्र पढ़ा हुआ जो अधर्मी हो उसको बिना विचारे राजा मरवा डाले अधर्मीको मार देनेसे कोई भी दोष नहीं। (७ सत्या० समुल्लास ११) दयानन्द ने वेदान्तियों को कहा है कि जब तुम सत्य और झूठके आधार हुए तो साहूकार और चोरके सदृश तुम्हीं हुए। इससे तुम प्रामाणिकभी नहीं रहे। दयानन्दके इस लेखका सिद्धान्त यह कि जो पदार्थ सत्य और झूठका आधार होता है वह साहूकार चोरके समान होता है फिर इसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ७)

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत् ।
सदाधार पृथिवींद्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

इस मंत्र के भाष्य में दयानन्दने ईश्वरको सर्वाधार कहा है अब दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि झूठ चोरी डाका काम क्रोध लोभ मोह

अहंकार दगाबाजी जालसाजी धोखेबाजी छल कपट जुयेबाजी रंडीबाजी लौंडेबाजी मदिरा पीना मांस खाना परस्त्री गमन इत्यादि कुकर्मों का आधारभी दयानन्द मतवाला ईश्वर है अथवा नहीं ! यदि नहीं कहो तो ईश्वर को सर्वाधार कथन करनेका लेख झूठा होगा। यदि दयानन्द के भक्त कहें कि उक्त कुकर्मों का आधारभी ईश्वर है तो दयानन्द के प्रथम लेख के अनुसार सिद्ध हो जायगा कि दयानन्दोक्त ईश्वरही झूठा चोर डाकू कामी क्रोधी लोभी मोही अहंकारी दगाबाज धोखेबाज छली कपटी जुएबाज रंडीबाज लौंडेबाज मदिरा पीना मांसाहारी परस्त्री गामी है। यदि न मानें तो वेदान्तियोंपर जो दयानन्दने कटाक्ष किया कि जब तुम सत्य और झूठके आधार हुए तो साहूकार और चोरके सदृशभी तुम्हीं हुए यह दयानन्द का लेख झूठा होगा।

वेदान्त विषयमें दयानन्दकी सर्वशंकाओं का खण्डन हमने शङ्कराचार्यमत मण्डन व्याख्यानमें किया है जिसको जिज्ञासा हो वहां देख लेवे परन्तु पूर्वोक्त दयानन्द के दोनों लेखभी दरोगहलफी की कृपा से झूठे हैं।

अब हिन्दुमतकी रीतिसे वेदान्त सिद्धान्तकामण्डन लिखा जाता है (तथाहि)

चित्तोन्मेषेभवेद्विश्वं तदभावे विनश्यति।
यद्विश्वंकुतस्तत्र मनोयत्र विलीयते॥
विचा० अध्या० ७ श्लो० १२॥

इसका सिद्धान्त यह कि जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिमें जो स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि व्यष्टि नाना भांतिका प्रपंच जो देखा और सुना जाता है सो सर्व मन के संकल्पही में है॥ परन्तु जिस शुद्ध ब्रह्मचेतन में वस्तुतः मन ही का अत्यन्ताभाव है तो मनके संकल्प का जगत् कहां सत्य होगा किन्तु कभी नहीं सिद्धान्त यह है कि जाग्रत् और स्वप्नावस्था में मन स्थूल रूप से रहता है उससे नाम रूप और क्रियात्मक स्थूल सूक्ष्म प्रपंच का भी दर्शन होता है। सुषुप्ति अवस्था के समय स्थूल मनका अदर्शन होता है तो साथ ही स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंच का भी अदर्शन हो जाता है॥ इस प्रत्यक्ष लोकानुभव से यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि शुद्ध ब्रह्मचेतन में अनिर्वचनीय मायामय मन ही में नाना प्रकार का चित्र विचित्र प्रपंच है शुद्ध ब्रह्म चेतन में उसका प्रतिबिंब भान होता है वस्तुतः अनिर्वचनीय माया ही का शुद्ध ब्रह्मचेतन में अत्यन्ताभाव है। तिस से उस के प्रतिबिम्ब का भी शुद्ध ब्रह्म चेतन में अत्यन्ताभाव है।

न कारणंनमेकार्यं कालदेशौ च मे नहि ।
सुखं रूपेऽद्वयेपूर्णे नसाजात्यविजातिते ॥
विचा० अ० ७ श्लो० १३ ॥

इसमें विद्वान् अपना अनुभव कहते हैं कि नित्य शुद्ध नित्य मुक्त क्रिया रहित मैं आप हूं मुझमें कारण जो कि अनिर्वचनीय माया और मायाका कार्य्य नाम रूप क्रियात्मक प्रपंच इन सबका वस्तुतः अत्यन्ताभाव है, क्योंकि जैसे घटका उपादान कारण मृत्तिका पटका उपादान कारण तन्तु, साकार सावयव हैं, वैसे ही प्रपंचका कारण साकार सावयव है, तथा मुझमें सजातीय विजातीय स्वगत भेदका भी अत्यन्ताभाव है क्योंकि घटका घट में सजातीय भेद है क्योंकि घट अनेक हैं परंतु मैं एक शुद्ध ब्रह्मात्मा हूं उस से मुझमें सजातीय भेद नहीं, घटमें पटका विजातीय भेद है, क्योंकि घट से विजातीय पट है, मुझ ब्रह्मात्मा सच्चिदानन्द स्वरूपसे भिन्न कारण कार्य्य असत् जड़ दुःख रूप प्रपंचका अत्यन्ताभाव हैं उसीसे मुझमें विजातीय भेद नहीं ॥ शरीरमें हाथ पैर आदि अंगोंका स्वगत भेद है क्योंकि अङ्गोंके समुदाय ही का नाम शरीर है मैं निर्विकार निराकार निरवयव हूं उसीसे मुझ ब्रह्मात्मामें स्वगत भेदका भी अत्यन्ताभाव है ॥

नैकत्वंवक्तुमुचितं भातिमेद्वैतताकुतः ।
पूर्णरूपंपरित्यज्य नवृद्धिर्नचन्यूनता ॥
विचार० अ० ७ श्लो० १४ ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि एकत्व जाति विशिष्ट एक यह शब्द ही मुझ ब्रह्मात्मामें वस्तुतः नहीं तो द्वित्वादि जातिविशिष्ट द्वित्वादि शब्द मुझमें कैसे हो सके हैं किन्तु कभी नहीं ॥

नद्वितीयो नतृतीयश्चतुर्थोनाप्युच्यते ।
नपञ्चमोनषष्ठः सप्तमोनाप्युच्यते ॥
नाष्टमोननवमोदशमोनाप्युच्यते ।

इस अथर्वण वेदके मन्त्रका भी यही अभिप्राय है कि ज्ञानीका यही निश्चय है कि द्वित्वादि जातिविशिष्ट संख्याके दृश्य पदार्थोंका मुझ ब्रह्मात्मा में सर्वदा सर्वथा अत्यन्ताभाव है ॥

यद्वाचानभ्युदितं० यन्मनसानमनुते० यतोवाचोनिवर्तन्ते० ।

इत्यादि वेद मन्त्रोंका भी पूर्वोक्त सिद्धान्त है कि मुझ ब्रह्मात्मामें मन

वाणी आदिका भी बाध निश्चय है उससे मैं ब्रह्मात्मा न्यूनता अधिकता से रहित एकरस हूं ॥

विश्वश्चतैजसः प्राज्ञस्तुरीयो नात्रविद्यते।
विज्ञानघनरूपस्य न चाहंत्वं न च द्विता ॥
विचा० अ० ७ श्लो० १५ ॥

इसका अभिप्राय यह है कि मैं निर्विकार षोल रहित ज्ञानस्वरूप हूं मुक्त ब्रह्मात्मामें जाग्रत्के अभिमानी विश्व स्वप्नके अभिमानी तैजस सुषुप्तिके अभिमानी प्राज्ञ और तुरीयके अभिमानी साक्षी इन सबका अत्यन्ताभाव है ॥

मायाभासेनजीवेशौ करोतीतिश्रुतत्वतः।
मायिकावेवजीवेशौ स्वच्छौतौकाचकुंभवत् ॥

इस पञ्चदशीके प्रमाणसे भी मुक्त ब्रह्मात्मामें माया अन्तःकरणकी स्थिति के आधीन जीव ईश्वरका भी वस्तुतः अत्यन्ताभाव है ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनां सन्तियेह्यभिमानिनः।
यः सर्वान्भासयत्यात्मा शिवरूपः सउच्यते ॥
विचा० अ० ७ श्लो० १६ ॥

इसका अभिप्राय यह है कि जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिके अभिमानी जो विश्व तैजस और प्राज्ञ हैं उन सबका जो लोहचुम्बक न्यायसे चेष्टा कराने और प्रकाश करनेवाला गुणातीत शुद्ध सच्चिदानन्द शिवस्वरूप ब्रह्म है वही मैं हूं ॥

साधकःसाधनंसिद्धिर्नसाध्याभावतोमम।
प्रमाणंप्रमितिर्माता प्रमेयाभावतस्तथा ॥
विचा० अ० ७ श्लो० १७ ॥

इसका तात्पर्य यह है कि मोक्षके संपादनका कर्त्ता जिज्ञासु हो सो साधक है। विवेक वैराग्य षट्सम्पत्ति मुमुक्षुता श्रवण मनन निदिध्यासन तत्त्व पदार्थका शोधन इत्यादि मुक्तके साधन हैं। घट पटादि पदार्थोंके यथार्थज्ञानके कारण प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं। अन्तःकरण विशिष्ट अथवा साभास अन्तःकरण विशिष्टचेतन प्रमाता है। घटपटादि पदार्थ प्रमेय हैं। निर्दोष नेत्रादिके सम्बन्धसे घटपटादिका ज्ञान प्रमिति है। अभिप्राय यह है कि बन्ध मोक्ष साध्य साक्षी प्रमाता प्रमाण प्रमेय ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय इत्यादि त्रिपुटियोंका भी मुक्त शुद्ध ब्रह्म चेतनात्मामें अत्यन्ताभाव है ॥

शास्त्रभैक्षुकदानानां त्रिपुटीनैवनोगुणाः ।
देशकालौनवस्तूनि वादिशादौनचक्षितिः ॥
विचा० अ० ७ श्लो० १८ ॥

इसका अभिप्राय यह है कि मुझ शुद्ध ब्रह्मात्मामें शास्त्र अशास्त्र सिद्धान्त यह कि शास्त्र अर्थात् षड्दर्शन अशास्त्र अर्थात् चार वेद चार उपवेद षट् वेदोंके अङ्ग और उन सबके भाष्य, चारों वेदोंके सभाष्य चार ब्राह्मण अष्टादश पुराण, दश उपनिषदें इत्यादि सबका मुझ आत्मामें अत्यन्ताभाव है ॥ मुझ ब्रह्मात्मामें न कोई भिखारी और न कोई दानका प्रदाता है यह सर्व अनिर्वचनीय मायाके चित्र हैं । नाभि कण्ठ हृदय ये तीन देश, भूत भविष्यत् वर्त्तमान यह तीन काल, रज तम सत यह तीन गुण, वादी पूर्व पक्ष प्रतिवादी उत्तर पक्ष इत्यादि सबका मुझ ब्रह्मात्मामें अत्यन्ताभाव है । हानि लाभका भी मुझ आत्मामें अत्यन्ताभाव है ।

विधिर्निषेधोनस्थाप्या स्थाप्यौ नप्रभुदासकौ ।
केवलःशुद्धरूपोऽस्म पूर्णानन्दःस्वयंप्रभुः ॥
विचा० अ० ७ श्लो० १९ ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि विधि नाम यह कर्म कर्त्तव्य है यह निषेध नाम नहीं कर्त्तव्य यह मत स्थापित करना और इस मतको खण्डन करना यह स्वामी और यह दास है इत्यादि सर्व द्वंद्वोंका मुझ ब्रह्मात्मामें सर्वथा अत्यन्ताभाव है । सर्व नामरूप दृश्य और द्रष्टा नामसे स्वप्रकाश माया मलसे रहित शुद्ध ब्रह्मात्मा मैं हूं

ध्याता ध्यानं ध्येयं सत्येशुद्धे चिदात्मकेरूपे ।
दातादानविहीनेनस्यादेवं परावरेनित्ये ॥
विचा० अ० ७ श्लो० २० ॥

इसका सिद्धान्त यह कि ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटि साकारमें होती है मैं निराकार ब्रह्महूं उससे ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटिका भी मुझमें अत्यन्ताभाव है । ग्रहण त्याग भी साकार सावयव पदार्थमें होते हैं । मैं निराकार निरवयव ब्रह्मचेतन स्वरूप हूं उससे मुझमें ग्रहण त्याग भी नहीं हैं ॥

अच्युतज्ञोनमेनस्तईशजीवौ शुभाशुभे ।
सत्यासत्येनमेसंतिसमलामलपुंस्त्रियः ॥
विचा० अ० ७ श्लो० ३ ॥

इसका सिद्धान्त यह कि वस्तुतः शुद्ध ब्रह्मचेतनमें ज्ञान और अज्ञान का भी अत्यन्ताभाव है। उससे मैं ज्ञानी और अज्ञानी भी नहीं हूं। प्रकरण में अन्तःकरणकी वृत्ति रूप ज्ञानका निषेध है। चेतन स्वरूप ज्ञानका निषेध नहीं॥ अन्तःकरण और मायाकी दृष्टिसे मुझमें जीवेश्वर थे सो अन्तःकरण तथा मायाका मुझमें अत्यन्ताभाव है उससे मुझमें जीवेश्वर भाव का भी अत्यन्ताभाव है। जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति समाधिका भी अत्यन्ताभाव है। उससे जगत्के सत्य असत्यका मान भी मुझमें नहीं। मलीन और और शुद्धवासना स्त्री और पुरुष इत्यादि काभी मुझमें अत्यन्ताभाव है।

वर्णाश्रमौदेवनरौगुरुशिष्यौ विद्येतरे।
नमेपूर्णस्यमेयत्वामेयत्वाधिक्यरिक्तता॥
विचा० अ० ६ श्लोक० ४॥

इसका अभिप्राय यह कि ब्राह्मणत्व क्षत्रित्व वैश्यत्व शूद्रत्व जाति विशिष्ट ब्राह्मणादि व्यक्तियोंका भी मुझमें अत्यन्तभाव है क्योंकि ब्राह्मणादि चतुर्वर्ण स्थूल शरीर हैं ब्रह्मचारित्व गृहस्थत्ववानप्रस्थत्व संन्यासित्व इन चार धर्मों युक्त चार आश्रम भी स्थूल शरीर में है। सो स्थूल शरीरका मुझमें अत्यन्ताभाव है। उससे चतुराश्रमीको भी मुझमें अत्यन्ताभाव है। गुरु शिष्य भाव भी स्थूल शरीर में हैं। वस्तुतः स्थूल शरीरका अत्यन्ताभाव है॥ उससे मुझ शुद्ध ब्रह्मात्मामें गुरु शिष्यका भी अत्यन्ताभाव है। देव और नर इत्यादि भेद भी स्थूल शरीरमें हैं वस्तुतः स्थूल शरीर न होनेसे देव और नरादि भेदका भी मुझमें अत्यन्ताभाव है। व्याप्य व्यापक भाव न्यूनाधिक इत्यादि भी (मायया परिकल्पिताः) अर्थात् मुझमें मायासे कल्पित हैं वस्तुतः माया और तत्कार्य्य व्याप्य व्यापक भावादिका भी मुझमें अत्यन्ताभाव है॥

मनोबुद्धीन्द्रियप्राणानाहं भूतानिपंचनो।
ज्ञात्रादित्रिपुटीनाहं न सर्वसर्वतः स्थिताः)
विचा० अ० ७ श्लो० ५॥

इसका तात्पर्य यह है कि अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय ये पांच कोश और पांच स्थूल वा सूक्ष्मभूत ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी इत्यादि अनात्म अनिर्वचनीय पदार्थ हैं। मुख्य समानाधिकरणसे मैं इनके भीतर हूं परन्तु बाध समानाधिकरणसे मैं इनमें नहीं हूं क्योंकि बाध समानाधिकरणसे इन सबोंका मुझमें अत्यन्ताभाव है॥

सर्वं तन्यचनोऽहंमिथ्येदंत्विन्द्रजालवन्निखिलम् ।
त्वमहंयदिदंतदसावित्याद्याङ्गीर्नसंभवत्यस्मिन् ॥

विचा० अ० ७ श्लो० ६ ॥

इसका अभिप्राय यह कि नाम रूप और क्रियात्मक प्रपञ्च जो कि अहं त्वं इदं वृत्ति गोचर है वह सर्व बाजीगरके तमाशे के समान कल्पित है। जैसे कि बाजीगर एक वस्त्रमें पर्वत पहाड़ नदी सागर चन्द्र सूर्य्य रेल अग्निबोट नर नारी ट्रांसवाल चीन अफ्रीका आदिके संग्रामको दर्शा देता है। परन्तु वस्तुतः उन सबका बाजीगरमें अत्यन्ताभाव है वैसे ही लोह चुम्बक न्याय से मायाके चित्र विचित्र प्रपंचका मुझ शुद्ध ब्रह्म चेतनमें भान होता है। वस्तुतः सर्वका मुझमें अत्यन्ताभाव है। अहं त्वं इदं इत्यादि वृत्तियोंके कथनमात्र का भी वस्तुतः मुझमें अत्यन्ताभाव है ॥

(विचा० ७ श्लो० ७ ॥ मुक्तिबन्धौ देहिदेही न भोगी न यतेन्द्रियः। तपोऽतपश्चमेनास्ति द्वित्वैकत्वे तथा न मे ॥ इसका सिद्धान्त यह कि शरीर अथवा शरीरभिमानी जीव मैं नहीं हूं मैं वस्तुतः नित्य मुक्त नित्य शुद्ध हूं, उस से मुझमें मुक्ति और बन्ध का अत्यन्ताभाव है। विषयों से विरक्त अथवा विषयों में लंपट तप का करना अथवा न करना एक अथवा दो इत्यादि संख्या इन सबका मुझमें अत्यन्ताभाव है। क्योंकि यह सर्व उपाधि के धर्म हैं। तीन शरीरोपाधि का भी मुझ में अत्यन्ताभाव है।

पूर्वानपश्चिमानोदिक्नाधऊर्ध्वंनदक्षिणो ।
लघुदीर्घौवहिश्चांतर्युक्तायुक्तौनमेगुरो ॥

विचा० अ० ७ श्लो० ८ ॥

इसका सिद्धान्त यह कि पूर्व पश्चिम ऊर्ध्व अधः (नीचे) उत्तर दक्षिण इत्यादि दशोंदिशा लघु अर्थात् समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म कारणशरीर दीर्घ अर्थात् समष्टिव्यष्टि स्थूल शरीर अथवा ऊंचता नीचता इत्यादि सर्वका मुझ ब्रह्मात्मामें अत्यन्ताभाव है। परिच्छिन्न वस्तु में न्यारा और मिलना होता है मैं शुद्ध ब्रह्म अपरिच्छिन्न हूं उससे मुझमें न्यारा होना मिलना बाह्य और भीतर इत्यादि कल्पना का अत्यन्ताभाव है ॥

उत्पत्तिवृद्धिविलयारूपरंगभिदारसाः ।
नमेयोगश्चभोगश्चस्थितिखेदानविद्यते ॥ विचा० अ० ७ श्लो० ९॥

इसका अभिप्राय यह कि मेरी उत्पत्ति है और न वृद्धि है क्योंकि जिस पदार्थकी उत्पत्ति होती है उसीके वृद्धि लयादि विकार होते हैं मुझमें उत्पत्ति वृद्धि लयादिका भी अत्यन्ताभाव है नाना भांति के काले पीले श्वेत श्याम गोरे इत्यादि रूपरंग और मधुर कटु तिक्त कषाय इत्यादि रस और चेतन जड़ वा चेतन चेतन किंवा जीव और ईश्वर वा जीवों का परस्पर अथवा जड़ोंका परस्पर ये पांच प्रकार के भेद इन सब का मुझ ब्रह्मात्मा में अत्यान्ताभ है। योग वा भोग का कर्त्ता स्थिरता या चपलता इत्यादि विकारोंका भी मुझ में वस्तुतः अत्यन्ताभाव है। संसार सम्बन्धी सुख दुःखादिका भी मुझमें सर्वथा अत्यन्ताभाव है।

मलिननेत्रदृष्टंसन्मलिनंदृश्यतेजगत् ।
निर्मलोदृश्यतेरविर्निर्मलाक्ष्यवलोकितः ॥
विचा० अ० ७ श्लो० १० ॥

इस का अभिप्राय यह है कि जिस मनुष्य के नेत्र नहीं अथवा जिस के नेत्रों में पित्त मल की मलिनता छा रही है किंवा जिसके नेत्रोंमें मोतिया-बिन्दु मलिनता है। उसको निरावरण सूर्यका भान नहीं होता परन्तु जिस मनुष्यके नेत्रोंमें पूर्वोक्त मलिनताका अत्यन्ताभाव है। उसको निरावरण सूर्यका भान होता है। वैसे ही जिस मनुष्य के विचार विज्ञानरूपी नेत्रों में काम क्रोध लोभ मोह अहंकार अविद्यारूपी मलिनता छा रही है। उस को मुझ शुद्ध ब्रह्मात्मा का यथावत् भान नहीं होता। किन्तु जिसके विचार विज्ञान नेत्रोंमें उक्त मलिनता का अत्यन्ताभाव है उसीको मुझ शुद्ध ब्रह्मात्मा का निरावरण स्वप्रकाश स्वरूप से भान होता है॥

उच्चैस्त्वनीचतेरंकभूपौ सगुणनिर्गुणौ ।
वृद्ध्यवृद्धीनमेकस्मै वच्मिविश्वंमदात्मकम् ॥
विचा० अ० ७ श्लो० ११ ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि ब्राह्मणादि शरीर वर्णों में ऊंचताका अभिमान और चाण्डालादि शरीरोंमें नीचता का अभिमान तथा दैवी सम्पदा के गुणोंका और आसुरी सम्पदा के अपगुणों का अभिमान दरिद्रता और राज्य-धनका अभिमान इत्यादि अभिमानों का मुझमें अत्यन्ताभाव है। अभिप्राय यह कि बाधसमानाधिकरण से सर्व ब्रह्मस्वरूप आनन्द मैं हूं। उस

सुख आनन्द स्वरूप ब्रह्ममें बड़ाई छुटाईका सर्वथा अत्यन्ताभाव है। इत्यादि और भी ब्रह्मज्ञानीके अनुभव में हजारों वेदान्त के ग्रन्थोंके प्रमाण हैं। जिसको जिज्ञासा हो वह वहां देखकर सन्देह नष्ट कर लेवे ॥

अब शङ्का समाधान पूर्वक जीव की अवस्थाओंका वर्णन किया जाता है (तथाहि) (७ सत्या० समुल्लास ३)

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ।

इस सूत्रके भाष्यमें दयानन्दने प्राण अपान मन इन्द्रियादिक जड़ पदार्थोंको आत्माके गुण वर्णन किया है। (७ सत्या० समुल्लास ७) पूर्वोक्त सूत्र ही को दयानन्दने लिखा है और कहा है कि ये आत्माके गुण आत्मा से जुदे नहीं हो सकते। फिर उसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ९) दयानन्द ही का लेख है कि पांचकोश और तीन अवस्थायें चार शरीर इन सब से जीव जुदा है। पांच कोशों ही में बाबा जी दयानन्दने प्राण मन इन्द्रियादिकी गणना करी है। यदि दयानन्दके प्रथम लेखको सत्य मानें तो द्वितीय लेख मिथ्या और द्वितीय लेखको सत्य मानें तो प्रथम लेख मिथ्या सिद्ध होता है परन्तु पूर्वापर विरुद्ध "दरोगहलफी„ की दया से दयानन्द के दोनों लेख झूंठे हैं ॥

अब वेदान्तकी रीतिसे जीवकी १६ अवस्थाओंको दर्शाया जाता है (तथाहि) वेदान्तमें दृक् दृश्य यह दोही पदार्थ माने हैं। दृश्य माया और तत्कार्य प्रपञ्च है। द्रष्टा नित्य शुद्ध नित्य मुक्त सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म है। द्रष्टा त्रिकाल अबाध है दृश्य अनिर्वचनीय का द्रष्टा में त्रिकाल बाध है। द्रष्टा इस नाम का भी वस्तुतः बाध है क्योंकि दृश्य की अपेक्षा ही से शुद्ध ब्रह्मचेतन में द्रष्टा नाम की कल्पना है। जब वस्तुतः शुद्ध ब्रह्मचेतन में नाम रूप दृश्य का अत्यन्ताभाव है तो निरपेक्ष शुद्ध ब्रह्मचेतन में द्रष्टा नाम का भी अत्यन्ताभाव है ॥

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते। यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीःप्रजाः सृजमानां सरूपाः ॥

इत्यादि प्रमाणों से सत्यासत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय माया का वेद मन्त्रों में वर्णन किया है। जीवेश्वर और जीवेश्वर की व्यष्टि समष्टि १६ अ-

वस्थायें यह सर्व अनिर्वचनीय माया में हैं। परन्तु शुद्ध ब्रह्मचेतन में इनका प्रतिबिम्ब भान हो रहा है। उन में से जीव ही को १६ अवस्थाओं का अभिमान है। ईश्वर उन १६ अवस्थाओं के अभिमान से रहित है॥

प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽअन्तरजायमानोबहुधा विजायते।
तस्य योनिंपरिपश्यन्तिधीराः० एकआत्माबहुधास्तूयते। *

इन वेद मन्त्रों और निरुक्त के वचन का सिद्धान्त यह है कि वस्तुतः जीवेश्वर भेद रहित एक शुद्ध ब्रह्मचेतन ही अपने प्रकाश स्वरूप में प्रकाशान्तर की अपेक्षा रहित स्वप्रकाश स्वरूप से भान होता है॥ किन्तु मायास्थ जो अनेक प्रकारके जीवेश्वर तथा व्यष्टि समष्टि अवस्थायें और समष्टि व्यष्टि नाम रूप क्रियात्मक तीन प्रकार का प्रपंच इत्यादि के प्रतिबिम्ब शुद्ध ब्रह्मचेतन में भान होते हैं।

१—जाग्रत, २—जाग्रत में स्वप्न ३-जाग्रत में सुषुप्ति, ४—जाग्रत में तुरीय इन चार अवस्थाओं का मायास्थ जीव ही अभिमानी है। परन्तु इन चार अवस्थाओं का शुद्ध ब्रह्मचेतन में भान होता है घटादि पदार्थों के साथ जो निर्दोष नेत्र जन्य वृत्ति का सम्बन्ध होता है वह जाग्रदवस्था है। उस अवस्था के अभिमानी जीव का नाम विश्व है। जब जाग्रदवस्था में सदोष नेत्र जन्य वृत्ति का शुक्त्यादि पदार्थों के साथ सम्बन्ध होता है तो वह जाग्रदवस्था में स्वप्नावस्था है क्योंकि उस अवस्था में शुक्त्यादि पदार्थों का भान नहीं होता किन्तु शुक्त्यादि पदार्थों में रजतादि पदार्थों का भान होता है। उस अवस्था में अभिमानी जीव का नाम तैजस है। जब जाग्रदवस्था में मनुष्य को दण्ड प्रहारादि निमित्त से मूर्च्छा हो जाती है तो उस का नाम जाग्रत में सुषुप्ति अवस्था है क्योंकि जैसे शुद्ध सुषुप्ति में किसी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता वैसे ही मूर्च्छावस्था में भी किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता इसी सिद्धान्त से जाग्रदवस्था में मूर्छावस्था का नाम सुषुप्ति अवस्था कहा है उस के अभिमानी जीव का नाम प्राज्ञ है। जब जाग्रत ही में यम नियमादि साधनों के संपादन से मनुष्य निर्विकल्प समाधि में प्राप्त होता है उस अवस्था का नाम जाग्रत में तुरीयावस्था है क्योंकि वहां स्वप्रकाश स्वरूप से शुद्ध ब्रह्मचेतन का भान होता उस अवस्था के निरभिमानी चेतन मात्र का नाम शुद्धब्रह्म है॥ ४॥

इन चार अवस्थाओं में शुद्ध ब्रह्मचेतन का अन्वय है और चारों अवस्थाओं का एक दूसरी अवस्था में व्यतिरेक है वैसे ही विश्वादि जीवों का भी एक दूसरे जीव में व्यतिरेक है जब जाग्रदवस्था के कर्म भोग देने से विमुख हो जाते हैं और स्वप्नावस्था के कर्म जीव को भोग देने के सन्मुख होते हैं तो निद्रा रूपी माया के चित्र विचित्र नाम रूप पदार्थ ब्रह्मचेतन में भान होते हैं। निर्दोष नेत्रों का उन पदार्थों के साथ संबन्ध स्वप्न में जाग्रदवस्था है उस अवस्था के अभिमानी जीव का नाम विश्व है। उस अवस्था में भी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटीका यथावत् भान होता है ॥ स्वप्नावस्था के समय जो मदान्धकारमें सदोष नेत्रादि इन्द्रिय जन्य वृत्तिका रज्जु आदि पदार्थों के साथ सम्बन्ध होकर सर्पादि का भान होता है उसका नाम स्वप्नावस्था में स्वप्नावस्था है। उस अवस्था के अभिमानी जीव का नाम तैजस है। स्वप्नावस्थामें जो मनुष्य को मूर्छित हो कर गिर पड़ना है वह स्वप्नावस्था में सुषुप्त्यवस्था है क्योंकि उस अवस्था में भी किसी विशेष पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता। उस अवस्थाके अभिमानी जीव का नाम प्राज्ञ है। जाग्रत् में जब जीव निर्विकल्प समाधिमें आनन्दाकार वृत्ति करता है उस वृत्ति रूपी ज्ञान जन्य संस्कार अन्तःकरण में रहते हैं। उस संस्काररूपी निमित्त कारण से स्वप्नावस्था में भी निर्विकल्प समाधिमें जाता है उस समय जो शुद्ध ब्रह्म चेतनानन्दाकार वृत्ति होती है उस का नाम स्वप्नावस्था में तुरीयावस्था है उस के निरभिमानी शुद्ध चेतन का नाम तुरीया साक्षी है। यहां भी चार अवस्थाओं का एक दूसरी अवस्थामें व्यतिरेक है। विश्वादि जीवों का भी एक दूसरे में व्यतिरेक है। परन्तु शुद्ध ब्रह्म चेतन का चारों अवस्थाओं में अन्वय है ॥

जब स्वप्नावस्था के भोग प्रदाता कर्मों का अदर्शन होता है और सुषुप्ति अवस्था में भोग प्रदायक कर्मों का दर्शन होता है तो मनुष्य को सुषुप्ति अवस्थाका लाभ होता है। उस अवस्थामें विशेष सावर्तक आनन्दाकार वृत्ति सुषुप्त्यवस्था में जाग्रदवस्था है। उस के अभिमानी जीव का नाम विश्व है। जब उस अवस्था में समान सावर्तकानन्दाकार वृत्ति होती है तो उसका नाम सुषुप्तिमें स्वप्नावस्था है उसके अभिमानी जीव का नाम तैजस है। जब सुषुप्त्यवस्था में सर्वथा वेहोश होकर मनुष्य सो जाता है तो उसका नाम सुषुप्त्यवस्थामें सुषुप्त्यवस्था है उसके अभिमानी जीव का नाम प्राज्ञ

है। जाग्रत् और स्वप्न दो अवस्थाओं में निर्विकल्प समाधिके संस्काररूपी निमित्त कारण से जो सुषुप्त्यवस्था में निरावर्तक ब्रह्मचेतनानन्दाकार वृत्ति होती है उसका नाम सुषुप्त्यवस्था में तुरीयावस्था है। उस के निरभिमानी ब्रह्मचेतन का नाम प्राज्ञ साक्षी है। पूर्ववत् यहां भी चतुरावस्था का एक दूसरे अवस्था में व्यतिरेक है परन्तु ब्रह्मचेतन का तीनों अवस्थाओं में अन्वय है॥

तुरीयावस्थामें (अहं ब्रह्मास्मि) इस प्रकारका जो उच्चारण वह तुरीयावस्था में जाग्रदवस्था है उसके अभिमानी जीव का नाम विश्व है। उस का अधिक अभ्यास होने रूपी निमित्त से जो (अहं ब्रह्मास्मि) इस वाक्य के उच्चारण का होना और ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी का विद्यमान रहना तुरीया में स्वप्नावस्था है। उस के अभिमानी जीव का नाम तैजस है। उस अवस्था का अधिक अभ्यास होनेसे अद्वैतभावना रूप निर्विकल्प समाधिका लाभ तुरीयावस्था में सुषुप्त्यवस्था है। उस के अभिमानी जीव का नाम प्राज्ञ है उस अवस्था का अधिक अभ्यास होने से अद्वैत अवस्थानरूप निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति तुरीयावस्था में तुरीयातीत अवस्था है। उसके अभिमान रहित शुद्ध ब्रह्म का नाम तुरीया साक्षी है। इन चारों अवस्थाओं का भी एक दूसरी अवस्था में व्यतिरेक है। परन्तु नित्य मुक्त नित्य शुद्ध निराकार निर्विकार ब्रह्मचेतनका चतुरवस्थाओंमें अन्वय है। अभिप्राय यह कि पूर्वोक्त जीव की एक २ अवस्था में चार २ अवस्थाएं व्यतीत होती हैं। इस हिसाब से जीव की १६ अवस्थायें हैं। उन में से तीन २ अवस्थाओंका अभिमानी जीव है चौथी २ अवस्था का अभिमान रहित केवल शुद्ध ब्रह्मचेतन है। जैसे एक ही सुवर्णमें कङ्कण कुण्डलादिक भूषणोंका परस्पर व्यतिरेक है। परन्तु सुवर्ण का सब में अन्वय है वैसे ही पूर्वोक्त अवस्थाओं का परस्पर व्यतिरेक है। और अवस्थाओंके अभिमानी जीवोंका भी एक दूसरे में व्यतिरेक है परन्तु शुद्ध ब्रह्मचेतनका सर्व अवस्थाओं में अन्वय है। उसमें पूर्वोक्त अवस्थायें दृष्ट नष्ट स्वभाव होने के कारण अनित्य हैं किन्तु एक सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित शुद्ध ब्रह्मचेतन ही नित्य है॥

प्रकरण में व्यष्टि १६ अवस्थाएं जीव की हैं जीव उन अवस्थाओं का अभिमानी है वही समष्टि १६ अवस्थाएं ईश्वर की हैं परन्तु ईश्वर उन अवस्थाओं का अभिमानी नहीं॥

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषिसचते-सषोडशी ॥

प्रकरण तथा लक्षण से इस मन्त्रस्थ षोडशी शब्द का यही सिद्धान्त यथावत् सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त १६ अवस्थाएं ईश्वर की हैं। व्यष्टि अवस्थायें जीव की समष्टि ईश्वर की हैं। विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर और ईश्वर साक्षी यह चारों नाम ईश्वर के हैं तीन नामोंका वाच्य समष्टि अवस्थाओं के संयुक्त केवल ईश्वर है और ईश्वर साक्षी यह चतुर्थ नाम समष्टि अवस्थाओं से रहित शुद्ध ब्रह्मका वाचक है। यद्यपि उक्त मन्त्रस्थ षोडशी शब्दके आकाशादि अर्थभी उपनिषद्कारोंने किये हैं तथापि वह सर्व अर्थ १६ समष्टि अवस्थाओं ही में आ जाते हैं। सिद्धान्त यह कि पूर्वोक्त १६ अवस्थाओं और जीवेश्वर का शुद्ध ब्रह्मचेतन में वस्तुतः अत्यन्ताभाव है।

अभिप्राय इसका यह कि जैसे चुंवक पाषाणमें किसी प्रकार की चेष्टा नहीं होती किन्तु चुंवक की समीपतासे लोहेमें चेष्टा होती है वैसे ही शुद्ध ब्रह्मचेतन सर्वदा सर्वथा चेष्टा रहित अक्रिय है किन्तु उसकी समीपताहीसे मायास्थ नानाभांतिके चित्र विचित्र जीवेश्वर प्रपंच में चेष्टा होती है।

यआत्मदाबलदायस्यविश्वउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यछायामृतंयस्यमृत्युःकस्मैदेवाय हविषाविधेम ॥

इस मंत्रस्थ (छाया) इस शब्दका प्रकरण और लक्षण से प्रतिबिम्ब अर्थ है यद्यपि वेदान्ती लोगों ने छाया और प्रतिबिंब शब्द के अर्थ का क्वचित् भेद वर्णन किया है कहा है कि प्रकाश के निरोध अन्धकार का नाम छाया है और जिस ओर छाया का मुख होता है उसी ओर छायावाले का मुख होता है परन्तु बिम्ब से प्रतिबिम्ब विपरीत होता है जैसे दर्पणस्थ प्रतिबिम्ब ग्रीवास्थ बिम्ब से विपरीत होता है तथापि प्रकरण में—

छ्यतिप्रकाशमितिच्छाया । प्रकाशावरणमुत्कोचकप्रतिबिम्बोवा ॥

इत्यादि कोष के प्रमाण से प्रतिबिम्ब शब्द के अनेकार्थ हैं शुद्ध सत्व गुण प्रधान माया विशिष्ट चेतनही ईश्वर शब्द का वाच्यार्थ है। वह ईश्वर माया के परिणाम रामकृष्णादि नाम वाले शरीरों को धारण कर निष्काम भक्तों को सच्चिदानन्द स्वस्वरूप का ज्ञान देता है। उसी माया युक्त

साकार ईश्वर का हृदय में भक्तजन ध्यान धरते हैं। उसी सर्वोत्तम ईश्वर की आज्ञा का पालन भक्तलोग करते हैं॥ उसी ईश्वर का जो शुद्ध सत्व गुणप्रधान माया है उसी मायामें नाना भांतिके विचित्र जीवेश्वर प्रपंच हैं उनके प्रतिबिंब शुद्ध ब्रह्म चेतन में भासते हैं। बन्ध मोक्ष का होना उसी अनिर्वचनीय मायामें है परन्तु शुद्ध ब्रह्म में भान होता है॥

ज्योंअविकृतकौन्तेय में राधापुत्रप्रतीति।
चिदानन्दघनब्रह्ममेंजीवभावतिहंरीति॥

इसका सिद्धान्त यह कि जैसे अविकारी शुद्ध क्षत्रिय कुन्तिके पुत्र कर्ण में राधापुत्रता का भ्रम हुआ था उसी भ्रमसे कर्ण में नाना भांति के दुःख का भान हुआ। अकस्मात् सूर्य देवता एकान्त में राजा कर्ण को मिले और कर्ण को कहा कि आप राधाके पुत्र नहीं किन्तु मेरे सम्बन्ध से आप कुन्ती में प्रकट हुये हैं। इस उपदेशको श्रवणकर राजा कर्णका भ्रम नष्ट हो गया किन्तु स्वतः सिद्ध क्षत्रियभावका कर्णके अन्तःकरण में आह्लादका आविर्भाव हुआ वैसे नित्य बुद्ध नित्य शुद्ध सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित निराकार निर्विकार सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म में अनिर्वचनीय मायास्थ जीवेश्वरभाव तथा नाना प्रकारके विचित्र प्रपंचके प्रतिविंबका भान हुआ है। वस्तुतः शुद्ध ब्रह्ममें माया तत्कार्य जीवेश्वर प्रपंचका अत्यन्ताभाव है। इस वेदान्त सिद्धान्तमें माया तत्कार्य जीवेश्वर प्रपञ्चके अत्यन्ताभावका भी शुद्ध ब्रह्म में बाध निश्चय है। क्योंकि अत्यन्ताभावकाभी प्रतियोगी मानना पड़ता है। सर्वथा सर्वदा न होनेका नाम ही बाध है॥

इस सर्वोत्तम सिद्धांतको सिद्धान्तमुक्तावलीमें विस्तारसे वर्णन किया है। इसीका नाम दृष्टि सृष्टिवाद है इसीको एक जीववाद अजातवाद अक्रमवाद विवर्त्तवाद इत्यादि नामों से भी वर्णन किया है। इस वेदान्त सिद्धान्त में नित्य शुद्ध नित्य मुक्त ब्रह्मस्वरूप एक जीवको बध वा मोक्ष न थे न हैं और न होंगे किन्तु मायास्थ विचित्र आभासरूप जीवोंके जो शुद्ध ब्रह्मचेतन में नानाभांतिके प्रतिबिम्बरूप जीव भान होते हैं उन्हींके बन्ध और मोक्ष होते हैं। वस्तुतः अनिर्वचनीय माया और मायास्थ जीवेश्वर तथा विचित्र अनिर्वचनीय प्रपंचके प्रतिविंब इन सबका शुद्ध ब्रह्मचेतन में बाध हैं। अभिप्राय यह कि शुद्ध ब्रह्मचेतनमें यह न कभी थे न हैं और न होंगे। गुरु

तथा वेदसे भी केवल भ्रम नष्ट होता है बन्धकी निवृत्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति गुरु और वेदका फल नहीं। इस में भी इतना भेद है कि जहां भ्रम हो वहां उसकी निवृत्ति के लिये गुरुवेदाभास की आवश्यकता है। जहां भ्रम नहीं वहां गुरु वेदाभास की कुछ भी आवश्यकता नहीं।

यथाभर्जितबीजस्य प्ररोहित्वंविनश्यति।
तथात्मज्ञानिनोनित्यं जगद्बुद्धिर्विलीयते ॥
विचा० अ० ८ श्लो० ९।

इसमें शुद्ध स्वरूप ब्रह्मज्ञानीकी चेष्टाका वर्णन है सिद्धांत उक्त श्लोक का यह है कि जैसे अग्नि में भूंजे अन्न में उगनेकी शक्ति नहीं रहती वैसे ही आत्मज्ञानीके पुनर्जन्मका शुद्ध ब्रह्ममें अत्यन्ताभाव है॥

निश्चयोवर्त्ततेह्येकः कोटिज्ञानिषुबुद्धिषु।
विद्यन्तेऽनेकमतयो हृदयेऽज्ञानिनःसदा
विचा० अ० ८ श्लो० १०

इसका सिद्धान्त यह कि चाहे करोड़ आत्मज्ञानी क्यों न हों परन्तु उन सबके अन्तःकरणमें सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित केवल अद्वितीय आत्माका निश्चय एक होता है परन्तु अज्ञानी एकके कोड़मत भी निश्चय नहीं हो सकते॥

बहुधासेवतेकश्चिज्ज्ञानिनंत्रासयेत्परः।
द्वयंसर्वेस्यात्मरूपं न हृष्यति न कुप्यति ॥
विचा० अ० ८ श्लो० ११

इसका सिद्धान्त यह कि भक्तलोक पूर्वोक्त आत्मज्ञानी की श्रद्धा और भक्ति से सेवा करते हैं। दुष्ट लोग आत्मज्ञानी को क्लेश देने की चेष्टा करते हैं परन्तु आत्मज्ञानी दोनोंमें अपना आप निश्चय करता है सेवा जन्य सुख वा क्लेशजन्य दुःख को अपने आप में आत्मज्ञानी अत्यन्ताभाव निश्चय करता है॥

संसृतिर्विषयानन्दो भक्त्यानन्दो हरेःकथा।
जीवन्मुक्तोभवेद्ब्रह्मानन्दोदुर्वासनाक्षये ॥
विचा० अ० ८ श्लो० १२

इस का अभिप्राय यह कि शब्द स्पर्शरूप रस गन्धादि विषयोंके आनन्दमें देहाभिमानी विषय लंपट नर नारी प्रसन्न रहते हैं परन्तु परिणाममें वह सर्व विषय दुःखदायक हैं। और जो साकार ईश्वर के भक्त हैं वह भक्ति के आनन्द ही में प्रसन्न रहते हैं। परन्तु भजनानन्द भी नित्य नहीं, रहे पूर्वोक्त आत्मज्ञानी उन के अन्तःकरण में मलिन वासना का अत्यन्ताभाव हो जाता है। सिद्धान्त यह कि देहवासना, लोकवासना, शास्त्रवासना, आत्मज्ञानी में नहीं रहती। उससे आत्मज्ञानी उस ब्रह्म स्वरूप आनन्द में प्रसन्न रहता है कि जिस ब्रह्म स्वरूप आनन्दमें विषयानन्द भजनानन्दादिकों का सर्वथा सर्वदा वस्तुतः अत्यन्ताभाव है। यद्यपि वेदान्त सिद्धान्तमें विषयों वा भजन से जो आनन्द होता है उनको भी ब्रह्मस्वरूप आनन्द ही वर्णन किया है तथापि देहाभिमानी विषय लंपट अज्ञानी पामरोंको भ्रम से विषय ही आनन्द रूप भान होते हैं वे नहीं निश्चय कर सक्के कि यह आनन्द ब्रह्म स्वरूप है यदि उनका ऐसा निश्चय होजाता तो वह विषय भोगोंमें प्रवृत्त ही न होते वैसे ही जब भक्त लोगोंको भी निश्चय हो जाता है कि जो भजनानन्द है वही ब्रह्मात्म स्वरूप आनन्द है तो वे भक्त लोक अपने से भिन्न उस आनन्दको कभी निश्चय न करते किन्तु वह भी पूर्वोक्त आत्मज्ञानी ही हो जाते ॥

मोक्षादीच्छयारहितोनिस्पृहःपरमःपुमान् ।
नित्यात्मानन्दतृप्तोयस्ततूसमोऽन्योनविद्यते ॥

विचा० अ० ८ श्लो० १४

इसका सिद्धान्त यह कि जिस आत्मज्ञानीको ब्रह्मस्वरूप आनन्द की प्राप्तिसे प्रसन्नताका लाभ होता है उसके सदृश संसार भर में आत्मज्ञान से रहित मनुष्य नहीं हो सक्का ॥ आत्मज्ञानी महात्मा यहांतक निष्काम होकर भ्रमण करता है कि मोक्ष सुखकी इच्छाका भी आत्मज्ञानीमें सर्वथा अत्यन्ताभाव होता है ॥

येषांजनानांदृश्यस्याभावाभूयात्स्वभावतः ।
किंगृह्णीयुस्त्यजेयुःकिमिच्छा निच्छउभेगते ॥

विचा० अ० ८ श्लो० १५

इसका सिद्धान्त यह कि जिस आत्मज्ञानीमें नाम रूप क्रियात्मक दृश्य पदार्थोंका वस्तुतः अत्यन्ताभाव दृढ़ निश्चय हो जाता है वह आत्मज्ञानी

हर्ष शोकसे निराला हो जाता है। ग्रहण त्याग का भी अपने शुद्ध ब्रह्म आनन्द स्वरूप में आत्मज्ञानी अत्यन्ताभाव निश्चय करता है ॥

भास्करस्योदयेयद्वद्दीपकान्तिस्तिरोहिता ।
ब्रह्मानन्देतथालब्धेसर्वानिद्रागतालयम् ॥

विचा० अ० ८ श्लो० १६ ॥

इसका सिद्धान्त यह कि जैसे सूर्य्यके उदय होने से दीपक लैंप चिमनी आदिके प्रकाश का अदर्शन हो जाता है वैसे ही जब आत्मज्ञानी के हृदय में ब्रह्म स्वरूप आनन्द सूर्य का निरावरण भान होता है तो उस समय विषयों वा भजनादिसे जो भ्रमसे आनन्द भान होता था उसका सर्वदा सर्वथा अदर्शन होजाता है ॥

यथान्यपक्षिणस्तार्क्ष्ये रसाश्चामृतसन्निधौ ।
दीपायन्तेमताःसर्वास्तथाज्ञानदिवाकरे ॥

विचा० अ० ८ श्लो० १७ ॥

इसका अभिप्राय यह कि जहां गरुड़ भगवान् हैं वहां दूसरे वाहनों की जिज्ञासा का अत्यन्ताभाव है यहां प्रकरण में विष्णु का वाहन गरुड़ है। जहां अमृत रस का लाभ होता है वहां मधुर कटु अम्लादि रसों की जिज्ञासा का अत्यन्ताभाव है। वैसे ही जहां आत्मज्ञानी के हृदय में ब्रह्मस्वरूप आनन्द का निरावरण भान होता है वहां संसार सम्बन्धी आनन्दों की इच्छा का अत्यन्ताभाव हो जाता है। जब आत्मज्ञानी के हृदय रूपी आकाश में आत्मज्ञानरूपी सूर्य का उजाला होता है तो उस समय अपना अथवा अपने से भिन्न नाना भांति के नवीन अथवा प्राचीन मतों रूपी दीपकों का अत्यन्ताभाव हो जाता है ॥

जाग्रत्स्वप्नौतत्रनस्तः सुषुप्तिर्यत्रनैवहि ।
अहंत्वंसंभवेनात्र कृतेब्रह्मात्मनिश्चये ॥

विचा० अ० ८ श्लो० २४

इस का सिद्धान्त यह कि जब आत्मज्ञानी को संशय विपर्ययसे रहित दृढ़ आत्मज्ञान हो जाता है तो मैं और तू इत्यादि व्यवहारका भी शुद्ध ब्रह्मात्मा में अत्यन्ताभाव भान होता है। जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति यह तीनों अवस्था यहां उपलक्षण हैं। तदुपलक्षित पूर्वोक्त १६ अवस्थाओं और तदभि-

मानी जीव अथवा निरभिमानी ईश्वर इन गर्यो का शुद्ध आत्मा में आत्म-ज्ञानी को अत्यन्ताभाव निश्चय हो जाता है ॥

ज्ञानिनःकर्मकुर्वन्ति व्यवहारंयथाविधि ।

फलेननचलिप्यन्ते धूमेनेवगगनभः ॥

विचा० अ० ८ श्लो० २५

इसका सिद्धान्त यह कि आत्मज्ञानी के संचित कर्मरूपी तृण समुदाय का टोला ज्ञानरूपी अग्नि से भस्म हो जाता है। क्रियमाण अर्थात् वर्तमान समय में आत्मज्ञानी जो कर्म करता है उन कर्मों के फल से आत्मज्ञानी लिपायमान नहीं होता। अभिप्राय यह कि जैसे धूम आकाश को स्पर्श नहीं कर सकता वैसे आत्मज्ञानी को वर्तमान कर्म स्पर्श नहीं कर सकते। प्रारब्ध कर्म आत्मज्ञानी के सुख दुःखरूपी फल को दे कर नष्ट हो जाते हैं। इच्छत् अनिच्छत् परेच्छत् भेद से प्रारब्ध कर्म तीन प्रकार के हैं जो आत्मज्ञानी को किसी पदार्थ की इच्छा कराते हैं वे इच्छा प्रारब्ध कर्म हैं । जिनसे अक-स्मात् पदार्थ का लाभ ज्ञानी को होता है वह अनिच्छत् प्रारब्ध कर्म हैं। जो आत्मज्ञानी के लिये किसी पदार्थ देने की दूसरे को इच्छा करा देते हैं वह आत्मज्ञानी के परेच्छत् प्रारब्ध कर्म हैं। मन्द तीव्र तीव्रतर भेद से भी कर्म तीन प्रकार के हैं। मन्द प्रारब्ध कर्मों का फल अनुष्ठान से नष्ट हो जाता है। तीव्र प्रारब्ध कर्मों का फल पुरुषार्थ से ढीला होजाता है। तीव्र तर प्रारब्ध कर्मों का फल आत्मज्ञानी को अवश्य होता है। परन्तु पूर्वोक्त आत्मज्ञानी की जितनी चेष्टा है सो सर्व आभास मात्र है वस्तुतः शुद्ध ब्र-ह्मात्मा में सर्व प्रकार की चेष्टा का बाध निश्चय हो जाता है ॥

यस्यनाऽहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्यनलिप्यते ।

हत्वापिसइमांल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते ॥

इस गीता के वचन से भी पूर्वोक्त सिद्धान्त ही सिद्ध होता है। जैसे कि जब आत्मज्ञानी के हृदयमें शुद्ध ब्रह्मात्मज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है तो अन्नमयादि पांच कोशों का अभिमानरूपी अन्धकार भी आत्मज्ञानी के हृदयाकाश में से नष्ट हो जाता है। आभासरूपसे भी आत्मज्ञानी की बुद्धि किसी पदार्थ में लिपायमान नहीं होती। समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों को ज्ञानरूपी तलवारसे कतल कर भी आत्मा में आत्मज्ञानी को सर्व का अत्यन्ताभाव निश्चय हो जाता है। अब वेदान्त सिद्धान्त मण्डन का व्याख्यान समाप्त हुआ ॥ ओंम्-शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

वेदोक्त मुक्तिमण्डन

व्याख्यान नं० ६ ।

सर्व हिन्दुधर्म वीरोंको विदित किया जाता है कि इस व्याख्यान में युक्ति और प्रमाणोंसे वेदोक्त मुक्तिका मण्डन किया जाता है। परन्तु प्रथम दयानन्दोक्त मुक्तिका खण्डन दर्शाया जाता है॥

(तथाहि) दयानन्द के भक्त कहते हैं कि दयानन्दका वेद मत है उस से हमारा भी वेद मत है दयानन्दके भक्तोंका यह कथन सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि वेद ईश्वर कृत है ईश्वर कृत वेद मत सर्वथा निर्दोष है। दयानन्द कृत ग्रन्थ सर्वथा सदोष हैं। देखिये दयानन्द कृत प्रथमावृत्ति ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका जगदुत्पत्ति प्रकरण (वेदाहमेतं पुरुषं महान्त०) इस वेद मन्त्र के भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि ईश्वरके ज्ञानसे मुक्ति होती है दूसरा मार्ग मुक्तिका कोई नहीं। फिर इसके विरुद्ध (१ सत्यार्थ० समुल्लास ३) (धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्म०) इस सूत्रके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि ' पृथिवी और जलके ज्ञानसे मुक्ति होती है ,, यहां प्रथम लेख तो ईश्वर चेतनके ज्ञानसे मुक्ति और दूसरे लेखमें पृथिवी जल जड़के ज्ञानसे मुक्ति का वर्णन किया है परन्तु दरोगहलफी होनेके कारण दयानन्दके दोनों लेख झूंठे हैं॥

(१ सत्या० समुल्लास ९)(शृण्वन् श्रोत्रंभवति०) इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि " भौतिक शरीर मुक्तिमें जीवके साथ नहीं रहता किन्तु मुक्त जीवको जब सुननेकी इच्छा होती है तो वह श्रोत्र हो जाता है स्पर्शकी इच्छासे त्वक् देखनेकी इच्छासे नेत्र रसकी इच्छासे रसन, सूंघनेकी इच्छासे नाक इत्यादि अपनी शक्तिसे मुक्त जीव हो जाता है ,, यहां दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय मन बुद्धि चित्त अहंकार जड़ हैं अथवा चेतन। यदि चेतन कहो तो ९ वें समुल्लास ही में दयानन्दने श्रोत्रादि इन्द्रियोंको जड़ कहा है वह कथन मिथ्या होगा॥ यदि कहो कि श्रोत्रादि इन्द्रिय जड़ हैं तो जड़ पदार्थको ज्ञान ही कुछ नहीं हो सकता। उससे दयानन्दमत वाले मुक्त जीव जड़ अज्ञानी सिद्ध होंगे। यदि दयानन्द के भक्त मुक्तजीवोंको जड़ ही मानें तो ८ वें समुल्लासका लेख मिथ्या होगा क्योंकि वहां दयानन्दका लेख है कि

जीव चेतन है (किंच) दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि श्रोत्रादि इन्द्रिय करण हैं वा कर्त्ता अथवा कर्म्म है यदि कर्त्ता वा कर्म कहो तो अनुभवसे विरोध होगा क्योंकि (श्रोत्रेण शृणोमि) इसका सिद्धान्त यह कि मैं कान से सुनता हूं यहां सुननेका कर्त्ता श्रोत्रसे भिन्न अनुभव सिद्ध है। इस अनुभवसे श्रोत्र करण और सुनना कर्म्म सिद्ध होता है। जाना जाता है कि बाबाजी दयानन्दको कर्त्ता करण और कर्मका भी यथार्थ ज्ञान नहीं था यदि होता तो जीव कर्त्ताको करण इन्द्रिय कभी न लिखता। मुक्तिमें ब्रह्मचेतन स्वरूपानन्दका लाभ ज्ञानीको होता है। वह आनन्द मन वाणीके सर्वथा अगोचर है। विषयानन्द का मुक्तिमें सर्वथा अत्यन्ताभाव है। ज्ञात होता है कि बाबाजी विषयानन्द ही में मग्न रहते थे। यदि ऐसे न होते तो मुक्त जीवको कभी न कहते कि वह सुननेकी इच्छासे श्रोत्र हो जाता है स्पर्श की इच्छासे त्वक् देखनेकी इच्छासे नेत्र रसकी इच्छासे रसन, गन्धकी इच्छासे नाक मुक्त जीव हो जाता है ऐसी चेष्टा बहुरूपियोंको होती है ॥

उसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ९) (ते ब्रह्मलोकेह०) इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि " भौतिक शरीर मुक्तिमें भी रहता है इसी से जीव मुक्ति में सुखको भोगता है ,, पहिले लेखमें भौतिक शरीर मुक्ति में नहीं रहता ऐसा कथन है। दूसरे लेखमें भौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता हैं इस प्रकार का वर्णन है। परन्तु दरोगहलफीसे मुक्ति विषयक दयानन्द के ये दोनों लेख भी झूठ हैं। (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका प्रथमावृत्ति जगदुत्पत्ति प्रकरण) (प्रजापतिश्चरतिगर्भे०) इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि " मुक्त जीव सदा आनन्द में रहता है जन्म मरण में कभी नहीं आता ,, इत्यादि और भी प्रथमावृत्ति वेदभाष्य भूमिका में वेदादि प्रमाणोंसे सिद्धान्त निकाला है कि मुक्तको पुनर्जन्म नहीं होता फिर उसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ९) (कस्यनूनं कतमस्यामृतानांमनामहे) इत्यादि मन्त्रोंके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि " मुक्त जीव को भी पुनर्जन्म होता है ,, सुना जाता है कि दयानन्द और एक मौलवी का शास्त्रार्थ हुआ था मौलवी ने सवाल किया कि जब मुक्त को पुनर्जन्म होगा तो किसी रोज तो सर्व जीव मुक्त हो जावेंगे। ईश्वर की सृष्टि खतम हो जावेगी। ईश्वर निकम्मा बैठा रहेगा। मुक्ति स्थान में मुक्तोंका भीड़ भड़क्का हो जायगा। मौलवी जी के इस प्रश्न का उत्तर तो सरस्वती जी से न आया

किन्तु दूसरी बार के रचे सत्यार्थप्रकाश में मुक्त का भी पुनर्जन्म लिख दिया। और यहभी सुना जाता है कि मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबादी ने भी दयानन्दको उस दिनसे मूर्ख जान कर उसका साथ छोड़ दिया था यदि बाबाजी मौलवीजीको सागरका उदाहरण दे देते कि जैसे सागरके तरंग कभी खतम नहीं होते वैसे ही ब्रह्मसागरके जीवरूपी तरंग भी कभी खतम नहीं होते तो मौलवी जी अवश्य ही मौन साध जाते। सरस्वती जी की विद्वत्ताके ढोलका पोल भी कभी न खुलता दबा दबा बना रहता परन्तु झूठा जाल कब तक चल सकता है?। भला यदि ब्रह्मसागर वेदान्त वेशुमार है तो उसमें मुक्तोंका भीड़ भड़क्का कैसे होगा?। किन्तु कभी नहीं क्योंकि दयानन्द ही का सिद्धान्त है कि ब्रह्मचेतन स्वरूप आनन्द ही मुक्तिलोक है। फिर सरस्वती जी का यह भी सिद्धान्त है कि सर्व जगत् ब्रह्मचेतन ही में निवास करता है। ब्रह्मचेतन ही सर्व जगत् का आधार है। यदि दयानन्द के इस सिद्धान्त को सत्य मानें तो मुक्तलोक में मुक्त जीवों का भी भीड़ भड़क्का हो जावेगा यह लेख मिथ्या होता है। यदि इस लेख को सत्य कहें तो सर्व जगत् का निवास ब्रह्मचेतन में है, ब्रह्म ही सर्व जगत्का आधार है। यह लेख मिथ्या होता है। कहीं मुक्त को पुनर्जन्म कहीं पुनर्जन्म का अभाव लिखने से सरस्वती जी लाल बुझक्कड़ सिद्ध होते हैं। परन्तु दरोगहलफीकी दया से दयानन्द के मुक्ति विषयक ये दोनों लेख भी झूंठे हैं। आर्याभिविनयकी चौथी आवृत्ति तक मुक्त के पुनर्जन्म का न होना छपता रहा है। पांचवी आवृत्ति से लेके आर्यसमाजियों ने मुक्त के पुनर्जन्म के अभाव को गबन कर डाला है। किन्तु वहां पुनर्जन्म शब्द का आदेश कर दिया है क्योंकि सनातन हिन्दुधर्मावलम्बी विद्वानों के सामने दयानन्द के भक्त सर्वथा निरुत्तर हो गये थे। जो हो हमने दयानन्दोक्त लेखोंको ही दरोगहलफीसे झूठा सिद्ध किया है। आर्य लोग किसी रोजको दयानन्दोक्त ग्रन्थोंका सर्वथा प्रध्वंसाभाव कर डालेंगे तो उनकी इच्छा। (१ सत्या० समुल्लास ९) (अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः०) इसके भाष्य में दयानन्द ने (सालोक्य) (सायुज्य) (सारूप्य) (सामीप्य) इस चार प्रकार की मुक्ति पर उपहास किया है कि "जैसे बारह पत्थरके भीतर दृष्टि बन्ध होते हैं उसके समान मुक्त जीव बन्धनमें होंगे मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां विचरै कहीं अटके नहीं न भय न शंका न दुःख होता

है,, सरस्वती बाबा के इस लेख का सिद्धान्त यह कि मुक्ति में जैसे बारह पत्थरके भीतर रुकावट नहीं किन्तु मुक्त जहां जी चाहे वहां सैल करता है ॥

फिर इसके विरुद्ध (१ सत्या॰ समुल्लास ९) (ते ब्रह्मलोके॰) इसके भाष्यमें दयानन्द ही का लेख है कि "मुक्ति में जाना वहांसे पुनः आना ही अच्छा है क्या थोड़े से कारागार से जन्म कारागार दण्ड वाले प्राणी अथवा फांसी को कोई अच्छा मानता है ? जब वहां से आना ही न हो तो जन्म कारागार से इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती,, दयानन्द के इस लेख का सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि चाहे मुक्ति से पुनः आना हो चाहे न आना हो दोनों प्रकार से मुक्ति भी एक प्रकार का जेलखाना है । अब दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि आपके सरस्वती बाबाका यह वेद मत है अथवा वेदसे विरुद्ध सत्यानाशी मिथ्या जाल मत है । सालोक्यादि चार प्रकार की मुक्तिको बारह पत्थरकी उपमा का देना और पुनर्जन्म की मुक्ति को जेलखाना की उपमा का देना यह दयानन्दकी सर्वथा मूर्खता है । (मूर्खाणांबलंमौनम्) सुना जाता है कि एक दिन अकबर बादशाहने बीरबलसे पूछा था कि "आपके बाप तो आपसे भी अधिक विद्वान् होंगे,, इसको सुनकर बीरबलने कहा कि हां साहब हमारे बाप हमसे बड़े विद्वान् हैं । बादशाह ने कहा कि कलके रोज हम उनसे वार्तालाप करेंगे । बीरबल अपने मकानपर आया । बीरबलका बाप निहायत मूर्ख और कुछ पढ़ा भी नहीं था । बीरबल ने उससे कहा कि कल आपको बादशाह बुलावेगा आप कभी न बोलिये । सिद्धान्त यह कि दूसरे रोज बीरबलके बाप को बादशाह ने तलब किया और उसको अनेक बार बुलाया परन्तु वह कुछ भी न बोला । बादशाहने उसको वापस भेज दिया । बाद उसके बीरबल भी कचहरी में आये बादशाह ने बीरबल से पूछा कि जब मूर्ख के साथ मुकाबला हो जावे तो क्या करना चाहिये । बीरबलने उत्तर दिया कि हजूर मूर्ख के सामने चुप ही रहना चाहिये । यह सुनकर बादशाह लज्जित हुए । वैसे ही यदि सरस्वती बाबा भी चुप रहते तो अवश्य ही विद्याहीनों में उनका दब दबा बना रहता परन्तु दरोग हलफी होने के कारण बाबा जी के पूर्वोक्त मुक्ति विषयक दोनों लेख झूंठे हैं ॥

(२ सत्या॰ समुल्लास ९) (ते ब्रह्मलोके॰) इसके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि "तैंतीस लाख बीस सहस्र वर्षोंकी एक चतुर्युगी दो सहस्र चतु-

युगियों का एक अहोरात्र ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना ऐसे बारह महीनोंका एक वर्ष ऐसे शतवर्षोंका एक परान्त काल होता है ॥ इतना समय मुक्ति में सुख भोगनेका है,, इस लेख से सिद्ध होचुका कि आर्य्यमतमें ३६००० छत्तीस हजार उत्पत्ति प्रलय तक आर्य्य जीव मुक्ति सुखको भोगता है। फिर इसके विरुद्ध (२ सत्या० आवृत्ति दूसरी समुल्लास ९) (ते ब्रह्मलोके०) इसी मन्त्रके भाष्य में दयानन्दका लेख है कि—"मुक्ति जन्म मरणके सदृश नहीं क्योंकि जब तक (३६०००० तीन लाख साठ सहस्र बार उत्पत्ति प्रलय) का जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवोंको मुक्तिके आनन्दमें रहना और दुःखका न होना क्या छोटी बात है,, दयानन्दका यह लेख भी झूंठा है क्योंकि दयानन्दके जीते ही दूसरे सत्यार्थप्रकाशकी प्रथमावृत्ति छपी थी उसीके लेखमें इस भांतिकी दरोगहलफी है। उससे दयानन्दोक्त दोनों लेख झूंठे हैं। दूसरी आवृत्तिमें भी दयानन्द ही की दरोग हलफीका जीवन ही रहा, तीसरी आवृत्तिमें भी बाबा जी की दरोगहलफीके दोनों झूंठे लेख तो ज्यों के त्यों बने रहे परन्तु तीसरी आवृत्तिकी शुद्धिमें कुछ दयानन्दके झूंठको निकालनेका चिन्हमात्र कर दिया। चौथी आवृत्तिसे लेके अब दयानन्दके भक्त दयानन्दके झूंठको तिलांजली देते जाते हैं। सो उन की खुशी, कहां तक तिलांजली देंगे किन्तु एक रोज दयानन्दोक्त ग्रन्थोंसे सर्वथा विरक्त होना पड़ेगा क्योंकि हमने दयानन्द ही की दरोगहलफीसे सत्यार्थप्रकाशादि दयानन्दोक्त ग्रन्थोंकी सत्यता रूपी कपोल कल्पित लता को जड़से उखाड़ डाला है ॥

(७ सत्या० समुल्लास ९)

मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः ।

इसके भाष्यमें दयानन्दका लेख है दुःखोंसे छूट जानेका नाम मुक्ति है फिर इसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ३) (इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःख०) इस सूत्रके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि दुःख जीवका गुण है। फिर उसी समुल्लासमें सरस्वती बाबाका वर्णन है कि गुण गुणीका नित्य समवाय संबन्ध है दयानन्दके इन लेखोंसे सिद्ध यह हुआ कि आर्यमत वाले जीव दुःखोंसे कभी नहीं छूटते परन्तु दरोगहलफीसे मुक्ति विषयक दयानन्दके यह दोनों लेख भी झूंठे हैं ॥

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाप्रथमावृत्ति प्रकरण मुक्ति ।

वहां दयानन्दका लेख है कि "परमेश्वरकी प्राप्तिके पश्चात् काले पीले हरे लाल श्याम श्वेतादि वर्णों वाले जो लोक भान होते हैं वही मुक्तिका मार्ग है" फिर इसके विरुद्ध—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका जगदुत्पत्ति प्रकरण।

वेदाहमेतं० नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

इसके भाष्यमें दयानन्द ही का लेख हम दर्शा चुके हैं कि ज्ञानके विना दूसरा कोई भी मुक्तिका मार्ग नहीं है परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दोक्त यह दोनों लेख भी झूंठे हैं। यहां तक स्थालीपुलाक न्यायसे दयानन्दके वेद विरुद्ध झूंठ हमने दर्शाये हैं। अब दयानन्दके भक्त पक्ष छोड़के बत लावें कि पूर्वोक्त सारा दरोगहलफियोंका कथन झूंठा सिद्ध हुआकि नहीं? दयानन्दका वेद मत है अथवा वेदके विरुद्ध है। सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ ईश्वर कृत वेदोंमें ऐसी झूंठी हलफ दरोगीका लेख एक भी सिद्ध नहीं होता है। जैसे कि सरस्वती बाबा जी ने विद्याहीनोंमें गपोड़ मत ही को वेद मत प्रकाशित करनेका एक हल्ला मचा रक्खा था और झूंठे पुस्तकका नाम सत्यार्थ प्रकाश लिख मारा। जैसे कोई अन्धे मनुष्यका नाम कमल नयन रख देता है।

अब वेदोक्त सनातन हिन्दु धर्मकी रीतिसे परा विद्या प्रयुक्त मुक्ति का वर्णन किया जाता है जैसे कि (द्वितीयाद्वै भयं भवति) इसका सिद्धान्त यह कि अपनेसे भिन्न जो परमात्माको मानता है उसको जन्म मरणका भय होता है यह दयानन्द कृत इसका अर्थ युक्ति विरुद्ध है॥

अन्योऽसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवꣳ स देवानाम्।

इसका अभिप्राय यह कि जो जन अपनेको दूसरा और परमात्माको अपनेसे भिन्न निश्चय करता है वह कुछ भी नहीं जानता वह मनुष्य देवताओं का पशु अर्थात् व्यंग्यार्थसे कुलालोंका गधा है। प्रकरणमें शब्दकी लक्षणावृत्ति युक्त कुलालोंको व्यञ्जनावृत्तिसे देवताओंकी उपमा दी है। जैसे कोई किसीको कहे कि हम तुम्हारे मुखमें शक्करको देंगे। यहां शक्कर शब्दका भी व्यञ्जनावृत्तिसे व्यंग्यार्थ भान होता है॥

योसावसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।

इस यजुर्वेद वाक्यका भी यही सिद्धान्त है कि जो परमात्मा सूर्यलोक में है वही मैं हूं॥

असुर्यानामतेलोका अन्धेनतमसावृताः ।
तांस्तेप्रेत्यापिगच्छन्ति येकेचात्महनोजनाः ॥

इस वेद मन्त्रका सिद्धान्त यह कि जो मनुष्य अपने आपको ब्रह्म नहीं जानते वह उस अन्ध घोर नरक में गिरते हैं कि जहां सूर्य का भी प्रकाश नहीं होता ।

अन्धंतमःप्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततोभूयइवतेतमो यउसंभूत्यांरताः ॥

इस वेद मन्त्रका सिद्धान्त यह कि जो मनुष्य अनादि शून्यहीको आत्मा कहते हैं वह जन्म मरणादि अन्ध घोर नरकमें जाते हैं और जो लोग शरीरको आत्मा कहते हैं वह उससे भी अधिक गधा कुत्ता आदि योनि स्वरूप अन्ध घोर नरकमें जाते हैं ॥

यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्रकोमोहःकःशोकएकत्वमनुपश्यतः ॥

इस मन्त्र का अभिप्राय यह कि जैसे एक ही महाकाशमें घट मठ उपाधिके भेदसे भेद है । घट मठ उपाधि के विना केवल महाकाश ही है । वैसे ही अन्तःकरण माया उपाधिके भेदसे ब्रह्मचेतनमें जीव ईश्वर भेद है अन्तःकरण माया उपाधि के बिना केवल एक शुद्ध ब्रह्मचेतन ही है । जो इस प्रकारके ज्ञानको संपादन करता है सिद्धान्त यह कि जीवेश्वरके स्वरूपमें जो चेतनको एक जानता है उस ब्रह्मज्ञानीमें शोक मोह आदि नहीं रहते किन्तु नष्ट हो जाते हैं । (तरतिशोकमात्मवित्) इस मन्त्रका सिद्धान्त यह कि जो मनुष्य जीवेश्वरके स्वरूपमें से चेतनको अद्वितीय जानता है वह मनुष्य ही ज्ञानरूपी स्टीमरसे शोकसागरको तर जाता है ।

ज्ञानंलब्ध्वापरांशान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।

इस गीता वाक्यका सिद्धान्त यह कि जो मनुष्य जीवेश्वराभेद ज्ञानको संपादन करता है वह मनुष्य परम शान्ति नाम विदेह मुक्ति को संपादन कर लेता है ॥

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।

इस वेदान्त सूत्रसे विदित होता है कि जब विवेक वैराग्य षट् संपत्ति मुमुक्षुता इन चार साधनोंको मनुष्य संपादन कर लेता है तो उसके पश्चात् मुक्ति पदकी प्राप्तिका अधिकारी होता है । परन्तु जैसे रज्जुमें सर्प भान

होता है तो उसको नष्ट करनेके लिये दीपक तेल बत्ती की आवश्यकता है पश्चात् अग्नि जलानेसे रज्जुका यथार्थ ज्ञान होकर सर्प नष्ट हो जाता है। वैसे ही अज्ञान तत्कार्य नामरूप और क्रियात्मक प्रपंच को नष्ट करनेके लिये प्रथम कर्मोपासना विवेकादि साधनोंकी आवश्यकता है। पश्चात् ब्रह्मज्ञानसे अज्ञानतत्कार्य प्रपञ्च नष्ट हो जाता है। अब विवेकादि साधनों का संक्षेपसे वर्णन किया जाता है॥ तथाहि—

(सत्यासत्यविवेचनं विवेकः) इसका अभिप्राय यह कि सत्य और असत्यके विचारका नाम विवेक है। जैसे हंसकी चोंचमें खटान होती है जब वह हंस मिले हुए क्षीर नीरमें चोंच लगाता है तो क्षीर नीर भिन्न २ हो जाते हैं। क्षीरको वह हंस ग्रहण कर लेता है नीरको त्याग देता है। वैसे ही आत्मा रूपी क्षीर और अनात्मा रूपी नीरका परस्पर अध्यास हो रहा है। जीव रूपी हंस विवेकरूपी चोंचमेंसे परा विद्या रूपी खटानको लगाता है तो आत्मा अनात्मा समान स्वरूप में जीवको भिन्न २ भान होते हैं। पश्चात् वह जीव वैराग्यरूपी साधनकों संपादन कर लेता है। इस लोकसे लेकर परलोक ब्रह्मलोक तक भोग राग त्यागनेकी इच्छाका नाम वैराग्य है। यतमान व्यतिरेक एक इन्द्रिय वशीकार भेदसे वैराग्य भी अद्वैत कौस्तुभमें चार प्रकारका है। मुक्तिकी इच्छा वालेको चाहिये कि विवेक वैराग्यको संपादन के पश्चात् षट्संपत्तिको संपादन करे। छे चीजोंकी प्राप्तिका नाम षट् संपत्ति है। शम १ दम २ श्रद्धा ३ समाधान ४ उपराम ५ तितिक्षा ६ इन छहों की प्राप्तिको वेदान्ती लोक षट् संपत्ति कहते हैं। मनके रोकनेका नाम शम है। अद्वैत कौस्तुभ वेदान्तके ग्रन्थका जो चतुर्थ परिच्छेद है उसमें सत्संग १ वेदान्त का विचार २ योगाभ्यास ३ मलिन वासना का त्याग और शुद्ध वासना का संपादन ४ यह चार साधन मन निरोध के मुख्य करके लिखे हैं। सत्सङ्ग मण्डनके व्याख्यानमें सत्संग महिमा दर्शायी जावेगी। वेदान्त मण्डन के व्याख्यान में वेदान्त विचार की महिमा लिखी जायगी। योगाभ्यास मण्डन व्याख्यानमें योगका माहात्म्य कहा जायगा। योग विषयक व्याख्यान ही में शुद्ध मलिन वासनाका वर्णन किया जावेगा॥

उपदेशोऽपिमेचित्तं नस्थितिं लभतेऽचलाम्।
स्वभावचपलं स्वामिन् वृक्षस्थइव वानरः॥
विचारसा० अ० १ श्लो० १८॥

इस श्लोकका अभिप्राय यह कि जैसे बन्दर स्वभाव से चञ्चल होता है वैसे ही मनुष्यका मनभी स्वभावसे चंचल है इसका रोकना अति कठिन है॥

चलत्पलाशपताकपटकच्छपशीर्षकाः ।
विद्युद्दीपशिखाभूत दीपायद्वत्तथामनः ॥
वि० अ० १ श्लो० २१ ॥

इसका सिद्धान्त यह कि जैसे वायु लगने वा न लगने पर भी वृक्षका पत्ता चञ्चल रहता है। ध्वजाका वस्त्र भी वायुके लगने अथवा न लगने पर चञ्चल होता है। कूर्मका शिर कभी भीतर जाता है कभी बाहर आता है जैसे वह चञ्चल है जैसे बिजुली चञ्चल होती है। जैसे दीपककी लाट चञ्चल रहती है। जैसे रात्रिके समय जङ्गलमें भूतोंकी अग्नि चपल होती है। वैसे ही मनुष्यका मन भी चञ्चल रहता है।

यथोर्ध्वज्वलनंवह्नेः स्वभावो नतुयत्नतः ।
तथातिचंचलंचित्तं भोगासक्तमनादितः ॥
वि० अ० १ श्लोक २१

इसका अभिप्राय यह कि जैसे अग्निकी लाट विना ही यत्नके स्वभाव से ऊपरको जाती है वैसे मनुष्यका मन भी स्वभाव ही से अनादि कालका चञ्चल है ॥

मनोऽतिचञ्चलंचित्तं गतिमन्नात्रसंशयः ।
साभ्यासेनवैराग्येण निश्चलीक्रियतेऽपितत् ॥
वि० अ० १ श्लो० २४

इसका अभिप्राय यह कि मनकी अत्यन्त सूक्ष्मगति है, अत्यन्त चञ्चल है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं परन्तु ब्रह्माभ्यास और वैराग्यादि साधनोंके बल से मनका निरोध हो सक्ता है। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अग्निसे कोयला उत्पन्न होता है साबनादिके लगानेसे कोयलेका काला रङ्ग दूर नहीं हो सक्ता किन्तु अग्निमें रखनेसे कोयलेका काला रङ्ग दूर हो जाता है। क्योंकि अग्नि से कोयला उत्पन्न हुआ था। वैसे ही ब्रह्म रूपी अग्निसे मन रूपी कोयला उत्पन्न हुआ है। संसारके भोग रूपी साबनादिसे मनका मलिन वासना रूपी काला रङ्ग दूर नहीं होता किन्तु ब्रह्म रूपी अग्निमें लगाने ही से मन का वासना रूपी काला रङ्ग दूर हो जाता है। देखिये चींटी सर्वत्र भ्रमण

करती रहती है शान्तिको प्राप्त नहीं होती किन्तु उस चीटीको जब मिश्रीके कङ्करका लाभ हो जाता है तो वह चींटी उसी मिश्रीके कङ्करमें लय हो जाती है वैसे ही मनुष्यका मनरूपी चींटी संसारके भोगोंमें आरामको प्राप्त नहीं होता किन्तु जब शुद्ध ब्रह्मरूपी मिश्रीके कङ्करमें लगता है तो वहां ही लय हो जाता है। देखिये जैसे कौवा जानवर प्रत्येक वृक्षमें घूमता हुआ शान्तिको प्राप्त नहीं होता। परन्तु जब जहाजमें बैठ कर वही कौवा समुद्र के मध्यमें चला जावे तो वहां वृक्षोंका अभाव होनेसे जहाज ही में वह कौवा आराम पा जाता है। वैसे ही मन रूपी कौवा है विषय भोगरूपी प्रत्येक वृक्षोंमें भ्रमण करता है शान्तिको प्राप्त नहीं होता किन्तु जब सत्स ङ्गरूपी जहाज द्वारा ब्रह्मसागरमें लगाया जाता है तो वहां भोगानन्दका अत्यन्ताभाव होनेके कारण ब्रह्म ही में मन रूपी कौवा आरामको प्राप्त हो जाता है।

शमःपवित्रमतुलं शमःपुण्यमनुत्तमम् ।
शमःसुखमसंख्येयं शमःपापहरःस्मृतः ॥

इस महाभारतके श्लोकका सिद्धान्त यह कि मनका रोकना ही सर्वोत्तम पवित्र पन है मनका रोकना ही सर्वोत्तम पुण्य कर्म है, मनका रोकना ही सर्वोत्तम ब्रह्म सुखकी प्राप्तिका हेतु है, मनका रोकना ही सर्व पापोंका नाशक है ॥ १ ॥ इन्द्रियोंके रोकनेका नाम दम है।

एकादशेन्द्रियाण्यहुर्यानिपूर्वेमनीषिणः ।
तानिसम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥

इसमें मनुजी कहते हैं कि पूर्व प्राचीन विद्वानों ने एकादश प्रकारके इन्द्रिय वर्णन किये हैं सो सुनिये भली भांतिसे उन एकादश इन्द्रियोंका वर्णन किया जाता है।

श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वा नासिकाचैवपञ्चमी ।
पायूपस्थंहस्तपादं वाक्चैवदशमीस्मृता ॥

अभिप्राय इसमें मनुजीका यह है कि श्रोत्र १ त्वक् २ नेत्र ३ रसन ४ घ्राण ५ यह पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं। पायु १ उपस्थ २ हाथ ३ पाद ४ वाक् ५ ये पांच कर्म्म इन्द्रिय हैं अर्थात्

बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।

कर्मेन्द्रियाणिपञ्चैषां पाय्वादीनिप्रचक्षते ॥

एकादशंमनोज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥

इसमें मनुजी ने स्पष्ट कह दिया है कि पहिले पांचों ही ज्ञानेन्द्रिय और दूसरे पाचों कर्मेन्द्रिय कहाते हैं।

(एकादशं मनो ज्ञेयं०) इसमें मनुजीका सिद्धान्त यह कि ११ वां इन्द्रिय मन है मनका रोकना पूर्व हमने वर्णन कर दिया है ॥

श्रुत्वास्पृष्ट्वाचदृष्ट्वाच भुक्त्वाघ्रात्वाचयोनरः ।

नहृष्यतिग्लायति वा स विज्ञेयोजितेन्द्रियः ॥

इसमें मनुजीका सिद्धान्त यह है कि जब शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह पांचों दुष्ट विषय प्राप्त हो जावें तो शोकमें न गिरना यदि सर्वोत्तम शब्दादि विषयोंका लाभ हो जावे तो हर्षमें न गिरना उसीका नाम जितेन्द्रियता है॥

दमेनसदृशंधर्म्मं नान्यंलोकेषुशुश्रुम ।

दमोहिपरमोलोके प्रशस्तः सर्वकर्म्मणाम् ॥

इस भारतके प्रमाणका अभिप्राय यह है कि इन्द्रियोंको दुष्ट विषयोंकी ओरसे रोकनेके समान दूसरा कोई धर्म्म नहीं है । सर्व कर्म्मसे इन्द्रियों का दुष्ट विषयोंकी ओरसे रोकना ही प्रशंसनीय कर्म्म है गुरु वेद पर विश्वास रखनेका नाम श्रद्धा है ॥

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्, समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

इस वेद श्रुतिका सिद्धान्त यह कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् का नाम गुरु है श्रोत्रिय शब्दका वाच्यार्थ वेदोंका यथार्थ अर्थ जानने वाला आचार्य्य और ब्रह्मनिष्ठ शब्दका वाच्यार्थ यह कि आत्माके यथार्थ ज्ञान युक्त आचार्य । जैसे तीन प्रकारका मल्लाह होता है १ एक अन्धो मल्लाह होता है वह तिर तो जानता है । परन्तु दरियाका दूसरा किनारा उसको नहीं दीखता वह मुसाफिर को दरिया के पार नहीं कर सक्ता । २ मल्लाह पिंगला होता है, उसको दरिया का दूसरा किनारा तो दीखता है परन्तु वह तिर नहीं सक्ता उससे वह भी मुसाफिर को दरिया के पार नहीं उतार सक्ता । ३ मल्लाह उसको दरियाका दूसरा किनारा भी दीखता है और वह तिर भी सक्ता है वही मुसाफिरको दरिया के पार कर सक्ता है । वैसे ही जो केवल

वेदोंका पढ़ने वाला आत्मज्ञान रूपी नेत्रोंसे अन्धा है। वह जिज्ञासुको सं-चार सागरके पार नहीं कर सक्ता क्योंकि उसको संसार सागरका आत्मारूपी दूसरा किनारा ही नहीं दीखता॥ २—दूसरा जिसको आत्मज्ञान तो हुआ है परन्तु वेद वेदान्तको नहीं पढ़ा उससे वह पिंगला है यह भी जिज्ञासुको संसार सागरके पार नहीं कर सक्ता क्योंकि उसके आत्मज्ञान रूपी नेत्र तो हैं परन्तु उस में वक्तृत्व शक्ति रूपी पाद नहीं हैं उस से वह पिंगला है। किन्तु ३—जो आचार्य वेद वेदान्तका वेत्ता हो और आत्मज्ञान रूपी नेत्र जिस के खुले हों वही जिज्ञासुको भवसागरके पार कर सकता है। ऐसे गुरुके पास ही मुक्तिकी इच्छा युक्त जिज्ञासु दातौन या समिधा की भेंट लेकर जावे। और श्रद्धा भक्तिसे पूर्वोक्त गुरु की सेवा करे॥

इस समयके आत्मज्ञान से हीन गुरुओं पर (उदाहरण) एक नगर में एक विद्याहीन राजा रहता था उस को एक धूर्त ने शंका सिखला दी और झूंठा विश्वास करा दिया कि इस शंका को जो खण्डन कर दे वही विद्वान् होगा। दूसरे सर्व मूर्ख होंगे। इस को सुन कर राजा ने कहा कि वह कौनसी शंका है। विद्याहीन ने कहा कि आप फेर फेर करते जाया कीजिये यही शंका है। उस दिनसे राजा के पास बड़े २ विद्वान् आने लगे परन्तु राजा की फेर २ शंकाको कोई भी खण्डन न कर सका। अकस्मात् एक परमहंस संन्यासी भी राजा के दरबार में उपस्थित हुए राजा ने शंका पेश करदी परमहंस जी ने नानाप्रकारके उत्तर दिये परन्तु राजाकी फेर २ खण्डन न भई तब परमहंसने कहा कि हे राजन्! एक जंगलमें एक वधिकने जाल फैलाया था दानोंके लोभ से उस में अनेक चिड़ियां फस गईं। छूटना कठिन हो गया अकस्मात् एक ओर से जाल टूट गया तो चिड़ियां वहां से निकल २ भागने लगीं निकलने के समय फुर्र इस प्रकारका शब्द होने लगा। राजाने कहा फेर परमहंस ने कहा फुर्र, राजा ने कहा फेर परमहंस ने कहा फुर्र, राजाने कहा फेर, परमहंस ने कहा फुर्र, इसी भान्ति तीन घंटे गुजर गये न राजा की शंका समाप्त भई और न परमहंस का समाधान समाप्त हुआ। राजाको दस्त आया परमहंससे राजाने पूछा कि आपका समाधान कब समाप्त होगा तो परमहंसने कहा कि जब आपकी शंका की समाप्ति होगी। राजाने सोचा कि कसूर सब हमारा ही है क्योंकि जब हम वाहियात फेर फेर, फेर ऐसी शंका न करते तो वाहियात फुर्र फुर्र फुर्र ऐसा समाधान भी

कोई न देता । उस दिनसे राजा विद्या का पठन पाठन करने लगा और परमहंस से क्षमा मांगी । वैसे ही इस समय भी अनेक प्रकारके नये नये मत वाले अज्ञानी वञ्चक गुरुओं की यही लीला देखी जाती है कि विद्याहीन जो कि अकलके अन्धे और गांठके पूरे हैं उनको कुछ न कुछ हुज्जत बाजी सिखला देते हैं । उन धूर्तोंके देखनेमें विद्वान् ही कोई नहीं आता जब कोई फक्कड़ मिल जाता है तो नवीन मतवालोंकी कलई खुल जाती है ॥ सिद्धान्त यह कि जिज्ञासुको उचित है कि आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्यके पास जावे और श्रद्धासे उसकी सेवा करे ॥

अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पापप्रमोचनी ।
जहातिपापं श्रद्धावान् सर्पोजीर्णामिवत्वचम् ॥

इस महाभारतके श्लोकका सिद्धान्त यह कि गुरु पर श्रद्धाका न रखना बड़ा पाप है और गुरु पर श्रद्धाका रखना पापका नाशक है ॥ जो श्रद्धा युक्त शिष्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणको प्राप्त होता है वह शिष्य जन्म जन्मान्तरके पापोंको वैसे नष्ट कर डालता है जैसे कि जीर्ण हुए चमड़ेको सर्प त्याग देता है ॥३॥ चित्तको किसी साकार पदार्थमें स्थिर करनेका नाम समाधान है ॥ ४॥ अन्तःकरणकी बाह्य वृत्तियोंके निरोधका नाम उपराम है ॥५॥ शीतोष्णका सहारना वा क्षुधा पिपासाका सहारना अथवा मानापमानका सहारना उस का नाम तितिक्षा है॥ ६ ॥ इन छः साधनोंका नाम एक षट् संपत्ति है। जिज्ञासुको चाहिये कि विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति इन तीन साधनोंकी प्राप्ति के पश्चात् मुमुक्षुता साधनको भी संपादन करे । मुक्तिकी उत्कट जिज्ञासाका नाम मुमुक्षुता है । इन चार साधनोंके संयुक्त जो मनुष्य होता है वही मोक्ष पदकी प्राप्तिका अधिकारी कहा जाता है । मोक्ष पदका लाभ जीव ब्रह्मके अभेद ज्ञानसे होता है । जीव ब्रह्मके अभेद ज्ञानके साधन प्रकरणमें वेदान्त का श्रवण मनन और निदिध्यासन हैं । (श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः) यह श्रुति शतपथ ब्राह्मण की है वृहदारण्यकोपनिषद्में भी यह देखी जाती है । सिद्धान्त इस श्रुतिका यह कि चतुष्टय साधन संपन्न अधिकारी को वेदान्तका श्रवण मनन और निदिध्यासन करना उचित है । जीव ब्रह्म के भेदकी बाधक युक्तियोंसे वेदान्त वाक्योंके सुननेको वेदान्ती लोग प्रकरणमें श्रवण कहते हैं। जैसे कि छान्दोग्योपनिषद्में वेदान्त वाक्योंके श्रवण के सहायक युक्ति रूप षट्लिङ्ग वर्णन किये हैं । उनमें से एक तो १ उपक्रम

और उपसंहार की एकरूपता है। उपक्रम नाम आरम्भका उपसंहार नाम समाप्तिका है। अभिप्राय यह कि आत्मविद्याके प्रतिपादक जो ग्रन्थ हैं, उनके आरंभमें भी अद्वितीय ब्रह्मका प्रतिपादन है और समाप्तिमें भी अद्वितीय ब्रह्म हीका प्रतिपादन है। तो उन ग्रन्थोंके मध्यमें भी वही सिद्धान्त है। इसीका नाम उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता है यह वेदान्तके श्रवणका प्रथम लिङ्ग है॥ १॥ दूसरेका नाम अपूर्वता है। जैसे कि एक शब्द प्रमाण ही के गोचर मुख्य करके ब्रह्म है। अनुमानादिके गोचर नहीं, हां अनुमानादि प्रमाणोंसे ब्रह्मकी संभावना तो होती है जैसे कि—

जीवःपरस्मान्न भिद्यते। सच्चिदानन्दलक्षणत्वात्। यत्र यत्र सच्चिदानन्दलक्षणत्वं तत्र २ परब्रह्मत्वम्। यथापरमात्मनि॥

इत्यादि अनुमान शब्द प्रमाण जन्य वृत्तिकी भी आवरण भंगमात्र गोचरता है। अहंता त्वन्ता इदन्ता इत्यादि वृत्तियोंकी गोचरता नित्य मुक्त नित्य शुद्ध निराकार ब्रह्ममें नहीं। प्रमाणान्तरसे अगोचरता ही शब्द प्रमाण में अपूर्वता है। यह अपूर्वता वेदान्तके श्रवणका दूसरा लिंग है॥ २॥ तीसरा लिङ्ग अभ्यास है। वार वार कथन करनेका नाम अभ्यास है। जैसे छान्दोग्योपनिषद्में (तत्त्वमसि श्वेतकेतो) यह नव वार वाक्य लिखा है और जीव ब्रह्मके अभेदको दर्शानेके लिये नव उदाहरण भी छान्दोग्योपनिषद् में दिये हैं॥

दयानन्दने (तत्वमसि) इसका अर्थ जीव ब्रह्मका भेद किया है सो दयानन्दकी अविद्या है। क्योंकि युक्तिसे और वेदाङ्ग व्याकरण के बल से (तत्त्वमसि) सो ब्रह्म तू है, यही अर्थ सिद्ध होता है। उससे वार २ तत्वमस्यादि वाक्योंका कथन करना वेदान्तके श्रवणका तीसरा लिङ्ग है॥ ३॥ चौथा वेदान्त श्रवण का लिंग फल है। फल नाम प्रकरणमें मुक्ति का है। कर्मोपासना ज्ञान प्रतिपादक जितने वेदवाक्य हैं वह सर्व परंपरा अथवा साक्षात् जीव ब्रह्मके अभेद ही को वर्णन करते हैं। यही वेदान्तके श्रवण का चतुर्थ लिङ्ग है॥ ४॥ पांचवां लिङ्ग अर्थवाद है, अर्थवाद शब्दका सिद्धान्त प्रशंसाका वर्णन करना है। जैसे कि परा विद्या जो कि वेदमें ब्रह्म विद्याके प्रतिपादक वाक्य हैं। उनमें जीव ब्रह्मके अभेदकी प्रशंसा करी है। और जीव ब्रह्मके भेदका खण्डन किया है यह अर्थवाद वेदान्त

के श्रवण का पांचवां लिङ्ग है ॥५॥ छठवां लिङ्ग वेदान्तके श्रवणका उपपत्ति है। जीव ब्रह्मके अभेदको पुष्ट करने वाली युक्तियोंका नाम उपपत्ति है। जैसे कि ब्रह्मचेतनको यदि व्यापक माना जावे तो बिना ब्रह्मचेतनके दूसरे सर्व पदार्थ साकार सावयव और अवकाश वाले सिद्ध होते हैं। क्योंकि यदि प्रकृति परमाणु और अन्तःकरणादिकोंको साकार सावयव और अवकाश युक्त न माना जाय तो ब्रह्मचेतन सर्वव्यापक सिद्ध नहीं हो सका। यदि ब्रह्मचेतन सर्वव्यापक है तो विना ब्रह्मचेतनके दूसरे पदार्थ दृष्ट नष्ट स्वभाव वाले साकार सावयव सावकाश सिद्ध होते हैं। यही वेदान्त के श्रवण का छठवां लिङ्ग है ॥ ६ ॥

प्रकरण में लिङ्ग नाम चिन्हका है। इन षट् लिङ्गोंके श्रवण युक्त वेदान्त का श्रवण षट् प्रकार का कहा जाता है। वेदान्तके श्रवणसे प्रमाणगत संशय नष्ट हो जाते हैं। वेदान्तवाक्य अद्वितीय ब्रह्म के प्रतिपादक हैं अथवा नहीं ऐसा सन्देह वेदान्तके वाक्योंमें होता है। सो बार २ वेदान्त के श्रवण ही से नष्ट होजाता है। परन्तु जब तक जिज्ञासु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे वेदान्तका श्रवण न करेगा तब तक वेदान्तवाक्योंमें सन्देह जो कि प्रमाणगत संशय है सो कभी नष्ट न होगा ॥

(अहंब्रह्मास्मि) इस वाक्य का दयानन्दने अर्थ किया है कि समाधि के समय मुक्त पुरुष कहता है कि मैं और ब्रह्म एक अवकाशमें स्थित हैं। यह दयानन्दका अर्थ व्याकरण वेदाङ्गसे और युक्तियोंसे विरुद्ध है। किन्तु मैं ब्रह्म हूं यही अर्थ व्याकरण और युक्तिके बलसे उक्त वाक्यका सिद्ध होता है। (संशयात्मा विनश्यति) इस गीता वाक्यका भी प्रकरण और लक्षणसे यही सिद्धान्त है कि जीव ब्रह्मके अभेद प्रतिपादक वाक्योंमें जिसको संशय होता है। उस मनुष्यका सत्यानाश हो जाता है। उससे जिज्ञासुको उचित है कि प्रमाणगत संशयके नष्ट करने के लिये बार बार वेदान्त का श्रवण करे। जीव ब्रह्मके भेदकी बाधक और अभेदकी साधक युक्तियोंसे अद्वितीय ब्रह्मके चिन्तनका नाम मनन है वेदान्तके मननसे प्रमेयगत संशय नष्ट हो जाते हैं। प्रमेयगत संशय उभय प्रकार के हैं ॥ एक आत्मगत और दूसरे अनात्मगत संशय हैं। अनात्मगत संशय अनेक प्रकार के हैं उनके दर्शाने की कुछ आवश्यकता नहीं। परन्तु आत्मगत संशय भी अनेक प्रकारके हैं एक जीव ब्रह्म भेद गत आत्मसंशय है जैसे कि आत्मा ब्रह्म से भिन्न है अथवा

अभिन्न। यदि भिन्न हो तो आत्मा साकार सावयव सावकाश जड़ द्रव्य सिद्ध होगा। यदि अभिन्न होवे तो आत्मा ब्रह्मसे सर्वदा अभिन्न है वा सर्वदा अभिन्न नहीं ?। यदि सर्वदा अभिन्न न हो तो मोक्ष के समय भी ब्रह्म से अभिन्न आत्मा न होगा। यदि ब्रह्मसे आत्मा सर्वदा अभिन्न हो तो आत्मा आनन्दादि ऐश्वर्य वाला है अथवा नहीं। यदि आनन्दादि ऐश्वर्य वाला न हो तो आत्मा असत् जड़ दुःखरूप होगा। यदि आत्मा आनन्दादि ऐश्वर्य वाला है तो भी सत् चित् आनन्दादि आत्माके गुण हैं अथवा सत् चित् आनन्दादि ब्रह्मात्मा के स्वरूप हैं। इत्यादि और भी तत्पदार्थ ब्रह्मसे अभिन्न त्वंपदार्थ आत्मामें अनेक प्रकारके संशय हैं। वैसे केवल त्वंपदार्थ गोचर संशय भी आत्मगत संशय हैं। जैसे कि आत्मा शरीरादिकोंसे भिन्न है अथवा नहीं। यदि भिन्न हो तो भी आत्मा विभु परिमाण है वा मध्यम परिमाण, अथवा आत्मा अणु परिमाण है। जो आत्मा विभु परिमाण है तो भी आत्मा शुभाशुभ कर्मोंका कर्त्ता और शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख दुःख भोक्ता है, अथवा नहीं। यदि आत्मा शुभाशुभ कर्मोंका अकर्त्ता और शुभाशुभ कर्मोंके फलका अभोक्ता हो तो वह आत्मा परस्पर भिन्न अनेक हैं अथवा एक है। इत्यादि और भी अनेक प्रकार के त्वंपदार्थ आत्मगोचर प्रमेय संशय हैं। वैसे ही केवल तत्पदार्थ परमात्मा गोचर भी अनेक प्रकार आत्मगत प्रमेय संशय हैं। जैसे कि वैकुण्ठादिलोक विशेष वासी परिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयवों वाला एकदेशी ईश्वर शरीर सहित एकदेशी है अथवा शरीर रहित विभु है। यदि शरीर सहित एकदेशी हो तो वह ईश्वर विभु न होगा। यदि शरीर रहित विभु हो तो वह ईश्वर परमाणु आदि सापेक्ष जगत्का कर्त्ता है अथवा निरपेक्ष जगत् का कर्त्ता है। यदि परमाणु आदि निरपेक्ष जगत्का कर्त्ता कहें तो वह ईश्वर ही जगत्का उपादान कारण होगा। यदि परमाणु आदि सापेक्ष जगत्का कर्त्ता है तो भी केवल कर्त्ता है अथवा अभिन्न निमित्त उपादान रूप ईश्वर जगत्का कर्त्ता है। यदि अभिन्न निमित्त उपादान रूप ईश्वर जगत्का कर्त्ता है तो वह ईश्वर जीवोंके कर्मोंसे निरपेक्ष कर्त्ता होनेके कारण विषम कारिता आदिक दोषोंके संयुक्त है अथवा जीवोंके कर्मोंके सापेक्ष जगत्का कर्त्ता होनेके कारण विषम कारितादि दोषोंसे रहित है। यदि वह ईश्वर विषमकारितादि दोषोंसे रहित है तो वह

ईश्वर भक्तोंकी रक्षा करने के और दुष्टोंको विनष्ट करनेके लिये रामकृष्णादि अवतारोंको धारण करता है अथवा नहीं। यदि वह अवतार धारण करता है तो वह ईश्वर एकदेशी हो जावेगा। इत्यादि और भी केवल तत्पदार्थ गोचर परमात्म संशय प्रमेयगत संशय हैं। इन सब संशयोंकी निवृत्ति वेदान्तके मननसे हो जाती है। कर्मोपासना ज्ञान और मोक्ष गत संशय भी प्रमेय संशय हैं। ज्ञानके साधन गत संशय भी प्रमेय संशय हैं उन सबका वेदान्तके बार २ चिन्तन रूप मनन ही से नाश हो जाता है ॥२॥ अनात्माकार वृत्तियोंके व्यवधान रहित आत्माकार वृत्तियों की स्थितिका नाम निदिध्यासन है निदिध्यासन ही की परिपक्क अवस्था ही का नाम समाधि है। निदिध्यासनके लाभसे विपरीत भावनाका नाश हो जाता है। विपर्यय ज्ञान ही का नाम विपरीत भावना है। अन्नमय १ प्राणमय २ मनोमय ३ विज्ञानमय ४ आनन्दमय ५ इन पांच कोशोंमें से किसी एक अनात्म पदार्थको आत्मा निश्चय कर लेना वही विपरीत भावना दोष है। उसका बार २ आत्माकार वृत्तियोंसे अत्यन्ताभाव हो जाता है। परन्तु वेदान्तका श्रवण मनन निदिध्यासन करनेसे भी जिस के अन्तःकरण में भूत भावी वर्त्तमान यह तीन प्रकारके दोष रह जाते हैं वह वेदान्तका श्रवण मनन निदिध्यासन कर भी लेवे तो भी उसे आत्मज्ञान नहीं हो सक्ता। भूत दोष उसको कहते हैं जो कि वेदान्त श्रवणके प्रथम स्त्री आदिसे प्रेम और इष्ट मित्रोंके साथ व्यवहार होता था। वेदान्त श्रवण के समय उसके संस्कार जन्य स्मृति ज्ञान हो आता है उससे वेदान्तका श्रवण करने से भी आत्मज्ञान नहीं हो सक्ता। जिज्ञासुको उचित है कि भूतकालके विषयोंमें द्वेष दृष्टि लावे तो उससे भूत दोष नष्ट हो जावेगा। भावी दोष वह है जो कि वेदान्त श्रवणसे पहिले पुराणोक्त ब्रह्मलोकमें जानेके लिये यज्ञादि कर्म्मोंको जीव करता था। वेदान्त श्रवणके समय ब्रह्मलोकके भोगोंके ज्ञान जन्य संस्कारोंसे ब्रह्मलोकके भोगोंका स्मरण हो आता है। जिज्ञासुको उचित है कि ब्रह्मलोकके भोगोंमें द्वेष दृष्टि करे। उससे भावी दोषका नाश हो जावेगा। विषयासक्ति बुद्धिकी मन्दता विपर्यय ज्ञान और कुतर्क भेदसे वर्त्तमान दोष चार प्रकारका है। वेदान्तके श्रवणसे प्रथम विषयोंमें लम्पटता विषयासक्ति दोष है। उसमें द्वेष दृष्टि करे तो जिज्ञासुमें से वह भी दोष नष्ट हो जाता है। आप तो कुछ समझे ही नहीं परन्तु समझानेसे भी न समझ सके यह बुद्धिकी मन्दता दोष है।

बार २ वेदान्तका चिन्तन करनेसे जिज्ञासुका यह दोष भी नष्ट हो जाता है। विपरीत ज्ञान ही को विपर्यय ज्ञान कहते हैं बार २ निदिध्यासन करने से वह दोष भी दूर हो जाता है। निर्दोषीमें दोष लगानेको कुतर्क कहते हैं। जैसे कि इस समय मतमङ्ग और मत शास्त्रके विचार हीन अनेक मनुष्य अपनी अविद्यासे निर्दोष ब्रह्मज्ञानियों संतों पर झूठे दोष लगा रहे हैं। जिज्ञासुको उचित है कि जब तक ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ विद्वानों सन्तोंकी सत्संगसे परीक्षा न कर लेवे तब तक धूर्तोंकी कुतर्कको सुनकर विद्वानोंके सत्संगसे कभी विमुख न होवे। यहां तक विवेक वैराग्य षट्सम्पत्ति मुमुक्षुता श्रवण मनन और निदिध्यासन यह ज्ञानके सात साधन वर्णन किये। अब तत्पदार्थ त्वंपदार्थके संशोधन रूपी ज्ञानके अष्टम साधन पर विचार किया जाता है।

तथाहि (तत्वमसि) इस उत्तर भाग वेद मन्त्रमें (तत्–त्वं–असि) यह तीन पद हैं। तत् पदका अर्थ माया विशिष्ट ईश्वर है। परन्तु यह तत् पदका शक्यार्थ है। शक्तिवृत्तिसे जिसका अर्थ श्रोताको शाब्द बोध होता है वह शब्दका शक्यार्थ कहाता है। त्वंपदका शक्यार्थ अन्तःकरण विशिष्ट जीव है। असि पदका शक्यार्थ जीवेश्वरकी एकता है। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि ईश्वर और जीव एक नहीं हो सक्ते और उक्त वाक्य वेदका नहीं किन्तु उपनिषद्का वह वाक्य है। यह शंका भी अविद्या मूलक है। क्योंकि माया विशिष्ट ईश्वर और अन्तःकरण विशिष्ट जीवकी तो एकता नहीं। परन्तु जीवेश्वरके स्वरूपमें जो केवल चेतन है वह एक है। वेदोत्पत्ति मण्डनके व्याख्यानमें उपनिषद् ग्रन्थ भी वेद सिद्ध हो चुके हैं। उससे जीवेश्वर एक हो सक्ते हैं। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक है। जीव अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् एकदेशी है। उससे जीवेश्वर एक नहीं हो सक्ते। यह शङ्का भी भ्रान्ति मूलक है। क्योंकि सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्व और सर्वव्यापकत्वादि धर्म्म मायाके हैं। चेतनके नहीं। वैसे ही अल्पज्ञत्व अल्पशक्तित्व और एकदेशित्व धर्म्म अन्तः करणके हैं चेतन के नहीं। इस लिये जीवेश्वरके स्वरूपमें चेतन एक है। सर्वज्ञत्वादि और अल्पज्ञत्वादि धर्म्म जीवमें भान होते हैं। उससे जीवेश्वर एक नहीं, यह शंका भी अज्ञान मूलक है क्योंकि जैसे रक्तपुष्पकी रक्तताका स्फटिक मणिमें भान होता है परन्तु रक्तता रक्त पुष्पका धर्म्म है वैसे ही मायाके सर्वज्ञ

तादि धर्म्म माया विशिष्ट ईश्वर अथवा केवल चेतनमें भान होते हैं अन्तःकरणके अल्पज्ञतादि धर्म्म अन्तःकरण विशिष्ट अथवा केवल चेतनमें भान होते हैं। परन्तु केवल चेतनमें सर्वज्ञत्वादि और अल्पज्ञत्वादि धर्म हैं नहीं। उससे जीवेश्वरके स्वरूपमें जो चेतन है उसमें एकता है उसीसे जीवेश्वर एक हैं।

दयानन्दके भक्त कहते हैं कि सर्वज्ञत्वादि मायाके और अल्पज्ञत्वादि अन्तःकरणके धर्म्म चेतनमें भान होते हैं। यह ज्ञान सत्य है अथवा मिथ्या यदि मिथ्या कहो तो जीवेश्वर भी मिथ्या होंगे। यदि उक्त ज्ञानको सत्य कहो तो जीवेश्वरका एकत्व सिद्ध न होगा यह शंका भी विद्याहीन मूर्खों की है। क्योंकि वेदान्त सिद्धान्तमें ईश्वरत्व और जीवत्व दोनों ही कल्पित वा मिथ्या हैं। किन्तु यह दोनों धर्म माया अन्तःकरणके हैं। और केवल नित्य मुक्त नित्य शुद्ध ब्रह्म चेतनमें भान होते हैं। उससे जीवेश्वर शब्दोंके शक्यार्थमें जो चेतन है वह त्रिकाल अबाध एक है। माया अन्तःकरणके ईश्वरत्व जीवत्व धर्म अनिर्वचनीय कल्पित मिथ्या हैं उससे जीवेश्वर एक हैं। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि जब जीवत्व ईश्वरत्व दोनों मिथ्या हैं तो जिस ईश्वरकी भक्तिकी जाती है और जो भक्ति करने वाले जीव हैं और भक्तोंको जो भक्तिका फल मिलता है वह सर्व निष्फल प्रवृत्तिके जनक होंगे। यह शंका भी विद्याहीनों की है क्योंकि जैसे सोए हुए स्वप्नावोंको स्वप्नके समय चक्रवर्ती राजा भान होता है उसकी वह स्वप्नावी नौकरी करता है। उस नौकरीका फल भी स्वप्नके राजासे मिल जाता है। वैसे ही जाग्रत्कालके अनिर्वचनीय मिथ्या ईश्वरकी अनिर्वचनीय मिथ्या जीव भक्ति करते हैं। उस भक्तिका फल भी भक्त जीवोंको मिलजाता है। उससे जीवेश्वरमें उपासक उपास्य भाव सफल प्रवृत्तिका जनक है। सिद्धान्त यह कि तत्पद त्वंपदके शक्यार्थमें जीवेश्वर एक नहीं किन्तु शक्यार्थमें जो चेतन है उसमें जीवेश्वर की एकता है॥

सिद्धान्त यह कि तत्पदकी शक्ति वृत्तिसे माया विशिष्ट ईश्वर चेतनका भान होता है तत्पदकी लक्षणावृत्तिसे केवल चेतन तत्पदके लक्ष्यार्थका भान होता है। त्वंपदकी शक्ति वृत्तिसे अन्तःकरण विशिष्ट चेतन त्वंपदके शक्यार्थ जीव का भान होता है। त्वंपदकी लक्षणावृत्तिसे केवल चेतन त्वंपदके लक्ष्यार्थका भान होता है। तत्पद और माया विशिष्ट ईश्वर का जो वाच्य

वाचक भाव संबन्ध है वह शक्तिवृत्ति है। मायाविशिष्ट चेतनमें जो माया है उसका जो केवल चेतन है उसमें कल्पित तादात्म्य संबन्ध है वही लक्षणावृत्ति है। माया विशिष्ट तत्पदका शक्यार्थ और अन्तःकरण विशिष्ट चेतन त्वंपदका शक्यार्थ दोनों असिपदके शक्यार्थ हैं। दोनों शक्यार्थोंमे असिपद का वाच्य वाचक भाव संबन्ध शक्तिवृत्ति है। माया अन्तःकरणका जो नित्य मुक्त नित्य शुद्ध निराकार ब्रह्मचेतनमें कल्पित तादात्म्य संबन्ध है। वही असिपदकी लक्षणावृत्ति है। तत् त्वं-असि तीनों पदोंकी लक्षणावृत्तिसे एक शुद्ध ब्रह्मचेतन ही का श्रोता को शाब्दबोध होता है परन्तु शुद्ध ब्रह्मचेतन का न जानना रूप जो जो अज्ञान है सो न शक्ति वृत्ति और लक्षणा-वृत्ति से नष्ट होता है। क्योंकि पद और अर्थका वाच्य वाचक भाव संबन्ध शक्ति वृत्ति है। पदका और अर्थका लक्ष्य भाव संबन्ध लक्षणावृत्तिहै। शक्ति वृत्तिसे शक्यार्थोंका शाब्द बोध होनेके पश्चात् केवल नित्य मुक्त नित्य शुद्ध निराकार निर्विकार ब्रह्मचेतन ही लक्षणावृत्तिसे लक्ष्यार्थका शाब्द बोध होता है। उसके पश्चात् अन्तःकरणके सत्व गुणका परिणाम एक और भी दू-सरा वृत्ति रूप ज्ञान उत्पन्न होता है। उससे नित्य मुक्त नित्य शुद्ध सजातीय विजातीय स्वगत भेदसे रहित निराकार ब्रह्मचेतनका न जानना रूपी अज्ञान नष्ट हो जाता उसका इतना ही काम है कि जब श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास मुक्तिकी उत्कट जिज्ञासायुक्त जिज्ञासु जाता है तो वह गुरु उस जि-ज्ञासुको (तत्त्वमसि) इस प्रकार का उपदेश देते हैं उसको सुनकर (अहं ब्रह्मास्मि) इस प्रकारका जिज्ञासुके अन्तःकरणमें वृत्ति रूप ज्ञान होता है (तत्त्वमसि) इस वाक्यका सिद्धान्त यह गुरु कहते हैं कि हे शिष्य जो तत् पदका लक्ष्यार्थ ईश्वर साक्षी चेतन है सो त्वंपदका लक्ष्यार्थ जीव साक्षी तू है। इसको सुनते ही शिष्यके हृदयमें (अहंब्रह्मास्मि) अर्थात् जो अहंपद का लक्ष्यार्थ जीव साक्षी है। वही ब्रह्म पदका लक्ष्यार्थ ईश्वर साक्षी चेतन मैं हूं इस प्रकारका वृत्ति रूप ज्ञान जिज्ञासुके अन्तःकरण ही में होता है। उस वृत्ति रूप ज्ञानोपहित और अन्तःकरणो पहित केवल निराकार शुद्ध ब्रह्म-चेतन सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित स्वप्रकाश से निरावरण भान होता है॥

अहंता त्वन्ता इदन्ता वृत्तियोंकी गोचरता का उस शुद्ध ब्रह्मचेतन में सर्वथा सर्वदा अत्यन्ताभाव है। अज्ञान तत्कार्य नाम रूप और क्रियात्मक

प्रपञ्चका बाध निश्चय और स्वप्रकाश स्वरूप से शुद्ध ब्रह्म चेतन का भान होना उसी का नाम वेदान्त के ग्रन्थोंमें मोक्ष पद कहा है। उसी ही का नाम जन्मान्तरका अभाव स्वरूप विदेह मुक्ति है। यहां तक विवेक वैराग्य षट्-सम्पत्तिमुमुक्षुता श्रवण मनन निदिध्यासन और तत् त्वंपदार्थों का संशोधन यह आठ प्रकार से मुक्ति के साधनों का स्वरूप वर्णन किया। आठ साधनों की प्राप्ति से जो जीवेश्वराभेद ज्ञान आविर्भाव होता है उस का भी संक्षेपसे वर्णन किया। अविद्या तत्कार्य की निवृत्ति और परम आनन्द ब्रह्मचेतनकी प्राप्ति रूप मोक्षका स्वरूप भी दर्शा दिया यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो—

ननिरोधोनचोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
नमुमुक्षुर्नवै मुक्त इत्येषापरमार्थता ॥

अभिप्राय यह है कि—

नांहि खपुष्प समान प्रपंच तो ईश कहां कर्त्ता जु कहावे ।
बन्ध हू होय तो मोक्ष बने और होय अज्ञान तु ज्ञान नशावै॥
साक्ष नहीं इम साक्षी स्वरूप न दृश्य नहीं दृक् काहि जनावै ।
जान यही कर्त्तव्य तजे सब निश्चल होत ही निश्चल पावे ॥

इस गौड़पादाचार्य की कारिका और निश्चलदास कृत उक्त कारिकाके अर्थ से यही सिद्धान्त निकलता है कि (नेह नानास्ति किञ्चन) अर्थात् नित्य मुक्त नित्य शुद्ध निराकार निराधार निर्विकार ब्रह्मचेतन आत्मा के बिना बन्ध से लेकर मोक्ष पर्यन्त त्रिकाल बाध है। किन्तु त्रिकाल अबाध शुद्ध चेतन ही स्वप्रकाश स्वरूप से जिज्ञासु के अन्तःकरण में भान होता है।

तावद्गर्जन्तिशास्त्राणिजंबुकाविपिनेयथा ।
नगर्जतिमहाशक्तिर्यावद्वेदान्तकेशरी ॥
अधीत्यचतुरोवेदान् धर्म्मशास्त्राण्यनेकशः ।
ब्रह्मतत्त्वंनजानाति दर्वीपाकरसंयथा ॥

अब हम मुक्तिमण्डन विषयक व्याख्यान को समाप्त करते हैं ॥

ओम् शान्तिः ३ ॥

———

वेदोक्तयोगविद्याखण्डन—

व्याख्यान नं० ७ ।

सर्व सनातनहिन्दुधर्म्मप्रेमियोंको विदित किया जाता है कि इस व्याख्यान में राजयोग विद्या का खण्डन होगा । परन्तु प्रथम संक्षेपसे दयानन्दकी योग विद्याका खण्डन दर्शाते हैं, क्योंकि दयानन्द की योगविद्याका न तो राज योगसे सम्बन्ध है और न हठयोगसे सम्बन्ध है। किन्तु बाबाजी दयानन्दकी बनावटी योगविद्या है। उस का खण्डन प्रथम न दर्शाया जायगा तो भोले भाले हिन्दू सन्तानों को दयानन्दके भक्त बहका डालेंगे ॥

देखिये पांचवी वार का छपा हुआ सत्यार्थ प्रकाश (समुल्लास ३) (प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य) इस योगसूत्र के भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि "प्राणको बलसे वैसे बाहर फेंक देवे जैसे कि वमन से अन्न बाहर निकल जाता है । जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रियको ऊपर खेंच रक्खे। तब तक प्राण बाहर रहता है मनमें (ओम्) इसका जप करता जावे । ऐसे करनेसे मनकी पवित्रता और स्थिरता हो जाती है„ दयानन्दोक्त इस योग विद्या विषय का सिद्धान्त यह प्रकाशित हुआ कि प्राण के बाहर फेंकने और गुदेन्द्रिय को ऊपर खींच रखनेसे योगीका मन स्थिर हो जाता है ॥

(सन् १८७५ के) सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द ने पूर्वोक्त सूत्र के भाष्य में कहा है कि "जैसे मक्खी खालेने से उलटी आती है वैसे ही योगी को उचित है कि मूल इन्द्रिय से अपानवायुको हृदयमें ले आवे, हृदय में से अपानवायुके साथ उदानवायु को भी साथ लेवे और कण्ठमें से प्राणवायु को भी अपान और उदानवायुके साथ मिलाकर बाहर फेंक देवे„ यदि दयानन्दकी इस योगविद्याको सत्य मानें तो पांचवें सत्यार्थप्रकाश की योगविद्याका लेख मिथ्या होता है । यदि उसको सत्य मानें तो सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाश की योगविद्या का लेख मिथ्या होता है । परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द की योगविद्या के दोनों लेख झूठे हैं। जो हो—पांचवें सत्यार्थप्रकाशकी योगविद्या में दयानन्दने प्राणोंके बाहर फेंकदेने और गुदेन्द्रियको ऊपर खींच रखने से मनका स्थिर होना कहा है फिर उसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ७)

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

इसके भाष्यमें दयानन्दने योगी को आज्ञा दी है कि मन को सर्व ओर

से रोक कर नाभि वा हृदय किंवा कण्ठ अथवा नेत्र वा शिखा वा पीठ के मध्य हाड़में स्थिर करे। इस के विरुद्ध (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना प्रकरण) दयानन्द ही का लेख है कि "जिह्वा अथवा नासिकाके अग्रभागमें मनको स्थिर करे„ दयानन्दकी इस तीन प्रकारकी परस्पर विरुद्ध योगविद्या का सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि-योगी को चाहिये कि साकार पदार्थ में मन को स्थिर करे ॥

फिर उस के विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ११) (नास्तिको वेदनिन्दकः) इत्यादि वाक्यों के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "साकार पदार्थ में मन कभी स्थिर नहीं हो सकता क्योंकि साकार पदार्थके एक२ अवयवमें मन दौड़ता है किन्तु निराकार परमात्मामें मन स्थिर हो जाता है" दयानन्दके ये दोनों प्रकारके ही लेख पूर्वापर विरुद्ध होनेके कारण झूठे हैं। क्योंकि (७ सत्या० समुल्लास १३) उस की समाप्तिमें दयानन्दने पूर्वापर विरुद्ध लेखों ही को झूठी दरोगहलफी कहा है ॥

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्०। (सत्या० समुल्लास ११)

इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि "जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित झूठा अधर्म्म और अग्राह्य है„ दयानन्दके इस लेख के अनुसार दयानन्द की योगविद्या विषयक सर्वलेख परस्पर विरुद्ध होने के कारण कल्पित झूठे अधर्म और अग्राह्य सिद्ध हो चुके ॥

(ऋग्वे० मण्ड० १ सू० १०१ मं० २ ॥ यो व्यंसं जा०) इसके भाष्यमें दयानन्द ने कहा है कि "सेनापति को चाहिये अधर्मीको ऐसा मारे कि उस के कन्धे अलग २ हो जावें„ (ऋग्वे० मण्ड० १ सू० ३२ मं० ८ ॥ नदंन०) इस के भाष्यमें दयानन्द का लेख है कि "जो अधर्मी मनुष्य होता है वह पहिले बढ़ कर फिर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है" (ऋग्वे० मण्ड० १ सू० ३६। मं० १६ घनेव० विष्वग्व०) इसके भाष्य में दयानन्दने कहा है कि "जैसे लोहेके घनसे पत्थर तोड़े जाते हैं वैसे ही अधर्मी के अङ्गों को तोड़ डाले" अत्र निष्पक्ष लोग न्याय के नेत्रोंसे निर्णय करलेवें कि दयानन्दकी बनावटी योगविद्या का और उस योगविद्या के भक्तों का कैसा सत्कार हो रहा है। हिन्दुसन्तानों को सूचित किया जाता है कि दयानन्दोक्त बनावटी योगविद्या का शीघ्र ही तिरस्कार कर दीजिये। यदि आप ऐसा न करेंगे तो आप का सत्कार भी वैसे ही होगा जैसे कि दयानन्दोक्त योगविद्याके भक्तों का हो रहा है।

अग्नेसहस्राक्षशतमूर्द्धञ्छतंतेप्राणाः०। (यजुर्वे० अ० १७ मं०७१)

इस मन्त्र के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि "जो योगी होता है वह योग के साधनों को प्राप्त करके सहस्रों जीवों के शरीरों में प्रवेश कर जाता है। और सहस्रों नेत्रादि से देखनादि चेष्टाको एक ही समय कर सकता है, सहस्रों पदार्थोंका स्वामी एकही समय हो सकता है, यहां दयानन्दके भक्तों से प्रष्टव्य यह है कि दयानन्द स्वयं भी ऐसा योगी था अथवा नहीं ? यदि नहीं कहें तो दयानन्द के भक्तों को भी योगविद्या के उक्त लाभका सर्वथा असंभव है।

यदि दयानन्द को उक्त योगविद्याके फलका लाभ हुआ था तो वह जगत् भरके पदार्थोंका अधिपति क्यों न हो गया (किंच) (यजुर्वे० अ० १७ मं० ६८ ॥ स्वर्यन्तो नापेक्षन्त०) इसके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि योगीजन आत्माके बल से संकल्प ही के साथ सूर्य के ऊपर जा चढ़ता है। फिर संकल्प ही के साथ भूमि पर आ जाता है यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि दयानन्द भी योगी था अथवा नहीं ? यदि नहीं कहो तो दयानन्दके इतिहास में कहा है कि बाबा जी योगी २४ घंटे तक की समाधि को लगाते थे। वह लेख मिथ्या होगा क्योंकि विना योग विद्याके समाधि ही नहीं लग सकती। यदि कहो कि दयानन्द भी योगी था तो कहिये दयानन्द भी संकल्प ही के साथ सूर्यके ऊपर चढ़ जाने की चेष्टा करता था अथवा नहीं ? यदि नहीं कहो तो वह योगी सिद्ध न होगा यदि कहो कि दयानन्द भी वेदोक्त योग रीतिकी चेष्टा करता था तो वह रेलगाड़ी की असवारी में क्यों बैठता था ? उससे यही सिद्ध होता है कि बाबा जी दयानन्दमें वेदोक्त योगविद्या का अत्यन्ताभाव था। दयानन्दके भक्तोंने गप्प लगा दिया कि वह २४ घंटा तक की समाधि लगाते थे।

अब वेदोक्त हिन्दुमतकी रीतिसे योगविद्या का वर्णन किया जाता है। (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) इस योगसूत्र में पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि मन की वृत्तियों का दुष्ट विषयों से रोकलेना ही योग है, प्रकरण में मन और चित्त एक ही पदार्थ के नाम हैं ॥ (धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति) इस तैत्तिरीयारण्यक के मन्त्र का अभिप्राय यह है कि मन की वृत्तियों का रोकना जिसमें होता है उसी ब्रह्मचेतन में सर्व नाम रूप और क्रियात्मक प्रपञ्च स्थित है उसी हेतुसे मनकी वृत्तियोंका रोकना सर्वोत्तम है ॥

धर्मेमनःसमाधाय ततोज्ञास्यसितत्पदम् ।
धर्मेमनःसमाधाय ध्यानयोगपरोभव ॥

इस मन्त्रभारतके प्रमाण का सार यह है कि मन की वृत्तियों के रोकने ही से आत्मचिन्तन में मन स्थिर होता है। मन की वृत्तियों के रुक जानेसे ही निरावरण ब्रह्मचिन्तन का भान होता है। मन की वृत्तियों के रुकने ही का नाम योग कहा जाता है॥

(प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः) इस योगसूत्र में मुख्य करके मन की पांच वृत्तियां कही हैं। ज्ञप्ति व्यवहारका हेतु और माया अन्तःकरणके परिणामका नाम वृत्ति है यह वृत्तिका सामान्य लक्षण है (प्रमाकरणं प्रमाणम्) अर्थात् यथार्थ वृत्तिका करण प्रमाण है (व्यापारवदसाधारणं कारणं करणम्) अर्थात् व्यापार वाले और असाधारण कारण को करण कहते हैं (तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः व्यापारः) अर्थात् जो कारणसे उत्पन्न हो कर कारण के कार्य को उत्पन्न करे उसे व्यापार कहते हैं। अभिप्राय योगसूत्र का यह कि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे उपजी जो अन्तःकरणकी वृत्तियां उन्हें शब्द स्पर्शरूप रस गन्धादि दुष्ट विषयोंकी ओरसे रोक कर ब्रह्मचेतनात्मा की ओर लगाना यह मनकी प्रथम षट् प्रकारकी वृत्तिका निरोध है। प्रकरणमें मन और अन्तःकरण एक ही अर्थके वाचक दोनों शब्द हैं। क्योंकि एक ही अन्तःकरण संकल्प विकल्प करनेसे मन, पदार्थका चिन्तन करनेसे चित्त, पदार्थका निश्चय करनेसे बुद्धि और अभिमान करनेसे अहंकार कहा जाता है। यह वेदान्तका सिद्धान्त है। पांच ज्ञानेन्द्रिय और छठा मन यह षट् प्रकारका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अनुमानादि मिलाकर प्रमाणोंकी ११ संख्या है। प्रकरणमें प्रमाण जन्य वृत्तियोंके रोकनेका नाम ही योग सिद्ध हुआ है। यह वृत्तियां मन ही का परिणाम हैं (१) दूसरी वृत्ति विपर्यय है अर्थात् उलटा ज्ञान जैसे कि दुःख में सुख बुद्धि, अशुचि में शुचि बुद्धि, अपवित्र में पवित्र बुद्धि, अनात्मा में आत्म बुद्धि, इस चार प्रकार की वृत्ति के निरोध का नाम मन की दूसरी वृत्तिका रोकना है। संशय का नाम विकल्प वृत्ति है, आलस्यका नाम निद्रा वृत्तिहै, संस्कार जन्य पदार्थ के स्मरण का नाम स्मृति वृत्ति है। पतंजलि मुनि का सिद्धान्त है कि इन पांच प्रकार की मन की वृत्तियों को अनात्म पदार्थों की ओर से हटाके आत्मपदार्थकी ओर लगातार लगाने का नाम ही योग है॥

उक्त योगकी प्राप्तिके (यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः) ये अष्टांग हैं। यथाक्रम रीतिसे इन अष्टांगोंका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है—जैसे कि (अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः) यम पांचप्रकार

का है यमयोगका प्रथम साधन है (सर्वथा सर्वदा सर्वेषु भूतेष्वनभिद्रोहोऽहिंसा) इस व्यास मुनिके कथनका सिद्धान्त यह है कि सब तरह से सदैव सर्व जीवों में प्रेम रखना किसी जीव को न सताना उसका नाम अहिंसा है ।

अहिंसापरमोधर्मस्तथाऽहिंसापरन्तपः ।

अहिंसापरमंसत्यं यतोधर्म्मःप्रवर्त्तते ॥

इस महाभारत के वचन का सिद्धान्त यह कि अहिंसा ही सर्वोत्तम धर्म है, अहिंसा ही सर्वोत्तम तप है, अहिंसा ही सर्वोत्तम सत्यभाषण है, अहिंसा ही से मनुष्य धर्म पथमें चल सकता है, योग की इच्छावाले को उचित है कि मन की वृत्तियों के रोकने रूपी योग के प्रथम साधन पांच यमोंमें से एक अहिंसारूपी यमको संपादन करे (२) दूसरे यमका नाम सत्यभाषण है ।

यथार्थकथनंयच्च सर्वलोकसुखप्रदम् ।

तत्सत्यमितिविज्ञेयमसत्यंतद्विपर्ययः ॥

इस पद्मपुराण के वचन का अभिप्राय यह है कि जो यथार्थ भाषण करना उसीका नाम सत्य है । सर्वलोकों में सत्य ही सुख का देने वाला है । इसलिये इस सत्य से जो विरुद्ध है वही असत्य कहाता है ।

सत्यमेवजयतेनानृतं सत्येनपन्थाविततोदेवयानः ।

इस मुण्डकोपनिषद् का सिद्धान्त यह है कि सत्य ही का जैजैकार होता है, असत्यका जैजैकार नहीं होता सत्य ही से देवयान मार्गका ज्ञान होता है॥

सत्यंवद सत्यान्न प्रमदितव्यम् । सत्यान्नास्ति परोधर्म्मः ॥

इस तैत्तिरीयोपनिषद् के मन्त्र का सारांश यह है कि सदैव सत्यभाषण करो । सत्यसे प्रमाद कभी मत करो सत्यके समान दूसरा कोई भी सर्वोत्तम धर्म्म कदापि कहीं नहीं है ।

सत्ये धर्म्मंप्रशंसन्ति विप्रर्षिपितृदेवताः ।

इस महाभारत के वचनका सिद्धान्त यह है कि विद्वान् ऋषि और ब्रह्मज्ञानी तथा देवता लोग सत्यधर्म ही की प्रशंसा करतेहैं ।

सत्यंसत्सुसदाधर्म्मः सत्यंधर्मःसनातनः ।

सत्यमेवनमस्येत सत्यंहिपरमागतिः ॥

इस महाभारतके प्रमाणका अभिप्राय यह है कि सत्य ही सर्वोत्तम सनातन धर्म्म है । सत्य ही से सर्वोत्तम मोक्ष पद का लाभ होता है उससे सत्य को प्रणाम करो ।

सत्यंधर्मस्तपोयोगः सत्यंब्रह्मसनातनम् ।
सत्यंयज्ञःपरःप्रोक्तः सर्वंसत्येप्रतिष्ठितम् ॥

इस श्लोकका अभिप्राय यह है कि सत्य ही से धर्म तप और योगका लाभ होता है । सत्य ही से सनातन ब्रह्मचेतनात्मा का लाभ होता है । सत्य ही सर्वोत्तम यज्ञ है सर्वजगत् सत्य ही में स्थित है ॥

नास्तिसत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकंपरम् ।
स्थितिर्हिसत्यधर्मस्य तस्मात्सत्यंनलोपयेत् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं और असत्यसे बड़ा कोई पाप नहीं है । सत्य ही से धर्म स्थिर होताहै उससे सत्यका लोप करना किसीको उचित नहीं । पूर्वोक्त सर्व श्लोक महाभारतके हैं, सिद्धान्त यह कि योग की इच्छा वाले अधिकारी को चाहिये कि सत्यरूपी दूसरे यम को भी संपादन करें ॥ २ ॥ तीसरा यम चोरीका त्याग है योगाधिकारी को चाहिये कि चोरीके त्याग रूपी तीसरे यमको भी संपादन करै ॥ ३ ॥

चतुर्थ यम ब्रह्मचर्य है (ब्रह्मचार्येति ब्रह्मचारी) यह अथर्वण वेदका मन्त्र है इसका सारांश यह कि वीर्य के निरोध का नाम ही ब्रह्मचर्य्य है । योगाधिकारी को उचित है कि चौथे ब्रह्मचर्य्य यम को भी संपादन करे ॥ ४॥ शरीरकी रक्षा से अधिक संग्रह के त्याग का नाम अपरिग्रह है योगाधिकारी को चाहिये कि इस पांचवें यमको भी संपादन करे ॥ ५॥ पांचप्रकार के यम को सम्पादन करने के पश्चात् योगी को चाहिये कि पांच प्रकारके नियम योग के दूसरे साधन का सम्पादन करने का भी पुरुषार्थ करे (शौच-सन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः) इस योगसूत्र में पतंजलि मुनिजी ने पांच प्रकार के नियम लिखे हैं । उन में से प्रथम नियम का नाम सन्तोष है, पवित्रता को शौच कहते हैं ।

शौचंचद्विविधंप्रोक्तं वाह्यमाभ्यन्तरंतथा ।
मृज्जलाभ्यांस्मृतंवाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥

इस दक्ष संहिता के वचन का अभिप्राय यह है कि वाह्य आभ्यन्तर भेद से शौच दो प्रकार का है । मृत्तिका जल साबन उद्वर्त्तन इतर गुलाबादि से स्थूल शरीर की सफाई का रखना वाह्य शौच है । उस से विशेष दुर्गन्ध युक्त परमाणुओंका तिरस्कार हो जाता है । शरीर में आरोग्यता का लाभ होता है, शरीर स्वस्थ रहता है, शरीर के स्वस्थ रहने से मनेन्द्रिय और

आत्मा में भी स्वच्छता का लाभ होता है। इससे योगाधिकारी वाह्य शौच को संपादन करे। रागद्वेष काम क्रोधादि को अन्तःकरण से निकाल देना आभ्यन्तर शौच है उसको भी योगाधिकारी संपादन करे।

शौचेयत्नःसदाकार्यः शौचमूलोद्विजःस्मृतः।
शौचाचारविहीनस्य समस्तानिष्फलाःक्रियाः॥

इस दक्षसंहिताके श्लोकमें दक्षप्रजापति कहते हैं कि पुरुषार्थसे शौचको संपादन करना उचित है। शौच ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके धर्मका मूल है जो मनुष्य इस सर्वोत्तम शौचनियमको छोड़देता है उसके सर्वकर्म निष्फल होते हैं।

अगाधेविमलेशुद्धे सत्यतोयेधृतिह्रदे।
स्नातव्यंमानसेतीर्थे सत्यमालम्ब्यशाश्वतम्॥

इस महाभारतके प्रमाणमें आभ्यन्तर शौचका वर्णन है। अभिप्राय उक्त श्लोकका यह है कि सत्य अर्थात् त्रिकाल अबाध नित्य शुद्ध नित्य मुक्त ब्रह्मचेतन तीर्थ में ब्रह्माभ्यासरूपी स्नान को योगाधिकारी सदैव करे। उससे योगाधिकारी के हृदयमें से आसुरी सम्पदारूपी मलीनता नष्ट हो जाती है॥

निर्ममानिरहंकारा निर्द्वन्द्वानिष्परिग्रहाः।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते येभैक्षमुपभुञ्जते॥

इस का अभिप्राय यह कि पांच कोशों की ममता और देहाभिमान से पृथक् द्वैतरागद्वेषादि रहित लोक संग्रहसे अलग इस प्रकारके शौचतीर्थ में योगाधिकारी स्नान करे, भिक्षामात्र शरीर रक्षाके लिये भोजन ग्रहण करे।

अभ्यासकालेप्रथमं कुर्यात्क्षीराज्यभोजनम्।

इस हठयोगप्रदीपिका के वचन से विदित होता है कि योगाधिकारी को चाहिये योगाभ्याससे पहिले दूध और घी का भोजन खावे उससे शरीर के भीतर दुर्गन्ध कम होगी नसें कोमल होंगी श्वास सुगमतासे रोका जावेगा।

वृत्तशौचंमनःशौचं तीर्थशौचमतःपरम्।
ज्ञानोत्पन्नंचयच्छौचं तच्छौचंपरमंमतम्॥

इस महाभारतके श्लोक का सार यह है कि योगाधिकारी को चाहिये कि शरीर की चेष्टाको शुद्ध करे, अन्तःकरणको शुद्ध करे, ये सर्वोत्तम तीर्थहैं। और जीव ब्रह्मके अभेद ज्ञानरूपी शौच को संपादन करे क्योंकि वह सर्व तीर्थों में से सर्वोत्तम शौच है।

मनश्चाचप्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेनच ।

स्नातियोमानसेतीर्थे तत्स्नानंतत्त्वदर्शिभिः ॥

इस महाभारत वचन का अभिप्राय यह कि मनको शुद्ध करके ब्रह्मज्ञान रूपी जलमें मज्जन करे, यह आभ्यन्तर तीर्थ है । उस स्नानसे अज्ञान तत्कार्य जगत्रूपी मलिनता नष्ट होकर योगाधिकारी के अन्तःकरण में स्वप्रकाश स्वरूप ब्रह्मचेतन का भान होगा । उससे योगाधिकारीको चाहिये कि शौच रूपी नियम को भी सम्पादन करे ॥ १ ॥ दूसरा नियम सन्तोष है ॥

सन्तोषंपरमास्थाय सुखार्थीसंयतोभवेत् ।

इसमें मनुजी कहते हैं कि जिसको मुक्ति सुखकी जिज्ञासा हो वह म-नुष्य आलस्य को छोड़कर पुरुषार्थ करे वही सन्तोष है ॥

सन्तोषमूलंहिसुखं दुःखमूलंविपर्ययः ॥

इसमें मनुजीने कहा है कि पूर्वोक्त सन्तोष ही व्यवहार अथवा आत्म-सुख के लाभ का कारण है उस सन्तोष को छोड़ देना दुःख का कारण है । (योगवसि० मुमुक्षु प्रकरण अध्या० १५ श्लो० ४–

सन्तोषामृतपानेन येशान्तास्तृप्तिमागताः ।

भोगश्रीरतुलातेषामेषाप्रतिविषायते ॥

इसमें वसिष्ठमुनि कहते हैं कि मनुष्यको सन्तोषरूपी अमृत पान करने से शान्तिरूपी तृप्ति का लाभ होता है । संसार संबन्धी भोग चाहें कितने ही मिल जावें उससे विषय सागर ही में मनुष्य गोते खाता है । (सन्तोषोन-न्दनं वनम्) इस चाणक्यमुनि के वचन का सिद्धान्त यह सिद्ध होता है, कि सन्तोषरूपी नन्दन बाग है, जीवरूपी राजा इन्द्र उसमें भ्रमण करता है शम दमादि दैवी संपदा के गुण ही उस नन्दन बाग में गुलजार हैं, उसमें से ब्र-ह्मज्ञानरूपी सुगन्ध को जीवरूपी राजा इन्द्र संपादन करता है । (सन्तोषः प्रियवादिता) इसका सिद्धान्त यह कि सन्तोषी मनुष्य ही प्रत्येक जीव के साथ प्रिय भाषण कर सकता है । अभिप्राय यह कि योगाधिकारी को चाहिये कि सन्तोषरूपी दूसरे नियम को भी संपादन करे ॥ २ ॥ तीसरे नि-यम का नाम तप है । शुभ कर्मों के अनुष्ठान का नाम तप है । (सृजानि तपसैवेदं०) इस भागवत के वचन का सारांश यह कि सृष्टि के प्रथम तप ही से ब्रह्मारूप हो कर ईश्वर ने वेद को रचा है (तपः स्वर्गस्य साधनम्) इस में व्यास जी ने कहा है कि तप ही स्वर्गलोक की प्राप्ति का सर्वोत्तम सा-

धन है (सर्वमेतत् तपोमूल०) इनमें व्यास जी कहते हैं कि सर्व जगत् का मूल तप ही है। यस्य ज्ञानमयं तपः) इस अथर्वण वेद के मन्त्र में कहा है कि जिस ईश्वरका ज्ञानस्वरूप ही तप है। (तपसा देवतामग्र०) इन तैत्तिरीयारण्यक का अभिप्राय यह है कि पूर्व तपके प्रभाव ही से देवतारूप को जीव प्राप्त होता है॥

ब्राह्मणस्यतपोज्ञानं तपःक्षत्रस्यरक्षणम्।
वैश्यस्यतुतपोवार्त्ता तपःशूद्रस्यसेवनम्॥

इस में मनुजी ने कहा है कि मुख्य करके ब्राह्मणका तप ब्रह्मज्ञान का संपादन है, क्षत्रिय का तप पक्षपात को छोड़ कर न्याय से प्रजा की रक्षा का करना है, खेती वणिज व्यापारादिकी उन्नति का करना वैश्य का मुख्य तप है, निष्काम निष्कपट होकर तीन वर्णों की सेवा का करना शूद्र का तप है। प्रकरण में योगाधिकारी मुख्य करके ब्रह्मज्ञान अथवा अन्तःकरणकी एकाग्रता और शीतोष्ण भूख प्यासका सहारना इत्यादि तपको करे॥

तपसैवप्रपश्यन्ति त्रैलोक्यंसचराचरम्।

इस में मनुजी कहते हैं कि योगरूपी तप के बल ही से योगीजन स्थावर जंगम प्रपंच भर के द्रष्टा होते हैं॥

तपसैवप्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम्।

इस में मनु जी का सिद्धान्त है कि तप ही से संसार में मनुष्य की प्रसिद्धि होती है, तप ही योगविद्याका सर्वोत्तम साधन है। (मनस्य तपसो वापि०) इस में व्यास जी का सिद्धान्त यह है कि मनका रोकना भी सर्वोत्तम तप है। मनुस्मृति के छठे अध्याय में कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतोंके रखने को भी तप कहा है। उसी अध्याय में गर्मी के दिनोंमें धूनों के तपने, सर्दी के दिनों में जल में खड़े रहने को तप कहा है। योगाधिकारी को उचित है कि तपरूपी तीसरे नियम को भी संपादन करे॥ ३॥

चतुर्थ नियम का नाम स्वाध्याय है। विद्या के अभ्यास को स्वाध्याय कहते हैं। यदि योगाधिकारी विद्या का अभ्यास न करेगा तो लालबुझक्कड़ रहेगा। प्रश्नोत्तर करने की शक्ति का लाभ भी न होगा॥

अन्नदानात्समंनास्ति विद्यादानंततोऽधिकम्।
अन्नेनक्षणिकातृप्ति–र्यावज्जीवंतुविद्यया॥

इस में याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि क्षुधातुर को अन्न के दान देने के

सदृश कोई दूसरा दान संसार में नहीं, परन्तु अन्न के दान से विद्या का दान सर्वोत्तम है। क्योंकि अन्नसे १२ घंटे तक तृप्ति का लाभ होता है, परन्तु विद्या से तब तक तृप्ति रहती है कि जबतक मनुष्य जीता रहता है। इस से योगाधिकारी तन मन से विद्या का अभ्यास करे। (स्वाध्यायेनजपैर्होमैस्त्रैविद्येन०) इस में मनु जी का सिद्धान्त है कि विद्या ही से ब्राह्मण का शरीर सफल प्रवृत्ति का जनक हो सकता है॥

यथायथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथातथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥

इस में मनुजी ने कहा है कि यह मनुष्य जैसा २ विद्याका अभ्यास अधिक २ करता है वैसे २ उस का विज्ञान बढ़ता जाता है। सत्शास्त्र और सत् संग में प्रेम अधिक होता जाता है॥

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

इस में यास्क मुनि कहते हैं कि जो वेदादि विद्या को पढ़कर भी विद्याके सिद्धान्त को नहीं जानता, उस का पढ़ना वैसा है जैसे कि बैल वा गधे पर पुष्पादिका भार लदा हो तो उस को सुगन्ध का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। योगाधिकारी को चाहिये कि विद्याभ्यास से विद्या के सिद्धान्त का लाभ उठावे। वेद वेदाङ्गोपाङ्गादि जो कि विद्या के अष्टादश प्रस्थान हैं, उन सबोंका अभ्यास करे। अभिप्राय यह है कि योगाधिकारी वेदादि विद्या रूप चतुर्थ नियम को भी संपादन करे॥ ४॥

पांचवां नियम ईश्वर प्रणिधान है, ईश्वरकी प्रबल वा विशेष प्रेम भक्ति का नाम ईश्वर प्रणिधान है। भेद और अभेद दो प्रकार की भक्ति है, भेद भक्ति ही को वेदान्ती लोगों ने प्रतीकोपासना नाम से वर्णन किया है। अभेद भक्ति का नाम वेदान्त के ग्रन्थों में अहंग्रहोपासना कहा है। भक्ति उपासना साकार की हो सक्ती है निराकार की नहीं। परन्तु दयानन्द के भक्त कहते हैं कि "हम तो निराकार ईश्वर ही की भक्ति वा उपासना करते हैं" दयानन्दके भक्तोंका यह कथन युक्ति के विरुद्ध है। क्योंकि दयानन्द के भक्त निराकार ईश्वर को अपने से भिन्न कहते हैं। यहां दयानन्द के भक्तोंसे पूछना चाहिये कि आप का निराकार ईश्वर आप से भिन्न एकदेशी है अथवा सर्व व्यापक? यदि एकदेशी कहो तो जैसे एकदेशी जीव

अल्पज्ञ है, वैसे ही निराकार ईश्वर अल्पज्ञ होगा। यदि कहो कि निराकार ईश्वर सर्वव्यापक है, तो वह ईश्वर आप के आत्मा में भी व्यापक है अथवा नहीं? यदि नहीं कहो तो फिर भी निराकार ईश्वर में उक्त दोष खड़ा होगा। यदि कहो कि निराकार ईश्वर हमारे आत्मा में भी व्यापक है, तो कहिये आपका आत्मा पोलके सहित है अथवा पोल रहित?। यदि पोल के रहित कहो तो उस में निराकार ईश्वर व्यापक न होगा। क्योंकि पदार्थ विद्यासे जाना जाता है कि जैसे घट पटादि पदार्थों में आकाश व्यापक है, तो घट पटादि सर्व पदार्थ पोल से युक्त हैं। वैसे ही यदि आप के आत्मा में निराकार ईश्वर व्यापक है। तो आप का आत्मा भी पोलके सहित होगा। जब आप का आत्मा पोल के सहित है तो वह घट पटादि पदार्थों के सदृश साकार सावयव और जड़ होगा। यदि आप ऐसे ही मानेंगे तो आप का आत्मा घट पटादि पदार्थों के समान सत्यानाशी होगा। यदि आप का आत्मा ही युक्ति से सत्यानाशी सिद्ध हो चुका तो भक्ति वा उपासना का फल भी उसको न मिलेगा। क्योंकि आप के आत्मा का तो सत्यानाश ही हो गया॥

(भेद भक्ति के खण्डन पर उदाहरण) एक जंगल में एक निराकार ईश्वर का भक्त निराकार की भक्ति कर रहा था। निराकार से कहता था कि हे निराकार ईश्वर; हमें असवारी के लिये घोड़ा दीजिये। उसी मार्गसे एक राजा सेना के समेत चला जाता था। जाते २ राजा की घोड़ी प्रसूता हो पड़ी, राजा ने जंगी सिपाहियों से कहा कि वेगारी पकड़ो। और उसके सिर पर घोड़ी का बच्चा रक्खो, सिपाही लोगों ने निगरानी करी तो जंगलमें बिगारी तो कोई न मिला, किन्तु निराकारके भक्त ही को गिरफतार करलिया। और उस के सिर पर घोड़े का बच्चा रख दिया भक्त गुस्से में आकर कहता है कि हे निराकार! आप ने व्यर्थ ही अपना त्रिकालज्ञ नाम रखलिया, ज्ञान शक्ति आप में कुछ भी नहीं क्योंकि मैंने आप से प्रार्थना करी कि हे निराकार? मुझे घोड़ा दीजिये कि जिसपर असवार होकर सैल सपट्टा किया करूं। परन्तु आपने मेरे सिर पर घोड़े को रख दिया। मतलब इस उदाहरणका यह है कि इस प्रकारकी भक्ति राजसी कहाती है। आर्याभिविनय में दयानन्द ने ऐसी बहुत ही अण्ड बण्ड भक्ति लिख मारी है। जैसे कि हे निराकार! हमें हाथी घोड़े गौ बैल बकरी भेड़ी गधे आदि दीजिये। परंतु निराकार से कानी कुतिया भी नहीं मिल सक्ती।

एक जंगलमें एक निराकारी भक्ति करता हुआ कहता था कि हे निराकार ! हमें घोड़ा दीजिये । उसी वखत रात्रिके समय पुलिस ने एक चोर का पीछा किया परन्तु चोर गायब हो गया किन्तु पुलिस ने जंगलमें से निराकार के भक्त ही को चोर जान गिरफतार कर लिया और राजा के इजलास में पेश कर दिया राजा का हुक्म हुआ कि चोर का काला मुख कर गधे पर चढ़ा सर्वत्र भ्रमण कराओ, पुलिस ने वैसे ही किया, भक्त जी निराकार पर खफा हो कर बोले कि ऐ ! निराकार आप बड़े अन्यायकारी हैं । क्योंकि मैंने तो आप से घोड़ा मांगने की प्रार्थना करी परंतु आप ने मुझे गधे पर लाद दिया क्या इतना भी आप में ज्ञान नहीं कि घोड़े की एवज में गधा दे दिया । अभिप्राय इस उदाहरण का यह है कि ऐसी भक्ति भी राजसी कहाती है वह भी पूरी होने की नहीं ॥

एक नगर में एक निराकार का भक्त सूर्य्य उगे से पहिले ही उठकर संध्या और निराकार की भक्ति शुरू कर देता था, पास ही एक कुंभार का वाड़ा था वहां भक्ति करने के वखत ही कुंभारका गधा रेंगने लग पड़ता था। भक्त जी प्रार्थना करते थे कि हे निराकार । इस गधेको मार डालिये एक रोज भक्त जी का घोड़ा ही मर गया, इस घटना को देख भक्त जी निराकार पर भी बिगड़ खड़े हुए, कहते हैं कि हे निराकार ! आप निरे लालबुझक्कड़ हैं । क्योंकि मैंने तो गधेके मार देने की प्रार्थना करी परंतु आप ने मेरा घोड़ा मार डाला । इस उदाहरणका सिद्धान्त यह है कि इस प्रकारकी भक्ति तामसी कहाती है । उस से भी कुछ फल नहीं मिल सका ॥

एक नगरमें एक निराकार का भक्त प्रार्थना करता होता था कि हे निराकार ! हमारे शत्रुओं को मार डालिये, और वह भक्त इन्द्रियस्पर्शके मंत्रों का हल्ला भी मचाता था, एक रोज भक्त जी (ओम् नाभिः) इस मंत्रको उच्चारण कर नाभि में उंगली घुसेड़ इन्द्रिय स्पर्श करने लगे, भक्त जी के चेलेको ज्ञान हो आया कि शायद गुरू जी की नाभि में प्लेग घुस बैठी है, प्लेग को निकालने के लिये चेले ने गुरू की नाभि में ऐसे जोर से एक डंडा जमा दिया कि भक्त जी हाय निराकार, ऐसे रेंगते हुए लौट पौट होकर गिर पड़े । और निराकार को क्रोधसे भरे कहने लगे कि हे निराकार ! आप बड़े ही अहमक और गवरगंड हैं क्योंकि मैंने तो संध्या के वखत अपने शत्रुओं को मारडालने की प्रार्थना करी परन्तु आपकी यहां तक बुद्धि मारी गई कि

उलटे हमारी ही कपाल क्रिया करने लग पड़े। इस उदाहरण का अभिप्राय यह है कि इस नमूना की भक्ति भी तामसी है। वह भी निष्फल प्रवृत्ति का जनक है।

एक नगर में एक निराकार का भक्त प्रार्थना किया करता था कि हे निराकार! हमें पौत्र दीजिये मेरे पुत्र सौ वर्ष के पहिले कभी न मरें। ऐसी प्रार्थना करने पर भी भक्त जी के दो पुत्रों को पलेगने गिरफ्तार कर लिया गले में गिलटी निकल खड़ी हुई। वह दोनों ही मरगये और अन्तरिक्ष निराकार के इजलास में जा खड़े हुए। भक्त जी निराकार को दुर्वचन बोलने लगे कि हे निराकार! आप निरे मूसलचन्द और पूनहनाथ हैं। क्योंकि हमारी प्रार्थना का सारांश तो यह था कि हमारे पुत्रों के भी पुत्र पैदा होवें पौत्र होने के पश्चात् हम संन्यासी हो जावें। परन्तु आप ने बिना सोचे समझे हमारे पुत्रों ही को मार डाला। इस उदाहरण का भी यही सिद्धान्त है कि ऐसी तामसी भक्ति से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता।

एक नगर में एक भक्त मन से निष्काम हो राम परमात्मा की मूर्त्ति का ध्यान पूजन किया करता और मुख से ईश्वरके गुणोंका वर्णन करता था। मूर्त्तिके सामने खीर का भोग लगाता था। एक दिन भोग न मिलने भक्त जीके पास चार निराकार वादी आबैठे। भक्त ने उनसे ठाकुर जी को खीर भोग लगाने के लिये कुछ मांगा। निराकारवादी बोले कि हमारे साथ चलिये, भक्त जी रामाश्रय से निराकारियोंके साथ चले, गर्मीके दिन थे, एक बनिया सकुटुम्ब बाहर सोया था, निराकार वादी मकान को सेंध लगाकर भीतर जा घुसे, दीवा जला के बनियें का माल लूटने लगे. परन्तु भक्त जी ने एक हांडी देखी, और भक्त जी को ज्ञात हुआ कि इसमें खीर है, भक्तजीने झट झोली में से ठाकुर जी का सिंहासन निकाला और ठाकुर जी को उस पर बिठा दिया, कटोरी में खीर डाल ठाकुर जी को भोग लगाया और घड़ी घंटा बजाना शुरू कर दिया। शंख ऐसे जोरसे बजाया कि सकुटुम्ब बनिया जाग उठा। पुलिस ने चारों ओर से मकान को घेर लिया। निराकारियों को गिरफतार कर हवालातमें भेजदिया और भक्तजी को नमस्कार कर विदा किया। इस उदाहरणका सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि जो निष्काम होकर मूर्त्तिके ध्यान पूजन द्वारा ईश्वरकी प्रेम भक्ति करता है। उसकी सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर बहुत शीघ्र रक्षा करता है।

अभेद भक्ति उसको कहते हैं कि जो मूर्ति के ध्यान पूजन द्वारा निराकार परमात्मा को अपना आप जानकर चिन्तन किया जाता है। जैसे कि वेदान्तके ग्रन्थोंमें सिद्ध हो चुका है कि अकार, उकार, मकार, अमात्र, यह चार पद ओंकार के वाच्य परमात्मा के हैं विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, ईश्वर साक्षी, ये चार पाद ब्रह्म शब्द के वाच्य परमात्मा के हैं। विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्राज्ञसाक्षी, ये चार पाद आत्मा शब्द के वाच्य जीवात्मा के हैं। इनमें से अकार, उकार, मकार, इन तीन पादोंकी शक्तिवृत्ति से भक्तको माया तत्कार्य नाम रूप उपाधि युक्त परमात्मा का शाब्दबोध होता है। अमात्र शब्द से भक्त को अस्ति भाति, प्रिय स्वरूप निराकार निर्विकार सजातीय विजातीय स्वगत भेदसे रहित प्रकाश स्वरूप अपना आप परमात्मा भान होता है। वैसे ही विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर इन तीन पदों की शक्ति से भी भक्त को माया तत्कार्य नाम रूप उपाधि युक्त परमात्मा का शाब्द बोध होता है। ईश्वरसाक्षी इस चौथे पादकी लक्षणा से भक्त के अन्तःकरण में निराकार निर्विकार सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म अपना आप स्वप्रकाश से भान होता है। वैसे ही विश्व तैजस प्राज्ञ इन तीन पादों की शक्तिसे नाम रूप अन्तःकरण उपाधि युक्त जीवात्मा का भक्त को भान होता है। जीव साक्षी इस चौथे पाद की लक्षणा से भक्तके अन्तःकरणमें निराकार निर्विकार नित्य मुक्त नित्य शुद्ध अपना आप ब्रह्मस्वरूप स्वप्रकाश से भान होता है। तात्पर्य यह है कि अकार। उकार। मकार। विराट्। हिरण्यगर्भ। ईश्वर। विश्व। तैजस। प्राज्ञ। इन नव पदों की शक्ति से भक्तको भेद सहित साकार जीवात्मा परमात्मा का शाब्द बोध होता है। परन्तु अमात्र। ईश्वरसाक्षी। जीवसाक्षी। इन तीन पदों की लक्षणा से भक्तके अन्तःकरण में भेद रहित निराकार निर्विकार ब्रह्मचेतन स्वप्रकाश से एक ही अपना आप भान होता है। वह भक्त ज्ञान से अज्ञान निवृत्ति द्वारा मोक्ष पद को प्राप्त होता है यही वेदोक्त अभेद भक्ति है।

योग का दूसरा अङ्ग नियम जो कि पांच प्रकार से वर्णन किया है उसके सम्पादन के पश्चात् योगी तीसरे अंग आसन को सम्पादन करे। सिद्ध आसन ही योगी को करना उचित है। सिद्धासन ही का दूसरा नाम मुक्तासन है।

तीसरे योगके आसन अंग संपादनके पश्चात् योगका चौथा अंग प्राणायाम है, उसको योगी संपादन करे। पूरक रेचक कुंभक भेदसे प्राणायाम तीन प्रकार

है। इड़ा नाम नाड़ीके जरियेसे वाम नासिका द्वारा श्वास को हृदय देशमें ले-जाने का नाम पूरक प्राणायाम है। फिर पिङ्गलानाम नाड़ी के जरियेसे द-क्षिण नासिका द्वारा श्वासको बाहर ले आने का नाम रेचक प्राणायाम है। सुषुम्णा से प्राणोंके रोक लेनेका नाम कुंभक प्राणायाम है। सो बाह्याभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है। दक्षिण नासिका से श्वास को बाहर निकाल कर सुषुम्णा नाम नाड़ी के जरिये से जब तक हो सके तब तक रोकने का नाम बाह्यकुंभक प्राणायाम है। जैसे रेल का एक चक्र घुमानेसे सर्वकलाएं चलने लगजाती हैं। उस चक्रके रोक लेनेसे सर्व कलाएं रुक जाती हैं। वैसे ही प्रा णोंके रोकनेसे योगाधिकारी के मनेन्द्रिय रुक जाते हैं प्राणों के चलने से मनेन्द्रिय चलने लग जाते हैं। बाह्य कुंभक के समय योगी को चाहिये कि प्राण अपान की सन्धि में सत्यता चेतनता आनन्दता जो कि प्राण अपान का साक्षी शुद्ध ब्रह्म है उनमें मनकी वृत्तिको रोक देवे और उसी आनन्द को वृत्तिद्वारा योगाधिकारी आस्वादन करे। जब आभ्यन्तर कुम्भकका समय हो तो योगी को चाहिये कि हृदयदेशस्थ प्राण अपान की सन्धि का साक्षी जो ब्रह्मचेतन स्वरूप आनन्द है उस में मन की वृत्ति को रोके और ब्रह्मचेतन स्वरूपानन्द का आस्वादन करे। बार २ अभ्यास करनेसे पांच वा दश किंवा पन्द्रह अथवा वीस मिनट तक प्राणोंके निरोधसे मनकी वृत्ति आनन्दाकार हो सकती है। जब प्राणायाम के दृढाभ्यास से योगाधिकारी के मन की वृ-त्तियों का प्रवाह लगातार आत्मस्वरूप आनन्द में लग जाता है तो मन में से चपलताका अत्यन्ताभाव हो जाता है। मनके बाह्याभ्यन्तर चेतनात्मरूप आनन्द स्वप्रकाशतासे भान होने लग जाता है। योगवसिष्ठमें प्राण का नाम सूर्य और अपान का नाम चन्द्रमा वर्णन किया है। और कहा है कि प्राणा-पान की गति को जानने द्वारा सत्ता स्वरूप ब्रह्मचेतन ही प्राण अपान की सन्धिमें भान होता है। उस ब्रह्मचेतनमें अहंता त्वन्ता इदन्ता वृत्तियोंकी गोचरता का अत्यन्ताभाव है। किन्तु मनकी आनन्दाकार प्रथम वृत्तिसे भी आत्मा का न जानना रूप अज्ञान ही नष्ट होता है। द्वितीयादि वृत्तियोंका यही मुख्य फल है कि उन से निरावरण ब्रह्मचेतन स्वरूप आनन्द का आ-स्वादन होता रहता है। यदि निराकार ब्रह्मचेतनस्वरूप आनन्दमें योगाधि-कारीके मन की वृत्तियों का निरोध न हो सके तो किसी साकार पदार्थ में मन की वृत्तियों को रोके परन्तु वहां भी इतना विचार अवश्य रक्खे कि

साकार पदार्थाकार वृत्तियों से भी योगी के मन में जो आनन्द का आविर्भाव होता है वह आनन्द भी साकार पदार्थ का नहीं किन्तु, वह आनन्द भी निराकार ब्रह्मचेतनस्वरूप है। योगाधिकारी को उचित है कि योग के चतुर्थाङ्ग प्राणायाम को भी यत्नसे संपादन करे ॥

पांचवां अंग योगका प्रत्याहार है। बाह्यके पदार्थ जो कि स्त्री पुत्र धनादि वा शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि हैं उन विषयों की ओरसे मन की वृत्तियोंको हटाकर आत्माकार वृत्तियों को करनेका पुरुषार्थ प्रत्याहार है। उस पांचवें प्रत्याहार योगाङ्गको भी योगाधिकारी संपादन करे ॥ ५ ॥

छठा योगाङ्ग धारणा है। जितने अनात्म पदार्थ हैं जो कि अन्नमय १ मनोमय २ विज्ञानमय ३ प्राणमय ४ आनन्दमय ५ ये पांच कोश हैं। उन सब से मन की वृत्तियों को यत्न से रोकदेना और आत्मा की ओर स्थिर करते जानेका नाम धारणा है। हठयोग प्रदीपिकादि ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि (मूलाधार १ मणिपूरक २ स्वाधिष्ठान ३ अनाहत ४ आज्ञा ५ विशुद्ध ६) इन छै चक्रोंमें से किसी एक चक्र में मन को रोकने का नाम धारणा है। परन्तु वेदान्त सिद्धान्त की रीति से विदित होता है कि योगाधिकारी को उचित है, कि पूर्वोक्त षट् चक्रों के नाम रूपकी दृष्टिको उठा देवे। शेष अस्ति भांति प्रिय ब्रह्म ही में मन स्थिर होगा उससे योग के छठे अङ्ग धारणा को भी योगी संपादन करे ॥ ६ ॥

सातवां योगका अङ्ग ध्यान है। ध्येयाकार वृत्तियोंकी स्थिरताका नाम ध्यान है ध्यान का करना विधि विश्वास के आधीन होता है। ज्ञान में विधि विश्वास की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहती। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि निराकार के ध्यान से मन का निरोध होता है। साकार के ध्यान से मन चञ्चल हो जाता है। दयानन्दके भक्तोंकी यह शङ्का सर्वथा अज्ञान मूलक है। क्योंकि यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो जब पुरोवर्त्ति देश में घट रक्खा हो तो उसमें नाम रूप अस्ति भाति प्रिय यह पांच अंश भान होते हैं। उन में अस्ति भाति प्रिय यह तीन ब्रह्मस्वरूप हैं। ब्रह्म त्रिकाल अबाध और मायाका ब्रह्मज्ञानसे बाध हो जाता है। देखिये! जब पुरोवर्त्ति देशस्थ घट को दण्डके प्रहारसे तोड़दिया जावे तो घटके नामरूप का अदर्शन हो जाता है। परन्तु कपालोंमें अस्ति भाति प्रियस्वरूप ब्रह्मका भान होता है। जब कपालों का भी पीस कर चूर्ण कर दिया जावे तो कपालों के नामरूप का

भी अदर्शन हो जाता है किन्तु चूर्ण में भी अस्ति भाति प्रिय ब्रह्म स्वप्रकाश से भान होता है । जब चूर्णका भी अभाव किया जावे तो चूर्णके नामरूपका भी अदर्शन हो जाता है । चूर्णाभावका अधिष्ठान अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्मका फिर भी स्वप्रकाश स्वरूप से भान होता है । योगाधिकारी को उचित है कि पूर्वोक्त रीति से जब मन बाहर निकल जावे तो प्रत्येक ,साकार पदार्थके नाम रूप की दृष्टिको उठा देनेका प्रयत्न करे, कि जिस से अस्ति भाति प्रियस्वरूप ब्रह्महीं में मन स्थिर होता रहे । जब मन स्त्री पुत्र धनादि की ओर निकल जावे तो वहां भी नाम रूप की दृष्टि को योगाधिकारी उठा देवे तो शेष अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्महीमें मन रुकेगा। जब स्थूल वा सूक्ष्म किंवा कारण शरीरकी ओर मन जावे तो योगाधिकारी तीन शरीरों के नाम रूपकी दृष्टि को उठा देवे तब शेष तीन शरीरोंके अभावका अधिष्ठान अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्म ही का भान होता है। परन्तु इस प्रकारका अन्वय व्यतिरेक ध्यान नहीं कहाता किन्तु इसको ज्ञान कहते हैं। ज्ञेय के आधीन ज्ञान होता है विधिविश्वास का कुछभी ज्ञान में उपयोग नहीं ॥

यदि दयानन्दके भक्त निराकारके ध्यान ही से मन का निरोध मानते हैं तो मन जड़ है उसको निराकारका ज्ञान ही नहीं हो सकता । यदि जड़ मनको निराकारका ज्ञान मानें तो जड़ पाषाणादिको भी ज्ञान होना चाहिये । ज्ञानके पश्चात् ध्यानकी कुछभी आवश्यकता नहीं रहती ध्याता ध्यान ध्येय जहां ये तीन पदार्थ होते हैं वहां ध्यान हो सकता है निराकार ब्रह्मचेतनमें तीनों पदार्थों के नाम रूपका अत्यन्ताभाव है। हां साकार में ध्याता १ ध्यान २ ध्येय ३ यह त्रिपुटी हो सकती है। हिन्दु मत में राम कृष्ण देवी गणेश शिवादिक नामावलीकी मूर्त्तियों का ध्यान वर्णन किया है वह ध्यान साकार का है जिस मूर्त्ति पर योगाधिकारी का मन से श्रद्धाभक्ति और दृढ़ विश्वास हो उसी मूर्तिके ध्यान से उस का मन स्थिर हो जाता है । यदि मूर्त्तिके ध्यानसे मन चञ्चल हो जाता तो भारतवर्ष में जितने दयानन्दके भक्त हैं उन सबोंके मन चञ्चल हो जाने चाहिये क्योंकि वह अपना २ फोटोग्राफ खिंचवाके शीशेमें जड़वाकर अपने पास रखते हैं। दयानन्दादिकी मूर्त्तियां बनवाते हैं उनका ध्यान धरते हैं साहिब और लेडियोंकी मूर्त्तियां रखते हैं नियोग वा पुनर्विवाह करानेके लिये फोटोग्राफ खिंचवाते हैं वर और कन्या के हाथ में वह मूर्त्तियां पकड़ाते हैं, उनको देखनेसे वर कन्या के गुण और कर्मों का ज्ञान हो जाता है। इस

लेख को दयानन्दने सत्यार्थप्रकाशके चतुर्थ समुल्लास में लिखा है। इस से यही सिद्ध होता है कि निराकार में मन स्थिर नहीं होता किन्तु साकार ही में मन स्थिर होता है। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि आप पूर्व कह चुके हैं कि अस्ति भाति प्रिय स्वरूप निराकारमें मन स्थिर होता है। अब आप कहते हैं कि साकारमें मन स्थिर होता है। आपके कथनमें दरोगहलफी दोष आता है। दयानन्दके भक्तोंकी यह शंका भी अज्ञान और हठसे भरी है क्योंकि पूर्व हम ने जो कहा है कि अस्ति भाति प्रिय स्वरूप निराकार ब्रह्म में मन स्थिर होता है वहां हमने ज्ञानका प्रकरण दर्शाया है। ज्ञान के प्रकरण में ध्यानके प्रकरणकी शङ्का करना लालबुझक्कड़ों का तमाशा है। बूझे २ लाल बुझक्कड़ और न बूझे कोइ। निराकारका गिरा यहां पर सुनेदाणा होय। अभिप्राय यह कि हिन्दुमतकी रीतिसे ध्यान तो साकारहीका होता है यह बात युक्ति से सिद्ध हो चुकी है। परन्तु साकारके ध्यानद्वारा योगाधिकारी साकारके नाम रूपकी दृष्टि को भी उठा देता है तो शेष अस्ति भाति प्रिय स्वरूप स्वप्रकाश ब्रह्मही अपने नाम रूपकी दृष्टि को छोड़ भान होता है। इस से साकार पदार्थका ध्यान ही सफल प्रवृत्ति का जनक है निराकार के ध्यान का हल्ला मचाना यह विद्याहीनों को बहकाने की चालाकी है। इससे योगाधिकारी को चाहिये कि साकार का ध्यान जो कि योगका सप्तम साधन है उसको भी विद्वान योगियों के सत् संग से संपादन करे॥ ७॥

समाधि योगका आठवां अंग है। सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित नित्य मुक्त नित्य शुद्ध निराकार आत्मामें मनकी वृत्तियों का संचार समाधि है। (गीता अध्याय ६ श्लो० २१)

सुखमात्यन्तिकंयत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।

वेत्तियत्र नचैवायं स्थितश्चलतितत्वतः॥

इस में भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! जो ब्रह्म सुख मनेन्द्रियोंसे नहीं जाना जाता जो शुद्ध मतिसे लक्षणा वृत्ति द्वारा निश्चय होता है। उस ब्रह्म सुख में जो योगी स्थित होता है वह योगी अस्ति भाति प्रिय अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म से कभी चलायमान नहीं होता॥ (गीता अ० ६ श्लोक २२॥)

यंलब्ध्वाचाऽपरंलाभं मन्यतेनाधिकंततः।

यस्मिन्स्थितोनदुःखेन गुरुणापिविचाल्यते॥

इसमें परमात्मा कहते हैं कि जिस ब्रह्म सुखको योगी संपादन कर-लेता है उससे अधिक उत्तम लाभ दूसरा कोईभी योगीको प्राप्त नहीं होसक्ता॥

यत्रयत्रमनोयाति तत्रतत्र समाधयः ।

इस में चाणक्य मुनिका सिद्धान्त यह है कि—ज्ञानी योगी का मन जहां २ जाता है वहां २ उसको समाधि ही का लाभ रहता है। सिद्धान्त यह है कि ज्ञानी योगी का नाम रूप शरीरादिकों से अभिमान नष्ट हो जाता है। शेष अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्म ही में ज्ञानी योगीका मन स्थिर रहता है। उसी का नाम वेदान्ती लोगों ने समाधि लिखा है। सविकल्प और निर्वि कल्प भेद से समाधि दो प्रकार का है। जिस समाधि में (अहं ब्रह्मास्मि) इस प्रकार से ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय रूपी त्रिपुटीका भान होता है उस का नाम सविकल्प समाधि है। जिसमें त्रिपुटी का भान नहीं होता उस का नाम निर्विकल्प समाधि है। शब्दानुविद्ध और शब्दाननुविद्धभेद से सविकल्प समाधि भी दो प्रकार का है। जिसमें (अहंब्रह्मास्मि) इस वाक्यका उच्चारण होता रहे, वह शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है, उसी का दूसरा नाम सं-प्रज्ञात समाधि है। जिस में (अहंब्रह्मास्मि) इस वाक्य का उच्चारण बन्द हो जाय, उस का नाम शब्दाननुविद्ध सविकल्प समाधि है। सविकल्प स-माधि और सुषुप्ति अवस्था का इतना ही भेद है, कि सुषुप्ति अवस्था में सावर्त्तकानन्द का भान होता है। और सविकल्प समाधिके समय निरावर्त्त-कानन्दका स्वप्रकाशसे भान होता है। समाधि और मूर्छावस्थाका इतना भेद है कि जब मूर्छा से मनुष्य उठता है तो उस का अप्रसन्न और भयंकर तथा अमङ्गल रूप मुख भान होता है। जो सविकल्प समाधि से उत्थान को प्राप्त होता है तो उस का प्रसन्न भयरहित मंगलमय मुख भान होता है। जब योग के आठवें अङ्ग समाधि अर्थात् सविकल्प समाधि को योगी संपादन कर लेता है तो सविकल्प समाधि का अधिक अभ्यास करने लग जाता है। उस सविकल्प समाधि के अधिक अभ्यास करने से योगी को निर्विकल्प स-माधि का लाभ होना प्रारम्भ हो जाता है। निर्विकल्प समाधि भी अद्वैत भावना रूप और अद्वैतावस्थान रूप भेद से दो प्रकार का है॥ (अहं–ब्रह्म अस्मि) इस वाक्य में अहं शब्द का लक्ष्यार्थ शुद्ध साक्षी चेतन और ब्रह्म-पद का लक्ष्यार्थ शुद्ध ब्रह्मचेतन है। अभिप्राय यह है कि नाम रूप वाक्य भाग को त्यागकर केवल अहं और ब्रह्म इन दोनों पदों के अस्ति भांति प्रिय स्वरूप ब्रह्म में भेद सिद्ध नहीं हो सक्ता। लक्षणा वृत्ति के द्वारा (अहं ब्रह्मास्मि) ऐसी जो अन्तःकरण के सत्वगुण का

परिणाम रूप योगी की वृत्ति होती है, उसी का नाम अद्वैत भावना रूप निर्विकल्प समाधि है। उस निर्विकल्प समाधि में ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय रूप त्रिपुटी का अत्यन्ताभाव नहीं होता किन्तु जैसे जल में नमक डाला जाता है तो वह नमक नेत्र से नहीं दीखता परन्तु जल में उस नमक का अत्यन्ताभाव नहीं, वैसे ही अद्वैत भावना रूप निर्विकल्प समाधि में ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी रूपी द्वैत तो है परन्तु उस द्वैत का योगी को भान नहीं होता। जब अद्वैत भावना रूप निर्विकल्प समाधि का योगी अधिक अभ्यास करता है तो योगी को अद्वैतावस्थान रूप निर्विकल्प समाधि का लाभ हो जाता है। अद्वैतावस्थान रूप निर्विकल्प समाधि में गया हुआ राजयोग युक्त ज्ञानी योगी फिर उत्थान को प्राप्त नहीं होता। (न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति। अत्रैव संविलीयन्ते) इस वेद मन्त्र का प्रकरण में सिद्धान्त यह है कि ज्ञानी योगी के प्रारब्ध कर्म्म जब नष्ट हो जाते हैं। तभी अद्वैताव-स्थान रूप निर्विकल्प समाधि का ज्ञानी योगी को लाभ होता है। जैसे गर्म्म लोहेके गोले पर डाला जलका विन्दु लय हो जाता है। वैसे ही नित्य मुक्त नित्यशुद्ध निराकार निर्विकार सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित सच्चि-दानन्द स्वरूप ब्रह्म रूपी अग्नि में ज्ञानी योगी का लिंग शरीर लय हो जाता है। उस से ज्ञानी योगी के प्राण किसी लोक में नहीं जाते किन्तु ब्रह्म चेतन ही में लय हो जाते हैं। उसी शुद्ध ब्रह्म का नाम मोक्ष धाम है।

इस व्याख्यान में हम ने योग सूत्रके प्रमाण से मन की वृत्तियों को दुष्ट विषयों की ओर से रोकने का नाम योग वर्णन किया है। और योग सूत्र के प्रमाण से योग के अष्टांगों का भी वर्णन किया है। और ब्रह्म ज्ञान द्वारा मोक्ष पद का लाभ भी योग का फल दर्शाया है। दयानन्द के भक्त कहते हैं कि जैसा तरीका योग का आपने इस व्याख्यान में वर्णन किया है है। वैसा मूल योग सूत्रों में से तो निकल ही नहीं सक्ता। दयानन्द के भक्तों की यह शङ्का भी अज्ञान मूलक है क्योंकि सूत्र नाम उसी का है कि जिस में अक्षरों की मिलावट तो बहुत ही कम हो परन्तु अर्थ नाना प्रकार का अत्यन्त अधिक किया जावे। हमने युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणों तथा पदार्थ विद्या से योग सूत्रोंका अर्थ अद्वैत में लगादिया है। यदि किसी में द्वैत सिद्ध करने की शक्ति हो तो नीति और विद्वत्ता से मेरे इस व्याख्यानोक्त अद्वैत का खण्डन कर छपवा देवे कि जिस से मुझ को भी उस के खण्डन करने का अवकाश मिल जावे। वेदान्त के ग्रन्थों में तो मन एकाग्र करने के लिये ही सारग्राही दृष्टि से योग शास्त्रको माना है अधिकांश में नहीं। ओम् शान्तिः ३

ईश्वरभक्ति मण्डन

व्याख्यान नं० ८

सर्व हिन्दुधर्मग्रीरों को प्रकाशित किया जाता है कि आज ईश्वर की भक्ति तथा ईश्वर के नामोच्चारण का मण्डन किया जाता है। परन्तु पहिले दयानन्दोक्त ईश्वर की भक्ति और ईश्वर नामोच्चारण का खंडन दर्शाते हैं। (तथाहि) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका प्रथमावृत्ति पृ० ३०१ पं० ५) (अथर्ववेद कां० ३ व० १० मं० ३ संवत्सरस्य प्रतिमा यां त्वा रात्र्युपास्महे०) इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "जिस रात्रि की उपासना विद्वान् लोग करते हैं। हम लोग भी उसी रात्रि का सेवन करें" दयानन्द के इस लेखसे दयानन्दोक्त मत में रात्रि की भक्ति का करना सिद्ध हो चुका। प्रकरणमें भक्ति और उपासना दोनों शब्द एकार्थवाची हैं। इस के विरुद्ध (३ सत्या० समुल्लास ७ (य० अ० ३२ मं० १४ यांमेधांदेवगणाः पितरश्चोपासते०) इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि "हे ईश्वर जिस बुद्धिकी उपासना विद्वान् लोग ज्ञानी अथवा योगी लोग सदा से करते आते हैं वह बुद्धि हमें आप दीजिये" दयानन्दके इस लेखमें बुद्धिकी भक्ति का करना कहा है। रात्रि भी जड़ है और बुद्धि भी जड़ है। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके दोनों लेख झूंठे हैं। दयानन्द मत में न रात्रि की न बुद्धि की भक्ति सिद्ध होती है॥

(किंच) (३सत्या० समुल्लास १) दयानन्द का लेख है कि "जिसका नाम ओम् है उसी की उपासना करनी चाहिये अन्य की नहीं" दयानन्द के इस लेख से ईश्वर की भक्ति सिद्ध होती है। कहीं रात्रि की कहीं बुद्धि की, कहीं ईश्वर की, भक्ति का लेख लिखना दयानन्द की अविद्या है। परन्तु परस्पर विरोध होने के कारण बाबा जी के तीनों ही लेख झूंठे हैं॥

(३ सत्या० समुल्लास १) दयानन्द का लेख है कि "ओम् यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है" इसके विरुद्ध उणादि कोष में दयानन्द ने प्रणव १ आरंभ २ और अनुमति ३ इन तीन पदार्थों का नाम ओम् लिखा है। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं। (किंच)(३ सत्या० समुल्लास ३) (प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां०) इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "योगी को चाहिये कि (ओम्) इस नामका जप मन में करता जाय। उससे मनकी आत्मा की पवित्रता और स्थिरता होती है"। फिर इसके विरुद्ध (३सत्या० समुल्लास ११) इसमें दयानन्दका लेख है कि "जैसे न्याय

कारी ईश्वर का एक नाम है इसका अर्थ है कि पक्षपात रहित होकर परमात्मा सबका न्याय करता है वैसे आप भी करना इस प्रकार एक नामके से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है" यदि दयानन्दके भक्त इस लेख को सत्य मानें तो राम नाम पर कटाक्ष लड़ाना दयानन्द का युक्कड़पन सिद्ध होगा क्योंकि (७ सत्या० समुल्लास ११) वहां दयानन्द का लेख है कि राम नाम में से रोटी शाक नहीं निकलता। क्योंकि खान पानादि तो गृहस्थोंके घर ही में से मिलते हैं, यदि दयानन्द के इस लेख को सत्य मानें तो (७ सत्या० समुल्लास १) उसमें दयानन्दने ओम् आदि १०० नाम ईश्वरके लिखेहैं। वह भी सब निष्फल प्रवृत्ति के जनक होंगे। क्योंकि उन नामोंने भी रोटी शाक नहीं निकलते। उन नामोंके लेने वाले दयानन्द और दयानन्द के भक्त संन्यासी ब्रह्मचारी भी गृहस्थों ही के घरों से पूड़ी, कचौड़ी, हलुवा, आलू शाही, आदि मांगते फिरते हैं। परन्तु दरोगहलफी होनेके कारण नामोच्चारण प्रकरण में दयानन्द के सर्व लेख झूंठे हैं ॥

(७ सत्या० समुल्लास ११) (तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि०) इस मन्त्र के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "जिस में परस्पर विरोध हो वह कल्पित झूंटा अधर्म और अग्राह्य है" (सत्या० समुल्लास ४). (वाच्यर्था नियताः सर्वे०) इस श्लोक के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि "जो वाणी से झूंट बोलता है वह सर्व चोरी आदि पापोंका करने वाला है" (७ सत्या० समुल्लास ६)

येन येन यथाङ्गेन स्तेनोनृषुविचेष्टते० ।

इस के भाष्यमें दयानन्द का लेख है कि "जिस २ अंग से चोर विरुद्ध चेष्टा मनुष्यों में करता है, सब मनुष्यों को शिक्षा दर्शाने के लिये चोर के उस २ अंग को राजा छेदन कर देवे" (७ सत्या० समुल्लास ६)

अष्टापाद्यन्तुशूद्रस्य स्तेयेभवतिकिल्विषम् ।
षोडशैवतुवैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्यच ॥

(ब्राह्मणस्य चतुःषष्टि०) इत्यादि श्लोकोंके भाष्य में दयानन्द का सिद्धान्त यह है कि "शूद्र चोर होवे तो उसे आठगुणा दण्ड राजा देवे, वैश्य चोर को १६ गुणा, क्षत्रिय चोर को ३२ बत्तीस गुणा, ब्राह्मण चोर को चौंसठ गुणा, वा १०० गुणा, अथवा १२८ गुणा, दण्ड राजा देवे" अब दयानन्दोक्त

भक्ति विषयक लेखों के परिणाम को दयानन्द के ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र भक्त निगरानी कर लेवें कि बाबा जी दयानन्द कौन प्रकार के ईश्वरभक्त थे, और कैसे अरड बरड लेख लिखते जाते थे। और उन लेखों पर विश्वास रखने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र कहां तक विद्या और बुद्धि रखते हैं। दयानन्द के परस्पर विरुद्ध लेखों का ज्ञान उन को है अथवा नहीं ?। और दयानन्द का हकीकत में वेद मत था अथवा नहीं ?।

एक नगरमें एक ईश्वरका भक्त लोगोंको ईश्वर भक्तिकी कथा सुनाया करता था। कथा समाप्ति के पश्चात् भजन गाता था। एक जाट भजनोंको सुन कर रोने लग जाता था। भक्त जी को निश्चय हो जाता था कि यह चौधरी जी मेरा गाना सुन कर रोते हैं। इसका प्रेम ईश्वर की भक्ति पर विशेष है। जब कथा समाप्ति का दिन आया तो जाट जी कथा में आये ही नहीं। भक्तजी ने उस रोज कथा समाप्त न करी, दूसरे दिन जाट जी आए भक्त जी ने ईश्वरभक्तिकी कथाको समाप्त कर डाला। श्रोता लोगों ने यथासंभव भक्त जी को दक्षिणादी। परन्तु जाट जी ने एक काणी कौड़ी भी दक्षिणा न दी। भक्त जी ने उन से कहा कि चौधरी जी आप भी कुछ दीजिये। चौधरी जी ने उत्तर दिया कि मेरी श्रद्धा देने की नहीं। भक्त जी ने पूछा कि भला चौधरी जी आप रोते काहेको थे ?। चौधरी जी ने कहा कि मैंने दो बिल्ली के बच्चे पाले थे। उन बच्चोंसे मेरा प्रेम लगा था वह बिल्लीके बच्चे दोनों मर गए। मुझे बड़ा शोक हुआ, आप भजन गातेथे हमें ज्ञात हुआ कि यहां मेरे प्यारे बिल्ली के बच्चे रोते हैं। ऐसे सोच कर मैं आपकी कथामें आने लगा। और बिल्लीके बच्चोंके समान आपका गाना सुनकर मैं शान्तिको प्राप्त होने लगा, इसको सुनकर ईश्वरका भक्त लज्जा सागरमें गारत होगया। वैसे ही भक्ति विषयक दयानन्द ने भी दुकानदारी खोल रक्खी थी। उससे भक्ति प्रकरण विषय का भी दयानन्दोक्त वेद मत सिद्ध नहीं हो सक्ता ॥

अब वेदोक्त सनातन हिन्दु धर्म्म की रीति से ईश्वर की प्रेम भक्ति और नामोच्चारण की महिमा लिखी जाती है (तथाहि) ॥

श्रीमद्भागव० स्कं० ७ अध्या० ५ श्लो० २३ ॥

श्रवणंकीर्तनंविष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं चैव सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इस में व्यास जी ने कहा है कि ईश्वर के गुणों का श्रवण करना १ श्रवण करके पश्चात् ईश्वर के गुणों का वर्णन करना २, ईश्वर के गुणों का चिन्तन करना ३, ईश्वर के चरणकमलों का सेवन करना ४, सुगन्ध्यादि द्रव्यों से ईश्वर का पूजन करना ५, ईश्वर को नमस्कार करना ६, ईश्वर से मित्रभाव कर प्रेम रखना ७, ईश्वर को अपना आप ही निश्चय करना ८, ईश्वर को सर्वस्व समर्पण करना ९ यह नौ प्रकार की भक्ति श्रीमद्भागवत में वर्णन करी है ॥ (भाग० स्कं० ७ अ० ५ श्लो० २४)

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।

क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

इस श्लोक का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर भक्ति के जो नव लक्षण किये हैं यही सर्वोत्तम हैं । इस भक्तिके समान पठन पाठन भी नहीं है । अभिप्राय यह है कि जब वेद वेदाङ्गोपाङ्ग इत्यादि विद्याको प्राप्त कर लिया तो क्या हुआ कि जब तक हृदय में ईश्वर से प्रेम न उपजा ॥

अधीत्य चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः ।

ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा ॥

इस का सिद्धान्त यह है कि चार वेद उपवेद अङ्गोपाङ्ग और नाना प्रकार के धर्म शास्त्रों का पढ़ना तब तक व्यर्थ है कि जब तक अन्तःकरण में ईश्वर की प्रेम भक्ति का ज्ञान नहीं होता । जैसे हांड़ी में कड़छी केवल दिन भर फिरती रहे तो भी उसे स्वाद का लाभ नहीं होता । वैसे ही बिना भक्ति वा ज्ञान के वेदादि को पढ़ना निष्फल है ॥

(नवधा भक्ति पर उदाहरण) योग वशिष्ठ से जाना जाता है कि राजा शिखरध्वज और उस की चौड़ाला राणी प्रति दिन सत्संग में परमात्मा के गुणों का श्रवण करते थे, राणी श्रद्धा भक्ति विश्वास से श्रवण करती थी, राजा वैसे श्रवण नहीं करता था, उस से राणी को प्रेम भक्ति की कृपा से आत्मज्ञान का लाभ हुआ, परन्तु प्रेम भक्ति न होने के कारण राजाको आत्मज्ञान का लाभ न हुआ, राणी ने पण्डितों के जरिये से राजा को वैराग्य कराया, राजा जंगल में जाकर प्रेम भक्ति करने लगा, राणी ने योग विद्या को सीखा, उससे राणी दूसरा रूप धारण कर जनमें राजा को आत्मज्ञान देने लगी । प्रेम भक्ति की कृपा से राजा का हृदय शुद्ध हो गया

था। उस से राजा को भी आत्मज्ञान का लाभ हो गया । यह ईश्वर की प्रेम भक्ति से ईश्वर के गुण श्रवण करने का लाभ है। इसी का नाम श्रवण भक्ति है ॥ १ ॥

इतिहासों से जाना जाता है कि रामायणके कर्त्ता तुलसीदास जी राम परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए काशीमें रहने लगे, प्रातःकाल बागीचे में जाकर एक पीपल के वृक्ष को जल सींचने लगे, और राम परमात्माके गुणों का वर्णन करने लगे, वृक्ष में एक भूत रहता था, उसने तुलसीदास से पूछा कि आप क्या चाहतेहैं? तुलसीदासने कहा कि हम राम परमात्मा को मिला चाहते हैं। भूतने कहा कि अमुक जगह पर राम परमात्मा के गुणों का प्रतिदिन वर्णन होता है। वहां वृद्ध रूप बन कर हनुमान जी राम परमात्मा के गुणों को श्रवण करने के लिये प्रति दिन आते हैं। सब से पहिले आते हैं और सब के पीछे जाते हैं। वह आपको राम परमात्मा का दर्शन करा देंगे। तब तुलसीदास वहां गये और कथा में बैठ, राम परमात्माके गुणों को सुनते रहे, एक बूढ़ा मनुष्य पहिले आ बैठा, कथा समाप्त होने पर वह बूढ़ा सब के पीछे जाने लगा, तुलसीदास जी ने उस के चरण पकड़ लिये, बूढ़े ने पूछा आप क्या चाहते हैं ? । तुलसीदास जी ने कहा कि मैं राम परमात्मा को मिला चाहता हूं। उस बूढ़े हनुमान् जी ने कहा कि आज रात्रि को आप बाग में बैठे रहिये। आपको राम परमात्माका दर्शन हो जायगा। तुलसीदास जी रात्रि के १० बजे बागीचेमें जा बैठे, राम परमात्मा के गुणों को वर्णन करते २ सो गये। रात्रि को तुलसीदास जी के पुस्तक कपड़े चुरानेके लिये चोर आये। परन्तु तुलसीदास जी के चारों ओर एक श्याम और दूसरे गौर रंगके असवार चक्कर लगा रहे थे। रात्रिभर चोरों का दाव न लगा, प्रातःकाल को तुलसीदास जी उठे, और चोरों ने तुलसीदास जी को प्रणाम किया। तुलसीदास जी से पूछा कि रात्रि को श्यामसुन्दर और गौर रंग के अद्भुत रूप वाले नव जवान दो असवार आप के चारों ओर चक्कर लगा रहे थे, वे कहां गए। हम उनका दर्शन किया चाहते हैं। तुलसीदासजीने समझा कि राम परमात्मा ही लक्ष्मण भ्राताके सहित रात्रि को आए थे। और चोरों को कहा कि वह असवार बिना प्रेमभक्तिके नहीं मिल सकते। चोर चले गए और बूढ़े हनुमान् जी उपस्थित हुए, तुलसी दास से पूछा कि आप को राम परमात्माका दर्शन हुआ ? । तुलसीदास जी

ने कहा कि हम को गये थे दर्शन नहीं हुआ। हनुमान् जी ने कहा कि अच्छा आज बारह बजे गंगा जी के घाट पर आप जा बैठिये। यहां राम परमात्मा का दर्शन होगा। तुलसीदास जी वहां जा बैठे, इतनेमें पांच२ वर्ष के एक श्यामसुन्दर और दूसरे गौरांग दो बालक आश्चर्यरूप वाले खेलते देखे तुलसीदास जी ने प्रेम से उन को गोद में बिठा लिया और चन्दन घिस कर तिलक करने लगे। वृक्ष के ऊपर हनुमान् जी तोते का रूप धारण कर बोलने लगे कि चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर। तुलसीदास चन्दन घिसैं तिलक करैं रघुबीर ॥ इतनेमें वह दोनों बालक लोप हो गए। फिर हनुमान् जी तुलसीदास जी के आगे आखड़े हुए और पूछा कि राम परमात्मा का आप को दर्शन हुआ। तुलसीदास जी ने कहा कि नहीं हुआ। हनुमान् जी ने कहा कि बालक रूप धारण कर आप के गोद में राम लक्ष्मण बैठे रहे थे। तुलसीदास जी ने कहा कि अब हमें फिर राम परमात्मा का दर्शन कराइये। हनुमान् जी ने कहा कि कल तीन बजे दिन के आप बागीचे में जा बैठिये। तुलसीदास जी दूसरे रोज बागीचे में जा बैठे और राम परमात्मा के गुणों का वर्णन करने लगे। इतने में एक श्याम सुन्दर और दूसरे गौरांग जटा जूट बांधे तुलसीदास जी के सामने से निकलने लगे, तुलसीदास जी ने झट उठ कर दोनों के चरणों पर प्रणाम किया। और तुलसी दास जी के विचार रूपी नेत्र खुल पड़े। राम लक्ष्मण लोप होगये और तुलसीदास जी ने राम परमात्मा के गुणों का वर्णन कर एक रामायण नाम पुस्तक बना डाला। यह परमात्मा के गुण वर्णन रूपी प्रेम भक्ति का दूसरा फल है ॥ २ ॥

ईश्वरके साकार होने पर जितने दयानन्दके शङ्काके सन्देह थे सो हमने ईश्वर अवतार मण्डन के व्याख्यान में खण्डन कर दिये हैं। ईश्वर के गुणों के चिन्तन करने का नाम तीसरी प्रकार की प्रेम भक्ति है। जैसे कि होती मर्दानकी जंगी फौजमें एक खालसा कर्मसिंह जी नौकर थे। दो घंटे समय तक रात्रि को छत एकान्तमें बैठ पद्मासन लगा कर राम परमात्माके गुणों का चिंतन करते थे। एक रोज वे रामपरमात्मा के ध्यान में प्रेमसे ऐसे मग्न हुए कि चार घंटे तक नौकरी पर जाना भी भूल गये। जब रामपरमात्माके ध्यान से उठे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि अब नौकरीका समय गुजर गया है। ऐसे सोचकर नौकरी पर चले, आगे रसालदार आते थे। कर्मसिंहसे पूछा कि

आप कहां जाते हैं। उनने उत्तर दिया कि हम नौकरी पर जाते हैं। रिसाल-दार ने कहा कि नौकरी देकर आप अपने मकान को चले गए थे, अब कैसे नौकरी देने जाते हैं। कर्मसिंहको निश्चय होगया कि आज रात्रि को हमारे रूप को धारण कर रामपरमात्मा ही नौकरी बजा गए हैं। ऐसे विचार कर कर्मसिंहने नौकरीका इस्तीफा देदिया। कप्तान साहबने कहा कि आप को बड़ा ओहदा दिया जाता है। परन्तु कर्मसिंह ने इनकार किया और जंगलमें बैठकर रामपरमात्माके गुणोंका चिन्तन करता करता रामपरमात्मा स्वरूप ही होगया इत्यादि। अब भी रामपरमात्मा के गुण चिंतनरूपी ती-सरी प्रेम भक्ति के भक्तों को लाभ मिलते हैं ॥ ३ ॥

चौथी भक्ति राम परमात्माके चरणोंका प्रेमसे सेवन करना है। जैसे कि राजा अम्बरीष रामपरमात्माके चरणोंका प्रेमसे ध्यान किया करते थे, एक रोज राजा अम्बरीष ने व्रत रक्खा और फलाहार तैयार कराया, दुर्वासा ऋषि स्नान करने गये स्नान करते २ बहुत देर लगी, राजा ने फलाहार को खालिया, इतने में दुर्वासा जी आये, राजा को शाप देने लगे, विष्णु ने सुदर्शन चक्र को छोड़ दिया दुर्वासा जी सुदर्शन चक्रको देखते ही भाग चले, ब्रह्माण्ड भरमें किसी देवता अथवा मनुष्यने दुर्वासा जी की रक्षा न करी, तब तो दुर्वासा जी राजा अम्बरीष की शरणमें आए, राजा जी का ध्यान रामपरमात्मा के चरणों में लगा हुआ था, ध्यान ही में मनेन्द्रियों को रोक परमात्मा की प्रार्थना करी तो सुदर्शन चक्र विष्णुके हाथमें उपस्थित हुआ इत्यादि। इ-सी प्रकार पूर्व समय रामपरमात्मा के चरणोंके ध्यानरूपी चौथी प्रेमभक्ति के भक्तों को अनेक लाभ मिलते थे ॥ ४ ॥

श्रद्धा से ईश्वर की मूर्ति के ध्यान द्वारा सुगन्ध्यादि द्रव्यों से ईश्वर का पूजन करना पांचवीं प्रेमभक्ति है। (वांयथायाहिदर्शतेमे सोमाअरंकृताः) इत्यादि वेदमन्त्रों में भी ईश्वर का पूजन लिखा है। (पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति) इत्यादि गीता के प्रमाणोंसे भी ईश्वरका श्रद्धा से पूजन सिद्ध हो चुका है ॥

एक नगर में एक भक्त रात्रि के समय मन्दिर में मूर्ति का पूजन करने जाता था, वह मन्दिर जंगल में था, मार्गमें श्मशान भूमि थी वहां भक्त जी को एक भूत मारने आता था, एक रोज एक परमहंस के पास भक्त जी ने भूत का समाचार सुनाया, परमहंस जी ने कहा कि कलके रोज आप अपने

हाथों में काजल लगाकर आना, जब वह भूत आप को मारने आवेगा, तो काले हाथ उसके मुख पर लगा दीजिये, दूसरे रोज भक्त जीने वैसे ही किया, जब राम परमात्मा के मन्दिर की ओर चला तो मार्ग में भूत उस को मारने आया, भक्त जी ने दोनों काले हाथ भूत के मुख पर लगा दिये, भूत जी लोप होगये, भक्त जी मन्दिर में गए, परमहंस जी को मिले परमहंस जी ने भक्त जी के सामने दर्पण रखदिया, भक्तजी ने दर्पणमें अपना ही मुख काला हुआ देखा, भक्त जी मूर्ति के ध्यान द्वारा परमात्माका पूजन कर मकान में जा बैठे, अभिप्राय यह कि भक्त जीका मन ही भूत होकर मारने आता था परन्तु राम परमात्मा ने परमहंस के रूप को धारण कर भक्तजी के सर्व सन्देह नष्ट करदिये ॥

(अन्य उदाहरण) एक वैरागी को एक रोज ठाकुर जी की पूजा के लिये भोग न मिला, वैरागी जी चले जाते थे, मार्ग में चार मनुष्य वैरागी जी को मिले वे चारों ही चोर थे, परन्तु वैरागी जीने पहिचाना नहीं, उन से ठाकुर जी को भोग लगाने के लिये कुछ मांगा, चोरों ने उन को साथ ले लिया, एक धनिये के मकान में सेंध लगाकर चोर भीतर जा घुसे, साथ ही वैरागी जी घुस गये, वैरागी जी को एक हांडी खीर की मिलगई, चोरों से वैरागी जी ने ठाकुर जी को निकाल सिंहासन पर बिठला दिया, हांडी में से खीर का कटोरा भर कर ठाकुर जी के आगे रखदिया और घंटी बजा दी शंख ऐसा जोरसे बजाया कि घरके मालिक जग उठे, चोरोंको गिरफ्तार किया, वैरागी से पूछा तुम यहां किस लिये आए हो, ? उसने जवाब दिया कि ठाकुर जी को आज भोग नहीं मिला था, मैंने इन से कुछ मांगा, यह मुझे साथ ले आए, यहां से खीर मिली, उस का ठाकुर जी को भोग लगा कर मैंने पूजन करडाला है । यह सुनकर घर के मालिकोंने वैरागीजीको दक्षिणा देकर विदा किया इत्यादि । और भी उदाहरण हैं कि जिन से यही सिद्ध होता है कि पांचवीं मूर्ति के ध्यान द्वारा राम परमात्मा की प्रेमभक्ति से पूजा करने वाले भक्तों को ऐसे २ लाभ मिल जाते हैं ॥ ५ ॥

रामपरमात्माकी मूर्तिको ध्यान द्वारा प्रेमसे नमस्कार करना छठी प्रेमभक्ति है । जैसे कि एक नगरमें एक भक्त बड़े प्रेमसे एक मन्दिरमें मूर्तिके ध्यान द्वारा राम परमात्मा की प्रेमभक्ति किया करता था, उस भक्त का नाम श्री नामदेव जी था, एक रोज पुजारी लोगों ने उस को शूद्र जान कर मन्दिर

में से निकाल दिया, यह भक्त मन्दिर के पीछे जा बैठा और राम परमा-
त्मा की मूर्त्ति के ध्यान द्वारा ऐसा प्रेम से प्रसन्न किया कि उस से राम पर-
मात्मा प्रसन्न हुए, और भक्त जी ने नेत्र खोले तो अपने को मन्दिर के भी-
तर बैठे देखा, परन्तु पुजारी उसको मन्दिर में न देखा, किन्तु पुजारी जब
से जब मन्दिर के पीछे बैठे देखे, भक्त जी ने ठाकुर जी के आगे दूध का
लोटा रक्खा, ठाकुर जी चतुर्भुज रूप को धारण कर पी गये, भक्त जी के क-
पाट खुल गये यह उदाहरण अन्य साहित्य में भी लिखा है, अभिप्राय यह
कि मूर्त्ति के ध्यान द्वारा राम परमात्मा की प्रेमभक्ति से चमत्कारात्मक
छठी भक्ति के ऐसे २ लाख भक्तों को मिलते हैं ॥ ६ ॥

सातवीं राम परमात्मा की दास भक्ति है। जैसे कि हनुमान् जी ईश्वर
के भक्त थे, एकबार हनुमान् जी की प्रेमभक्ति को देख कर राम परमात्मा
ने हनुमान् जी से पूछा कि आप हमें कैसे जानते हैं ?। हनुमान् जी ने उत्तर
दिया कि जब मैं शरीर की ओर देखता हूं तो मैं अपने को दास और हु-
जूर को स्वामी जानता हूं। जब मैं जीव का स्वरूप देखता हूं तो आपको
अंश और हुजूर को अंशी पहिचानता हूं। जब मैं आत्मज्ञान की निगरानी
करता हूं तो हुजूर हैं वही मैं हूं जो मैं हूं वही हुजूर हैं। अर्थात् आत्मा
में दास स्वामीभाव अंश अंशीभाव न थे न हैं न होने का संभव है। ऐसे
जान कर सजातीय विजातीय भेद से रहित नित्य मुक्त नित्य शुद्ध स्वप्रकाश
से मैं भान होता हूं। इस उत्तरको सुनकर राम परमात्मा बड़े ही प्रसन्न हुए।

इस उदाहरण से यह भी निश्चय हुआ कि राम परमात्मा खाली मनुष्य
पर ही प्रसन्न नहीं होते किन्तु प्रेम पर प्रसन्न होते हैं। प्रेमभक्ति कोई भी
करे, जब ईश्वर मनुष्य पर ही प्रसन्न होते तो हनुमान् बन्दर, जामवन्त भालु,
गजेन्द्र हाथी इत्यादि पशु योनि की प्रेमभक्ति पर ईश्वर कभी प्रसन्न न
होते। यदि ईश्वर उत्तम जाति पर ही प्रसन्न होते तो भीलनी कबीर नाम
देव रविदास विदुर इत्यादि नीच जाति की प्रेमभक्ति देख कर ईश्वर कभी
प्रसन्न न होते। यदि ईश्वर केवल सुन्दररूप देख कर ही प्रसन्न होते तो कु-
बरी अष्टावक्र इत्यादि की प्रेमभक्ति से उन पर प्रसन्न कभी न होते। यदि
ईश्वर धनी राजा पर ही प्रसन्न होते तो सुदामा तुलसीदासादि भिखारियों
की प्रेमभक्ति देख कर उन पर प्रसन्न कभी न होते। यदि ईश्वर कमलनयन
वालों पर ही प्रसन्न होते तो सूरदासादि अन्धों की प्रेमभक्ति पर प्रसन्न हो

कर उन को परम धाम मोक्षपद की प्राप्ति कभी न कराते । यदि ईश्वर केवल मित्र पर ही प्रसन्न होते तो रावण कंसादि शत्रुओं का संहार करके का प्रेम देखकर उनको मोक्ष पद की प्राप्ति कभी न कराते। इत्यादि सातवीं दास भक्ति के फल हैं ।

आठवीं सखा भक्ति है । जैसे कि अर्जुन गोपी ग्वालादि की कृष्ण परमात्मा के चरणारविन्द में प्रेम भक्ति थी, सुना जाता है वृन्दावन में एक पण्डित भागवत की कथा किया करता था, एक रोज एक गूजरी भी कथा सुनने आ बैठी, कथा में पण्डित जी ने वर्णन किया कि कृष्ण नाम जपने से जीव संसार सागर को तर जाता है । उस रोज से वह गूजरी कृष्ण नाम का जाप जपने लगी, यमुना पारसे वह गूजरी दूध बेचने आती थी, पुल पर से महसूल देती थी, श्रीकृष्ण जी के चरणारविन्द में उसकी यहां तक प्रेमभक्ति बढ़ गई कि यमुना पर से पैदल ही वार पार आने जाने लगी, महसूल का देना छूट गया, बड़ी धनाढ्य होगई, एक रोज पं० जी को उस गूजरी ने निमंत्रण दिया दूसरे दिन पं० जी को यमुना पार बुलाकर लेचली, पैदल ही यमुना पर से निकल गई पं० जी यमुनाजल में गोते खाने लगे, गूजरी ने कहा पं० जी हमने तो एक ही वार प्रेमभक्ति से श्रीकृष्ण परमात्मा का नाम लिया, उससे हमें ऐसी भक्ति का लाभ हुआ कि यमुना के वार पार पैदल ही जाने आने लगीं, महसूल देना छूट गया, आप प्रति दिन कृष्ण २ चिल्लाते रहते हैं फिर भी यमुनाजल में गोते खाने लगे, क्या आपके मन में कृष्ण परमात्मा से प्रेमभक्ति नहीं प्राप्त भई ?। पण्डित जी लज्जित होकर वृन्दावन को वापस चले आये । अब विचारना चाहिये कि जो सखा भावसे ईश्वर की मन से आठवीं प्रेमभक्ति के कर्त्ता हैं उनको भी पूर्वोक्त फल का लाभ होता है ॥ ८ ॥

जो ईश्वर को अपने आपको समर्पण कर देना है यह ईश्वर की नवीं प्रेम भक्ति है । जैसे दध्यङ्ऋषि की प्रेमभक्ति थी, राजा इन्द्रने दध्यङ्ऋषि का वज्र से शिर भी काट डाला, परन्तु दध्यङ्ऋषि के हृदय से ईश्वर की प्रेमभक्ति जो कि अभेद निश्चय था, वह दूर नहीं हुआ । अभिप्राय यह है कि पूर्वोक्त नव प्रकार की भक्तियों से जो भक्त जन श्रद्धा और विश्वास से

शंकर परमात्मा की प्रेम भक्ति करता है। उस पर परमात्मा प्रसन्न होता है उसी को परमात्मा परम धाम मोक्ष पद का लाभ कराता है॥ ९॥

राजसी, तामसी सात्त्विकी, भेद से भक्ति तीन प्रकार की है। ईश्वर से हाथी घोड़े बकरी गधे आदि मांगना राजसी भक्ति है। जैसे कि दयानन्द बाबाजी की और उनके भक्तों की भक्ति है। आर्य्याभिविनय में ऐसी भक्ति लिखी है। उस पर शंकर परमात्मा प्रसन्न नहीं होते क्योंकि बिना प्रारब्ध कर्मों से ईश्वर काणी कुतिया भी नहीं दे सका। ईश्वर से शत्रुओं का विध्वंस मांगना ऐसी तामसी भक्ति है। जैसे कि दयानन्द ने आर्याभिविनय में लिखी है, ऐसी भक्ति पर भी ईश्वर प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि शत्रुओं का पराजय करना भी प्रारब्ध का फल है। तीसरी सात्त्विकी भक्ति है। जो कि पूर्वोक्त नव प्रकार की निष्काम भक्ति वर्णन करी है। उसी भक्ति पर शंकर परमात्मा प्रसन्न होते हैं। उसी ही का नाम प्रेम भक्ति है। (गीता० अध्या० १८ श्लो० ६१)॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकंशरणंव्रज।
अहंत्वांसर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामिमाशुचः॥

अर्थ स्पष्ट है—भाव यह कि—

दोहा—वेद विरोधी धर्म तज, शरण हमारी आय।
विमल होय मन आप का, जन्म मरण मिट जाय॥

अर्थात् कृष्ण परमात्मा अर्जुन से कहते हैं कि जितने वेद के विरुद्ध धर्म चले हैं, वस्तुतः वे अधर्म हैं। उन सबों को त्याग कर मेरी शरण जो कि वेदोक्त धर्म आत्मज्ञान है। उस को संपादन कर कि जिस से आप को मोक्ष पद का लाभ होकर जन्म मरणादि दुःखों का अत्यन्ताभाव हो जावे। इस श्लोक में भी कृष्ण परमात्मा ने निष्काम प्रेमभक्ति ही का सिद्धान्त प्रकाशित किया है (गीता० अध्या० १८ श्लो० ६२॥)

तमेवशरणंगच्छ सर्वभावेनभारत।
तत्प्रसादात्परांशान्तिं–स्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम्॥

इस में भी अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि आप सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित आत्माकी शरण को प्राप्त हो, उसी शुद्ध ब्रह्म चेतनात्मा के अभ्यासकी कृपा से तुम्हे मोक्ष धाम का लाभ होगा॥ (गीता० अध्याय ४ श्लो० ६॥

अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपिसन् ।
प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥

इस में श्री कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा है कि हे अर्जुन! वस्तुतः मैं जन्म और नाश से रहित सर्व का अपना आप हूं। भक्तों की प्रेम भक्ति से भक्तों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने के लिये मैं अवतारों को धारण करता हूं। सो अवतार शुद्ध सत्व गुण प्रधान मायाके परिणाम हैं ॥ (गीता० अध्या० ४ श्लो० ७ ॥)

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥

इस में कृष्ण परमात्मा कहते हैं कि हे अर्जुन! जब २ सनातन हिन्दु-धर्म्म की हानि होने लगती है तब २ मैं माया शक्ति से भक्तोंकी रक्षाहितार्थ अवतार को धारण करता हूं। (गीता अध्या० ४ श्लो० ८ ॥)

परित्राणायसाधूनां विनाशायचदुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामियुगेयुगे ॥

इस में कृष्ण परमात्मा कहते हैं कि दुष्टोंके मारण और भक्तोंकी रक्षा तथा सनातन हिन्दु धर्म के बचाने के लिये मैं मायाके परिणाम शरीर को धारण करता हूं ॥ (गीता० अध्या० ७ श्लो० १६ ॥)

चतुर्विधाभजन्तेमां जनाःसुकृतिनोऽर्जुन ! ।
आर्त्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानीचभरतर्षभ ॥

इस में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन! चार प्रकारके भक्त हमारी भक्ति करते हैं। उन में से पहिले भक्त जिज्ञासु हैं, जो कि संसार संबन्धी कामनाओं को छोड़कर मेरी मूर्ति के ध्यान द्वारा निष्काम भक्ति करते हैं। उन्हीं का नाम जिज्ञासु भक्त है। दूसरे संसार की कामना से मेरी भक्ति करते हैं। तीसरे स्वर्गादि की कामना के लिये मेरी भक्ति करते हैं। चौथे जीव ब्रह्म के अभेद का चिन्तन रूप मेरी भक्ति करते हैं। जिज्ञासु आदि तीन भक्त मुझे अपनेसे भिन्न जानकर मेरी भक्ति करते हैं। इनमें से ज्ञानी भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं क्योंकि वह मेरा अपना आप यथार्थ शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्मात्मा स्वरूप है। मुख्य प्रेम अपने आप ही से सबका अनुभव सिद्ध है। जैसे कि जब घर में आग लग जाती है तो अपने शरीरके ब-

चाने के लिये मनुष्य स्त्री पुत्रादि को छोड़कर भाग जाता है। जब अत्यन्त रोगी होता है तो मनुष्य यों भी कहता है कि मेरे शरीर प्राणादि छूट जावें तो मैं सुखी होवों। इस व्यवहार से जाना जाता है कि अपना आप शरीर और प्राणों से भी अधिक प्रिय है। हर एक मनुष्य को सुषुप्ति के सुख की उत्कट जिज्ञासा देखी जाती है। वेदके शतपथ ब्राह्मण भाग के १४ वें काण्ड से स्पष्ट विदित है कि सुषुप्ति में वेद भी अवेद है। गुरु भी अगुरु है। पिता भी अपिता है। जीव भी अजीव है। किन्तु वहां केवल स्वप्रकाश स्वरूप आत्मा ही भान होता है। उस सुषुप्ति के आनन्द में जीव मात्र का अत्यन्त प्रेम है। ज्ञानी भक्त उस आनन्दको निरावरण अपना आप निश्चय करता है। अज्ञानी उस आनन्द को ऐसे निश्चय नहीं करता। समाधि के समय भी ज्ञानी भक्तका उसी आनन्दमें प्रेम होता है। हे अर्जुन! वही आनन्द मैं हूं। उससे मुझ आनन्द स्वरूपमें ज्ञानी भक्त की अत्यन्त प्रेम भक्ति है। उस से ज्ञानी भक्त मुझे सर्व भक्तोंसे अधिक प्रिय है॥ (श्रीमद्भागव० स्कं० ११ अध्या० ३ श्लोक २६)

श्रद्धांभागवतेशास्त्रेऽनिन्दामन्यत्रचापिहि।
मनोवाक्कर्म्मदंडंचसत्यं शमदमावपि॥

इस में उद्धव के प्रति कृष्ण परमात्मा कहते हैं कि हे उद्धव! भक्तको उचित है कि आत्म विद्याके प्रतिपादक जो कि वेदान्त के ग्रन्थ हैं उन ग्रन्थों को मन लगाकर श्रवण करे। प्रेमभक्ति युक्त भक्त को चाहिये कि शमदमादि दैवी गुणों को संपादन करे। वेदके विद्वानों पर श्रद्धा रक्खे। अथवा त्रिकाल अबाध सत्य आत्मा पर श्रद्धा रक्खे॥ (भा० स्क० ११ अ० ५ श्लो० ७)

रजसाघोरसंकल्पाः कामुकाअहिमन्यवः।
दाम्भिकामानिनःपापा विहसन्त्यच्युतप्रियान्॥

इस में कृष्ण जी कहते हैं कि हे उद्धव! जो नर मेरी प्रेम भक्ति से विमुख हैं, जो कुकर्मों के करने वाले हैं, जो सर्प के समान क्रोधी हैं, और जो देहाभिमानी हैं, ऐसे दुष्ट पापी नर मेरे भक्तों की प्रेम भक्तिको देख कर उपहास करते हैं॥ (भा० स्कं० ११ अ० १२ श्लो० ४२॥)

सूर्य्योऽग्निर्ब्राह्मणोगावो वैष्णवःखंमरुज्जलम्।
भूरात्मासर्वभूतानि भद्रपूजापदानिमे॥

इस में कृष्ण जी उद्धव जी से कहते हैं कि हे उद्धव ! भूमि जल आकाश वायु सूर्य्य अग्नि गौ ब्राह्मण सन्त इत्यादि में मुझे व्यापक जान कर जो एकान्त में इन का ध्यान पूजन करते हैं। वे भक्त मुझ को अत्यन्त प्रिय हैं (तथाचान्यत्प्रमाणम्) (छान्दोग्यो० प्र० १ ख० ६ मं० ६ ॥)

यएषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषोदृश्यते हिरण्यकेशः हिरण्यश्मश्रुः०

इत्यादि मन्त्रों में सूर्य्य का ध्यान पूजन कहा है ॥

(अग्नौ प्रास्ताहुतिः) इत्यादि श्लोकोंमें मनुजी ने अग्निका पूजन ध्यान वर्णन किया है। (ब्रह्म वै ब्राह्मणः) इत्यादि मन्त्रोंसे आत्मज्ञानी ब्राह्मण का पूजन सिद्ध होता है। (अन्नं हि गौः)·इत्यादि वचनोंसे घासादिसे गाय का पूजन कहा है। अभिप्राय यह कि पूर्वोक्त सूर्यादिके पूजन द्वारा आत्मा ही का पूजन सिद्ध होता है। (भा० स्कं० ११ अ० १२ श्लो० ५)

बहवोमत्पदंप्राप्ता—स्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ।

वृषपर्वाबलिर्बाणो मयश्चाथविभीषणः ॥

इसमें कृष्ण जी कहते हैं कि हे उद्धव ! बाणा सुर १ मयासुर २ बलि ३ वृषपर्वा ४ प्रह्लाद ५ वृत्रासुर ६ विभीषणादि मेरी प्रेम भक्ति के प्रताप से मेरे शुद्ध निराकार निर्विकार सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त भये हैं। इस प्रमाण का भी यही सिद्धान्त है कि शङ्कर परमात्मा प्रेमभक्ति पर ही प्रसन्न होते हैं। उत्तम जातिमात्र पर प्रसन्न नहीं होते (भा० स्कं०११ अ०१२ श्लो० ६ ॥

सुग्रीवोहनुमानृक्षो गजोगृध्रोवणिक्पथः ।

व्याधःकुब्जाव्रजेगोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥

इसमें कृष्ण परमात्मा कहते हैं कि हे उद्धव ! जामवन्त १ सुग्रीव २ हनुमान् ३ जटायु ४ व्याध ५ गजेन्द्र ६ तुलाधार ७ कुब्जा ८ ग्वाले ९ यज्ञपत्नियां १० इत्यादि और भी मेरी प्रेमभक्ति द्वारा मेरे शुद्ध ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं (भा० स्कं० ११ अ० १२ श्लो० ७ ॥)

तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ।

अव्रतोतप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥

इस में कृष्ण जी कहते हैं कि हे उद्धव ! पूर्व जो मेरी प्रेम भक्तिके करने वाले भक्त वर्णन किये गए हैं। कई जन्म में उन ने विवेक वैराग्य षट्

संपत्ति मुमुक्षुता श्रवण मनन निदिध्यासन तत्त्वं पदार्थ का शोधन इत्यादि मुक्ति के साधन संपादन कर लिये थे। किसी विशेष पाप निमित्त से उन को पूर्वोक्त योनि का लाभ हुआ था परन्तु जब उन को भोग हो चुका तो वह मेरी प्रेमभक्ति और पूर्व विवेकादिक साधनों की महिमा से मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं। वर्तमान जन्म में विद्यादि का उन में अदर्शन था (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लो० १० ॥

धर्मंमेकेयशश्चान्ये कामंसत्यंदमंशमम् ।
अन्येवदन्तिस्वार्थंवा ऐश्वर्यंत्यागभोजनम् ॥

इस में श्रीकृष्ण जी का सिद्धान्त है कि हे उद्धव ! कोई भक्त मुझ से धर्म मांगता है, कोई प्रशंसा कराना कोई स्त्री, कोई सत्यभाषण, कोई शम, कोई दम, कोई भक्त मुझ से नानाप्रकार के भोगों को मांगता है. इत्यादि मेरे सकाम भक्त कहाते हैं। (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लो० ११ ॥)

केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानिनियमान्यमान् ।
आद्यन्तवन्तएवैषां लोकाःकर्मविनिर्मिताः ॥

इस में कृष्ण परमात्मा कहते हैं कि हे उद्धव ! सकाम भक्त मुझ से और भी यज्ञ तप दान व्रतादि पदार्थों को मांगते हैं। यथासंभव सकाम भक्तों को मिल भी जाते हैं। परन्तु परिणाम उन का जन्म मरणादि दुःखों का लाभ ही होता है। (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लो० १२)

मय्यर्पितात्मनःसभ्यनिरपेक्षस्यसर्वतः ।
मयात्मनासुखंयत्तत् कुतःस्याद्विषयात्मनाम् ॥

इसमें कृष्ण परमात्मा कहते हैं कि मुझमें जिस भक्त का मन समर्पण हो जाता है उसीको परमानन्द मोक्ष पदका लाभ होता है। और जो मनुष्य विषय भोगों में लम्पट होता, उस को जन्ममरणादि दुःख प्राप्त होते हैं। (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लो० १९ ॥

यथाग्निःसुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसिभस्मसात् ।
तथामद्विषयोभक्तिरुद्धवैनांसिकृत्स्नशः ॥

इसमें कृष्ण जी कहते हैं कि जैसे लकड़ी को शीघ्र ही अग्नि भस्म कर डालता है वैसे ही हे उद्धव ! मेरी प्रेम भक्ति भी पापोंके समुदाय को नष्टकर डालती है ॥ (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लोक० २० ॥)

नसाधयतिमांयोगो नसांख्यंधर्म्मउद्धव ! ।
नस्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता ॥

इसमें कृष्ण जी कहते हैं कि हे उद्धव ! न केवल योग विद्यासे मनुष्य मुझको प्राप्त हो सकता है, न सांख्य से मुझको पा सकता है, धर्म से भी मुझे कोई नहीं पा सकता, वेदादि विद्या और तप से तथा स्त्री पुत्र धनादि के त्याग से भी मुझको कोई प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु मेरी प्रेमभक्ति पूर्वक जो मुझको ध्यान में लाता और पूजन करता है, वही मेरे परम धाम मोक्ष पद को प्राप्त हो सक्ता है। श्रीकृष्ण परमात्मा के इस कथन का सिद्धान्त यह है कि जो मनुष्य सकाम होकर पूर्वोक्त साधनों को संपादन करता है वह मोक्ष पद की प्राप्ति के लिये मुझे वश नहीं कर सकता, किन्तु संसारकी कामनाओं से निष्काम होकर जो मनुष्य मुझे प्रेम भक्ति से प्राप्त करता है। उसी के वश हुआ मैं उसको मोक्ष पद की प्राप्ति कराता हूं। (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लो० २१॥

भक्त्याऽहमेकयाग्राह्यः श्रद्धयात्माप्रियःसताम् ।
भक्तिःपुनातिमन्निष्ठा श्वपाकानपिसंभवात् ॥

इसमें कृष्ण परमात्मा फरमाते हैं कि जो मेरे परमधाम मोक्ष पदकी प्राप्ति की इच्छा रखते हैं वे चांडाल कुल में भी उत्पन्न हुए हों तो भी उन का जाति अभिमान नष्ट होजाता है और वे भक्त प्रेम भक्ति से मुझे वशकर लेते हैं और उनको मैं परमधाम मोक्षपदका लाभ करा देता हूं। (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लो० २२॥

धर्मःसत्यदयोपेतो विद्यावातपसोन्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनातिहि ॥

इसमें श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जो मनुष्य इस असार संसार में नाना प्रकार के धर्मादि और विद्यादि गुणोंको धारण कर लेता है, परन्तु मेरी प्रेम भक्ति को संपादन नहीं करता, उस का उन गुणों से कभी अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता इसका अभिप्राय यह कि विद्यादि गुणों से मनुष्य की जीविका हो सकती है। संसार में प्रतिष्ठा होती है, केवल विद्या जप तप धर्मादि गुणों के संपादन से परम धाम मोक्ष पदका लाभ उसको नहीं हो सकता॥ (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लो० २३॥

कथंविनारोमहर्षं द्रवताचेतसाविना ।

विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्याविनाऽऽशयः ॥

इसमें श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे उद्धव ! जब मेरे गुणोंके वर्णन करतेर अश्रुपात होने लग जावें, रोमांच हो जावें, अन्तःकरणमें आनन्दका आविर्भाव होवे, तब निश्चय कीजिये कि मेरे भक्त के हृदय में मेरी प्रेम भक्ति का यथावत् प्रकाश हुआ है ॥ (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लोक० २४)

यथाऽऽग्निनाहेममलंजहाति ध्मातंपुनःस्वंभजतेस्वरूपम् ।

आत्माचकर्मानुशयंविधूय मद्भक्तियोगेनभजत्यथोमाम् ॥

इसमें श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे उद्धव ! जैसे कि अग्निमें डालने से कंचन का मल नष्ट हो जाता है, वैसे ही जो भक्त मनेन्द्रियों को विषयों की ओरसे रोक कर श्रद्धा से मेरी प्रेम भक्तिको सम्पादन करता है । उसके जन्म जन्मान्तर के सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं। उससे वह भक्त मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है ॥

प्रकरण में कृष्ण परमात्मा का सिद्धान्त यह है कि पूर्व जन्म के किये मन्द प्रारब्ध पाप कर्म प्रेम भक्ति से नष्ट हो जाते हैं । तीव्र प्रारब्ध पाप कर्मप्रेम भक्तिसे ढीले हो जाते हैं। तीव्र तर प्रारब्ध पाप कर्म भक्तको फल दिये विना नष्ट नहीं होते। परन्तु प्रेम भक्ति के प्रताप से तीव्र तर प्रारब्ध पाप कर्म दुष्ट जीवोंको जैसे दुःखप्रद हैं वैसे भक्तको दुःखदायक भान नहीं होते। क्योंकि भक्तजन प्रेमभक्ति के आनन्द ही में मग्न रहता है ॥ (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लो० ४२ ॥

सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषुमनोदधत् ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्यतन्मनः ॥

इसमें भगवान् कहते हैं कि हे उद्धव ! सुपात्र कुमार मुझको प्रेम भक्तिसे ध्यान में लाते और मेरा पूजन करते हैं। वही मनेन्द्रियों को दुष्ट विषयों की ओर से हटाकर निश्चयात्मक अन्त.करण की वृत्तिरूपी बुद्धि में मन को रोकते हैं। उन भक्तों के अन्तःकरणमें नित्य शुद्ध नित्य मुक्त अद्वितीय ब्रह्म चेतनात्मा का निरावरण भान होता है। हर्ष शोक उन के अन्तःकरणमें से नष्ट हो जाते हैं। ऐसे मेरे अनन्यभक्त फिर जन्ममरण रूपी दुःखसागर में नहीं आते ॥ (भा० स्कं० ११ अ० १४ श्लोक० ४४ ॥

तत्रलब्धपदंचित्तमाकृष्यव्योम्निधारयेत् ।
तच्चत्यक्त्वामदारोहो नकिञ्चिदपिचिन्तयेत् ॥

इसमें कृष्ण जी कहते हैं कि हे उद्धव ! मेरी प्रेम भक्ति करनेवाले भक्त को उचित है कि स्थूल सूक्ष्म और कारण तीन शरीरों के अभिमानको छोड़ देवे, मेरे चतुर्भुज स्वरूप में मन को रोक देवे, जब मेरे साकार स्वरूपमें प्रेम भक्ति करने वाले भक्त का मन रुक जावे तो साकार स्वरूपोपहित निराकार निर्विकार शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप मुक्त ब्रह्म में मन को रोके। अभिप्राय यह है कि इस प्रकार का ज्ञानी भक्त स्वयं ब्रह्म स्वरूप हुआ संसार में प्रारब्ध कर्म्मानुसार भ्रमण करे ॥

इत्यादि और भी ईश्वरकी प्रेमभक्तिके करनेमें अनेक प्रमाण हैं। जिन को जिज्ञासा हो वह देखकर अन्तःकरणसे प्रमाण प्रमेय गत संशय नष्ट कर लेवे॥

यहां तक प्रमाण और युक्ति से हम ने ईश्वर की प्रेमभक्ति का वर्णन किया। अब ईश्वर के नामकी महिमा लिखी जाती है (तथाहि) (मनु० अ० २ श्लो० ७५)

प्राक्कूलान्पर्य्युपासीनः पवित्रैश्चैवपावितः ।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्ततओङ्कारमर्हति ॥

इत्यादि श्लोकों में मनुजी ने ईश्वरके ओम् नाम का माहात्म्य वर्णन किया है । अभिप्राय यह कि जबतक ईश्वर के नाम को भक्त श्रवण नहीं करता तबतक अर्थका ज्ञान भी भक्त जी को नहीं हो सकता । प्रत्येक वर्णके हिसाब से ईश्वर के (ओम्) नाम में अकार उकार मकार ये तीन पद देखे जाते हैं । स्थूल समष्टि संसार विशिष्ट ब्रह्मचेतन अकार पद का वाच्यार्थ है। स्थूल समष्टि संसार की दृष्टि के विना केवल शुद्ध ब्रह्मचेतन अकार पद का लक्ष्यार्थ है। सूक्ष्म समष्टि संसार विशिष्ट ब्रह्मचेतन उकारपद का वाच्यार्थ है। सूक्ष्म समष्टि संसारकी दृष्टिके विना केवल शुद्ध ब्रह्मचेतन उकार पदका लक्ष्यार्थ है । समष्टि कारण संसार विशिष्ट ब्रह्मचेतन मकार पद का वाच्यार्थ है। समष्टि कारण संसार दृष्टि के विना केवल शुद्ध ब्रह्मचेतन मकार पद का लक्ष्यार्थ है। प्रत्येक अकारादि वर्ण नामों के वाच्य लक्ष्य का ज्ञान जब भक्त के अन्तःकरण में हो जाता है, तो अकारादि वर्ण समुदाय ओम्कार नाम का वाच्य लक्ष्यार्थ भी भक्त जी के अन्तःकरण में भान होने लग

जाता है। जैसे कि स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि व्यष्टि संसार जो कि तीन प्रकार से हम वर्णन करचुके हैं, तद्विशिष्ट ब्रह्मचेतन ओमूकार नाम का वाच्यार्थ है। समष्टि व्यष्टि तीन प्रकार के संसारकी दृष्टि छोड़ कर केवल शुद्ध ब्रह्मचेतन जो कि भक्त जी का अपना आप है, वह ओमूकार नाम का लक्ष्यार्थ भक्त जी के अन्तःकरण में भान होने लग जाता है। जब भक्त जी को ओमूकार इस ईश्वर के नाम का ज्ञान न होता तो भक्त जी को ओम् इस ईश्वर के नाम का वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ भी कभी ज्ञात न होता। इस से नाम ही अर्थ का ज्ञान कराने में सर्वोत्तम है॥

(यस्यनाममहद्यशः) इस वेद मंत्र का भी यही सिद्धान्त है कि ईश्वर का नाम ही सबसे बड़ा है। प्रकरणमें ईश्वरके ओम् नामही का मंत्रमें अध्याहार हो सक्ता है। (वासुदेवस्यनाम) इस वेद मंत्र में भी ईश्वरके नाम ही को सर्वोत्तम कहा है। प्रकरणमें यहां भी ईश्वरके ओम् नाम ही का अध्याहार होता है (तयोनामदेवास्तेषां०) इस अथर्ववेद के मंत्र में भी ईश्वर के ओम् नाम की महिमा ही का वर्णन है। अभिप्राय यह कि जब तक भक्त जी ईश्वरके ओम् नामका श्रद्धा और प्रेम भक्ति से जाप न करेंगे तब तक भक्त जी को नाम के वाच्यार्थ वा लक्ष्यार्थ का ज्ञान कदापि नहीं हो सकता। जगत् में नाम ही से सर्व मनुष्यों का व्यवहार सिद्ध होता देखा जाता है। जैसे कि (घटमानय) (पटमानय) इत्यादि घटपटादि नाम के उच्चारण के विना घट पटादि पदार्थोंका ज्ञान नहीं हो सकता, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि नामों के उच्चारण किये बिना ब्राह्मणादि व्यक्तियों का ज्ञान नहीं हो सकता नाम ही को श्रवण कर घर के कुटुम्बी लोग दरवाजा खोलते हैं। नाम लिखा कर कोर्टों में मुद्दई मुद्दाला के मुकद्दमे चलाते हैं। नाम लिखाकर ही विद्यार्थी पाठशाला स्कूल कालिज में भरती होते हैं। नाम लिखा कर ही पुलिस वा जंगी बेड़े में मनुष्य भरती होते हैं। कौंसिल कमेटी समाज सभा आदि में नाम लिखाकर ही मेम्बर हो सकते हैं। असख्यात रूप नष्ट हो जाते हैं परन्तु नाम उन के नष्ट नहीं होते (तत्त्वमसि) (अहं ब्रह्मास्मि) इत्यादि वाक्योंके पदों अथवा पद समुदाय वाक्योंका वाच्य लक्ष्यार्थ ज्ञानी भक्तोंको तभी ज्ञात हो सकता है कि जब (तत्-त्वं-असि) (अहं-ब्रह्म-अस्मि) इत्यादि प्रत्येक पदरूपी नामोंको श्रवण करता है। जब तक ज्ञानी भक्त पूर्वोक्त नामोंका श्रवण नहीं

करता तब तक उसके अन्तःकरण में उक्त वाक्यों के पदों का भी वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ ज्ञात नहीं होता और जब तक उक्त पदों के समुदाय रूपी वाक्य नाम का ज्ञानी भक्त को यथावत् बोध नहीं होता तब तक वाक्यरूपी नामके शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म अखण्डार्थ का भी यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता।

प्रकरण में पूर्वोक्त लेखोंका सिद्धान्त यह कि सनातन हिन्दुधर्म रूपी एक कल्प वृक्ष है। रामानुज १ वल्लभाचार्य २ गुरु नानक ३ शैव ४ शाक्त ५ इत्यादि अनेक संप्रदाय रूपी सनातन हिन्दु धर्मरूपी कल्पवृक्षकी शाखाएं हैं। उनमें से रामानुज संप्रदाय में ईश्वर के राम नाम का जाप होता है। वल्लभाचार्यके संप्रदायमें कृष्ण नाम का जाप होता है। गुरु नानकसंप्रदाय में रामकृष्ण दोनों नामों का जाप होता है। शैव संप्रदाय में ईश्वरके शिव नाम का जाप होता है। शाक्त संप्रदायमें ईश्वर के देवी [शक्ति] नाम का जाप होता है। हमारे इस भक्ति विषयक व्याख्यान का सिद्धान्त यहहै कि कृष्ण राम शिव देवी इत्यादि सर्व नाम ईश्वरके हैं। जिस नामके साथ जिस भक्त का मनसे प्रेम लग जावे। उसी नाम का वह भक्त अभ्यास करे, दूसरे नामों की निन्दा कभी न करे। क्योंकि रामकृष्णादि नामों के व्यष्टि शरीरादि साकार वाच्यार्थ भिन्न २ हैं समष्टि माया विशिष्ट सर्व व्यापक ईश्वर साकार रूप रामकृष्णादि अनेक नामों का एक ही अर्थ है। वह भी रामकृष्णादि नामोंका वाच्यार्थ है। नामरूप क्रियात्मक समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण तीन शरीर और उन का कारण माया इन सब का बाध निश्चय कर शेष सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित शुद्ध ब्रह्मचेतन राम कृष्णादि नामों का लक्ष्यार्थ भेद वा अभेद प्रेम भक्ति का मुख्य फल भक्तों के अन्तःकरण में स्वप्रकाश से भान होता है वही मोक्ष पद है॥

ओम् शान्तिः ३ ॥

शुद्धि अशुद्धि खण्डन विषयक

व्याख्यान नं० ९

आर्य्यसमाजी कहते हैं कि हम भंगी चमार मुसलमान को भी शुद्ध करके आर्य्य बना लेते और उनके साथ खाना भी खा लेते हैं। आर्यसमाजियों से यहां प्रष्टव्य यह है कि जिन भंगी चमार मुसलमानों को आप आर्य्य बना लेते और उनके साथ खाना खा लेते हैं उन को आप ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बनाते हैं अथवा शूद्र? यदि शूद्र कहो तो उनको यज्ञोपवीतादि संस्कारोंका कराना व्यर्थ होगा क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लासमें दयानन्द ही का लेख है कि "शूद्र को यज्ञोपवीतादि न करावे" (किंच) जब भंगी चमार मुसलमान आदि आर्य्यमतमें शामिल होकर भी शूद्र रहेंगे तो उनके लिये आर्य कहाना निष्फल प्रवृत्ति का जनक होगा। न माने तो दयानन्दका लेख भी मिथ्या होगा क्योंकि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास का लेख है कि "ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीन वर्ण ही आर्य्य हैं शूद्र अनार्य अनाड़ी दस्यु अविद्वान् मूर्ख है"। ऐसी पदवियों से भंगी चमार मुसलमानों को अपने २ मत में रहना ही सर्वोत्तम है। यदि आर्यसमाजी कहें कि भंगी चमार मुसलमानों को हम शुद्ध करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बना लेते हैं, तो सन्देह यह हो सक्ता है कि आर्य्यमत में जन्म से वर्ण व्यवस्था है, वा कर्मसे यदि जन्मसे कहो तो दयानन्द मिथ्यावादी होगा क्योंकि उसने कर्म्म से वर्ण व्यवस्था लिखी है। यदि आर्य्यसमाजी भी कर्म ही से वर्णव्यवस्था मान लेवें तो सन्देह यह होता है कि जिन भंगी चमार मुसलमानोंको आप आर्य बनाते हैं, उनमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके कर्म हैं अथवा नहीं। यदि नहीं कहो तो फिर भी वह आर्य्य नहीं हो सक्ते। आर्य न होनेके कारण वह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी नहीं हो सक्ते। यदि कहो कि जिन भंगी चमार मुसलमानोंको हम शुद्ध करके आर्य बनाते हैं, उनमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के कर्म हैं। सो भी ठीक नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणसे देखा जाता है कि जितने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके वीर्य्य से उपजे आर्य कहाने लगे हैं। उनमें से एक भी वेद मनु और गीतादिके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके कर्मों वाला नहीं देखा जाता, तो जिन भंगी चमार मुसलमानों को शुद्ध करके आर्य बनाते हैं उनमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके कर्म कहां सिद्ध हो सक्ते हैं? किन्तु कभी नहीं, हां गपोड़े

लगानेकी दूसरी बात है जैसे कोई गंजेका नाम कलंगासिंह और काले भूत का नाम चन्द्रमुखी रख देवे। वही तमाशा आर्य समाजियों का है। यद्यपि (ऋगतौ) इस धातु वा अरि शब्दसे भी आर्य शब्द सिद्ध होता है, उससे श्रेष्ठ अर्थ आर्य शब्दका नहीं निकल सकता। तथापि दयानन्द मत रीति से आर्यनाम श्रेष्ठका है। श्रेष्ठ और शुद्ध ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। यहां आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि भंगी चमार मुसलमान ये नाम स्थूल शरीर के हैं? वा सूक्ष्म शरीर के, अथवा कारण शरीर के किंवा ये नाम आत्माके हैं। यदि कहो कि भंगी चमार मुसलमान ये नाम, सूक्ष्म कारण शरीर वा आत्मा के हैं, सो ठीक नहीं क्योंकि सत्यार्थप्रकाशके नवें समुल्लास में दयानन्द ने कर्मानुसार योनि का बदलना पुनर्जन्म में लिखा है। यदि उस लेखको सत्य मानें तो सूक्ष्म कारण इन दो शरीरों और आत्माका नाम तो न चमार, न भंगी और न मुसलमान हो सकता हैं। रहा स्थूल शरीर सो यदि भंगी चमार मुसलमान के स्थूल शरीर को शुद्ध करके आर्य बनाना कहो तो सो भी ठीक नहीं? (क्योंकि)

अत्यन्तमलिनोदेहो देहीचात्यन्तनिर्मलः।
उभयोरन्तरंज्ञात्वा कस्यशौचंविधीयते॥

इस वेदान्त वाक्य से सिद्ध होता है कि स्थूल शरीर अत्यन्त मलिन है, वह कभी शुद्ध नहीं हो सकता। न माने तो दयानन्द भी मिथ्यावादी होगा क्योंकि दयानन्द ने पहिले सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास वा दूसरे सत्यार्थ प्रकाशके नवें अथवा द्वादश समुल्लास तथा वेदभाष्य भूमिकाके उपासना प्रकरणमें शरीरको दुर्गन्ध रूप और अत्यन्त मलिन करके वर्णन किया है। इस से भी स्थूल शरीर को शुद्ध करनेका गपोड़ा लगाना लालबुझक्कड़ोंका तमाशा है। (बूझै बूझै लालबुझक्कड़, और न बूझै कोय। थोड़ा थोड़ा सब को दीजो गड्डमगड्डा होय) यही लीला आर्यसमाजियों की है। अकल के अन्धे गांठ के पूरों के सामने गपोड़े हांकते हैं कि हम वेदमन्त्रोंसे शुद्ध करके भंगी चमार मुसलमानों को आर्य अर्थात् शुद्ध बना लेते हैं (किंच)

अस्थिस्थूणंस्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्।
चर्मावनद्धंदुर्गन्धि-पूर्णमूत्रपुरीषयोः॥
जराशोकसमाविष्टंरोगायतनमातुरम्।
रजस्वलमनित्यंच भूतावासमिमंत्यजेत्॥

इस मनु जी के सिद्धान्तसे भी स्थूल शरीर हाड़ चाम मैला मूत्ररूप सिद्ध हो चुका है। उस से भी स्थूल शरीर को शुद्ध करनेको गपोड़ा लगाना अविद्वानों की लीला है। यद्यपि मनु जी ने भी शौच तो नाना भांतिसे वर्णन किया है, जैसे कि अनेकवार मिट्टीके साथ हाथ पैर उपस्थ पायु आदि अंशों का धोना मनुजी ने कहा है, तथापि वह स्थूल शरीर के बाहर की सफाई कहाती है हाड़ चाम मैला मूत्ररूप शरीर उस से शुद्ध हो जाता है मनु जी का यह सिद्धान्त सिद्ध नहीं हो सकता। उससे भी भंगी चमार मुसलमान नाम वाले स्थूल शरीर कभी शुद्ध नहीं हो सकते। मुसलमान नाम वाले शरीर पर विचार तो आगे किया जायगा पहिले भंगी चमारनाम वाले शरीरों की समालोचना की जाती है (३ सत्या० समुल्लास १०) दयानन्दजीका लेख है कि भंगी चमारादि नीचके हाथका न खाना क्योंकि उनके शरीर दुर्गन्धके परमाणुओं से भरे हैं। ब्राह्मण ब्राह्मणोंके हाथका खाना क्योंकि उन के रजवीर्य और शरीर दुर्गन्ध रहित परमाणुओंसे भरे हैं। दयानन्द के इस लेखसे भी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि भंगी चमार नाम वाले शरीर कभी शुद्ध नहीं हो सकते (हाड़ मांस नाड़ीका पिंजर पक्षी वसे विचारा) इस ग्रन्थ साहिब के प्रमाण से भी हाड़ चाम मैला मूत्ररूप भंगी चमार नाम वाला शरीर शुद्ध नहीं हो सकता।

जा शरीर मांहिं तू अनेक सुख मान रह्यो ताहि तू विचार यामें कौन चीज भली है। मेद मज्जा मांस रग रगन में रकत भरयो पेट हू पिटारीसो में ठौर २ मलो है॥ हाड़न सों भरयो मुख हाड़नके नाक कान हाथ पैर नैन सो तो हाड़न की नली है। सुन्दर कहत याहि देख मत भूले कोइ भीतर भंगारि भरी ऊपर से कली है॥

इस सुन्दरदास के प्रमाण से भी भंगी चमार नामवाले शरीर शुद्ध नहीं हो सकते। यदि कहो कि वेद मंत्र निराकार ईश्वरकी वाणी हैं, वेद मंत्रोंसे भंगी चमार शरीर शुद्ध हो सकते हैं। तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि वेद मंत्रों में भंगी चमार नाम वाले शरीरोंका शुद्ध करना लिखा ही कहीं नहीं। यदि निराकार ईश्वर अथवा उसके वेद मंत्र रूप विद्या में हाड़ चाम मैला मूत्र रूप शरीर को शुद्ध करने की शक्ति होती तो भंगी चमार नाम वाले शरीर बदल के दूसरे रूप होजाते। यदि कहो कि बरमा शर्मा नाम रखने से भंगी

चमार नामवाले शरीर शुद्ध हो जाते हैं। सोभी ठीक नहीं क्योंकि जब सर्म्मा शर्म्मा आदि नाममें ऐसी शक्ति होती तो भंगी चमारादि के दुर्गन्ध रूप शरीर भी बदल के अवश्य ही सुगन्ध रूप हो जाते। यदि और भी सूक्ष्म विचार किया जावे तो आर्यमतवाली शुद्धताकी सर्वथा पोल खुल जाती है।

वेदान्तका यह सिद्धांत है कि शुद्ध सत्व गुण प्रधान माया ईश्वर का विशेषण है और मलिन सत्वगुण प्रधान अविद्या जीवका विशेषण है। इस वेदान्त सिद्धान्तसे भी यही ज्ञात होता है कि जीवके सूक्ष्म और कारण शरीर जो कि अविद्या के परिणाम हैं यह दो शरीर भी शुद्ध नहीं हो सकते। उससे भंगी चमारादिके तीनों शरीरोंका शुद्ध होना सर्वथा असंभव है। सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में दयानन्दने राग द्वेष दुःख और विकार जीव के गुण लिखे हैं। और गुण गुणी का बाबाजी ने नित्य समवाय सम्बन्ध लिखा है। उससे आर्यमत में भंगी चमारादि के स्थूल सूक्ष्म कारण तीन शरीर चौथा जीव इन चारोंमें से एक भी शुद्ध नहीं हो सकता। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में दयानन्दका लेख है कि "अविद्या भी जीवका गुण है," उस लेख से भी आर्यमत में भंगी चमारादि जीव शुद्ध नहीं हो सकते। यद्यपि विद्याप्रकाशसे अविद्यान्धकार नष्ट हो जाता है तथापि दयानन्द मत में अविद्या गुण और गुणी जीवका नित्य समवाय संबन्ध माना है। यद्यपि—

वासनाद्विविधाप्रोक्ता शुद्धाचमलिनातथा।
मलिनाजन्मनोहेतुः शुद्धाजन्मविनाशिनी॥

इस योगवसिष्ठके वचनसे शुद्ध वासना के संपादन से भंगी चमारादि भी शुद्ध हो सकते हैं तथापि इस प्रमाणसे यह सिद्ध नहीं होता कि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर शुद्ध होते हैं। किन्तु उक्त वचन में जीवके अन्तःकरण में शुद्ध ब्रह्मके साक्षात्कार की हेतु वासना ही को शुद्ध वासना कहा है। आर्यमत में जो भंगी चमारादि शरीरों को शुद्ध करने की वासना है वही मलिन वासना है क्योंकि दुर्गन्धरूप शरीरका शुद्ध होना किसी प्रकार से भी सिद्ध नहीं हो सकता। उससे मलिन शरीरको शुद्धकरने की वासना भी मलिन वासना है। आर्यसमाजी कहते हैं कि गुरु नानक गुरू गोविन्दसिंह आदिकों ने भंगी चमारादिको शुद्ध कर लिया था। जैसे कि मजहबी सिंहदेखे जाते हैं उससे भंगी चमारादि शुद्ध हो सकते हैं यह शंकाभी उन्मत्त प्रलाप

का तमाशा है क्योंकि आदि गुरु ग्रन्थ साहिबसे विदित होता है कि भंगी चमार मुसलमानादिके साथ खाना खानेकी वा रिस्तेदारी करने की आज्ञा नहीं दी गई है किन्तु नामके माहात्म्यसे नीच वर्णके भक्तों का सन्मान ही संसार में हुआ है। जैसे कि ग्रन्थ साहिब में लिखा है—

मेरी जाति कमीनी पातकमीनी ओछा जन्म हमारा ॥
तुम शरणागत राजा रामचन्द्र कह रविदास चमारा ॥
ओछी मति मेरी जाति जुलाहा। हरिका नाम लयो मैं लाहा॥
जाति जुलाहा मतिका धीर। सहज सहज गुण रमैंकबीर।
हीनड़ी जाति मेरी जाद वराया। छीपेके जन्म काहेकोपाया ॥
बोले शेख फरीद० ॥

इत्यादि ग्रन्थ साहिब के प्रमाणों से निश्चय होता है कि गुरु नानक आदि आचार्यों ने जाति के रद बदल करने की आज्ञा नहीं दी। किन्तु नाम के माहात्म्य ही से भंगी चमारादि वंशमें उपजे भक्तोंका सत्कार करने का प्रबन्ध किया है। उस से भंगी चमार मुसलमानादि नाम वाले दुर्गन्ध रूप शरीर शुद्ध नहीं हो सक्ते। उस से वह ब्राह्मण क्षत्रिय भी नहीं हो सक्ते गुरु गोविन्द सिंह जी ने भी भंगी चमारोंको हिन्दु धर्म्म रक्षा में सहायता लेने के लिये नाम दान ही दिया है। रिश्तेदारी वा खाने पीने की एकता का हुकम नहीं दिया। उस से भी भंगी चमारादिके शरीर शुद्ध नहीं हो सक्ते यहां तक कि गुरु गोविन्दसिंह जी के पिता जो गुरु तेगबहादुर जी थे दिल्ली में उन ने शिर दे दिया परन्तु मुसलमानों का बनाया खाना नहीं खाया। गुरुगोविन्दसिंह जी ने भी मुसलमानों का खाना नहीं खाया। गुरू गोविन्दसिंह जी के लड़कोंने भी शिर दे दिये परन्तु मुसलमानों का खाना नहीं खाया। हकीकतराय ने भी शिर दे दिया परन्तु मुसलमानों का बनाया खाना नहीं खाया। उस से भी भंगी चमार मुसलमानादि नाम वाले शरीर शुद्ध नहीं हो सक्ते ॥

एक समय अष्टावक्र जी जनक राजा की सभा में गये, वहां पण्डित लोग उन के शरीर को देख कर हंसने लगे, राजा जनक ने अष्टावक्र जी से पूछा कि आप को देख कर पण्डित लोग क्यों हँसे हैं? तब अष्टावक्र जी ने कहा कि इन में पण्डित एक भी नहीं, किन्तु ये सर्व चमार हैं। यह सुन कर पण्डितों को क्रोध चढ़ गया परन्तु राजा ने सब को रोका और अष्टावक्र जी से पूछा कि महाराज ये तो वेदादि पढ़े हैं, आपने इनको चमार क्यों कहा?।

अष्टावक्रजी ने उत्तर दिया कि सत्यासत्य का विचार करने वाला ही विद्वान् वा परिडत हो सकता है। चमड़े की दृष्टि से चमार ही समझा जाता है, इन लोगों की दृष्टि चमड़े पर है, आत्मदृष्टि का इन में अत्यन्ताभाव है, उससे ये लोग चमार हैं। आत्मज्ञानी परिडत हो सकता है, यदि ये परिडत होते तो चमड़े को देख कर कभी उपहास न करते, जनकराजाके सन्देह नष्ट हो गये। इस प्रमाण से भी भंगी चमारादि नाम वाले शरीर शुद्ध नहीं हो सकते। और शरीर ही का धर्म जाति है जब व्यक्ति है तब तक व्यक्ति से भिन्न जाति न थी न है और न भिन्न होनेका संभव है, उस से भी भगी चमारादि न शुद्ध हो सकते हैं और न उनकी जाति का रद् बदल हो सकता है। इस का विशेष वर्णन वर्णव्यवस्था के व्याख्यान में होगा। यह व्याख्यान केवल शुद्धि अशुद्धि के विचार पर है।

डाक्टरी विद्या से भी विदित होता है कि एक भोजन रूपी पिता के दो पुत्र पैदा होते हैं, उन में से एक शरीर और दूसरा विष्ठा पैदा होता है। मनुष्य को चाहिये कि जैसे एक भाई विष्ठा से घृणा करता है वैसे ही दूसरे दुर्गन्धरूप शरीर भाई से घृणा करे। इस युक्ति से भी दुर्गन्धरूप स्थूल शरीर शुद्ध नहीं हो सकता! आर्यसमाजी कहते हैं कि जितने मुसलमान भारतवर्ष में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। वह सर्व पहिले चार वर्णों में थे, तलवारके जोर से मुसलमान किये गये हैं उस से वह शुद्ध हो सकते हैं। आर्यसमाजियों का यह कथन भी अविद्यामूलक है क्योंकि जब से चारों वर्ण तलवारके जोर से मुसलमान किये हैं तभी से उन की सुन्नत होती चली आती है। यह मुसलमानों के दीन का असाधारण और निहायत सख्त चिन्ह है। उस चिन्ह को न तो वम्मों शम्मों खिताब हटा सकते हैं। और न शिखा सूत्र तथा संन्ध्या गायत्री होम हटा सकते हैं। यहां तक कि आर्योंका सर्वशक्तिमान् निराकार ईश्वर वा उस के रचे वेदमन्त्र भी सुन्नतरूपी चिन्ह को नहीं हटा सकते? तो आर्यों में ऐसी सामर्थ्य कहां है? जो कि मुसलमानोंके सुन्नतरूपी चिन्ह को हटा कर उसे आर्य बना सकें, आर्यसमाजी ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं दे सकते, कि जिस से साबित हो जावे कि सिर पर शिखा गले में सूत्र तथा नीचे सुन्नतरूपी चिन्ह ऐसे रूप वाले भी कभी आर्य हुए हैं। करांची में मुकद्मेके समय आर्य लोग इजहार में लिखाचुके हैं कि हम लोग तो जो भंगी चमार मुसलमानादि हैं उनको भी शुद्ध करके आर्य बना सकते और उनके

साथ खाना भी खा सकते हैं। परन्तु जब अदालत में पूछा गया कि जो ब्राह्मण क्षत्रिय के वीर्य से उपजे आर्य कहाते हैं। वह भंगी चमार मुसलमान जो कि शुद्ध किये हैं उनको अपनी लड़की भी दे सकते हैं? । इस पर आर्यसमाजियों ने इनकार किया, अब विचारना चाहिये कि जब भंगी चमार मुसलमान शुद्ध हो जाते हैं तो उनको लड़की देने पर अदालतमें इनकार क्यों किया जाता है? इससे जाना जाता है कि भंगी चमार मुसलमान का शुद्ध होना आर्यों के मनमें नहीं किन्तु मुखसे मिथ्या बकते हैं कि हम भंगी चमार मुसलमानको शुद्ध कर लेते हैं। मुसलमानोंको इत्तिला दी जाती है कि जब आर्य लोग आपको शुद्ध करने की कोशिश करने लगें तो पहिले यही प्रश्न करें कि हमारी सुन्नत को पहिले दुरुस्त कीजिये फिर हम आर्य नामका खिताब लेंगे। हम सत्य कहते हैं कि इस प्रश्न को सुनते ही आर्य लोग मौन साध जायंगे और मुसलमानों को उचित है कि यह प्रश्न भी करें कि अच्छा आप में वा आपके निराकार ईश्वर में किंवा आपके सन्ध्या गायत्री होम शिखा सूत्र वेद मंत्रोंमें सुन्नत दुरुस्त करने की तो लियाकत नहीं यह बात सिद्ध हो चुकी, यदि आप का इरादा हो तो हम आप लोगोंकी सुन्नत फौरन कर सकते हैं। उससे आप मुसलमान हो सकते हैं। इस प्रश्नको सुनकर भी आर्य लोग मौनी होकर नीचे देखने लगेंगे। तीसरा प्रश्न मुसलमानों को यह भी करना उचित है कि आप लोग हमें किसी खानदानी आर्य्य की लड़की दीजिये तो हम अभी आर्य्य खिताब को ले सकते हैं। इसको सुनकर भी आर्य लोग मूक हो जावेंगे। उससे भी आर्य लोग मुसलमानादिको शुद्ध नहीं कर सकते। केवल टका बटोरने के लियें ही आर्य लोगोंने शुद्ध करनेकी दुकानदारी लगा रक्खी है। एक पक्का निशान तो मुसलमानों का सुन्नत है जो कि आर्य्यों से नहीं हट सकता और दूसरा निशान मुसलमानोंका यह भी है कि वह गौ बैल के मांस को भक्षण करते हैं ॥

डाक्टरी विद्या से साबित है कि जैसा भोजन खाया जाता है वैसे परमाणुओं ही से उसका शरीर अथवा बीर्य भरा होता है। हिन्दू लोगोंको गौ बैल के मांससे जैसी नफरत है वैसी नफरत और किसी कौमके नरनारी को नहीं है। आर्य लोग अथवा उनका निराकार ईश्वर किंवा आर्य मतवाले वेद मंत्र संध्या गायत्री शिखा सूत्र होमादिमें भी ऐसी सामर्थ्य नहीं देखी जाती कि जिससे भंगी चमार मुसलमान नर नारीके शरीर वा रज वीर्यमें से गौ बैल

के मांस के परमाणु निकाल देवें। उससे भी भंगी चमार मुसलमान शुद्ध नहीं हो सकते। आर्य्य कहते हैं कि जैसा मांस बकरे आदि का है वैसा ही गौ बैल का भी मांस है। यह भी ठीक नहीं क्योंकि डाक्टरों ने भी सिद्ध कर दिया है कि गौ बैल और बकरादिके मांस में सर्व प्रकारसे विलक्षणता है। आर्य्य समाजी कहते हैं कि जैसे ऐनीबिसंट मेम और उसके साथी हजारों अंगरेज वा मुसलमान तथा भंगी चमार हिन्दु कहाते हैं वैसे आर्य्योंमें भी भंगी चमार ईसाई मुसलमानादि शुद्ध होकर आर्य्य हो सकते हैं। आर्य्यों की यह शङ्का भी मिथ्या है क्योंकि ऐनी बिसण्ट वा उन के साथी ईसाई मुसलमान भंगी चमारादि हिन्दु कौममें तो दाखिल हो सकते हैं। परन्तु उनकी व्यक्तियोंमें ब्राह्मणत्वादिजातियों का प्राप्त होना सर्वथा असम्भव है। हां हिन्दुमतकी वेदान्त फिलौसफीको मानकर वह हिन्दु कहा सकते हैं परन्तु ब्राह्मणादि वर्णों के साथ उनका खान पान और रिस्तेदारी नहीं हो सक्ती। हां नेक कर्म्म करने से वह लोग दूसरे जन्म में ब्राह्मणादि हो सक्ते हैं। मुझे दृढ़ निश्चय है कि ऐनी बिसंट और उनके साथियोंका भी यही सिद्धान्त होगा उस से भी भंगी चमारादि शुद्ध नहीं हो सकते।

सुना जाता है कि एक समय अकबर बादशाह प्रातःकालको हवाखाने के लिये निकले, बाजार में देखा कि एक रात्रिका जन्मा हुआ बालक किसी ने फेंक दिया है। बादशाहने उसको उठवालिया और १० बर्ष तक उस बालक की परवरिश करवाई, बादशाहने एक रोज वैद्य बुलाये और कहा कि इस बालक की परीक्षा कीजिये कि यह किस कौम का वीर्य है। डाक्टर ने बालक को एक गर्म बंगले में बन्दकर दिया दो घंट में बालक को ऐसा पसीना आया कि उस के कपड़े भींग गए फिर उस बालक को बादशाह के दरबार में खड़ा किया, डाक्टर ने बालक के कपड़े उतार कर सूंघे और बादशाह को बतलादिया कि यह बालक मुसलमान के वीर्य से पैदा हुआ है। इस उदाहरण से भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि मुसलमानादिके शरीर वा रज वीर्य भी गौ बैल के मांस युक्त परमाणुओं से कि जिस से ब्राह्मणादि को घृणा होती है भरे हैं। उस से भी आर्य लोग मुसलमानादि नाम वाले शरीरों को शुद्ध नहीं कर सकते॥

(किंच) (३ सत्या० समुल्लास ९) दयानन्द का लेख है कि—

जो लोग मांस भक्षण वा मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्या-

दि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं। उनका संग करने से आर्य्योंको कुलक्षण न लग जावे। मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांसादि के परमाणुओं ही से दूषित है उनके हाथ का न खावे। मुसलमान ईसाई आदि मद्यमांसाहारियों के हाथ का खाने से आर्य्यों को भी वह अपराध पीछे लग पड़ता है॥ जब से ईसाई मुसलमानादि के मत चले तब से उन्हों ने गोमांसादिका खाना स्वीकार किया है। एकसाथ खानेमें दोष है क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदिके साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खानेसे भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं॥ दयानन्दके इत्यादि लेखों का भी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि भंगी चमार मुसलमानादि नाम वाले शरीर शुद्ध नहीं हो सक्ते। किन्तु दयानन्दके पूर्वोक्त लेखोंसे यही निश्चय होता है कि आर्य्य लोग शुद्ध करनेकी बहाने बाजी तो बनाते हैं परन्तु मुसलमान भंगी चमारादि के साथ जब खाना खाते हैं तो उनके शरीर में से गौ बैलके मांस के परमाणु श्वास द्वारा आर्य्योंके शरीरमें वा दिमाग में जा मिलते होंगे। अब बुद्धिमान् फैसलाकर लेवें कि भंगी चमारादिके साथ खाने से आर्य लोग मलिन हुए? वा भंगी चमार मुसलमानादि शुद्ध हुए?। अभिप्राय यह कि दयानन्द के लेख से भी भंगी चमार मुसलमानादि शुद्ध नहीं हो सकते। (किंच) ३ सत्या० समुल्लास १०) दयानन्द ही का लेख है "कि गुरूका जूंठा चेला न खावे, और पतिका जूंठा स्त्री न खावे,,। तो दयानन्दके इन लेखों से भी भंगी चमार मुसलमानादिके साथ खाना सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि एक साथ खानेसे एक दूसरे का जूंठा खाना पड़ता है उस से भी भंगी चमारादि की शुद्धता सिद्ध नहीं हो सकती॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि–जिस परमात्माने ब्राह्मणका शरीर बनाया है उसीने भंगी चमार मुसलमानादिके शरीर को सृजा है। उमसे ब्राह्मणादि और भंगी आदिमें कुछ भी भेद नहीं, इस शंका का उत्तर यह है कि जिस परमात्मा ने ब्राह्मण को ब्राह्मण कुल में जन्म दिया है उसी परमात्मा ने भंगी आदिकों को भंगीआदि कुलमें जन्म दिया है। यदि ब्राह्मणादि और भंगी आदि शरीरोंमें भेद न होता तो उनको भिन्न २ कुलमें परमात्मा जन्म कैसे देता ?, किन्तु कभी नहीं। उस से भी भंगी आदि नाम वाले शरीर शुद्ध नहीं हो सकते। आर्यसमाजी कहते हैं "कि जो परमात्मा ब्राह्मणादि शरीरों

में व्यापक है, वही परमात्मा भंगी आदि शरीरोंमें व्यापक है, उससे ब्राह्मणादि और भंगी आदि शरीरोंमें कुछ भेद नहीं, भेद न होनेसे भंगी आदि शरीर शुद्ध भी हो सकतेहैं" आर्यों की यह शंका भी अज्ञान मूलक है। क्योंकि जो आकाश पाकशालामें व्यापक है वही आकाश पायखानेमें व्यापक है। यदि आर्यसमाजियों की उक्त शंका ठीक हो तो पायखाने और पाकशाला का भेद भी आर्यों को चाहिये कि दूर कर देवें। यदि इस भेदको आर्य दूर नहीं कर सकते तो ब्राह्मणादि और भंगी आदिका भेद भी कभी नष्ट नहीं हो सकता। तो उससे भी भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते। आर्यसमाजी कहते हैं कि "पूर्वजन्म के किये कर्मों के अनुसार वर्तमान में परमात्मा जन्म देता है तो भंगी आदि शुद्ध भी हो सकते हैं. न मानो तो कर्मफल प्रतिपादक शास्त्र निष्फल होगा"। आर्यसमाजियों की यह शंका भी असङ्गत है क्योंकि पूर्वजन्म के कर्मों का जाति भोग आयु यह तीन प्रकारका फल वर्तमान जन्म में परमात्मा ही जीव को देता है। परन्तु वर्त्तमान जन्म में जो ब्राह्मणादि के कर्म भंगी आदि करें तो उनका फल परमात्मा दूसरे जन्म में देगा। इस जन्म में नहीं, उस से भी भंगी आदि शरीर वर्त्तमान जन्म में किसी प्रकार से भी शुद्ध नहीं हो सकते। भंगी आदि शरीरों का शुद्ध करना वेद वेदाङ्ग वेदोपाङ्गादिसे सर्वथा विरुद्ध है उससे भंगी आदि शरीर शुद्ध नहीं हो सकते।

(किंच) जब कभी मुकद्दमेबाजी का काम वृटिशकोर्ट में भंगी आदि का आपड़ता है तो वहां भंगी आदि मुद्दई अथवा मुद्दालय भंगी आदि अपने आप ही का नाम लिखाते हैं। यदि न लिखावें तो कारागार में जा बैठें। सिद्धान्त यह है कि मुकद्दमेबाजी के समय भंगी आदि शरीर भंगी आदि के पुत्र कहाते हैं। ब्राह्मणादि के पुत्र नहीं कहाते उससे भी भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते। (आर्यसमाजी कहते हैं कि सृष्टि की आदि में) (अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः) अर्थात् अन्न से वीर्य और वीर्य से नर नारी के शरीर उपजे हैं परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं थी, इस प्रमाण से ब्राह्मणादि और भंगी आदि का भेद सिद्ध नहीं होता, उससे भंगी आदि शुद्ध हो सकते हैं। आर्यों की यह शंका भी पदार्थविद्यासे विरुद्ध है क्योंकि पदार्थविद्या से यदि समालोचना करी जावे तो सृष्टिके आदि अन्त ही सिद्ध नहीं हो सकते। यदि आदि अन्त सृष्टिके मानें तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरोध होगा। क्यों कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जाना जाता है कि विना माता पिताके नरनारी

का जन्म होना सर्वथा असंभव है। किन्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे यही सिद्ध होता है कि नर नारी की सृष्टि आदि अन्तसे रहित है किन्तु जिस २ जाति विशिष्ट जिस २ व्यक्तिके वीर्यसे जो २ उत्पन्न होता है वह उसी २ जाति का मनुष्य अनुभव सिद्ध है। अनुभव सिद्ध बात किसी प्रकार से भी खण्डन नहीं हो सकती उससे भी भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि—वीर्यप्रधान होने में कोई प्रमाण नहीं मिल सकता, किन्तु कर्मप्रधान हो सकते हैं उस से भी भंगी आदि शुद्ध हो सकते हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी असङ्गत है क्योंकि—

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मावैपुत्रनामासि सजीवशरदःशतम्॥

इस शतपथ के मंत्र प्रमाण से पिता के वीर्यसे उपजा पुत्र पितारूप ही सिद्ध हो चुका है। सिद्धान्त यह है कि ब्राह्मण के वीर्यसे उपजा पुत्र ब्राह्मण रूप है, भंगी के वीर्यसे उपजा पुत्र भंगीरूप है। उससे भी भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते। आर्यसमाजी कहते हैं कि—आदि सृष्टिके नर नारी ईश्वरने एकवार माता पिताके रजवीर्यके बिना ही उत्पन्न कर दिये। फिर माता पिता द्वारा नर नारी होने लगे। आदि सृष्टि का वीर्य तो एक ही था उस से भी भंगी आदि शुद्ध हो सकते हैं। आर्यसमाजियोंका यह कथन भी पदार्थविद्या के विरुद्ध है। क्योंकि माता पिता नर नारी के अभाव से नर नारी के भाव का लेख सर्वथा लालबुझक्कड़ों की कथा है, उस से भी भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि जब नीच कुलका लड़का पढ़ जावे और ऊंच कुल की लड़की पढ़ जावे तो दोनों का विवाह हो जावे। उन से जो सन्तान होगा वह ऊंचा होगा उससे भी भंगी आदि शुद्ध हो सकते हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी ठीक नहीं क्योंकि विद्या तो भंगी आदि नीचोंके लड़केभी थोड़ी या बहुत पढ़ सकते हैं। परन्तु उन के शरीर वा वीर्य गौ बैल के मांसरूप परमाणुओंसे भरे हैं, उन परमाणुओं को निकालने की विद्यामें भी शक्ति नहीं, ब्राह्मणादि चार वर्णों में से ऐसा कोई ही पागलनाथ होगा जो कि अपनी पढ़ी हुयी लड़की का नीच के पढ़े हुए लड़के से विवाह करा देगा। राजी बाजी ब्राह्मणादि वर्णोंमें से ऐसा वर्णसंकरता का कुकर्म कोई भी नहीं करा सकता। फारसीमें भी कहा है कि—(तुखमतासीर मोहब्बत असर)

सुना जाता है कि अकबर बादशाह के पास एक काले रंग का हबपी रहता था, एक हिन्दु का लड़का भी कालेरंग का था, उस हबपी ने बादशाह अकबर के दरबार में दावा कर दिया कि यह लड़का हमारे से पैदा हुआ है हमें मिलना चाहिये। बादशाह ने लड़के समेत उस हिन्दु को दरबार में तलब किया। और हिन्दु की स्त्री भी बादशाह ने बुलाई, तब एक डाक्टर से बादशाह ने कहा कि इस कालेरंग के लड़के की तहकीकात कीजिये कि यह किस के तुखम से उपजा है। डाक्टर ने एक दो हाथ लम्बा दर्पण मंगवा कर बादशाह के सामने धरदिया और थोड़ा खून लड़के का दर्पण पर डाल दिया वैसे ही उसी दर्पण पर थोड़ा खून हबपी का डाला दो घण्टा तक उस एक दर्पण पर लड़के और हबषीका खून भिन्न भिन्न पड़ा रहा और जम गया। डाक्टर ने उस दर्पण को धुला कर फिर हिन्दु तथा उस लड़के का खून उसी दर्पण पर भिन्न २ रख वा दिया। थोड़ी देरके बाद दोनों के खूनमें चेष्टा होकर परस्पर मिल कर दर्पण पर जम गया। तब डाक्टर ने बादशाह को कहा कि यह लड़का हिन्दुका है हबषी का दावा झूंठा है, बादशाह ने डाक्टर से पूछा कि लड़के का हबषी जैसा कालारंग कैसे हुआ ! इस पर डाक्टर ने हिन्दु की स्त्रीसे पूछा कि जब तुम को गर्भ हुआ था तब तुमने किसी दूसरे मनुष्यको भी निगाह भरकर देखा था ! स्त्री ने कहा कि हां गर्भ होने के रोज यही हबषी हमारे मकान के पास २ चला जाता था इस की ओर मेरी दृष्टि जा पड़ी थी। बस डाक्टर ने बादशाह को निश्चय करादिया कि लड़का यह हिन्दु का तुखम है किन्तु हबपी की ओर देखने ही से इस लड़केका कालारंग हुआ है। सिद्धान्त यह कि परीक्षा के विरुद्ध पिता का तुखम लड़का सिद्ध नहीं होता। यह इस लिये दर्शाया है कि डाक्टरी विद्यासे भी सिद्ध होता है कि भंगी आदिकोंसे जो लड़के पैदा होंगे उनके शरीरमें भी गौ बैलके मांस के परमाणु होंगे। उनसे वह लड़का लड़की भी भंगी आदि होंगे। शुद्ध होना उनका भी सर्वथा असंभव है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि–जैसे ब्राह्मणादिका शरीर पांचभूतों का है। वैसे ही पांचभूतों का शरीर भंगी आदिकों का है, उससे भी भंगी आदिक शुद्ध हो सकते हैं। आर्यसमाजियोंकी यह शंका भी ठीक नहीं। क्योंकि जब पूर्वोक्त हुज्जतबाजी को ठीक मानें तो जैसा पांच भूतोंका शरीर देवदत्तशर्मा का है वैसा ही पांच भूतों का शरीर उसकी लड़की का है। यदि भौतिकता

हेतु से ब्राह्मणादि और भंगी आदि का भेद न मानें तो देवदत्त और उस की लड़की का भी भेद न होना चाहिये। यदि भौतिकता हेतुके होते हुए भी देवदत्त शर्मा और उस की लड़की का भेद है तो ब्राह्मणादि और भंगी आदि का भेद भी सिद्ध हो जायगा। उससे भी भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि-जैसा रुधिर ब्राह्मणादि के शरीरमें है वैसा ही रुधिर भंगी आदि नाम वाले शरीरों में है। उस से भंगी आदि शुद्ध हो सकते हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी भ्रांतिमूलक है क्योंकि भंगी आदि शरीरों का रुधिर गौ वैलादि के मांस के परमाणुओं से भरा है। वैसे ब्राह्मणादि के शरीर का रुधिर सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि ब्राह्मणादि ऐसा खाना ही नहीं खाते यदि न मानें तो हम भी हुज्जतबाजी पेशकर सकते हैं। जैसे कि जैसा रुधिर माता का है वैसा रुधिर ही जोरूका है यदि रुधिरत्व हेतुसे ब्राह्मणादि और भंगी आदिका भेद न मानें तो रुधिरत्व हेतु से माता और जोरूका भेद भी न होना चाहिये। यदि रुधिरत्वरूप हेतुहोते हुए भी माता और जोरू का भेद है, तो ब्राह्मणादि और भंगी आदिका भेद भी सिद्ध हो जावेगा। आर्य्यसमाजी कहते हैं कि-जो ब्राह्मणादिमें से ईसाई वा मुसलमान हो गया हो वह तो शुद्ध हो सकता है। यह शंका भी अज्ञान मूलक है क्योंकि गौ वैल का मांस भक्षण के विना मुसलमान वा ईसाई हो भी नहीं सकता। अभिप्राय यह कि जो ब्राह्मणादिमें से ईसाई वा मुसलमान हो जाने से भी उनके एक दो वा तीन चार अनेकवार गौ वैल के मांस भक्षणसे उनके रोम २ में भी गौ वैलके मांस रूप परमाणु जा मिले हैं उससे वह भी शुद्ध नहीं हो सकते। आर्यसमाजी कहते हैं कि जो ब्राह्मणादिमें से मुसलमान वा ईसाई हो गये हैं, उनने कभी गौ वैल का मांस भक्षण नहीं किया उससे वह शुद्ध हो सकते हैं। आर्य समाजियों की यह शङ्का भी असङ्गत है। क्योंकि जिसको तीव्र जिज्ञासा ईसाई वा मुसलमान बननेकी लगी है वह अवश्य ही गौ वैल के मांसको भक्षण करता है। जिसकी जिज्ञासा गौ वैल का मांस भक्षण करनेकी नहीं, वह मुसलमान ईसाई ही नहीं होता। इतिहासोंसे जाना जाता है कि लाहौर में हकीकतराय और दिल्लीमें गुरू तेगबहादुर जी ने शिर दे दिये परन्तु न तो गौ वैलका मांस भक्षण किया और न मुसलमान बनना कबूल किया। आर्यसमाजी ऐसा प्रत्यक्ष सबूत कोई नहीं दे सकते कि जिस से सिद्ध हो जावे कि ब्राह्मणादि चार वर्णोंमें ईसाई वा मुसलमान तो हो जावे परन्तु गौ वैल का मांस भक्षण न करे। उस से भी ब्राह्मणादि में से हुए ईसाई वा मुसलमान शुद्ध नहीं हो सकते॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि जब कोई ब्राह्मण ईसाई वा मुसलमान होजाता है तो वह हिन्दुओंमें नीच समझा जाता है। वैसे ही भंगी चमार ईसाई मुसलमान भी आर्य्यमतमें आकर शुद्ध हो जाते और ऊंचे समझे जाते हैं। आर्य्योंकी यह शंका भी मिथ्या है क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों और मनुजीके लेखोंसे भी सिद्ध होता है कि जैसा बीज खेतमें डाला जाता है वैसाही अंकुर होता है। उस से बीज प्रधान है खेत प्रधान नहीं, सिद्धान्त यह कि ब्राह्मणादि वीर्य्यसे उपजे नर नारी विपत्तिके समय भी अपनपनको नहीं छोड़ते। देखिये गुरू तेग बहादुर और गुरू गोविन्दसिंहजी के चार पुत्र वा हकीकतराय आदि धर्मवीरोंके इतिहास में साफ लिखा है कि वह कतल हो गये परन्तु मुसलमान नहीं बने। सुना जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह के राज में जो गाय बैल को मारता था, वह फांसी दिया जाता था, एक समय एक सिक्ख ने सांड़को मार डाला, महाराज रणजीतसिंहने उस सिक्खको हवालातमें रख दिया और उसकी माता को कतल कर देनेका डर देकर पूछा कि तुम्हारा पुत्र किसके तुखम से उपजा है उसने सच्च बतला दिया कि भंगीके तुखमसे मेरा पुत्र उपजा है। इस बात को सुन कर सांड़के मारनेवाले सिक्खको महाराजाने तोपके गोलेसे उड़वा दिया, इस उदाहरण से भी यही सिद्ध हुआ कि जो सनातन हिन्दुधर्म को छोड़कर ईसाई वा मुसलमान हो जाता है वह शुद्ध नहीं हो सकता। अंगरेजी राजमें किसी पर कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता, उससे हिन्दुधर्मकी रक्षा के लिये धर्म्मवीरों को चाहिये कि कटिबद्ध हो जावें ॥

नामुत्रहिसहायार्थं पितामाताचतिष्ठतः ।
नपुत्रदारानज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठतिकेवलः ॥

इत्यादि प्रमाणोंसे जाना जाता है कि परलोक में धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है। आर्यसमाजी कहते हैं कि ब्राह्मणादि और भंगी आदि मनुष्य ही देखे जाते हैं मनुष्यत्व जाति उन सबमें एक है मनुष्यत्व जाति रूप हेतु से भंगी चमारादि शुद्ध हो सकते हैं। आर्योंकी यह शंका भी असंगत है। क्योंकि मनुष्यत्व समान जाति है। ब्राह्मणत्वादि जाति विशेष है जैसे स्त्री भरमें स्त्रीत्व जाति समान है। परन्तु जोरू भगिनीपनादि विशेष जाति है। यदि मनुष्यत्व हेतुसे ब्राह्मणत्वादि जातिका भेद न माने तो स्त्रीत्व हेतुसे जोरू भगिनी आदिमें भी भेद न होना चाहिये। यदि यहां भेद है तो ब्राह्मणत्वादि में भी भेद है उससे भी भङ्गी आदि शुद्ध नहीं हो सकते ॥ किंच—

लौकी फलमें लौकीत्व तो समानजाति एक है परन्तु मधुरत्व कटुत्व जातिका लौकी व्यक्तियों में भेद है। वैसे मनुष्यमात्रमें एक समान मनुष्यत्व जाति तथा स्त्रीमात्र में एक स्त्रीत्वजाति है। परन्तु ब्राह्मणत्वादि वा ब्राह्मणीत्वादि विशेष जातिका भेद है उससे भी भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते। आर्यसमाजी कहते हैं कि जैसे हम हिन्दुओंके पुत्र हैं, हिन्दुओं के वीर्यसे हुए हैं, परन्तु अब हम आर्यमतमें आकर आर्य हो गये हैं वैसे ही भंगी आदि भी भंगी आदिकों के पुत्र हैं। भंगी आदिकोंके वीर्य से हुए हैं, परन्तु आर्यमत में आकर वे आर्य हो जाते हैं, इस से भी भंगी आदिक शुद्ध हो सकते हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी सर्वथा असंगत है क्योंकि पूर्व हम श्रुतिप्रमाण और पदार्थविद्या से भी सिद्धकर चुके हैं कि जो पिता का वीर्य पुत्र होता है वह पिता का रूप ही है। डाक्टरीविद्या से भी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है। वैसे ही चार वर्ण हिन्दुओं के वीर्य से हुए जो इस समय आर्यसमाजी देखे और सुने जाते हैं वह भी श्रुति प्रमाण तथा पदार्थ विद्या और डाक्टरीविद्या से हिन्दु पिताओं का रूप हैं। आर्य नाम इन का श्रुति प्रमाणादि से विरुद्ध है हिन्दु नाम कौम का है। हिन्दू कौम के धर्म में तो मनुष्यमात्र आ सकते हैं परन्तु हिन्दु कौम में मनुष्यमात्र आकर ब्राह्मणादि चार वर्ण नहीं हो सकते किन्तु हिन्दू कहा सकते हैं इस से भंगी आदि न शुद्ध हो सकते हैं और न ब्राह्मणादि बन सकते हैं।

आर्यसमाजियोंने एक दयानन्द दिग्विजय बनाया है उसमें लिखा है कि हिन्दू—काफिर, चोर, गुलाम, काले, बेईमान, अहमक, गधे, उल्लू हैं। आर्यसमाजियोंके इस लेखरूपी खड्ग से भी उन्हींका गप्परूपी गला खण्ड२ हो रहा है क्योंकि जन्मसे चार वर्णोंके वीर्य आर्यसमाजी हिन्दुओं ही के पुत्र हैं अपने माता पितादि हिन्दुओंको काफिर चोर, गुलाम काले, बेईमान, अहमक, गधे, उल्लू बतलाना आर्यों की अत्यन्त भूल है। ऐसे गन्दे शब्द अपने माता पिताको भंगी चमार मुसलमान और ईसाई भी नहीं कहते।

. आर्य्यसमाजी कहते हैं कि किसी की किसी पर जबरदस्ती नहीं जिस का जी चाहे आर्य नाम रख लेवे उस से भी भङ्गी आदि शुद्ध हो सक्ते हैं। यह शङ्का भी मिथ्या है क्योंकि ऐसे तो बहुरूपिये भी जैसा जी चाहे वैसा नाम रख लेते हैं, परन्तु आखिर को जयजय कार भण्डार हो कर कलई खुल जाती है उससे भंगी आदि आर्य्य नहीं हो सकते (किन्तु) भंगी

चमार मुसलमान ईसाई आदि को चाहिये कि पहिले निष्पक्ष विद्वानों से परीक्षा करवा लिया करें कि आर्यमत सत्य है अथवा मिथ्या, यदि इस नियम पर भंगी आदि चलें तो हम सत्य कहते हैं कि भंगी चमार मुसलमान ईसाइयों में से एक भी महाशय आर्य्यों में शामिल होने का नाम तक न लेगा। क्योंकि आर्यमत के मूलाचार्य दयानन्दकृत ग्रन्थ सारे दरोग़ हलफ़िओं के आकाश पुष्प अथवा खरसींग के समान मिथ्या सिद्ध हो चुके हैं। उन से तो हजारों गुण अच्छे भंगी आदि कों के अपने मत हैं। हां निष्पक्ष वेदान्ती विद्वानों के सत्सङ्ग से भंगी चमार मुसलमान ईसाई आदिकों को हिन्दुधर्म की निर्दोषता का ज्ञान हो सकता है। उस से वह हिन्दु कौम में तो शामिल हो सकते हैं। परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन चार वर्णों में उस का खाना पीना वा रिश्तेदारी नहीं हो सकती। हां हिन्दु धर्म्म पर चलने से दूसरे जन्म में उनका जन्म चार वर्णों में हो सकता है, वर्त्तमान जन्म में वह शुद्ध होकर चार वर्णों में नहीं आ सकते।

ठाकुर कहावें जो हजाम ग्राम लोगन में जाय राजद्वार तब नाऊ कह बुलाइये। पण्डित कहावत कुंभार निज जाति माहिं ब्राह्मणों की पांति में कुम्हार ही अलाइये।

घटंभित्त्वापटंछित्त्वा कृत्वारासभरोहणम्।
येनकेनप्रकारेण प्रसिद्धःपुरुषोभवेत्॥
उष्ट्राणांचविवाहेषु गर्दभःस्वस्तिवाचकः।
परस्परंप्रशंसन्ति अहोरूपमहोध्वनिः॥

ऐसा हाल आर्यसमाजियों का है पढ़े तो नीति की विद्या और दम लगाने लग जाते हैं धर्म्म विद्या का सो उन का सर्वथा अज्ञान और हठ है। आर्य लोग तो भंगी चमारादि को वर्म्मा शर्म्मा खिताब दे सकते हैं परन्तु निष्पक्ष विद्वानों में उनके ढोल की पोल निकल आता है। उस से भी भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते। आर्यसमाजी कहते हैं कि आर्यावर्त्त में रहने से भंगी आदि भी आर्य कहा सकते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि करोड़ों वर्षों से भंगी आदि यहां रहते हैं परन्तु दयानन्द की मशहूरी तक किसी ने आर्य नहीं कहाया। वैसे ही हजारवर्ष के लगभग से मुसलमान यहां रहते हैं परन्तु दयानन्द कृत मत चले तक किसी ने भी आर्य नाम का दम नहीं लगाया। सैकड़ों वर्षों से यहां ईसाई रहते हैं परन्तु दयानन्द के होने से पहिले किसी

ने नहीं कहा कि मैं आर्य महाशय हूं। यदि आर्यावर्त्त ही में आर्य की उपाधि मिल जावे तो गदहा कुत्ता भालू बन्दर गीदड़ हाथी घोड़ा आदि पशु अथवा कौवा आदि जानवर तथा कीटादि भी आर्य उपाध वाले होने चाहिये।

ऋग्वेद में इस सारे देश का नाम भारत भूमि है हिंसा के खण्डन करने से इस देश का नाम हिन्दुस्थान भी है। आर्यावर्त्त ऐसा नाम चार वेदों चार उपवेदों में नहीं तथा छः वेदों के अङ्ग छः उपांग तथा दश उपनिषदों चार वेदों के चार ब्राह्मण चार वेदों के चार निरुक्त इत्यादि ग्रन्थों में भी आर्यावर्त्त नाम इस देश का नहीं देखा जाता। दयानन्द की प्रतिज्ञा है कि हम वेद में लिखे ही को मानते हैं उसी से हमारा मत वेद है इस प्रतिज्ञा को दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास के पूरा होने पर लिखा है। फिर जो बात वेद में न हो उस के मानने वाले को दयानन्द ने पापी लिखा है। यदि किसीको सन्देह हो तो सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास को देख कर सन्देह नष्ट कर लेवे। वेदों में आर्यावर्त्त नाम नहीं फिर इस देशका नाम आर्यावर्त्त लिखने से वेद विरोधी होकर दयानन्द वा उसके भक्त ही पापके भागी हो सकते हैं। मनु जी ने इस भारतवर्ष देशके भागोंके ब्रह्मावर्त्त पञ्चाल मध्य प्रदेश इत्यादि नाम भी रक्खे हैं परन्तु भंगी आदिकोंको शुद्ध करके ब्राह्मण बनाना वेदादि से सर्वथा विरुद्ध है। उस से भी भंगी आदि शुद्ध नहीं होसकते।

आर्यसमाजी कहते हैं कि मतङ्ग ऋषि आदि चाण्डालसे ब्राह्मण होगये ऐसे प्रकरण इतिहासों में लिखे हैं वैसे अब भी भंगी आदि शुद्ध हो सकते हैं। आर्यों की यह शङ्का भी असङ्गत है क्योंकि जब मतङ्गादि ऋषियों को ब्रह्मज्ञानी माना जाय तो (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति) इत्यादि मन्त्रों के प्रमाणोंसे मतङ्गादि ऋषि अन्नमयादि पांच कोशों और उन्हीं के धर्म चाण्डालत्वादि जातियों का अभिमान छोड़कर वह सजातीय विजातीय स्वगत भेद से भिन्न ब्रह्मस्वरूप तो हो गये हों। परन्तु न्याय रीतिसे जाति व्यक्ति का नित्य समवाय और वेदान्त रीति से जाति व्यक्ति का अभेद सम्बन्ध होने से उन की जाति का रद बदल नहीं हुआ उस से भंगी आदि शुद्ध नहीं हो सकते। इस व्याख्यान में आर्यमत वालों तथा तत्त्वखालसा मत वालों शुद्धि सभा का खण्डन किया है॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सत्यार्थप्रकाशखण्डन ।

व्याख्यान नं० १०

सर्व हिन्दुधर्मवीरों को प्रकाशित किया जाता है कि इस व्याख्यानमें सामान्य से सत्यार्थप्रकाश का खण्डन किया जाता है। (तथाहि) (सत्या० समुल्लास ३) दयानन्द का लेख है कि—पांचवां आठो प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द ऐतिह्य अर्थापत्ति संभव और अभाव हैं। इनमें प्रत्यक्ष के लक्षणादि में जो सूत्र नीचे लिखेंगे वह २ न्यायशास्त्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय के जानो ॥

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि—जो श्रोत्र १ त्वचा २ चक्षु ३ जिह्वा ४ और घ्राण ५ का, शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गन्ध ५ के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरण रहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियों के साथ मनके और मनके साथ आत्मा के संयोग से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस को प्रत्यक्ष कहते हैं। यहां दयानन्द के भक्तोंसे पूछना चाहिये कि दयानन्द ने उक्त न्यायसूत्र से प्रत्यक्ष प्रमाण के लक्षणादि दर्शाए हैं वा प्रत्यक्ष प्रमा के, यदि कहो कि प्रत्यक्ष प्रमा के लक्षणादि दर्शाए हैं तो दयानन्द प्रतिज्ञा हानि निग्रहस्थानमें गिरा सिद्ध होगा। क्योंकि दयानन्दने पूर्व प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका नाम ले कर प्रतिज्ञा करी है कि इन में प्रत्यक्ष के लक्षणादिमें सूत्र नीचे लिखेंगे दयानन्द की इस प्रतिज्ञासे प्रत्यक्ष प्रमाण ही में न्यायशास्त्रका (इन्द्रियार्थ०) यह सूत्र सिद्ध होता है। परन्तु सूत्रके भाष्यमें दयानन्दने नेत्रादि इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण लिखदिया है। उससे दयानन्द प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान में गिरा सिद्ध हो चुका। प्रकरणमें प्रत्यक्ष वा परोक्ष यथार्थ ज्ञान ही का नाम प्रमा ज्ञान है। प्रमाणसे उपजे ज्ञान को ही प्रमा ज्ञान कहते हैं। (किंच) उक्त सूत्र से तो दयानन्द ने प्रत्यक्ष प्रमाण दर्शाया है सो ठीक नहीं, क्योंकि इन्द्रिय और विषयों के सम्बन्ध से उपजे प्रत्यक्ष ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कथन करना लालबुझक्कड़ों की लीला है। हां, नेत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रिय और छैवां मन तो प्रत्यक्ष प्रमाण हो सकते हैं। परन्तु नेत्रादि इन्द्रिय और रूपादि विषयों के सम्बन्ध से उपजा ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध नहीं हो सकता। दयानन्द ने जो कहा कि मन के साथ आत्माके संयोगसे

जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। बाबा जी का यह कथन भी अज्ञान मूलक है क्योंकि— (१ सत्या० समुल्लास ३)

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः० ।

इस के भाष्यमें दयानन्द ने मन और इन्द्रियोंको आत्माके गुण कहा है (१ सत्या० समुल्लास ३)

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः समवायः ।

इसके भाष्य में दयानन्द ने गुण और गुणी का नित्यसमवाय सम्बन्ध वर्णन किया है। यदि दयानन्द इन लेखोंको मिथ्या कहे तो दयानन्द मिथ्या वादी होगा। उससे दयानन्दके भक्त भी सत्यवादी कभी सिद्ध नहीं हो सकते। यदि कहो कि दयानन्दकृत उक्त दो सूत्रों का भाष्य सत्य है तो मन का आत्मा के साथ संयोग सम्बन्ध कथन करना भी दयानन्दकी सर्वथा अविद्या है। क्योंकि दयानन्द ने मन को आत्मा का गुण लिख कर फिर गुण गुणी का नित्यसमवाय सम्बन्ध लिखा है। सो न्यायशास्त्र की रीतिसे वा वैशेषिक दर्शन की रीति से ठीक है परन्तु मन गुणके साथ आत्मा गुणीका संयोग सम्बन्ध लिखनेसे दयानन्द गवर्गंड राजा के सदृश सिद्ध होता है॥

न्याय वैशेषिक के सूत्रों से सिद्ध हो चुका है कि गुण गुणी का नित्यसमवाय सम्बन्ध ही है यदि सूक्ष्मविचार किया जावे तो सत्यार्थप्रकाशके नवें समुल्लास में दयानन्दने मनको जड़ कहा है। फिर आठवें समुल्लासमें दयानन्द ने आत्मा को चेतन कहा है चेतन आत्मा का जड़ मनको गुण कथन करना और मनसे आत्मा का नित्यसमवाय सम्बन्ध मानना भी पदार्थविद्या के विरुद्ध है। क्योंकि पदार्थविद्यासे सिद्ध हो चुका है कि चेतन पदार्थ का गुण जड़ पदार्थ कभी सिद्ध नहीं हो सकता, तथा जड़ मनका चेतन आत्माके साथ नित्य समवाय सम्बन्ध कथन करना भी सर्वथा असंभव है (किंच) श्रोत्रादि इन्द्रियों के साथ दयानन्द ने शब्दादि विषयोंका आवरण रहित संबन्ध लिखा है सोभी सर्वथा असंभव अनर्थ प्रतिपादक है। क्योंकि वैशेषिक सूत्रके भाष्य में दयानन्द ने श्रोत्रादि इन्द्रियों को आत्माके गुण कहा है और नवें समुल्लास में इन्द्रियों को भी दयानन्द ने जड़ ही लिखा है गुण गुणीका नित्य समवाय कहा है दयानन्द के इन लेखोंसे आत्मा भी जड़ हो जाना चाहिये। यदि दयानन्दके लेखोंकी दया से इन्द्रिय और मन आत्मा के गुण हैं तो

सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि इन्द्रिय मन का आधार आत्मा है आत्मा ही गुणी है। अभिप्राय यह कि इन्द्रिय मन और आत्मा का आधाराधेयभाव अथवा गुणगुणीभाव सम्बन्ध है ॥

गुण का गुण के साथ संयोग संबन्ध कथन करना भी पदार्थविद्याके विरुद्ध है जैसे रस गुणका गन्धगुणके साथ संयोग सम्बन्ध नहीं वैसे ही इन्द्रिय गुण के साथ मन गुणका संयोग संबन्ध कथन करना सर्वथा भ्रान्तिमूलक है। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसन, घ्राण, यह पांच ज्ञानेन्द्रिय आत्मा के गुण हैं यह दयानन्दका सिद्धान्त है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पांच विषय शरीरके बाहर हैं। यद्यपि वेदान्तरीतिसे पांच शब्दादि विषय शरीर के बाहर और पांच शरीर के भीतर भी हैं तथापि वेदान्त सिद्धान्त दयानन्दका इष्ट नहीं, किन्तु शरीरके बाह्य ही शब्दादि पांच विषय दयानन्दका इष्ट है। सो न्यायरीति से शब्द का आकाश, द्रव्य के साथ स्पर्शका वायु, रूपका अग्नि, रसका जल, और गन्धका पृथिवी द्रव्य के साथ नित्य समवाय संबन्ध है। जिनका नित्य समवाय सम्बन्ध है उन्हीका वेदान्त सिद्धान्त में तादात्म्य संबन्ध है। दयानन्द ने जो गप्प हांका है कि श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका शब्दादिक विषयोंके साथ आवरण रहित संबन्ध है सो सर्वथा असंगत है क्योंकि श्रोत्रादि इन्द्रियों को दयानन्द ने आत्मा के गुण कहा है और शब्दादिकों को आकाशादि के गुण कहा है श्रोत्रादि जो कि आत्मा के गुण हैं और शब्दादिक विषय जो कि आकाशादिकों के गुण हैं उन का आवरण रहित सम्बन्ध कथन करना दयानन्द का सर्वथा अज्ञान और हठ है क्योंकि इन्द्रिय और विषयोंके भीतर आत्मा और आकाशादि द्रव्य ही आवरण हैं, हां इन्द्रिय और शब्दादि विषयों का परंपरा संबन्ध तो हो सकता है। जैसे कि दिनकरी आदिक न्याय के ग्रन्थोंमें कहा है कि आत्मा के साथ मन का और मनका इन्द्रियों के साथ संयोग होता है इन्द्रियों का संयोग विषयों के साथ होता है परन्तु इसमें भी इतना भेद है कि प्रथम आत्मसंयुक्त मनका श्रोत्रेन्द्रियसे संयोग होता है श्रोत्रमें शब्द का नित्य समवाय संबन्ध है शब्द में शब्दत्व जाति का नित्य समवाय संबन्ध है। अभिप्राय यह कि न्याय मत में आत्मसंयुक्त मनःसंयुक्त श्रोत्रसमवेत संबंध से श्रोत्रजन्य शब्द का श्रोत्र से यथार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और आत्मसंयुक्त मनःसंयुक्त श्रोत्रसमवेत समवाय संबन्ध से शब्दमें रहनेवाली शब्दत्व जातिका श्रोत्रजन्य प्र-

त्यक्ष यथार्थज्ञान होता है। यहां श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है और श्रोत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाण जन्य शब्द अथवा शब्दत्व जाति का प्रमा अर्थात् प्रत्यक्ष यथार्थ ज्ञान है ॥

वैसे ही आत्मसंयुक्त मनःसंयुक्त त्वक्संयुक्त घट पटादिक द्रव्यों का त्वगिन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और आत्मसंयुक्त मनःसंयुक्त त्वक्संयुक्त समवेत समवाय सम्बन्धसे स्पर्श और स्पर्शत्व जातिका यथार्थज्ञान होताहै। यहां त्वगिन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है और त्वगिन्द्रियरूप प्रत्यक्ष प्रमाणजन्य प्रमा अर्थात् घट पटादि द्रव्य अथवा स्पर्श वा स्पर्शत्व जातिका जानना प्रत्यक्षज्ञान है। वैसे ही आत्मसंयुक्त मनःसंयुक्त नेत्रसंयुक्त घट पटादि द्रव्योंके नील पीतादि रूप तथा नील रूपमें नीलत्व और पीत रूपमें पीतत्व जातिका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। यहां नेत्र इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है और नेत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाण जन्य नील पीतादि रूपका अथवा नीलत्व पीतत्व जातिका यथार्थ जानना प्रत्यक्ष ज्ञान है। वैसे ही आत्मसंयुक्त मनःसंयुक्त आम्रादि द्रव्य समवेत समवाय संबन्ध से रस अथवा रसमें रहनेवाली रसत्व जाति का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है यहां रसनेन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है। रसनेन्द्रिय रूपी प्रत्यक्ष प्रमाणजन्य रस अथवा रसमें रहनेवाली रसत्व जातिका यथार्थ जानना रसनेन्द्रियरूपी प्रत्यक्ष प्रमाण जन्य यथार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान है। वैसे ही आत्मसंयुक्त मनःसंयुक्त घ्राणसंयुक्त समवेत समवाय संबन्ध से सुगन्ध दुर्गन्ध और सुगन्धत्व दुर्गन्धत्वका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। यहां घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है सुगन्ध दुर्गन्ध वा सुगन्धत्व दुर्गन्धत्वका यथार्थ जानना घ्राणेन्द्रिय रूपी प्रत्यक्ष प्रमाणजन्य यथार्थ प्रमारूपी प्रत्यक्ष ज्ञान है। न्याय मत में मनरूपी प्रत्यक्ष प्रमाणसे मनःसंयुक्त आत्मसंयुक्त सुख दुःखादि वा सुखत्व दुःखत्वादि का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है यहां मनेन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है। तथा सुख दुःख वा सुखत्व दुःखत्वादि का जानना रूपी मनेन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष ज्ञान है ॥

जाना जाता है कि दयानन्द को न्यायमत का भी यथार्थ ज्ञान नहीं था यदि यथार्थ ज्ञान होता तो प्रत्यक्ष प्रमाण की प्रतिज्ञा करके प्रत्यक्ष प्रमाण ही का लक्षण करता सो प्रत्यक्ष प्रमाण की प्रतिज्ञा कर प्रत्यक्ष प्रमाण का तो लक्षण किया ही नहीं किन्तु प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण कर दिया। यहां तक प्रकरण का सिद्धान्त यह कि दयानन्द को प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान रूप प्रमा तथा इन्द्रिय विषयों के संबन्ध का भी यथार्थ ज्ञान नहीं था फिर क्या इसी का नाम वेद मत है? किन्तु कभी नहीं ॥

अब दयानन्दोक्त अनुमान प्रमाण की प्रतिज्ञाकर फिर प्रतिज्ञा हानिरूप निग्रहस्थान में दयानन्द का गिर जाना स्थाली पुलाक न्याय से दर्शाया जाता है ॥ तथाहि— ७ सत्या० समुल्लास ३ ॥

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टञ्च ॥

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि—जो प्रत्यक्ष पूर्वक अर्थात् जिस को कोई एक देश वा सम्पूर्ण पदार्थ किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उस का दूर देश से सहकारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःखको देखके पूर्व जन्म का ज्ञान होता है वह अनुमान है। दयानन्द के इस लेख से जाना जाता है कि अनुमान प्रमाण का भी बाबा जी को यथार्थ ज्ञान नहीं था। सो नीचे दर्शावेंगे पहिले देखो कि दयानन्द की प्रतिज्ञा है कि हम अनुमान प्रमाण दर्शाते हैं। इस प्रतिज्ञा के विरुद्ध अनुमान प्रमाण के तीन भेद दर्शाने में न्याय शास्त्र का सूत्र लिख दिया उस से भी दयानन्द प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान में गिरा सिद्ध हो चुका ॥

जाना जाता है कि दयानन्द ने उक्त सूत्र का वात्स्यायन मुनिकृतभाष्य भी नहीं देखा था यदि देखा होता तो अनुमान प्रमाण के लक्षणकी प्रतिज्ञा कर अनुमान प्रमाण के तीन भेद दर्शाने का ही प्रथम उद्योग न करता किन्तु पहिले वात्स्यायनोक्त अनुमान प्रमाण का लक्षण दिखलाता ॥

यत्र लिङ्गज्ञानेन लिङ्गिनो ज्ञानं जायते तदनुमानम् ।

यह वात्स्यायन मुनिकृत सूत्रों के भाष्य का वचन है कि जहां लिङ्ग के ज्ञानसे लिंगी का ज्ञान हो वहां अनुमान प्रमाण होता है। सिद्धान्त यह कि प्रकरण में लिङ्ग नाम चिन्ह का है लिङ्गी नाम चिन्ह वाले का है जैसे पर्वत में धूम के ज्ञान से अग्नि का ज्ञान होता है यहां धर्म का ज्ञान लिङ्ग नाम चिन्ह का ज्ञान होता है वह ज्ञान अनुमान प्रमाण है। अग्निका ज्ञान अर्थात् चिन्ह वाले अग्नि पदार्थ लिंगी का ज्ञान अनुमान प्रमाण जन्य अनुमिति ज्ञान है। उसी को आचार्य लोग अनुमिति प्रमा कहते हैं। दयानन्द के लेख से ज्ञात होता है कि अनुमान प्रमाणजन्य जो अनुमिति ज्ञान है जिस का दूसरा नाम अनुमिति प्रमा है उसी अनुमित प्रमा ही को

अनुमानप्रमाण कहा है, धिक् दयानन्द की न्यायविद्या को क्योंकि दयानन्द कहता है कि जिस का कोई एकदेश वा संपूर्ण पदार्थ किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उस का दूर देश से सहकारी एकदेश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। सो पहाड़ में अदृष्ट अवयवी अग्नि ही है क्योंकि दयानन्द खुद लिखता है कि जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देखके अग्नि, जगत् में सुख दुःखको देखके पूर्व-जन्म का ज्ञान होता है वही अनुमान है। दयानन्दके इन उदाहरणोंसे दृष्ट-पदार्थ का ज्ञान अनुमान सिद्ध नहीं हो सकता। किन्तु अदृष्ट अग्नि आदिक पदार्थों का ज्ञान ही अनुमान प्रमाण-सिद्ध होता है। सो दयानन्द की महान् अविद्या है गौतमाचार्यकृत मूल सूत्रों में न तो प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण है और न अनुमान प्रमाण वा अनुमिति ज्ञान का लक्षण है। किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण अनुमानप्रमाण में सूत्रों की बाबा जी ने एक बहाने बाजी करी है सो विद्याहीनों को धोखा देने की दयानन्द ने एक चालबाजी का मार्ग निकाला है॥

खैर जो हो अब दयानन्दोक्त उपमान प्रमाणकी समालोचना की जाती है। जैसे कि— ७ सत्या० समुल्लास ३॥

प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्।

इस सूत्र के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने के योग्य ज्ञान को सिद्ध करने का साधन हो उस को उपमान कहते हैं।

उपमीयते येन तदुपमानम्॥

जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि तू देवदत्त के सदृश विष्णुमित्रको बुलाला, वह बोला कि मैंने उस को कभी नहीं देखा; उसके स्वामी ने कहा कि जैसा यह देवदत्त है वैसा ही विष्णुमित्र है अथवा जैसी यह गाय है वैसा ही गवय अर्थात् नीलगाय है। दयानन्दकृत यह उपमान प्रमाण का लक्षण भी असङ्गत है। क्योंकि—

जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमान।
जाकों उपमा दीजिये सो उपमेय बखान॥

इस दोहे का सिद्धान्त यह कि जिस पदार्थ की उपमा दी जाती है उस पदार्थ में दूसरे पदार्थ की सदृशता का ज्ञान उपमान प्रमाण है और जिस

पदार्थको उपमा दी जाती है वह पदार्थ उपमेय है उस उपमेय पदार्थ में उपमान पदार्थ की सदृशता का ज्ञान उपमिति प्रमा है। जंगली नीलगायमें गौ की सदृशता का ज्ञान उपमान प्रमाण है और गौ में गवय की सदृशता का ज्ञान उपमिति प्रमा है। दयानन्दोक्त लेख में उपमान प्रमाण और उपमिति प्रमा यह दोनों भिन्न २ नहीं दिखाये गये। उस से दयानन्दोक्त उपमान प्रमाण भी सफल प्रवृत्ति का जनक सिद्ध नहीं हो सकता। यदि सूक्ष्मविचार किया जावे तो निराकार ब्रह्मचेतन के ज्ञान में भी उपमान प्रमाण की सहायता नहीं मिल सकती क्योंकि यदि दो निराकार ब्रह्मचेतन होवें तो एक की उपमा दूसरे को दी जा सकती है सो निराकार ब्रह्मचेतन दो सिद्ध नहीं हो सकते। उस से भी दयानन्दोक्त उपमान प्रमाण असङ्गत है॥

अब दयानन्दोक्त शब्दप्रमाण की समालोचना की जाती है। जैसे कि—(९ सत्या० समुल्लास ३) आप्तोपदेशः शब्दः) इस सूत्र के भाष्य में कहा है कि "जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त हो कर उपदेष्टा होता है जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वरके उपदेश वेद हैं उन्हीं को शब्द प्रमाण जानो। दयानन्दकृत यह शब्द प्रमाण का लक्षण भी ठीक नहीं क्योंकि श्रोत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाण से शब्द का ज्ञान होता है उस से शब्द प्रमेय है जो प्रमेय होता है सो प्रमाण नहीं हो सकता और जो प्रमाण है सो प्रमेय नहीं हो सकता (किंच)— यतो वाचो निवर्तन्ते०। यद्वाचानभ्युदितम्०) इत्यादि वेद मन्त्रों का सिद्धान्त यह है कि परमेश्वरका ज्ञान शब्द प्रमाण से नहीं हो सकता। इस से भी शब्द में प्रमाणत्व नहीं आ सकता। वादी कहते हैं कि जब शब्द में प्रमाणत्व न होवे तो विदेश में जिस का पिता मर गया है उस को कोई पिता के मरण का समाचार सुना देवे तो उस को पिता के मरण का ज्ञान न होना चाहिये यह शंका भी ठीक नहीं क्योंकि श्रोत्र रूपी प्रत्यक्ष प्रमाण से ही शब्द का ज्ञान होता है। उससे शब्द प्रमेय तो हो सकता है प्रमाण नहीं हो सकता उस से भी शब्द में प्रमाणत्व नहीं किन्तु शब्द में प्रमेयत्व तो अवश्य है यदि न मानें तो जिस मनुष्य का श्रोत्रेन्द्रिय नष्ट हो गया है उस को भी समाचार सुन कर पिता के मरण का ज्ञान होना चाहिये परन्तु बधिर को ज्ञान न होने के कारण श्रोत्र ही में प्रमाणत्व है। जब (तत्त्वमसि) इत्यादि वाक्यों को श्रोत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाण से शब्द को सुन (अहं ब्रह्मास्मि) इस प्रकार का ब्रह्मात्मा के अभेद का

ज्ञान होता है तो भी शब्दमें प्रमाणत्व सिद्ध नहीं हो सकता किन्तु श्रोत्र ही में प्रमाणत्व सिद्ध होता है । हां, शब्द ब्रह्मात्मा के अभेद ज्ञान में सहकारी कारण तो हो सकता है ॥

वादी कहते हैं कि मनरूपी प्रत्यक्षप्रमाण से ब्रह्मज्ञान होता है सोभी ठीक नहीं क्योंकि जबतक श्रोत्ररूपी प्रत्यक्षप्रमाण से शब्द का यथार्थ ज्ञान नहीं होता तबतक शब्दके वाच्य और लक्ष्यार्थ का ज्ञान जीवको कभी नहीं होता । जबतक वाच्य लक्ष्यार्थ का ज्ञान जीवको नहीं होता तब तक वाच्य की दृष्टि छोड़कर केवल लक्ष्यार्थों के अभेद का ज्ञान जीवको नहीं हो सकता सिद्धान्त यह कि पहिले प्रमाण होता है प्रमाण से जिस पदार्थ का ज्ञानहोता है वह पदार्थ प्रमेय संज्ञक होता है जैसे कि श्रोत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाण प्रथम होता है फिर जब श्रोत्ररूपी प्रत्यक्षप्रमाण से शब्द का ज्ञान होता है तो शब्दमें प्रमेयता धर्म का दर्शन होता है प्रमाणता धर्मका शब्दमें दर्शन नहीं होता उस से भी शब्द में प्रमाणत्व नहीं सुख दुःख का ज्ञान सुख दुःख के समकाल होता है जब ज्ञान के पश्चात् सुख दुःख होवें तो मनमें भी प्रमाणत्व सिद्ध हो सकता है परन्तु सुख दुःख और सुख दुःख का ज्ञान समकाल में होनेके कारण मनमें भी प्रमाणत्व नहीं किन्तु श्रोत्ररूपही प्रत्यक्षप्रमाण जैसे शब्द और शब्दजन्य ज्ञान का सहकारी है वैसे ही मनजन्य आत्मज्ञान का भी श्रोत्ररूपी प्रत्यक्षप्रमाण सहकारी है उससे शब्द और मन दोनों में प्रमाणत्व का अत्यन्ताभाव है । दयानन्द के लेखसे मन जड़ और आत्मा का गुण भी सिद्ध हो चुका है उस से भी मनमें प्रमाणत्व नहीं यदि आत्मा के गुण मनमें प्रमाणत्व कहें तो दयानन्द ने प्राणअपान इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःखादिकों को भी आत्मा के गुण कहा है उन सबों में भी प्रमाणत्व होना चाहिये यदि उन गुणों में प्रमाणत्व नहीं तो आत्मा के मन गुणमें भी प्रमाणत्व का अत्यन्ताभाव है । प्रकरण यहहै कि दयानन्दोक्त आप्तवक्ता मनुष्यके शब्द में जैसे प्रमात्व का अत्यन्ताभाव है वैसे ही ईश्वर के वेद रूपी शब्द में भी प्रमाणत्वका अत्यन्ताभाव है किन्तु श्रोत्र रूपी प्रत्यक्ष ही में प्रमाणत्व का सद्भाव है । क्योंकि जैसे आप्त वक्ताके शब्द श्रोत्र प्रमाणका प्रमेय है वैसे ही ईश्वरका वेदरूपी शब्द भी श्रोत्र रूपी प्रत्यक्ष प्रमाण का प्रमेय है ईश्वर के वेद रूपी शब्दमें प्रमेयत्व है परन्तु प्रमाणत्व नहीं उससे-(आप्तोपदेशः शब्दः) यह न्यायोक्त जो दयानन्द ने शब्द का

लक्षण किया है उस शब्दमें प्रमाणत्वधर्म का प्रध्वंसाभाव होने के कारण वह प्रमाण नहीं । (७ सत्या० समुल्लास ३)

नचतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ॥

यह न्याय दर्शन का सूत्र है ।

(अर्थादापद्यते सार्थापत्तिः) (संभवति यस्मिन् स संभवः) (न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः)

इनके भाष्य में दयानन्दने सिद्धान्त निकाला है कि " शब्द में ऐतिह्य, अनुमानमें अर्थापत्ति, अभाव और संभव की गणना आजाती है, तो चार प्रमाण रह जाते हैं । दयानन्दके इस लेखसे सिद्ध हो चुका कि प्रमाण चार हैं क्योंकि शब्दमें ऐतिह्य आगया अनुमानमें अर्थापत्ति आगया अभाव और संभवभी अनुमानमें आगये । यदि दयानन्द के इस लेखको सत्य मानें तो ऐतिह्य अर्थापत्ति अभाव और संभव इन चारोंमें प्रमाणत्व का अत्यन्ताभाव है क्योंकि शब्द में ऐतिह्यके आजानेसे शब्द से भिन्न-ऐतिह्य का अत्यन्ताभाव है । अनुमानमें अर्थापत्ति संभव और अभावके आजानेसे अनुमान से भिन्न अर्थापत्ति संभव अभावका भी अत्यन्ताभाव है । दयानन्द ही के लेखों और युक्तिसे जैसे शब्दमें प्रमाणत्वका अत्यन्ताभाव सिद्ध हो चुका है वैसे ही अर्थापत्ति संभव अभाव यह तीनभी दयानन्दके लेखसे अनुमानमें आगये हैं उससे इन तीन में भी प्रमाणत्वका प्रध्वंसाभाव है । रहे प्रत्यक्ष और अनुमान यह दो उस पर भी दयानन्द के लेखों ही से हम सिद्ध कर चुके हैं कि दयानन्द ने प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण दर्शाने की तो प्रतिज्ञा करी परन्तु प्रत्यक्ष ज्ञान जोकि नेत्ररूपी प्रत्यक्ष प्रमाण जन्य होता है उसका लक्षण लिख दिया जाना जाता है कि दयानन्दने प्रत्यक्षज्ञान ही को प्रत्यक्ष प्रमाण माना है उस से दयानन्द ही के लेखसे चक्षुइन्द्रिय में भी प्रमाणत्व का अत्यन्ताभाव है । और प्रत्यक्ष ज्ञान जोकि नेत्र इन्द्रिय जन्य है उसमें किसी आचार्य ने प्रमाणत्व लिखा ही नहीं उससे दयानन्दोक्त नेत्रजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान में भी प्रमाणत्व का अत्यन्ताभाव है । अनुमान जन्य अनुमितिज्ञान जो कि परोक्ष ज्ञान है उसी को दयानन्दने अनुमान कहा सो भी ठीक नहीं क्योंकि परोक्ष अनुमिति ज्ञान को भी किसी आचार्यने प्रमाण नहीं लिखा उस से दयानन्दोक्त अनुमान में भी प्रमाणत्व का अत्यन्ताभाव है ।

रहा दयानन्दोक्त उपमान प्रमाण सोभी ठीक नहीं क्योंकि दयानन्दके लेख से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि उपमान प्रमाणजन्य उपमिति ज्ञान का कौनसा लक्षण है। यदि कोई कहे कि उपमिति ज्ञानका जनक उपमान प्रमाण है और उपमान प्रमाणजन्य ज्ञान उपमिति ज्ञान है। सो तो ठीक है परन्तु दयानन्दने ऐसे लिखा ही नहीं। उस से दयानन्द ही के लेख से उपमान में भी प्रमाणत्वका अत्यन्ताभाव है। प्रकरण का सिद्धान्त यह कि दयानन्दको प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही का ज्ञान नहीं था, यदि ज्ञान होता तो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयक प्रतिज्ञाहानि दरोगहलफी आदि दोषों को कभी न आने देता परन्तु दोषों के आनेसे दयानन्द प्रत्यक्षादि प्रमाणों का सर्वथा अज्ञाता था। तो दयानन्दके भक्तोंके नसीब में प्रत्यक्षादि प्रमाणों का ज्ञान कहां हो सकता है किन्तु कभी नहीं।

(७ सत्या० समुल्लास ३) इस में दयानन्दने अपनेको पांच प्रकार के अभावोंका भी ज्ञाता सूचित किया है। अब दयानन्दोक्त अभावोंकी समालोचना की जाती है। (तथाहि) (क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत्) इस सूत्रके भाष्यमें दयानन्दने प्रागभावका लक्षण किया है कि क्रिया और गुणके विशेष निमित्त के प्राक् अर्थात् पूर्व (असत्) न था। जैसे कि घट वस्त्रादि उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे। इसका नाम प्रागभाव है। दयानन्दकृत प्रागभावका यह लक्षण पदार्थ विद्याके विरुद्ध है क्योंकि पदार्थविद्यासे सिद्ध हो चुका है कि अभाव से भावका होना सवर्थ असंभव है। जब घट वस्त्रादिका उत्पत्तिसे प्रथम भाव मानें तो प्रागभाव का अत्यन्ताभाव सिद्ध हो जायगा। यदि उत्पत्ति से पहिले घट वस्त्रादिका अभाव मानें तो अभावसे भावका होना सर्वथा असम्भव है। आठवें समुल्लासमें दयानन्द ही का लेख है कि जो अभावसे भावका होना कहता है वह पागल है। प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी जाना जाता है कि फूलोंमें फुलेल है तो निकलताभी है, यदि फूलों में फुलेलका अभाव होता तो कभी न निकलता। दधिमें घृत का भाव है तो दधि से घृत निकलता है यदि दधिमें घृतका अभाव होता तो कभी न निकलता। अग्निमें फुलेलका अभाव है तो अग्निमें से फुलेल निकलता भी नहीं। जल में घृत का अभाव है तो जल में से घृत निकलता भी नहीं तिलों में तेलका भाव है तो तिलोंमें से तेल निकलता भी है। बालूमें तेल का अभाव है तो बालू में से तेल निकलता भी नहीं। वैसेही यदि कपालोंमें

घटका अभाव और तन्त्वादिकों में वस्त्रादिकों का अभाव होता तो कपालों के मिलापसे घट न निकलता और तन्त्वादिकों के मिलापसे वस्त्रादि कभी न निकलते इससे भी घटादिकनकी उत्पत्तिसे पूर्व घटादिकन का प्रागभाव कभी सिद्ध नहीं हो सकता। हां कुम्हारके ज्ञान इच्छा प्रयत्नरूपी निमित्त को रखने कपालों में घटका दर्शन होता है और कोरीके ज्ञान इच्छा प्रयत्न रूपी निमित्त कारणसे तन्तुवों में वस्त्र का दर्शन होता है। प्राक् अभाव से घट वस्त्रादिकोंका भाव वर्णन करना दयानन्द की सर्वथा अविद्या है।

यदि दयानन्द के भक्त कहैं कि प्रागभावादि अभावों के लेखों से दयानन्द ने गौतमाचार्य का मत दिखलाया है, दयानन्द का वेद मत था तो दयानन्द के भक्तों का यह कथन भी सर्वथा असंगत है क्योंकि दयानन्दने यह कहीं नहीं लिखा कि अभावोंका लिखना मेरा मत नहीं किन्तु सत्यार्थ प्रकाशोक्त ही दयानन्दने अपना मत माना है। इस सिद्धान्त को दयानन्द ने अपने बनाये ७२ मन्तव्योंमें प्रकाशित कर दिया है। जो हो दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि दयानन्दोक्त प्रागभाव अनादि अनन्त है अथवा सादि सान्त है? यदि अनादि अनन्त कहैं तो सादि सान्त कपालोंमें वह प्रागभाव कभी न रहेगा, कपालोंके टुकड़े कर देनेसे प्रागभावके भी टुकड़े हो जावेंगे। यदि दयानन्दके भक्त कहैं कि परमाणुओंमें सब पदार्थोंके प्रागभाव रहते हैं। सृष्टि के समय कपालादिकों में आ जाते हैं इस से प्रागभाव अनादि अनन्त है। सो भी ठीक नहीं क्योंकि यदि परमाणुओंको निराकार निरवयव मानें तो वह परमाणु साकार सावयव जगतका समवायी कारण सिद्ध न होंगे। यदि कहैं कि परमाणु साकार सावयव हैं तो वह भी घट पटादिकनके सदृश अनादि अनन्त न रहेंगे उनके और परमाणु मानने होंगे इस से दयानन्द मत में अनवस्था दोष होगा॥

(किंच) प्रागभाव को निराकार निरवयव मानें तो वह प्रागभाव किसी प्रमाण गोचर न होगा। यदि कहैं कि प्रागभाव साकार सावयव है, तो जैसे घटपटादिक पदार्थ चक्षुगोचर हैं वैसे प्रागभाव भी नेत्रोंसे दिखाना होगा। और पदार्थ विद्या से साबित है कि भावाभाव दो पदार्थ साथ रह ही नहीं सक्ते इत्यादि अनेक युक्तियें हैं कि जिनसे दयानन्दोक्त प्रागभाव सर्वथा धोखे का जाल मिथ्या सिद्ध हो चुका है। (सदसत्) इस सूत्रके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जो होके न रहे जैसे घट उत्पन्न हो के नष्ट हो-

आय यह प्रध्वंसाभाव कहाता है। दयानन्दोक्त प्रध्वंसाभावका यह लक्षण भी सर्वथा असंगत है। (तथाहि) दयानन्द के भक्तोंसे पूछना चाहिये कि घटका प्रध्वंसाभाव घटसे भिन्न है अथवा अभिन्न यदि कहो कि अभिन्न है तो कहिये घटसे अभिन्न वह प्रध्वंसाभाव है अथवा प्रध्वंसाभाव से अभिन्न घट है। यदि कहो कि प्रध्वसाभाव से अभिन्न घट है तो कहिये प्रध्वंसाभाव अभाव रूप है वा भाव रूप यदि भाव रूप कहो तो प्रध्वंस के साथ अभाव शब्द मिलाना मिथ्या होगा यदि कहोकि प्रध्वंसाभाव अभाव रूप है तो भाव रूप घटसे अभाव रूप प्रध्वंसाभाव को अभिन्न कथन करना पदार्थ विद्या के विरुद्ध होगा॥

यदि कहो कि प्रध्वंसाभाव से घट अभिन्न है तो कहिये घटकी स्थिति के समय प्रध्वंसाभाव है अथवा नहीं? यदि कहो कि घटको स्थिति के समय प्रध्वंसाभाव नहीं है तो प्रध्वंसाभाव से घट को अभिन्न कथन करना विद्या हीनों की लीला है। और भावाभाव दो पदार्थों का अभेद करना भी पदार्थ विद्या के विरुद्ध है (किंच) घटकी उत्पत्तिसे प्रथम ही घटका प्रध्वंसाभाव था अथवा घटकी उत्पत्ति के पश्चात् घटका प्रध्वंसाभाव होता है? यदि कहो कि घटकी उत्पत्ति से पहिले घटका प्रध्वंसाभाव है तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरोध होगा क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि घट के होने के पश्चात् दण्ड प्रहार से घट का नाश होता है उस नाश ही का नाम प्रध्वंसाभाव सिद्ध होता है सो घट फूट जाने से घट के टुकड़े ही देखे जाते हैं घटके टुकड़ों से भिन्न घटका प्रध्वंसाभाव न था न है और न होगा। उससे दयानन्दोक्त प्रध्वंसाभाव भी सिद्ध नहीं होसक्ता॥

(७ सत्या० समुल्लास ३) (सच्चासत्) इस सूत्रके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि जो होवे और न होवे जैसे (अगौरश्वोऽनश्वो गौः) यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं। अर्थात् घोड़ेमें गायका और गायमें घोड़े का अभाव और गायमें गायका घोड़े में घोड़ा का भाव है यह अन्योऽन्याभाव कहाता है। दयानन्दोक्त यह अन्योऽन्याभाव का लक्षण भी सर्वथा असंभव अनर्थ प्रतिपादक है। क्योंकि (यस्याभावः स प्रतियोगी.) (यस्मिन्नभावः स अनुयोगी) इन वाक्यों का अभिप्राय यह है, कि जिस पदार्थका अभाव होता है वह अभावका प्रतियोगी होता है और जिसमें अभाव रहता है वह अभावका अनुयोगी कहा जाता है। घोड़े में गायका और गाय में घोड़ेका

अभाव अन्योन्याभाव सिद्ध नहीं हो सकता किन्तु घोड़े में गायके अभेद का अत्यन्ताभाव और गाय में घोड़े के अभेदका अत्यन्ताभाव ही सिद्ध हो सकता है क्योंकि घोड़ेका अपने आप में अभेद है गायमें घोड़े का अभेद नहीं किन्तु गायमें घोड़े के अभेद का अत्यन्ताभाव है वैसे ही गाय का अपने आपमें अभेद है भेद नहीं किन्तु घोड़े में गायके अभेदका अत्यन्ताभाव है। घोड़े में गायके अभेदके अत्यन्ताभावका प्रतियोगी गाय का अपने आप में भेद है और गाय के अभेद का अत्यन्ताभाव घोड़े में रहता है उस से अत्यन्ताभाव का अनुयोगी घोड़ा है वैसे ही घोड़े का अभेद अपने आप में है। उस अभेद का अत्यन्ताभाव गाय में है इस से अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी घोड़े का अपने आप में अभेद है। और उस अभेद के अत्यन्ताभाव का अनुयोगी गाय है। दयानन्दोक्त अन्योऽन्याभाव किसी प्रकारसे भी सिद्ध नहीं हो सकता। प्रत्युत दयानन्दोक्त अन्योऽन्याभाव का अत्यन्ताभाव तो सिद्ध हो ही चुका है॥

(किञ्च) गाय और घोड़े की उत्पत्ति से पहिले भी अन्योऽन्याभाव सिद्ध नहीं हो सका किन्तु उस समय भी अन्योऽन्याभाव का अत्यन्ताभाव ही सिद्ध होता है (अब दयानन्दोक्त अत्यन्ताभाव का खण्डन किया जाता है) जैसे कि— (३ सत्या० समुल्लास ३)

यच्चान्यदसदतस्तदसत्।

इस सूत्र के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि—जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है उसको अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे नरशृङ्ग अर्थात् मनुष्य का सींङ्ग, खपुष्प आकाश का फूल और वन्ध्या पुत्र वन्ध्या का पुत्र इत्यादि। दयानन्दोक्त यह अत्यन्ताभाव का लक्षण भी असङ्गत है। (तथाहि) दयानन्द के उक्त लेख से सिद्ध होता है कि प्रागभाव १ प्रध्वंसाभाव २ अन्योऽन्याभाव ३ इन तीन अभावों से अत्यन्ताभाव भिन्न है वह तीन अभाव परस्पर भिन्न नहीं किन्तु अभिन्न हैं। यदि ऐसा न होता तो तीन अभावों से जो भिन्न है वह अत्यन्ताभाव है ऐसा अत्यन्ताभाव का लक्षण दयानन्द कभी न करता। यदि दयानन्द के भक्त अत्यन्ताभावके इसी लक्षण को ठीक समझें तो तीन अभावों से भिन्न तो नाम रूप और क्रियात्मक सर्व संसारके पदार्थ हैं। उन सबको अत्यन्ताभाव कहना चाहिये। जीव चेतन ब्रह्म चेतन भी तीन अभावों से अभिन्न नहीं किन्तु भिन्न हैं इस से जीव और ब्रह्मचेतन

को भी अत्यन्ताभाव कहना चाहिये। जो तीन अभावों से भिन्न है वह अ-त्यन्ताभाव है। यदि अत्यन्ताभाव के इसी लक्षण को ठीक कहें तो प्रागभाव से भिन्न प्रध्वंसाभाव को वा प्रध्वंसाभाव से भिन्न प्रागभाव को अन्योऽन्याभाव से भिन्न प्रागभाव प्रध्वंसाभाव को किंवा प्रागभाव प्रध्वंसाभाव से भिन्न अन्योऽन्याभाव को भी अत्यन्ताभाव कहना चाहिये॥

यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो प्रागभावादि उत्पत्ति नाश वाले सिद्ध हो चुके हैं उन तीन अभावोंका अत्यन्ताभाव हो सकता है परन्तु जबतक अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी अनुयोगी सिद्ध नहीं होते तबतक अत्यन्ताभाव भी सिद्ध नहीं हो सकता दयानन्द ने अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी अनुयोगी दर्शाए ही नहीं। दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी अनुयोगी हैं अथवा नहीं? यदि नहीं कहो तो दयानन्दोक्त अ-त्यन्ताभाव किस का होगा?। और अत्यन्ताभाव का अनुयोगी कौन होगा? यदि कहो कि मनुष्य के सींग का अत्यन्ताभाव आकाश के फूल का अत्यन्ताभाव वन्ध्या के पुत्र का अत्यन्ताभाव है। तो प्रष्टव्य यह है कि बैलादि के सींग का मनुष्य में अत्यन्ताभाव है वा मनुष्य के अपने सींग का मनुष्य में अत्यन्ताभाव है। यदि कहो कि बैलादि के सींग का मनुष्य में अत्यन्ताभाव है सो भी ठीक नहीं क्योंकि बैलादि के सींग का बैलादि में अभेद है मनुष्य में अभेद नहीं। उस से बैलादि के सींग के अभेद का अत्यन्ताभाव तो मनुष्य में हो सक्ता है और वह अभेद ही अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी और मनुष्य अनुयोगी हो सकता है। बैलादि के सींग उस अभाव के प्रतियोगी नहीं हो सक्ते। वैसे ही गुलाब के फूल का अभेद गुलाब के परमाणुओं के साथ है उस अभेद का अत्यन्ताभाव आकाश में है वह अभेद अपने अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी और आकाश उस का अनुयोगी है। तथा पुत्र का अभेद पुत्र वाले स्त्री पुरुष के रज वीर्य के परमाणुओं में है उस अभेद का अत्यन्ताभाव वन्ध्या स्त्री में है वह अभेद अपने अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी और वन्ध्या स्त्री उस अत्यन्ताभाव की अनुयोगिनी हो सक्ती है॥

यदि दयानन्दके भक्त कहें कि—मनुष्य के सींग का अत्यन्ताभाव मनुष्यमें आकाश के फूल का अत्यन्ताभाव आकाश में वन्ध्याके पुत्रका अत्यन्ताभाव वन्ध्यामें है। दयानन्द के भक्तोंका यह कथन उन्मत्त प्रलापके सदृश है क्योंकि जिसका सींग ही नहीं उसके सींगका अत्यन्ताभाव नहीं सिद्ध होता

जिस का फूल नहीं उस के फूल का, जिस का पुत्र नहीं उस के पुत्र को, अत्यन्ताभाव सिद्ध नहीं हो सक्ता । जैसे कोई कहे कि मेरे मुख में जिह्वा नहीं तो वह उन्मत्त सिद्ध होता है वैसे ही सींग का वा फूलका किंवा पुत्र का नाम लेकर उन का अत्यन्ताभाव कहने वाला भी उन्मत्त ही सिद्ध होता है । अभिप्राय यह कि जैसे दयानन्दोक्त प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अन्योऽन्याभाव सिद्ध नहीं हुए वैसे ही दयानन्दोक्त अत्यन्ताभाव भी सिद्ध नहीं होता॥ अब दयानन्दोक्त सामयकाभाव का खण्डन सुनिये । ७ सत्या० समुल्लास ३

नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः ॥

इस सूत्र के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है । ये पांच अभाव कहाते हैं यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि दयानन्द ने चार अभावों के नाम तो वर्णन किये जैसे कि एक का नाम प्रागभाव दूसरे का नाम प्रध्वंसाभाव तीसरे का अन्योऽन्याभाव चौथे का नाम अत्यन्ताभाव कहा, पांचवें का नाम क्या है ? यदि कहो कि पांचवें अभाव का नाम ही कुछ नहीं तो विना नाम के नामी का ज्ञान ही नहीं हो सकता । उस से पांचवां अभाव ही सिद्ध नहीं होगा । पांचवें अभावका नाम न बतलाने वाला दयानन्द भी पदार्थविद्या से सर्वथा अज्ञाता होगा । यदि कहो कि पांचवें अभावका नाम भी है तो बतलाइये वह कौनसा नाम है । यदि कहो कि पांचवें अभाव का नाम हम को भी नहीं आता सो तो ठीक है क्योंकि जिन के आचार्य ही में पांचवें अभाव के नामका अत्यन्ताभाव है तो शिष्यों में भी अत्यन्ताभाव ही होगा । जिस पांचवें अभाव के नाम का दयानन्द वा उनके भक्तों में अत्यन्ताभाव है तो पांचवें अभाव का भी दयानन्द वा उन के भक्तों में अत्यन्ताभाव सिद्ध हो चुका । किन्तु न्याय के ग्रन्थोंमें तो पांचवें अभाव का नाम सामयकाभाव अत्यन्त प्रसिद्ध है । यदि कहो कि दयानन्द ने मूल सूत्रों ही को माना है सूत्रों के भाष्य को नहीं माना तो कहिये मूल सूत्रों में प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अन्योऽन्याभाव अत्यन्ताभाव यह चार नाम ज्यों के त्यों कहां हैं ? यदि हैं तो दिखलाइये नहीं तो जैसे पांचवें अभाव के नाम का सूत्रों में अत्यन्ताभाव है वैसे ही प्रागभावादि चार अभावों के नाम का भी सूत्रों में अत्यन्ताभाव है जब सूत्रों में चार अभावों के नामका अत्यन्ताभाव सिद्ध होचुका तो सूत्रों में चार अभावों का भी अत्यन्ताभाव है ॥

यदि कहो कि आप चार अभावों का अत्यन्ताभाव किस ग्रन्थ की रीति से कहते हैं तो उत्तर यह है कि हम वेदान्त रीति से अत्यन्ताभाव का वर्णन करते हैं ॥

नेह नानास्ति किंचन। मृत्योःसमृत्युमाप्नोति यइह नानेव पश्यति ॥

इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण देकर हम शुद्ध ब्रह्मचेतन में परमार्थ से सब अनात्म पदार्थोंका अत्यन्ताभाव सिद्ध करते हैं। युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे भी अनात्म पदार्थ नित्य सिद्ध नहीं हो सकते उससे हम युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे भी अनात्म पदार्थों का शुद्ध ब्रह्मचेतनमें अत्यन्ताभाव सिद्ध करते हैं। दयानन्द के लेखों से पांच प्रकार के अभाव सिद्ध नहीं हुये उससे दयानन्दोक्त पांच प्रकार के अभावों का भी अत्यन्ताभाव सिद्ध हो चुका। यद्यपि अत्यन्ताभाव को न माने तो वेदान्तसिद्धान्त में अद्वैत का कथन असङ्गत होगा तथापि वेदान्तसिद्धान्तमें नाम अनात्म पदार्थों के अत्यन्ताभाव का भी बाध है। वह शुद्ध ब्रह्मचेतन से भिन्न न था न है और न होगा। परन्तु दयानन्द की रीति से यह सिद्धान्त अस्वीकृत है। पूर्व प्रकरण यह कि दयानन्द ने कहा कि घर के साथ घड़े का संबन्ध नहीं यह पांच प्रकार के अभाव कहाते हैं। यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि घर के साथ घड़े का संयोग संबन्ध है वा समवाय, अथवा घर के साथ घड़े का संयुक्त समवाय सम्बन्ध है। यदि समवाय संम्बन्ध कहो तो ठीक नहीं क्योंकि समवाय सम्बन्ध को दयानन्द ने नित्य माना है। यदि घर के साथ घड़े का नित्य सम्बन्ध हो तो घर से भिन्न घड़ा कभी न होना चाहिये। हां समवाय सम्बन्ध से घड़े का घर से अत्यन्ताभाव तो हो सकता है। क्योंकि घट का समवाय संबन्ध कपालों में है। घर के साथ घट का समवायसंबन्ध नहीं। यदि कहो कि घर के साथ घड़े का संयोग संबन्ध है सो भी ठीक नहीं क्योंकि कपालों में जो वर्तुलाकारका भान होता है उसी ही का नाम घड़ा है। वर्तुलाकार रूप घड़े का समवाय संम्बन्ध कपालोंमें है कपालोंका संयोग सम्बन्ध घर के साथ है। यदि कहो कि घर के साथ घड़े का संयुक्त समवाय संबन्ध है घर के साथ संयोग वाले कपाल हैं कपालों से वर्तुलाकार रूप घटका समवाय सम्बन्ध है सो तो ठीक है परन्तु दयानन्द ने इस सम्बन्ध का नाम तक भी नहीं लिखा उससे भी दयानन्दोक्त पांचवां अभाव असिद्ध है।

किन्तु न्यायमतोक्त पांचवें अभाव का नाम सामयकाभाव ही सर्वथा निर्दोष है। समय विशेष से होने के कारण-उसका नाम सामयकाभाव वर्णन किया है (गेहे घटो नास्ति) इसका अभिप्राय यह कि इस समय घर में घड़ा नहीं और (अस्मिन् काले गेहे घटोऽस्ति) अर्थात् इस समय घर में घड़ा है सिद्धान्त यह कि न्याय की रीति से घर में घट के न होने समय अभाव है और घर में घड़े कें आ जाने समय घट का अभाव नहीं है। परन्तु वेदान्त की रीति से घर में घड़ा होने के समय भी अभेद सम्बन्ध से भी घटका गेह में अत्यन्ताभाव है किन्तु घटके होने समय संयुक्त अभेद संबन्ध से घटका भाव है। परमार्थ से घर अथवा घड़ा इन का शुद्ध ब्रह्मचेतन में अत्यन्ताभाव है। यह वेदान्त का सिद्धान्त है। परन्तु दयानन्द की रीति से उत्पत्ति नाश वाला ही पंचम अभाव सिद्ध होता है। क्योंकि जिस समय घर में घड़ा दूसरे स्थान में ले जावे तो घटका अभाव उत्पन्न होता है जिस समय घर में घड़े को ले आवे तो घड़ेका अभाव नष्ट हो जाता। उत्पत्ति नाश वाले पदार्थ का वस्तुतः अत्यन्ताभाव ही सिद्ध होता है। घरमें घड़े के न होने के समय घड़े का केवल अदर्शन ही होता है। अभाव नहीं होता, जब घर में घड़े को ले आवे तो घर में घड़े का दर्शन होता है। अदर्शन को अभाव नाम से वर्णन करना अविद्या मूलक है। जब दयानन्द को अभावों का भी ज्ञान नहीं था, तो दयानन्द को पण्डित नामसे वर्णन करना भी प्रमादी लोगों का काम है। जब आर्यमत के मूलाचार्य में अभावों के ज्ञान ही का अत्यन्ताभाव था। तो दयानन्द के भक्त आर्यों में उस ज्ञान का भाव कहां से होगा ? किन्तु कभी नहीं ॥

अब (३ सत्या० समुल्लास ३) दयानन्द ने कहा है कि छः शास्त्रोंका परस्पर विरोध नहीं। जैसे कि सृष्टिका जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में १। समय की व्याख्या वैशेषिक में २। उपादान की व्याख्या न्याय में ३। पुरुषार्थ की व्याख्या योग में ४। तत्त्वों की व्याख्या सांख्य में ५। निमित्त कारण परमेश्वर की व्याख्या वेदान्त शास्त्र में ६ है। दयानन्द का यह लेख भी सर्वथा असङ्गत है। क्योंकि पूर्वमीमांसा शास्त्र में अनीश्वरवाद का वर्णन है, कर्म जड़ हैं वह केवल जगत् का उपादान कारण सिद्ध नहीं हो सकते। कर्मों के बिना शरीर नहीं हो सकता, और बिना शरीर के कर्म नहीं हो सकते। उत्तर उत्तर शरीर के पूर्व २ कर्म माने तो अनवस्था

दोष होगा। यदि कर्म्मों को जगत् का उपादान मानें तो पदार्थ विद्या से विरोध होगा क्योंकि कार्य द्वारा उपादान कारण का अनुमान होता है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ज्ञात होता है कि प्रत्येक साकार सावयव पदार्थका उपादान कारण साकार सावयव है। कर्मों को साकार सावयव मानें तो जीव भी साकार सावयव होगा। उससे जीव उत्पत्ति नाश वाला होगा। क्यों कि विशेष क्रिया ही का नाम कर्म है। क्रिया और क्रिया वाले का नित्य संबन्ध है इसको दयानन्द ही ने वर्णन कर दिया है। यदि कर्मों को जगत्का केवल निमित्त कारण ही मानें तो विना ईश्वर के कर्मों का फल प्रदाता सिद्ध न होगा। यदि कर्मों का फल प्रदाता ईश्वर को मानें तो मीमांसाका अनीश्वरवाद निष्फल प्रवृत्ति का जनक होगा। मीमांसाशास्त्र के विरुद्ध वैशेषिक में काल ही को जगत् का कारण कहा है। यदि कालको उपादान कारण मानें तो कालको साकार सावयव मानना होगा सो पदार्थविद्याके विरुद्ध है॥

यदि काल को साकार सावयव कहें तो पूर्वोक्त साकार सावयव में वर्णन किये दोषों की प्राप्ति होगी, वैशेषिक दर्शन में भी अनीश्वरवाद है॥ वैशेषिक में जो कारण कार्य दो प्रकार के द्रव्य कहे हैं उनमें कारण द्रव्यों को यदि निराकार निरवयव मानें तो वह उपादान कारण नहीं हो सकते। यदि साकार सावयव मानें तो वह उत्पत्ति नाश वाले होंगे, कारणों की अनवस्था होगी, वैशेषिक शास्त्र के विरुद्ध न्यायशास्त्र में परमाणुओंको जगत् का समवायी कारण कहा है, उपादान कारण ऐसा नाम परमाणुओंके कारणत्वमें वर्णन नहीं किया। जाना जाता है कि दयानन्दको न्याय शास्त्र का यथार्थ ज्ञान नहीं था, यदि यथार्थ ज्ञान होता तो न्याय शास्त्रोक्त उपादानादि ऐसा नाम कभी न लिखता, किन्तु समवायिकारण ऐसा नाम लिखता। यदि न्याय मत वाले परमाणुओं को निराकार माने तो वह परमाणु जगत् का समवायी कारण नहीं हो सकते, निराकार परमाणुओं का परस्पर संयोग भी सिद्ध नहीं होता। यदि परमाणुओं को साकार कहें तो परमाणु अनादि सिद्ध नहीं हो सकते। न्याय के विरुद्ध योगशास्त्र है क्योंकि योगशास्त्र की रीति से भी जगत् के उपादान निमित्त कारण सिद्ध नहीं हो सकते। योगशास्त्र के विरुद्ध सांख्यशास्त्र है क्योंकि सांख्यशास्त्रमें प्रकृतिको उपादान कारण कहा है सत्त्व रजस् तमस् तीन गुणोंकी साम्यावस्थाको वह प्रकृति कहते हैं, सो यदि साम्यावस्था को नित्य मानें तो उसको जगत् का उपादान कारणत्व सिद्ध न होगा

यदि साम्यावस्था को अनित्य मानें तो वह साम्यावस्था रूप प्रकृति उत्पत्ति नाश वाली सिद्ध होगी। उससे कारणों की अनवस्था रूपी दोष की प्राप्ति होगी दयानन्द ने तो तीन गुणों की मिलावट से जो संघात होता है, उसी का नाम प्रकृति वर्णन किया है उससे भी प्रकृति उत्पत्ति नाश वाली सिद्ध हो चुकी ॥

सांख्य शास्त्र के विरुद्ध वेदान्त शास्त्र है क्योंकि वेदान्तके ग्रन्थोंमें माया को जगत् का उपादान और चेतनको जगत् का निमित्त कारण कहा है। इसी का दूसरा नाम अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। वेदान्त सिद्धान्तमें स्वप्नके समान जगत् और जगत्का उपादान कारण माया तथा जीवेश्वर कल्पित अनिर्वचनीय हैं। माया ही को वेदान्ती लोग प्रकृति प्रधान, अव्याकृत, शक्ति, अविद्या, अज्ञान इत्यादि नामों से वर्णन करतेहैं। शुद्धब्रह्ममें न हुये जगत् को दर्शानेके कारण माया कहते हैं, जगत्का उपादान होने के कारण वह प्रकृति कहाती है, प्रलय के समय सर्व जगत् को अपने में लय कर उदासीन होकर रहती है उससे उसको प्रधान कहते हैं, चक्षु गोचर न होने और अनादि तथा सादिसे विलक्षण होनेसे अव्याकृत कहते हैं, विना चेतन के रह नहीं सकती उससे उसको शक्ति कहते हैं आत्माके यथार्थ स्वरूप को ज्ञात नहीं होने देती उससे उस को अविद्या कहते हैं, जिस चेतन के आश्रय रहती है उसी के स्वरूप को आच्छादन कर लेती है उसी से उस को अज्ञान कहते हैं ॥

अभिप्राय यह कि छः शास्त्रोंका ही परस्पर विरोध है, दयानन्दने जो कहा कि छः शास्त्रोंमें विरोध नहीं सो सर्वथा मिथ्या है। वेदान्त के ग्रन्थों में न्याय वैशेषिक आदिका सर्वथा खण्डन कर डाला है। किन्तु युक्ति और वेदादि प्रमाणों से नाम रूप और क्रियात्मक प्रपंच को स्वप्न प्रपंच के सदृश दृष्ट नष्ट स्वभाव वाला मिथ्या सिद्ध किया है और नित्य मुक्त नित्य शुद्ध आत्माको त्रिकाल अबाध सत्य दर्शा दिया है। वेदान्तके ग्रन्थोंमें जिन न्यायादि वस्तुतः अन्यायादि ग्रन्थों का खण्डन किया है, उन खण्डन किये मतों को बटोर के दयानन्द ने आर्य्यमत खड़ा किया है, सो थोड़े दिनों का मुसाफिर है, नष्ट हो जावेगा। इस व्याख्यान में दयानन्दोक्त प्रमाणों और प्रमाणों तथा न्यायादि ग्रन्थोंके विरोध न होनेका हमने खण्डन कियाहै ॥

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हिन्दु तथा आर्य्यशब्द समालोचना

व्याख्यान नं० ११

सर्व सनातन हिन्दु धर्म्म वीरों को विदित किया जाता है कि इस व्याख्यानमें आर्य्य नामका खण्डन और हिन्दु नामका मण्डन होगा। प्रथम स्थालीपुलाक न्यायसे आर्यनाम विषयक दरोगहलफीका वर्णन किया जाता है (तथाहि) (७ सत्या० समुल्लास७) इसके समाप्त होने पर दयानन्दने लिखा है कि जो कोई पूछे तुम्हारा मत क्या है, तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद है, अर्थात् जो कुछ वेद में लिखा है उसीको हम मानतेहैं, उसी से हमारा मत वेद है। दयानन्द के इस लेख का यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि जो बात वेद में नहीं लिखी, उस बातको जो मानने वाला है उसका वेद मत नहीं है॥ (सत्या० समुल्ल० स ३)

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति०।

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि-जो २ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है, उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं, जिस लिये वेद हम को मान्य है, इस लिये हमारा मत वेद है, ऐसा ही मान कर सब मनुष्यों को विशेष आर्य्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिये। दयानन्द के इस लेख का सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि जो कुछ वेदमें करने वा छोड़ने की आज्ञा ईश्वर ने दी है सो विशेष करके आर्य्यों ही को दी है॥

यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि दयानन्दोक्त लेख सत्यहैं अथवा मिथ्या? यदि मिथ्या कहो तो दयानन्द मिथ्यावादी होगा, यदि कहो कि वह लेख सत्य हैं, तो कहिये नित्य मुक्त नित्य शुद्ध निराकार निर्विकार निराधार सर्व शक्तिमान् न्यायकारी सच्चिदानन्द स्वरूप इत्यादि ईश्वर के ज्यों के त्यों नाम मंत्र संहिता वेदमें हैं अथवा नहीं? यदि कहो कि ईश्वर के यह नाम ज्यों के त्यों वेद में हैं, तो दिखलाइये कौन से वेद में यह नाम हैं? यदि कहो कि ईश्वरके यह नाम किसी वेदमें भी नहीं, तो सिद्ध हो चुका कि दयानन्द का वेद मत नहीं, क्योंकि दयानन्द हीकी प्रतिज्ञा हैं कि जो कुछ वेदमें कहा है उसी को हम मानते हैं, उसीसे हमारा वेद मत है। परन्तु उक्त ईश्वर के नाम किसी वेदमें भी नहीं और दयानन्दोक्त प्रथम मन्तव्य तथा समाज के प्रथम नियम में पूर्वोक्त ईश्वर के नाम दयानन्द ने

लिखे हैं। यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो दयानन्दकृत ५२ मन्तव्यों को तथा १० नियमों की संख्या का चारों वेदों में अत्यन्ताभाव है और दयानन्द के भक्त उन को मानते हैं, उससे दयानन्द वा दयानन्दके भक्त आर्यों का वेद मत नहीं, किन्तु इन का वेदसे विरुद्ध मत है। दयानन्द कृत ग्रन्थों की यदि और भी समालोचना करी जावे तो हजारों लेख दयानन्द के ऐसे निकलेंगे जो कि मन्त्र संहिता वेदोंमें एक भी नहीं देखा जाता, परन्तु दयानन्दके भक्त उसी की लकीरके फकीर हुए देखे जाते हैं। कहीं लिखा कि हम वेद में लिखे ही को मानते हैं, और कहीं वेदमें न लिखे को भी मान लेना यह दयानन्द की झूंठी दरोगहलफी है॥

(७ सत्या० समुल्लास ११) में दयानन्द ने झूंठ ही को अधर्म कहा है (७ सत्या० समुल्लास ६) दयानन्दका लेख है कि अधर्मीको राजा मारडाले। यद्यपि आर्य्यसमाज के १० नियम खण्डन के व्याख्यान में हमने आर्य्य नाम की समालोचना कर भी दी है तथापि यहां विशेष की जातीहै (७ सत्या० समुल्लास १२) इसमें दयानन्द ने बौद्धमतोक्त विवेक विलास नाम ग्रन्थ के

बौद्धानांसुगतोदेवो विश्वं च क्षणभंगुरम् ।
आर्यसत्त्वाख्ययातत्त्व चतुष्टयमिदंक्रमात् ॥

इस श्लोक को लिखा है और इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि आर्यों स्त्री और आर्य मनुष्य यह बौद्धमत के पदार्थ हैं। यहां दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि बौद्धमत दयानन्दके पहिले था वा दयानन्दके पश्चात् चला है? यदि कहो कि दयानन्दके पश्चात् बौद्धमत चला है तो दयानन्द ही के लेखमें विरोध होगा। क्योंकि (७ सत्या० समुल्लास ११) दयानन्द का लेख है कि हजारों वर्षों से बौद्धमत चला आता है यदि दयानन्दके भक्त कहें कि बौद्धमत दयानन्दके पहिले था तो सिद्ध यह होगा कि दयानन्द का भी बौद्धमत था, क्योंकि दयानन्दने कहा है कि आर्या स्त्री और आर्य मनुष्य यह बौद्धमत के पदार्थ हैं। यद्यपि हिन्दुमत में बुद्ध भी १० अवतारोंमें से ईश्वर का अवतार है। और बुद्धमत के मानने वाले ही बौद्ध कहाते हैं तथापि असुरों का अधिकार यज्ञादि कर्मों में नहीं था परन्तु वह यज्ञादि कर्मों की उन्नति करते थे, उन को यज्ञादि कर्मोंसे रोकने के लिये ईश्वर ने बुद्ध अवतार को धारण किया था, वही असुर बौद्ध कहाने लगे। और बुद्ध की आज्ञा के अनुसार यज्ञादि कर्मों का उनने त्याग कर दिया, पश्चात् ई-

श्वर ने शंकराचार्य जी का स्वरूप धारण किया, उसी स्वरूप में वेदोक्त मत का मरडन और वेद विरुद्ध बौद्धमत का खण्डन कर डाला ॥

यद्यपि शंकराचार्य जी का अवतार दश अवतारोंकी संख्यामें नहीं, तथापि (यदायदाहि धर्मस्य०) इस भगवान् के वचन से असंख्यात अवतारोंमेंसे एक शंकराचार्य जी भी ईश्वरके अवतार हैं। प्रकरण यह कि दयानन्द ही के लेख से आर्या स्त्री और आर्य मनुष्य यह बौद्ध मत के पदार्थ सिद्ध हो चुके हैं। और दयानन्द ने भी आर्या व आर्य इन्हीं नामों पर एक मत खड़ा कर दिया है। मूर्त्तिपूजा का खण्डन करना इत्यादि बहुत सी बातोंमें बौद्धमत और दयानन्द का एक मत है। उस से सनातन हिन्दुधर्म वीरों को विदित किया जाता है कि इस मत से पृथक् रहना ही सर्वोत्तम है। (७ सत्या० समुल्लास ८) में (दयानन्द ने कहा है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णों का नाम आर्य है) दयानन्द का यह कथन भी असङ्गत है क्योंकि (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्०) इत्यादि वेदमन्त्रोंमें जहां वर्णव्यवस्था का वर्णन किया है वहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीन वर्णोंके साथ आर्या वा आर्य इन शब्दों का अत्यन्ताभाव है। यदि तीनवर्णों का नाम आर्य होता तो वर्णव्यवस्था प्रतिपादक वेद मंत्रोंमें ईश्वर अवश्य ही आर्य नामको प्रकाशित कर देता, क्योंकि वर्णव्यवस्था का प्रचार करने वाला तो सबसे पहिले ईश्वर ही आचार्य है। पश्चात् उसके मनु जी ने मनुस्मृति के प्रथमाध्याय में वर्णव्यवस्था का वर्णन किया है। परन्तु मनुजी ने भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीन वर्णों के साथ आर्य नाम को युक्त नहीं किया। यदि तीन वर्ण आर्य होते तो मनुजी ही आर्य्य नामको तीन वर्णों के साथ शामिल कर देते, परन्तु ऐसा न होने के कारण भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि मनुजी ने भी जब देखा कि वर्णव्यवस्था प्रतिपादक वेद मन्त्रों में आर्य्य नाम का प्रध्वंसाभाव है, तो मनु जी ने भी वर्णव्यवस्था प्रतिपादक श्लोकोंमें आर्य्या वा आर्य्य इन नामों का प्रध्वंसाभाव ही कर डाला, उस से तीन वर्णों में आर्य्या वा आर्य्य इन नामों को मिलाना वेद विरुद्ध बौद्धमत है ॥

दयानन्द के भक्त कहते हैं कि (अष्टाध्यायी में ब्राह्मण का नाम आर्य्य कहा है और अष्टाध्यायी के महाभाष्य में ब्राह्मणों की सभा का नाम आर्य्यसमाज कहा है उससे आर्य्य नाम निर्दोष है) दयानन्द के भक्तों का यह कथन भी असङ्गत है। क्योंकि दयानन्दोक्त लेखों से ही पूर्व हम सिद्ध

कर चुके हैं कि वेद और मनुस्मृति में जहां वर्ण व्यवस्था का प्रकरण है वहां ब्राह्मणादि तीन वर्णों के साथ अथवा एक ब्राह्मण वर्ण के साथ आर्य्य नाम का सर्वथा अत्यन्ताभाव है । जब चतुर्वेदों के चार उवेदोंकी निगरानी करी जावे तो वहां भी ब्राह्मणादि तीन वर्णों के साथ आर्य्य नाम का प्रध्वंसाभाव है । वेदों के षट् अंग और षट् उपांगों को दयानन्द ने स्वयं ही ऋषि प्रणीत वर्णन किया है । और साथ ही यह भी वर्णन कर दिया है कि वेद से भिन्न पुस्तक वेदानुसार अंश में प्रमाण और वेद विरुद्धांश में अप्रमाण हैं । सो यदि मंत्र संहिता वेदोंमें तीन वर्णों के साथ आर्य्य नाम के सम्बन्ध का अत्यन्ताभाव है, तो अष्टाध्यायी में जो ब्राह्मण नाम के साथ आर्य्य कहा अथवा महाभाष्य में ब्राह्मणों की समाज का नाम आर्य्यसमाज कहा वह वेदमत नहीं किन्तु दयानन्दके लेखानुसार जो कुछ वेद में लिखा है वही वेदमत है । (किञ्च) अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य के लेख का ही दयानन्दकृत अर्थ मानें तो ब्राह्मणादि तीन वर्णों का नाम आर्य रखने का लेख मिथ्या होगा । यदि उस लेख ही को सत्य मानें तो एक ब्राह्मण वर्ण ही को आर्य कथन करने का लेख मिथ्या होगा दरोगहल्फी होने के कारण दयानन्दोक्त वह दोनों लेख भी झूठे हैं । और वेद में लिखे को मानकर वेद में न लिखे को न मानना सिद्ध हो चुका है, उस से भी तीन वर्णों को अथवा एक वर्ण को आर्य कथन करना मिथ्या है । छः शास्त्रों में भी तीनों वर्णों के साथ आर्यनाम कहीं नहीं पाया जाता । चार ब्राह्मण और चार वेदों के चार निरुक्तों को भी यदि निगरानी करी जावे तो वहां भी ब्राह्मणादि तीन वर्णों के साथ आर्य नाम नहीं देखा जाता । दश उपनिषदों में भी तीन वर्णों के साथ आर्य नाम का अत्यन्ताभाव है । वेदान्त के विचारसागर ग्रन्थ से सिद्ध हो चुका है कि वेद ईश्वर कृत हैं उस से वेद स्वतः प्रमाण हैं और वेद से भिन्न ग्रन्थ परतःप्रमाण हैं क्योंकि वह ऋषिकृत हैं उस से वह भी वेदानुसारांश में प्रमाण वेद विरुद्धांश में अप्रमाण हैं । उस से हम वेदान्ती लोग भी वेद में लिखे ब्राह्मणादि तीन वर्णों के साथ आर्यनाम का अत्यन्ताभाव निश्चय करते हैं । वाल्मीकीय रामायणादि ग्रन्थों में भी जहां कहीं रामादि नामों के साथ आर्य नाम आ जाता है तो उस को भी हम वेद से विरुद्ध सिद्ध कर देते हैं । क्योंकि वेद में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों के साथ आर्य उपाधि का अत्यन्ताभाव है । सायणाचार्य कृत वेद भाष्य भी

जितने अंश में वेदानुसार है उतने अंश में हम निर्दोष मानते हैं। सिद्धान्त यह है कि ब्राह्मणादि तीन वर्णों के साथ आर्य उपाधि का मिलना वेदमत सिद्ध नहीं हो सक्ता, किन्तु यह बौद्ध मत ही सिद्ध होता है। वाल्मीकीय रामायण में रावण को भी मंदोदरी ने आर्य पुत्र वर्णन किया है, जामवन्त भालु को भी आर्यपुत्र वर्णन किया है, उस पर हम कुछ नहीं सन्देह कर सकते क्योंकि रावण असुर और जामवन्त भालु था॥

दयानन्द के भक्त कहते हैं कि आर्य शब्द का अर्थ श्रेष्ठ है, उस से आर्य्यनाम निर्दोष है, ब्राह्मणादि तीन वर्णों के साथ मिला लेने में कोई भी दोष नहीं आ सक्ता। आर्यसमाजियों का यह कथन भी भ्रान्ति मूलक है क्योंकि (ऋ गतौ) इस धातु से आर्य शब्द सिद्ध होता है। ऋधातु गति अर्थ में है श्रेष्ठ अर्थ में ऋधातु नहीं हो सक्ता, उससे आर्य शब्द का श्रेष्ठ अर्थ बतलाना व्याकरण के भी विरुद्ध है। (ऋ श्रेष्ठे) यदि ऐसा पाठ होता तो ऋधातु का श्रेष्ठ अर्थ भी निकल सक्ता यदि व्याकरण वेदांग के पृषोदरादि गणों के प्रकरण को देखा जाय तो (अरि) इस शब्द से भी आर्यनाम सिद्ध हो सक्ता है (अरीणां समूह आर्यः) अर्थात् जो शत्रुओं का समुदाय है वह आर्य है (अरीणामपत्यम्—आर्यः) अर्थात् जो शत्रुओं के सन्तान हैं वह आर्य हैं, प्रकरण में शत्रु नाम विधर्मियोंका है। दयानन्द के भक्त कहते हैं कि संकल्प में इस देश का नाम आर्यावर्त है मनुस्मृति में भी आर्यावर्त ही इस देश का नाम है, आर्यों के रहने ही से इस देश का नाम आर्यावर्त है, उस से आर्यनाम दोषी नहीं हो सकता। दयानन्द के भक्तों का यह कथन भी ठीक नहीं। क्योंकि दयानन्द की प्रतिज्ञा है कि जो कुछ वेदों में लिखा है उसी को हम मानते हैं परन्तु संहिता रूप वेदों में आर्यावर्त्त नाम का भी अत्यन्ताभाव है। यदि चतुर्वेदों में यह नाम होता, तो दयानन्द अवश्य ही सत्यार्थप्रकाशादि में उस मन्त्र को प्रकाशित कर देता, जब वेदों में आर्यावर्त्त नाम का प्रध्वंसाभाव है, तो संकल्प और मनुस्मृति में आर्यावर्त नाम का होना भी वेदों से विरुद्ध है। आर्यावर्त नाम इस देश का बतलाना वेदमत सिद्ध नहीं हो सकता। (किंच) (७ सत्या० समुल्लास ८) उस में दयानन्द का लेख है, कि आदि सृष्टि तिब्बत ही में हुई थी वहां पहिले मनुष्य ही उपजे थे, फिर आर्य अनार्य यह दो भेद हुए। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य हुआ, फिर आर्य

अनार्य दोनोंदलोंका तिब्बतमें संग्राम हो पड़ा, आर्य तिब्बत को छोड़ यहां आव से, इसी से इस देश का नाम आर्यावर्त्त हुआ । दयानन्द के भक्तों का यह कथन भी सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि तिब्बतमें आदि सृष्टि का होना किसी वेद में भी नहीं लिखा । उससे आदि सृष्टि के तिब्बत में होने का लेख वेदमत नहीं, यदि आर्यों के रहने ही से आर्य्यावर्त्त नाम हो जाता तो तिब्बत का नाम आर्य्यावर्त्त क्यों न हो गया ? (किंवा) तिब्बत में अनार्य्यों के रहनेसे तिब्बत का नाम अनार्य्यावर्त्त क्यों न हो गया (किञ्च) दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि जब तिब्बत में आर्य्यों और अनार्य्यों का परस्पर सं-ग्राम हुआ था तो आर्य यहां आवसे परन्तु अनार्य तिब्बत ही में रहे थे, अथवा वह भी यहां ही आ बसे थे ? यदि कहो कि अनार्य वहां तिब्बतही में रहते थे, तो वहां के रहने वालों का अनार्य नाम कहां चला गया ? यदि कहो कि अनार्य भी तिब्बत को छोड़ यहां ही आबसे थे, तो इस देशका नाम अनार्यावर्त्त क्यों न हुआ ? दयानन्द की इस बनावटी कथाका मन्त्रसंहिता वेदों में अत्यन्ताभाव है, उससे भी आर्य नाम निर्दोष सिद्ध नहीं हो सकता । किन्तु ऋग्वेद में इस देशका नाम (भारतीले) अर्थात् भारत भूमि है, इला नाम भूमि का निघण्टु और निरुक्त में स्पष्ट है, आर्यावर्त्त यह नाम किसी वेद में भी नहीं देखा जाता । दयानन्द के लेखों से तो आर्य्यावर्त्त नाम वेदों के विरुद्ध है, परन्तु वेदान्त से भी आर्यावर्त्त नाम वेदमूलक सिद्ध नहीं हो सकता उस से भी आर्य नाम निर्दोष नहीं है ॥ (किंच)

(य० अ० ३३ मं० ८२ ॥ यस्यायं विश्वआर्य्योदासः०)

इस वेद मन्त्र में सर्व आर्यों को राजा का दास कहा है । दास शब्द सं स्कृत है, उर्दू में दास ही का नाम गुलाम है (संस्कारविधिप्रकरण नामकर-णसंस्कार) वहां दयानन्द ने ब्राह्मण की शर्म्मा, क्षत्रिय की वर्मा वैश्य की गुप्त, और शूद्र की ही दास पदवी लिखी है । और पूर्वोक्त वेदमन्त्र में आ-र्यों को ईश्वर ने दास पदवी दी है, ईश्वर की आज्ञा वेद को यदि न मानें तो दयानन्द के भक्त नास्तिक सिद्ध होते हैं । इस सिद्धान्त को मनुजी ने प्र-काशित कर दिया है, यदि ईश्वरकी आज्ञा वेदको मानें तो आर्योंकी दास पदवी माननी पड़ेगी, उससे सर्व आर्य शूद्र सिद्ध होंगे । ब्राह्मण क्षत्रियवैश्य इन तीन वर्णोंका आर्यमतमें अत्यन्ताभाव सिद्ध होगा । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णोंको हम सूचित करते हैं कि, आर्यमतको शीघ्रही तिलाञ्जलि दे-

डालें, यदि तिलाञ्जलि न देंगे तो ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व का उनमें प्रध्वंसाभाव हो जायगा, किन्तु शूद्रत्व का ही प्रादुर्भाव रहेगा। हिन्दुकी पदवी तो किसी संस्कृत ग्रन्थ से दासरूप सिद्ध नहीं होती, किन्तु ईश्वरकी आज्ञारूप वेदप्रमाण से आर्य की दास पदवी तो अनुभव सिद्ध है, अनुभव सिद्ध बात किसी प्रकार से भी खण्डन नहीं हो सकती दास और गुलाम दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं, उस से भी आर्य शब्द निर्दोष सिद्ध नहीं हो सकता (किंच)

(मनु० अ० १० श्लो० ४५॥—मुखबाहूरुपज्जानां यालोके जातयोबहिः। म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः) (मुखेति-ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां क्रियालोपादिना या जातयो बाह्या जाता म्लेच्छभाषायुक्ता आर्यभाषोपेता वा ता दस्यवः सर्वा स्मृताः)

इस में मनुजी का वेदोक्त सिद्धान्त यह है कि ईश्वर की शक्तिरूपी मुख भुजा ऊरु पाद से उपजे जो कि ब्राह्मणादि चतुर्वर्ण हैं. उनमें जब स्व स्व वर्ण के कर्मों का अदर्शन हो गया, तो वह ब्राह्मणत्वादि जातियोंसे बाहर हो गये। किन्तु जो २ म्लेच्छ भाषा युक्त आर्यभाषाको संपादन करने लगे वह सबके सब डाकू चोर की पदवी को प्राप्त हो गये। अब सनातन हिन्दुधर्म वीरों को चाहिये कि विवेक और ज्ञान के नेत्र खोल कर विद्या की दुर्बीन से निगरानी कर लेवें कि ईश्वरकी आज्ञा वेदसे तो आर्योंको दास नाम और गुलाम नामकी उपाधि मिली, परन्तु जो मनुजी की आज्ञा है, उसमें भी आर्योंको निकृष्ट उपाधि का लाभ हुआ। ऐसे मतसे शीघ्र ही जुदा हो जाना सर्वोत्तम है, सिद्धान्त यह है कि मनुजी के प्रमाण से भी आर्यनाम निर्दोष सिद्ध नहीं हो सकता॥ (किंच)

जातोनार्यामनार्यायामार्यादार्योभवेद्गुणैः।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः॥ मनु० अ० १०। ६७

इस में मनुजी कहते हैं कि जो अनार्य स्त्री में आर्य के समागम से संतान उत्पन्न होता है वह गुण कर्मोंसे आर्य कहा जाता है। और जो आर्या स्त्री में अनार्य मनुष्य के समागम से संतान उत्पन्न होता है' वह गुण कर्मोंसे अनार्य कहाता है। इस मनुजी के कथन का सिद्धान्त यह जाना जाता है कि गुण कर्मों से विलक्षणता युक्त आर्य और अनार्य इसी भांति के सदा से चले आये, और चले जायंगे। जैसे कि मनुजी ने वर्णन कर दिये हैं (७ स-

त्या० मसुल्लास ८) (विजानीह्यार्यान्येचदस्यवः) इस के भाष्य में दयानन्द का ही लेख है कि श्रेष्ठों का नाम आर्य विद्वान् है दुष्टोंके दस्यु अर्थात् डाकू और मूर्ख नाम हैं। दयानन्दके इस लेखसे और मनुजी के श्लोकसे सिद्धान्त यह निकलता है कि डाका मारने वालों मूर्खा स्त्री में आर्य विद्वान् के समागमसे उपजा मनुष्य आर्य है। और विद्यायुक्त आर्या स्त्री में मूर्ख डाकू के समागमसे उपजा मनुष्य अनार्य है। इस पर भी हम हिन्दुओंको सूचना देते हैं कि गुणकर्मों से आर्य और अनार्य होने का जो दावा रखते हैं, उनका स्वरूप और लक्षण वही जानो जो कि मनुजी ने वर्णन किया है और दयानन्द ने उसका समर्थन कर डाला है। (मनु० अ० १० श्लो० ६८)

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मोव्यवस्थितः ।
वैगुण्याज्जन्मनःपूर्व उत्तरःप्रतिलोमतः ॥

इसमें मनुजी कहते हैं कि पूर्वोक्त उपजे गुण कर्मों से जो आर्य और अनार्य हैं उन में से एक पारशव और दूसरा प्रतिलोम है दोनों यज्ञोपवीतादि संस्कार करने के योग्य नहीं।

हम हिन्दुधर्मवीरों को चेताते हैं कि आप ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णोंमें से जिस २ का जो सन्तान है वह २ जन्महीसे ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व क्रमसे जातियुक्त है। वेद पढ़नेका भी इनको अधिकार है और यज्ञोपवीतका भी इनको अधिकार है। परन्तु मनुजीके प्रमाणसे आर्य और अनार्य इन दोनोंको किसी संस्कार का अधिकार नहीं क्योंकि वह जन्म से न तो ब्राह्मण न क्षत्रिय और न वैश्य हैं किन्तु वह पारशव और प्रतिलोम हैं। इससे ऐसे मत वालोंसे शीघ्रही जुदा हो जाइये यदि ऐसा आप न करेंगे किन्तु आर्य और अनार्यों से खाना पीना रिश्तेदारी आप करेंगे तो किसी रोज आप के गोत्र तथा वंशों का अत्यन्ताभाव हो जावेगा पारशव और प्रतिलोम पदवी को संपादन करना पड़ेगा॥

(किंच) दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि आर्यत्व जाति आर्य में हैं वा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यमें ? तथा अनार्यत्व जाति अनार्य में है वा मूर्ख शूद्र डाकू में, यदि दयानन्दके भक्त कहें कि आर्यत्व जाति आर्य में और अनार्यत्व जाति अनार्य में है सो तो ठीक है परन्तु इस मन्तव्य से आर्य लोग ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नहीं हो सकते। और अनार्य शूद्र नहीं हो सकते यदि दयानन्दके भक्त कहें कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यमें आर्यत्व जाति

और मूर्ख शूद्र डाकूमें अनार्यत्व जाति है सो सर्वथा असंगत है। क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों तथा न्याय और वेदान्तकी युक्तियोंसे सिद्ध हो चुका है कि ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व क्षत्रियमें क्षत्रियत्व वैश्यमें वैश्यत्व जाति है वैसे ही मूर्खमें मूर्खत्व शूद्रमें शूद्रत्व डाकूमें डाकुत्व जाति है। इस रीतिसे भी आर्य लोग ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नहीं हो सकते और अनार्य भी मूर्ख शूद्र डाकू सिद्ध नहीं हो सकते (किंच) दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि आर्यत्व जाति स्थूल शरीरका धर्म है वा सूक्ष्म शरीरका किंवा कारण शरीरका अथवा आर्यत्व जाति जीवात्मा का धर्म है यदि कहो कि आर्यत्व जाति जीवात्मा का धर्म है सो ठीक नहीं क्योंकि कर्मानुसार जीवात्मा एक योनि छोड़कर दूसरी योनि में चला जाता है। यदि जीवात्मा ही का धर्म आर्यत्व होता तो जिस २ योनि में कर्मानुसार जीवात्मा जाता है उन सर्व योनियों में जीवात्मा आर्य ही होना चाहिये परन्तु ऐसा न होने से जीवात्मा का धर्म आर्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता।

यदि कारण शरीरका धर्म आर्यत्व कहो तो (७ सत्या० समुल्लास ९) वहां दयानन्द-ही का लेख है कि कारण शरीर प्रकृति है वह प्रकृति सर्व जीवों का एक कारण शरीर है इस लेखके अनुसार पशुपक्षी आदि सर्व जीव आर्य होने चाहिये परन्तु ऐसा भी न होनेके कारण प्रकृति स्वरूप कारण शरीर का धर्म भी आर्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता। यदि कहो कि सूक्ष्म शरीर का धर्म आर्यत्व है सो भी ठीक नहीं क्योंकि सूक्ष्म शरीर भी जीवात्मा के साथ सदा बना रहता है और कर्मानुसार जीवात्मा की योनि बदलती है। यदि सूक्ष्म शरीर ही का आर्यत्व धर्म हो तो सर्व योनियोंमें सर्व जीव आर्य होने चाहिये।

यदि दयानन्दके भक्त कहें कि स्थूल शरीरका धर्म आर्यत्व है सो भी ठीक नहीं क्योंकि हाड़ चाम मैला मूत गन्दगी दुर्गन्ध रूप अनुभव से सिद्ध स्थूल शरीर है। ऐसे दुर्गंध गन्दगीरूप स्थूल शरीरमें भी शरीरत्व धर्म तो सिद्ध हो सकता है परन्तु गन्दगी रूप स्थूल शरीरमें आर्यत्व धर्म का सर्वथा सर्वदा अत्यन्ताभाव है। दयानन्दने आर्य शब्दका अर्थ किया है श्रेष्ठ परन्तु हाड़ चाम मैला मूत दुर्गन्ध गन्दगी रूप स्थूल शरीरको श्रेष्ठ कहना ही अविद्वानोंका तमाशा है। यदि सूक्ष्मविचार किया जावे तो श्रेष्ठहीमें श्रेष्ठत्व धर्म सिद्ध हो सकता है। श्रेष्ठमें आर्यत्व धर्मका वर्णन करनाभी बुभक्कड़ों

की कथा है। किन्तु आर्यत्व धर्म आर्यही में सिद्ध होता है उस से भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीन वर्ण आर्य सिद्ध नहीं होते।

(किंच) ऋष्यार्य्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम् ॥

यह न्याय सूत्रोंके भाष्यमें वात्स्यायन मुनि कृत भाष्यका वचनहै। प्रकरण से इसका यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि आर्य ऋषि और म्लेच्छका स्वरूप एक ही है, नाम भिन्न २ हैं (७ सत्या० समुल्लास ११) दयानन्द का लेख है कि हाय, क्यों पत्थरकी पूजाकर सत्यानाशको प्राप्त हुए। क्यों ईश्वर की भक्ति न करी जो म्लेच्छों के दान्त तोड़ डालते। यहां मुसलमानों ही को दयानन्द ने म्लेच्छ कहा है उससे भी आर्य नाम निर्दोष नहीं हो सकता। यद्यपि योग वासिष्ठ जो कि वेदान्तका ग्रन्थ है उसमें भी आर्य्य नाम आता है, तथापि वेदसे भिन्न चाहे वेदान्त का ग्रन्थ हो चाहे कोई दूसरा हो उसको वेदानुसार अंश ही में विद्वान् वेदान्ती लोग स्वीकार करते हैं। और नाम रूपको वेदान्ती मिथ्या सिद्ध करते हैं जब वेदमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णों का नाम आर्य्य सिद्ध नहीं हुआ, तो योग वासिष्ठादि ग्रन्थोक्त भी आर्य्य नाम तीन वर्णों का सिद्ध नहीं होता उससे भी आर्य्यनाम निर्दोष नहीं ॥

(किंच) (निरुक्त नैगम कां० अ० ६ पा० ५ खं० ३ ॥ पूर्वपट्क ॥ आर्य ईश्वर पुत्रो० (भा०) (आर्य्योय ईश्वर पुत्राय) इस ऋग्वेदस्थ मंत्रके निरुक्त में यास्कमुनि जी का सिद्धान्त यह है कि—आर्य्य ईश्वर का पुत्र है यहां आर्यसमाजियों से जो कि दयानन्द के भक्त हैं उन से पूछना चाहिये कि वेद सर्वके लिये है अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके लिये? यदि दयानन्द के भक्त कहैं कि वेद सर्वके लिये है तो (७ सत्या० समुल्लास ३) इसकी भी जरा निगरानी कीजिये वहां दयानन्दने (ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं०) इस ऋग्वेदके उपवेद आयुर्वेद के मंत्र के भाष्यमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णों के लिये ही वेद का पढ़ना कहा है, शूद्र के लिये वेद का पढ़ना मना किया है, वह लेख मिथ्या हो जायगा। यदि उसको सत्य कहो तो (यथेमां वाचंकल्याणी०) इस के भाष्यमें बाबा जी दयानन्दने अतिशूद्र तक को भी वेद पढ़ने की आज्ञा दी है। परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दके दोनों लेख झूठे हैं (किंच) दयानन्द का जो दूसरा लेख है कि जिसमें अतिशूद्र को भी वेद पढ़नेकी आज्ञा दी है उस लेख को आद्योपान्त देखने से दयानन्द का यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार

है। यदि इस सिद्धान्त को दयानन्द के भक्त सत्यमानें तो ईसाई कहते हैं कि ईश्वरका पुत्र ईसामसीह हुआ है, वेदमें ईश्वरने ईसामसीह का होना भी ईश्वर पुत्र रूप दर्शा दिया है। क्योंकि दयानन्दके सिद्धान्त में वेद सर्व मनुष्यों के लिये है उक्त ऋग्वेद प्रमाण और उसके निरुक्तका यही सिद्धान्त प्रकरण में निकल सकता है कि निराकार ईश्वर का पुत्र ईसामसीह ही आर्य है। जब ईसामसीह के भक्त ईसाई भी आर्य्य हैं, ब्राह्मणादि तीन वर्ण आर्य नहीं हो सकते उससे भी आर्य्य नाम निर्दोष नहीं हो सक्ता॥

यहां तक हमने युक्ति और वेदादि प्रमाणों से यह सिद्धान्त सिद्धकर दर्शा दिया है कि इस देशका नाम आर्य्यावर्त और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य का नाम आर्य वेद मत नहीं। किन्तु हम वेद में कहे ही को मानते हैं उसीसे हमारा वेद मत है, दयानन्द के इत्यादि लेखोंके अनुसार इस देश का नाम आर्य्यावर्त और ब्राह्मणादि तीन वर्णों का नाम आर्य कथन करना अथवा लिखना ऋगादि चारो मंत्रसंहिता वेदों से विरुद्ध है। मुख से हल्ला मचाना कि हमारा वेद मत है, परन्तु दयानन्द कृत ग्रन्थों के लेखों से आर्य्यमत वेदों से विरुद्ध होने पर भी उस को मानते चले जाना, यह एक धोखेका जालहै। खैर जो हो॥

अब हम हिन्दु नाम की समालोचना दर्शाते हैं (तथाहि) दयानन्द कृत भ्रान्तिनिवारण ग्रन्थ तथा सन् १८७५का सत्यार्थप्रकाश और वेद विरुद्धमत खण्डन। इत्यादि ग्रन्थों में दयानन्दने चोर, काफिर, गुलाम, काला, ये हिन्दु शब्द के अर्थ किए हैं। यहां दयानन्दके भक्तोंसे पूछना चाहिये कि दयानन्द ने हिन्दू शब्द के यह अर्थ व्याकरण के अनुसार किये हैं वा किसी कोष ग्रन्थ के अनुसार अथवा ये दयानन्द ने बनावटी अर्थ किये हैं? यदि कहो कि हिन्दु शब्द के चोर काफिर गुलाम काला यह अर्थ किसी व्याकरण वा कोष से निकाले हैं, तो दिखलाइये, वह कौन सा व्याकरण और कोष है? कि जिस से दयानन्द ने हिन्दु शब्द के चोर, काफिर गुलामादि अर्थ निकाले हैं। यदि कहो कि दयानन्द ने हिन्दु शब्द के बनावटी अर्थ किये हैं, तो दयानन्द विद्याहीन सिद्ध होगा, विद्वान् बनावटी अर्थ कभी नहीं करते॥

दयानन्द ने यों भी कहा है कि आर्य्यों का नाम मुसलमानों ने ईर्ष्या से हिन्दु रक्खा है, दयानन्द का यह कथन भी प्रमाणशून्य होने के कारण मिथ्या है। क्योंकि आज तक दयानन्द अथवा दयानन्द के भक्तों ने यह नहीं

दर्शाया कि अमुक इतिहास अथवा तवारीख में लिखा है कि मुसलमानों ने अमुक सन् में आर्य्य नाम उठा कर उस के स्थान में हिन्दु नाम रख दिया । हां दयानन्द के भक्त इतना तो कह देते हैं कि ग्यासलुगात में काफिर, चोर गुलाम इत्यादि हिन्दु के अर्थ लिखे हैं । दयानन्दका यह कथन भी लालबुझक्कड़ों की लीला है । क्योंकि ग्यासलुगात फारसी का कोष है । संस्कृत का कोष ग्यासलुगात नहीं । जो हो, ग्यासलुगात में देवता शब्द भी लिखा है और उसका अर्थ लिखा है राक्षस, परन्तु दयानन्दकृत ग्रन्थों में देवता शब्द का अर्थ है विद्वान्, अब दयानन्दके भक्त ही बतलावें कि देवता शब्द का ग्यासलुगातोक्त अर्थ मानेंगे वा दयानन्दोक्त । यदि कहो कि हम दयानन्दोक्त देवता शब्द का अर्थ मानते हैं ग्यासलुगातोक्त देवता शब्द का अर्थ व्याकरण के विरुद्ध है, इससे वह मिथ्या है तो फिर हिन्दु शब्द का अर्थ जो कि ग्यासलुगातोक्त है उस को आप सत्य कैसे मान सकेंगे ? किन्तु कभी नहीं, उसी ग्यासलुगात में राम शब्दका अर्थ लिखा है तावेदार परन्तु संस्कृत के ग्रन्थोंमें राम शब्द का अर्थ है कि जिस में योगीजन मन स्थिर करते हैं वह परमात्मा राम है । यहां भी दयानन्दके भक्त राम शब्दका अर्थ तावेदार नहीं कर सकते, क्योंकि राम शब्द वेद और व्याकरणमें भी देखा जाता है ॥

(किंच) ग्यासलुगात में आर्य का अर्थ किया है गधा, घोड़ा बान्धने का तवेला, अब दयानन्दके भक्त बतलावें, क्या ग्यासलुगातोक्त आर्य शब्द का अर्थ गधा घोड़ाका तवेला भी आपठीक मानेंगे ? यदि कहो कि ग्यासलुगातोक्त आर्यका अर्थ गधा घोड़ा का तवेला हम नहीं मानेंगे तो ग्यासलुगातोक्त हिन्दु का अर्थ काफिर चोर गुलाम कैसे मान सकेंगे ? किन्तु कभी नहीं, यदि आर्य लोग जो कि दयानन्द की लकीर के फकीर बने बैठे हैं । वह पक्षपात छोड़कर ग्यासलुगात को देखेंगे तो उनको ज्ञात हो जायगा कि ग्यासलुगात में देवता का अर्थ राक्षस और राम का अर्थ गुलाम तथा आर्य का अर्थ गधा घोड़ा का तवेला तो अवश्य ठीक लिखा है, परन्तु हिन्दु का अर्थ काफिर चोर गुलाम ग्यासलुगात में कहीं भी नहीं मिल सकेगा । ग्यासलुगात में जो हिन्दु का अर्थ लिखा है सो वक्ष्यमाण दर्शाया जाता है ग्यासलुगात के कर्त्ता कहते हैं कि हिन्दु शब्द के अन्तमें जो वाउ है उस का अर्थ किसी से ताल्लुक रखना है सिद्धान्त यह है कि संस्कृत की रीतिसे हिन्दुके अन्तमें जो उकार है उसी को ग्यासलुगात में वाउ कहा है और लिखा है कि जो हिन्दुस्थान से ताल्लुक रखे वह हिन्दु है लेकिन पारस वा-

लोंके महावरे से चोर राह लूटने वाला कहने लगे हैं । ताल्लुक ही को सं-स्कृत में सम्बन्ध कहते हैं सिद्धान्त यह है कि फारसीभाषा में हिन्दुस्थान से ताल्लुक रखने वाले का नाम हिन्दु और संस्कृतभाषा में हिन्दुस्थान से सं-बन्ध रखने वाले का नाम हिन्दु है महावरा अर्थ नहीं हो सकता, किन्तु महावरा नाम आदत का है । सिद्धान्त यह है कि ग्यासलुगातमें हिन्दु शब्द का अर्थ काफिर चोर गुलाम काला न था न है और न होनेका संभव है। विना सोचे समझे दयानन्द के भक्त ग्यासलुगात का हल्ला मचाने लग जाते हैं। सो उनकी अत्यन्त भूल है अर्बी के कोष में हिन्दु का अर्थ खालिस है जिस में कोई किसी प्रकार की मिलावट न हो उस को अर्बी में खालिस कहते हैं । कुरान में हिन्दु नाम का सर्वथा अत्यन्ताभाव है कुरान में काफिर उस को कहा है कि जो मुहम्मद साहब के कलमे पर ईमान नहीं लाता ॥

(किंच) दयानन्द के माता पिता अथवा दयानन्द के भक्तों के माता पिता हिन्दु हैं किंवा नहीं, यदि नहीं कहो तो आप मिथ्यावादी सिद्ध होंगे क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि दयानन्द के माता पिता भी हिन्दु थे, और दयानन्द के भक्तोंके माता पिता भी हिन्दु कहाते हैं । यदि दयानन्द और उसके भक्तोंके माता पिता हिन्दु ही अनुभव सिद्ध हैं, तो उन के पुत्र द-यानन्द वा दयानन्द के भक्त भी हिन्दु नाम से जुदा नहीं हो सकते। यदि न मानें किन्तु जिद्द से हिन्दु का अर्थ बनावटी काफिर चोर गुलाम ही क-हते जायंगे तो दयानन्द अथवा उसके भक्त अच्छे मनुष्यों के संतान सिद्ध नहीं हो सकेंगे । मुसलमानों की एक किताब है उस में लिखा है कि—

(चार हिन्दु दरया के मस्जिद शुदन्द। बहरेतायतराकयवोसाजिद शुदन्द)

इसमें हिन्दुस्थान के साथ ताल्लुक रखने वाले मुसलमानों को भी हि-न्दु ही वर्णन किया है । फिर क्या मुसलमान भी मुसलमानों को काफिर चोर गुलाम कहेंगे, किन्तु कभी नहीं ॥

मुसलमानों की एक और किताब है उस में कहा है कि—

हमाजौशनों तर्क बरगस्तवां । चिहगोपालोचिहखंजरेहिन्दु-वां । तेगहिन्दीवाखंजररूमीकुनद आंच इन्तजार ॥

इस में मौलवी साहिब हिन्दुओं की बहादुरी दर्शाते हैं, कि तलवार हिन्दुस्थान की और खंजर रूमदेश का मशहूर है फिर देखिये गुलिस्ताबोस्तां में शेखसादी कहते हैं कि—

: (दोहिन्दुबरायदज़ेहिन्दोस्थां यकेदुज़दवाशदयकेपासवां)

ऐसे और भी बहुत से फिकरे हैं उन सबका सिद्धान्त यही है कि एक समय चार पांच हथियार बन्द आदमियों के साथ शेखसादी हिन्दुस्थान को चले आते थे। आगे पहाड़ में से दो हिन्दु निकले वह हाथों में लम्बे २ लकड़े पकड़े हुए थे उनमें से एक ने शेखसादी और उस के साथियों से कहा कि कपड़े वगैरः सामान दे दीजिये यदि ऐसा न करोगे तो मारे जाओगे इस को सुनकर शेखसादी वगैरः ने मारे डरके हथियार फेंक दिये और कपड़े भी उतार दिये सामान आदि भी दे दिये। उसी से ऊपर लिखे फिकरोंमें शेखसादी कहते हैं कि जब दो हिन्दू हिन्दुस्तान के बाहर आते हैं तो उन में एक लूटने वाला और एक रक्षा करने वाला होता है सभी एकसे नहीं हो सकते सिद्धान्त यह है कि पूर्वोक्त मुसलमानोंकी किताबों के प्रमाणों से भी हिन्दू नाम सर्वथा निर्दोष है।

(किंच) दयानन्दके भक्तों से पूछना चाहिये कि मुसलमानोंके मत को चलानेवाले मुहम्मद साहिब थे अथवा कोई दूसरे थे? यदि कहो कि मुसलमानों का मत चलाने वाले कोई दूसरे थे तो आप मिथ्यावादी होंगे। क्योंकि मुसलमानों के मत की रीति से कुरान खुदा की ओरसे-मुहम्मद साहिब ही को प्राप्त हुआ है दूसरे किसीको नहीं। कुरानपर ही मुसलमानोंका ईमान है। (३ सत्या० समुल्लास १४) दयानन्दका लेख है कि मुहम्मदी मत चलेको १३ सौ वर्ष गुजरे हैं परन्तु हिन्दु नाम मुहम्मद साहिब से पहिले का चला आता है देखिये फारसी लोगोंकी एक किताब है उसका नाम दसातीर है। फारसी वाले लोग कहते हैं कि वह दसातीर किताब ईश्वरकी ओर से आई है इस बातको साढ़े चार हजार वर्ष गुजरे हैं (अकनुबिरहमणे व्यासनामज हिन्दआयद) इत्यादि फिकरे उस दसातीर किताबमें लिखे हैं। उन फिकरों का सारांश यह है कि बलखके बादशाहने इश्तिहार जारी किया था कि व्यास नाम ब्राह्मण हिन्दुस्तानमें पैदा हुआ है। उसके सदृश इस समय जमीन भर में दूसरा कोई पण्डित नहीं है। बलखके बादशाह ने व्यास जी को बुलाया और व्यासजी से पूछा कि आप कौन और कहांके रहनेवाले हैं? व्यासजी ने कहा कि मैं हिन्दु हूं और हिन्दुस्तानका रहनेवाला हूं। इस दसातीर किताबके प्रमाण से जब सिद्ध हो चुका कि साढ़े चार हजार वर्ष से भी पहिले हिन्दु नामका प्रचार था और दयानन्दही के लेखसे सिद्ध हो चुका है

कि मुसलमानों का मत चले को कुल १३ सौ वर्ष हो गुजरे हैं उस से दयानन्द ने जो भ्रान्तिनिवारण वेदविरुद्धमतखण्डन तथा सन् १८७५ का सत्यार्थ-प्रकाश इन ग्रन्थोंमें लिखा है कि हिन्दु नाम मुसलमानोंने रक्खा है और हिन्दुका अर्थ काफिर चोर गुलाम है यह दयानन्द के लेख सर्वथा लोक वंचनार्थ मिथ्या हैं।

हिन्दु धर्मवीरोंको चाहिये कि विना सोचे समझे ऐसे मिथ्या लेखों को कभी न मानें। आजतक किसी विद्वान्ने नहीं कहा कि हिन्दु नाम मुसलमानोंने रक्खा है। और उसका अर्थ काफिर चोर गुलाम है तो क्या दयानन्दही को निराकार की ओर से ऐसा इलहाम हो गया है किन्तु कभी नहीं। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि चार वेदोंमें कहीं हिन्दु नाम नहीं देखा जाता हम वेदमें लिखेको मानते हैं जो बात वेदोंमें नहीं लिखी वह बात वेदोंसे विरुद्ध है उससे हिन्दु नामभी वेदोंसे विरुद्ध है। दयानन्द के भक्तों का यह कथन भी सर्वथा असंगत है। क्योंकि मंत्र संहिता चार वेदों में सच्चिदानन्द, न्यायकारी, सर्वशक्तिमान्, निराकार, निर्विकार, निराधार, इत्यादि ईश्वर के नामों का भी अत्यन्ताभाव है उससे दयानन्द के भक्तों को चाहिये कि ईश्वरके सच्चिदानन्दादि इस प्रकारके नामोंका भी हल्ला न मचाया करे, क्योंकि वेदमें ज्योंके त्यों न होनेके कारण सच्चिदानन्दादि ईश्वर के नाम वेदोंसे विरुद्ध हैं किन्तु जैसे मंत्र संहिताओंमें ईश्वर के सच्चिदानन्दादि नाम नहीं भी हैं तो भी स्तुति प्रार्थना उपासना के समय दयानन्द के भक्त ईश्वर के सच्चिदानन्दादि नामों का हल्ला मचाने लग जाते हैं वैसे हो मंत्र संहिता वेदोंमें हिन्दु नाम नहीं तो भी आगे जिन संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाण दिये जांयगे उनसे हिन्दु शब्द सनातनसे चला आता है यह सिद्ध होगा। दयानन्दके भक्त कहते हैं कि सिन्धु शब्दको फारसी वाले हिन्दु बोलने लगे हैं क्योंकि फारसीमें स के स्थान में ह बोला जाता है। जैसे कि फारसी वाले सप्त का हफ़्त बोलते हैं वैसे ही सिन्धु को हिन्दु बोलने लगे हैं। दयानन्द के भक्तों का यह कथन भी अज्ञान मूलक है, क्योंकि फ़ारसी में से स्वाद, सीन, यह तीन अक्षर जब न होते तब तो सिन्धु का हिन्दु बोलने की आवश्यकता थी परन्तु फारसी में जब से स्वाद सीन यह तीन अक्षर विद्यमान देखे जाते हैं तो सिन्धु का हिन्दु बोलनेकी कुछभी आवश्यकता सिद्ध नहीं हो सकती इस्से शब्द फारसी भा-

पाका है वह सका अपभ्रंश सिद्ध नहीं हो सकता। यदि स का ह बोलनेसे हिन्दु हो जाता तो फारसीका फारही क्यों न हो गया, आसमानका आह-मान क्यों न हो गया, रसूलका रहूल क्यों न हो गया, सुलेमानका हुलेमान क्यों न हो गया, ईसामसीहका ईहामहीह क्यों न हो गया, मूसापैगंबर का मूहापैगंबर क्यों न हो गया, सुलहनामाका हुलहनामा क्यों न होगया, तसवी का तहवी क्यों नहो गया, हदीसका हदीह क्यों न हो गया, क्यास का क्याह क्यों न हो गया, सूरतका हूरत, संस्कारविधि का हंसकारविधि सामवेद का हामवेद, सींगका हींग, सत्यार्थप्रकाश का हत्यार्थप्रकाश, सरस्वती का ह-रहूती, क्यों न हो गया? अभिप्राय यह है कि हिन्दु शब्द सिन्धुसे नहीं नि-कला, किन्तु हिन्दु शब्द शुद्ध संस्कृत है यह आगे कहेंगे। सिन्धु शब्दमें जो धकार है वह भी दकार नहीं हो सकता, न मानें तो धर्म का दर्म, धोखेका दोखा, धरतिका दरति, धूलिका दूलि, धक्का का दक्का, ध्वजा का द्वजा, धन का दन, ध्यान का द्यान, हो जाना चाहिये। परन्तु ऐसे न होने के कारण भी सिन्धु शब्द बिगड़ के हिन्दु नहीं हो सकता॥

दयानन्दके भक्त कहते हैं कि असल शब्द इन्दु है, इन्दु नाम चन्द्रमा का है, यह देश इन्दु वंशी नाम चन्द्रवंशी क्षत्रिय राजाओंका है। विद्या न होनेके कारण, इन्दु का हिन्दु बोलने लग पड़े, दयानन्द के भक्तों का यह कथन भी असङ्गत है। क्योंकि जब इन्दु का हिन्दु हो जाता तो इन्द्र का हिन्द्र हो जाना चाहिये, ईश्वरका हीश्वर हो जाना चाहिये, एक का हेक, इष्ट का हिष्ट, ईले का हीले, एकता का हेकता, इल्म का हिल्म; माई का माही, दाई का दाही, धाई का धाही, नाई का नाही भाईका भाही; राई का राही, इमली का हिमली, हो जाना चाहिये। परन्तु ऐसे न होने के कारण इ का हि भी कभी नहीं हो सकता। उस से भी इन्दु का हिन्दु न कभी था न है और न कभी होने का संभव है॥

यदि मुसलमान ही आर्य्य नाम की बदली पर हिन्दुनाम रख देते, तो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र नाम की बदली पर दूसरे नाम क्यों न रख दिये। चीन में मुसलमानों का राज्य नहीं हुआ था वह कैसे हिन्दु कहाते रहे। जैसे बंगाल में रहनेसे बंगाली, पंजाब में रहने से पंजाबी, पारस देशमें रहने से पारसी, जर्मन में रहनेसे जर्मनी, इंगलैंड में रहनेसे अंगरेज कहाते हैं वैसे ही हिन्दोस्थान में रहने से हिन्दु कहाते हैं॥

अब व्याकरण की रीतिसे हिन्दुनाम दर्शाया जाता है। (हिंसि हिंसायाम्) इस धातु से हिन्दु शब्द बनता है (हिनस्तीतिहिन्) हिंसि धातु का हिन् हो जाता है। (यद्यपि दैप शोधने) (देङ् रक्षणे) इत्यादि धातुओं के मिलाने से भी हिन्दु शब्द हो सकता है तथापि प्रकरण में हिन्के साथ (दो अवखण्डने) इस धातु के मिला देनेसे (आतोलोप इटिच) (आदेच उपदेशे शिति) इत्यादि अष्टाध्यायी के सूत्रों से और (नयापदान्तस्य झलि) इत्यादि प्रमाणों से हिन्दु शब्द अत्यन्त सुगमता से सिद्ध हो सकता है॥

(हिन् दो-कु) इसका (हिंसन्ति ते हिंसः तान् द्यति खण्डयतीति हिन्दुः) (हिन्दुः-हिन्दू हिन्दवः)

इस प्रकार से समास और प्रयोग होता है उस का सिद्धान्त यह है कि जो हिंसा का खण्डन करने वाला है वह हिन्दु है॥

अहिंसा—सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः। योग० पा० २। सू० ३

इस व्यास वचनका सिद्धान्त यह है कि सब तरहसे सर्व काल में किसी जीव के साथ वैर न रखना वही अहिंसा है॥ (अनुव्रतः पितुः पुत्रो०) (समानोमंत्रःसमितिः०) इत्यादि वेद मंत्रोंमें भी वैरका त्याग ही कहा है उससे हिन्दुमत वेदोक्त है॥

अघ्न्याः०। या यजमानस्य पशून्पाहि०।

इत्यादि वेद मंत्रों में जगत् कर्ता ईश्वर ने भी अहिंसा धर्म का वर्णन किया है, उस से वेद का कर्ता ईश्वर भी हिन्दु है। (अहिंसापरमोधर्म्मः०) इत्यादि महाभारतस्थ व्यास वचन भी अहिंसा का प्रतिपादक है उससे व्यास जी भी हिन्दु थे। (अहिंसासत्यमस्तेयं०) इत्यादि योगदर्शन में पतंजलि मुनि जी ने भी अहिंसा का प्रतिपादन किया है उससे योग शास्त्र के कर्त्ता पतंजलि जी भी हिन्दु थे। मनुस्मृतिस्थ श्लोकमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों के लिये अहिंसा धर्म्म का संपादन करना कहा है उससे मनुस्मृति के कर्ता मनु जी भी हिन्दु थे॥

ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों का धर्म्म हिंसा का खण्डन करना है उस से तीनों वर्ण भी हिन्दु हैं॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।

निरपेक्षो निरामिषः।

इत्यादि मनुस्मृति के वचनों से संन्यासी के लिये भी, अहिंसा धर्म्मका संपादन कहा है उससे संन्यासी हिन्दू हैं। (वर्जयेन्मधुमांसंच०) इत्यादि वाक्यों से ब्रह्मचारी के लिये अहिंसा धर्म मनुजी ने वर्णन किया है। मनुस्मृतिस्थ पंच यज्ञों के प्रकरण में गृहस्थाश्रम के लिये भी हिंसा का खण्डन करना करा है। उससे ब्रह्मचारी और गृहस्थाश्रमी भी हिन्दु हैं। (मृगयाक्षादिवा०) इत्यादि मनुवाक्यों में राजाके लिये भी हिंसा का खण्डन करना कहा है। उससे राजा भी हिन्दु है (अलरहीम०) इत्यादि वाक्यों में खुदा भी हिंसा का खण्डन करनेवाला है। उससे खुदा भी हिन्दु है (जावउलबकर०) इत्यादि वचनों से मुहम्मद साहिब भी हिंसा के खण्डन करनेवाले हैं उससे मुहम्मद साहिब भी हिन्दु थे॥

(आईन अकबरी और आलमगीरी किताबमें भी अहिंसा का संपादन कहा है) उससे अकबर और आलमगीर बादशाह भी हिन्दु थे।

मत दिल दुखा इक मोर का। कर याद अंधेरी गोरका॥

इत्यादि वाक्योंमें भी हिंसाका खण्डन कर डाला है। खुतवा पढ़ने के समय इस का पाठ मुसलमान करते हैं, उस से खुतवा पढ़नेवाले मुसलमान भी हिन्दु हैं। (मेयाजार मोरे किदाना कशस्त०) इत्यादि शेख सादी के वाक्यों में अहिंसा का वर्णन किया है उस से शेखसादी भी हिन्दु थे (तूं हत्या न कर०) इत्यादि दश हुक्मों में हिंसा का खंडन कर डाला है. उससे ईसामसीह भी हिन्दु थे। (रूम की पत्री बाब १४) उस में ईसा का खुदा कहता है कि मांस शराबको न खाओ पीयो। इस प्रमाणसे ईसाका खुदा भी हिन्दु सिद्ध हो चुका। क्योंकि इञ्जील में उसने हिंसा का खण्डन किया है। इस समय बिलायतमें लाखों अंग्रेज हिंसा का खण्डन करते हैं उस से वह अंग्रेज भी सब हिन्दु हैं। जैनमत में सर्वथा हिंसाका खण्डन किया है। उससे चीन जापान भारतवर्ष के जैन भी सब हिन्दु हैं॥

यद्यपि आर्य्यमत के ग्रन्थों में हिंसा का करना भी कहा है तथापि हिंसा का खण्डन भी वहां लिखा है हिंसा के खण्डनांश से आर्य्यमत वाले भी नर नारी हिन्दु हैं।

पकड़ जीव आनिया देह बिनाशी माटी को बिसमिलकिया।
ज्योतिःस्वरूप अनाहत लागी कहु हलाल किया किया॥

इत्यादि कबीर जी के भजनों में हिंसाका खण्डन किया है। उससे कबीर जी भी हिन्दु थे। कहां तक कहें व्याकरण वेदांगके अनुसार हिन्दु शब्द का अर्थ करने से जाना जाता है कि पूर्व समय अथवा इस समय सब भारत वासी नर नारी हिन्दु थे वा हैं। हिन्दुओं में से निकल २ अनेक मत खड़े हो गये और होते जाते हैं, उससे यही सिद्ध होता है कि हिन्दु मत का चलानेवाला कोई जीव नहीं। किन्तु हिन्दुमत वेदोक्त ईश्वर का चलाया हुआ है, हिन्दुमत से भिन्न जितने मत देखे और सुने जाते हैं। उनके चलाने वाले जीवों के नाम अनुभव सिद्ध हैं, अनुभव सिद्ध बात किसी भी युक्ति और प्रमाण से खण्डन नहीं हो सकती ॥

दयानन्द के भक्त कहते हैं कि हिन्दु नामके सनातन होने में किसी संस्कृत ग्रन्थका प्रमाण नहीं मिल सकता। दयानन्द के भक्तोंकी यह शंका भी असङ्गत है। क्योंकि वक्ष्यमाण रीति से हिन्दु नाम के सनातन होने में संस्कृत ग्रन्थोंके भी अनेक प्रमाण मिल सकते हैं धातु प्रत्ययसे व्याकरण वेदाङ्गानुसार तो पूर्व हिन्दु नाम को हमने सनातन सिद्ध कर दर्शा दिया, अब प्रमाण लिखे जाते हैं ॥ (तथाहि)—

हिन्दुधर्म्मप्रलोप्तारो जायन्तेचक्रवर्त्तिनः ।
हीनञ्चदूषयत्येव हिन्दुरित्युच्यतेप्रिये ॥

यह मेरुतन्त्र के तेईसवें प्रकाश का श्लोक है। इस श्लोक में भी हिंसा के खण्डन करनेवाले को हिन्दु कहा है मेरुतन्त्र लाखों वर्षों से बना चला आता है हिन्दु शब्द के समर्थन करने में और भी अनेक श्लोक मेरुतन्त्र में हैं। जिस दयानन्दके भक्त को उत्कट जिज्ञासा हो वह वहां देख कर सन्देह नष्ट कर लेवे ॥

हिन्दुर्दुष्टनहःप्रोक्तोऽनार्य्यनीतिविदूषकः ।
सद्धर्म्मपालकोविद्वान् श्रौतधर्म्मपरायणः ॥

इत्यादि रामकोष के श्लोक हैं उनका भी यह सिद्धान्त है कि जो दुष्टों को दण्ड देनेवाला और जो अनार्य्य लोगोंकी नाम तो नीति परन्तु वस्तुतः अनीति है। उसका खण्डन करनेवाला और जो वेदोक्त सनातनधर्मकी रक्षा करनेवाला पूर्ण विद्वान् वेदोक्त धर्म्मरक्षा में तत्पर है वही हिन्दु है। सिद्धान्त यह है कि वेदोक्त अहिंसा रत्न से जो हिंसा को खण्डन करने वाला है वही हिन्दु है ॥

इत्यादि और भी हेमन्त कविकृत कोष अद्भुत कोष पारिजात हरण नाटकादि संस्कृत ग्रन्थों के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि जिन का यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि हिन्दु शब्द संस्कृत और सनातन है (जगे धर्म हिन्दु तुरकन दुन्द भाजे) इस गुरुगोविन्द सिंह जी के प्रमाण से भी हिन्दु शब्द सनातन सिद्ध होता है। (सुन्नत किए तुरक जो होयगा, औरत का क्या करिए। अर्धशरीरी नारि न छोड़े ताते हिन्दु हो रहिये ॥ यह गुरुग्रन्थ- साहिब में कबीर भक्त जी का वचन है ॥

फौजी मुल्ला करैं सलाम। इन हिन्दु मेरा मान लिया मान ॥

यह ग्रन्थसाहिब में नामदेव जी भक्त का वर्णन है ॥

हिन्दु सोला ही सालाह, दर्शनरूप अपार। तीर्थ नावें अर्चा पूजा अगर वास वहकार॥ योगी सुन ध्यावन जेते, अलख नाम करतार। सूक्ष्ममूर्ति नाम निरञ्जन काया को आकार ॥

इत्यादि गुरुग्रन्थसाहिब में गुरू नानक जी के वाक्य हैं। हिन्दु शब्द के सनातन और संस्कृत होनेमें और भी बहुत से प्रमाण हैं। इससे दयानन्द वा उन के भक्तों के मिथ्या वाक्य सुनकर हिन्दु नाम को कभी न छोड़ना चाहिये। सभा का नाम सनातनहिन्दुधर्मसभा रखना चाहिये। दयानन्द के भक्त कहते हैं कि जो ईसाई वा मुसलमान हो गया हो उसको फिर अपने में हिन्दु मिला सकते हैं वा नहीं? तो उत्तर यह है कि हिन्दु नाम तो कौम का है जो हिन्दुओं में से भूलकर मुसलमान ईसाई हो गया हो, वह हिन्दु कौम में आ सकता है और हिन्दु नाम भी कहा सकता है। परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र वह नहीं हो सकता। और न वह चार वर्णों के साथ खाना खा सकता है न रिश्तेदारी कर सकता है। जन्मका मुसलमान ईसाई भी हिन्दु कौम में आकर हिन्दु कहा सकता है, परन्तु चार वर्णों में रिश्तेदारी वा खाना नहीं खा सकता, क्योंकि उन के शरीर गाय बैल के मांस के परमाणुओं से भरे हैं। इस व्याख्यान में हमने हिन्दु नाम को निर्दोष, और आर्य नाम को दोषी सिद्ध कर दिया ॥

ओ३म् शान्तिः ३ ॥

जीवदया प्रकाशमञ्जरी—

व्याख्यान नं० १२

सर्व साधारण हिन्दुधर्म वीरों को प्रकाशित किया जाता है कि–इस व्याख्यान में सर्व जीवों की रक्षा का सिद्धान्त दर्शाया जायगा। प्रथम दयानन्दोक्त जीव दया विषयक दरोगहलफी के लेख दर्शाये जाते हैं॥

जैसे कि (सन् १८७५) का छपा पहिली आवृत्तिका (सत्या० पृ० १४८ पं० १४ में दयानन्द का लेख है कि मांस का पिण्ड देने से संसार का बड़ा उपकार होता है, पाप कुछ भी नहीं होता, उसी की (पृ० ४५ पं० १०) दयानन्दका लेख है कि वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा है कि होम में मांस को भी डाले। (२ सत्या० आवृत्ति ७ समुल्लास १०) वहां भी दयानन्दके लेख ही से मांस का खाना गो रक्षा के व्याख्यान में हम दर्शा चुके हैं। फिर इन लेखों के विरुद्ध (२ सत्या० आवृत्ति ७ समुल्लास ११) उस में दयानन्द का लेख है कि मांस खाना वाममार्गियों का मत है, उस से मांस को न खाना चाहिये, अब विचारना चाहिये कि कहीं मांस का खाना और कहीं मांसका न खाना लिखनेसे पूर्वापर विरुद्ध दयानन्दकी झूठी दरोगहलफी है। (२ सत्या० आवृत्ति ७ समुल्लास १३) उसकी समाप्ति में दयानन्द ने दरोगहलफी का लक्षण भी कर दिया है। उसी समुल्लासमें दयानन्दने लिख दिया है कि–जो आप झूठा और दूसरे को झूठ पर चलावे उस को शैतान कहना चाहिये खैर जो हो॥

अब वेदोक्त सनातन हिन्दु धर्म की रीति से जीव दया का वर्णन किया जाता है॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णोगर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्रायसूकरः० (य० अ० २४ मं० ४०)

इस वेद मंत्र में गैंडा कुत्ता गधा सूअर इन जीवों की रक्षा का वर्णन है॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः० कपोत उलूकः० (य० अ० २४ मं० ३८)

इस मंत्र में मूसा कबूतर और उल्लू इत्यादि जीवोंकी रक्षा लिखी हैं॥

अन्यवापोऽर्द्धमासानामृश्योमयूरः० (य० अ० २४ मं० ३७)

इस मंत्र में मोर आदि जीवों की रक्षा का वर्णन है॥

आरण्योऽजोनकुलः० (य० अ० २४ मं० ३२)

इस मंत्रमें जंगलमें रहने वाले निवला आदि जीवोंकी रक्षाका कथन है।

हस्तिन आलभते । औत्रायभृङ्गाः० (य० अ० २४ मं० २९)

इस मंत्र में हाथी भ्रमरादि जीवोंकी रक्षा लिखी है । इत्यादि वेद में और भी जीवदया विषयक अनेक मंत्र हैं । यहां संक्षेप से दर्शाये हैं ॥

योयस्यमांसमश्नाति सतन्मांसाद उच्यते । मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् ॥ (योयस्येति) योयदीयं मांसं खादति स तन्मांसादएव परं व्यपदिश्यते । यथा मार्जारो मूषिकादः । मत्स्यादः पुनः सर्वमांसभक्षकत्वेन व्यपदेष्टुं योग्यस्तस्मान्मत्स्यान्न खादेत् ॥ (मनु० अ० ५ श्लो० १५)

इसमें मनुजी कहते हैं कि जो जिसका मांस खाता है, वह उसका मांस खाने वाला कहाता है । मच्छी सर्प मनुष्य पशु पक्षी आदिका मांस खा लेती है। जिसने मच्छीका मांस खाया वह सर्व मनुष्य पशु पक्षी आदिका मांस खा चुका उस से मच्छी के मांस का खाना सर्वथा सर्वदा छोड़ देना उचित है ॥

यावन्तिपशुरोमाणि तावत्कृत्वोहमारणम् । वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्यजन्मनि जन्मनि ॥ (यावन्तीति) आत्मार्थं यः पशून्हन्ति स वृथा पशुघ्नो मृतः सन् यावत्संख्यानि पशुरोमाणि तावत्संख्याभूतं जन्मनि जन्मनि मारणं प्राप्नोति तस्माद् वृथा पशुं न हन्यात् । तावत्कृत्व इति वत्वन्तात्क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् प्रत्ययः । इह ह शब्द आगमप्रसिद्धिसूचनार्थः ॥ (मनु० अ० ५ श्लो० ३८)

इस में मनु जी कहते हैं कि जो विना अपराध के पशु को मारता है ईश्वर की न्याय व्यवस्था से उस का उतनी ही वार गला काटा जाता है कि जितने पशु के रोम होते हैं । उस से भी जीव हिंसाको सर्वथा छोड़देना ही उचित है । सुना जाता है कि एक सधना नाम कसाई था वह वकरे मार २ मांस की दूकान करता था, एक रोज वह वकरे के अण्डकोशोंको काटने लगा तो वह वकरा जैसे मनुष्य हंसता है वैसे हंसने लग पड़ा, सधना ने उस से हंसने का कारण पूछा उसने उत्तर दिया कि एक जन्म में मैं वकरे की योनि

में जाता था तो तू मेरा गला काटता था दूसरे जन्ममें तू बकरेकी योनिमें जाता था तो मैं तेरा गला करता करता था सहस्रों जन्म ऐसे ही व्यतीत होगए बराबर पलटा लेते थे। अब तू नवीन रीति चलाने लगा, उस से मैं हंसा हूं कि दूसरे जन्म में तेरे अण्डकोश काटनेका मुझे भी अवकाश मिलेगा। इस को सुनकर सधना कसाई ने जीव हिंसा को सर्वथा छोड़ दिया॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्ताचोपहर्त्ताच खादकश्चेति घातकाः॥ (अनुमन्तेति) यदनुमतिव्यतिरेकेण हननं कर्त्तुं न शक्यते सोऽनुमन्ता, विशसिता अङ्गानि यः कर्त्तर्यादिना पृथक्पृथक् करोति, निहन्ता—मारयिता, क्रयविक्रयी मांसस्य क्रेता विक्रेता च संस्कर्ता पाचकः, उपहर्त्ता—परिवेषकः, खादकोभक्षयिता॥ (मनु० अ० ५ श्लो० ५१)

इस में मनुजी कहते हैं कि मांस खानेकी सम्मति देने वाला १। मांस के लिये पशुको मारनेकी आज्ञा देने वाला २। पशुको मारने वाला ३। मांस के बेंचने वाला ४। मांस मोल लेने वाला ५। हांडी में मांस को पकाने वाला ६। खाने के लिये देने वाला ७। मांस को खाने वाला ८। यह आठों ही पापात्मा हिंसक हैं उस से भी जीव हिंसाका करना ठीक नहीं॥

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानांचभोजनैः। नतत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात्॥ (फलमूलाशनैरिति) पवित्रस्य फलमूलभक्षणैर्वानप्रस्थभोजनानां नीवाराद्यन्नानां भोजनैर्नतत्फलमवाप्नोति यच्छास्त्रनियमिताप्रतिषिद्धमांसवर्जनाल्लभते॥ (मनु० अ० ५ श्लो ५४)

इस में मनुजी कहते हैं कि जो द्विज वानप्रस्थाश्रम करते हैं, और क्षुधा निवृत्ति के अर्थ वह वनमें फल फूल पत्ती खाकर तितिक्षारूपी फलको संपादन करते हैं। उनको भी उस फल का लाभ नहीं होता कि जिस फलका लाभ मांस का खाना छोड़ देने वाले को होता है। उससे भी जीवों पर दया का करना ही सर्वोत्तम कर्म है॥

मांसभक्षयितामुत्र यस्यमांसमिहाद्म्यहम्। एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ (मांसभक्षयितेति)—इह लोके यस्य मांसमहमश्नामि स परलोके ममापि मांसंभक्षयिष्यतीति एतन्मांसशब्दस्य निरुक्तिं पण्डिताः प्रवदन्ति॥ (मनु० अ० ५ श्लो० ५५)

इसमें मनुजी कहते हैं कि कि मांसाहारी विचारे कि इस लोकमें जिस का मांस मैं भक्षण करता हूं परलोकमें वह मेरे मांसको भक्षण करेगा यही मांस शब्दका अर्थ पण्डित लोग वर्णन करते हैं ॥

वादी कहते हैं कि मनुजी ने बहुतसे श्लोकोंमें मांस खानेका वर्णन भी किया है, तो उत्तर यह है कि मनुजीने वहां पर परिसंख्या विधिकी रीति दर्शाई है जैसे किसीका पुत्र मिट्टी खाता है और माता उसको रोकती है, परन्तु वह रुकता नहीं, तो माता उससे कहती है कि गङ्गाजी की मिट्टी अच्छी है और उसे खाओ, इसको सुन कर लड़का दूसरी मिट्टीका खाना छोड़ देता है और गङ्गाजीकी मिट्टी मिलती नहीं, यहां जैसे माताका सिद्धान्त गङ्गा जी की मिट्टी खिलानेका नहीं, किन्तु पुत्रको दूसरी मिट्टी खानेसे हटाने का है। वैसे ही मनुस्मृतिमें जहां मांसकी विधि देखी जाती है, वहां मनुजीका सिद्धान्त मांसके खिलानेमें नहीं, किन्तु दूसरे पशुओं के मांस खाने से हटानेमें मनुजीका सिद्धान्त है। इसीका पूर्वमीमांसामें परिसंख्या विधि नाम से वर्णन किया है किसीका पुत्र शत्रुके गृहमें जाने लगा तो उसका पिता कहता है कि (विषंभुङ्क्ष्व) इस वाक्यकी शक्ति वृत्तिसे तो विष भोजनका इतना अर्थ ही भान होता है। परन्तु पिताका सिद्धान्त पुत्रको विष खिलानेका नहीं, किन्तु शत्रु गृहसे पुत्रको रोकने में पिताका तात्पर्य है, उस से उक्त वाक्यका व्यंजनावृत्तिसे व्यङ्ग्यार्थ ही सिद्ध होता है, वैसे ही विधिवाक्योंमें मनुजी का तात्पर्य भी मांस खानेसे हटानेका है। (किंच)

प्रवृत्तिरेषाभूतानां निवृत्तिस्तुमहाफला ॥

मनु० अ० ५ श्लो० ५६)

इसमें मनुजी कहते हैं कि मांस मदिरा के खाने पीनेमें मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति हो रही है जो इनको छोड़ देना है सो सर्वोत्तम फलकी प्राप्ति का कारण है ॥

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

इस योगसूत्र में प्रथम अहिंसा धर्म्म ही को कहा है ॥

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः ।

इस व्यासकृत भाष्यमें अहिंसा धर्म ही को सर्वोत्तम कहा है। (अहिंसा परमोधर्म्मः) इस महाभारतके वचन में भी अहिंसा ही को परम धर्म

वर्णन किया है। (न हिंस्यात् सर्वभूतानि) इस छान्दोग्योपनिषद्की श्रुति में हिंसाका निषेध तथा अहिंसा धर्म कहा है ॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलंपिबेत् ।

इसमें मनुजी ने कहा है कि जब चले तो पृथिवी की ओर देख २ चले कि जिससे कोई जीव पैरके नीचे दब कर न मर जावे, जब पानी पीवे तो छान कर पीवे कि जिससे कोई जीव पेटके भीतर न चला जावे ॥

नतृष्णायाःपरोव्याधिर्नचधर्मोदयापरः ।

इसमें चाणक्यमुनिजी कहते हैं कि तृष्णाके सदृश दूसरी बीमारी कोई नहीं और दयाके सदृश दूसरा धर्म कोई नहीं। (मांसाहारी पिशाचःस्यात्०) यह गरुड़पुराणका वाक्य है इसमें व्यासजी कहते हैं कि जो मांस खाता है वह पिशाचकी योनिमें जाता है। इत्यादि और भी हिन्दुमतके ग्रन्थों में अनेक प्रमाण हैं कि जिससे जीवोंको न मारना अहिंसा धर्म ही सर्वोत्तम कहा है ॥

अब मुसलमानोंके मतकी रीतिसे अहिंसाधर्मको दर्शाया जाता है। जैसे कि

आहिस्ता खिराम बल्कि मखिराम जेरे कदमत हजार दानास्त

यह आलमगीरी किताबका प्रमाण है इसमें आलमगीर बादशाह अपने लड़केसे कहते हैं कि धीरे २ चलो बल्कि चलो ही नहीं क्योंकि हजारों जानवर मरते हैं तुम्हारे कदम के नीचे आकर ॥

(फिर दोसो शाहनामा) आमद फरेन्दू बजाये नशस्त । हमागुर्जगाओ ओपेकरबदस्त)

इसका सिद्धान्त यह है कि फरेन्दु बादशाह गायकी शकलवाला गुर्ज हाथ में लेकर बैठने की जगह पर आया ॥

(शेखसादी०) गरवे हुनर बमाज कुनद फकरे बरह कौम । कुनेखरश शुमार गरगाओ अंबर अस्त)

इसका यह अभिप्राय है कि गरवे हुनर मालके सबब दगा पर फखर करे तो उसे गधाकी लीद जानो गर वह गाय अम्बर है ॥

(गमें जेरदस्तां बखुरजींनहार । बतरसज जबरदस्तिये रोजगार)

इस का अभिप्राय यह है कि—आजज़ों पर गम खाइ और ज़माने की जबरदस्ती से डर ॥

(मेहाज़ोरमन्दी मकुन बर के हाँ । कि बरयक निमतमो नमानद जहां)

इस का सिद्धान्त यह है कि ऐ बड़े लोगो ! छोटोंको न दबाओ क्योंकि जहान एकसी हालियत पर नहीं रहता ॥

(हुमाय बरहमे मुरगां अजा शर्फदारद। कि उसत खुवां खुरद बतायरे नियाजारद)

इस का तात्पर्य यह है कि सर्व जानवरोंमें से एक हुमा जानवर को यही बुजुर्गी है कि वो हड्डी खाती है और किसी जानवर को नहीं सताती ॥

(बहमबरमकुनतात बानीगिले । कि आहेजहानेबहमबरकुनद)

इस का सिद्धान्त यह है कि जहां तक हो सके किसी जीव को न सता क्योंकि एक आह एक जहान को परेशान कर देती है ॥

(मेयाज़ारमोरेकिदानाकशस्त । किजांदारदोजांशीरीकशस्त)

इस का सिद्धान्त यह है कि एक चींटी को भी न सता, क्योंकि वह जान को रखती और दाने को खींचती है ॥

मेयाजारतामीतवानीकसे । किपुरजोरतस्अजतोदीदमबसे ।
बराबरदगेतीअजेशांदिमार चरीदन्ददरमगजशांमोरमार ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि अपने मकदूर भर किसीको न सता कि तुझ से ज़बरदस्त मैंने बहुत से देखे हैं । दुनियां ने उनको हलाक किया उनके मगज़ को चींटी और सांप खा गये । इत्यादि और भी मुसलमानोंके मतकी किताबोंके अनेक प्रमाण हैं कि जिनसे सर्व जीवोंकी रक्षा सिद्ध होती है ॥

ईसाई मत में भी जीव दया अनेक स्थान में वर्णन करी है । जैसे कि ईसाई मत के १० हुकमों में से ४ हुकममें लिखा है कि तूं हत्या न कर। (रूम की पत्री बाब १४) उसमें लिखा है कि खुदा कहता है कि मेरे बनाये काम को तुम न बिगाड़ो । जिससे तुम्हारा भाई ठोकर खाय वह काम न करो मांस और शराब का खाना पीना अच्छा नहीं । उससे मांस और शराबको न खाओ पीओ (मत्ती की इञ्जील) उस में लिखा है कि ईसा के एक चेले पिटर थे वह भूखे थे उन को नीन्द आगई स्वप्न में देखा कि आकाश परसे

एक चद्दर नीचे उतरी है, उसमें दुनियां भरके जानवर बन्धे हैं, पिटर को आकाश वाणी हुई कि इन जानवरों को खाओ उसने कहा कि मैं नहीं खाऊंगा फिर दूसरीवार आकाश वाणी हुई कि इन जानवरों को खाओ फिर भी पिटर ने वही उत्तर दिया कि हम इनको न खांयगे। तीसरीवार फिर भी आकाश वाणी हुई कि इन जानवरों को खाओ। फिर भी पिटर ने वही उत्तर दिया कि हम नहीं खांयगे, इतने में वह जानवरोंकी भरी चद्दर लोप हो गई पिटर के नेत्र खुल गये। इत्यादि और भी अनेक प्रमाण बायबिल के मिल सक्ते हैं, जिनसे यही सिद्ध होता है कि ईसाई मतमें भी सनातन से जीव दया चली आती है॥

(हिंसातोमनतेनहिछूटोजीवदयानहिंपाली। परमानन्द साधु संगति मिलि कथापुनीत न चाली। (जीववधोसुधर्म कर थापो अधर्म कहो कत भाई। आपसको मुनिवर करथापो काको कहो कसाई) (भांग माच्छली सुरापान जो २ प्राणी खांहि। तीर्थ व्रत नियम किये सभी रसातल जांहि) (बेदकतेव कहो मत झूठे, झूठा जो न विचारे। जो सब में एक खुदाय कहत हो तो क्यों मुर्गी मारे॥ मुल्ला कहो न्याय खुदाई। तुमरे मन का भरम न जाई॥ पकड़ जीव आन्या देह विनाशी माटी को बिसमिल किया॥ ज्योतिस्वरूप अनाहत लागी कहु हलाल क्या किया) (जे रत्तलगे कपड़े जामा होय पलीत। जेरत्तपीवें मानसा तिन क्यों निर्मल चीत)

इत्यादि गुरु ग्रन्थ साहिब के प्रमाण हैं उन से भी जीवदया ही सिद्ध होती है॥

(साईं मारे राह सुधारे उस को कहें हराम हुआ। जीते को मुर्दा कर डालें उस को कहें हलाल हुआ। पढ़ें निमाज रखें फिर रोजा पराए पुत्र का काढ़ हिया॥ गरवहिश्त मिले यों ही तो क्यों न कुटुम्ब हलाल किया)

इत्यादि कबीर जी के वाक्य हैं उन से भी जीवदया ही सिद्ध होती है

विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्।

इसमें मनु जी संन्यासी से कहते हैं कि वह एक स्थानमें न रहे किन्तु प्रतिदिन भ्रमण करे और किसी जीव को भी दुःख न देवे ।

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षोनिरामिषः ।

इस में भी मनु जी संन्यासी से कहते हैं कि वह आत्मा में प्रेम रक्खे स्वतन्त्र रहे और मांस मदिरा आदि न खावे न पीवे। इन प्रमाणों से जीवदया ही सिद्ध होती है । (पशूनां रक्षणं दानं०) इस में वैश्य से मनुजी कहते हैं कि वह सर्व जीवों की रक्षा करे । (मृगयाक्षादिवास्वप्नः०) इस में मनु जी राजा को भी कहते हैं कि वह मांस खानेके लिये शिकार को न खेले । (मनु० अ० श्लो० ४५)

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्चमृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥

(योऽहिंसकानीति) (यो अनुपघातकान्प्राणिनः हरिणादीनात्मसुखेच्छया मारयति स इह लोके परलोके च न सुखेन वर्द्धते)

इस में मनु जी कहते हैं कि जो मांस भक्षण से सुख प्राप्ति की इच्छा करके जीव हिंसा को करता है वह मनुष्य इस लोक वा परलोक में कुछ भी सुख से वृद्धि को संपादन नहीं कर सकता । (मनु० अ० ५ श्लोक० ४६)

योबन्धनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

(यो बन्धनेति) यो बन्धनमारणक्लेशादीन्प्राणिनांकर्त्तुमिच्छति स सर्वहितप्राप्तीच्छुरनन्तसुखं प्राप्नोति ।

इस में मनु जी का सिद्धान्त यह है कि जो मनुष्य जीवों को मारनेकी इच्छा तक भी नहीं करता वह सर्व जीवों को प्रिय होता है, और देश काल वस्तुकृत तीनप्रकार की अन्ततासे रहित नित्य मुक्त शुद्ध स्वस्वरूप आत्माके ज्ञान को संपादन करता है उस से उस को आत्मसुख का लाभ होता है । (मनु० अ० ५ श्लो० ४८)

नाकृत्वा प्राणिनांहिंसां मांसमुत्पद्यतेक्वचित् ।
न च प्राणिवधःस्वर्ग्य—स्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥

इस में मनु जी का सिद्धान्त यह है कि जीवों को मारे विना मांस ही उत्पन्न नहीं होता जीवों को मारने से मनुष्य स्वर्ग को तो नहीं जाता। किन्तु नरक में तो अवश्य जाता है। उस से मनुष्य को चाहिये कि मांसका खाना छोड़ देवें। (मनु० अ० ५ श्लो० ४८।)

समुत्पत्तिंचमांसस्य वधबन्धौचदेहिनाम्।
प्रसमीक्ष्यनिवर्त्तेत सर्वमांसस्यभक्षणात्॥

इस में मनु जी कहते हैं कि रज वीर्य से उपजा मांस अत्यन्त घृणा करने के योग्य है इस लिये मनुष्यों को उचित है कि सर्व जीवों के मांस का खाना छोड़ देवें। (मनु० अ० ५ श्लो० ४७)

यद्ध्यायतियत्कुरुते धृतिंबध्नातियत्र च।
तदवाप्नोत्ययत्नेन योहिनस्तिनकिंचन॥

इस में मनु जी का सिद्धान्त यह है कि जो मनुष्य किसी जीवकी हिंसा कभी नहीं करता वह ध्यान के योग्य माया विशिष्ट परमात्मा के ध्यान को भी संपादन कर लेता है। जिस शुभ कर्म को वह प्रयत्न से करता है। बिना खेद के अनायास उस कर्म के फलको वह संपादन कर लेता है।

वादी लोग कहते हैं कि शक्ति संप्रदाय में बकरा भैंसा आदि का बलिप्रदान करना लिखा है सो ठीक नहीं क्योंकि दक्षिण और वाममार्ग भेद से शाक्तसंप्रदाय दो प्रकार का है। दक्षिण मार्गमें दूध घृतादि का समर्पण है वाम संप्रदाय में मांस मदिराका सेवन है यदि सूक्ष्मविचार किया जावे तो वामसंप्रदायमें भी वाममार्गी लोग देवीका तो नाम लेते हैं परन्तु मांस मदिरा स्वयं खा पी जाते हैं। देवीने युद्ध भी किया है तो असुरों से किया है बकरा भैंसा आदिसे देवीने संग्राम नहीं किया। उसमें भी इतना भेद है कि काली देवी ने असुरों को मार उनका मांस खाया और रुधिर पिया होगा, वैष्णवी देवीने नहीं, विचारसागरादि वेदान्त के ग्रन्थोंमें वाम मार्ग का सर्वथा खण्डन कर डाला है। दक्षिण संप्रदायोक्त देवी के ध्यान पूजन का वर्णन किया है उस से भी जीवरक्षाका करना ही सर्वोत्तम है। वादी कहते हैं कि बहुत से शैव लोग भी मांस मदिराका सेवन करते हैं तो उत्तर यह है कि वाममार्गी शैव ही मांस मदिरा का सेवन करते हैं शङ्कर मतानुसारी शैव मांस मदिरा का खण्डन करते हैं। वाममार्गी शैव वेदके विरोधी हैं उससे भी जीवरक्षा का करना सर्वोत्तम है। वादी कहते हैं कि मांस

खाने से रोग नष्ट हो जाता है सो भी ठीक नहीं क्योंकि डाक्टर लोगों की सम्मति है कि मांस दुर्गन्ध युक्त परमाणुओंसे भरा होता है। उस के खाने से अनेक प्रकार के रोग होते हैं मांस खाने से शिरकी ताक़त कम हो जाती है, मांस खाने से दांत जकड़ जाते हैं, मांस खानेसे बदहज़मी हो जाती है, मांस खाने से पेटमें कीड़े पड़ जाते हैं, संग्रहणी रोग हो जाता है, मांस खाने से मरोड़ लग जाते हैं, और बवासीर का रोग भी हो जाता है।

मांसाहारी कसाईसे मांस लेके खाते हैं, कसाई बकरेके मांसके साथ गाय बैलका मांस मिला देते हैं। बहुत वर्षोंकी बात है कि अमृतसरमें एक घीवर कसाई कई दिन तक कुत्ते का मांस वेचता रहा था। मांसाहारी खाते रहेथे जब पकड़ा गया, तो जेलखाने में गया, उस से मांस का खाना सर्वथा छोड़ देना उचित है। उतने मोलका दूध पी लेना सर्वोत्तम है। डाक्टर कहते हैं कि दूध के पीने से नेत्रों की निगाह बढ़ती है, शिरमें ताकत आती है बुद्धि बल पराक्रम बढ़ते हैं, हाजिमा दुरुस्त हो जाता है बात पित्त और कफ शांत हो जाते हैं ज्वरादि रोग भी दूध पीने से नष्ट हो जाते हैं। उससें भी मांस का खाना छोड़ कर दूध पीना उचित है। और दूध देने वाले गायादि जीवों की रक्षा का करना उचित है। वादी कहते हैं कि हम रसनेन्द्रिय के स्वाद के मारे मांस खाते हैं। वादी लोगोंका यह कथन भी सर्वथा अविद्या मूलक है। क्योंकि मांस दुर्गन्ध युक्त परमाणुओं से पूर्ण है, उसमें स्वाद का सर्वथा अत्यन्ताभाव है। किन्तु स्वाद घृत और मसाले रूप परमाणुओंमें है। यदि मांसाहारी मांस में घृत और मसाला न डालें, तो हम सत्य कहते हैं कि मांसाहारियोंके मांसमें स्वाद का अत्यन्ताभाव अवश्य ज्ञात हो जावे। मनुष्य लड्डूको खाता हुआ कहता है कि लड्डू मीठा है सो उसकी भूल है क्योंकि लड्डू चने के आटे का बना है, चनेका आटा मीठा नहीं हो सकता। किन्तु लड्डू में चीनी मेवा बदाम घृतादि मीठे मिले हैं, वह न मिलते तो केवल चने के आटेका लड्डू कभी मीठा भान न होता। वैसे ही बिना घृत मसाला आदि के मांस भी स्वाद युक्त सिद्ध नहीं हो सकता। उससे भी मांसका खाना ठीक नहीं, किन्तु उतने दामका घृत खा लेना ही सर्वोत्तम है। और घृत के देने वाली गायकी रक्षाका करना भी सर्व मनुष्योंका कर्त्तव्य कर्म है॥ वादी कहते हैं कि हमारे में मांस के खाने से बल अधिक आ जाता है, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि जब मांसके खानेसे बल अधिक आ जाता है तो गीदड़

कुत्ते कौवे बिल्ली चील्हें भी शेर के समान बलवान् हो जाने चाहिये। क्योंकि वे सब मांस खाते हैं परन्तु वह शेरके सदृश बलवान् नहीं होते, हां दूध के पीने से तो अवश्य बल आता है। देखिये श्रीकृष्ण जी लूट के भी दूध दधि खा पी जाते थे, परन्तु वह ऐसे बलवान् थे कि मांसाहारी कंसादिका उनने सत्यानाश कर डाला था, हनुमान् जी फल फूल खाते थे परन्तु मांसाहारी राक्षसोंका उनने अत्यन्ताभाव कर डाला था। बहुत वर्षों की बातहै कि सिन्ध हैदराबादमें एक रोज दो जंगी सिपाही परस्पर दंगल करने लगे। उनमें एक मांसाहारी और दूसरा दूधाहारी था, जब वह दोनों आमने सामने हुए, तो दूधाधारी ने मांसाहारीको अपने नीचे दबालिया। ऐसा जोर दिया कि मांसाहारीका दस्त निकल गया। इस उदाहरण से भी यही सिद्ध हुआ कि दूध पीने ही से शरीर में बल आता है, मांस खाने से नहीं, उससे तन मन धन से जीवरक्षा करनी चाहिये। दूध पीने के लिये गौ आदि जीवों का पालन करना चाहिये। वादी कहते हैं कि मांस खाने से मनुष्य मोटा ताजा हो जाता है, वादी लोगों का यह कथन भी सर्वथा असंगत है। क्योंकि यदि मांस खाने से मनुष्य मोटा हो जाता, तो बहुत से मांसाहारी दुबले पतले देखे जाते हैं, वह ऐसे न होने चाहिये। किंवा हाथी घोड़े ऊंट गधे भैंस आदि मांस नहीं खाते वह मोटे ताजे न होने चाहिये, बहुतसे पहिलवान दूध घृत मक्खन मलाई खाते पीते हैं और प्रतिदिन मुग्दरी मुद्गर की कसरत भी करते हैं, वह भी मोटे ताजे अनुभव सिद्ध हैं। उससे भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि मांस मोटा भी नहीं कर सकता। यदि मोटा ताजा भी होता है तो दूध घृत खाने पीने ही से होता है उससे भी मांस का खाना छोड़ कर दूध घृत मक्खन मलाईके देने वाले गायादि जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये। और मोटे ताजे होनेके लिये खूब ही दूध घृत और मक्खन मलाई खाना चाहिये ॥

वादी कहते हैं कि मांस खाने से हमारे शरीर में ऐसी ताक़त हो जाती है कि विद्या का अभ्यास हम अधिक कर सकते हैं, वादी लोगों का यह सिद्धान्त भी सर्वथा असंभव अनर्थ प्रतिपादक है, क्योंकि विद्या का अभ्यास अधिक करने के लिये भी जैसे दूध घृतादि से ताक़त का लाभ हो सकता है वैसे और किसी प्रकार से नहीं हो सकता, प्रत्यक्ष देखा जाता है कि इस समय अंगरेजी फारसी वा संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थियों को य-

यावत् दूध घृत मक्खन मलाई के खानेका भोजन नहीं मिलता उस से उन का शरीर यहां तक दुबला पतला हो जाता है कि बाल्यावस्था ही में ऐनक लगाकर अक्षरों को देखते हैं। कोई पुस्तक विचारता हुआ तकियेकी आड़ लेकर बैठता है कोई दिवाल की आड़ लेकर कोई लम्बी कुर्सी का सहारा लेकर बैठता है किसी बालककी गर्दन, किसी की कमर दुखने लग जाती है किसी के माथे में दरद. किसी के पेट में दरद होने लग जाता है. यदि दूध घृत का भोजन विद्यार्थी बालकों को दिया जाता तो हम सत्य कहते हैं कि उनके शरीरमें ऐसी ताकत भर जाती कि वह चौबीस घंटे तक विद्याका अभ्यास करते हुए भी अंग को न हिलने देते, सूधे सरल शरीर में बैठे २ ही इम्तिहान देनेके काबिल शीघ्र हो जाते। यदि मांस खानेही से विद्या आजाती तो गीदड़ कुत्तेभी अवश्य मिडिल पास करने लग जाते। ऐसा न होनेके कारण विद्याके अभ्यासमें भी मांस लाभ नहीं देसकता। यदि विद्याभ्यासमें भी लाभ देता है तो दूध घृतादिका भोजन ही देता है। वैद्यलोगों को ज्ञान हो गया है कि दूध घृतादिके खानेसे मनुष्य में ९० हिस्सा बल आता है और दश हिस्सा निर्बलताका लाभ होता है। मांसका भोजन खाने से मनुष्यमें ९० हिस्सा निर्बलताका लाभ होता है और केवल १० हिस्सा बल आता है। अब विचारना चाहिये कि जब शरीरकी समालोचना करने वाले वैद्य लोगों का इस प्रकार का विचार है, तो फिर मांस ही के भोजन करनेके लिये जीव हिंसा का करना क्या लालबुझक्कड़ों ही की लीला नहीं किन्तु अवश्य यह लालबुझक्कड़ों की लीला है।

वादी कहते हैं कि रामचन्द्र जी ने शिकार खेला था फिर हम क्षत्रिय होकर क्यों न खेलें? वादी लोगोंका यह कथन भी असंगत है क्योंकि वाल्मीकीय वा तुलसीकृत रामायणमें जाना जाता है कि शेर व्याघ्रादि जो कि गायबैल मनुष्यादि प्राणियोंकी हिंसा कर डालते हैं। उनके मारने के लिये ही श्री रामचन्द्रजी शिकार खेलते थे मांस खानेके लिये वह शिकार नहीं खेलते थे। क्योंकि श्री रामचन्द्रजी ईश्वरके अवतार थे वह विना अपराधके जीवों की हिंसा नहीं करते थे शेर व्याघ्र आदि विना अपराधके जीवोंकी हिंसा कर डालते हैं। उससे वह अपराधी हैं उन्हींको श्रीरामचन्द्रजी अपराधी जानकर दण्ड देते थे और मार डालते थे। तसी मारीच आदि जो कि धोखा देनेके लिये हिरण बन जाते थे उन को भी अपराधी जान उन का शिकार कर

डालते थे मांस खानेके लिये शिकार नहीं खेलते थे। रामायण से जाना जाता है कि विश्वामित्र जी जब यज्ञ करते थे तो असुरलोग मांस रुधिर हड्डी आदि होमकुण्डमें डाल जाते थे। फिर विश्वामित्र जी निर्विघ्न यज्ञ समाप्ति के लिये श्री रामचन्द्र जी को ले आये और आप होम करने लगे असुर भी मांस रुधिर हड्डी आदि ले आये परन्तु श्री रामचन्द्र जी ने उन सर्व असुरों का शिकार कर डाला था होम कुण्ड में मांसादि दुर्गन्ध युक्त गन्दे पदार्थों को नहीं गिराने दिया निर्विघ्न यज्ञकी समाप्ति करादी। उससे भी यही सिद्ध हुआ कि दुर्गन्ध युक्त परमाणु रूप गन्दे मांस का खाना छोड़ना चाहिये। किन्तु फल फूल मेवा दूध घृतादि का भोजन खाना चाहिये दुर्गन्ध युक्त परमाणु रूप गन्दे मांस का भोजन खाने से मनुष्य का अन्तःकरण भी मलीन हो जाता है उससे धर्माधर्म का ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। दया के अंकुर का भी अन्तःकरण से अत्यन्ताभाव हो जाता है आत्मज्ञान को ओर भी मन नहीं आ सकता। क्योंकि मन भी दुर्गन्ध युक्त गन्दे परमाणुओं से भर जाता है सत्सङ्ग सच्छास्त्र के विचार का भी प्रध्वंसाभाव हो जाता है।

इतिहासोंसे जाना जाता है कि जब क्षत्रिय राजा ब्राह्मणोंको निमंत्रण देते थे तो असुर लोग सूपकारका वेष धरकर भोजन बनानेका प्रारंभ कर देते थे। जानवरोंके मांसको पकाने लग जाते थे। जब ब्राह्मणोंको ख्याल हो जाता था तो वह ब्राह्मण क्षत्रियोंको शाप दे डालते थे असुर लोग भाग जाते थे लोप हो जाते थे उस से भी यही सिद्ध होता है कि मांसके भोजन का करना असुरों ही का विशेष कर्त्तव्य कर्म्म था। इतिहासोंसे विदित होता है कि हिरण्यकशिपु मांस खाता था उस से वह असुर कहाता था। प्रह्लाद भक्त मांस नहीं खाता था उससे वह असुर नहीं कहा जाता था राजा रावण और उसका भाई कुम्भकरण मांस खाते थे कुम्भकरण तो यहां तक मांस खाने की कसरत करता था कि हाथी घोड़े ऊंट गधा आदिको वैसेही चाब जाता था कि जैसे कोई चने चाब लेता है। उसीसे राजा रावण और कुम्भकरण असुर कहाते थे परन्तु राजा रावणके भाई विभीषण मांस नहीं खाते थे किन्तु फल फूल खाते थे उस से वह असुर नहीं कहाते थे उस से भी मांस का खाना छोड़कर दूध घृतादि पदार्थोंका खाना सर्वोत्तम है। वादी कहते हैं कि ईश्वरने हमारे खानेके लिये जीव रचे हैं तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य के खाने के लिये ईश्वरने फल फूल मेवा दूध घृत अन्न इत्यादि प-

दार्थ रचे हैं पशु पक्षी मारकर मनुष्य के खानेके लिये ईश्वर ने नहीं रचे न मानें तो शेर व्याघ्रादि के खानेके लिये ही मनुष्योंको भी ईश्वरने रचा है, क्योंकि मनुष्यों को मार कर व्याघ्र शेरादि खा जाते हैं फिर शेर व्याघ्रादि से मांसाहारी अपनी रक्षा के लिये पुरुषार्थ किस लिये करते हैं ? ।

वादी कहते हैं कि जब पशु पक्षी आदिको मारकर न खाया जायगा तो वह इतने बढ़ जांयगे कि जमीन भर जायगी । वादी लोगोंका यह भी कथन सर्वथा असंगत है। क्योंकि मनुष्यादि नहीं मारे जाते पर उनसे जमीन नहीं भर जाती वैसे पक्षी आदि की रक्षासे भी जमीन नहीं भर सक्ती यदि पशु पक्षी की वृद्धि भी हो जाती है तो वह अपनी मृत्युसे आप ही मरने लग जाते हैं उस से जमीन नहीं भर सकती, वादी कहते हैं कि भोजन के समय अनेक जीव मारे जाते हैं, वृक्षों में जीव हैं वृक्षों का काट देना भी जीवहिंसा है, श्वास से अनेक सूक्ष्म जीव मारे जाते हैं । चलनेके समय पैरोंके नीचे आकर अनेक जीव मारे जाते हैं, उससे सर्वथा जीव रक्षा का होना असंभवहै । वादी लोगों का यह प्रश्न भी अविद्या मूलक है । क्योंकि जो चक्षु गोचर स्थूल शरीर युक्त जीव हैं उन की यथासंभव रक्षा हो सकती है । चक्षुके अगोचर जीवों की रक्षा करना सर्वथा असंभव है । भोजनके समय जो चक्षुके अगोचर जीव मर जाते हैं उस से जो पाप होता है उस पाप के नष्ट करने के लिये मनु जी ने प्रायश्चित्त का करना भी लिखा है । वृक्षोंमें जो जीव हैं वह गाढ़ सुषुप्ति अवस्था में हैं उनको सुख दुःखका ज्ञान ही नहीं हो सकता, ईश्वरकी न्याय व्यवस्था से जब वह जीव योनि वदलेंगे और उन को सुख का ज्ञान होगा तो उन को मारने से पाप होगा । उस से भी जीव दयाका करना ही मनुष्यों में मनुष्यपन है ॥

वादी कहते हैं कि अजामेध यज्ञमें बकरे मारे जाते थे सो भी ठीक नहीं, क्योंकि (अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीःप्रजाः सृजमानां सरूपाः) इस श्वेताश्वतर उपनिषद्के मंत्रका सिद्धान्त यह है कि–अजा शब्द त्रिगुणात्मक प्रकृति का वाचक है उसको आत्मज्ञान रूपी खड्ग से खण्डन करना उसी का नाम अजामेध यज्ञ है । बकरा बकरी के हनन करने का नाम अजामेध यज्ञ नहीं उससे भी जीव दया का संपादन करना ही सर्वोत्तम है । इतिहासोंसे जाना जाता है कि एक शिविनाम राजा था वह इतना दान देता था कि दान विषयक उस का नाम सूर्य्यके समान प्रकाशित हो रहा था । उस की परीक्षा के लिये एक समय अग्नि देवता कबूतर बना और इंद्र उस के लिये बा-

ज बना वह कबूतर शिविराजा के गोद में आ बैठा। बाज भी पीछे आया राजा शिवि ने बाज से कहा कि कबूतर को न मारिये जितना कबूतर का मांस है उतना मेरे शरीरका मांस ले लीजिये, बाजने कहा कि दीजिये शिवि राजाने मांस काटना आरंभ कर दिया, परन्तु कबूतरके मांसके बराबर मांस न हुआ। अब शिवि राजा मांस देनेके लिये अपना बलिदान करने लगा तो इन्द्रने बाजका रूपत्याग दिया और अपने रूपमें होकर शिवि राजा को धन्यवाद दे कर कहा कि हम आप की परीक्षा के लिये आये थे आपके सदृश इस समय दूसरा कोई भी जीवों पर दया करने वाला नहीं अग्नि भी अपने स्वरूप में आया। यह कथा महाभारत में लिखी है उससे भी मनुष्य को चाहिये कि तन मन और धनसे जीव रक्षा पर कटिबद्ध हो जावें॥

वादी कहते हैं कि जिन जीवोंसे लाभ होता है उनको न मारना चाहिये किन्तु जिनसे लाभ कुछ भी नहीं होता उनको मार कर खा लेना चाहिये। वादी लोगोंकी यह शङ्का भी सर्वथा असङ्गत है। क्योंकि ऐसा जीव संसारमें कोई भी नहीं जिससे कुछ लाभ न हो किन्तु सर्व जीवों को ईश्वर ने लाभ के लिये ही सृजा है, मार के खा लेने के लिये नहीं सृजा। वादी कहते हैं कि बकरा बकरी से क्या लाभ होता है, तो उत्तर यह है कि बकरीसे दूध दधि घृतका लाभ होता है। बकरी नानाभांतिकी वनस्पतिको खाती है उस से जो बालक बकरीका दूध पीते हैं उनके अनेक प्रकार के रोग भी नष्ट हो जाते हैं। पहाड़ी लोग बकरे पर भार लाद कर ले जाते हैं, बकरा बकरी की ऊन के बोरे बनते हैं, उनमें व्योपारी लोग गल्ला भरकर ले जाते हैं, रस्से आदि भी बकरा बकरी की ऊन के बनते हैं, उस से पशुओं का निरोध होता है॥

इतिहासों से जाना जाता है कि मुल्क सायबिरियाके लोग बकरा बकरी की खाल का पूजन करते हैं। जब उन से पूजनका कारण पूछा जाता है तो वह कहते हैं कि जो यहां बकरा बकरी न होते तो हम लोग वर्फकी शीतलता से मर जाते, हम बकरा बकरी की खाल के पोस्तीन बनाकर पहरते हैं पैजामे टोप जुराबा दस्ताने भी बकरा बकरी की खाल के बने हम पहिरते हैं जिस बकरा बकरी की खाल से हम को प्राण बचाने का लाभ होता है उसी से हम बकरा बकरी की खाल का पूजन करते हैं जो हो बकरा बकरी की खाल को हवा से भर कर मनुष्य दरिया के पार चले जाते हैं। बकरा बकरी की खालके बाजे भी बनते हैं पुस्तकों की जिल्द भी बकरा बकरीकी खाल से बन्धवा ली जाती है। जैसा तैसा जूता बन सकता

है भिस्ती लोग बकरा बकरी की खाल लेकर मशक बनाते हैं खाल का डोल बनाते हैं, उस से सहस्रों नारी नर जल पीते हैं, बकरा बकरी का खाद खेत में डाला जाता है, साधु लोग सूखा खाद लेकर धूनि जलाते हैं, सरदी को दूर करते हैं, इत्यादि लाभ बकरा बकरी की रक्षा से होते हैं। उस से उनकी रक्षा का करना आवश्यक है, गाय बैल भैंसादि की रक्षा के जो लाभ होते हैं वह हम गो रक्षा के व्याख्यानमें दर्शा चुके हैं ॥

जब मांसाहारी सूअरके लाभको शोचेंगे तो उनको ज्ञानहो जायगा कि ऐसा लाभ डाक्टर से भी नहीं हो सकता, जैसा कि सूअर से होता है। प्रत्यक्ष देखा जाताहै कि हरद्वार प्रयागादि तीर्थों पर जब मेला लगता है तो सरकारके हुक्म से हजारों भंगी मेलेमें आते हैं वह एक स्थानसे मैले को उठाकर दूसरे स्थान में गाड़ देते हैं, वहां से दुर्गन्ध युक्त परमाणु निकल कर हैजा प्लेगादि रोगोंको उत्पन्न कर देते हैं। उससे सहस्रों नर नारी मरजाते हैं परन्तु प्रत्येक मेलेमें यदि दश बीस हजार सूअरों को सरकार भिजवा दिया करे तो वह सूअर मैले मूत्र का अत्यन्ताभाव कर देते हैं। उस से आरोग्यता का लाभ हो सकता है। जलमें मुर्गा रखनेसे जलस्थ दुर्गन्ध का प्रध्वंसाभाव हो जाता है उस जलके पान करने से भी आरोग्यता का लाभ होता है। उस से आरोग्यता का लाभ कराने वाले सूअर मुर्गा आदिकों की भी अवश्य रक्षा करनी उचित है। मुर्गा रात्रिके चार बजे हल्ला मचाने लग जाता है। जेब घड़ीका टाइम आगे पीछे हो जाता है परन्तु ईश्वर ने मुर्गारूप घड़ीको ऐसी मज़बूती से सृजा है कि उस का टाइम बिगड़ता ही नहीं, ईश्वर की प्रेमभक्ति करने वाले भक्तों को चार बजे जगा देता है, उस से मुर्गे को भी न मारना चाहिये। बतक और कौवे भी दुर्गन्धको खा जाते हैं, उससे भी आरोग्यता का लाभ होता है, जब मच्छी जल में रक्खी जाती हैं तो वह जलस्थ दुर्गन्ध युक्त परमाणुको खा जाती हैं उस जलको पान करनेसे भी आरोग्यता का लाभ होता है। उस से इन जीवों की भी रक्षा करनी चाहिये ॥

मोरकी रक्षासे उसकी बोली सुनकर आनन्द आताहै, तीतर और बटेरकी रक्षासे खेत के काटनेवाले कीड़े नष्ट होजाते हैं, तोता मैना आदिकी रक्षा से भी इन की बोली सुनकर मन प्रसन्न होता है, चोर आनेपर वह घरके मालिक को जगा देते हैं। भालू और बन्दर को शिक्षा देनेसे वह लड़ाईका काम भी दे सकते हैं, कबूतरकी रक्षासे वायु स्वच्छ रहता है, विदेशसे वह चिट्ठी पत्र

लेजा सकता है, हिरण की खाल को साधु अपने तले विछा सकते हैं और भी नाटक में कुस्ती दर्शा सकता है, उस की खालको भी सन्त अपने तले विछाते हैं, कुत्ता भी रात्रि को चोर नहीं लगने देता, गैंडे की रक्षा से संग्राममें रक्षा करनेके लिये ढाल मिल सकती है। हाथीदांत की चूड़ी बनती हैं उस को स्त्रियें पहरती हैं, एक प्रकारके कीड़ोंकी रक्षासे रेशमका लाभ होता है, भेड़ी के दूध से ववासीर रोग नष्ट हो जाता है, भेड़ मेंढ की ऊन के कम्बल और शाल बनते हैं, गधे ऊंट घोड़े टट्टू भार लादनेका काम देते हैं, और लड़ाई में भी काम आते हैं, उससे मनुष्योंको चाहिये कि इन जीवों की भी रक्षा करें। और नानाभांति की चिड़ियों की रक्षा से भी मन प्रसन्न होता है। काबुल में एक प्रकार के चूहे होते हैं उनकी खालके कीमती पोस्तीन बनते हैं, खिचर आदि भी भार लादने के काम में आते हैं, निवले रखने से सर्प विच्छू आदि भाग जाते हैं। कहां तक वर्णन करें कि ईश्वरने जितने जीव रचे हैं मार कर खाने के लिये नहीं रचे, किन्तु लाभके लिये ही रचे हैं उस से जहां तक हो सके वहां तक सर्व जीवों की रक्षा करनी चाहिये॥

अहिंसापरमोधर्म्म—स्तथाऽहिंसापरंतपः।
अहिंसापरमंसत्यं यतोधर्म्मःप्रवर्त्तते॥

इत्यादि महाभारतस्थ उद्योग पर्व के श्लोक हैं॥

दृष्ट्वाऽन्धवधिरव्यङ्गाननाथान् रोगिणस्तथा।
दयानजायतेयेषां तेशोच्यामूढचेतनाः॥

इत्यादि श्लोक महाभारतस्थ शान्ति पर्व के हैं।

योरक्षेत्प्राणिनंब्रह्मन् भयार्त्तं शरणागतम्।
तस्यपुण्यफलंयत्स्यात् तन्मेब्रूहितपोधन!॥

इत्यादि श्लोक भी महाभारतस्थ उद्योग पर्वके हैं॥

एकोधर्म्मःपरंश्रेयः क्षमैकाशान्तिरुत्तमा।
विद्यैकापरमातृप्ति—रहिंसैकासुखावहा॥

इत्यादि श्लोक महाभारतस्थ वन पर्व के हैं॥

अमानिनःसर्वसहा दृढार्थाविजितेन्द्रियाः।
सर्वभूतहितामैत्रा स्तेभ्योदत्तंमहाफलम्॥

इत्यादि श्लोक महाभारतस्थ अनुशासन पर्व के हैं॥

एषधर्म्मोमहायोगो दानंभूतदयातथा ।
सनातनस्यधर्म्मस्य मूलमेतत्सनातनम् ॥

इत्यादि श्लोक महाभारतस्य अश्वारोहण पर्व के हैं ॥

तपोधर्म्मःकृतयुगे ज्ञानंत्रेतायुगेस्मृतम् ।
द्वापरेचाध्वराः प्रोक्ताःकलौदानंदयादमः ॥

इत्यादि प्रमाण बृहस्पति देवता के हैं ॥

(वर्जयेन्मधुमांसञ्च०)

इत्यादि मनुजी के प्रमाण हैं॥

शुनांचपतितानांच श्वपचांपापरोगिणाम् ।
वायसानांकृमीणांच शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥

इत्यादि श्लोक भी मनुस्मृति के हैं । वेदांत के ग्रन्थों में कहा है कि अहिंसा अंश में बौद्धमत भी वेदानुसार है उन को भी वेदान्तियों ने सारग्राही दृष्टि से अहिंसा अंशमें स्वीकार किया है जैसे कि—

पशुश्चेन्निहतःस्वर्गं ज्योतिष्टोमेगमिष्यति ।
स्वपितायजमानेन तत्रकस्मान्नहिंस्यते ॥

इस श्लोक में चार्वाक बौद्धने कहा है कि जब जीव को मार होम करने से जीव स्वर्ग को जाता है तो यजमानको चाहिये कि अपने माता पिता को भी मार कर स्वर्ग भेज देवे । जैन मत में जीव दया को सर्वोत्तम धर्म्म वर्णन किया है । जैनमत का एक मनुष्य भी मांसाहारी नहीं देखा जाता ॥

ब्रह्मचारीतुयोऽश्नीयात् मधुमांसंकथंचन ।

यह मनुस्मृति के ११ अध्याय का श्लोक है । इत्यादि और भी हजारों प्रमाण मिल सकते हैं कि जिनसे जीव दया सर्वोत्तम धर्म सिद्ध हो जाता है । यद्यपि इस बात को हम सिद्ध कर चुके हैं कि वर्त्तमान समय में सर्वमतों में मांस के खाने वाले अधिक हैं, और मांसके न खाने वालोंकी संख्या अत्यन्त न्यून है उस से इस समय सर्व जीवोंकी रक्षा नहीं हो सक्ती । तथापि जीवदया का उपदेश सदैव होना चाहिये जिससे मांसके खानेको शनैः २ मांसाहारी छोड़ते जांयगे तो जीव दया की भी प्रतिदिन उन्नति होती जायगी । किमधिकम् ॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ईश्वराऽवतार मराडन–

व्याख्यान नं० १३

आर्य्यसमाजी कहते हैं कि ईश्वर अवतार धारण नहीं करता ? इस का उत्तर यह है कि जब ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो ईश्वर अवतार भी धारण कर सकता है। यदि ईश्वर अवतार नहीं धारण कर सकता तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् भी नहीं हो सकता। आर्यसमाजी कहते हैं कि ईश्वर कौन से प्रयोजनके लिये अवतार धारण करता है। तो उत्तर यह है कि भक्तों की रक्षा और दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ईश्वर अवतार धारण करता है। आर्यसमाजी कहते हैं कि ईश्वर विनाही अवतार धारण के भक्तों की रक्षा कर और दुष्टों को दण्ड दे सकता है इस से ईश्वर को अवतार धारण करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं ? तो इस का उत्तर यह है कि जैसे टेलिग्रामस्थ सामान्य शब्दसे कहीं भी शुभाशुभ खबर नहीं आती जाती किन्तु विशेष तारबाबू की इच्छा ज्ञान और प्रयत्न ही से टेलिग्राम यन्त्र तारमें शब्द का प्रादुर्भाव होकर खबर आती जाती है। वैसे ही सामान्य व्यापक चेतन ईश्वर भक्तों की रक्षा और दुष्टोंको दण्ड देने का कर्त्ता नहीं हो सकता। किन्तु विशेष रूप में अवतार धारण करके ही भक्तों की रक्षा और दुष्टोंको दण्ड देने का कर्त्ता ईश्वर होता है।

आर्यसमाजी कहते हैं कि ईश्वर निराकार है उससे ईश्वर अवतार नहीं धारण करता तो उत्तर यह है कि ईश्वर की शक्ति प्रकृति है उसी को वेदान्ती लोक माया कहते हैं वह प्रकृति साकार है यदि प्रकृतिको भी निराकार कहो तो वह साकार जगत् का उपादान कारण न होगी क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि साकार भूषणादि का उपादान कारण साकार सुवर्णादि हैं। जब ईश्वर की प्रकृति शक्ति साकार सिद्ध हो गई तो ईश्वर निराकार नहीं रह सकता किन्तु आर्यमत में प्रकृति को स्वरूप से अनादि कहा है जो वह लेख सत्य है तो ईश्वर सर्वथा सर्वदा साकार सिद्ध हो चुका उस से भी साकार ईश्वर अवतार धारण कर सकता है।

(किंच) जैसे आकाश वायु अग्नि जल पृथिवीरूप परमाणु जबतक निराकार रूपमें हैं तबतक अपना २ कार्य नहीं कर सकते निराकार आकाश रूप परमाणु अवकाश नहीं दे सकते निराकार वायुरूप परमाणु किसी को

आकर्षण नहीं कर सकते निराकार अग्निरूप परमाणु दाह नहीं कर सकते निराकार जलरूप परमाणु पिपासादि को नहीं हटा सकते निराकार पृथिवी रूप परमाणु किसी का आधार नहीं हो सकते किन्तु आकाशादि परमाणु साकार होकर ही निज२ प्रयोजनको सिद्ध कर सकते हैं। यद्यपि किसी २ आचार्य ने आकाशरूप परमाणु नहीं माने हैं तथापि वेद में आकाश की उत्पत्ति लिखी है और आकाश के देश भी सिद्ध होते हैं। जल वा कूप वा तड़ागस्थ जल में गम्भीरता रूपी आकाश का प्रतिबिम्ब भी भान होता है इत्यादि हेतुओं से आकाश साकार सावयव सिद्ध होता है उस से आकाशरूप परमाणु भी सिद्ध होते हैं। जब तक जीवात्मा निराकाररूपमें हैं तबतक शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता और शुभाशुभ कर्मों का फल सुख दुःख का भोक्ता कभी नहीं हो सकता। वैसे ही ईश्वर भी निराकाररूप में कुछ नहीं कर सकता किन्तु माया के परिणाम आकार ही को धर कर भक्तों की रक्षा करता और दुष्टों को दण्ड दे सकता है उस से भी ईश्वर का अवतार धारण करने की आवश्यकता है।

आर्यसमाजी कहते हैं कि (अवतरतीत्यवतारः) अर्थात् जो उतरे वह अवतार है यदि ईश्वर अवतार को धारण करता है तो कहिये ईश्वर कहां से उतरता है? तो उत्तर यह कि शुद्ध सत्वगुण प्रधान मायारूपी शिखर से व्यष्टि शरीर को धारण करना ही प्रकरणमें उतरना है उससे भी ईश्वर अवतार धारण करता है। आर्यसमाजी कहते हैं कि अवतारों के नाम क्या हैं तो उत्तर यह कि रामकृष्णादि अवतारों के नाम है। आर्यसमाजी कहते हैं कि रामकृष्णादि के शरीर ब्रह्म हैं? अथवा शरीरों का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है यदि कहो कि शरीरों का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है तो जितने शरीर संसार में देखे और सुने जाते हैं उन सबका अधिष्ठान ब्रह्मचेतन है तो सब अवतार होने चाहिये। यदि शरीरों को ब्रह्म कहो तो शरीर भी सबके पांच भूतों के हैं उस से भी सब अवतार होने चाहिये। आर्यसमाजियों की इस शङ्का का समाधान यह है कि रामकृष्णादि नाम वाले शरीर जो अवतार शब्द से प्रसिद्ध हैं तद्विशिष्ट चेतन ही ब्रह्म है उन शरीरों से भिन्न जितने शरीर हैं तद्विशिष्ट चेतन ब्रह्म नहीं, सिद्धान्त यह कि रामकृष्णादि नाम वाले अवतार शरीर शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया के परिणाम हैं दूसरे शरीर पांच भूतों का विकार हैं।

आर्यसमाजी कहते हैं कि ईश्वर में अज्ञान नहीं प्रकरण में ब्रह्म शब्द का वाच्य भी वेदान्ती लोग माया विशिष्ट ईश्वर ही कहते हैं। आर्यसमाजी कहते हैं कि रामादिकों ने अज्ञान दूर करने के लिये वसिष्ठादि गुरुओं से ब्रह्म ज्ञानका उपदेश लिया था, यह माया योग वासिष्ठ ग्रन्थमें लिखी है उससे रामादि ईश्वर के अवतार नहीं हो सकते। इस शङ्काका समाधान यह है कि वेदान्त ग्रन्थों की रीति से उत्तम और मध्यम भेद से उपदेश दो प्रकार का है जो उत्तम उपदेश है सो अपने आपके प्रति होता है परन्तु वक्ती तात्पर्य से अपनेसे भिन्नके प्रति होता है। मध्यम उपदेश वह है जो कि निशाना रख कर दिया जाता है। श्रीरामचन्द्र जी को वशिष्ठ जी का उपदेश उत्तम है अपने पर प्रतीत होता है। परन्तु तात्पर्य उसका भक्तों को समझाने का है। रामकृष्णादि ईश्वर थे उनमें अज्ञानका त्रिकाल में भी अत्यन्ताभाव था। उससे रामादिक अवतारों ही को ईश्वर ने धारण किया है॥

आर्य्यसमाजी कहते हैं कि रामकृष्णादि के माता पिता थे ईश्वर के माता पिता नहीं हैं। उससे रामादिक ईश्वर के अवतार नहीं हो सके, तो उत्तर यह कि जैसा रामादि से भिन्न अस्मदादि जीवोंका माता पिता द्वारा जन्म हुआ है, वैसे रामादि अवतारोंका जन्म नहीं हुआ, किन्तु माता पिता का निमित्त रखकर शुद्ध सत्वगुण प्रधान मायाके परिणाम शंख चक्र गदापद्म मोर मुकुट पीतांबर धर श्यामसुन्दर स्वरूपमें प्रकट होकर रामकृष्णादि अवतार हुए ईश्वर दर्शन देते हैं। गर्भाशय से अवतार शरीर नहीं निकलते जैसे हम तुम लोगों के देहान्त हुए के पश्चात् लाश पड़ी रहती है जलाई जाती है कपाल क्रिया की जाती है। वैसे रामादि नामवाले शरीरोंका देहान्त नहीं होता। किन्तु जिस शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान मायासे रामादि नामवाले शरीरों का प्रादुर्भाव होता है उसी में तिरोभाव होजाता है। यह बात वाल्मीकीय रामायण और महाभारतादि ग्रन्थों तथा भागवत में लिखी है उससे रामादि ईश्वर के अवतार होते हैं॥

आर्य्यसमाजी कहते हैं कि वाल्मीकीय तुलसीकृत रामायणादिमें वाहियात असंभव कथायें लिखी हैं उन कथाओंसे रामादि ईश्वरके अवतार नहीं हो सकते। इस शंकाका उत्तर यह है कि जितनी कथायें रामायणमें लिखी हैं उनमें से एक कथा का सिद्धान्त भी आर्यसमाजी नहीं समझे। वक्तीतात्पर्य के ज्ञान से रामायणस्थ सर्व कथाओं का उपदेश अधिकारीके प्रति है दुष्टोंको

दण्ड देना और भक्तों का पालन करना तो अवतार होनेका मुख्य प्रयोजन है परन्तु गौण प्रयोजन भी अनेक हैं। जैसे कि श्री रामचन्द्र जी को वन में निवास देने का हुक्म राजा दशरथ ने नहीं दिया था परन्तु कैकेयी राणी के साथ किसी समय में जो राजा की प्रतिज्ञा हो चुकी थी उक्त प्रतिज्ञा को सच्ची करने के लिये श्री रामचन्द्र जी स्वयं ही वन को चले गए उस से श्री रामचन्द्रजीका सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि पुत्रको चाहिये कि सर्वदा पिता की आज्ञा में चले और पिता का शुभचिन्तक रहे, जब श्री रामचन्द्र जी वन को निकल गये तो उसी समय राजा ने प्राण त्याग दिये। इस कथा का यह सिद्धान्त निकलता है कि पिता का प्रेम पुत्र के साथ वैसा होवे जैसाकि राजा दशरथ का प्रेम श्रीरामचन्द्र जी के साथ था। कैकेयी की निन्दा का सार यह जाना जाता है कि राजा को चाहिये कि एक काल में एक ही स्त्री से विवाह करे अनेक स्त्री से एक काल में विवाह करने का वैसा बुरा परिणाम निकलेगा जैसा कि कैकेयी का परिणाम हुआ था॥

जबतक लंका को जीतकर श्रीरामचन्द्र जी अयोध्या जी में नहीं आए तबतक भरत जी ने राज्यगद्दी पर पैर तक नहीं रक्खा क्योंकि उनने नीति का मार्ग पुष्ट रक्खा है कि जबतक बड़ा भाई जीता हो तबतक छोटे भाई का अधिकार नहीं कि राज्यगद्दी का मालिक बन बैठे, सीता जी भी श्रीरामचन्द्र जी के साथ वन में गईं, इसका तात्पर्य यह जाना जाता है कि पति के साथ स्त्री का वैसा प्रेम होना चाहिये जैसा कि श्रीरामचन्द्र जी के साथ सीता जी का था, लक्ष्मण जी भी श्रीरामचन्द्र जी के साथ ही वन में चले गये उसका सिद्धान्त यह निकलता है कि भाई के साथ वैसा प्रेम भाई रक्खे जैसा कि श्रीरामचन्द्र जी के साथ लक्ष्मण जी का प्रेम था, रावण की भी भगिनी शूर्पणखा विधवा बैठी थी परन्तु लक्ष्मण जीने उसके नाक कान काट डाले इसका सिद्धान्त यह विदित होता है कि जो स्त्री मरे पति के पश्चात् भी मरे पतिका स्मरण ध्यान छोड़ कर दूसरे से विवाह अथवा नियोग का इरादा करे उस को वैसा दण्ड देना मुनासिब है कि जैसा लक्ष्मण जी ने शूर्पणखा को दण्ड दिया था॥

अध्यात्म रामायण से सिद्ध होता है कि जब श्रीरामचन्द्र जी मृग को मारने चले हैं तो निज स्त्री को अग्नि में प्रवेश करा दिया था, किन्तु बनावटी सीता को आश्रम में बिठा गये थे उसी को रावणने हरा था, इसका

सार यह जाना जाता है कि स्त्री का पति अपनी स्त्री को इकेली छोड़ कर कहीं भी न जावे, जब सीता जी ने लकीर को मिटा कर रावण को साधु देखकर भिक्षा दी तो रावण उसको हर के ले गया, इस कथा से यह सिद्ध होता है कि स्त्रीको चाहिये कि जबतक पति आज्ञा न देवे तबतक किसी साधु को निमन्त्रण तक भी न देवे क्योंकि रावण जैसे धूर्त भी बहुत से साधु हो बैठते हैं। जब जटायु ने श्रीरामचन्द्र जी को भूषण दिये तो श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी से कहा कि हे लक्ष्मण जी! आप इन भूषणों को पहचानते हैं कि यह सीता जी के ही भूषण हैं ?। तब लक्ष्मण जी ने कहा कि हम जानकी जी के पैरों के भूषण पहचानते हैं क्योंकि हम प्रतिदिन प्रातःकाल के समय सीता जी के पैरों पर नमस्कार करने को जाते थे। दूसरे अङ्गों के भूषणों को हम नहीं पहचानते, क्योंकि हम ऊपर निगाह नहीं करते थे, इस लेख का सिद्धान्त यह ज्ञात होता है कि बड़े भाई की स्त्री को छोटा भाई माता के तुल्य समझ कर नमस्कार करे॥

अनुसूया ने सीता जी को पतिव्रताधर्म का मार्ग दिखाया है उस का सार यह जाना जाता है कि जो स्त्री पातिव्रतधर्मको छोड़ देती है वह स्त्री रौरव नामक नरकका दण्ड पाती है, भीलनी वगैरहके बेर खानेका सिद्धान्त यह जाना जाता है कि परमेश्वर प्रेमको देखता है ऊंच नीच जातिको नहीं देखता, हनुमानादिकों पर कृपा करनेका सिद्धान्त यह विदित होता है कि परमेश्वर केवल मनुष्य स्त्री पुरुषों के प्रेम पर ही प्रसन्न नहीं रहता किन्तु बन्दर वगैरह भी यदि ईश्वरसे प्रेम रक्खें तो उन पर भी ईश्वर की कृपा होती है। हनुमान् जी ने लंकामें जाकर अर्धरात्रिको खोज की प्रत्येक राक्षस के घर में सन्ध्या गायत्री तर्पण अग्निहोत्र वेद का पाठ होता देखा और रामचन्द्र जी को बतलाया परन्तु फिर भी रामचन्द्र जी ने रावण को मारे बिना न छोड़ा इस कथासे विदित यह होता है कि वेदोक्त हिन्दुधर्म नष्ट करने के लिये असुर लोग सन्ध्या गायत्री तर्पणादि भी दर्शाते हैं परन्तु विद्वान् को चाहिये कि ऐसे वञ्चकों को भी नीति और विद्याके अनुसार दण्ड दिये बिना कभी न छोड़े॥

लक्ष्मण जी के मूर्छित होने पर श्रीरामचन्द्र जी को देखकर सुग्रीवजी ने कहा कि महाराज आप चिन्ता न कीजिये लक्ष्मण जी अच्छे हो जावेंगे, तब श्रीरामचन्द्र जीने कहा कि मुझे दूसरी कोई भी चिन्ता नहीं किन्तु विभीषण जी

से मेरा कौल हो चुका है कि आइये लङ्केश ! यह कौल मिथ्या न हो जावे इस लेख का सिद्धान्त यह विदित होता है कि जिस के हाथ जो कौल करे उस को सच्चा करके दिखावे ॥

जब अशोक वन में सीता जी को बिठा दिया तो सीता जी का पातिव्रतधर्म नष्ट करने को बहुरूपियों के समान रावण ने अनेक रूप दिखाए परन्तु सीता जी ने पातिव्रतधर्म को नहीं छोड़ा वैसे ही सब स्त्रियां करें। जब हनुमान् जी औषधि लेने को गए तो मार्ग में ब्रह्मचारी बन कर कालनेमि जी हनुमान् जी को रोकने के लिये बैठे थे परन्तु हनुमान् जी ने कालनेमि जी का सत्यानाश कर डाला इस लेख का तात्पर्य यह निश्चित हुआ कि सनातन हिन्दूधर्म में विघ्न डालने के लिये अनेक बहुरूपिये खड़े होते हैं। परन्तु विद्वान् को चाहिये कि बिना तहकीकात करे उनके जाल में न फंसजावे इत्यादि रामायण की सर्व बातें भक्त जनों को समझाने के लिये हैं उससे रामादि अवतार विषयक सब बातें सच्ची हैं ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि-जब पहिले ईश्वर अवतार धारण करता था तो इस समय क्यों नहीं अवतार धारण करता। इस शंका का समाधान यह है कि जब २ सनातनहिन्दूधर्म की हानि होती है तब २ ही ईश्वर अवतार को धारण करता है जैसे कि सतयुग में प्रह्लाद भक्त को हिरण्यकशिपु ने कष्ट दिया रामोपासना को नष्ट करना चाहा तो ईश्वर ने नृसिंह अवतार को धारण कर प्रह्लाद भक्त की रक्षा करी और हिरण्यकशिपु को मारडाला। जब त्रेतायुग में रावण आदिकों ने सनातनहिन्दूधर्म को नष्ट कर देने की चेष्टा करी तो ईश्वर ने रामावतार लेकर विभीषणादि भक्तों की रक्षा करी और रावण आदि को मारडाला। जब द्वापर में कंसादिकों ने उपद्रव मचाया तो ईश्वर ने कृष्णाऽवतार लेकर भक्तों की रक्षा करी, और दुष्टों को दण्ड दिया। आर्यसमाजी कहते हैं कि कृष्ण जी माखनचोर थे, ईश्वर के अवतार नहीं हो सकते, इस शंका का समाधान यह है कि कृष्ण जी बाल्यावस्था की चेष्टा दिखाते थे चोरी का जुल्म. कृष्ण जी पर कायम नहीं हो सकता, अंग्रेजी सरकार का भी आईन है कि यदि पांच वर्ष की उमर का बालक किसी की चीज उठा लेवे तो वह चोरी के जुल्म में नहीं आ सकता, कृष्ण जी की आयु माखन उठाने के समय पांचवर्ष से भी कम थी उस से श्रीकृष्ण जी ईश्वर के अवतार थे ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि यमुना में गोपियोंको नङ्गी देखकर श्रीकृष्ण जी प्रसन्न होते थे कपड़े हर लेते थे उससे कृष्ण जी ईश्वर के अवतार नहीं इस का उत्तर यह है कि चीर हरने के समय भी श्रीकृष्ण जी बालक थे अंगरेजी राज्य में भी हमने सुना है कि एक नहरके महकमे का साहिब एक रोज नहरका मुलाहिजा करनेको निकला एक नगरकी बीस तीस के लगभग स्त्रियां नहरके जलमें नङ्गी स्नान करतीं थीं साहिब उन के चीर उठवा कर बंगले में ले गये उन के पतियों को बुला कर फटकारा और हुकुम दिया कि फिर कभी तुम्हारी स्त्रियां नङ्गी नहायेंगीं तो दण्ड दिया जावेगा अब विचारना चाहिये कि साहिब ने नीति दर्शाई थी। कोई बुरा काम तो नहीं किया वैसेही श्रीकृष्ण जी ने भी चीर हरनेके समय शिक्षा दी थी कि वरुण देवताके सामने फिर कभी नग्न होकर स्नान मत कीजियो उस से श्रीकृष्ण जी निर्दोष थे और ईश्वर के अवतार थे।

आर्यसमाजी कहते हैं कि श्रीकृष्णजी नाचते थे इससे ईश्वर के अवतार नहीं हो सकते। आर्यसमाजियों की इस शंका का समाधान यह है कि दयानन्द छल कपट दर्पण में पण्डित जियालालजी ने जैसे कि दयानन्द का नाचना दर्शाया है वैसा नाचना श्रीकृष्ण जी का नहीं था। किन्तु बाल्यावस्था में श्रीकृष्णजी का खेलना कूदना बांसुरी बजाना ही सिद्ध होता है जैसे सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लासमें दयानन्दने गाने बजाने नाचनेका सीखना कहा है। वैसा नाच श्रीकृष्ण जी नहीं करते थे। आर्यसमाजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण जी गोपियोंके साथमें लंपट थे तो इस का उत्तर यह है कि जैसे दयानन्द छल कपट दर्पण में शिवभजन के साथ एक जिमीदार लम्पट था ऐसा कहा है। कई वार रहसमण्डली ही में गोपियों को सन्देह हुआ कि श्रीकृष्ण जी काम के वश हैं उस सन्देह को नष्ट करनेके लिये श्रीकृष्णजी ने शरीर को शुद्ध सत्व प्रधान माया में अदर्शन कर लिया फिर गोपियों ने अपने सन्देह को मिथ्या समझ कर श्रीकृष्ण जी से क्षमा मांग ली उस से श्रीकृष्णजी लंपट नहीं थे किन्तु ईश्वरके अवतार थे।

जब कलियुग में हिन्दु धर्म की हानि होने लगी तो अनधिकारी असुरों को यज्ञादि कर्मों से रोकने के लिये ईश्वर ने बुद्धावतार को धारण किया जब देखा कि आस्तिक लोग भी नास्तिक होने लगे हैं तो ईश्वर ने शंकराचार्य जी के अवतारको धारणकर नास्तिक मतका विध्वंस कर डाला

जब अकबर बादशाह के समय हिन्दुधर्म की हानि होने लगी तब ईश्वर ने गुरु नानक अवतार लेकर हिन्दुधर्म की विद्या के बल से रक्षा करी। जब औरंगजेब अन्याय से हिन्दुधर्म की हानि करने लगा तो ईश्वर ने गुरु गोविन्दसिंह जी का अवतार धारण कर हिन्दुधर्म की रक्षा कर दिखलाई। वर्त्तमान समयमें अंग्रेज सरकार का राज्य है श्रीमती महाराणी विक्टोरिया जब गद्दी पर बैठी रहीं हैं तब तक भारतवासियों के साथ प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि हम ईश्वर की कसम खाकर कहतीं हैं कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट किसी मजहब में दखल न देगी हर एक मजहब को न्याय की निगाहसे देखेगी महाराणी विक्टोरियाके स्वर्गवास होनेके पश्चात्भी सम्राट् एडवर्डजी ने भी उसी प्रतिज्ञारूपी सूर्यका प्रकाश भारतवर्ष में कर रक्खा है इस से इस समय में ईश्वर को अवतार धारण करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं। किन्तु सनातन धर्मावलम्बी भारतवासी हिन्दु वीरों को चाहिये कि अंग्रेजी सरकार के कानूनरूपी ढालको पकड़ें और वेदान्तविद्या रूपी तलवारको अन्तःकरण की वृत्ति रूपी हाथों से खींचें फिर हिन्दुधर्म के विरोधी मतों के गलरूपी शिरों को टुकड़े २ कर डालें।

आर्यसमाजी कहते हैं कि जैसे कोई चक्रवर्ती राजाको एक झोंपड़ी का मालिक कहे तो वह चक्रवर्ती राजा की निन्दा है वैसे ही सर्व व्यापक परमात्माको भी जो राम कृष्णादि शरीरों को धारण करनेवाला है ऐसा कथन करता है वह भी परमात्मा की निन्दा करता है। आर्यसमाजियोंकी इस शङ्काका समाधान यह है कि जैसे प्रजाकी निगरानी के लिये चक्रवर्ती राजा योग सिद्धि के बलसे दूसरारूप धारण कर लेवे तो उस का चक्रवर्ती पन नष्ट नहीं होता किन्तु बना रहता है वैसे ही भक्तों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देनेके लियेभी यदि ईश्वर राम कृष्णादि अवतार धारणकर लेता है तो उस का व्यापकपन भी नष्ट नहीं होता। आर्यसमाजी कहते हैं कि जब ईश्वर एक देशीय शरीरों को धारण करेगा तो सर्वदेशोंमें व्यापक न रहेगा। आर्यसमाजियोंकी यह शंका भी ठीक नहीं क्योंकि जैसे एक ही महाकाश एक घट उपाधिको धारणकर सर्वव्यापक भी बना रहता है वैसे ही ईश्वर भी रामकृष्णादि नाम वाले एक देशी शरीरोंको धारण करके भी सर्व व्यापक बना रहता है इससे भी ईश्वर के अवतार होते हैं।

आर्यसमाजी कहते हैं कि जैसे हम मनुष्य हैं वैसेही रामकृष्णादिभी मनुष्य ही थे ईश्वरके अवतार नहीं हो सकते। आर्यसमाजियोंकी यह शङ्काभी सर्वथा असंगत है क्योंकि रामकृष्णादि नामवाले शरीरोंका आविर्भाव अपने २ पापरूपी निमित्तसे नहीं होता किन्तु भक्तोंकी भक्तिरूपी निमित्त और दुष्टोंकी दुष्टता रूप निमित्त ही से राम कृष्णादि अवतार शरीरों का प्रादुर्भाव होता है चक्रवर्ती राजा का और प्रजा के नरों का शरीर तो मनुष्य ही देखने में आता है परन्तु चक्रवर्ती राजा और प्रजा के मनुष्यों की शक्ति का दिनरात्रि का सा भेद है। महाभाष्यकार जी ने चक्रवर्ती राजा को भी ईश्वर नाम ही से वर्णन किया है उस से भी रामकृष्णादि ईश्वर के अवतार थे।

आर्यसमाजी कहते हैं कि जैसे हम लोग संसारके व्यवहार करते हैं वैसे ही रामकृष्णादि भी करते थे उससे हम और राम कृष्णादि में कुछ भी भेद सिद्ध नहीं हो सकता। इस शङ्का का समाधान यह है कि चक्रवर्ती राजा के हुक्म से जेलखाना तैयार होता है उस जेलखाने के भीतर डाकू चोरादि किये हुए पापकर्म का फल भोगते हैं। यदि उसी जेलखानेके भीतर कैदियों की निगरानी करनेके लिये चक्रवर्ती राजा भी आ खड़ा होवे तो जैसे कैदियों को जेलखाने में तकलीफ दी जाती है वैसे राजा को तकलीफ कोई नहीं दे सकता। प्रत्युत जेलर साहिब दरोगा वगैरह चक्रवर्ती राजाके आगे हाथ बांध कर नमस्कार करते हैं वैसे ही संसाररूपी जेलखाना है, पापी जीव इस में पापका फल दुःख भोगते हैं उसी संसाररूपी जेलखाने में भक्तों की रक्षा करने और दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ईश्वर भी रामकृष्णादि अवतार रूप होकर प्रकट होता है परन्तु उसको दुःख कोई नहीं दे सकता। प्रत्युत भक्तजन हाथ जोड़ कर नमस्कारादि करते हैं उससे भी ईश्वर अवतार धारण करता है।

आर्यसमाजी कहते हैं कि भक्तलोग ईश्वरको अपनेसे भिन्न जानते हैं, वा अभिन्न, यदि अभिन्न कहो तो जीव और ईश्वर में उपास्योपासकभाव न होगा। यदि कहो कि भक्तलोग ईश्वर को अपने से भिन्न जानते हैं तो ईश्वर एकदेशी होगा? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि चेतनस्वरूप से ईश्वर को भक्तलोग अपनेसे अभिन्न जानते हैं परन्तु माया अन्तःकरण उपाधि से भक्तलोग ईश्वरको अपनेसे भिन्न जानते हैं, इससे उपास्योपासकभाव भी हो सकता है। आर्यसमाजी कहते हैं कि जीवेश्वर का भेद नित्य है अथवा अनित्य, यदि कहो जीवेश्वर का भेद नित्य है तो अद्वैत को हानि होगी।

यदि जीवेश्वर भेदको अनित्य कहो तो भेद उत्पत्ति वाला सिद्ध होगा । उत्पत्ति से पहिले भेद का अभाव मानना पड़ेगा, अभाव से भेद की उत्पत्ति का कथन पदार्थविद्याके विरुद्ध है । आर्यसमाजियों की इस शङ्का का समाधान यह है कि माया और अन्तःकरणकी स्थिति के अधीन जीवेश्वर का भेद है जैसे माया और अन्तःकरण सत्यासत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय है वैसे ही जीवेश्वर का भेद भी अनिर्वचनीय है संसार समयमें भक्तलोगों को जीवेश्वर का भेद प्रतीत होता है परन्तु ज्ञानके समय जीवेश्वर के भेद का बाध निश्चय हो जाता है ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि जब भक्त लोग ईश्वर को नहीं देखते तो ईश्वरकी भक्ति का करना ही असंभव है यदि कहो कि भक्तलोग ईश्वर को देखते हैं तो ईश्वर दृश्य होने के कारण मिथ्या होगा जो मिथ्या होता है सो ईश्वर ही नहीं हो सकता ? आर्यसमाजियोंकी इस शङ्काका समाधान यह है कि अन्तःकरण से भक्तों को चेतन में जीवभाव और माया से चेतन में ईश्वरभाव प्रतीत होता है जीवेश्वरभाव साकार और चेतन निराकार है । जीवेश्वरभाव अनिर्वचनीय मिथ्या और चेतन त्रिकाल अबाध नित्य है। आर्यसमाजी कहते हैं कि जब चेतनको ज्ञानगोचर कहें तो भक्तलोग अज्ञानी होंगे । यदि कहो कि चेतन ज्ञानगोचर है तो वह चेतन भी दृश्य होने के कारण मिथ्या होगा । इस का उत्तर यह है कि भक्तलोग दृश्यपदार्थों के बाध को निश्चय कर लेते हैं वह बाध ज्ञान गोचर है भक्तोंके अन्तःकरण में चेतन स्वप्रकाश से भान होता है ज्ञानगोचरता का चेतन में अत्यन्ताभाव है ।

आर्यसमाजी कहते हैं कि जीवेश्वर को मिथ्या कहने से आप मिथ्यावादी हैं । आर्यसमाजियों की इस शङ्का का समाधान यह है कि मिथ्यावादी वह हो सकता है जो कि मिथ्या को सत्य कहता है मिथ्या पदार्थको मिथ्या कथन करने वाला मिथ्यावादी नहीं हो सकता, किन्तु वह सत्यवादी तो हो सकता है । युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से एक त्रिकाल अबाध चेतन ही सत्य है जीवेश्वर मिथ्या सिद्ध चुके हैं उस से हम मिथ्यावादी नहीं समझे जायंगे ।

आर्यसमाजी कहते हैं कि जब जीवेश्वर जगत् मिथ्या हैं तो इन का आधार चेतन है अथवा जड़ यदि चेतन को आधार कहो तो निर्विकारता

की हानि है, यदि कहो कि मिथ्याका आधार जड़ है तो पदार्थविद्या से विरोध होगा क्योंकि पदार्थ विद्या से निर्णय हो चुका है कि जड़ पदार्थ किसी का आधार नहीं हो सकता। इसका उत्तर यह है कि मिथ्या नामरूप और क्रियात्मक दृश्य पदार्थोंका आधार माया विशिष्ट चेतन ईश्वर है केवल चेतन में आधाराधेयभाव न कभी था, न है, और न होगा। दयानन्द ने भी प्रकृति अर्थात् मायाविशिष्ट चेतन ईश्वर ही को सर्वप्रपञ्च का आधार कहा है। यदि वह लेख सत्य है तो आर्यमत में भी शुभाशुभ सर्वकर्मों का आधार ईश्वर है न मानें तो आर्यमत वाला ईश्वर सर्वाधार सिद्ध न होगा वेदान्ती लोग केवल चेतन को निर्विकार मानते हैं।

आर्यसमाजी कहते हैं कि इस समयके सनातन हिन्दुधर्मावलम्बी विद्वान् लोग वेदमन्त्रों के मन माने अर्थ लगाकर ईश्वरके रामकृष्णादि अवतारों को सिद्ध करते हैं सो उन की भूल है आर्यसमाजियों की यह शङ्का भी ठीक नहीं क्योंकि हिन्दु विद्वान् युक्ति और प्रमाणों से वेदमन्त्रोंके अर्थ करते हैं किन्तु दयानन्दने युक्ति और प्रमाणों से विरुद्ध वेदमन्त्रों के अनर्थ लिख मारे हैं सो अनर्थ फिर कहीं दर्शावेंगे।

आर्यसमाजी कहते हैं कि हिन्दु विद्वान् महीधर सायणाचार्य उव्वटाचार्यादि कृत वेदमन्त्रोंके भाष्यको मानते हैं उस भाष्यमें रामकृष्णादि अवतारों का नामतक भी नहीं पाया जाता किन्तु उस भाष्य के विरुद्ध हिन्दु विद्वान् वेदमन्त्रोंका भाष्य करके रामादि अवतारों का हल्ला मचाते फिरते हैं। आर्यों का यह कथन भी असङ्गत है क्योंकि प्रकरण के अनुसार वेदमन्त्रों के अनेक अर्थ सिद्ध हो सकते हैं। इस सिद्धान्तको निरुक्तकारने वर्णन किया है। आर्यसमाजी कहते हैं कि जब रामकृष्णादिको ईश्वरके अवतार मानें तो ईश्वर अनेक हो जायंगे वेदमें ईश्वर एकही कहा है आर्यों का यह प्रश्न भी असङ्गत है क्योंकि जैसे अनेक जलसे भरे घटोंमें सूर्य के अनेक प्रतिबिम्ब भान होते हैं परन्तु सूर्य एकही है। योग शक्तियोंसे योगी अनेक शरीरों को धारण कर लेता है परन्तु योगी एकही है वैसे ही मायाशक्ति सें ईश्वर भी अनेक रामकृष्णादि नाम वाले शरीर धारण कर लेता है परन्तु ईश्वर एक ही है।

आर्यसमाजी कहते हैं कि रामादि अवतार एकदेशीय हैं। यदि ईश्वर अवतार धारण करेगा तो एकदेशी होगा उससे ईश्वर अल्पज्ञ हो जावेगा,

आर्यों का यह कथन भी असम्भव है क्योंकि जैसे चक्रवर्ती राजा दूसरा वेष बदलकर प्रजाकी निगरानी करता है परन्तु चक्रवर्तीपन सर्वज्ञता को नहीं छोड़ता वैसेही रामादि अवतारोंको धरकर भी ईश्वर अल्पज्ञ नहीं होता। आर्यसमाजी कहते हैं कि ईश्वर निराकार है अवतार नहीं धारण करता आर्यों का यह कथनभी ठीक नहीं क्योंकि जब ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो ईश्वर में अवतार धारण करनेकी भी शक्ति है यदि ईश्वर अवतार धारण नहीं कर सक्ता तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् सिद्ध नहीं होता उभयपाशारज्जु न्याय से आर्यों का छूटना नहीं हो सकता। आर्य कहते हैं कि जब ईश्वर अवतार धारण करेगा तो वह ईश्वर कुकर्म भी करेगा आर्योंकी यह शंकाभी असङ्गत है क्योंकि जब विद्वान् जीवभी कुकर्म नहीं करता तो विद्वान् ईश्वर पर कुकर्म करने का सन्देह करना पागलों का तमाशा है।

आर्य कहते हैं कि जब ईश्वर साकार है तो वह किस के आधार ठहरा है क्योंकि साकार पदार्थ विना आधारके नहीं ठहर सकता आर्यों का यह प्रश्नभी ठीक नहीं क्योंकि (भूमा कुत्र प्रतितिष्ठति) यह छान्दोग्योपनिषद् की श्रुति है प्रकरणमें भूमा नाम ईश्वरका है उक्त वाक्यमें प्रश्न है कि ईश्वर कहां रहता है? (स्वमहिम्नि) इस वाक्यमें उक्त प्रश्नका उत्तर है कि ईश्वर अपनी महिमामें ठहरा है। आर्य कहते हैं कि साकार ईश्वर का रूप रंग कैसा है; साकार वस्तु रूप रङ्गके विना नहीं होती। आर्योंका इस प्रश्न का उत्तर वेद प्रमाणों से दिया जाता है जैसे कि—

य० अ० ३१ मं० २२ ॥ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे-पार्श्वे नक्षत्राणि रूपम्।

इस मंत्रमें सारे आदि ईश्वरके रूप रंग वर्णन किये हैं तथा राम कृष्णादि ईश्वरके अवतारोंके रूप रंगही ईश्वर के रूप रंग अनुभव सिद्ध हैं अनुभव सिद्ध बात किसी प्रमाण और युक्ति से खण्डन नहीं हो सकती।

ऋ० मण्ड० ३ सू० ५५ मं० ९ निवेवेतिपलितोदूत० ॥

इसके भाष्यमें स्वयं दयानन्दने ईश्वरको समाचार लाने वाला श्वेत केशों से युक्त विट्ठीरसां के समान और अनेक रूपों को धारण करने वाला लिखा है। उससे भी ईश्वर साकार है साकार ईश्वर अवतार धारण करता है।

आर्य कहते हैं कि ईश्वर अचल है रामकृष्णादि चलते थे उससे रामादि ईश्वर के अवतार नहीं आर्यों की यह शंका भी असंगत है क्योंकि—

य० अ० ३१ मं० १९ (प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।

इस मंत्रमें ईश्वरको सर्वत्र विचरनेवाला वर्णन किया है (एकआत्मा) बहुधास्तूयते) इस निरुक्त प्रमाणसे भी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि एकही ईश्वर मायाशक्तिसे अनेक रामकृष्णादि रूप होता है। आर्य कहते हैं कि ईश्वर संग्राम नहीं करता रामकृष्णादि संग्राम करते थे उससे रामकृष्णादि ईश्वरके अवतार नहीं हो सकते । आर्यों का यह प्रश्नभी ठीक नहीं क्योंकि

ऋ०मण्ड०४ सू०४२ मं० ५॥ मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो० ।

इस मन्त्र के भाष्य में दयानन्द ही ने ईश्वर को संग्राम करनेवाला कहा है । उससे ईश्वर ही रामकृष्णादि अवतारोंको धारण करता है ।

आर्य कहते हैं कि किसी वेद मन्त्र में रामकृष्णादि दश अवतारों को लिखा दिखलाइये तो इसका उत्तर नीचे लिखा जाता है जैसे कि—

ऋ०मण्ड० ६ सू० ४७ मं० १८ ॥ रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्य हरयः शतादश ॥ १८ ॥

इत्यादि वेद मंत्रों में रामकृष्णादि दश अवतारों को लिखा है ॥

भागव० स्कं० ६ अ० ८ श्लो० १७ ॥ बुद्धस्तु पाखण्ड गणात्प्रमादात्० ।

इस में असुरों का प्रमाद और पाखण्ड नष्ट करने के लिये ईश्वरके बुद्ध का वर्णन किया है ॥

अग्निपु०अ०४९श्लो० ८ ॥ शान्तात्मालंबकर्णश्च गौराङ्गश्चांबरावृतः । ऊर्ध्वपद्मास्थितोबुद्धो वरदाऽभयदायकः ॥

इस में भी ईश्वर के बुद्ध अवतार ही का वर्णन है ॥

लिंगपु० उत्तरार्द्ध० अ० ४८ श्लो० २८ ॥ मत्स्यःकूर्मोऽथवराहो नारसिंहोऽथवामनः । रामोरामःसकृष्णश्चबुद्धः कल्कीतथैवच ॥ तेषामपिचगायत्री कृत्वास्थाप्यचपूजयेत् ॥ भविष्यपु० उत्तरार्द्ध० अ० ७३ ॥ मत्स्यंकूर्मंवराहंच नारसिंहं त्रिविक्रमम् । रामं रामंच-

कृष्णंच बुद्धंचकल्किनंतथा ॥ हेमाद्रौ० । बुद्धस्तुद्विभुजःकार्य्यो ध्यानस्तिमितलोचनः ॥ वराहपु० ॥ मत्स्यःकूर्मोवराहश्च नरसिंहोऽथवामनः । रामोरामश्च कृष्णश्च बुद्धःकल्कीचतेदश ॥ गर्गसंहिता० अ० १३ ॥ श्लो० ४८ ॥ ५० ॥ वामनायनमस्तुभ्यं नृसिंहायनमोनमः । नमोमत्स्यायकूर्माय वराहायनमोनमः ॥ नमोबुद्धायशुद्धाय कल्किनेचार्तिहारिणे ॥ मत्स्य पु० अ० ४७ श्लो० २४७ ॥ कर्त्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणांप्रणाशनम् । बुद्धोनवमकोजज्ञे तपसापुष्करेक्षणः ॥ कूर्म पु० अ० । ६ श्लो० १५ ॥ नमोबुद्धायशुद्धाय नमस्तेज्ञानरूपिणे । नमस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतांनमः ॥ वायुपु० अ० ३० श्लो० २२५ ॥ नमःशुद्धायबुद्धाय मोभणायाक्षतायच ॥ नृसिंह पु० । कलौप्राप्तेयथाबुद्धो भवेन्नारायणःप्रभुः० ॥ गरुड़पु० उत्तरार्द्धे० अ० ३ श्लो० ३५ ॥ मत्स्यंकूर्मंचवाराहं नारसिंहंचवामनम् । रामंरामंचकृष्णंच बुद्धंचैवसकल्किनम् । एतानिदशनामानिस्मर्त्तव्यानिसदाबुधैः ॥ देवी०स्कं० १ अ०८५ श्लो०१४। दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये । बुद्धरूपंदधौयोऽसौ तस्मैदेवायतेनमः पद्म पु० ॥ क्रियाखंडे अ० ११ श्लो० ८४ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय सुकृतायनमोनमः ॥ कल्किपु० अ० ३ श्लो०२६ ॥ बुद्धावतारस्त्वमसि० ॥ शंकरदिग्वि० स० १२ श्लो० ८ ॥ योगिनांचक्रवर्तीसबुद्धः ॥

इत्यादि अष्टादशपुराणों में रामकृष्णादि ईश्वर के दश अवतारों का वर्णन है ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि अवतारों की पूरी कथा वेदों में नहीं पाई जाती तो उत्तर यह है कि जैसे योग शब्द तो वेदों में आता है परन्तु योग के अष्टाङ्ग किसी वेदमन्त्र में भी नहीं देखे जाते, यज्ञ शब्द तो वेदों में देखा जाता है परन्तु यज्ञ की सामग्री और यज्ञ के पात्र किसी वेदमन्त्र में नहीं पाए जाते वैसे ही अवतारोंके नाम ही वेदोंमें है परन्तु पूरी कथा अवतारों की वाल्मीकीयरामायणादि में है देखिये ।

सामवे० प्रपा० ७ अनु० ५ सू० २ मं० ३ ॥ भद्रोभद्रया सच-मान आगात् । स्वसारं जारोभ्येऽति पश्चात् । सुप्रकेतैर्द्युभिरग्नि र्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात् ।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब सीता जी समेत रामलक्ष्मण जी बन में गये तब रामलक्ष्मण जी मृग मारने चले गये, पीछे रावण सीता जी को हर ले गया फिर रामलक्ष्मणजी रावण के साथ संग्राम करनेके लिये लङ्का में आये और रावण का सर्वस्व नष्ट कर डाला ॥

सीतेवन्दामहे त्वाऽर्वाची सुभगे भव । यन्थानः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥ (अथर्व० कां० ३ सू० १७ मं० ८)

अर्थ-(सीते) हे सीते (त्वा त्वाम्) (वन्दामहे) नमस्कुर्मः (सीते) हे सौभाग्य युक्ते सीते (अर्थस्पष्ट) भाव यह कि उक्त मन्त्र में सोताजी का होना प्रसिद्ध है ॥

अष्टाचक्रानवद्वारा देवानां पूरयोध्या । तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥ (अथर्व० कां० १० मं० ३१);

इस मन्त्र में अयोध्या नगरीका वर्णन है ॥

यस्येक्ष्वाकुरुपव्रते० (भा०) यस्य जनपदस्य इक्ष्वाकूराजा-व्रते कर्मणि रक्षणरूपे उपैधते प्रवर्धते ॥ (ऋग्वे० मण्ड० १ सू० ६० मं० ४)

इस मंत्रमें इक्ष्वाकु राजा का वर्णन है ॥

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ॥ भा०—यस्य दशरथस्य चत्वारिंशच्छोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।

(ऋ० मण्ड० १ सू० १२६ मं० ५)

इस मन्त्र में राजा दशरथ का होना कहा है ॥

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः० (अथर्व० कां० ४ अ० २ मं० १)

इस मन्त्र में दश शिर दश मुख युक्त रावण का होना कहा है ॥

महावीरस्यअग्नहु० ॥ य० अ० १४ मं० १८ ॥

इस मन्त्र में महावीर जी का होना कहा है ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः० (य० अ० २५ मं० २३) त्वंस्त्रीत्वंपुमानसि त्वंकुमारउतवाकुमारी ॥ त्वं जीर्णोदण्डेन वञ्चसि त्वंजातोभवसिविश्वतोमुखः ॥ (अथर्व का० १० सू० ८ मं० २७) नक्तंजातस्यौषधेरामेकृष्णे० । (अथर्व० का० १ प्र० ५ मं० १

इस मन्त्र में औषधीकी प्रार्थना पूर्वक राम कृष्ण अवतारों का वर्णन किया है ॥

ऋ० मण्ड० ८ सू० ७४ मं० ३ ॥ अयंवां कृष्णं० (भा०) (अयंकृष्णोनाममन्त्रद्रष्टाऋषिः) शत० कां १४ ब्रा० २ कं० २ ॥ यज्ञो वैकृष्णः० ॥ छान्दोग्य० अ० ३ खं० १७ मं० ६ (कृष्णाय देवकीपुत्राय०) अथर्व० का० ८ अनु० ३ सू० ६ मं० ५ (यः कृष्णः केश्यसुरस्तंबज उत तुण्डिकः)

इत्यादि मन्त्रों में दुर्गा वामन कृष्णावतार और केशी बकासुरादि का होना कहा है ॥

(ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता०) (भा०) कल्माषः—कृष्णवर्णः ग्रीवासु यस्य स कल्माषग्रीवः । एतदाख्यः सर्पो रक्षिता गोपायिता रक्षितव्यानाम् ॥ (अथर्व० का० ३ सू० २७ मं० ५

इस मन्त्र में काली नाग का वर्णन है ॥

वायवायाहिदर्शतेमे सोमाअरंकृताः ॥ (ऋ० म० १ सू० २ मं० १)

इस मन्त्र में नाना भांति के शृङ्गारादि का ईश्वर को समर्पण है । निराकार को समर्पण नहीं हो सकता किन्तु साकार कृष्ण परमात्मा ही को खान पान शृङ्गारादि का समर्पण हो सकता है ॥

मानः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः० (ऋ० मण्ड० १ सू० १०४ मं० ८)

इस मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना है कि हे ईश्वर हमारे प्रिय भोगोंको न चोर और न चुरावें प्रकरण में सबसे प्रियभोग दूध घी माखनादि ही अ-

नुभव सिद्ध हैं उन का चुराना वा चुरवाना निराकार में सर्वथा असंभव है। किन्तु साकार परमात्मा कृष्ण ही इस लीला को दर्शाते थे ॥

उद्गातेवशकुनेसामगायसि० । (ऋ० मण्ड० २ सू० ४३ मं० २)

इस मंत्रमें ईश्वर को सामवेदका गाने बजाने वाला कहा है गाना बजाना भी निराकार में नहीं सिद्ध होता किन्तु साकार परमात्मा श्रीकृष्ण ही व सुरी बजाते और सामवेद को रामलीला में गाते थे।

गणानां त्वा गणपति ᳪ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति०। य० अ० २३ मं० ८ ॥

इस मंत्र में ईश्वर को प्यारा पति कहा है निराकार में पतिभाव सर्वथा असंभव है किन्तु साकार परमात्मा कृष्ण ही को गोपियों ने प्रियपतिः अर्थात् रक्षा करने वाला प्यारा पति वर्णन किया है ॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत० । अथर्व० कां० १९ व० ८ मं० १० ॥

इस मंत्रमें ईश्वर का दर्शन और ईश्वरको नमस्ते कहा है। दर्शन वा नमस्ते निराकार में नहीं हो सके। किन्तु साकार कृष्ण परमात्मा ही का दर्शन और उसी को नमस्ते भक्त लोग किया करते हैं।

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च० । य० अ० १६ मं० ३०)

इस मंत्र में ईश्वर के वामनावतार का वर्णन है ॥

वामनो हि विष्णुः० । शत० १ ब्रा० ३ कं० ५

इस प्रमाण से भी विष्णु परमात्मा का वामनावतार सिद्ध हो चुका है ॥

यो दुष्टोऽसुरमण्डपेसुर गणैः श्रीवामनःशामगः । तस्याहंचरणारविन्दयुगलं वन्देपरंपावनम् ॥ पद्मपु० भूमिखं० १८ श्लो० ७६ ॥

इस प्रमाण से भी वेदोक्त ईश्वर का वामनावतार प्रसिद्ध है ॥

अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रःसहस्रबाह्वे० । सामवे० कां०१प्र०२मं०५ ॥

इस मंत्र में ईश्वर के परशुरामावतार का वर्णन है।

वराहेणपृथिवी संविदाना सूकरायविजिहीतेमृगाय० । अथर्व० कां० १२ सू० १ मं० ४)

इस मंत्र में ईश्वर के वराहावतार का होना है ॥

स वराहो रूपंकृत्वोपनिमज्जत् सपृथिवीमधआच्छत् तस्याउपहत्योदमज्जत् । तत्पुष्करपर्णेऽप्रथाय । तैतिरीया० ब्रा० १ म० ३)

इस मंत्र में वेदोक्त वराहावतार ही का विशेष वर्णन है ॥

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगोन भीमः कुचरोगिरिष्ठाः० ।

(य० अ० १८ मं० ७१ ॥

इस मंत्र में ईश्वर के नृसिंहावतार का होना है ॥

मन्युनामहादेवम्० । य० अ० ३८ म० ८ ॥

इस मंत्र में ईश्वर के महादेव अवतार का वर्णन है ॥

दशानामेकं कपिलं समानं० । ऋ० मण्ड०१०सू०२८म०१६ ॥

इस मंत्र में ईश्वर के कपिलावतार का होना है ॥

ब्रह्महदेवेभ्योविजिग्ये । केनो० ख० ३ म० १४ ।

इत्यादि मंत्रों में ईश्वर के यक्ष अवतार का होना है ॥

यस्य पृथिवीशरीरम् ॥ शत० का० १४ ब्रा० ५ कं० ७ से ७६ तक इत्यादि इक्कीस मंत्रों में ईश्वर के नाना प्रकार के शरीर वर्णन किये हैं ।

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम ॥

गी० ४ श्लोक ८ ।

अ० १० श्लो० २९ ॥ आदित्यानामहंविष्णुः० श्लो० २३ रुद्राणांशंकरश्चास्मि० ॥ श्लो० २१ ॥ सिद्धानांकपिलोमुनिः० ॥ श्लो० २७ ॥ नराणांचनराधिपम्० ॥ श्लो० ३ मृगाणांचमृगेन्द्रोऽहम् ॥ श्लो० ३१ ॥ झषाणांमकरश्चास्मि० ॥

इत्यादि गीताके प्रमाणों से भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ है कि राम कृष्णादि ईश्वर के अवतार तो मुख्य हैं । परन्तु जब जब आवश्यकता होती है तब तब दश अवतारों से भिन्न भी असंख्यात अवतारोंको ईश्वर धारण कर लेता है ॥

आर्य कहते हैं कि ग्रन्थ साहिब में ईश्वर के अवतारों का खण्डन है । आर्यों का यह कथन भी सर्वथा असंगत है क्योंकि (दश अवतारी रामराजा आया) ग्रन्थ साहिबके इस शब्द में ईश्वर के दश अवतारों का वर्णन है ।

वाहगुरू वाहगुरू वाहगुरू वाह जीव ।

पीत वसन कुन्द दशन नात तो यशोध जिसे दही भात खाह जीव ॥

इस सवैये में कृष्णपरमात्मा ही का नाम वाह गुरू कहा है सिद्धान्त यह है कि ग्रन्थ साहिब में भी रामकृष्णादि ईश्वर के दश अवतार मुख्य और दश से भिन्न ईश्वर के असंख्यात अवतार वर्णन किये हैं । यहां वेदोक्त वेदान्त का सिद्धान्त तो यह है कि माया युक्त ईश्वर ही रामकृष्णादि अवतारों को धारण करता है माया रहित नित्यमुक्त नित्यशुद्ध ब्रह्मचेतनमें जीवेश्वर और रामकृष्णादि अवतारों का सर्वथा परमार्थसे अत्यन्ताभाव है इस व्याख्यान में आर्योंके जो अवतार विषयक प्रश्न थे उनके युक्ति और वेदादि प्रमाणों से उत्तर दिये हैं ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ब्रह्मचर्याश्रम निरूपण।

व्याख्यान नं० १४

ओ३म्–प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ अथर्व० कां० ३ व० ७ मं० १ ओ३म्–शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

नमस्कारात्मक मंगल करनेके पश्चात् ब्रह्मचर्याश्रम विषयक व्याख्यान लिखा जाता है॥ (तथाहि)—

(योगदर्शन पा० २ सू० ३८) (ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः) (व्यासकृतभाष्यम्) यस्य लाभादप्रतिघान् गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्च विनयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति) (पा० २ सू० ३) (ब्रह्मचर्यम्) (भा०) ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः)

इन योगदर्शन के प्रमाणों से सिद्ध हो चुका कि वीर्य के रोकने का नाम ही ब्रह्मचर्य है॥

स्मरणंकीर्त्तनंकेलिः प्रेक्षणंगुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेवच॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्तिमनीषिणः।
विपरीतंब्रह्मचर्य–मनुष्ठेयंमुमुक्षुभिः॥

स्त्री का चिन्तन १ गुणोंका वर्णन २ क्रीड़ादि करना ३ देखना ४ एकांत भाषण ५ प्राप्तिकी इच्छा ६ प्राप्ति की तरीका ७ और समागम करलेना ८ यह आठ प्रकार का मैथुन उक्त स्मृतिमें कहा है उनको छोड़ देनेका नाम ब्रह्म-

चर्य है अभिप्राय यह है कि इस प्रमाण से भी वीर्य के रोकने ही का नाम ब्रह्मचर्य है ।

श्रवणंकीर्त्तनंचिन्ता स्मरणंरहसिस्थितिः ।
जल्पनंदृढ़संकल्पः प्राप्तिश्चेत्यष्टधास्मृतम्

(विचा० अ० ४ श्लोक० ८)

मैथुनंचाष्टधाप्रोक्तं स्मृतौयन्मुनिभिःपुरा ।
विपरीतंयदेतस्माद् ब्रह्मचर्यंप्रकीर्तितम् ॥

(वि० अ० ४ श्लो० ४)

इन प्रमाणों का भी यही सिद्धान्त है कि वीर्य के रोकने ही का नाम ब्रह्मचर्य है ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥

(अथर्व० कां० ११ अनु० ३ मं० १)

इस मन्त्र में लक्षणा और प्रकरण से सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्य करके बुद्धि बल प्रमाण को सम्पादन करे पश्चात् विवाह करे इस मन्त्र में बैल और घोड़े को भी ब्रह्मचर्य का करना कहा है । आर्यसमाजी कहते हैं कि कन्या भी ब्रह्मचर्य करे आर्यसमाजियों का यह कथन सर्वथा असंगत है क्योंकि वीर्य के रोकने का नाम ब्रह्मचर्य है स्त्री में वीर्य ही नहीं किन्तु रज है रज को सर्व शक्तिमान् ईश्वर भी नहीं रोक सकता रज के रोकने को ब्रह्मचर्य वर्णन करना प्रमाण शून्य है ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजाराष्ट्रं विरक्षति० ॥

(अथर्व० कां० ११ अनु० ३ मं० १७)

इस मन्त्र में क्षत्रिय कुमार उपलक्षण है तदोपलक्षित ब्राह्मणादि वर्णों का अध्याहार होता है अभिप्राय यह है कि वीर्य का रोकना स्वरूप ब्रह्मचर्य मनुष्य मात्रके लिये है यदि सूक्ष्म विचार कियाजावे तो पूर्वोक्त वेद प्रमाण से पशु पक्षि के लिये भी वीर्य का रोकना रूप ब्रह्मचर्य सिद्ध हो चुका है ॥

विचार सागर वेदान्त के ग्रन्थ में वीर्य निरोध स्वरूप ब्रह्मचर्य के अनेक लाभ दर्शाये हैं जैसे कि विचार सागर तरङ्ग पांचवां ॥

जोनानाविधभोजनखावै । फल ताको रस बिन्दु उपावै ॥
जीवनविन्दुअधीनसवनको । नशतशोकविन्दुहूंतेमनको ॥
है जबजनकोमनमलवासी । करत शोक अति धरत उदासी ॥
रुधिरनिवासकरत मन जबहूं । चंचलअधिकरजोगुणतबहूं ॥
जब मन करत विन्दुमें वासा । तभी शोक चंचलता नाशा ॥
पुनआपहिवलवन्त जन जानै । है प्रसन्न शुभ कार्य ठानै ॥
बिन्दुअधिक होवै जा जनमें । सुन्दर कांतिरूपता तन में ॥
विन्दुहुको तनमें उजियारो । नशै विन्दुतन मन हत्यारो ॥
जाकोविन्दुनकबहूं नशै । बलिनपलित तिह तनु परकाशै ॥
अष्टसिद्धिजेधारतयोगी । विन्दुखसैहारततेभोगी । इत्यादि० ॥

हस्त्यश्वारोहणंचैव सन्त्यजेत्संयतेन्द्रियः ।
सन्ध्योपास्तिं प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतेस्थितः ॥

हारीतस्मृतौ अ० ३ श्लो० ९ ॥

इस में हारीत मुनि जी कहते हैं कि ब्रह्मचारी हाथी घोड़ेकी असवारी न करे । जितेन्द्रिय रहे सन्ध्योपासनाको यथावत् करे ॥

वर्जयेन्मधुमांसंच गन्धंमाल्यंरसान्स्त्रियः ।
शुक्तानियानिसर्वाणि प्राणिनांचैव हिंसनम् ॥

मनु० अ० २ श्लो १७७ ॥

इस में मनुजी कहते हैं कि ब्रह्मचारी कोई नशा भी न पीवे न खावे नशों का खण्डन मदमर्दन व्याख्यान में किया है ब्रह्मचारी मांस भी न खावे मांस का खण्डन भी मांस खण्डन व्याख्यानमें करदिया है सुगन्ध युक्त पुष्पों की माला भी ब्रह्मचारी न पहिरे स्त्री का संसर्ग ब्रह्मचारी कभी न करे ॥

नारीसुप्रेयसीमत्वा प्रीतिंकुर्वन्तियेनराः ।
ते शठामन्दमतयस्तेमुधानरदेहकाः ॥

वि० अ० ४ श्लो० ४ ॥

भा०दो०-तियाअतिप्रियजेजाननर, करतप्रीतिअधिकाय ।
ते शठ अतिमतिमन्दजग, वृथाधरी नर काय ॥
समांसरुधिरास्थित्वक्कश्मलैः परिपूरितम् ।
निर्गुणंमलिनामेध्यं त्यजेत्तद्देहमग्निवत् ॥
वि० अ० ४ श्लो० ५ ॥
भा०दो०-अस्थीमांस और रुधिरत्वक । कश्मलनखसिखपूर॥
निर्धनअशुचिमलीनतनुत्यागआगज्योंदूर ॥ ५ ॥
संस्पृष्टं दुःखदंचाहेर्विषंनारीतुचिन्तिता ।
ज्ञानंध्यानंतथाप्राणान् समूलं हरते पुनः ॥
वि० अ० ४ श्लो० ६ ॥
भा०दो०=अहिविषतनुकाटैंचढ़ै,यहचितवतचढ़जाय ।
ज्ञानध्यानपुनप्राणहू, लेतमूलयुत खाय ॥ ६॥

इत्यादि प्रमाणों का भी यही सार है कि ब्रह्मचारी सर्वथा सर्वदा स्त्री का संसर्ग न करे । मनु जी वर्णन करते हैं कि ब्रह्मचारी खट्टी वस्तु भी न खावे । मनुजी कहते हैं कि ब्रह्मचारी जीव हिंसाभी कभी न करे हिंसा के खण्डन में अनेक प्रमाण लिखे हैं । जैसे कि--

अहिंसा परमो धर्मः० ।

इस महाभारत के प्रमाणसे अहिंसा ही सर्वोत्तमधर्म सिद्ध हो चुका है। उस से ब्रह्मचारी अहिंसा धर्म को सम्पादन करे ।

कुष्ठीगोवधकारीस्यान्नरकान्तेऽस्यनिष्कृतिः ।
शातातपस्मृतिः अ० २ श्लो० १३ ॥

इस में गोहिंसक को कुष्ठरोग का और नरक प्राप्ति का दंड वर्णन किया है । (श्लो० २०)

पितृहाचेतनाहीनो मातृहान्धःप्रजायते ।

इसमें पितृहिंसकको जड़योनि और मातृ हिंसक को अन्धे की योनी में आना कहा है । (श्लो० २६)

हत्वावै बालकंशुभ्रं स्वसृजातंचमूलजम् ।
तेनसंजायते वन्ध्यामृतवत्साचनारको ॥

इसमें बालहिंसककी वन्ध्या स्त्री का जन्म वर्णन किया है । (श्लो० ३२)

स्वसृघातीतुबधिरो नरकान्तेप्रजायते ।
मूकीभ्रातृबधेचैवं तस्येयंनिष्कृतिःस्मृता ॥

इसमें भगिनीके हिंसकको बधिर होकर नरकमें जाने का दंड और भ्राताहिंसककी गूंगा होने का ईश्वरकी ओरसे दंड है (श्लो० ४२)

गोत्रहापुरुषःकुष्ठी निर्वंशश्चोपजायते० ।

इसमें गोत्रहिंसक को कुष्ठ और निर्वंशपन का दंड है (श्लो० ५२)

सर्वकार्येष्वसिद्धार्थी गजघातीभवेन्नरः ।

इसमें हाथी हिंसक का सर्वथा सत्यानाश हो जाना कहा है । (श्लो० ५४)

उष्ट्रे विनिहतेचैव जायतेविकृतस्वरः ।

इसमें ऊंटहिंसकको भाषा बिगड़नेका दंड कहा है । (श्लो० ५५)

अश्वेविनिहतेचैव वक्रकण्ठःप्रजायते ।

इस में घोड़े के हिंसक को कण्ठ बिगड़ जाने का दण्ड है ॥ (श्लो० ५७)

महिषीघातनेचैव कृष्णगुल्मः प्रजायते ।

इस में भैंसीहिंसक को कालेरंग का गुल्मरोग दण्ड कहा है ॥ (श्लोक ५९)

सूकरेनिहतेचैव दन्तुरोजायतेनरः ।

इसमें सूकरहिंसक को बड़े २ दन्तयुक्त योनिमें जानेका दण्ड है (श्लोक ६०)

हरिणेनिहतेखञ्जः शृगालेतुविपादकः ।

इस श्लोक में हिरण हिंसक को गंजेपनका, और गीदड़हिंसक को पङ्गुपन का दण्ड है ॥ (श्लोक ६१)

अजाभिघातनेचैव पांडुरोगः प्रजायते ।

इस में बकरीहिंसक को पाण्डुरोग का दण्ड कहा है (श्लोक ६२)

उरभ्रेनिहतेचैव अधिकाङ्गःप्रजायते ।

इस में मेढ़ा हिंसक को अधिक अङ्ग होने का दण्ड है ॥ (श्लोक ६३)

मार्जारेनिहतेचैव जायतेपिङ्गलोचनः ।

इसमें बिड़ाल हिंसक को बिल्ली जैसे नेत्र होनेका दण्ड है ॥ (श्लोक ६४)

जायतेचक्रपादस्तु निहतेशुनिमानवः ।

इस में कुत्ते के हिंसक को चक्रपाद योनि की सजा है ॥ (श्लो० ६५)

शशकेनिहतेचैव कुब्जकर्णस्तुजायते ।

इस में खरगोश के हिंसक को वक्र कान वाले की योनिका दण्ड वर्णन किया है ॥ (श्लोक ६६)

नकुलस्याभिहनने जायतेवक्रमण्डलम् ।

इस में निवला के हिंसकको वक्र शरीर की योनि का दण्ड कहा है ॥

काकघाती कर्णहीनो० (श्लो० ७३)

इस में कौवे के हिंसक को कान रहित योनि का दण्ड ईश्वर की ओर से कहा है । प्रकरण यह कि ब्रह्मचारी को चाहिये कि किसी जीव को भी कभी हिंसा न करे ॥

अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।
कामंक्रोधंचलोभंच नर्त्तनंगीतवादनम् ॥

(मनु० अ० २ श्लो० १७८)

इस में मनु जी कहते हैं कि उद्वर्त्तन तेल फुलेल साबुनादि को भी ब्रह्मचारी मर्दन न करे । आंखों में काजल न डाले, जूता न पहरे, छाता न लगावे, सिद्धान्त यह कि ब्रह्मचारी तितिक्षा को सम्पादन करे । काम क्रोध लोभ को अन्तःकरण से ब्रह्मचारी निकाल देवे । गाने बजाने नाचने को भी ब्रह्मचारी न कभी सुने और न देखे ॥

अब कामादि दोषोंका परिणाम और उनका खण्डन लिखा जाता है (तथाहि)

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा० (भा०)

हे काम ! त्वं सहसासि परधर्षणसामर्थ्येन प्रतिष्ठितोऽसि विभुः सर्वविषयत्वाद्व्याप्तः विभावा विशेषेण दीप्यमानः ।

(अथर्व० कां० १९ सू० ५२ मं० २)

इस वेद मन्त्रमें काम दोषको सर्व विषयों में व्यापक वर्णन किया है॥

अरविन्दामशोकश्च चूतश्चनवमल्लिका ।
नीलोत्पलन्तु पञ्चैते पञ्चबाणस्यसायकाः ॥

इस श्लोक में काम के पांच बाणों का वर्णन है ॥

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो ।
व्रणीपूतिक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ।
क्षुधाक्षामोजीर्णः पिठरजकपालार्पितगलः ।
शुनीमन्वेतिश्वाहतमपिचहन्त्येवमदनः ॥

इस का तात्पर्य यह कि एक दिन किसी बगीचे में राजा भर्तृहरि जी बैठे थे वहां एक कुत्ती के पीछे चले जाते कामातुर कुत्ते को देखा और भर्तृहरि जी उस कुत्ते का स्वरूप और काम की प्रबलता वर्णन करने लगे जैसे कि अहो कामवीर इस मरे सदृश कुत्ते को भी मार रहा है क्योंकि इस कुत्तेका शरीर सूखा हुआ है आंख से काणा और शिर से गंजा है कान भी कटे हुए हैं बूढ़ा है बल हीन है गले में हांडी का गला फंसा है अंगोंमें घाम लगे हैं पीव बहरही है लांगूल भी कटी हुई है चमड़े में कीड़े पड़े हैं और भूख से व्याकुल है इस पर भी यह कुत्ता काम की चेष्टा से बाज नहीं आता और काम भी जब ऐसे मरे कुत्ते को मार रहा है-तो जो सुन्दर रूप वाले युवा धनी हैं उन मनुष्यों के बुद्धि बल पराक्रम का सत्यानाश क्यों न करेगा किन्तु अवश्य ही करेगा ॥

प्रकरण यह है कि ब्रह्मचारी भी काम दोषकी वस्तु को विचार शस्त्र से नष्ट कर डाले, क्योंकि लोहे के शस्त्र से काम शत्रुका नाश कभी नहीं हो सकता ॥

शृङ्गारशतक—वेश्यासौमदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता ।
कामिभिर्यत्रहूयन्ते यौवनानिधनानिच ॥

इसमें भर्तृहरिजी कहते हैं कि जो मनुष्य कामके वशमें हैं वे वेश्यारूपी अग्निमें सुन्दरता रूपी लकड़ियों से धन और युवापन को भस्म कर रहे हैं॥

मृगयाक्षोदिवास्वप्नः परिवादःस्त्रियोमदः ।
तौर्य्यत्रिकंवृथाटयाच कामजोदशकोगणः ॥

इसमें मनुजी कहते हैं कि जिसके अन्तःकरणमें काम शत्रु बैठा है उसके अन्तःकरण में दश दोष रूपी शत्रु और भी तशरीफ रखते हैं। उन दशों में

से एक शिकार खेलने का इरादा है । शिकार खेलनेवाला बिना अपराध के जीव हिंसा करता है ॥

एक समय हम मध्यदेश जिला सिवनी छपारा में धर्मोपदेश देने को गए। सुना कि वहांके डिप्टी कमिश्नर शिकार खेलनेको गये थे, जंगलसे एक शेर निकला साहिबने उसके गोली मारी । गोली खाकर शेर एक झाड़ में जा बैठा साहिबने शेर को मरा समझा और झाड़के निकट जाकर शेर को साहिब देखने लगे भीतर से शेर जखमी हुआ हो कूद कर साहिबके लिपटा और छाती को चीर डाला थोड़ी देर में साहिब और शेर दोनों ही मर गये ॥

इतिहासों से जाना जाता है कि राजा दशरथ भी शिकार खेलने को गए थे, बनमें एक बावली थी, वहां एक श्रवण नामवाला भक्त माता पिता के लिये पानी भरने गया, दशरथने मृग जानकर उसको बाणसे मारा, उससे वह श्रवण मर गया, इस घटनाको देख दशरथ ने स्वयं पानीका घड़ा उठाया और श्रवण के माता पिताको पिलाने लगा, श्रवणके माता पिताने पूछा कि तू कौन है, दशरथ ने अपना नाम बतलाया और श्रवण का मरण भी बतला दिया, श्रवण के माता पिता ने शाप दिया कि जैसे हम पुत्र के वियोग से मरे हैं वैसे ही आप भी मरेंगे ॥

इतिहासों से ज्ञात होता है कि राजा परीक्षित का मृत्यु भी शिकार खेलने हीका परिणाम था । क्योंकि वह भी शिकार खेलने गया था, एक ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डाल कर चला गया, जब ऋषि उठे तो राजा परीक्षितको शाप दे दिया । उसी शाप से राजा परीक्षित का मृत्यु हुआ था । यह कामजन्यदोष शिकार खेलनेका फल है । जुए का खेलना दूसरा दोष काम से उत्पन्न होता है ॥

लक्ष्मी वहां ठहरै नहीं, जहां द्यूत को त्रास ।
पादप तहां न ऊपजे, जहां अनिल परकाश ॥

जुआ खेलने ही से कौरव पाण्डवों का सर्वस्व नाश हो गया । आर्य्यसमाजी कहते हैं कि शिव जी भी तो जूए बाज थे । आर्यसमाजियोंका यह कथन सर्वथा असंगत है क्योंकि ईश्वर के अवतार वेदोक्त शिवजी जूएबाज नहीं थे किन्तु लक्षणों से सिद्ध होता है कि वाममार्गोक्त शिव जी जूएबाज थे । चार घड़ी के तड़के नीन्द का होना तीसरा दोष काम से उत्पन्न होता है । हिन्दु मतोक्त ग्रन्थोंसे विदित होता है कि मनुष्य को चाहिये कि रात्रि

के चार बजे उठे, प्रथम दिशा जावे फिर स्नान करे पश्चात् प्राणायामादि द्वारा ईश्वरकी भक्ति करे फिर हवाखानेको पैदल निकल जावे, उसके पश्चात् अपना कर्तव्य कर्म करे। परन्तु काम की कृपा से इस समय यह सर्वोत्तम कर्म भी नष्ट भ्रष्ट हो गया है। लाखों वा करोड़ों हिन्दु सन्तानोंमें से कोई एक दो ही पूर्वोक्त नित्य कर्मोंको करता होगा। शेष हिन्दु सन्तानों की निगरानी की जाती है तो ऐसे बहुत दृष्टिगोचर होते हैं कि कुम्भकरण के भी बड़े भ्राता हो बैठे हैं। रात्रि के सोये दिनके बारह बजे, उठते हैं बहुत प्रातः काल उठकर बूट को रगड़ने लग जाते हैं खड़े २ मूतते हैं दिशा फिर कर पानी से भी नहीं धोते बिल्ली कुत्तों के मुख के साथ मुख को मिलाने लग जाते हैं। जो हिन्दु संतान रात्रि के चार बजे उठते हैं वह घासलेट के तेल की लैंप जलाकर सामने रख लेते हैं मुखमें चुरट दबा लेते हैं। कयिट माने बिल्ली, रायट माने चूहा, इस प्रकार का जप जपने लग जाते हैं। रामकृष्ण शिवादि नाम भी नहीं लेते। यह सब काम दोष जन्य नींद का फल है सब से बड़ी नींद अविद्या की भी अनुभव सिद्ध है।

दूसरे की निन्दा और अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसाका करना यह काम जन्य चौथा दोष हैं। दूसरेकी निन्दा करनेसे परस्पर झगड़ा खड़ा हो जाता है मुकद्दमेबाजी हो पड़ती है कोर्टमें हार जीत की ईश्वर जाने कौन हारे कौन जीते। निन्दाही में रावणका सर्वस्व नाश होगया निन्दाहीसे हिरण्यकशिपु का कलेजा चीरा गया निन्दाहीसे औरंगजेबकी बादशाही का सत्यानाश हो गया निन्दाहीसे दयानन्दभी दुर्दशासे मरा निन्दा से आर्यसमाजी लेखराम और स्टेशनमास्टर आर्यसमाजीका कलेजा कतल किया गया निन्दा ही से आर्यसमाजी ला० लाजपतराय और अजीतसिंहको देश निकाला मिला कहां तक कहें, निन्दाका छोड़ देना परस्पर मित्रता का कारण है और निन्दा ही संपूर्ण उपद्रवों का मूल कारण है।

परस्त्री के साथ समागम करना पांचवां काम जन्य दोष है। एक नगर में एक १६ वर्षकी आयुका बालक माता पितासे लड़ पड़ा और ब्रह्मचारी बन कर देशाटन करने निकल गया, एक जंगलमें रात्रिको एक कूप के किनारे सोगया, स्वप्नमें एक सुन्दरी स्त्री उसके पास आई स्वप्नही में ब्रह्मचारी उसे बिठानेके लिये पीछे खिसके और कूपमें गिरगये सूर्यके उदय होनेपर मुसाफिरों

ने ब्रह्मचारीको कूपसे निकाला ब्रह्मचारीने सोचा कि जब स्वप्न की स्त्री ने कूपमें डाल दिया तो जाग्रत् की स्त्री न जाने कैसी दुर्दशा करती होगी ?

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्म्मज्ञानं विधीयते ।

इस में मनुजी कहते हैं कि परस्त्री गामी मनुष्य को धर्म्म ज्ञान भी नहीं होता ।

नशे का पीना छठवां दोष काम से उत्पन्न होता है । रंडीका गाना बजाना सुनाना नाच देखना ये तीन दोष भी कामसे उत्पन्न होते हैं । विना प्रयोजन जहां कहीं भ्रमण करना दशवां दोष कामसे उत्पन्न होता है ।

वृथाटनमसंतोषं ब्रह्मचारीविवर्जयेत् ।

व्यासस्मृतिः अ० १ श्लोक २९ ।

इस में व्यास जी वर्णन करते हैं कि ब्रह्मचारी विना प्रयोजन के जहां कहीं भ्रमण न करे । प्रकरण यह है कि—

ब्रह्मचारी को चाहिये कि अन्तःकरणके वृत्तिरूपी हाथमें वस्तु विचार रूपी खड्ग को सम्पादन करे और काम रूपी शत्रु को कतल कर डाले ।

काम ही का पुत्र क्रोधरूप ये शत्रु है । उसको भी ब्रह्मचारी अन्तःकरण से निकाले । (मनु० अ० ६ श्लोक ४८)

क्रुध्यन्तंप्रतिनक्रुध्येदाक्रुष्टःकुशलंवदेत् ।

इस में मनु जी का सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि क्रोध करने वाले पर क्रोध न करें परन्तु नीतिसे उसे सुख लाभ के लिये शिक्षा दे देवे ।

(महाभारत वन पर्व०)

(क्रोधोहन्तामनुष्याणाम्०)

इसमें व्यासजी ने कहा है कि क्रोध मनुष्योंका सत्यानाश कर डालता है ।

योहिसंहरतेक्रोधं भवस्तस्यसुशोभते ।

इस में व्यास जी कहते हैं कि जो मनुष्य क्रोधको नष्ट करदेते हैं वही संसार में सुशोभित होते हैं ।

क्रुद्धःपापंनरःकुर्यात् क्रुद्धोहन्याद्गुरूनपि ।

इसमें व्यासजी वर्णन करते हैं कि क्रोधमें आया मनुष्य आत्महत्यादि का पाप कर डालता है, गुरू आदिकोंको भी क्रोधी नर मार डालता है ॥

क्रुद्धःपरुषयावाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते ।
वाच्यावाच्येहिकुपितो नप्रजानातिकर्हिचित् ॥

इस में व्यास जी कहते हैं कि क्रोधी मनुष्य अपने भले को भी नहीं जान सकता. वाच्य कुवाच्य को न जानता हुआ क्रोधी मनुष्यके जी जी में आता है सो कह डालता है ॥

तमेवंबहुदोषन्तु क्रोधंसाधुविवर्जितम् ॥

इसमें व्यास जी कहते हैं कि–अनेक दोषोंका स्वरूप जानकर विद्वान् मनुष्य क्रोध शत्रुको नष्ट करे । जब मनुष्यमें क्रोध होता है तब मनुष्यकी सूरत बिगड़ जाती है, दांत पीसने लग जाता है, क्रोध में आया पुत्र पिता को, पिता पुत्र को, भ्राता को भ्राता मित्र को मित्र, मार डालता है । क्रोधमें आया शिष्य गुरु को, नौकर राजा को मार डालता है । क्रोध में आई स्त्री भी पति को मार डालती है । सर्प के मुख में, बिच्छू के डङ्क में, मक्खी के शिर में विष होता है । वह विष सर्पादि को दुःख नहीं देता, परन्तु जिस को सर्पादि जन्तु काटते हैं, उसके प्राणोंको वह विष नष्ट कर डालता है । क्रोध विष से भी बड़ा खराब है क्योंकि क्रोध जिस मनुष्य पर सवार होता है पहिले उसी का सत्यानाश कर देता है । इस से ब्रह्मचारी को चाहिये कि अन्तःकरण की वृत्तिरूपी कर में क्षमारूपी तलवार को सम्पादन करे । उस से क्रोधरूपी शत्रु को कतल कर देवे । क्रोधरूपी शत्रु के नष्ट हो जाने पर क्रोध से उत्पन्न होनेवाले चुगली निन्दा आदि आठ शत्रु भी ब्रह्मचारी के मन से नष्ट हो जावेंगे ॥

क्रोध शत्रु का पुत्र लोभ शत्रु है, ब्रह्मचारी को चाहिये कि लोभ शत्रु को भी अन्तःकरण से नष्ट कर डाले ॥ (महाभारते)

एकोलोभोमहाग्राहो लोभात्पापःप्रवर्त्तते ॥

वर्णाश्रम के कर्मों को छोड़ कर जो चोरी आदि कुकर्मों से धनोपार्जन कर जीविका करता है वही लोभ सिद्ध होता है । वर्णाश्रम के कर्मों से जो धनोपार्जन कर जीविका करना है वही सन्तोष है ॥

सन्तोषंपरमास्थाय सुखार्थीसंयतो भवेत् ।
सन्तोषमूलंहिसुखं दुःखमूलंविपर्ययः ॥

एक महात्मा जी ने कहा भी है कि—

नख बिन कटा देखे योगी कनफटा देखे शीशधारी जटा देखे, छार लाये तन में॥ मौनी अनबोल देखे, श्रेष्ठ बड़े शिर छोल देखे, करते किलोल देखे, बनखंडी बन में। पीर देखे, मीर देखे, गुणी और गहीर देखे बादशाह देखे, फूल रहे धन में। आदि अन्तसुखी और जन्महूं के दुःखी देखे पर वो न देखे, जिन के लोभ नहीं मन में॥

एक नगर में एक ब्रह्मचारी किसी बगीचे में उतरे, उसी नगर में एकसौ वर्ष की उमरवाली बूढ़ी वेश्या रहती थी, वह ब्रह्मचारी जी का दर्शन करने गई, और ब्रह्मचारी जी से पूछा कि आप कहां से आए हैं, ब्रह्मचारी जी ने कहा कि हम काशीसेआये हैं, वेश्या ने पूछा वहां आप ने कुछ पढ़ा ब्रह्मचारी जी ने उत्तर दिया कि हां हम वहां वेदवेदांगोपांगादि अष्टादश विद्या के प्रस्थान और चतुर्दश विद्या पढ़ आये हैं, वेश्या ने पूछा कि आप ने पाप का बाप पढ़ा वा नहीं, ब्रह्मचारी जी ने कहा कि पाप का बाप हम ने नहीं पढ़ा, वेश्या ने कहा कि जब आप ने पाप का बाप नहीं पढ़ा तो कुछ भी नहीं पढ़ा, ब्रह्मचारी जी ने कहा कि अब हम पाप का बाप पढ़ने के लिये फिर काशीजी में जायंगे। वेश्या ने कहा जाइये परन्तु मेरी एक प्रार्थना है वह यह है कि मेरा बनाया भोजन खाजाइये, ब्रह्मचारी ने कहा कि हम उत्तम, तू नीच है तेरे हाथ का भोजन हम नहीं खायंगे, वेश्या ने कहा कि देखो महाराज नीच भीलनी के जूंठे बेर रामचन्द्र जी ने खा लिये थे। नीच विदुर का शाक श्रीकृष्ण जी ने खा लिया था, आप भी मेरा बनाया भोजन खाकर जाइये। ब्रह्मचारी ने कहा कि हम नहीं खायंगे। वेश्या ने कहा कि मैं ५०) रुपैये दक्षिणा देऊंगी। आप मेरे हाथ से भोजन पाइये। ब्रह्मचारी जी ने कहा कि भोजन बनाइये वेश्याने भोजन बनाया ब्रह्मचारी जीमने लगे जब ग्रास मुखमें डालने लगे तो वेश्याने ब्रह्मचारी के हाथ में से ग्रास छीन लिया और ब्रह्मचारी जी को जूतों से पीटना प्रारंभ कर दिया वेश्या के नौकर ने भी ब्रह्मचारी जी का जूतों से शिर गंजा कर डाला ब्रह्मचारी ने पूछा आप हमें जूते क्यों लगाते हैं वेश्या

ने उत्तर दिया कि यह जूते नहीं लगाते किन्तु यह पाप का बाप है ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया कि यह कैसे पाप का बाप है वेश्या ने उत्तर दियाकि प्रार्थना से तो मेरा बनाया भोजन आप ने नहीं खाया परन्तु ५०) रुपैये के लोभ से मेरा बनाया भोजन आप खाने लगे। इस को सुनकर ब्रह्मचारीजी काव्य रचने लगे जैसे कि—

बारह बर्ष हम रहे काशी बीच वहां दूध ज्यों बिलोए वेद कसर नराई है। पूर्वमीमांसा पुन उत्तर मीमांसा देखा ऐसी बात कौन है जो हमसे न आई है। न्यायमें न बोलन देओं ब्रह्मा क्यों न होवे सांख्य और पातञ्जल की धूलसी उड़ाई है। कहत मुकुन्दराम लोभ एक बली देखा धनी आगे कुत्ते जैसें पूंछली हिलाई है ॥ १ ॥

लोभ की स्त्री का नाम तृष्णा है। ब्रह्मचारी को चाहिये कि तृष्णाको भी अन्तःकरण से निकाले। हिन्दूमत के ग्रन्थों में कहा है कि—

तृष्णेदेविनमस्तुभ्यं धैर्य्यविप्लववारिणि।

भर्तृहरि जी ने कहा है कि—

भोगानभुक्तावयमेवभुक्ता, स्तपोनतप्तं वयमेवतप्ताः।
कालोनयातोवयमेवयाता,स्तृष्णानजीर्णावयमेवजीर्णाः॥

आशानामनदीमनोरथजला, तृष्णातरंगाकुला०

वि० अ० १ श्लो० १६

आशानदीमहाघोरा शुभाशुभतटान्विता।
तृष्णोर्मिकाभ्रमावर्तामनोरथजलाश्रया॥

भा० दो०—नदीआशाशुभअशुभतट भरो मनोरथ नीर।
तृष्णा अमित तरंग जिहि भ्रमत भ्रमर गंभीर॥

प्रकरण का अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचारीको चाहिये कि संतोषरूपी शस्त्रको अन्तःकरणी वृत्ति रूपी हाथमें धारण करे और वीर्य निरोध

रूपी ब्रह्मचर्य के विध्वंसक लोभ तथा तृष्णा रूपी शत्रुओं को भी कतल कर डाले ॥

स्थूल सूक्ष्म कारण तीन शरीर की ममता का नाम मोह है। ब्रह्मचारी को चाहिये कि मोहरूपी शत्रु को भी अन्तःकरण से दूर करे ॥

कार्य्याकार्य्यंनजानाति, वद्धोऽसौमोहपाशतः।
नलब्ध्वासद्गुरोर्मार्गं सिन्धौवहतिमूढधी ॥

वि० अ० ४ श्लो० १

इष्टानांरूपगन्धानामभ्यासञ्चनिषेवते ।
ततोरागःप्रभवति मोहश्चतदनन्तरम् ॥

(महाभारत वनपर्व)

इस में व्यास जी वर्णन करते हैं कि रूप रस-गन्धादि-विषयोंके संग से मनुष्य के मन में राग उत्पन्न होता है राग ही से मोह होता है ॥

जगन्मोहमयाःपाशाश्छिद्यन्तेनान्ययत्नतः ।
यःस्वयंकुरुतेसंगं साधूनामुक्तएवसः ॥

(वि० अ० १ श्लो० १४)

अस्थिस्थूणंस्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धंदुर्गन्धि—पूर्णंमूत्रपुरीषयोः । १ ॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यंच भूतावासमिमंत्यजेत ॥२॥

(मनु० अ०६ श्लो ७६)

इत्यादि श्लोकों में भी मनु जी ने स्थूल सूक्ष्म कारण तीन शरीरों पर ममता स्वरूप मोह के त्याग करने ही का मार्ग वर्णन किया है। तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्मचारीको चाहिये कि अन्तःकरण को शक्तिरूपी हाथमें निर्मोहता स्वरूप तलवार को संपादन करके मोहरूपी शत्रुको भी कतल करडाले॥

वैसे ही अहंकार रूपी शत्रु को भी ब्रह्मचारी अपने मन से नष्ट कर देवे। योगवासिष्ठ में कहा है कि—

अहंकारपिशाचेन गृहीतोयेनराधमः ।
नशास्त्राणिनमंत्राश्च तस्याभावाश्चसिद्धये ॥
चिन्मात्रदर्पणाकारे निर्मलेस्वात्मनिस्थिते ।
इतिभावानुसंधानादहंकारोनवर्धते ॥

इन श्लोकों में श्रीरामचन्द्र जी के प्रति वसिष्ठ मुनि कहते हैं कि हे राम ! अहंकार रूपी भूत हैं, उसने जिस जीव को गिरफ्तार किया है वह नीचता से नीचता को प्राप्त हो रहा है. अहंकार रूपी भूत के दूर करने के लिये शास्त्र जो कि अनात्म प्रतिपादक हैं उनको तथा मंत्र यंत्र तंत्र की भी कुछ पेश नहीं जासक्ती किन्तु जैसे दर्पण में काई जंग जमती है तो दर्पण में निरावरण मुख का भान नहीं होता परन्तु मार्जन करने से जब दर्पण से काई नष्ट होजाती है तो निरावरण मुखका भान होता है. वैसे ही अन्तःकरण रूपी दर्पण है अहंकार रूपी उसपर काई जमी है. वेदान्त के श्रवण मनन निदिध्यासन रूपी मार्जन से अहंकार रूपी काईका अत्यन्ताभाव हो जाता है तो निरावरण स्वप्रकाश आत्मा का भी ज्ञानीके अन्तःकरणमें भान होता है ॥ (वि० अ० ५ श्लो० ८)

चिदाकाशोऽद्वय:शान्तो रूपमेकोऽमलस्तव ।
जनिमृतिःकुतस्तेस्यात्‌कुतोऽहङ्कारइत्यपि ॥

अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचारी को चाहिये कि निरभिमानरूपी शस्त्र को अन्तःकरण की वृत्तिरूपी हाथ में सम्पादन करे और अहंकार रूपी शत्रु को भी टुकड़े २ कर डाले, वैसे ही वेश्या के गाने बजाने नाचने की ओरभी ब्रह्मचारी मन को न जाने देवे ॥

द्यूतंचजनवादंच परिवादंतथाऽनृतम् ।
स्त्रीणांचप्रेक्षणालंभ मुपघातंपरस्यच ॥
(मनु० अ०२ श्लो० १७९)

इसमें मनु जी कहते हैं कि ब्रह्मचारी पांसा न खेले और जल्पवितण्डा कभी न करे लड़ाई झगड़ा न करे, झूठ न बोले, स्त्री को न देखे, किसी को मारे नहीं ।

एकःशयीतसर्वत्र न रेतःस्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धिस्कन्दयन्रेतो हिनस्तिव्रतमात्मनः ॥
(मनु० अ० २ श्लो० १८०)

इसमें मनु जी कहते हैं कि ब्रह्मचारी एकान्त देश में अकेला शयन करे वीर्य को रोके जो ब्रह्मचारी वीर्य को नष्ट कर देता है वह ब्रह्मचर्य का सत्यानाश कर डालता है' इत्यादि और भी वीर्य के निरोध रूपी ब्रह्मचर्य पर अनेक प्रमाण मिलते हैं ब्रह्मचर्य ही से शरीर की उन्नति होती है जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है सूर्य के अस्त हो जानेपर अन्धकार छा जाता है, वैसे ही वीर्य रूपी सूर्य के उदय होने से कामादि अन्धकार नष्ट हो जाता है । वीर्य रूपी सूर्य के अस्त हो जाने से कामादि स्वरूप अन्धकार छा जाता है । जैसे वृक्ष के पत्ते फल फूल डाली काट देने से वृक्ष नष्ट नहीं होता किन्तु जड़ के काट देने से वृक्ष नष्ट हो जाता है । वैसेही हाथ पैरादि अङ्ग कटजाने से शरीर रूपी वृक्ष नष्ट नहीं होता किन्तु वीर्यरूपी जड़ कट जाने से शरीररूपी वृक्ष बहुतही शीघ्र नष्ट हो जाता है । सिद्धान्त यह है कि ब्रह्मचारी को चाहिये कि सर्व प्रकारसे वीर्य की रक्षा करे और गुरु के पास निवास करे ।

वेद में कहा है कि आत्मज्ञानी और वेदादि विद्या का संपादन करने वाला मनुष्य ही गुरु और आचार्य हो सकता है विद्याहीन और ज्ञानहीन पाखंडी गुरु वा आचार्य नहीं हो सकता ।

अध्यापयामासपितॄन् शिशुरांगिरसःकविः ।
पुत्रकाइतिहोवाच ज्ञानेनपरिगृह्यतान् ॥
मनु० अ० २ श्लो० १५१

इस में मनु जी ने कहा है कि अंगिराऋषि का लड़का अपने चाचा को पढ़ाता था एक दिन उस लड़के ने अपने चाचा को पुत्र शब्द से पुकारा ।

तेतमर्थमपृच्छन्तदेवानागतमन्यवः ।
देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यंवःशिशुरुक्तवान् ॥
मनु० अ० २ श्लो० १५२

इस में मनु जी कहते हैं कि लड़के के पचों ने देवता और ऋषियों से पूछा कि इस लड़के ने हमें पुत्र कहा है । इस को सुनकर देवता और ऋषियों ने उत्तर दिया कि लड़के ने बहुत ठीक कहा है क्योंकि—

अज्ञोभवतिवैबालः पिताभवतिमन्त्रदः ।
अज्ञंहिबालमित्याहुः पितेत्येवतुमन्त्रदम् ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि अज्ञानी ही बालक होता है वेदादि विद्या और आत्मज्ञान का देने वाला ही पिता है तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारीको चाहिये कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पासही निवास करे । (गुरुगीता)

गुकारःप्रथमोवर्णो मायादिगुणभासकः ।
रुकारोऽस्तिपरंब्रह्म मायाभ्रान्तिनिवारकः ॥
गुकारश्चान्धकारोहि रुकारस्तेजउच्यते ।
अज्ञानग्रासकंब्रह्म गुरुरेवनसंशयः ।
सर्वश्रुतिशिरोरत्न-नीराजितपदाम्बुजम् ॥
वेदान्तार्थप्रवक्तारं तस्मात्सम्पूजयेद्गुरुम् ।
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ।

इत्यादि प्रमाणों से भी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ही गुरु सिद्ध हुआ है ।

ज्ञानहीनोगुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादीविडम्बकः ।
स्वविश्रान्तिंनजानाति परशान्तिंकरोतिकिम् ॥
मधुलुब्धोयथाभृङ्गः पुष्पात्पुष्पान्तरंव्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथाशिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरंव्रजेत् ॥

इत्यादि प्रमाणोंसे यह सिद्ध हुआ कि जैसे भ्रमर गन्धहीन फूलों को त्यागकर सुगन्धयुक्त फूलों में जाता है वैसे ही आत्मज्ञान हीन अविद्वान् गुरुओं को त्याग कर ब्रह्मचारी भी आत्मज्ञानी विद्वान् गुरुके पास जावे ।

जबसे भारतवर्ष में वीर्यका रोकना स्वरूप ब्रह्मचर्य नष्ट हो गयाहै तभी से हिन्दुसन्तानोंके बुद्धिबल पराक्रम भी नष्ट हो गये हैं । हिन्दुसन्तान

इस समय ब्रह्मचर्यसे हीन हो गये हैं यहां तक कि स्कूल या कालिजों में पेटपूजाके लिये केवल अंगरेजी उर्दू पढ़ते हैं। सर्वोत्तम संस्कृत विद्या का नाम तक नहीं बलहीन यहां तक देखे जाते हैं कि बाल्यावस्थाहीमें ऐनक लगाने लग जाते हैं। कमर कमजोर होनेके कारण कोई तकिए का कोई दिवाल का कोई आरामकुर्सी का आश्रय लेने लग जाते हैं। कोई खांसी खांसता है। यह सब ब्रह्मचर्यके न होने का कारण है। हिन्दुसन्तान ब्रह्मचर्य कराने वाले गुरूसे विद्या नहीं पढ़ते अंगरेजी उर्दू पढ़ाने वाले लाखों में से कोई एक दो मास्टर शायद ही जितेन्द्रिय होगा शेष दुराचारी इन्द्रिय लोलुप विषय लम्पट ही सुने जाते हैं। यहां तक कि छात्रोंसे कुकर्म कर डालते हैं। छात्रभी हजारोंमें से कोई सुपात्र निकलेगा शेष छात्र तुरटबाज बीड़ीबाज मांसादि आहारी जूएबाज कोटपतलूनमें फंसे होटलों में खाते सोडावाटर लमलेट के खवैये हरमोनियम फोनोग्राफके बजानेवाले थियेटर में नाचने वाले ही देखे जाते हैं। तेल फुलेल सावुनादि मलकर शरीर की चमक दमक में मन लगा कर फंसे रहते हैं।

सुना जाता है कि एक नगर में मास्टर जी रोटीपर विद्यार्थियोंको पढ़ातेथे एक दिन एक विद्यार्थी के पिता का श्राद्ध था एक हांड़ीमें खीर बनाई गई परन्तु खीरको कुत्ता खाने लगा विद्यार्थीकी माता ने वह खीर कूड़ेमें डाली और विद्यार्थीके हाथसे मास्टरजीको भेजदी मास्टर जी खाते जावें और विद्यार्थीसे दिल्लगी भी करें कहें कि ऐ! तालिबइल्म आपकी माता हम पर बड़ी प्रसन्न है। क्योंकि उसने हमको खीर भेजी है विद्यार्थीने जबाब दिया कि खीरको कुत्ता जूंठी कर गया था। माताने मुझसे कहा कि कुत्ते की जूंठी खीर मास्टर को दे आओ। इसको सुन कर मास्टर जी ने क्रोध में आकर कूंड़े को पत्थर पर मारकर टुकड़े २ कर डाले, इस घटना को देख विद्यार्थी ने रोकर पुकार के कहा कि मास्टर साहिब! इस कूंड़ेमें मेरा छोटा भाई पायखाना फिरा करता था, अब किसमें फिरेगा? ऐसा कह कर विद्यार्थी भाग गया, इसी प्रकारके गुरुओंसे इस समय हिन्दु सन्तान फारसी अंग्रेजी पढ़ते हैं। उससे ब्रह्मचर्यका भी तिरोभाव होगया है। संस्कृतको पढ़ाने वाला आचार्य भी लाखोंमें से कोई एक अच्छा गुरु निकलेगा संस्कृतके शेष पण्डित पूर्वोक्त मास्टर साहिबके भ्राता ही अनुभव सिद्ध हैं। न वह आप ब्रह्मचर्य करते हैं न विद्यार्थियोंसे कराते हैं।

एक नगर के राजा ने पाठशाला बनवाई थी, विद्यार्थी वहां पढ़ा करते थे, राजा ने परीक्षा के लिये पाठशाला से दो विद्यार्थी बुलाये, पण्डित जी ने विद्यार्थियों से कहा कि राज दरबार में जाकर कोमल २ और मीठा २ बोलियो, विद्यार्थी राजदरबार में आए, राजा ने विद्यार्थियों से पूछा कि पाठशाला में क्या २ पढ़ाया जाता है। विद्यार्थियों ने उत्तर दिया, कि रुई रेशम मखमल पढ़ाए जाते हैं। राजा ने पूछा कि पाठशाला का प्रबन्ध कैसा है विद्यार्थियों ने उत्तर दिया कि लड्डू पेड़ा बर्फी बालूशाही और जलेबी मिश्री का प्रबन्ध है। राजाने समझा कि ये विद्यार्थी तो दोनों लाल बुझक्कड़ हैं। पूछें कुछ और बकते कुछ हैं। राजा ने कुछ दक्षिणा देकर दोनों विद्यार्थियों को रवाना कर दिया, और पण्डित जी को चिट्ठी लिखी कि कैसे पागल विद्यार्थी आपने रक्खे हैं। विद्यार्थियों से पण्डित जी ने पूछा कि राजासे आपके कैसे प्रश्नोत्तर हुए थे। विद्यार्थियोंने सब हाल वर्णन कर दिया पण्डित जी ने कहा कि अरे गवर्गण्ड ऐसे उत्तर तुमने क्यों दिये? विद्यार्थी बोले कि आप ही ने तो कहा था कि राजा से मीठा मीठा बोलना। सो मीठे तो लड्डू पेड़े बर्फी बालूशाही मिश्री जलेबी वगैरह ही देखे जाते हैं। जब हम संखिया धतूरा अफीम विष कहते तो आप खफा होजाते। वैसे ही आपका हुक्म था, कि राजा से कोमल बोलना सो कोमल तो रुई कपास रेशम मखमल खासा वगैरह ही होते हैं। जब हम पत्थर ईंट वज्र बोलते तो आप ही नाराज हो जाते पण्डित जी मौन हो गए। सिद्धान्त यह कि संस्कृत पढ़नेवाले विद्यार्थी भी बहुत ऐसे देखे हैं। यह भी ब्रह्मचर्य न होने का परिणाम है॥

एक नगर में एक पण्डित जी फीसपर पढ़ाया करते थे, पण्डित जी का एक विद्यार्थी निहायत चालाक था, पढ़ाने के समय पण्डित जी के मुख से थूक गिरता था, चालाक विद्यार्थी कहता था कि गुरुजी पढ़ाने के समय थूका न कीजिए गुरु जी ने कहा कि गुरु का थूक गंगाजल के सदृश पवित्र है। चालाक विद्यार्थी सुनकर कहींसे कुत्ते वगैरह की हड्डी पीसकर पुड़िया बांध जेबमें डाल गुरुजीसे व्याकरणके सूत्र सीखने लगा। गुरुजी बतलाने लगे और थूक उगलने लगे, विद्यार्थी नफरत कर पीछे हटने लगा, गुरु जी ने अपने थूक को गंगाजल की उपमादी, विद्यार्थी ने कुत्ते की हड्डी का चूर्ण गुरु जी के मुख में घुसेड़ दिया, गुरू जी खफा होने लगे, विद्यार्थी प्रार्थना करके बोला

कि हुजूर आप अपने थूक को गंगाजल की उपमा देते हैं गंगाजल में तो हड्डी फेंकी जाती हैं। हमने भी आप के कहने से आप के थूक को गंगाजल जाना और कुत्ते की हड्डी आप के गंगा समान मुख में घुसेड़ दी खफा न हूजिये, पण्डित जी लज्जित होगए॥

मतलब यह है कि इस प्रकार के संस्कृत पढ़ाने वाले अध्यापक बहुत देखे जाते हैं, ऐसे गुरु शिष्यों के होने ही से ब्रह्मचर्य्य का समय लोप होगया है। संस्कृत विद्या के पठनपाठन का अदर्शन सा हो गया है। उसी से हिन्दु संतानों को वेदोक्त सनातन हिन्दुधर्म का ज्ञान भी न रहा, धर्म का ज्ञान न होनेके कारण ही हिन्दुसन्तान ईसाई आदि अनेक मतों में फंसकर नष्ट भ्रष्ट होते जाते हैं। ब्रह्मचर्य्य और यथार्थ विद्याका अदर्शन हो जाने से हिन्दु सन्तान मारे कामके व्यभिचारी होबैठे हैं। क्रोधसे परस्पर संग्राम कर रहे हैं, लोभ से नाना प्रकार की कुरीतियों में फसे हैं। मोहसे स्त्री पुत्र धन वगैरह में लंपट हैं। अहंकार से मानापमान में जल रहे हैं। मेल को तिलाञ्जली देकर फूट का नगाड़ा बजारहे हैं। अविद्यान्धकारमें पागल हुए फिरते हैं। दगा, कपट, छल चोरी, यारी, ठगी धोखेबाजी, जालसाजी, परस्त्रीगमन मांस मदिरादि, वेश्या, लौंड़ों के तमाशे, आदि में गिरफ़ार हो रहे हैं। यह सब ब्रह्मचर्य और विद्या के लोप हो जाने का परिणाम है। सिद्धान्त यह है कि हिन्दु सन्तान श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ विद्वानों के पास जाकर वीर्य के निरोध ब्रह्मचर्य और परा अपरा विद्या के संपादन का आरम्भ करें। उस से पूर्वोक्त दोषों का अत्यन्ताभाव हो जायगा। शरीर आत्मा और देश की उन्नति का भी सूर्य के समान उजाला हो जावेगा॥

यहां तक हमने वेदोक्त सनातन रीति से ब्रह्मचर्य का वर्णन किया। इसके आगे वेद विरुद्ध दयानन्दोक्त ब्रह्मचर्य का खण्डन किया जाता है॥

तथाहि—सत्यार्थप्रकाश आवृत्ति सातवीं ७ समुल्लास ४॥

सत्येरतानांसततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्।
ब्रह्मचर्य्यंदहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्॥

इसके भाष्यमें दयानन्दने प्रतिज्ञा करी है कि जिनका वीर्य कभी नीचे नहीं गिरता उन्हीं का ब्रह्मचर्य सच्चा है। और वही विद्वान् होते हैं। फिर इसके विरुद्ध (सत्या० ७ समु० ३)(चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पू-

र्याता किंचित्परिहाणिश्चेति०) इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि चालीस ४० वर्ष के पश्चात् जो वीर्य उत्पन्न होता है वह शरीर में नहीं रहता किन्तु स्वप्न में वा पसीने द्वारा शरीर के बाहर निकल जाता है। उसी समुल्लास में दयानन्द ने ४८ अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचर्य को सर्वोत्तम कहा है यदि दयानन्दका पहिला लेख सत्य कहें तो दूसरा मिथ्या' यदि दूसरा सत्य कहें तो तीसरा मिथ्या यदि तीसरेको सत्य कहें तो प्रथम और दूसरा मिथ्या ठहरते हैं। ऐसे होकर दयानन्दके तीनों लेख झूठे हैं। समुल्लास तेरहवें में दयानन्दने झूठ बोलनेवाले ही को शैतान की उपाधि दी है चौथे समुल्लास में झूठे ही को बाबा जी ने चोर कहा है। ग्यारहवें समुल्लास तथा छठवें समुल्लास में चोर को मार देने की सजा का वर्णन किया है॥

पुरुषो वावयज्ञस्तस्य यानि० (७ सत्या० समुल्लास ३)

इत्यादि मन्त्रों के भाष्यमें दयानन्द ने पहिले कहा है कि जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य करता है। उसी की ७० वर्ष की आयु होती है। फिर उसके विरुद्ध चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य करने वाले की ८० वर्ष की आयु लिखी है उसके विरुद्ध अड़तालीस बर्ष तक ब्रह्मचर्य करनेवाले की चारसौ वर्षकी आयु का बर्णन किया है परन्तु दयानन्द ५७ बर्ष ही की आयु में मरगये थे उससे निश्चय होता है कि दयानन्दने किसी प्रकारके ब्रह्मचर्यको भी नहीं किया था॥

(७ सत्या० समुल्लास ३) (ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन् ०) इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि (ब्रह्म चर्य) लड़की लड़का, गाना, बजाना, नाचना भी यथावत् सीखें फिर इसके विरुद्ध उसी समुल्लास में (नर्त्तनंगीतवादनम्०) इसके भाष्यमें दयानन्दने ब्रह्मचर्य में लड़का लड़की को गाने बजाने नाचने का देखना भी मना किया है। यदि दयानन्दका पहिला लेख सत्य मानें तो दूसरा मिथ्या यदि दूसरेको सत्य मानें तो पहिला लेख मिथ्या होता है परन्तु दरोगहलफी की दया से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूठे हैं॥

वेदभाष्य भूमिका प्रकरणब्रह्मचर्य में

दयानन्द ने कहा है कि जो ब्रह्मचारी होता है वह बड़े २ दाढ़ी मोंछ और केशों वाला होकर विद्वान् होता है। फिर इसके विरुद्ध (सत्या० समुल्लास० १०) दयानन्द ने कहा है कि डाढ़ी मोंछ और केश रखनेवाले की बुद्धि कम होजाती है। अब विचारना चाहिये कि जब डाढ़ी मोंछ के रखने से बुद्धि कम होजाती है तो आर्यमत वाला ब्रह्मचारी विद्वान् नहीं हो स-

कता क्योंकि दयानन्द ही का लेख है कि जो बड़े २ डाढ़ी मोंछ केशों वाला ब्रह्मचारी होता है वही विद्वान् होता है। यदि डाढ़ी मोंछ केशयुक्त ब्रह्मचारी ही विद्वान् होता है तो सत्यार्थ प्रकाश का लेख झूठा होता है। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूठे हैं॥

पञ्चविंशतितोवर्षे० ०सत्या० समुल्ला०३

इस सुश्रुत के प्रमाण से दयानन्द ने वर्णन किया है कि सोलह वर्ष की आयु तक स्त्री ब्रह्मचर्य रक्खे और २५ वर्ष की आयुतक मनुष्य ब्रह्मचर्य में रहे। दयानन्द का यह लेख प्रकरणके विरुद्ध है क्योंकि सुश्रुतका उक्त श्लोक अङ्ग परीक्षा प्रकरणका है दयानन्दने उस श्लोकको विवाह प्रकरणमें लिखा है निरुक्तकार की प्रतिज्ञा है कि जो प्रकरण के विरुद्ध शब्द का अर्थ करता है वह मूर्ख है। स्त्री का ब्रह्मचर्य सर्वथा असंभव है। इस बात को हम इसी व्याख्यानमें दर्शाचुके हैं। हां वेदादि ग्रन्थों से साबित है कि स्त्री पतिव्रतधर्मका सम्पादन करे। लड़का भी सोलह सत्रह वर्षतक ब्रह्मचर्याश्रम में रह सक्ता है॥

शीघ्र बोध की रीति से ग्यारह अथवा बारह वर्ष की कन्या का विवाह होजाना ठीक है। क्योंकि भारतवर्ष अत्युष्ण देश है उष्णता के कारण दश वर्ष के पश्चात् ही स्त्री रजस्वला होजाती है यूरोप देश शीतप्रधान है वहां सोलह वर्ष से पहिले स्त्री रजस्वला नहीं होती। स्त्री के रजस्वला होने का जो समय है वह समय गर्भाधान संस्कार का है॥ रजस्वला स्त्री का यदि विवाह न किया जावे तो वह स्त्री व्यभिचारिणी होजाती है, आर्यसमाजियों को चाहिये कि जैसे यूरोप शीतप्रधानदेश है वैसेही शीतप्रधान भारतवर्षको भी कर डालें, परन्तु ऐसी व्यवस्था करना आर्यमत वाले निराकार ईश्वरका काम भी नहीं क्योंकि ईश्वरकृतसृष्टि प्रलयकाल तक स्थायी सिद्ध होचुकी है॥

और भी वेदविरुक्त दयानन्दकृत ग्रंथोंमें ब्रह्मचर्य विषयक अनेक विरोध आते हैं, हमने स्थालीपुलाकन्याय से वर्णन किये हैं हिन्दुसन्तानों को योग्य है कि ईसाईमतादिके तुल्य दयानन्दोक्त मतको भी तिलाञ्जली देडालें और पूर्वोक्त वेदमतानुसार सन्तानोंको ब्रह्मचर्य करावें, अब शंकरजी को प्रणाम करके ब्रह्मचर्य के व्याख्यान को मैं समाप्त करता हूं।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

वर्णव्यवस्थाव्याख्यान ।

व्याख्यान नं० १५

ओ३म् सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै ॥ तैत्तिरीय आ० प्र० ८ अनु० १ मं० ८ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इस व्याख्यानमें वर्णव्यवस्था पर विचार किया जाता है । दयानन्द मत में कर्म्म ही से ब्राह्मणत्वादिक जाति को माना है परन्तु वेदोक्त हिन्दुमत में जाति जन्म ही से सिद्ध हो चुकी है । यजु० अ० ३१ मं० ११

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यःकृतः ।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यःपद्भ्यांशूद्रोअजायत ॥

इस वेद मन्त्र में ईश्वर का अभिप्राय यह है कि पूर्व जन्म के कर्मानुसार ईश्वर के मुख से ब्राह्मणत्वादि जाति विशिष्ट ब्राह्मण भुजा से क्षत्रियत्व जातिविशिष्ट क्षत्रिय ऊरू से वैश्यत्व जाति विशिष्ट वैश्य पगों से शूद्रत्वजाति विशिष्ट शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ । आर्यसमाजी कहते हैं कि ईश्वर निराकार है ईश्वर के मुखादि अवयव ही नहीं इस से वेद मन्त्र का उक्त अर्थ मिथ्या है । किन्तु दयानन्द कृत उक्त मंत्र का अर्थ सत्य है जैसे कि ईश्वरके विद्यादि गुणों से ब्राह्मण शूरवीरतादि गुणों से क्षत्रिय खेती वणिज व्यापारादि गुणों से वैश्य ईश्वर के मूर्खतादि गुणों से शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ दयानन्द कृत इस सत्यार्थप्रकाश के लेख से सिद्ध हो चुका कि— केवल कर्मों से ब्राह्मणत्वादि जाति है जन्मसे जाति नहीं । आर्यसमाजियों का यह कथन सर्वथा असंगत है क्योंकि जब ईश्वर को निराकार मानें तो उस से साकार ब्राह्मणादि वर्णों के जन्म का होना असंभव है । यदि ईश्वर से ब्राह्मणादि साकार वर्णों का जन्म मानें तो ईश्वर का निराकार कथन मिथ्या है उभयपाशारज्जु न्याय से आर्यों का छूटना असंभव है ।

(किंच) ईश्वर में मूर्खतादि गुणों को मानें तो आर्यमत वाला ईश्वर अज्ञानी होगा यदि मूर्खतादि गुणों को ईश्वर में न मानें तो ईश्वर से शूद्र की उत्पत्ति का कथन मिथ्या होगा । यदि ईश्वर में खेती वणिज व्यापा-

रादि गुण मानें तो ईश्वर वैश्य होगा। यदि वणिज व्यापारादि गुणों को ईश्वरमें न मानें तो ईश्वर से वैश्य की उत्पत्ति का लेख भी मिथ्या होगा यदि शूरवीरतादि गुण ईश्वर में मानें तो वह ईश्वर क्षत्रिय होगा यदि शूरवीरतादि गुण ईश्वर में न मानें तो ईश्वर से क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति का लेख भी मिथ्या होगा यदि ईश्वर में वेद का पढ़ना पढ़ाना आदि गुण मानें तो ईश्वर ब्राह्मण वर्ण होगा यदि वेद का पढ़ना पढ़ाना आदि गुण ईश्वर में न मानें तो ईश्वर ब्राह्मण वर्ण के उत्पन्न होने का लेख भी असंभव अनर्थ प्रतिपादक होगा।

(किंच) पदार्थ विद्या से सिद्ध हो चुका है कि जैसे रूप गुण से रस गुण वा गन्ध गुण से अग्नि द्रव्य का उत्पन्न होना सर्वथा असम्भव है. वैसेही विद्यादि गुणों से ब्राह्मण शूरवीरतादि गुणों से क्षत्रिय खेती वणिज व्यापारादि गुणोंसे वैश्य मूर्खतादि गुणोंसे शूद्रका होना सर्वथा सर्वदा असंभवहै

(किंच) न्याय दर्शन के कर्ता गौतम मुनि का सिद्धान्त है कि गुणगुणी का नित्य समवाय संबन्ध है वेदान्त मतमें गुण गुणीका अभेद सम्बन्ध है पदार्थ विद्यासे भी सिद्धान्त सिद्ध होता है कि जैसे रूप गुणका अग्नि रूप परमाणुओंसे नित्य समवाय वा अभेद संबन्ध है तो रूप गुणसे अग्नि द्रव्य की उत्पत्ति का कथन भी पागलों की कथा है। वैसे ही गुणों से ब्राह्मणत्वादि जाति विशिष्ट ब्राह्मणादि द्रव्य वर्णों की उत्पत्तिका लेख भी उन्मत्त प्रलापके सदृश है। (किंच)। वेदभाष्यभूमिका प्रकरण ग्रन्थ प्रमाणाप्रमाण

इदं विष्णुर्विचक्रमे०।

इस मंत्र के भाष्य में दयानन्दने प्रकृतिको ईश्वर की सामर्थ्य वर्णन किया है। सत्यार्थप्रकाशके प्रथम समुल्लासमें प्रकृतिको सावयव लिखा है आठवें समुल्लासमें बाबाजी दयानन्दने प्रकृतिको साकार वर्णन किया है। जब दयानन्द के इन लेखों को आर्यसमाजी मिथ्या मानें तो दयानन्द मिथ्यावादी होगा। यदि उक्त लेखों को सत्य मानें तो ईश्वर को निराकार मानना असंगत होगा। गलग्रहन्यायसे आर्यसमाजियों की अत्यन्त दुर्दशा होगी। प्रकरण का सारांश यह है कि दयानन्दही के लेखोंसे आर्यमत वाला ईश्वर साकार सिद्ध हो चुका।

(किंच) चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्योअजायत०।

इस वेदमंत्र में ईश्वरके मन नेत्र श्रोत्रादि इन्द्रिय वर्णन किये हैं। उससे भी ईश्वर निराकार नहीं सिद्ध होता किन्तु उक्त मंत्रसे भी ईश्वर साकारही सिद्ध हुआ है। उससे (ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्०) इस मंत्र में ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण भुजासे क्षत्रिय ऊरू से वैश्य पादसे शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ यही अर्थ निर्दोष है। (किंच) (मुखशब्द) का वाचक विद्यादि गुण (बाहु) का शूर वीरतादि (ऊरू) का खेती वणिज व्यापारादि (पाद) शब्द का अर्थ मूर्खतादि कथन करना कोष से भी विरुद्ध है। क्योंकि मुख आदि शब्दों के गुण आदि अर्थ किसी कोष से भी सिद्ध नहीं होसक्ते, उस से भी वर्णव्यवस्था विषयक दयानन्द कृत मंत्र का अर्थ मिथ्या है॥

सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास में दयानन्द ने प्रश्न किया है कि यदि ब्राह्मणादि वर्णों का उपादान कारण ईश्वर के मुखादि को मानें, तो जैसा उपादान कारण होता है, वैसा ही उसका कार्य होता है। उससे ब्राह्मण मुख सदृश गोल मोल, क्षत्रिय भुजा के सदृश लंबे, वैश्य ऊरूके सदृश, शूद्र पैरके के सदृश होने चाहिये दयानन्द का यह प्रश्न भी पदार्थ विद्या और युक्तिसे विरुद्ध है। क्योंकि उपादानकारणसे कार्य विलक्षण भी देखा जाता है। जैसे कि रज वीर्य के उपादान कारण से विलक्षण लड़का लड़की, रुई से विलक्षण वस्त्र, लोहेसे विलक्षण शस्त्र, बीज से विलक्षण वृक्ष, दूध से विलक्षण दधि, ईख से विलक्षण मिश्री, आदि अनुभव सिद्ध है। अनुभव सिद्ध बात किसी प्रकार से भी खण्डन नहीं हो सकती। सर्व जगत् का उपादान कारण प्रकृति है, परन्तु नाम रूप और क्रियात्मक चित्र विचित्र प्रपंच प्रकृति से सर्वथा विलक्षण हैं। राम कृष्ण शिव गणेशादि की मूर्तियों का उपादान कारण पाषाण सुवर्णादि हैं। पाषाण सुवर्णादिसे विलक्षण रामकृष्ण शिवादि नाम वाली मूर्तियां विलक्षण हैं। वैसे ही ईश्वर के मुखादि उपादान कारणों से विलक्षण ब्राह्मणादि वर्ण हैं। दयानन्द की (उपादानकेसदृश कार्य होताहै) यह शंका लालबुझक्कड़ का तमाशा है। (बूझै बूझै लाल बुझक्कड़ और न बूझै कोय। थोड़ा थोड़ा सब को दीजो गड्डम गड्डा होय) यही लीला बाबाजी दयानन्द की सिद्ध हो चुकी है॥

(किंच) यदि दयानन्द ही के सिद्धान्त को आर्यसमाजी इष्ट मानें तो प्रष्टव्य यह है कि दयानन्द का उपादान कारण कौन था, यदि कहो कि दयानन्द का उपादान कारण योनि अथवा वीर्य था, तो कहिये दयानन्द भी

इन्हींके सदृश था? यदि कहो कि दयानन्द तो वीर्य और योनि उपादान में विलक्षण थे तो ईश्वर के मुखादि से ब्राह्मणादि हुए इस कथन पर शंका का करना भी अविद्वानोंकी चेष्टा है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि यदि ईश्वरके मुखादि हैं तो जैसे अन्यजीव हैं वैसा ईश्वर भी होगा, आर्यसमाजियोंका यह कथन भी असंगत है क्योंकि जैसे जीव के मुखादि अवयव हैं वैसे ईश्वर के नहीं, क्योंकि जीवके मुखादि अवयव भौतिक हैं, और ईश्वर के मुखादि अवयव माया शक्तिरूप अलौकिक हैं। आर्यसमाजी कहते हैं कि जब ईश्वर के शक्ति रूप मुखादिसे ब्राह्मणादि वर्ण उपजे हैं तो ब्राह्मणादि के मुखादि अवयव भी भौतिक सिद्ध नहीं होते। किन्तु ब्राह्मणादिके मुखादि अवयव भी शक्ति रूप ही होने चाहिये। आर्यसमाजियों की यह शंका भी असंगत है क्योंकि प्रकरण और लक्षण से ज्ञात होता है कि ईश्वरके मुखादि अवयव साक्षात् शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया शक्ति रूप हैं और माया के कार्य जो आकाशादि पंच भूत हैं उनका कार्य जीवों के मुखादि अवयव हैं उस से जीवों के मुखादि अवयवों से ईश्वर के मुखादि अवयव सर्वथा विलक्षण हैं॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि जब माया के कार्य आकाशादि भूतोंका कार्य ही जीव के मुखादि अवयव हैं तो ईश्वर के शक्तिरूपी मुखादि से ब्राह्मणादि हुए यह कथन मिथ्या होगा। आर्यसमाजियोंकी यह शंका भी ठीक नहीं क्योंकि ईश्वरके मुखादि अवयवों का उपादान कारण शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया है जीव के मुखादि अवयवोंका उपादान कारण तमोगुण प्रधान पंच महाभूत हैं तथा जैसे माया ईश्वरकी शक्ति है वैसे ही मायाके कार्यभूत भी ईश्वर की शक्ति है। इसी सिद्धान्त को लेकर ईश्वर के शक्ति रूप मुखादि से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति का कथन वेद में किया है। यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो जैसे स्वप्न में अनिर्वचनीय ब्राह्मणादि वर्ण हैं वैसे ही जाग्रत् के समय ब्राह्मणादि वर्णोंका भान होता है परन्तु ब्राह्मणत्वादि जाति जन्म ही से है कर्म से ही नहीं॥

अविद्वांश्चैवविद्वांश्च ब्राह्मणोदैवतंमहत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतंमहत्॥

मनु० अ० ९ श्लो० ३१८॥

इत्यादि प्रमाणों से भी यही सिद्ध होता है कि जन्म ही से ब्राह्मणत्वादि जाति है कर्म से नहीं ॥

(नीतिशतक)—सजातोयेनजातेन यातिवंशःसमुन्नतिम् ।
परिवर्त्तिनिसंसारे मृतःकोवानजायते ॥

इत्यादि प्रमाणों से भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मणत्वादि जातिकी उन्नति का करना मनुष्यका कर्त्तव्य कर्म है । अभिप्राय यह है कि वेद मनुस्मृति गीतादि ग्रन्थों में जो ब्राह्मणादि के कर्म वर्णन किये हैं उन कर्मों की उन्नति ही से ब्राह्मणत्वादि जाति की उन्नति का संभव है ॥

यथाकाष्ठमयोहस्ती यथाचर्म्ममयोमृगः ।
यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रयस्तेनामबिभ्रति ॥

इसमें मनु जी वर्णन करते हैं कि जैसे लकडी का हाथी हस्तित्व जाति युक्त तो है, परन्तु हाथी का काम नहीं दे सकता, चमड़े का मृग मृगत्व जाति युक्त तो है परन्तु मृग का काम नहीं दे सकता, वैसे ही ब्राह्मण के वीर्य से उपजा ब्राह्मण ब्राह्मणत्व जातियुक्त तो जन्म से है परन्तु विद्यादि कर्मों से हीन वह ब्राह्मण किसी का भला नहीं कर सकता । अभिप्राय यह है कि उक्त मनु जी के प्रमाण से भी जन्म ही से जाति सिद्ध हो चुकी ॥

शूद्रोब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैतिशूद्रताम्० ।

इस को दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में लिखा और कहा है कि विद्यादि गुणों से शूद्र ब्राह्मण हो जाता है, और विद्यादि गुणों के बिना ब्राह्मण भी शूद्र हो जाता है । दयानन्द ने इस का सिद्धान्त यह निकाला है कि वर्तमान में किये कर्म्मों ही से जाति का अदल बदल हो जाता है । दयानन्द का यह लेख भी युक्ति और प्रकरण के विरुद्ध है, क्योंकि उक्त श्लोक संकरवर्ण के प्रकरण का है । दयानन्द ने आदि अन्त के अनेक श्लोक छोड़ दिये हैं, किन्तु एक श्लोक लिया है, आदि अन्त के श्लोक देखने से ज्ञात होता है कि श्रेष्ठ कर्म्म करता २ नीच जीव भी पांचवें अथवा छठे जन्म में उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है । वैसे ही उत्तम जीव भी नीच कर्म्म करता २ पाचवें छठे जन्म में नीच वर्ण को प्राप्त होजाता है । (किंच) आर्य्य समाजियों से पूछना चाहिये कि पूर्वजन्म के कर्म्मों का फल वर्त्तमान जन्म में मिलता है, अथवा वर्त्तमान में किये कर्म्मों का फल वर्तमान ही में मिल जाता है ? । यदि कहो कि वर्तमान कर्म्मों का फल वर्त्तमान में ही मिलता

है, तो बाल्यावस्था में जीव को सुख दुःखादि न होने चाहिये क्योंकि बाल्यावस्था में जीव ने शुभ अथवा अशुभ कोई भी कर्म्म नहीं किये। यदि कहो कि पूर्वजन्म में किये कर्मों का फल वर्त्तमान जन्म में मिलता है तो यह सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणत्वादि जाति का लाभ भी पूर्व जन्म के कर्मों ही का फल है। क्योंकि हिन्दुधर्म्मशास्त्र में वर्णन किया है कि पूर्वजन्म में जो कर्म्म जीव करता है वह वर्तमान जन्म में उस जीव को जाति आयु और भोग यह तीन प्रकार का फल देता है।

किंच—आर्य्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि ब्राह्मणत्वादि जाति स्थूल शरीर का धर्म है. वा सूक्ष्म कारण शरीर का किंवा आत्मा का धर्म ब्राह्मणत्वादि जाति है। यदि कहो कि सूक्ष्म वा कारण शरीर अथवा आत्मा का धर्म ब्राह्मणत्वादि जाति है, सो ठीक नहीं क्योंकि सूक्ष्म कारण शरीर और आत्मा तो दूसरे जन्म में भी वही होते हैं जो कि वर्त्तमान जन्म में हैं, परन्तु वर्त्तमान जन्म के कर्म्मानुसार जाति बदल जाती है। यदि कहो कि स्थूल शरीरका धर्म ब्राह्मणत्वादि जाति है, तो जब तक जीवात्मा स्थूल शरीर में है तब तक ब्राह्मणत्वादि जाति का बदलना सर्वथा असंभव है। आर्य्यसमाजी कहते हैं कि हिन्दुमत में वज्रसूची उपनिषद् है, उस में शंकराचार्य्य और मण्डनमिश्र का संवाद है वहां शरीर में ब्राह्मणत्वादि जाति का खण्डन कर डाला है, किन्तु ब्रह्मज्ञानी ही में ब्राह्मणत्वादि जाति का मण्डन किया है, उस से वर्त्तमान जन्म में कर्मों के अनुसार जाति बदल जाती है आर्य्यसमाजियों की यह शङ्का भी अज्ञानमूलक है क्योंकि शंकराचार्य्य जी का अद्वैत सिद्धान्त है। अभिप्राय यह है कि शंकराचार्य्य जीने जीव ही को ब्रह्म स्वरूप वर्णन किया है दयानन्द के मत में जीव और ब्रह्म का भेद वर्णन किया है, और कहा है कि जीव ब्रह्म स्वरूप नहीं है। शंकराचार्य जी ने जाति व्यक्ति दोनोंको कल्पित माना है। दयानन्दने जातिको नित्य माना है, (ब्रह्मब्रह्मैवभवति) अर्थात् ब्रह्मज्ञानी जीव ब्रह्मस्वरूप ही है। शंकराचार्य जीने युक्तिसे सिद्ध करदिया है कि आत्मज्ञानीका शरीर भी नष्ट हो जाता है। (ब्रह्मजानातीति ब्राह्मणः) अर्थात् ब्रह्मज्ञानी किसी वर्णमें भी हो जीव ब्रह्म के अभेदज्ञान से ब्राह्मण कहा जाता है। शंकराचार्य जी ने जीव ईश्वर और काम रूप क्रियात्मक जगत्को मिथ्या साबित कर डाला है। दयानन्द ने जीवेश्वर जगत् को नित्य माना है। यदि

आर्यसमाजी वज्रसूची उपनिषद् में विश्वास रखते हैं, तो दयानन्दोक्त आ-र्यमत को कुत्ते के सींगके समान कल्पित मानना पड़ेगा ॥

(वेदांत का सिद्धान्त यह है कि) वर्णाश्रम अभिमान रहित मन जाको श्रुति के सीस पर आसन ताको ॥

वर्णाश्रम अभिमानी जोई । श्रुति का दास कहावे सोई ॥

दयानन्द इस वेदांतके सिद्धान्तका पूरा शत्रु था, आर्यसमाजी इस वेदांत सिद्धान्त को बुरा कहते हैं। यद्यपि वेदान्त मत जो कि शंकराचार्य जी ने माना है, उस मत में भी जैसे प्रारब्धवश से आभास रूप शरीर आत्मज्ञानी को भान होता है, वैसे ही आभास रूप से जन्म जाति भी आत्मज्ञानी को भान होती है। तथापि आत्मज्ञानकी सर्वोत्तमतासे ब्राह्मणत्वजाति का प्रादुर्भाव भी आत्मज्ञानीको होजाता है। दयानन्द वा आर्यसमाजी इस वेदोक्त सत्यसिद्धान्त से सर्वथा सर्वदा विमुख हैं। उस से भी आर्यमत में जन्म जाति का वर्त्तमान जन्म में बदलना सर्वथा असंभव है ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि जैसे अंगरेजी पढ़ने वाले जज कलक्टर लाट हो जाते हैं, विना पढ़ने वाले नहीं हो सक्ते, वैसे ही विद्यादि गुणोंसे नीच भी ऊंच, और विद्यादि गुणों से हीन ऊंच भी नीच हो जाते हैं। उससे भी वर्त्तमान जन्म में जाति बदल जाती है। आर्यसमाजियों का यह कथन भी असंगत है, क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अंग्रेजी का इमतिहान देने वाले ब्राह्मणादि जज कलक्टर लाटादि तो बनजाते हैं, परन्तु ब्राह्मणत्वादि जा-ति उनकी नहीं बदलती, जैसे कि एक महमूद मुसलमान अंगरेजी पढ़ कर इलाहाबाद हाईकोर्ट का जज हो गया था। परन्तु जाति उसकी सैय्यदत्व ही रही, प्रमोदाचरण बंगाली अंगरेजी पढ़कर इलाहाबाद हाईकोर्ट का जज हो गया था, परन्तु उस की भी ब्राह्मणत्वजाति नहीं बदली। उस से भी यही सिद्ध हुआ कि वर्त्तमान जन्म में जातिका बदलनो सर्वथा असंभव है ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि नानक संप्रदाय में जाति बदल जाती है। आर्यसमाजियों का यह कथन भी असंगत है, क्योंकि ग्रन्थसाहिब में गुरु नानक आदिकोंकी जाति भी खत्रित्व ही लिखी है। यद्यपि संस्कृत विद्या का पंजाबमें अदर्शन सा हो जाने के कारण क्षत्रिय शब्द बिगड़ कर खत्रिय बोला जाता है। तथापि वर्त्तमान समय में गुरु नानक आदिकों की क्षत्रिय जाति भी नहीं बदली। ग्रन्थ साहिबमें अनेक भक्तों की वाणी देखी जाती है (जैसे कि—)

मेरी जाति कमीनी पांत कमीनी ओछा जन्म हमारा।
तुम शरणागत राजा रामचन्द्र कह रविदास चमारा॥
ओछी मति मेरी जाति जुलाहा, हरिका नाम लिया मैं लाहा।
हीनड़ी जाति मेरी जादवराया, छीपेके जन्म काहेको पाया॥

इत्यादि ग्रन्थ साहिब के प्रमाणोंसे भी यही सिद्ध होता है कि नानक संप्रदायमें भी वर्तमान जन्ममें जातिका बदलना नहीं माना। गुरू गोविन्द सिंह जी ने भी ब्राह्मणादि चार वर्णों को सिक्ख बना दिया, खाना पीना एक करदिया है, परन्तु ब्राह्मणादि चार वर्णोंकी रिश्तेदारी आपसमें नहीं हुई, ब्राह्मण सिक्ख का रिश्तेदार ब्राह्मण, क्षत्रिय सिक्खका क्षत्रिय, वैश्य सिक्ख का रिश्तेदार वैश्य, और शूद्र सिक्ख का रिश्तेदार शूद्र सिक्ख देखा जाता है। अभिप्राय यह है कि सिक्ख संप्रदाय में भी वर्त्तमान जन्म में जातिका बदलना सिद्ध नहीं होता॥

यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो मुसलमान संप्रदाय में भी वर्त्तमान जन्म में जातिका बदलना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि जो सैयद मुसलमान हैं वह मूर्ख कुकर्मी हुआ भी सैयद ही कहाता है। मुसलमान मोची पढ़ा लिखा सुकर्मी हुआ भी मोची कहा जाता है। मुसलमान पठान शूरवीरता से रहित हुआ भी पठान ही कहाता है। जुलाहा मुसलमान जंगी तालीम पाकर भी जुलाहा ही कहाता है। यद्यपि पठान सैयद मोची मुसलमानोंका खाना पीना भी एक है तथापि वर्तमान जन्म से मुसलमानों में भी जाति का बदलना सिद्ध नहीं होता अंगरेज भी उत्तम और नीच दो प्रकार के देखेजाते हैं, उत्तम अंगरेज एक टेबल पर नीच अंगरेज के साथ खाता पीता नहीं, नीच अंगरेज के साथ उत्तम अंगरेज रिश्तेदारी भी नहीं करता, उससे भी यही सिद्ध हुआ कि वर्तमान जन्म में जाति नहीं बदल सकती॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि वर्तमान जन्म में खत्री लोग क्षत्रिय कहाने लगे हैं, उससे वर्तमान जन्म ही में जातिका बदलना सिद्ध होता है। आर्यसमाजियों का यह कथन भी असंगत है, क्योंकि क्षत्रिय शब्द बिगड़ कर ही खत्री बोला जाता है। खत्री लोगों में खत्री शब्द ही बदला है जैसे कि खेती शब्द अशुद्ध है, परन्तु क्षिति शब्द शुद्ध है, खेत शब्द अशुद्ध है क्षेत्र शब्द शुद्ध है वैसे ही खत्री शब्द अशुद्ध है, किन्तु क्षत्रिय शब्द शुद्ध है। उससे भी वर्तमान जन्म में जाति का बदलना सर्वथा असंभव है॥

सुना जाता है कि एक नगर में श्राद्धोंके दिनों में ब्राह्मण लोग न्योता खाने जाते थे, एक रोज एक चमार भी एक लोभी ब्राह्मणका चेला जा बना, लोभी ब्राह्मणने भी चमारके गलेमें जनेऊ डाल दिया, सिर पर चोटी खड़ी करदी, और पांच रुपये चमार जी से ऊड़ा लिये, दूसरे दिन वह लोभी ब्राह्मण चमार को भी न्योता खिलाने के लिये साथ लेगया ब्राह्मणोंकी पंक्ति में आप भी बैठा, और चमार को भी पास ही बिठा लिया जब पूड़ी कचौड़ी आदि पाक परोसा गया तो सब ब्राह्मण जीमने लगे चमार भी एक हाथ से पूड़ी पकड़ और दूसरे हाथ से ग्रास मुख में डालने लगा तब एक ब्राह्मण ने उस से कहा कि अरे एक ही हाथ से भोजन खाओ चमार ने डर कर वह पूड़ी तो पत्तल पर रखदी और दूसरी पूड़ी को पैर के नीचे दाबकर एक हाथ से ग्रास तोड़ २ खाने लगा फिर एक ब्राह्मण ने देखकर कहा कि अरे तू ! कौन है चमार बोला कि मैं ब्राह्मण हूं उस ने पूछा तू कौन ब्राह्मण है ? तब चमार बोला कि मैं चमार ब्राह्मण हूं इस को सुनकर सब ब्राह्मणों ने भोजन का खाना छोड़ दिया और चमार को हवालात में दाखिल करा दिया इस उदाहरण का तात्पर्य यह है कि बनावटी जाति की बहुत जल्द पोल निकल जाती है। वर्त्तमान समय में जाति कभी नहीं बदल सकती ।

आर्यसमाजी कहते हैं कि जब जन्म ही से जाति है तो जो द्विजाति ईसाई वा मुसलमान हो जाते हैं उनके साथ हिन्दु लोग क्यों नहीं खाते पीते ? तो इस का उत्तर यह है कि उनके शरीर में गौ बैल के मांस रूपी परमाणु संयुक्त हो जाते हैं उनके शरीर वर्णसंकर हो जाते हैं उसी से उनके साथ हिन्दु लोग नहीं खाते पीते। हां यदि वह हिन्दुमत में फिर आना चाहें तो आ सकते हैं परन्तु चारों वर्ण हिन्दुओं के साथ उनकी रिश्तेदारी नहीं हो सकती और वह चारों वर्णों के साथ खाना पीना भी नहीं कर सकते हां हिन्दुमत में आकर शास्त्रोक्त कर्म वह कर सकते हैं। परन्तु इस जन्म में जाति उनकी भी नहीं बदल सकती ।

प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अंग्रेजी सरकार की ओर से भारतवर्ष में रेल गाड़ी बनी है उस में फर्स्ट, सेकिन, इण्टर, थर्ड, यह चार प्रकार के क्लास बने हैं जिस २ क्लास का जो कोई टिकट लेता है खतम होने तक वह एक से दूसरे क्लास में नहीं बैठ सकता हां जब टिकट खतम हो जाती है तबतो

दूसरे क्लास की टिकिट लेकर दूसरे २ क्लास में बैठ सकता है एक स्टेशन पर एक बाबू जी फर्स्ट क्लास की टिकिट लेकर फर्स्ट में जा बैठे। एक मूर्ख ने थर्ड क्लास की टिकिट ली और फर्स्टक्लास में बैठने लगा टिकिट बाबू ने उस मूर्ख को रोका तो वह मूर्ख टिकिट बाबू से कहता है कि बाबू देखो मेरी टिकट भी इसी कागज की है जैसी उस बाबू की टिकट कागज स्याही की है। फिर मैं बाबू के पास क्यों न बैठूं टिकट कलक्टर ने कहा कि अरे मूर्ख तुम्हारी टिकिट का दाम पांच रुपये हैं। और बाबू जी की टिकट का दाम बीस रुपये है जब तक तुम्हारी टिकट खतम न होगी और जब तक तू फर्स्ट क्लास का दाम न देगा तब तक तू फर्स्टक्लास में नहीं बैठ सकता। ऐसे कहकर बाबू ने मूर्ख को थर्डक्लास में जा बिठाया। अब सोचना चाहिये कि टिकटें तो दोनों की कागज स्याही ही की थीं परन्तु नम्बर दोनों का भिन्न २ था दाम भी कम जादा था उस से उन दोनों ने क्लास नहीं बदलने पाया।

वैसे ही ईश्वर ने भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वंश यह चार प्रकार के वर्ण रचे हैं। फर्स्ट क्लास के सदृश ब्राह्मणवंश सेकिन के सदृश क्षत्रिय इण्टरके सदृश वैश्य थर्डके सदृश शूद्रवंश रचा है। जीओं के अन्तःकरण रूपी कागज हैं और कर्म जन्य संस्कार ही अन्तःकरण रूपी कागजों पर नम्बर वा अक्षर हैं वही ईश्वर स्वरूप टिकिट कलक्टर से जीवों को टिकटें मिली हैं जिसके पास ब्राह्मणों के कर्म जन्य संस्कार रूपी अक्षरोंसे युक्त अन्तःकरण रूपी कागज की टिकट है वह वर्तमान जन्म रूपी रैल के ब्राह्मणवंश रूपी फर्स्टक्लास में बैठता है। क्षत्रिय के कर्मजन्य संस्कार रूपी अक्षर वा नम्बर युक्त अन्तःकरण रूपी कागज की टिकिट लेने वाला जीव क्षत्रिय वंश रूपी सेकिन क्लास में बैठता है। वैश्यके कर्मजन्य संस्कार रूपी अक्षर वा नम्बर युक्त जीव वैश्यवंश रूपी इंटरक्लास में बैठता है। शूद्र के कर्मजन्य संस्कार रूपी अक्षर वा नम्बर युक्त अन्तःकरण रूपी कागजकी टिकट लेकर शूद्रवंश रूपी थर्डक्लास में जीव बैठता है। जब तक पूर्व जन्म की टिकटें खतम नहीं होती जब तक वर्तमान जन्म में जाति अथवा वंश रूपी क्लास कभी नहीं बदल सकता। इससे भी जन्म जाति का मानना ही निर्दोष है। जन्म जातिको छोड़ केवल कर्मही से जाति मानने में नानाभांतिके दोष आते हैं। मनुजी की संमति है कि खेत प्रधान नहीं कि-

न्तु बीज ही प्रधान है उस से भी जन्म जाति का होना ही सिद्ध होता है । जन्मजाति न मानने से माता भगिनी कन्या इत्यादि भेद के नष्ट हो जाने का संभव है ।

यदि व्याकरण की रीतिसे देखाजावे तो (जनी प्रादुर्भावे) धातुसे जाति शब्द सिद्ध होता है उस से भी यही सिद्ध होता है कि जन्म ही से जाति है कर्म से जाति का कथन करना खर सींगके समान मिथ्या है । आर्यसमाजी कहते हैं कि विश्वामित्रादि क्षत्रियादि वर्णों से ब्राह्मण हो चुके हैं उस से भी जाति का होना केवल कर्मों ही से सिद्ध होता है । आर्यसमाजियों की यह शंका भी असंगत है क्योंकि विश्वमित्रादिका वेदोक्त वेदान्तमत था, अविद्या रूपी तपके प्रभाव से ब्रह्मऋषि कहाते थे, ब्रह्मस्वरूप होने के कारण वह ब्राह्मण की पदवी को प्राप्त हुए, आत्मज्ञानी की अनात्मपदार्थ पर से दृष्टि उठ जाती है, केवल आत्माकार वृत्ति ही आत्मज्ञानी की होती है । जहां २ आत्मज्ञानी का मन जाता है, वहां २ आत्मज्ञानी को निर्विकल्प समाधि लगी रहती है । यदि आर्य्यसमाजी भी इस वेदोक्त सर्वोत्तम सिद्धान्त को स्वीकार करें, तो दयानन्दोक्त आर्य्यमत को सर्वथा धोखे की टट्टी मानना पड़ेगा । यदि और भी सूक्ष्मविचार किया जावे तो आर्य्यमत में वर्णव्यवस्था का सर्वथा अत्यन्ताभाव सिद्ध होता है। जैसे कि यज्ञोपवीत और वेदारम्भ संस्कार में तथा नामकरण संस्कारमें दयानन्द ही के लेखोंसे जन्मजाति सिद्ध होती है । फिर उस के विरुद्ध दयानन्द ने केवल कर्मों ही से जाति का होना लिखा है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के दोनों लेख झूठे हैं । चौथे समुल्लास में दयानन्द ने झूठे ही को चोर कहा है, छठे समुल्लास में दयानन्द ने चोर को मार देने की सजा का देना कहा है ॥

आर्य्यसमाजी कहते हैं कि जब पूर्वजन्म के कर्म्मानुसार ही वर्तमान जन्म में ईश्वर ब्राह्मणत्वादि जाति का प्रदाता है तो उससे भी कर्म्मजाति ही सिद्ध हो चुकी, आर्यसमाजियों की यह शंका भी अज्ञानमूलक है, क्योंकि पूर्वजन्म केकर्मों द्वारा ईश्वर ने जीव को वर्त्तमानजन्म में जाति आदि दिये हैं । और इस जन्म के किये कर्मों का फल जाति आदि दूसरे जन्म में जीव को ईश्वर देगा, वर्तमानके कर्मों से वर्तमान जन्म ही में जाति आदि का लाभ जीवको नहीं हो सकता । आर्यसमाजी कहते हैं कि जैसे वर्तमान जन्म

में राजा की नौकरी करनेसे द्रव्य का लाभ वर्तमान ही में हो सकता है, वैसे ही वर्तमान जन्ममें कर्मों के करने से वर्तमान जन्म हीमें जाति आदि फल भी मिल सकता है। आर्यसमाजियों की यह शंका भी ठीक नहीं, क्योंकि राजा की नौकरी से द्रव्य का लाभ तो वर्तमान में हो सकता है। परन्तु जाति बदल देना राजा का काम नहीं, किन्तु जाति का बदलना कर्मों के अनुसार ईश्वर ही का काम है। पूर्वजन्म के कर्मानुसार ईश्वर ने जीव को शरीर दिया है, जाति भी शरीर ही का धर्म है, जब तक शरीर नष्ट न होगा, तब तक जाति का बदलना भी सर्वथा असंभव है। ये सर्व प्रश्नोत्तर जीव ब्रह्म के भेदमत की रीति से हैं। वेदोक्त वेदान्तमत की रीति से सर्वजाति अनिर्वचनीय दृष्ट नष्ट स्वभाव हैं। इसी को दृष्टि सृष्टि वाद कर के वर्णन किया है। आत्मा को न जानकर—

ब्राह्मणोऽहं क्षत्रियोऽहं वैश्योऽहंचाण्डालोऽहम्।

ऐसा अभिमान आत्मा में भान हो रहा है परमार्थ से आत्मा में ब्राह्मणत्वादि जाति का अभिमान न था न है और न कदापि होने का संभव है। आर्यसमाज में इस वेदोक्त सिद्धान्त का सर्वथा प्रध्वंसाभाव है। उस से भी आर्यमत की रीति से जाति का बदलना असंभव है॥

(किंच) प्रत्यक्षप्रमाण से ज्ञात होता है कि जिस जन्मजाति के ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र में अपने २ कर्म हैं, वह तो कोई भी जाति बदलानेके लिये आर्यमत में शामिल नहीं होता, और जिसमें कर्म नहीं है, इस लिये वह ब्राह्मणत्वादि जाति के लोभ से आर्यमत में शामिल होता है। परन्तु आर्यमत में जितने लोग मिले हैं, उन में से एक भी गुण कर्मों से युक्त सिद्ध नहीं होता। सिद्धान्त यह है कि दरोगहलफी की दयासे आर्यमतमें न तो जन्म से जाति और न कर्म से जाति सिद्ध होती है। हां मुसलमान भंगी चमार को आर्यसमाजी लोग शर्म्मा वर्म्मा की उपाधि तो देदेतेहैं। परंतु उनके शरीर जो कि गौ बैल के मांस रूप परमाणुओं से भरे हैं उन शरीरों को आर्यसमाजी नहीं बदल सकते। उससे भी आर्यमतमें जाति का बदलना असंभव है जब तक अनात्मजाति आदि का अभिमान आर्यसमाजी नहीं छोड़ते तब तक सुखी नहीं हो सकते। दयानन्दोक्त आर्यमत में मानी हुई केवल कर्म जाति का खण्डन तथा हिन्दुमतानुसार केवल जन्मजातिका मण्डन दिखाया।

अथ ब्राह्मणादि वर्णों के कर्मों का वर्णन किया जाता है तथाहि (मनु० अ० १ श्लो० ८८)

अध्यापनमध्ययनं यजनंयाजनंतथा ।

दानंप्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

इस में मनु जी का सिद्धान्त यह है कि ब्राह्मण ब्रह्मचर्याश्रम में साङ्गोपांग वेदादि विद्याको पढ़े, फिर दूसरों को वेदादि विद्या का पठन पाठन करावे। परन्तु पाठमात्र वेदादि विद्या के पढ़ने से ब्राह्मण विद्वान् नहीं हो सकता, किन्तु अर्थ के सहित ही वेदादि विद्या पढ़ने से ब्राह्मण विद्वान् हो सकता है ॥

स्थाणुरयंभारहारः किलाभूदधीत्यवेदंनविजानातियोऽर्थम्० ।

इस निरुक्त में यास्कमुनि जी ने वर्णन किया है कि जो वेदादि का पाठ मात्र पढ़ लेता है' अर्थ को नहीं जानता, उस का पढ़ना वैसे व्यर्थ है, जैसे कि बैल वा गधा पुरुषों का केवल भार ही उठाता है सुगन्ध का ज्ञाता नहीं हो सकता, उस से ब्राह्मण को चाहिये कि अर्थ के सहित ही साङ्गोपाङ्ग वेदादि को पढ़े। यह ब्राह्मण का प्रथम कर्म है। आप पढ़ कर दूसरों को पाठन कराना, यह ब्राह्मणका दूसरा कर्म है। (यजनम्) अर्थात् अपने घर में मूर्तिपूजा का करना ब्राह्मण का तीसरा कर्म है। यद्यपि ब्रह्मचर्याश्रम में पराविद्या अर्थात् आत्मविद्या को सम्पादन कर ब्राह्मण मोक्षधाम को प्राप्त कर चुका है। शेष कुछ कर्तव्य ब्राह्मण को नहीं रहा उस से मूर्ति का पूजन करना ब्राह्मण के लिये निष्फल है तथापि मूर्त्ति पूजन वा ध्यान से मन का एकाग्र होना ही फल है। सो कहा भी है कि—

यत्रयत्रमनोयाति तत्रतत्रसमाधयः ।

अर्थात् जहां २ आत्मज्ञानी ब्राह्मणका मन जाता है वहां २ एक आत्मा ही का मन में स्वप्रकाश से भान होता है। उस से ब्राह्मण का मन एकाग्र रहता है। परन्तु लोकसंग्रह के लिये आत्मज्ञानी ब्राह्मण भी मूर्त्तिका ध्यान पूजन करे।

आर्यसमाजी कहते हैं कि श्लोक में (यजन) शब्द देखा जाता है (यजन) शब्द का अर्थ होम का करना है मूर्त्ति का ध्यान पूजन (यजन) शब्द का अर्थ नहीं हो सकता। आर्यसमाजियों की यह शंकाभी असंगत है क्योंकि (यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) इस धातुपाठ के प्रमाण से (यज) धातु

का अर्थ देवता का ध्यान पूजन सिद्ध होता है यद्यपि (अग्निर्देवता०) इस वेदमन्त्र में देवता नाम अग्नि का भी है तथापि (यः स्तूयते स देवः) अर्थात् जो पदार्थ प्रशंसा के योग्य होता है वह भी देव कहाता है मूर्त्ति की प्रशंसा अर्थात् ध्यान पूजन करने से ईश्वर की प्रशंसा अर्थात् ध्यान पूजन होता है। ईश्वर मन वाणी के अगोचर है उसका ध्यान पूजन प्रत्यक्ष से नहीं हो सकता। किन्तु ईश्वर की मूर्त्ति के ध्यान पूजन ही से ईश्वर का ध्यान पूजन सिद्ध होता है। पूजा शब्द का सत्कार अर्थ है सत्कार मान, आदर, इज्जत पूजा, इत्यादि शब्द पर्यायवाची सिद्ध हुए हैं। अभिप्राय यह है कि लोक संग्रह के लिये ब्राह्मण का तीसरा कर्म मूर्त्ति का ध्यान पूजन है। दूसरे को मूर्त्ति के ध्यान पूजन का सिखलाना ब्राह्मण का चौथा कर्म है। दान देना और दान लेना ब्राह्मण का पांचवां और छठा कर्म है ये मुख्य करके ब्राह्मण के छः कर्म मनु जी ने वर्णन किये हैं। इन कर्मों के संपादन ही से ब्राह्मण का मान होता था, और इन कर्मों के न होने से ब्राह्मण का मान नहीं होता। गीता अ० १८ श्लोक ४२।

शमोदमस्तपःशौचं क्षान्तिरार्जवमेवच।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म्मस्वभावजम्॥

इस में परमात्मा श्रीकृष्ण जी ने ब्राह्मणके ९ कर्म वर्णन किये हैं प्रथम कर्म शम है।

(महाभारतशान्तिपर्वे) (शमःपवित्रमतुलम्)

इस में शम को सर्वोत्तम पवित्र कहा है।

(महाभारतउद्योगपर्वं०) (शमेमनःसमाधानम्०)

इस में मनके रोकने का नाम शम वर्णन किया है। सिद्धान्त यह है कि मनका रोकना ब्राह्मणका प्रथम कर्म है। दूसरा कर्म ब्राह्मण का दम है॥

(महाभारतउद्योगपर्व०) (दमस्तेजोवर्द्धयति०)

इस में व्यास जी ने कहा है कि दम कर्म से इन्द्रियों का बल बढ़ता है क्योंकि दुष्ट विषयों की ओर से इन्द्रियों के रोकने ही का नाम दम है॥ (दमंनिश्रेयसेप्राहुः०) अर्थात् दम ही से मोक्ष का लाभ होता है॥

(दमेनसदृशंधर्म्मं नान्यंलोकेषुशुश्रुम)

इस में व्यास जी ने कहा है कि दमके तुल्य संसार में दूसरा धर्म्म भी कोई नहीं॥

(दमोहिपरमंलोकेप्रशस्तः०)

इस में व्यास जी ने कहा है कि दम ही संसार में सर्वोत्तम प्रशंसा का कारण है। अभिप्राय यह है कि इन्द्रियों का रोकना दम ब्राह्मण का दूसरा कर्म है ॥

(तप) का करना ब्राह्मण का तीसरा कर्म्म है ॥

(निवर्त्यमानमेवतपो०)

इस में व्यास जी ने कहा है कि मानापमान के त्याग देने का नाम तप है यह ब्राह्मण का तीसरा कर्म है। चौथा कर्म ब्राह्मण का शौच है। (दक्षसंहिता)

शौचन्तुद्विविधंप्रोक्तं वाह्यमाभ्यन्तरंतथा ।

मृज्जलाभ्यांस्मृतंवाह्यं तस्माद्भ्यन्तरंवरम् ॥

इसमें दक्ष मुनि जीने कहा है कि वाह्याभ्यन्तर भेदसे शौच दो प्रकार का है जलादिकों से शरीर को सफा रखना वाह्यशौच है। मन से कामादि को दूर करना भीतर का शौच है ॥

शौचेयत्नः सदाकार्यः० ।

इस में दक्षमुनि जी ने वर्णन किया है कि शौच कर्म सदा कर्तव्य है ॥

शौचाचारविहीनस्य समस्तानिष्फलाःक्रियाः ।

इस में दक्ष मुनि जी ने कहा है कि जो शौच कर्म को नहीं करता उस के दूसरे कर्म्म भी फल नहीं देते। यह शौच चौथा कर्म ब्राह्मण का है। पांचवां कर्म्म ब्राह्मण का (क्षान्ति) अर्थात् क्षमा है (महाभारत)

सत्यंयज्ञक्षमातप क्षमाधर्म्मस्यकारणम् ।

क्षमाबलमशक्तानां शक्तानांभूषणंक्षमा ॥

क्षमावशीकृतिर्लोके क्षमयाकिंनसाध्यते ॥

इत्यादि क्षमा कर्म्म पर और भी हजारों प्रमाण हैं (मधुरभाषण) ब्राह्मण का छठा कर्म्म है ॥

सत्यंब्रूयात्प्रियंब्रूया-न्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।

प्रियंचनानृतंब्रूया-देषधर्म्मःसनातनः ॥

भद्रंभद्रमितिब्रूयाद् भद्रमित्येववावदेत् ।

शुष्कवैरंविवादंच नकुर्यात्केनचित्सह ॥

इत्यादि श्लोकोंमें मनु जीका सिद्धान्त यह है कि प्रिय और मधुर भाषण करना ही सनातन हिन्दुधर्म है। सातवां कर्म ब्राह्मण का जीवब्रह्म के अभेदज्ञान को सम्पादन करना है। आर्यसमाजी कहते हैं कि जीव ब्रह्मका अभेद वेदादि ग्रन्थों में नहीं लिखा, आर्यसमाजियों की यह शङ्का अज्ञान मूलक है। क्योंकि—

तत्रकोमोहःकःशोक एकत्वमनुपश्यतः।
योसावादित्येपुरुषः सोसावऽहम्॥

इत्यादि वेद मन्त्रों में जीव ब्रह्म का अभेद वर्णन किया है (अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि ब्राह्मण मन्त्रों में जीवब्रह्म के अभेद को कहा है॥

यतोवाचोनिवर्त्तन्ते योमुक्तैरवगम्यते।
यस्यचात्मादिकास्संज्ञाः कल्पितास्तोःस्वभावजाः॥

इत्यादि श्लोकों में वशिष्ठमुनि जी ने जीवब्रह्म का अभेद कथन किया है। (विज्ञाननौका)—

तपोयज्ञदानादिभिःशुद्धबुद्धिर्विरक्तोनृपादौपदेतुच्छबुद्ध्या।
परित्यज्यसर्वंयदाप्नोतितत्त्वं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि॥ १॥
दयालुंगुरुंब्रह्मनिष्ठंप्रशान्तं समाराध्यभक्त्याविचार्यस्वरूपम्।
यदाप्नोतितत्त्वंनिदिध्यास्यविद्वान्परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि॥२॥
यदानन्दरूपंप्रकाशस्वरूपं निरस्तप्रपञ्चंपरिच्छेदशून्यम्।
अहंब्रह्मवृत्त्यैकगम्यंतुरीयं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि॥ ३॥
यदज्ञानतोभातिविश्वंसमस्तं विनष्टंचसद्योयदात्मप्रबोधे।
मनोवागतीतंविशुद्धंविमुक्तं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि॥ ४॥
निषेधेकृतेनेतिनेतीतिवाक्यैः समाधिस्थितानांयदाभातिपूर्णम्।
अवस्थात्रयातीतमेकंतुरीयं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि॥ ५॥
यदानन्दलेशैःसमानन्दिविश्वं यदाभातिसत्त्वेतदाभातिसर्वम्।
यदालोचनेरूपमन्यत्समस्तं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि॥ ६॥
अनंतंविभुंसर्वयोनिंनिरीहं शिवंसंगहीनंयदोङ्कारगम्यम्॥
निराकारमत्युज्ज्वलंमृत्युहीनं परंब्रह्मनित्यन्तदेवाहमस्मि॥७॥

इत्यादि श्लोकों में शङ्कराचार्य जीने जीवब्रह्मके अभेदका वर्णन किया है। परन्तु जीव ईश्वरके स्वरूप में चेतन ही भेदहीन है। जड़ पदार्थों में कल्पित भेद अनुभव सिद्ध है। इस वेदान्त सिद्धान्तका विशेष कर वेदान्त मण्डन व्याख्यानमें वर्णन किया है। अभिप्राय यह है कि जीवब्रह्मके अभेद ज्ञानको सम्पादन करना ब्राह्मणका सातवां कर्म है। (विज्ञान) अर्थात् अपरा विद्याका सम्पादन करना ब्राह्मण का आठवां कर्म है। वेद और गुरु पर विश्वासका रखना ब्राह्मणका नवां कर्म है। छः मनुस्मृत्युक्त मिलाकर ब्राह्मण के पन्द्रह कर्म हैं। जबतक इन पन्द्रह कर्मों को ब्राह्मण संपादन करते रहे, तब तक राजा और प्रजा में मान कराते रहे जब से ब्राह्मण सन्तानों ने इन पन्द्रह कर्मों को छोड़ दिया तब से ब्राह्मण संतानों के मान प्रतिष्ठा भी अदर्शन हो गये, हम ब्राह्मण संतानों को विदित करते हैं कि अब आपको मान प्रतिष्ठा कराने का सत्य संकल्प है, तो आप अपने पन्द्रह कर्मों के संपादन करने का पुरुषार्थ कीजिये। यदि आप ऐसा न करेंगे तो कुछ दिनमें आपका ब्राह्मणत्व तो बना रहेगा। परंतु कर्मों के बिना आप के सर्वथा जीविका प्रतिष्ठा मान नष्ट हो जांयगे ॥

अब क्षत्रिय के कर्मों का वर्णन किया जाता है। (तथाहि)(मनु॰अ॰ १ श्लो॰ ८९ ॥

> प्रजानांरक्षणंदान–मिज्याध्ययनमेवच ।
> विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्यसमासतः ॥

इस में मनु जी ने प्रजा की रक्षा का करना क्षत्रिय का प्रथम कर्म कहा है, यदि क्षत्रिय राजा होवे तो डाकू चोरादि से प्रजा नाम रियायाकी रक्षा करे। यदि क्षत्रिय राजा न होवे तो प्रजा नाम संतानों का भी हैं। संतान रूपी प्रजा ही की ब्रह्मचर्यादि तथा वेदादि विद्या से क्षत्रिय रक्षा करे। यही क्षत्रिय का प्रथम कर्म है। (दान का करना) क्षत्रियका द्वितीय कर्म है। दान देने से क्षत्रिय को लोक परलोक उभयलोकों में सुख का लाभ होता है। तीसरा कर्म क्षत्रिय का मूर्त्ति पूजा का ध्यान और पूजन करना है। चौथा कर्म्म क्षत्रिय का परा और अपरा दोनों प्रकार की वेदादि विद्याका पढ़ना है पर स्त्री वेश्यादिसे समागम न करना, अपनी स्त्री में ही सन्तानोत्पत्ति के लिये वीर्य्य प्रदान करना, यह क्षत्रिय का पांचवां कर्म है ॥ (गीता अ॰ १८ श्लो॰ ४३ ॥

शौर्य्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रंकर्म्मस्वभावजम् ॥

इसमें भगवान् श्रीकृष्ण जी ने शूरवीरता का सम्पादन करना क्षत्रियका छठा कर्म वर्णन किया है। इस समय क्षत्रिय संतान यहां तक शूरवीरता से हीन होगये हैं कि यदि रात्रि के समय मूसा निकले तो मारे डर के धोती ही में दस्त निकलने शुरू हो जाते हैं। प्रताप का बढ़ाना क्षत्रियका सातवां कर्म है। प्रताप ऐसा पदार्थ है कि सिंह के छोटे बालक को भी देखकर हस्ती भयभीत होकर भाग जाता है। धृतिका संपादन करना क्षत्रियका आठवां कर्म्म है। सर्वोत्तम कार्य्य करने के समय घबड़ाहट में न गिरकर सर्वोत्तम कार्य को न छोड़ना। उसी का नाम धृति है। यही क्षत्रिय का आठवां कर्म्म है। युद्ध से पीछे न भागना क्षत्रिय का नवां कर्म्म है। दान का देना क्षत्रिय का दशवां कर्म है। यद्यपि दान का देना क्षत्रिय के लिये मनुजी ने भी कहा है तथापि वहां साधारण दान है गीता के वचन से विशेष धर्मार्थ प्राण दान सिद्ध होता है जैसे कि राजा मोरध्वज शिवि दधीचि आदिकों ने धर्मार्थ प्राण दान दिया है ईश्वर की निष्काम भक्ति का करना क्षत्रिय का ग्यारहवां कर्म है प्रकरण में संसारकी वासनासे निष्काम भक्ति करने में तात्पर्य है इसी का नाम सात्विकी भक्ति है जैसे कि प्रह्लाद भक्तादिकों ने भक्ति करी थी। ग्यारह कर्मों के संपादन से ही क्षत्रिय वर्णकी उन्नति होती है। वैश्य के सात कर्म मनुजी ने वर्णन किये हैं जैसे कि-

पशूनांरक्षणंदान-मिज्याध्ययनमेवच ।
वणिक्पथंकुसीदंचवैश्यस्यकृषिमेवच ॥

इस श्लोक का सिद्धान्त यह कि गौ से लेकर सर्व जीवों की रक्षा करना १ सुपात्रों को दान देना २ निष्काम होकर यज्ञादि कर्मों का करना ३ आत्मविद्या और संसार संबन्धी विद्या का पढ़ना ४ वणिज व्योपार का करना ५ धर्म से सूद का लेना ६ बैलोंकी उन्नति से खेतीका करना ७ यह सात कर्म मनुजी ने वैश्य-के कहे हैं जब तक इन सात कर्मों तथा-

कृषिगोरक्षवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम् ।

इस गीता के प्रमाण से भी मुख्य कर गौ बैलकी रक्षा का करना इन आठ कर्मों की उन्नति वैश्य न करेंगे तब तक वैश्य वर्णकी उन्नतिका होना सर्व-

था असंभव है अंगरेजी राज्यमें वैश्य लोग खाली अंगरेजी पढ़कर बाबू होते जाते हैं पूर्वोक्त वैश्य के आठ कर्मों का नाम तक नहीं लेते इसीसे देशकी उन्नति का सत्यानाश होता जाता है। यह वैश्यों की अत्यन्त भूल है ॥

एकमेवतुशूद्रस्यप्रभुःकर्मसमादिशत् ॥

इस में मनुजी वर्णन करते हैं कि दगा कपट छलादिको त्याग कर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीन वर्णों की सेवा शूद्र करे। यह चार वर्णों के कर्म्म पृथक् २ मनुजी ने वर्णन किये हैं परंतु वेद को और यज्ञोपवीत को छोड़कर संस्कृत विद्या का पढ़ना भी शूद्रों का कर्म है वादी कहते हैं कि जब शूद्र संस्कृत विद्या पढ जावेगा तो वह सेवा का अधिकारी न रहेगा तो उत्तर यह है कि संस्कृत पढ़ा शूद्र कथा वार्ता कर जीविका कर लेगा जैसे कि सूत जी और विदुरादिक शूद्र हो चुके हैं। शूद्रको संस्कृत पढ़नेकी आज्ञा आयुर्वेद में दी है उससे शूद्र भी संस्कृत पढ़ने का अधिकारी है। आर्यसमाजी कहते हैं कि गरीब शूद्र तो ब्राह्मणादि तीन वर्णों की सेवा कर सकता है। परन्तु लक्षाधीश शूद्र तीन वर्णों की सेवा कैसे करेगा? किन्तु कभी नहीं। आर्य्यों की यह शंका भी ठीक नहीं, क्योंकि लक्षाधीश सब शूद्र नहीं हो सकते, किन्तु गरीब शूद्र ही बहुत देखे जाते हैं। सत्यार्थप्रकाश के दशवें समुल्लास में दयानन्द का लेख है कि ब्राह्मणादि तीन वर्णों का भोजन शूद्र बनावे, यही शूद्र की सेवा है। फिर इस के विरुद्ध उसी समुल्लास में दयानन्दका लेख है कि तीन वर्णों का भोजन ब्राह्मण वा ब्राह्मणी बनावे परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के दोनों लेख झूंठे हैं। तीसरे समुल्लास में दयानन्द ने शूद्र को वेद का पढ़ना मना किया है, फिर उसी समुल्लास में बाबा जी ने शूद्रको वेद पढ़ने की आज्ञा दी है परन्तु दरोगहलफीसे बाबा जी के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं। दशवें समुल्लास में दयानन्द का लेखहै कि मूर्ख मनुष्यका नाम शूद्र है फिर इसके विरुद्ध उसी समुल्लासमें दयानन्द का लेख है कि शूद्र जब आर्य्यों का भोजन बनावे तो मुख पर कपड़ा बांध लेवे, उस से जूंठा श्वास अन्न में न गिरेगा। फिर इसके विरुद्ध बारहवें समुल्लासमें दयानन्दका लेख है कि जो मुंह पर कपड़ा बान्धता है उसका श्वास बड़े वेग से नीचे के रास्ते से निकल जाता है परंतु दरोगहलफी से दयानन्द के सर्व लेख झूंठे हैं ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि वेदान्तकी रीतिसे जब जातिका बदलना सिद्ध हो चुका तो दयानन्द ही का मत सिद्ध हुआ। आर्यसमाजियोंकी यह शंका

भी अविद्या मूलक है। क्योंकि दयानन्दने वेदान्त सिद्धान्तकी झूंठी निन्दा करी है किन्तु दयानन्द ने जीव ब्रह्मका भेद माना है, भेद वादमें जीव में जाति का अभिमान दूर नहीं होता। किन्तु जीव ब्रह्मके अभेद प्रतिपादक वेदांत में जीव में जाति का अभिमान नष्ट हो जाता है। ब्रह्मज्ञानादि गुणों की शक्ति से जन्म से नीच जाति वाले के शरीरमें भी ब्राह्मणत्व जाति का लाभ हो जाता है। यद्यपि ब्राह्मणत्व जातिके कारण जीव ब्रह्मभेद ज्ञानादि गुणों में यही सर्वोत्तमपन है कि नीच जन्म में भी ऊंचताको दर्शा देता है। यदि आर्यसमाजी वेदांतसिद्धान्तको स्वीकार करें तो पहिले दयानन्दोक्त आर्यमत को तिलांजली दे डालें। इस व्याख्यान में हमने जन्मही से ब्राह्मणत्वादि जातिका होना वेदादिप्रमाणों और युक्तियोंसे सिद्ध किया है। तथा वेदोक्त अद्वैतसिद्धान्त वेदान्त की रीति से ज्ञानादि के लाभ से भी ब्राह्मणत्व सिद्ध किया है। क्षत्रियत्वादि का लाभ गुणोंसे भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि ब्रह्मज्ञानादि गुणों से क्षत्रियादि में तो ब्राह्मणत्व आ सकता है। परंतु ब्रह्मज्ञानादि गुणोंके विना जन्म से ब्राह्मणत्व जाति का अभाव नहीं सिद्ध होता। क्षत्रियत्वादि जातिका भी लाभ अद्वैतमें सिद्धहोता है॥

॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

गृहस्थवानप्रस्थाश्रमव्याख्यान ॥

व्याख्यान नं० १६

ओम् शंनोमित्रः शंवरुणः शंनोभवत्वर्य्यमा ।
शंनइन्द्रोवृहस्पतिः शंनोविष्णुरुरुक्रमः ॥
नमोब्रह्मणेनमस्तेवायो त्वमेवप्रत्यक्षंब्रह्मासि ।
त्वामेवप्रत्यक्षंब्रह्मवदिष्यामि ऋतंवदिष्यामि ॥
सत्यंवदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतुअवतुमाम् ।
अवतुवक्तारम्॥ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥तै० वल्ली१॥

प्रशंसात्मक मङ्गल करने के पश्चात् सर्व साधारण को विदित किया जाता है कि इस व्याख्यान में वेदोक्तगृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम का हम वर्णन करगें। प्रथम दयानन्दोक्त गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम का खण्डन किया जाता है (तथाहि) सत्यार्थप्रकाश दूसरा समुल्लास ३ ॥

वेदानधीत्यवेदौवा वेदंवापियथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

इस मनुस्मृति के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि ब्रह्मचर्यमें वेद वेदाङ्गोपाङ्ग को पढ़कर पुरुष वा स्त्री गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे फिर इसके विरुद्ध उसी का समुल्लास ॥ ५ ॥

यदहरेवविरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वागृहाद्वाब्रह्मचर्यादेवप्रव्रजेत् ।

इस के भाष्य में बाबा जी ने वर्णन किया है कि जो भोग की कामना से रहित हो तो ब्रह्मचर्याश्रम ही से संन्यास लेवे, यदि दयानन्द के प्रथम लेख को सत्य मानें तो दूसरा झूठा, यदि दूसरेको सत्य मानें तो प्रथम लेख झूठा होता है, परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके दोनों लेख झूठे हैं सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ॥ ४ ॥

तंप्रतीतंस्वधर्म्मेण ब्रह्मदायहरंपितुः ।
स्रग्विणंतल्पआसीनमर्हयेत्प्रथमंगवा ॥

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि मालाका धारण करने वाला पलंग पर बैठा हुआ जो आचार्य है शिष्य गोदान से प्रथम उसका सत्कार

करे यहां दयानन्द ने आचार्य को माला धारण करने वाला कहा है फिर इस के विरुद्ध उसी समुल्लास में ॥

तापःपुण्ड्रं तथानाम मालामन्त्रस्तथैवच० ।

इस के भाष्य में दयानन्द ने माला धारण करने का खण्डन किया है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं ॥ (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ४)

गुरुणानुमतःस्नात्वा समावृत्तोयथाविधि ।
उद्वहेतद्विजोभार्यां सवर्णांलक्षणान्विताम् ॥

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि गुरुकुल से गुरु की आज्ञा लेकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपने २ वर्णानुकूल सुन्दर लक्षण युक्त कन्याओंसे विवाह करें। दयानन्दके इस लेखका सिद्धान्तयह सिद्ध हुआ कि अपने वर्ण से भिन्न दूसरे वर्ण की कन्याओंसे कभी विवाह न करे फिर इसके विरुद्ध—

इमांत्वमिन्द्रमीढ्वःसुपुत्रांसुभगां० ।

इस के भाष्यमें दयानन्दने यह सिद्धान्त सिद्ध किया है कि ब्राह्मण तो ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या इन तीन वर्णों की स्त्रियों से क्षत्रिय भी क्षत्रिया वैश्या इन दो वर्णों की स्त्रियों से विवाह कर सकता है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी सर्वथा झूठे हैं सत्या० समु० ४ ॥

असपिण्डाचयामातुरसगोत्राचयापितुः ।
साप्रशस्ताद्विजातीनां दारकर्मणिमैथुने ॥

इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जो कन्या माताके कुलकी छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है, दयानन्दके इस लेख से सिद्ध हो चुका कि पिता के गोत्र से भिन्न गोत्र की कन्याके साथ ही विवाह करे। फिर इसके विरुद्ध उसी समुल्लास में

धर्मचर्ययाजघन्योवर्णःपूर्वंपूर्वंवर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ० ।

इसके भाष्यमें दयानन्द ने कहा है कि (प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो और वह दूसरे वर्णमें प्रविष्ट हो जाय तो उसके मा बापकी सेवा कौन करेगा, ? और वंशच्छेदन भी हो जावेगा इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये ? (उत्तर) न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उन को अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे संतान विद्या

सभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इस लिये कुछ भी अव्यवस्था न होगी । यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओंकी १६ वें वर्ष और पुरुषों की २५ पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा से नियत करनी चाहिये और इसी क्रम से ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी क्षत्रिय वर्णका क्षत्रिय वैश्य वर्णका वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये दयानन्द के इस लेख से आर्यमत वाले पिता के गोत्र का सर्वथा सत्यानाश सिद्ध हो चुका क्योंकि गोत्र वीर्य की प्रधानता से सिद्ध हुआ है, दयानन्द के उक्त लेख में गुणकर्मों की प्रधानता सिद्ध हो चुकी परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं ॥ सत्या० समुल्ला० ४—

अव्यङ्गाङ्गींसौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥

इसके भाष्य में दयानन्द ने वर्णन किया है कि जिस स्त्री के सूक्ष्मलोम केश होवें उस स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये । फिर इसके विरुद्ध उसी का समुल्लास १० (केशान्तः षोडशेवर्षे०) इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि गर्मी में शिखा सहित सब केश कटवा डाले क्योंकि सिर पर बाल रखने से गर्मी अधिक होती है उस से बुद्धि कम हो जाती है । इस लेख की दयादृष्टि से आर्यमत वाली स्त्री के शिरपर से भी सूक्ष्मलोम वा केश आर्यों को मुडवाने पड़ेंगे । यदि न मुंडवावेंगे तो आर्यमत वाली स्त्री की बुद्धि कम होजायगी, परन्तु दारोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं सत्या० समुल्ला० ४—

ब्राह्मोदैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः ।
गान्धर्वोराक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का फोटोग्राफ उतार कर कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों का और कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं का भेज देवें जिस २ का रूप मिलजाय उस २ के जन्म चरित्र का पुस्तक मंगवा के देखें जब दोनों के गुण कर्मस्वभाव सदृश हों तो उस २ का विवाह हो जाय । दयानन्द के इस लेख से सिद्ध होचुका है कि मूर्तिके देखनेसे वरकन्या को वरकन्याके रूपगुण का ज्ञान हो जाता है। फिर इसके विरुद्ध उसीके ग्यारहवें समुल्लास में दयानन्द ही का

लेख है कि जड़का ध्यान करनेवाले का आत्मा जड़ बुद्धि होजाता है क्यों कि जड़का जड़त्व धर्म आत्मा में आजाता है। यदि दयानन्दके इस लेख को आर्यसमाजी सत्य मानें तो आर्यमतवाले कुमार कुमारीका आत्मा भी जड़ बुद्धि हो जायगा" क्योंकि कुमार कुमारी के फोटो भी जड़ हैं यदि आर्यमत वाले कुमार कुमारी का आत्मा जड़ बुद्धि हो जायगा तो मूर्ति के देखने से आर्यमतवाले कुमार कुमारी को एक दूसरे के रूप गुण का भी यथार्थ ज्ञान कभी न होगा, परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके यह दोनोंलेख भी झूठेहैं॥

(सत्या० समुल्ला० ४) दयानन्दका लेख है कि जब कुमार कुमारी का परस्पर विवाह होजावे तो संस्कारविधि के अनुसार सब के सामने हाथ ग्रहणकर विवाहकी विधिको पूरा करके एकान्त सेवन करें जब गर्भाशय में वीर्य गिरने का समय हो तो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर हो कर नासिका के सामने नासिका नेत्र के सामने नेत्र सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें डिगें नहीं, स्त्री वीर्य्य प्राप्ति के समय अपानवायु को ऊपर खींचे योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य को ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे। दयानन्द के इस लेख से समागम के समय स्त्री पुरुष के नाक कान नेत्रादि अंगों का आमने सामने करना सिद्ध हो चुका फिर इसके विरुद्ध (य० अ० २८ मं० ३२) इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि जैसे बैल गौवों को गाभिन करता है वैसे ही स्त्रियों को गाभिन कर प्रजा की उत्पत्ति करे यदि दयानन्द के इस लेख को आर्य सत्य मानें तो सत्यार्थप्रकाश के तरीके का गर्भाधान संस्कार व्यर्थ होगा क्योंकि इस लेख में दयानन्द ने गर्भाधान पर बैल गौ का उदाहरण दिया है बैल गौ के नाक कान नेत्रादि अंग परस्पर विपरीत रहते हैं आमने सामने नहीं हो सकते। यदि सत्यार्थप्रकाश के लेखको आर्यसमाजी सत्य कहैं तो आर्यमतवाले कुमार कुमारी के नासिकादि अंग तो आमने सामने हो सकते हैं परन्तु दयानन्दोक्त वेदभाष्य का लेख मिथ्या सिद्ध हो जायगा। परंतु दरोगहलफी से दयानंद के यह दोनों लेख भी झूठे हैं यहां तक स्थालीपुलाकन्याय से दयानन्दोक्त सत्यानाशी गृहस्थाश्रम का खंडन किया अब दयानंदोक्त वानप्रस्थाश्रम का खंडन लिखा जाता है (तथाहि) (सत्या० समु० ५)॥

वनेषुचविहृत्यैवं तृतीयंभागमायुषः।
चतुर्थमायुषोभागं त्यक्त्वासंगान्परिव्रजेत्)

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि वनमें आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष तक वानप्रस्थ होवे। दयानन्दके इस लेख का सिद्धान्त यह है कि मनुष्य को चाहिये कि पचास वर्षकी आयु हो जावे तो गृहस्थाश्रम को छोड़ देवे और वानप्रस्थाश्रम को धारण कर लेवे। फिर इस के विरुद्ध उसी समुल्लास में ॥

गृहस्थस्तुयदापश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैवचापत्यं तदारण्यंसमाश्रयेत् ॥

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब वन में जा कर बसे यदि दयानन्द के इस लेख को आर्यसमाजी सत्य मानें तो पहिला लेख मिथ्या होता है क्योंकि पहिले लेख से सिद्ध हो चुका है कि पचास वर्ष तक आयु पूरी कर फिर वानप्रस्थ हो जावे और चौथे समुल्लास में दयानन्द की प्रतिज्ञा है कि पच्चीस वर्षसे कम ब्रह्मचर्य कभी न करे किन्तु पचीस वर्ष की आयु के पश्चात् ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में आवे। दयानन्द की इस प्रतिज्ञा के अनुसार जब आर्यकुमार आर्यकुमारी में गर्भाधान संस्कार करेगा तो एक वर्ष ऐसे ही गुजर जावेगा छब्बीस वर्ष की आयु हो जावेगी फिर सन्तान के जन्म होने पर एक वर्ष तक फिर गर्भाधान संस्कार न होगा क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास की दयानन्दोक्त प्रतिज्ञा से गर्भवती स्त्री से एक वर्ष तक समागम का न करना अनुभव सिद्ध है। अनुभव सिद्ध बात किसी भी प्रमाण और युक्तिसे खण्डन नहीं हो सकती। सन्तानके जन्मके पश्चात् एक वर्ष तक जब आर्यसमाजी स्त्री से समागम करेंगे तो स्त्री का दूध विगड़ जायगा उसके पीनेसे संतान रोगी होकर मर जांयगे यदि एक वर्ष तक फिर भी समागम करना छोड़ देंगे तो आर्यों की सत्ताईस वर्षकी आयु होगी। इसी प्रकार जब आर्यकुमार भी पच्चीस वर्षके पश्चात् विवाह करावेगा तो सत्ताईस वर्ष की आयु उसकी भी हो जायगी पौत्र होते तक आर्यकुमार की आयु चौवन ५४ की हो जायगी जो आर्यकुमार अड़तालीस ४८ वर्ष तक सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य करेगा तो पौत्र होते तक उसकी आयु डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक हो जायगी उससे आर्यमतवाले वानप्रस्थाश्रम की प्रतिज्ञा झूंठी हो जायगी परन्तु दरोगहलफी होनेके कारण दयानन्दोक्त वानप्रस्थाश्रम विषयक यह दोनों लेख भी झूंठे हैं ऐसे और भी दयानन्दोक्त वानप्रस्थाश्रम में अनेक प्रकार से दरोगहलफी देखी जातीहै अब वेदोक्त सनातनहिन्दुधर्म की रीति से प्रथम गृहस्थाश्रम के कर्मों का वर्णन किया जाता है फिर वानप्रस्थाश्रम के कर्मों का वर्णन करेंगे ॥

यथानदीनदाःसर्वे सागरेयान्तिसंस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणःसर्वे गृहस्थेयान्तिसंस्थितिम् ॥

इसमें मनु जी कहते हैं कि जैसे छोटी २ नदियां और बड़े २ दरिया भ्रमते हुए सागर में जाकर ठहर जाते हैं वैसे ही सर्व आश्रम गृहस्थाश्रमके आश्रय ही रहते हैं ॥

यथावायुंसमाश्रित्य वर्त्तन्तेसर्वजन्तवः ।
तथागृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्तेसर्वआश्रमाः ॥

इसमें मनुजी ने कहा है कि जैसे वायुके आश्रय सर्वजीव जन्तु रहते हैं वैसेही अन्न वस्त्रादिका लाभ गृहस्थाश्रम ही से अन्य तीन आश्रमोंके धारण करनेवालों को होता है उससे गृहस्थाश्रम अन्न वस्त्रादि के लाभ से सर्वोत्तम है विद्या और वीर्य की उन्नति से ब्रह्मचर्य इन्द्रियनिरोध और विद्या के स्मरण से वानप्रस्थ सर्वत्र भ्रमण कर निष्पक्ष उपदेश देने से संन्यासाश्रम सर्वोत्तम है ॥

सन्तुष्टोभार्ययाभर्त्ता भर्त्राभार्यातथैवच ।
यस्मिन्नेवकुलेनित्यं कल्याणंतत्रवैध्रुवम् ॥

इस में मनुजी ने कहा है कि गृहस्थाश्रम में रहकर स्त्री और पति परस्पर प्रेम रखें जिस कुल में स्त्री पति परस्पर प्रसन्न रहते हैं उस कुलमें सदा आनन्द रहता है ॥

यदिहिस्त्रीनरोचेत पुमांसंनप्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्पुनःपुंसः प्रजननंनप्रवर्तते ॥

इस में मनुजी ने कहा है कि जो स्त्री वस्त्र भूषणादि से सुशोभित न होकर अपने पति को प्रसन्न न करे तो पति के अप्रसन्न होने से गर्भाधान भी यथावत् नहीं होगा ॥

स्त्रियांतुरोचमनायां सर्वंतद्रोचतेकुलम् ।
तस्यांत्वरोचमानायां सर्वमेवनरोचते ॥

इस में मनु जी वर्णन करते हैं कि भूषण वस्त्रादिसे जब स्त्री सुशोभित होती है और जिस कुल में वह स्त्री पर पुरुष का संसर्ग नहीं करती वह कुल सर्वोत्तम होता है जिस कुल में पति से विरोध रखकर दूसरे मनुष्य से मेल रखती है वह कुल ही भ्रष्ट हो जाता है ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥

इस में मनुजी कहते हैं कि जिस स्त्री के माता पिता भ्राता धनाढ्य होवें वह वस्त्र भूषणादि से कन्या का सत्कार करें, ऐसे माता पिता भ्रातादि को भी आनन्द का लाभ होता है स्त्री का देवर भी स्त्री का सत्कार करे ॥

यत्रनार्यस्तुपूज्यन्ते रमन्तेतत्रदेवताः ।
यत्रैतास्तुनपूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि जिस कुल में माता पिता भ्रातादि से स्त्री का सत्कार होता है उस कुल पर देवता भी प्रसन्न होते हैं। जिस कुल में स्त्री का सत्कार नहीं होता वहां देवता भी अप्रसन्न रहते हैं और उस कुल में यज्ञादि कर्म भी निष्फल होते हैं ॥

शोचन्तिजामयोयत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम् ।
नशोचन्तितुयत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि जिस कुल में स्त्री दुःखी रहती है वह कुल बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है, और जिस कुल में स्त्री सुखी रहती है वही कुल वृद्धि को प्राप्त होता है ॥

तस्मादेताःसदापूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥

इस में मनु जी का सिद्धान्त यह है कि जिस कुल में अन्न वस्त्र भूषणादि से स्त्री का सत्कार होता है और तीर्थादि मेले में पति के साथ जाने से स्त्री को थकावट नहीं होती उस कुल की सदा उन्नति होती जाती है ॥

ऋतुकालाभिगामीस्यात् स्वदारनिरतःसदा ।
पर्ववर्जंव्रजेच्चैनां तद्व्रतोरतिकाम्यया ॥
ऋतुःस्वाभाविकःस्त्रीणां रात्रयः षोडशस्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशीचया ।
त्रयोदशीचशेषास्तु प्रशस्तादशरात्रयः ॥

इत्यादि श्लोकों में मनु जी ने गृहस्थाश्रम वाले को गर्भाधान करने की शिक्षा दी है और कहा है कि ऋतुकाल में सन्तान के लिये ही स्त्री से समागम करे, अपनी स्त्री के साथ ही गृहस्थी प्रेम रक्खे पर स्त्री से कभी समागम न करे, जिस दिन स्त्री रजस्वला हो उस दिन से लेकर पांचवें दिन तक पतिग्राम्यधर्म न करे पांचवें दिनसे सोलहवें दिन तक ऋतु प्रदानका समय है पहिले चार दिन त्याग देवे रहे बारह दिन उनमेंसे भी एकादशी और त्रयोदशी यह दो दिन छोड़ देवे शेष दश रात्रियों में गर्भाधान संस्कार को सफल करे। सोलहवें दिन के पश्चात् सर्वथा ग्राम्यधर्म को छोड़ देवे गर्भाधान हो जाने के पश्चात् दो वर्ष तक स्त्री से समागम न करे ॥

पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः ।
कण्डनीचोदकुम्भश्च बध्यतेयास्तुवाहयन् ॥
तासांक्रमेणसर्वासां निष्कृत्यर्थंमहर्षिभिः ।
पञ्चक्लृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहंगृहमेधिनाम् ॥

इन दो श्लोकोंमें मनुजीने कहा है कि चूल्हा १ चक्की २ बुहारी ३ ओखली मूसल ४ जलका घट ५ इन पांच कर्मों से गृहस्थ मनुष्य को पाप लगता है ॥

अध्यापनंब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तुतर्पणम् ।
होमोदैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि उक्त पाप नष्ट करने के लिये गृहस्थ को चाहिये कि वेदका पढ़ना पढ़ाना १ अन्न आदि से पितरोंको तृप्त करना २ अग्निमें होम करना ३ जीवों को बलि देना ४ संन्यासी को भोजन खिलाना ५ इन पांच यज्ञों को प्रतिदिन करता रहे ॥

नलोकवृत्तंवर्तेत वृत्तिहेतोःकथञ्चन ।
अजिह्मामशठांशुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥

इसमें मनु जी ने कहा है कि गृहस्थ को चाहिये कि जीविका के लिये शास्त्र और धर्म के विरुद्ध चेष्टा को सर्वथा छोड़ देवे, अभिप्राय यह कि चोरी, जारी, धोखा, जालसाजी, ठगी, आदि से धनोपार्जन कर जीविका न करे किन्तु जैसे चार वर्ण और चार आश्रमों के कर्म वर्णन किये हैं उन्हीं कर्मों से धनोपार्जन करके जीविका करे। व्यभिचारके मूल काम को, फूटके मूलक्रोध को, पापके मूल लोभको, विषय लंपटताके मूल मोहको, और अभिमानके मूल

अहंकार को अन्तःकरणमें से गृहस्थी निकाल देवे। गृहस्थ को चाहिये कि नित्यकर्म सन्ध्या आदि भी करे, नैमित्तिक कर्म ग्रहण श्राद्धादि भी करे, प्रायश्चित्त कर्म गंगा स्नानादि भी करे कंठी माला तिलकादि को यथावत् धारण करे क्योंकि कंठी तिलक माला आदि बुरे नहीं किन्तु बुरा भला मनुष्य हो सकता है एकादश्यादि व्रतों को भी गृहस्थी धारण करे। भूखे को अन्नदान प्यासे को जलदान नंगे को वस्त्रदान गृहस्थी देवे। विद्वान् सन्तों का संग सच्छास्त्र का विचार भी गृहस्थी किया करे। लड़कों को ब्रह्मचर्य करावे। वेदादिकों का पठन पाठन भी संतानों को गृहस्थ करावे परस्पर एक सम्मति से धर्म संबन्धी कामों को गृहस्थी करे चार बजे रात्रि से उठे पहिले शौच को जावे दन्त धावन करे स्नान करे फिर प्राणायाम करे पश्चात् हवा खाने को पैदल चला जावे फिर बैठ कर ऐसा विचार करे कि आज हमको कौन २ कार्य करना है जिससे परिश्रम न्यून हो और लाभ अधिक मिले।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्राभवतुसंमनाः ।
जायापत्येमधुमतीं वाचंवदतुशन्तिवाम् ॥

इस अथर्ववेद के मंत्र में गृहस्थी को ईश्वर की आज्ञा है कि गृहस्थाश्रम में पिता पुत्र परस्पर प्रेम रक्खें विरोध न करें। कन्या और माता आपस में प्रीति रक्खें कभी विरोध की बात न करें स्त्री और पति जब परस्पर बात चीत करें तो ऐसा प्रेम पूर्वक मधुर भाषण करें कि जिस से दोनों का प्रसन्न वदन रहे।

माभ्राताभ्रातरंद्विक्ष—न्मास्वसारमुतस्वसा ।
सम्यञ्चःसव्रताभूत्वा वाचंवदतभद्रया ।

इस मंत्र में ईश्वर का गृहस्थ लोगों को उपदेश देना है कि भ्राता से भ्राता कभी वैर न रक्खे किन्तु परस्पर प्रीति पूर्वक व्यवहार करे एक दूसरे के साथ प्रेम से प्रश्नोत्तर करे कि जिससे सर्वथा आनन्द का लाभ होता रहे इत्यादि गृहस्थों को उपदेश के वेदों में अनेक मंत्र हैं गृहस्थों को चाहिये कि दान भी करते रहें क्योंकि पूर्व जन्म के दान कर्म का फल इस जन्म में मिलता है इस जन्ममें दान किये का फल परलोक में मिलता है।

सुवासिनीःकुमारांश्च रोगिणीगर्भिणीस्तथा।
अतिथिभ्योऽग्रएवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥

इसमें गृहस्थों को मनुजी ने कहा है कि स्त्री बहू बेटी बालक रोगी गर्भवाली स्त्री आदिको पहिले भोजन करावे पश्चात् अतिथि को करावे।

अदत्वातुयएतेभ्यः पूर्वंभुङ्क्तेविचक्षणः।
सभुञ्जानोनजानाति—श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः॥

इसमें मनु जी ने वर्णन किया है कि जो गृहस्थी भोजन के दोष को न जानकर अतिथि आदिकों को पहिले भोजन नहीं जिमाता किन्तु पहिले आप भोजन कर लेता है वह मरण के पश्चात् कुत्ता वा गीध की योनि में जाता है।

भुक्तवत्स्वथविप्रेषु स्वेषुभृत्येषुचैवहि।
भुञ्जीयातांततःपश्चा—दवशिष्टंतुदंपती॥

इस में मनु जी कहते है कि संन्यासी ब्राह्मण ज्ञाति आदि जब भोजन कर चुकें तब पश्चात् बचे हुए अन्न को गृहस्थी खावे रोगनाश के लिये आयुर्वेद, नीति याद रखने के लिये, धनुर्वेद, गाने बजाने के लिये गान्धर्ववेद, भोजन बनानेके लिये अर्थ वेद का अभ्यास भी गृहस्थ लोग करते रहें। गृहस्थों को चाहिये कि किसी को क्रोध न दिलावें किसी के मन को न दुखावें किसी के मान की हानि कभी न करें हाथी घोड़ा गौ बैलादि की रक्षा करें परस्पर एक दूसरे के सहायकारी बने रहें स्वार्थपन को सर्वथा छोड़ देवें राजा से विरोध कभी न रक्खें क्योंकि राजभक्तिका करना प्रजा का कर्त्तव्य कर्म है गृहस्थी राजा को भी चाहिये कि प्रजा के दुःखों को दूर करता रहे प्रजाके साथ न्याय से वर्त्ताव रक्खे कि जिससे प्रजा जन प्रसन्न वदन होकर राजा के शुभचिन्तक रहें।

दूषितोपिचरेद्धर्मं यत्रतत्राश्रमेरतः।
समःसर्वेषुभूतेषु नलिङ्गंधर्मकारणम्॥

इसमें मनु जी ने कहा है कि मनुष्य चाहे किसी आश्रम में भी रहे और कोई निन्दा भी करे परन्तु धर्म का त्याग कभी न करे किन्तु धर्म को सर्वथा सम्पादन करता रहे क्योंकि वर्णाश्रम के चिन्हमात्रमें शुभ लाभ कभी नहीं हो सकता किन्तु दुष्टकर्मों को त्याग कर सर्वोत्तम कर्मों का अनुष्ठानही धर्म का मूल कारण है उससे गृहस्थाश्रम में रहने वालोंको भी चाहिये कि धर्मके सम्पादन करनेका सदा पुरुषार्थ करते रहें क्षमा धर्म को सम्पादन करें सत्यभाषण करते रहें शौच धर्म की उन्नति करते रहें।

एका लिङ्गे गुदे तिस्र-स्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥

इस में मनु जी की आज्ञा है कि विष्ठा मूत्र त्यागने के पश्चात् गृहस्थी को चाहिये कि एकवार मट्टी और जल से उपस्थेन्द्रिय को धोवे, तीन वार मट्टी और जलसे पायु इन्द्रिय को धोवे दशवार मट्टी और जलसे बाएं हाथ को धोवे, और सातवार मट्टी जल लगाकर दोनों हाथोंको धोवे इसप्रकार की शुद्धि से शरीर मन इन्द्रिय स्वस्थ रहते हैं गर्मीका अदर्शन होजाता है शरीर आरोग्य रहता है, परन्तु इस प्रकार का शौच गृहस्थों के लिये कहागया है ॥

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥

इसमें मनु जी ने कहा है कि जितना शौच गृहस्थी के लिये है उस से द्विगुणा शौच ब्रह्मचारी, और ब्रह्मचारी से त्रिगुणा वानप्रस्थ, वानप्रस्थ से चतुर्गुणा शौच संन्यासी करे । प्रारब्ध पर गृहस्थी भरोसा रक्खे परन्तु पुरुषार्थ को कभी न छोड़े क्योंकि (पुरुषार्थः पुरुषलक्षणम्) अर्थात् पुरुष का लक्षण ही पुरुषार्थ का करना है । नाचतमाशों में खर्च कभी न करे किन्तु विद्यादि गुणों की उन्नति के लिये धनका खर्च गृहस्थी करे लाभ होने पर हर्ष न माने हानि होवे तो शोकसागर में कभी न गिरे, परस्त्री बालिका हो तो पुत्री सदृश युवा हो तो भगिनी सदृश वृद्धा हो तो माताके सदृश जानकर काम चेष्टा का संकल्प कभी न उठावे । सन्ध्या के समय व्यवहार से पृथक् होकर एकान्त में पद्मासन लगाकर बैठे जैसे सर्व ओर से बांधा हुआ जल नीचे स्थान में जाके स्थिर होता है वैसे ही मनको सर्व अनात्मपदार्थों की ओरसे रोक देवे तो वह रुकाहुआ मन स्वप्रकाश ब्रह्मचेतनस्वरूप आनन्द में रुक जाता है उस से निर्विकल्प समाधि लग जाती है ॥

यहां तक वेदादि प्रमाणों से गृहस्थाश्रम के धर्मों का संक्षेप से वर्णन किया, जिनको अधिक देखना हो वह वेदादि ग्रंथोंमें देख लेवें जबतक गृहस्थ लोग पूर्वोक्त कर्मों का संपादन न करेंगे तबतक गृहस्थाश्रम की उन्नति का होना सर्वथा असम्भव है । प्रत्यक्ष देखा जाता है कि इस समय लाखों हिन्दू सन्तानों में से कोई एक गृहस्थाश्रमके किञ्चित्कर्मों से युक्त होगा शेष हिन्दु संतानों में सर्वथा वेदोक्त गृहस्थाश्रम के कर्मों का अदर्शन होगया है, वेदाङ्ग शिक्षा के स्थान में विल्ली मूर्खों के इतिहास पढ़ने लगे हैं, अग्निहोत्र के

धूम्र को छोड़ दिया है किन्तु बीड़ी चुरट हुक्का गांजा चर्षादि के धुएंसे डाढ़ी मोंछ और शरीरकी नशोंको जला रहे हैं, अर्थ वेदोक्त भोजन को त्यागकर हो-टलों में डवल रोटी बिस्कुटादि को खाकर डकरा रहे हैं, दूध दधि घृत को तिलांजली देकर बरांडी] से तोंद फुलाकर मैले मूत में गिरकर वमन करते हैं कुत्ते मुख में मूत रहे हैं, लड्डू पेड़ा आदि सात्विकी भोजन को छोड़कर मांस जो कि राक्षसी भोजन हैं उनको खारहे हैं, यहां तक कि हड्डी भी नहीं छोड़ते नाना प्रकार के अर्क और शरवत का त्याग करदिया है उसके स्थान में सोडावाटर लमलेटादि से पेट भर रहे हैं धोती पैजामें त्याग कर पट-लून के मानमें मररहे हैं, कुड़ता अंगरखा छोड़कर नये रंग २ के कोटके वटनों की दमक चमक देखरहे हैं, साफे पगड़ी का नाम तक नहीं किन्तु विलायती टोप से मुखादि का सत्यानाश कर रहे हैं, नये ढंग के बूट में पैर फसा लेते हैं, संस्कृत विद्या का गंध भी नहीं केवल गिटपिट गिटपिट का हल्ला मचा रहे हैं, प्रातःकाल को कुत्ते विल्ली वन्दर के मुंहसे मुंह मिलाने लगजाते हैं, पतिव्रता धर्म्म कन्या को सिखलाते ही नहीं किन्तु ग्यारह पति कर लेने की शिक्षा देने लग जाते हैं, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यों का दर्शन तक छो-ड़कर एम० ए० बी०ए० बावुओंके शिष्य वन जाते हैं। सनातन मन्दिरोंकी निन्दा और नये२मत चलाकर नये मन्दिर वना लेते हैं. नादिरशाह महमूद गजनवी औरंगजेब की तलवार से भी जो वेदोक्त हिन्दूधर्म नष्ट नहीं हुआ उस को घमंड की जवान से नष्ट करने का दावा रख वैठे हैं। इत्यादि और भी अनेक भांति के वेदविरुद्ध कुकर्मों के जाल में फंसकर हिंदुसन्तान जन्म को नष्ट करते चलेजाते हैं। शङ्कर परमात्मा इन गृहस्थ हिन्दुसन्तानों पर कृपा करें कि जिससे वह वेदोक्त गृहस्थाश्रम के कर्मों को सम्पादन करने की ओर आवें और गृहस्थाश्रम की उन्नति करें ॥

अब वेदोक्त वानप्रस्थ का वर्णन किया जाता है (तथाहि) विद्या के स्मरण और इन्द्रियों के निरोध के लिये वानप्रस्थाश्रम का करना सिद्ध होता है क्योंकि गृहस्थाश्रम में व्यवहार का करना अधिक होता है उस से विद्या शिथिल हो जाती है ग्राम्यधर्म से इन्द्रियगण भी शिथिल होजाते हैं

एवंगृहाश्रमेस्थित्वा विधिवत्स्नातकोद्विजः ।
वनेवसेत्तुनियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥

इसमें मनु जी ने कहा है कि गृहस्थाश्रम के पश्चात् जितेन्द्रिय होने के लिये गृहस्थी वानप्रस्थाश्रम को धारण करे ॥

संत्यज्यग्राम्यमाहारं सर्वंचैवपरिच्छदम् ।
पुत्रेषुभार्यांनिक्षिप्य वनंगच्छेत्सहैववा ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि धान जव आदि जो भोजन है उस को वानप्रस्थ न करे, गौ घोड़ा शय्या आसनादिकों को भी वानप्रस्थ छोड़ देवे, स्त्री को घर में पुत्रों के पास छोड़ जावे अथवा वन में स्त्री को भी साथ ले जावे, यहां मनु जी ने स्त्री का छोड़ना किंवा साथ ले जाना दो प्रकार की आज्ञा दी है उसमें से स्त्रीको पुत्रों के पास छोड़ना ही सर्वोत्तम है क्योंकि जितेन्द्रियताके लाभके लिये वानप्रस्थाश्रम का करना है जैसे वन्हिके पास रक्खा हुआ घृत पिघल जाता है वैसे ही वानप्रस्थ के पास स्त्री की सन्निकटता से विषय भोग में मन चला जाना सम्भव है ॥

छोटी मोटी स्त्री दोनों विष की वेलि ।
वैरी मारे दाव सों यह मारे हंस खेलि ॥
यह मारे हंसि खेल नैन के तीर चलावे ।
सोलह करे शृङ्गार भजन को लूट लिजावे ॥
कह गिरिधर कवि राय रीति इन की सब खोटी ।
मुक्ति होन नहिं देत रांड़क्या छोटी मोटी ॥
अङ्गना अङ्ग दिखाय कर करे पुरुष को भ्रान्त ।
कान्ता याकर कहत हैं हरे मनुष्य की कान्त ॥
हरे मनुष्य की क्रान्त नाम तिसका है वामा ॥
नर को सदा भ्रमाय मोह को वान्धे दामा ॥
कह गिरिधर कविराय पहिर कर कर में कंगना ।
सब अनर्थको मूल अङ्ग संग राखे अंगना ॥
नारी श्रेणी नरक की है प्रसिद्ध नहिं लुकी ।
यथा कंचनी पर त्रियां तथा जान लै स्वकी ।
तथा जान लै स्वकी तीन का एको रूपा ।
अस्थि मांस नख चर्म्म रोम मल मूत्र को कूपा ॥

कह गिरिधर कविराय पुरुष इन किये अजारी ।
ऐसा दुष्ट न और जगत् में जैसी नारी ॥
रांड सांड पुन भांडका रे नर तज तू संग ।
जहं तहं विचरो भूमि पर करो वासना भंग ॥
करो वासना भंग वृत्ति अन्तर मुख राखो ।
ब्रह्म विद्या बिन और कुछ सुनों न भाखो ॥
कह गिरिधर कविराय तीन शिर राखो दांड ।
काया वाणी मन पर शोभित करो न रांड ॥

नैतारूपंपरीक्षन्ते नासांवयसिसंस्थितिः ।
सुरूपंवाविरूपंवा पुमानित्येवभुञ्जते ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि स्त्री सुन्दर रूप का विचार नहीं करती और न युवाऽवस्था का विचार करती हैं किन्तु सुरूप हो वा बालक हो वा वृद्ध हो ऊंच हो वा नीच हो मनुष्य मात्र के साथ कामातुर हुई समागम कर लेती हैं ॥

वसिष्ठसंहिता—पितारक्षतिकौमारे भर्त्तारक्षतियौवने ।
पुत्राश्चस्थाविरेभावे नस्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति ॥

इस में वसिष्ठ जी का भी यही सिद्धान्त है कि स्त्री को पुत्रों के पास छोड़ देवे आप बन में चला जावे ॥

व्यासस्मृतिः—द्वारोपवेशनंनित्यं गवाक्षेणनिरीक्षणम् ।
असत्प्रलापोहास्यंच दूषणंकुलयोषिताम् ॥

इसमें व्यास जी वर्णन करते हैं कि दरवाजे में खड़ी होकर बाहर की ओर मनुष्यों को ताकना, कटाक्ष लड़ाना, झूठ बोलना, हंस कर बोलना, इत्यादि दोष स्त्री में होते हैं। उस से भी वानप्रस्थ के समय स्त्री को साथ रखना हानि कारक है ॥

महाभारत—गौडीपैष्टीतथामाध्वी विज्ञेयात्रिविधासुरा ।
चतुर्थीस्त्रीसुराज्ञेया ययेदंमोहितंजगत् ॥

इस में व्यास जीने स्त्री को भी शराब के सदृश वर्णन किया है स्त्रीको साथ रखने से वानप्रस्थ मनुष्य भी स्त्री रूपी सुराके नशे में काम चेष्टा करने

लग जायगा, विद्या के अभ्यास को सर्वथा तिलाञ्जलि दे बैठेगा, इन्द्रियों के वश होकर जितेन्द्रियता धर्म से हाथ धो बैठेगा ॥

मात्रास्वस्रादुहित्रावा नविविक्तासनोभवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपिकर्षति ॥

इसमें मनुजी कहते हैं कि माता भगिनी कन्या के साथ भी एकान्तमें आसन पर मनुष्य न बैठे क्योंकि इन्द्रियगण बड़े बलवान् हैं जब विद्वान्को भी दुष्ट विषयों की ओर इन्द्रियगण ले जाते हैं तो मूर्ख की क्या बात है। यहां सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि जब माता भगिनी कन्याके साथ बैठना भी हानिकारक है तो वनमें स्त्रीको साथ रखनेसे वानप्रस्थाश्रम का सत्यानाश क्यों न होगा किन्तु अवश्य होगा, इससे वानप्रस्थ मनुष्य को चाहिये कि स्त्री को साथ कभी न रक्खे। (जो धर्म के नियम से एक बालभर भी इधर उधर गृहाश्रम में भी न डिगें, जिनको कामासक्ति ने कभी न दबा पाया हो ऐसे वानप्रस्थ में मनु जी का—पत्नी को साथ रखने का कथन चरितार्थ होगा परन्तु उस दशा में स्त्री भी अटल तपस्विनी होना योग्य है। सो ऐसे स्त्री पुरुष लाखों में कोई हो सकते हैं। इस से ऊपर कहा विचार सर्वसाधारण के लिये उचित ही है)

य० अ० २० मं० २४—अभ्यादधामिसमिधमग्नेव्रतपतेत्वयि ।
व्रतंचश्रद्धांचोपैमीन्धेत्वादीक्षितोअहम् ॥

इस वेद मंत्र में कहा है कि वानप्रस्थ इस प्रकार का विचार करे कि मैं अग्निहोत्र करके और मैं दीक्षित होकर एकादश्यादि व्रतोंको करूं, वेदज्ञ विद्वानोंमें श्रद्धा रक्खूं, प्राणायाम से मन तथा इन्द्रियों को दुष्ट विषयों की ओर से रोकूं। आत्मविद्या का अभ्यास कर परमानन्द में मग्न रहूं ॥

यद्भक्ष्यंस्यात्ततोदद्याद्बलिंभिक्षांचशक्तितः ।
अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥

इस में मनुजी ने कहा है कि वानप्रस्थ वन में से जो भोजन आप करे उसीमें से अपने पास आये हुये अतिथि को भिक्षा देकर उसका सत्कार करे॥

स्वाध्यायेनित्ययुक्तःस्या—द्दान्तोमैत्रःसमाहितः ।
दातानित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥

इस में मनु जी ने वर्णन किया है कि वानप्रस्थ को चाहिये कि पराविद्या जो कि आत्मविद्या है उसके अभ्यास में सदा लगा रहे, जीवन्मुक्ति के सुखको आस्वादन करे, अपराविद्या का अभ्यास भी वानप्रस्थ करे, क्योंकि वानप्रस्थ की सीमा के पश्चात् संन्यासाश्रम में जाना पड़ेगा, संन्यासमें सर्वत्र भ्रमण कर उपदेश देना होगा, सो उपदेश परा अपरा दोनों प्रकारकी विद्या के बलसे हो सकता है। वानप्रस्थ शीतोष्ण क्षुधा पिपासा मानापमानकोभी सहारे, मनकी चपलताका भी सत्यानाश कर डाले, विद्यादान अथवा अतिथि को सत्कार दान किंवा फल फूल दान देता रहे, आप कभी दानकी इच्छाभी न करे और सर्वजीवों पर दया पाले, किसी जीवको कभी वानप्रस्थ दुःख न देवे॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानिच।
मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्या–त्स्नेहांश्चफलसम्भवान्॥

इस में मनु जी कहते हैं कि जब वानप्रस्थ को क्षुधा की बाधा होवे तो जल वा स्थल में उपजे हुए शाकों की तरकारी बनाकर खावे अथवा जङ्गली वृक्षोंकी पत्ती फल फूल तोड़कर खावे अथवा सिंगोटादि फलोंकी गरीकोखावे॥

वर्जयेन्मधुमांसंच भौमानिकवकानिच।
भूस्तृणंशिग्रुकंचैव श्लेष्मातकफलानिच॥

इस में मनु जी का वर्णन है कि मदिरा मांसको भी वानप्रस्थ न कभी पीवे और न खावे। जमीन में उपजे फूलोंको तथा भूस्तृण नाम वाले शाक को सुहांजनें के फल आदिकों को भी वानप्रस्थ न खावे। शाक पत्ति फलफूल खाने से वैद्य लोगोंकी सम्मति है कि शरीर में ९० हिस्सा ताकत आती है। मांस खाने से शरीर में ९० हिस्सा नाताक़त आती है, शाक फल फूलादिके खाने से शरीर में दश हिस्सा नाताकत, और मांसके खाने से शरीर में दश हिस्सा ताकत आती है, उससे भी वानप्रस्थ को चाहिये कि शाक फल फूल पत्ती खाकर ही प्राणों की रक्षा करे॥

नक्तंचान्नंसमश्नीया–द्दिवावाहृत्यशक्तितः।
चतुर्थकालिकोवास्या–त्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः॥

इस में मनु जी ने कहा है कि वानप्रस्थ को चाहिये कि शाक फल फूलादिका भोजन भी सायंकाल में वानप्रस्थ खावे, अथवा दिन ही में खावे, वा चौथे काल में भोजन करे साय और प्रातःकाल जो वानप्रस्थ भोजन क-

रता है वह भोजन देवताओं का बनाया हुआ कहा जाता है। वानप्रस्थ को चाहिये कि एक अथवा तीन व्रत रख कर भोजन करे, यहां मनु जी का सिद्धान्त यह है कि एक अथवा तीन दिन व्रत रख लेने से अजीर्ण रोग का प्रध्वंसाभाव हो जाता है, उस से शरीर स्वस्थ रहेगा विद्याभ्यास करने के लिये श्वास भी सुख से चलेगा, प्राणायाम भी यथावत् होगा। आर्यसमाजी कहते हैं कि एकादश्यादि व्रतों के बनाने वाले कसाई और निर्दई हुए हैं आर्यसमाजियों की यह शंका सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में दयानन्द बाबा जी ने लिखी है। सो शंका ठीक नहीं क्योंकि संस्कारविधि के यज्ञोपवीत संस्कार प्रकरण में दयानन्द ने स्वयं भी तीन दिन तक व्रतोंका करना कहा है, यदि व्रतोंके बनाने वाले निर्दई कसाई हैं तो दयानन्द पर भी वही दोष आता है संस्कार विधिके भक्त आर्यों पर भी वह दोष आ सकता है। वेदान्त के ग्रन्थोंमें क्षुधा पिपासा के सहारनेको तितिक्षा कहा है एकादश्यादि व्रतोंमें भी क्षुधा पिपासाका सहारना होता है उस से एकादश्यादि व्रतों का ही दूसरा नाम तितिक्षा है दरोगहलफी होने के कारण दयानन्दोक्त एकादश्यादि व्रतों के दोनों लेख झूंठे हैं अभिप्राय यह है कि मुक्ति का परंपरा साधन तितिक्षा स्वरूप एकादश्यादि व्रतों को भी एक दिन अथवा दो दिन तक वानप्रस्थ कर लेवे॥

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णेचवर्तयेत् ।
पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीया-द्यवागूंक्वथितांसकृत् ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि वानप्रस्थ को चाहिये कि कृष्णपक्ष में एक २ ग्रास पन्द्रहदिन तक घटाता जावे फिर शुक्ल पक्षके आरम्भ से लेकर पन्द्रह दिन तक एक२ ग्रास बढ़ाता जावे इसका नाम चान्द्रायण व्रत कहाता है यह व्रत एक महीनेका होता है यहां भी मनु जी का यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि क्षुधापिपासाका सहारना स्वरूप जो तितिक्षा है उसको वानप्रस्थ संपादन करे उससे शरीर में संगदोषजन्य रोग का तिरोभाव हो जावेगा॥

भूमौविपरिवर्तेत तिष्ठेद्वाप्रपदैर्दिनम् ।
स्थानासनाभ्यांविहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥

इस में वानप्रस्थ को मनुजी कहते हैं कि कांटा करके पके और स्वयं गिरे हुए फलों को खाकर वानप्रस्थ प्राणों की रक्षा करे वानप्रस्थ धर्म का

जिन ग्रन्थों में वर्णन किया है उन ग्रन्थोंका अभ्यास भी वानप्रस्थ किया करे परन्तु पूर्वोक्त श्लोक के प्रथम श्लोक का यह सिद्धान्त है उक्त श्लोक का सिद्धान्त वक्ष्यमाण है जैसे कि वानप्रस्थ को चाहिये कि बिना बिछौने के भूमि पर लेटे क्योंकि उससे भी तितिक्षा धर्मका संपादन होता है, स्वच्छ स्थान अथवा आसन पर वानप्रस्थ बैठे पैरों के अग्रभाग से वानप्रस्थ खड़ा रहे कुछ काल बैठ भी जावे भ्रमण बहुत न करे संध्या और प्रातः दोनों काल में स्नान करे ऐसी चेष्टा करने से भी तितिक्षा ही का अभ्यास होता है ॥

ग्रीष्मेपञ्चतपास्तुस्या—द्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ।
आर्द्रवासास्तुहेमन्ते क्रमशोवर्धयंस्तपः ॥

इसमें मनुजी ने कहा है कि वानप्रस्थको चाहिये कि वैशाख और ज्येष्ट के महीने में जब गर्मी पड़े तो चारों ओरसे अग्नि जलाकर मैदान में बैठे अपने शरीर को तपावे वर्षा काल में जब मूसलधार वृष्टि होवे तो बिना छाते आदिके खुले मैदान में वानप्रस्थ बैठे जाड़े के दिनों में गीले वस्त्र पहिरे इस प्रकार का तपकर के वानप्रस्थ तितिक्षा का संपादन करे उससे वानप्रस्थको वस्त्र पहरने की आवश्यकता भी न रहेगी ।

अप्रयत्नःसुखार्थेषु ब्रह्मचारीधराशयः ।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥

इसमें मनुजी महाराज वर्णन करते हैं कि वानप्रस्थको चाहिये किस्वादिष्ठ फलों के खाने के लिये और शीतोष्णसे बचनेके लिये उद्योग न करे पृथिवी पर सोवे, रहने के स्थान में ममता न रक्खे वृक्षों के नीचे रहे अथवा सोवे ॥

तापसेष्वेवविप्रेषु यात्रिकंभैक्षमाहरेत् ।
गृहमेधिषुचान्येषु द्विजेषुवनवासिषु ॥

इस में मनुजी ने वर्णन किया है कि वानप्रस्थ को चाहिये कि प्राणों की रक्षा के लिये ग्रामस्थ ब्राह्मणों से भिक्षा मांगके ले आवे यदि ग्रामस्थ ब्राह्मण न होवें तो वन के निवासी ब्राह्मणों से भीख मांगे और खावे ॥

एतांश्चान्यांश्चसेवेत दीक्षाविप्रोवनेवसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धयेश्रुतीः ॥

इस में मनुजी ने वानप्रस्थको आज्ञा दी है कि वानप्रस्थको चाहिये कि पूर्वोक्त वानप्रस्थ के नियमों को संपादन करे और अन्य शास्त्रों में जो वानप्रस्थ के नियम वर्णन किये हैं उनका भी यथावत् अभ्यास करे। परा विद्या जो कि वेद वा उपनिषदों में आत्मविद्या है उसको भी आत्मज्ञान के लिये यथावत् संपादन करे क्योंकि वेद में लिखा है कि (तरतिशोकमात्मवित्) अर्थात् जो आत्मज्ञानी है वह ज्ञान स्वरूप स्टीमर का आश्रय लेकर शोक सागर को तर जाता है ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि हिन्दुमत में जीव ही को ब्रह्म कहा है उसी का नाम आत्मविद्या है सो जीव ब्रह्म नहीं हो सकता क्योंकि जीव एकदेशी और अल्पज्ञ है ब्रह्म सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। आर्य समाजियों की यह शंका भी असंगत है क्योंकि वेदान्तमण्डन के व्याख्यान में हम सिद्धकर चुके हैं कि जैसे घटाकाशमें अल्पज्ञता और महाकाशमें सर्वज्ञता है घट मठ के विना महाकाश में सर्वज्ञता अल्पज्ञता का सर्वथा अत्यन्ताभाव है वैसे ही जीव ईश्वरमें सर्वज्ञता अल्पज्ञतादि का भेद है माया अन्तःकरण के बिना शुद्ध ब्रह्म चेतन में सर्वज्ञता अल्पज्ञतादि का अत्यन्ताभाव है सिद्धान्त यह है कि (अहंब्रह्मास्मि) इस प्रकार से वानप्रस्थ ब्रह्माभ्यास करे शरीरादि दृश्य और अनात्म पदार्थों परसे आत्मबुद्धिको उठादेने शेष स्वप्रकाश ब्रह्मात्मा ही का वानप्रस्थ के अन्तःकरण में भान होगा ॥

ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेवसेविताः ।
विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्यचशुद्धये ॥

इस में मनु जी वेद का सिद्धान्त जो वेदान्त है उसका वर्णन करते हैं जैसे कि उपनिषद् जो परा विद्या वेद का भाग है जिस में जीव और ब्रह्म की एकता का वर्णन है जिसमें ब्राह्मण और सन्यासियोंका विशेष अधिकार है उस आत्मविद्या का अभ्यास वानप्रस्थ अधिक करे।

पञ्चदशी चित्रदीप—स्वप्नेन्द्रजालसदृश—मचिन्त्यरचनात्मकम् ।
दृष्टनष्टजगत्पश्यन्कथंतत्रानुरज्यति ॥

इत्यादि पञ्चदशी के प्रमाणों से भी आत्मविद्या का अभ्यास सिद्ध हो चुका है ॥

अज्ञतज्ज्ञौचमेनस्त ईशजीवौशुभाशुभे ।
सत्यासत्येनसेवन्ति समलामलपुंस्त्वयः ॥

इत्यादि विचारमाला के प्रमाणों से भी आत्मविद्या का अभ्यास सिद्ध हो चुका है ॥

ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्र चन्द्र कुवेर यम मारुत गणेश जहां भानु न भवानी है । भूमि बुध बृहस्पति शुक्र शनि राहु केतु मध्यमा पश्यन्ति परा वैखरी न वानी है । मतवादी वेषधारी दर्शन पाखण्ड लिङ्ग गुरू शिष्य पक्षपात सभी जहां फानी है । कवि कोविद बाचाल जामें काहु की न गले दाल सो स्वरूप मेरो जहां ज्ञानी न अज्ञानी है ॥

सिद्धान्त यह है कि वानप्रस्थ जीवब्रह्म के अभेदज्ञान को सम्पादन करे ॥

प्राजापत्यांनिरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणःप्रव्रजेद्गृहात् ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि वेदों में जो वानप्रस्थाश्रम के धर्म वर्णन किये हैं उन धर्मों को वानप्रस्थ जब यथावत् सम्पादन कर लेवे तो वानप्रस्थाश्रम के शिखा सूत्रादि चिन्हों को त्याग कर चौथा जो संन्यासाश्रम है उस को धारण कर लेवे ॥

अब साधारण धर्म्मवीरों से निवेदन है कि इस व्याख्यान में हम ने गृहस्थ और वानप्रस्थ दो आश्रमों का वेदादि प्रमाणों और युक्तियों से वर्णन किया है इसके पश्चात् संन्यासाश्रम का वर्णन किया जायगा ॥

ओ३म्–शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

संन्यासाश्रम व्याख्यानम् ॥

व्याख्यान नं० १७

ओ३म्—यआत्मदाबलदायस्यविश्व उपासतेप्रशिषं-यस्यदेवाः। यस्यच्छायाऽमृतंयस्यमृत्युः कस्मैदेवायहविषा विधेम॥ य० अ० २५ मं० १३॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ईश्वर प्रशंसात्मक मङ्गल करने के पश्चात् सर्व साधारण धर्मवीरों को विदित किया जाता है कि इस व्याख्यान में संन्यासाश्रम का वर्णन होगा प्रथम दयानन्दोक्त संन्यासाश्रम का खण्डन दर्शाया जाता है॥

लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्चो-त्थायाथभिक्षाचर्यं चरन्ति॥

(सत्या० समुल्लास ५) (शत० कां० १४)

इसके भाष्य में संन्यासी से दयानन्द ने कहा है कि लोक में प्रतिष्ठा धन भोग वा मान्य पुत्रादि के मोहसे अलग होके संन्यासी भिक्षुक होकर रात दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं। यहां दयानन्द ने संन्यासी को प्रतिष्ठा धन मान्य पुत्रादि का त्यागने वाला कहा है फिर इस के वि-रुद्ध उसी समुल्लास में॥

विविधानिचरत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्।

इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि नाना प्रकारके रत्न सुवर्णादि धन संन्यासी को देवे। इन दोनों लेखों में से दयानन्द का प्रथम लेख तो वेदोक्त है, क्योंकि वेदमें स्त्री पुत्र मान्य धनादि के त्याग ही का नाम सं-न्यास है, वेदान्तके ग्रन्थों में भी कहा है कि जब तीव्रतर वैराग्य हो जावे तो संन्यास को धारण करे। आर्याभिविनय में दयानन्दने ईश्वरसे प्रतिष्ठा भी मांगी है परन्तु जितनी अप्रतिष्ठा दयानन्द की भारतवर्ष में हुई है ई-श्वर इतनी अप्रतिष्ठा किसीकी न करावे संन्यासी को धन रत्न सुवर्णादि के देनेमें वेदादि ग्रन्थों का एक भी प्रमाण नहीं मिलता उस से संन्यासी को धन रत्न सुवर्णादि के देनेका लेख अप्रमाण है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि उक्त श्लोक में संन्यासी को धन रत्न सुव- र्णादि का देना वर्णन किया है वह मनुस्मृतिका है। आर्यसमाजियोंका यह कथन भी असङ्गत है क्योंकि मनुस्मृतिमें उक्त श्लोकका सर्वथा अत्यन्ताभाव है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि मनुस्मृतिके ग्यारहवें अध्यायके ६ नम्बर का वह श्लोक है आर्यसमाजियों का यह कथन भी मिथ्या है क्योंकि मनुस्मृति के ग्यारहवें अध्याय के ६ नम्बर का श्लोक जैसा दयानन्द ने लिखा है वैसा नहीं है किन्तु उसका पाठ दयानन्दकृत बनावटी पाठ से विलक्षण है तथा वह श्लोक संन्यास प्रकरण का भी नहीं किन्तु वेदपाठी विद्वान् ब्रा- ह्मण को दान देनेके प्रकरण का वह श्लोक है उससे दयानन्द कृत बनावटी श्लोक प्रकरण के विरुद्ध है॥ किञ्च (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३)

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानंविधीयते।

इसके भाष्य में दयानन्द ही ने वर्णन किया है कि जो पुरुष सुवर्णादि रत्न और स्त्री सेवनादि में नहीं फंसते उन्हीं को धर्म का ज्ञान होता है यदि बाबा जी के इस लेखको आर्यसमाजी सत्य मानें तो आर्यमत वाले संन्यासी को धर्म के ज्ञान होने का भी सर्वथा असम्भव है क्योंकि दयानन्द के दूसरे लेख में संन्यासी को धन रत्न सुवर्णादि का देना कहा है उणादि कोश में दयानन्द ने हाथी घोड़ा स्त्री को भी रत्न नाम से वर्णन किया है "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका प्रकरण मंगलाचरण में दयानन्द ने„ [विश्वानिदेव०] इस वेद मन्त्रके भाष्यमें वेद भाष्य पूरा करने के लिये ईश्वरसे स्वयं भी स्त्री पुत्र धन के सुखको मांगा है स्त्री पुत्र धनके सुख का संन्यासी को देनेवाला ईश्वर भी अन्धेर नगरी गवर्गंड राजा सिद्ध होता है स्त्री पुत्र हाथी घोड़ा रत्न सुवर्णादि का संन्यासी को देना वेद से भी विरुद्ध है (किंच)

रस में देखेयती जो कनक कामिनी दोय।
उसी समय वो पतित हो ब्रह्म हत्यारा होय॥
ब्रह्म हत्यारा होय तेज सब हत हो जावे।
चक्षु वाणी मन कोसिद्धी शक्ति पलावे॥
कह गिरधर कविराय एक मन इन्द्रिय दश।
तिनको करे निरोध त्याग कर लौकिक रस॥

जैसा कैसा अन्न लै भिक्षू करे अहार ।
मोटा जीरण कापड़ा पहिरे तजे विकार ॥
पहिरे तजे विकार चीन्ह कर अपना हुद्दा ।
उदासीन हो रहे सर्व से पकड़े मुद्दा ॥
कह गिरधर कविराय पास नहिं राखे पैसा ।
सोई परम विरक्त भन्यो है शास्त्र जैसा ॥
दमड़ी चमड़ी वान जो करे संग्रह वीच ।
ऊपर चिन्ह विरक्त का सो दुरबुद्धी नीच ॥
सो दुरबुद्धी नीच पशु गर्दभकी नाईं ।
ना वो रहा गृहस्थ नहीं वो हुआ गुसांई ॥
कह गिरधर कविराय खाय वो अमड़ी चमड़ी ।
यतीलिङ्ग को धार गांठ में बांधे दमड़ी ॥
नाना लिपसा हृदय में बन बैठे उलियाय ।
ऐसे पीर मुरीद को दोनों को जुतिआय ॥
दोनों को जुतिआय मगजु कर विनका पोला ।
पैरों लाकर मार धड़ाधड़ जूता सोला ॥
कह गिरधर कविराय पहर फक्कड़ों का वाना ।
फिर नहीं लिपसा तजे पैजार तिसके सिरनाना ॥
यस्तुप्रव्रजितोभूत्वा पुनःसेवेतमैथुनम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायांजायतेकृमिः ॥
शून्यागारेषुघोरेषु आखुर्भवतिदारुणः ।
सतिर्यक्स्यात्ततोगृध्रः श्वावैद्वादशवत्सरम् ॥

खरोविंशतिवर्षाणि दशवर्षाणिसूकरः ।
आयुष्योऽफलितोवृक्षो जायतेकण्टकान्वितः ॥
ततोदावाग्निनादग्धः स्थाणुर्भवतिकामुकः ।
स्थावराङ्गपरिभ्रष्टो योनिष्वन्यासुगच्छति ॥

मेधातिथिस्मृतिः

इन श्लोकों का अभिप्राय यह है कि जो संन्यासी होकर फिर स्त्री आदि से समागम करने की चेष्टा करता है वह साठ वर्ष तक विष्ठा के कीड़े का जन्म धारण करता है अर्थात् विष्ठा का कीड़ा होकर बार बार जन्मता और मरता है उसके पश्चात् शून्य मकानों में भयङ्कर चूहा बनकर सुशोभित होता है उसके पश्चात् जंगल का गिद्ध पक्षी होता है उसके पश्चात् बारह वर्ष तक कुत्ते के जन्म को धारण करता है, उसके पश्चात् बीस वर्ष तक गधे के जन्म को प्राप्त होता है। फिर दशवर्ष तक सूकर के जन्म को धारण करता है। फिर कंटक युक्त बंबूलादि वृक्षों की योनि में जाता है वहां अग्निमें जला करता है उसके पश्चात् नीच योनि में जाता है। सिद्धान्त यह है कि संन्यासी को चाहिये कि स्त्री पुत्र रत्न सुवर्णादि से सर्वथा सर्वदा निराला रहे॥

पितामातास्वसाभ्राता स्नुषाजायासुतस्तथा ।
ज्ञातिबन्धुसुहृद्वर्गो दुहितातत्सुतादयः ॥
यस्मिन्देशेवसन्त्येते नतत्रदिवसंवसेत् ।
द्वेषःशोकोभवेत्तत्र रागहर्षादयोमलाः ॥
अश्रुपातंयदाकुर्याद् भिक्षुःशोकेनचार्दितः ।
योजनानांशतंगत्वा तदापापात्प्रमुच्यते ॥

मेधातिथिस्मृतिः

इन श्लोकों का सिद्धान्त यह है कि जिस देश वा नगर में संन्यासी के जन्म दाता पिता माता रहते होवें और भ्राता भगिनी पुत्रकी स्त्री रिश्तेदार संम्बन्धी मित्र प्यारे लड़का लड़की रहते होवें उस देशमें संन्यासी एकदिन भी न रहे यदि रहेगा तो संन्यासी रागद्वेष हर्ष शोकादि मलीनता का दाग लग जावेगा अश्रुपात होने लग जायंगे ॥

बहता पानी निर्मला खड़ा गंदला होय ।
त्यों साधू रमता भला दाग न लागे कोय ॥
दाग न लागे कोय जगत् में रहे अलेपा ।
राग द्वेष युग प्रेत न चित को करै विक्षेपा ॥
कह गिरिधर कविराय शीत उष्णादि सहता ।
होय न कहूं आसक्त यथा गंगा जल बहता ॥

प्रकरण का अभिप्राय यह है कि, सन्यासी राग त्यागीका है दयानन्द के पहिले लेखने सिद्ध हुआ कि स्त्री पुत्र धनादि की इच्छा भी संन्यासी न करे उस के विरुद्ध दूसरे लेख में दयानन्द ने कहा है कि संन्यासी को धन रत्न सुवर्णादि देवे, तीसरे लेख में दयानन्दने कहा है कि जो स्त्री पुत्र रत्न सुवर्णादि में फंसते हैं उन को धर्म का ज्ञान नहीं होता, फिर चौथे लेखमें दयानन्द ने वेदभाष्य पूरा करने के लिये स्वयं ही ईश्वर से स्त्री पुत्र धनराज्य के सुख को मांगा है । यदि आर्य्यसमाजी दयानन्द के पहिले लेखको सत्य मानें तो दूसरा मिथ्या यदि दूसरे को सत्य मानें तो तीसरा मिथ्या, यदि तीसरे को सत्य मानें तो चौथा मिथ्या, होगा । ऐसे होकर दयानन्द के सर्व लेख झूठे हैं, इससे दयानन्दोक्त संन्यासाश्रम सर्वथा सर्वदा हानिकारक है ॥

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ५—(एषवोऽभिहितो०)

इसके भाष्य प्रश्नोत्तर प्रकरणमें दयानन्दने कहा है कि जो २ संन्यासियों के उपदेश से धार्मिक मनुष्य होंगे वह सब जानो कि संन्यासीके पुत्र तुल्य हैं॥

दयानन्द के इस लेख का सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि जिनको आर्य्य मत वाला सन्यासी उपदेश देता है वे सब मनुष्य संन्यासीके पुत्रके सदृश हो जाते हैं । फिर इसके विरुद्ध सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ५ (लोकैषणा) (पुत्रैषणा) (वित्तैषणा) इनके भाष्यमें दयानन्द ने कहा है कि लोकमें प्रतिष्ठा, धन का बढ़ाना, पुत्रवत् शिष्यों पर मोहित होना, जब यह तीन एषणा नहीं छूटीं तो संन्यास क्यों कर हो सकता है । दयानन्द के इस लेखने शिष्यों के साथ पुत्र के सदृश मोह करने का खण्डन कर डाला है, परन्तु दुराग्रह-

लफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं। सत्यार्थप्रकाशके तेरहवें समुल्लास की समाप्ति में दयानन्द की दरोगहल्फी भी पास हो चुकी है ॥

एषवोऽभिहितोधर्मो ब्राह्मणस्यचतुर्विधः ।
पुण्योऽक्षयफलःप्रेत्यराजधर्मान्निबोधत ॥

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ५ ।

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि यह चार प्रकार से ब्रह्मचर्य्य वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम करना ब्राह्मण का धर्म है वर्त्तमानमें पुण्य स्वरूप और शरीर छोड़ने के पश्चात् अक्षय आनन्दका देने वाला संन्यास धर्म्म है इससे यह सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि संन्यास ग्रहणका अधिकार मुख्य करके ब्राह्मणको है क्षत्रियादिको ब्रह्मचर्य्याश्रम का ही है। यहां दयानन्दने संन्यासाश्रम को धारण करना ब्राह्मण के लिये कहा है क्षत्रियादि के लिये बाबाजीने ब्रह्मचर्याश्रम कहा है और यह भी कहा है कि ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ संन्यासका करना ब्राह्मणका धर्म्म है। फिर इसके विरुद्ध सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ५ में—

एवंगृहाश्रमेस्थित्वा विधिवत्स्नातकोद्विजः । वने वसेत्तुनियतो० ॥

इसके भाष्यमें दयानन्दने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णोंके लिये वानप्रस्थाश्रमका करना लिख दिया है यहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों ही को ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थाश्रम का धारण करना सिद्ध हो चुका है। उक्त श्लोक में द्विज शब्द तीनों वर्णो का वाचक है ॥

अनधीत्यद्विजोवेदाननुत्पाद्यतथासुतान् ।
अनिष्ट्वाचैवयज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥

मनुस्मृति के इस श्लोकमें भी द्विज शब्द तीन वर्णोंका वाचक ही सिद्ध होता है, उसी श्लोक से संन्यास का लेना भी तीनों वर्णों को सिद्ध होता है यद्यपि (ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्) इस मनुस्मृतिके श्लोक में संन्यास वाचक शब्दके साथ ब्राह्मण शब्द देखा जाता है तथापि प्रकरण और लक्षण से यहां ब्राह्मण शब्द तीनों वर्णोंका उपलक्षण है। वेदान्तकी रीतिसे ब्रह्मज्ञानी का वाचक भी ब्राह्मण शब्द हो सक्ता है, तीव्रतर वैराग्य क्षत्रियादि वर्णोंमें भी होसकता है वेदका अधिकार भी तीनों वर्णों को है उससे द्विज शब्द के वा

बस तीनों वर्णों को संन्यासका अधिकार सिद्ध हो चुका है। इससे दयानन्द ने जो कहा कि संन्यासका अधिकार ब्राह्मणको ही है सो सर्वथा मिथ्या है॥

अब मनुस्मृतिसे भिन्न ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे संन्यास के अधिकारियों का वर्णन किया जाता है॥

वृहज्जाबालोपनिषद्-अथपरिव्राड्विवर्णवासा मुण्डो-ऽपरिग्रहः। शुचिरद्रोही भैक्षाणो ब्रह्मभूयायकल्पते॥

इसमें अपरिग्रह आदिक संन्यासीके कर्म वर्णन किये हैं॥

(विष्णुपुराण) स्वदेहाऽशुचिगन्धेन नविरज्येतयःपुमान्।
वैराग्यकारणंतस्य किमन्यदुपदिश्यते॥

इस श्लोकका सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि अपवित्र व दुर्गन्धयुक्त जो शरीर है वह संन्यासका कारण नहीं किन्तु संन्यासका कारण तीव्रतर वैराग्य है॥

आत्मत्वेनचरंमत्वा योभोगार्थंसमीहते।
देहस्यैवेहपुष्ट्यर्थं पशुतुल्योनरःस्मृतः॥
(विष्णु पुराण)

इस में आत्मज्ञान हीन देहाभिमानी मनुष्यको पशु के सदृश वर्णन किया है॥ (सुरेश्वराचार्य)—

ब्राह्मणग्रहणंचात्र द्विजानामुपलक्षणम्।
अविशिष्टाधिकारित्वात् सर्वेषामात्मबोधने॥

यह सुरेश्वराचार्य वही हैं जो कि पहिले मण्डनमिश्र थे और स्वामी शंकराचार्य जी से परास्त होकर संन्यासी बने थे और (अहंब्रह्मास्मि) इस प्रकार का नाद करने लगे थे, उनका सिद्धान्त यह है कि संन्यासकेप्रकरण में जहां केवल ब्राह्मण शब्द आता है वहां ब्राह्मण शब्द तीन वर्णों का उपलक्षण है जैसे आत्मज्ञान के अधिकारी तीनों वर्ण हैं वैसे संन्यास के अधिकारी भी तीनों वर्ण हैं॥ (याज्ञवल्क्यस्मृतिः)—

ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यस्ततोगच्छेद्वनंप्रति।
संन्यसेद्बन्धनाशाय सर्वभूतदयापरः॥

इस में याज्ञवल्क्य जी ने कहा है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों ही वर्ण गृहस्थ को छोड़ कर वानप्रस्थाश्रम को धारण करें वानप्रस्थ से तीनों वर्ण

संन्यास को धारण करें, और सर्व जीवों में वैर बुद्धि को कभी न करें किन्तु सर्व जीवों पर दया दृष्टि रक्खें ॥

त्रैवर्णिकानांसंन्यासो विद्यतेनात्रसंशयः ।
शिखायज्ञोपवीतानां त्यागपूर्वकदण्डयुक् ॥

ब्रह्माण्डपुराण स्मृतिः—

इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि तीव्रतर वैराग्य होने से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों ही संन्यासाश्रम को धारण करें ॥

वैराग्योत्पत्तिमानेव संन्यासेपरियुज्यते ।
रागवान्नतुविप्रोपि वेदवेदाङ्गवित्तमः ॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

इस श्लोकका सिद्धान्त यह है कि तीव्रतर वैराग्य ही संन्यासके धारण करने में मुख्य कारण है । विषयोंमें लंपट ब्राह्मण संन्यासमें कारण नहीं वेद वेदाङ्ग का अभ्यास ही सर्वोत्तम है ॥

श्रुतिप्रमाण—यदातुविदितंतत्त्व परंब्रह्मसनातनम् ।
तदैकदण्डंसंगृह्य सोपवीतांशिखांत्यजेत् ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि जब संशय विपर्यय से रहित दृढ ब्रह्मज्ञान हो जावे तो शिखा सूत्रको त्यागकर संन्यास को धारण करे और एक दण्ड को भी धारण करे। प्रकरण में यहां भी तीनों वर्ण संन्यास के अधिकारी हैं। (परिव्राज्योपनिषद्)

वैराग्यमासाद्यतुपापयोनिश्शूद्रोपिसंन्यासमुपेत्यमोक्षम् ।
प्राप्नोतिपापंतुविधूयविप्रः संन्यासमेत्यननुमुच्यतेवै ॥

इसका अभिप्राय यह है कि जब पाप विशेष का फल शूद्र सन्तान को भी तीव्रतर वैराग्य होजावे तो वह भी संन्यास को धारण करे । और मोक्ष पद को सम्पादन कर लेवे । और विशेष पुण्य का फल ब्राह्मण सन्तान भी यदि पापी होजावे तो वह भी संन्यास का अधिकारी नहीं हो सकता ॥

भैक्षचर्यंततःप्राहु–स्तद्धर्मादिचारिणः ।
तथावैश्यस्यराजेन्द्र ? राजपुत्रस्यचैवहि ॥ स्मृतिस्फुट

इस श्लोक में भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों को संन्यास का धारण करना कहा है ॥

विद्याङ्गतत्फलात्मानं गार्गीविदुरयोरपि ।
स्त्रीशूद्रयोर्भाष्यकारः संन्यासमनुमन्यते ॥ सुरेश्वराचार्य

इसमें सुरेश्वराचार्य जी वर्णन करते हैं कि पराविद्या के सम्पादन से आत्मज्ञानी होकर गार्गी आदि स्त्रियां और विदुरादि शूद्र भी संन्यास के अधिकारी होचुके हैं । तिस से भाष्यकार की सम्मति है कि तीव्रतर वैराग्य होकर स्त्री और शूद्र भी संन्यास के अधिकारी हैं ॥

हठाभ्यासोहिसंन्यासो नैवकाषायवाससा ।
नाहंदेहोऽहमात्मेति निश्चयःसंन्यासलक्षणम् ॥

भाष्यकारसिद्धान्त

इस में भाष्यकार जी ने वर्णन किया है कि तीव्रतर वैराग्य हो कर शरीराभिमान का त्याग और (अहंब्रह्मास्मि) इसप्रकार का आत्मज्ञान ही संन्यास है कषाय वस्त्रों का धारण कर लेना ही संन्यास का कारण सिद्ध नहीं होता ॥

यस्मिन्क्रोधःसमंयाति विफलःसम्यगुत्थितः ।
आक्रोशोऽसिर्यथाक्षिप्तः सकैवल्याश्रमेवसेत् ॥

बृहस्पतिस्मृतिः

इसमें बृहस्पति जी ने वर्णन किया है कि जिस मनुष्य के अन्तःकरण में क्रोधादि शत्रुओं का निवास होता है वह संन्यास का अधिकारी नहीं हो सकता किन्तु जिसके अन्तःकरण में से क्रोधादि शत्रुओं का प्रध्वंसाभाव हो जाता है वही संन्यासाश्रम का अधिकारी है ॥

त्रयाणांवर्णानांवेद-मधीत्यचत्वारआश्रमाः । स्मृतिकार

इसमें स्मृतिकारका भी यही सिद्धान्त है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण वेदाङ्गोपाङ्गादि का पठन पाठन करें और तीनों वर्णों को ब्रह्मचर्य १ गृहस्थ २ वानप्रस्थ ३ संन्यास ४ चारों आश्रमों का अधिकार है ॥

प्रव्रज्यावसितायत्र त्रयोवर्णाद्विजातयः ॥ श्रुतिसिद्धान्त

इस श्रुति के प्रमाण से भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्ण ही संन्यास के अधिकारी सिद्ध हुये ॥ (शंकरदिग्विजये यथा)—

शिखायज्ञोपवीते मयात्यक्तेइति बोधकम् श्रीमच्छङ्कराचार्यपरिब्राड्भगवद्वाक्यं श्रुत्वा मण्डनेनोक्तम् ॥

कन्थांवहसिदुर्बुद्धे गर्द्दभेनापिदुर्वहाम् ।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्तेभारोभविष्यति ॥
तदुत्तरम्–कन्थांवहामिदुर्बुद्धे तवपित्रापिदुर्भराम् ।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारोभविष्यति ॥

इत्यादि शंकर दिग्विजय के श्लोकों का सिद्धांत यह सिद्ध हुआ है कि मण्डन मिश्रका प्रश्न है कि जब गोदड़ी आदि वस्त्रोंका भार संन्यासी उठाता है तो शिखा सूत्रका क्या भार है वह भी रखने चाहिये ? इसका उत्तर शङ्कराचार्य जी ने दिया है कि संन्यासी को शिखा सूत्र रखने से उसके ऊपर श्रुतिका भार रहता है क्योंकि संन्यासीके लिये शिखा सूत्रका उतार देनाही श्रुति में वर्णन किया है । यहां तक दयानन्द ने जो ब्राह्मण ही को संन्यास का अधिकार कहा था उसका हमने खण्डन किया ॥

(किञ्च) आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि आर्यमत में जन्म से वर्ण व्यवस्था है अथवा कर्म से यदि कहो कि जन्म ही से वर्ण व्यवस्था है तो सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास का लेख मिथ्या होगा क्योंकि उसमें दयानन्दने केवल कर्मों ही से उसका वर्णन किया है यदि केवल कर्मों ही से वर्ण व्यवस्था मानें तो दयानन्दोक्त नाम करण संस्कार मिथ्या होगा, क्योंकि संस्कारविधि नामकरण संस्कार में जन्म से दशवें ही दिन दयानन्द ने शर्मा वर्मा गुप्त दास पदवियां देकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चारों वर्णोंका विभाग कर दिया है यदि कर्मों ही से वर्ण व्यवस्था हो तो यज्ञोपवीतादि संस्कार भी असंभव और निष्फल सिद्ध हो जायगे । क्योंकि सत्यार्थप्रकाशके तीसरे समुल्लास में दयानन्द ही के लेख से वेदादि विद्या पठन पाठन के आरम्भ में ब्राह्मणादि चार वर्ण सिद्ध कर दिये हैं । यदि कहो कि जन्म ही से आर्य लोग वर्ण व्यवस्था मानते हैं तो भंगी चमार मुसलमान ईसाई आदिकों को ब्राह्मण बनाना मिथ्या होगा, दयानन्द के लेखों से आर्यमत में न तो

जन्म से ब्राह्मणादि वर्ण सिद्ध होते हैं और न कर्मों ही से सिद्ध होते हैं। इस से दयानन्द जी ने केवल ब्राह्मण वर्ण ही को संन्यास का अधिकार लिखा है सो सर्वथा लालबुझक्कड़ विद्याहीन पागलों की लीला है ॥

अथ वेदोक्त सनातन हिन्दुमत की रीति से संन्यासाश्रम का वर्णन किया जाता है तथाहि (सम्–णी) अर्थात् सम् उपसर्ग पूर्वक णीधातु से संन्यास शब्द सिद्ध होता है ॥

सम्यक् प्रकारेण न्यासः स संन्यासः संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी॥

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकंधर्मलक्षणम् ॥

इत्यादि श्लोकों में मनुजी ने धैर्य क्षमादि संन्यासी के दश लक्षण वर्णन किये हैं ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्रीदण्डीकुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतोनित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि संन्यासी डाढ़ी मूंछ केशों को मुण्डवा डाले कषाय वस्त्र पहिरे एक पात्र रक्खे दण्ड धारण करे प्रतिदिन एक स्थान में न रहे किसी जीव को दुःख न देवे ॥

कुटीचकोबहूदश्च वेदान्तानांपुनःपुनः ।
कुर्याद्धितश्रवणंनित्यं ब्रह्मज्ञानाभिवाञ्छया ॥
हंसः परमहंसश्च कुर्वीतमननंमुहुः ।
तुर्यातीतोवधूतश्च निदिध्यासनमाचरेत् ॥
कुटीचरकादिषड्भिः कार्यमात्मानुचिन्तनम् ।
श्रेष्ठस्तेषांहिविज्ञेयः सदोत्तरोत्तरोयतिः ॥

परिव्राज्यकोपनिषद्

इत्यादि मंत्रों में कुटीचर १ बहूदक २ हंस ३ परमहंस ४ भेद से संन्यास के चार भेद वर्णन किये हैं कुटीचर बहूदक दो प्रकार के संन्यासियों के लिये बार बार वेदान्त का श्रवण करना कहा है हंस परमहंस संन्यासी के लिये वेदान्त के मनन और निदिध्यासन से सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मात्मा में मन लगाना वर्णन किया है ॥

ब्रह्मोपनिषद्—सशिखंवपनंकृत्वाबहिःसूत्रंत्यजेद्बुधः।

यदक्षरंब्रह्म तत्सूत्रमितिधारयेत् ॥

इस मंत्र का भी यही सिद्धान्त है कि संन्यासी को चाहिये शिखा को कटवा डाले और सूत्र को भी तोड़ डाले किन्तु ब्रह्मज्ञान स्वरूप सूत्र को धारण करें ॥

अङ्गिरास्मृतिः—संन्यसेद्ब्रह्मचर्येण संन्यसेद्वागृहादपि।

वनाद्वासंन्यसेद्विद्वानातुरोऽथवादुःखितः ॥

इस में अङ्गिराऋषि ने कहा है कि तीव्रतर वैराग्य यदि ब्रह्मचर्य ही में हो जावे तो वहां संन्यास धारण कर लेवे गृहस्थाश्रम में तीव्रतर वैराग्य हो तो वहां से, यदि वानप्रस्थाश्रम में वैराग्य हो तो वहां ही से संन्यास धारण करे, क्योंकि संन्यास का मुख्य कारण तीव्रतर वैराग्य है ॥

गुरुगीता—सत्कारमानपूजार्थं दण्डकाषायधारणः।

ससंन्यासीनवक्तव्यः संन्यासीज्ञानतत्परः ॥

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि मान बड़ाई के लिये जो कषाय वस्त्र और दण्ड को धारण करता है वह संन्यासी नहीं कहा जा सकता किन्तु जीव ब्रह्म का अभेद ज्ञान संपादन करने वाला ही संन्यासी हो सकता है ॥

विजानातिमहावाक्यं गुरोश्चरणसेवया।

तेवैसंन्यासिनः प्रोक्ताइतरेवेषधारिणः ॥

इस श्लोक का सिद्धान्त यह है कि जो महावाक्य के अखण्डार्थ ब्रह्म जीव के अभेद को निश्चय करता है और श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की सेवा करता है वही संन्यासी है उस से भिन्न चिन्ह मात्र धारण करनेवाला संन्यासी नहीं हो सकता ॥

शिखासूत्रपरित्यागी वेदान्तश्रवणंविना।

विद्यमानेपिसंन्यासे पतत्येवनसंशयः ॥

इस का सिद्धान्त यह है कि जो माता पिता भ्राता वा स्त्री के मरजाने वा लड़ने से डाढ़ी मूंछ मुंडवा कर संन्यासी नाम रख लेता है और वेदान्त का श्रवण मनन निदिध्यासन नहीं करता वह निस्सन्देह पापी होता है।

सर्वतोऽप्यभिमानराहित्येन सर्वसम्बन्धराहित्यम् ।
परमहंसपरिव्राजोलक्षणम् ॥

इस का सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि जो स्थूल, सूक्ष्म, कारण, तीन शरीरोंके अभिमान से रहित संसार सम्बन्धी मलिन वासनाओं से पृथक् हो जाता है वही परमहंस संन्यास का लक्षण है ।

आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्भिक्षुश्चरेन्महीम् ।
अन्धवत्कुब्जवच्चापि वधिरोन्मत्तपिशाचवत् ॥

मेधातिथिस्मृतिः

इस श्लोकका अभिप्राय यह है कि संन्यासी सर्व जीवोंको चेतन दृष्टि से आत्मस्वरूप निश्चय करता हुआ पृथिवी पर भ्रमण करे, दुष्ट भोगों में नेत्र जन्य वृत्ति को संनद न करे, इस रीति से संन्यासी अन्धा हो कर भ्रमण करे इधर उधर नेत्र चलाता हुआ न चले किन्तु नीचे देखता हुआ चले, इस रीति से संन्यासी कुब्ज हुआ विचरे निन्दास्तुति सुनकर संन्यासी शोक हर्ष में न गिरे, इस रीति से संन्यासी वधिर हुआ भ्रमण करे आत्माकार वृत्तिको बार बार करे इस रीति से संन्यासी उन्मत्त हो विचरे हार शृङ्गार करना संन्यासी छोड़ देवे, इस रीति से पिशाच सदृश संन्यासी भ्रमण करे ॥

गंगाकूलेवसेन्नित्यं भिक्षुर्मोक्षपरायणः । स्कन्दपुराण ।

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि गंगाजी के किनारे पर संन्यासी सदा वास करे अथवा मोक्ष का साधन जो आत्मज्ञान स्वरूप गंगा है उसमें भ्रमण करे।

काष्ठदण्डोधृतोयेन सर्वाशीज्ञानवर्जितः ।
सयातिनरकान्घोरान्महारौरवसंज्ञकान् ॥

(परमहंसोपनिषद्)

इसका सारांश यह है कि जो बराबर के दण्ड को धारण करलेता है परन्तु ज्ञान दंड को धारण नहीं करता वह संन्यासी अन्ध घोर रौरव नाम नरक में जाता है ॥ (दक्षस्मृति)

पारिव्राज्यंगृहीत्वातु यःस्वधर्मेनतिष्ठति ।
श्वपादेनाङ्कयित्वातु राजाशीघ्रंप्रवासयेत् ॥

इसमें दत्त मुनि जी ने वर्णन किया है कि जो मनुष्य संन्यासी होकर फिर संन्यास धर्मपर आरूढ़ नहीं होता तो राजाको चाहिये कि कुत्तेके पंजे जैसा लोहे का पंजा अग्नि में तपाकर उस संन्यासी के मस्तक में दाग देकर देश निकाला दे देवे ॥ (अत्रिस्मृति)

यातुपर्युंपिताभिक्षा नैवेद्येकल्पितातुया ।
तामभोज्यांविजानीयाद्दाताचनरकंव्रजेत् ॥

इसमें दत्त मुनि जी ने वर्णन किया है कि जो संन्यासी देवता के भोग लगे हुये भोजन को खाता है यह कुंभीपाक नरक में जाता है ॥

परमहंसोपनिषद्

सर्वान्कामान्परित्यज्य द्वैतेचपरमास्थितिः ।
ज्ञानदंडोधृतोयेन एकदंडीसउच्यते ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि जो संन्यासी संसार व्यवहार संबन्धी कामनाओं को त्याग देता है किन्तु आत्मज्ञान दण्ड ही को धारण करता है वही एक दण्डी संन्यासी हो सकता है ॥ (महाभारत)

आत्मानमात्मस्थंनवेत्तिमूढः संसारकूपेपरिवर्त्ततेयः ।
त्यक्त्वात्मरूपंविषयांश्चभुङ्क्ते सवैजनोगर्दभएवसाक्षात् ॥

इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि जो संन्यासी होकर भी आत्मज्ञान को सम्पादन नहीं करता किन्तु संसार सम्बन्धि विषयों में फंसा रहता है वह मनुष्य बिना पूंछ के अकल का गधा है ॥

नाभिनन्देतमरणं नाभिनन्देतजीवितम् ।
कालमेवप्रतीक्षेत निर्देशंभृतकोयथा ॥ मनुस्मृतिः

इसमें मनु जी कहते हैं कि मरण तथा जीवन का संन्यासी इच्छा न करे किन्तु शेष प्रारब्ध खतम होनेके काल की प्रतीक्षा करे जैसे भृत्य अपनी सेवा के काल की प्रतीक्षा करता है ॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतंजलंपिवेत् ।
सत्यपूतांवदेद्वाचं मनःपूतंसमाचरेत् ॥

इसमें मनु जी ने कहा है कि संन्यासी जब चले तो नीचे देख कर चले कि जिस से पैर के नीचे आकर कोई जीव न मर जावे जब संन्यासी जल पीवे तो वस्त्र में छानकर पीवे कि जिससे उदर में जाकर कोई जीव न मर जावे और जब संन्यासी व्याख्यान देवे तो सत्यभाषण करे मिथ्या कभी न बोले ॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येतकञ्चन ।
नचेमंदेहमाश्रित्य वैरंकुर्वीतकेनचित् ॥

इसमें मनु जी ने वर्णन किया है कि दूसरे के कहे हुये कटुवाक्यों को संन्यासी सहार लेवे किसी के मान की हानि कभी न करे, रोगोंके घर इस शरीर का आश्रय लेकर किसी से वैर कभी न करे सब के साथ प्रेम रक्खे ॥

क्रुध्यन्तंप्रतिक्रुद्ध्येदाक्रुष्टः कुशलंवदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च नवाचमनृतांवदेत् ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि जो संन्यासी पर क्रोध करे तो उस पर वह संन्यासी क्रोध न करे, किन्तु क्रोध करने वालेका भी संन्यासी भला ही चाहे चक्षुरादि इन्द्रियों में से जो वाक् इन्द्रिय है उससे कभी मिथ्या भाषण न करे॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षोनिरामिषः ।
आत्मनैवसहायेन सुखार्थीसंयतोभवेत् ॥

इसमें मनु जी ने वर्णन किया है कि संन्यासी को चाहिये कि आत्मा में प्रेम रक्खे क्योंकि अनात्मपदार्थ सर्वथा सर्वदा असत् जड़ दुःख स्वरूप हैं आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है संन्यासी को चाहिये कि सर्वथा निरपेक्ष रहे अर्थात् संन्यासी किसी की कभी खुशामद न करे, क्योंकि खुशामद खोरा मनुष्य जनाब की हां में हां मिलाने लग जाता है ॥

जैसे एक राजा के पास बहुत से खुशामदी लोग रहा करते थे एक रोज उस राजा ने बैङ्गन की तरकारी बहुत सी खाली, क्योंकि उस में कीमती मसाले बहुत पड़े थे स्वाद निहायत उमदा था । तरकारी खाने के पश्चात् राजा जी सिंहासन पर आ बैठे, इधर से खुशामदी लोग भी आठ दश आये और राजा के मुख को प्रसन्न देखा राजा की हां में हां मिलाने के लिये खुशामदी लोगों ने राजा के मुख से भी अपने मुख अधिक प्रसन्न कर लिये यहां

तक कि कुत्ते के समान दांत निकाल कर हंसते हुए राजा के सामने उप-स्थित हुए। राजाने उनसे कहा कि आज हमने बैंगन का शाक खाया है उसका स्वाद निहायत उमदा आया है खुशामदी लोगोंने जवाब दिया कि राजासाहिब! आप बड़े विवेकी हैं क्योंकि शाक खाते ही आपको बैंगनके गुणोंका ज्ञान होगया, हुजूर ये बैंगन बहुत अच्छे होते हैं तभी तो इनके शिर पर ईश्वरने मोर मुकट धर दिया, गलेमें बैजयन्ती माला पहरा दी, श्रीकृष्ण के सदृश इनका घनश्याम रंग बना दिया, मूतड़ माखनके सदृश कोमल बना दिये हैं, इसको सुनकर राजा तो पलंग पर आ लेटा और खुशामदी अपने अपने मकानोंको तशरीफ लेगये, रात्रिको राजा मारे दस्तों के चिल्लाने लगा वैद्य लोगोंने राजा को ऐसा चूर्ण खिलाया कि मारे दस्तों के राजा का मुख बिगड़ गया, प्रातःकाल राजा फिर सिंहासन पर आ बैठा इधर से आठ दश खुशामदी भी आगये राजाके मुखको बिगड़ा हुआ देखा उससे खुशामदी लोगों ने राजाके मुख से भी अपने मुख अधिक बिगाड़ लिये। राजा ने सवाल किया कि बैंगनका शाकतो स्वाददार था परन्तु रात्रि को बादी करी, इस को सुन खुशामदी लोगोंने जवाब दिया, कि हुजूर आप बड़े पण्डित हैं क्यों कि रात्रि भर में बैंगनोंके दोष का आपको ज्ञान होगया ये बड़े खराब हैं इसी से ईश्वर ने इनके शिर में खूंटा ठोंक दिया है, गले में कांटोंका हार पहरा दिया, रंग तवे की सियाही जैसा काला बना दिया, है मू-तड़ कोढ़ी के चमड़े जैसे बना दिये हैं उसको सुन कर राजा ने सवाल किया कि कल आपने बैंगन के मोर मुकटादि विशेषण वर्णन किये थे आज उस से विरुद्ध उसी बैंगनके खूंटादि विशेषण वर्णन कर दिये इसमें से आ-पका कौनसा लिकचर सत्य और कौनसा मिथ्या है। खुशामदियों ने जवाब दिया कि जनाब आप पूर्ण विद्वान् हैं क्योंकि आपको हमारे दो दिनों के लिकचरों के विरोध का यथार्थ ज्ञान होगया। बस आप ही निर्णय कर ली-जिये कि बैंगनों वालों के हम खैरखाह नहीं, किन्तु मनसे आपही के हम शुभ चिन्तक हैं यदि दिन के बारह बजे आप रात कहें तो हम अवश्य कहेंगे कि हां तारे भी दीखने में आते हैं यदि रात्रि के बारह बजेको आप दिन कहें तो हम अवश्य कहेंगे कि अब मध्यान्ह का सूर्य शिर पर है इस को सुन खुशामदियों को, राजा ने धन्यवाद दिया॥

इस उदाहरण का सिद्धान्त यह है कि संन्यासी खुशामदी टट्टू न होवे किन्तु निरपेक्ष होकर सत्योपदेश देता हुआ सर्वत्र भ्रमण करे मद्य मांसादि का खाना पीना छोड़ देवे किसी की सहायता की आशा न रक्खे निर्विकल्प समाधि के सुख में मग्न रहे ॥

रूखो सूखो चिकनो मधुर शोरो तातो जैसो कैसो लै मधुकरी निवारे क्षुधा प्राण की ॥ अद्वैतत्व विना आन बारता न ठाने न तो बारता चलावे राजद्वार खान पान की ॥ पक्षपात ना राखे गिरि गुफा वन पातन में जहां तहां चरे चाह गलित करे मान की ॥ ऐसो ब्रह्मवित्त जोई जीवन मुक्त सोई वासना न कोई वाको मजहब दो कान की ॥ कहूं भूमि सोना कहूं खाट पै बिछौना कहूं बाफताहिं डोना कहूं नंगो ही फिरत है ॥ कहूं मान पावे कहूं अपमान आवे कहूं व्यञ्जन भुगत कहूं भूंखो ही रहत है ॥ कहूं मौन धारे कहूं ऊंचे स्वर पुकारे कहूं क्रोधसाथ ताड़े धीरज धरत है ॥ ज्ञानी देह मर्म जाने माया कल्पित बखाने आप निर्विकल्प माने हर्ष शोक न लहत है ॥

नचोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षांलिप्सेतकर्हिचित् ॥

इस में मनु जी का सिद्धान्त यह है कि भूकम्पादि उपद्रवों, नेत्रों के फड़कने आदि चेष्टाओं अश्विनी आदि नक्षत्रों सामुद्रिकादि रेखाओं के वर्णन करने से सन्यासी भिक्षा न करे शास्त्रार्थ की जीत हार करने रूपी निमित्त से भी सन्यासी भिक्षा न करे किन्तु धर्मोपदेश देता हुआ सन्यासी भिक्षा करे मनुजी का यही सर्वोत्तम सिद्धान्त सिद्ध होता है ।

अलाबुंदारुपात्रंच मृण्मयंवैदलंतथा ।
एतानि यतिपात्राणि मनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि सन्यासी को चाहिये कि यदि अपने पास पात्र रखने की इच्छा होवे तो तूंबी काष्ठ मृत्तिका तथा बांसादि का पात्र रक्खे सिद्धान्त यह है कि ऐसे पात्रों को चोर भी नहीं चुरा सकता।

अत्रिस्मृतिः। श्लो० १५८।

यतिंहस्तेजलंदद्याद्भिक्षांदद्यात्पुनर्जलम्।
तद्भैक्षंमेरुणातुल्यं तज्जलंसागरोपमम्॥

इस में अत्रि मुनिजी ने कहा है कि जो गृहस्थी पहिले संन्यासी के जल से हाथ धुला फिर भिक्षा देता है तत्पश्चात् फिर जल से सन्यासी के हाथ धुलाता कुल्ला कराता है वह भिक्षा सुवर्ण पर्वत के दान सदृश फल देती है वह जल सागर दान के सदृश फल प्रदाता होता है।

चरेन्माधुकरींवृत्तिमपिम्लेच्छकुलादपि।
एकान्नंनैवभोक्तव्यं वृहस्पतिसमोयदि॥

इस में अत्रि मुनि जी वर्णन करते हैं कि सन्यासी को चाहिये कि यदि वृहस्पति के सदृश भी ब्राह्मण हो तो भी उसके एक वार ही भोजन करे दूसरी वार उसके कभी न करे म्लेच्छ के घर से मधुकरी खा लेना सर्वोत्तम है परन्तु एक दिन में दूसरी वार एक के गृह में भोजन करना ठीक नहीं।

विष्णुस्मृतिः—विरक्तःसर्वकामेषु पारिव्राज्यंसमाश्रयेत्।

इस में विष्णु मुनि जी कहते हैं कि सर्व कर्मों में सन्यासी त्यागी ही रहे लंपट किसी कर्म में न होवे।

नृत्यंगानंसभांसेवां परिवादांश्चवर्जयेत्।

इस में विष्णु मुनि जी ने कहा है कि सन्यासी को चाहिये कि नाच न देखे युवक युवक के गाने बजाने को न सुने विलसड़ा जल्प न करता फिरे।

एकाकीविचरेन्नित्यं त्यक्त्वासर्वपरिग्रहम्।

इस में विष्णु मुनि जी का सिद्धान्त यह है कि सन्यासी को चाहिये कि अकेला ही विचरे द्रव्यादि पदार्थों का संग्रह न करे।

एका एकी सिद्ध पुन सिद्ध साधक दोय मुनीश।
तीन चार कुटुम्ब सम लशकर हैं दशवीश॥

लशकर हैं दशबीस तहां नाना विध झगड़ो ।
रहे सदा विक्षेप सुमेरो तेरो रगड़ो ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष जो परम विवेकी ।
करके सब का त्याग सो विचरे एकाएकी ॥

ततःप्रभृतिपुत्रादौ स्नेहालापादिवर्जयेत् ।

(हारीतस्मृतिः) (अ० ६ श्लो० ५)

इसमें हारीत मुनि जी ने कहा है कि सन्यासी को चाहिये कि स्त्री पुत्रादि से बात करना भी छोड़ दे ।

सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं भिक्षितंनानुभिक्षयेत् ।
नव्यथेच्चतथाऽलाभे यथालब्धेनवर्जयेत् ॥

शंख स्मृतिः अ० ७ श्लो० ३ ।

इस में शंख मुनि जी ने वर्णन किया है कि सन्यासी को चाहिये कि सात घरों से भिक्षा मांगे यदि न मिले तो दुखी न होवे मिले तो सुख न माने अर्थात् मिले तो हर्ष में और न मिले तो शोकसागरमें कभी न गिरे ।

एककालंचरेद्भैक्षं नप्रसज्येतविस्तरे ।
भैक्षेप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपिसज्जति ॥

इस में मनु जी ने वर्णन किया है कि सन्यासी एकही समय ग्राम में भिक्षा के लिये जावे अधिक न खावे किन्तु जितनी क्षुधा हो उससे तीन चार ग्रास कम खावे क्योंकि कम खानेसे शरीर आरोग्य रहता है अधिक खाने से बदहजमी आदि रोग हो जाते हैं ।

फलंकतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
ननामग्रहणादेव तस्यवारिप्रसीदति ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि जैसे कतक वृक्षका फल कि जिसका नाम निर्मली भी अनुभव सिद्ध है उसको पीसकर डालने से जलकी मलीनता नष्ट होती है खाली नाम लेने ही से मलीनता नष्ट नहीं होती । वैसे ही संन्यासी नाम रखने वा कषाय वस्त्र पहरने ही से सन्यासी नहीं हो सकता किन्तु पूर्वोक्त कर्मों के सम्पादन करने ही से संन्यासी हो सकता है ।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्विषम् ।
प्रत्याहारेणसंसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि संन्यासी को चाहिये कि प्राणायाम से मन आदि इन्द्रियोंको विषयोंसे रोके, उससे संन्यासीके मनमें से रागद्वेषादि दोष सर्वथा नष्ट हो जाते हैं, लगातार आत्माकार मनके करने से तथा स्वरूप धारण से संन्यासी संचित पाप कर्मों को भस्म कर डाले, प्रत्याहार से संन्यासी दुष्ट विषयोंकी ओरसे मनको रोक लेवे, ब्रह्माकार वृत्तिस्वरूप ध्यान से संन्यासी काम क्रोधादि दोषों को नष्ट कर डाले ॥

अस्थिस्थूणंस्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धंदुर्गन्धि–पूर्णंमूत्रपुरीषयोः ॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यंच भूतावासमिमंत्यजेत् ॥

इसमें मनुजी ने वर्णन किया है कि संन्यासीको चाहिये कि मलमूत्रादि से भरे गन्दे शरीर की ममता को छोड़ देवे ।

प्रियेषुस्वेषुसुकृतमप्रियेषुचदुष्कृतम् ।
विसृज्यध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येतिसनातनम् ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि जो भक्तजन ब्रह्मवेत्ता सन्यासीकी प्रेमपूर्वक सेवा करते हैं उनको सन्यासी के सुकृत संचित कर्मों का फल मिल जाता है और जो दुष्टता से संन्यासी के साथ विरोध रखते हैं निन्दा करते हैं उन को सन्यासी के संचित पाप कर्मों का फल मिल जाता है सन्यासी ब्रह्माकार मन को करके ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय ध्याता ध्यान ध्येयादि त्रिपुटियों को स्वप्रकाश स्वरूप नित्यमुक्त नित्यशुद्ध ब्रह्मात्मा में लय कर देता है ।

अनेनक्रमयोगेन परिव्रजतियोद्विजः ।
सविधूयेहपाप्मानं परंब्रह्माधिगच्छति ॥

इस में मनु जी ने वर्णन किया है कि सन्यासी पूर्वोक्त वर्णन किये हुए क्रम से सन्यास को धारण करता है वह सन्यासी ही निरावरण ब्रह्म-

चेतन स्वप्रकाश स्वरूप से भान होता है। आर्यसमाजी कहते हैं कि गिरि पुरी सागरादि दश नाम सन्यासियों के नवीन हैं प्राचीन नहीं आर्यसमाजियों की यह शंका सर्वथा असंगत है क्योंकि प्राचीन शब्द का अर्थ पूर्व है नवीन का अर्थ पश्चात् सिद्ध होता है दयानन्द कृत आर्यमत से पहिले ही से गिरि पुरी सागरादि नाम चले आते हैं दयानन्द पश्चात् हुआ है उस से दयानन्द ही नवीन मत वाला सिद्ध हुआ यदि सूक्ष्मविचार किया जावे तो दयानन्द ने भी तो दस नामोंमें से ही अपना सरस्वती नाम रक्खा है।

तथा च श्रीशङ्कराचार्यविरचिते सम्प्रसूत्रे दश नामानि,

तीर्थाश्रमवनारण्य-गिरिपर्वतसागराः ।
सरस्वतीभारतीच पुरीतिदशकीर्तिताः ॥

एतेषां लक्षणानि यथा वृहच्छङ्कराचार्यदिग्विजये ।

त्रिवेणीसंगमेतीर्थे तत्त्वमस्यादिलक्षणे ।
स्नायात्तत्त्वार्थभावेन तीर्थनामासउच्यते ॥

आश्रमग्रहणेप्रौढ आशापाशविवर्जितः ।
यातायातविनिर्मुक्तो एतदाश्रमलक्षणम् ॥

सुरम्योनिर्जनेदेशे वनेवासंकरोतियः ।
आशापाशविनिर्मुक्तो वननामासउच्यते ॥

अरण्येसंस्थितोनित्य-मानन्दनन्दनेवने ।
त्यक्त्वासर्वमिदंविश्व मारण्यलक्षणंकिल ॥

वासोगिरिवरेनित्यं गीताभ्यासेहितत्परः ।
गम्भीरोऽचालबुद्धिश्च गिरिनामासउच्यते ॥

वसेत्पर्वतमूलेषु प्रौढोयोध्यानतत्परः ।
सारासारंविजानाति पर्वतःपरिकीर्तितः ॥

वसेत्सागरगंभीरे वनरत्नपरिग्रहः ।
मर्य्यादाञ्चनलङ्घेत सागरःपरिकीर्त्तितः ॥
स्वरज्ञानवशोनित्यं स्वरवादीकवीश्वरः ।
संसारसागरेसारा-ऽभिज्ञोहिसरस्वती ॥
विद्याभारेणसम्पूर्णः सर्वभारंपरित्यजेत् ।
दुःखभारंनजानाति भारतीपरिकीर्त्तितः ॥
ज्ञानतत्वेनसम्पूर्णः पूर्णतत्त्वंपदेस्थितः ।
परब्रह्मरतोनित्यं पुरीनामासउच्यते ॥

इत्यादि श्लोकों से निश्चय होता है कि शंकराचार्य जी ने ही संन्यासियों के दश नामों का विशेष प्रचार किया है।

मठंचकारयामास गोवर्धनमितिस्मृतम् ।
पुरुषोत्तमकक्षेत्रे महोदधिसमीपके ॥
दक्षिणेद्राविडेदेशे तुङ्गभद्रानदीतटे ।
शृङ्गेरीतिचविख्यातो मठस्तत्रापिनिर्मितः ॥
द्वारवत्यांप्रतीच्यांतु विख्यातंशारदेतिच ।
मठंचकारयामास यत्रकृष्णःसुसेवितः ॥
ज्योतिर्नाम्नातुविख्यातो नरनारायणाश्रमे ।
अलकनन्दानदीयत्र मठस्तत्रापिनिर्मितः ॥

इत्यादि श्लोकोंसे निश्चय होता है कि गोवर्द्धनादि चार मठ भी शंकराचार्य जी ने स्थापित किये हैं शंकराचार्य जी दयानन्द से पहिले हुए उस से दयानन्द की अपेक्षा से चार मठ भी प्राचीन हैं नवीन नहीं। वन आरण्य दो नाम के संन्यासियों का गोवर्धन मठ सरस्वती भारती पुरी का शृङ्गेरीमठ तीर्थ आश्रम का शारदा मठ गिरि पर्वतसागर का जोशी मठ है गोवर्द्धन मठ के शारदा ब्रह्मचारी शृङ्गेरी के चेतन शारदाके स्वरूप

जोशीमठ के नन्द ब्रह्मचारी हैं। इत्यादि संन्यासपद्धति में संन्यासियों के देवता उपदेशादि भी लिखे हैं। परन्तु सर्वोत्तम परमहंस संन्यास है वेदोक्त परमहंस संन्यासी को किसी प्रकार की विधि नहीं क्योंकि—

मृतामोहमयीमाता जातोज्ञानमयःसुतः।
सूतकंपातकंयत्र कथंसन्ध्यामुपास्महे ॥

यह योगपटल का प्रमाण है लोकसंग्रहके लिये ही संन्यासी श्रेष्ठ कर्म करे तो संन्यासी की हानि भी किसी प्रकार से कभी नहीं होती पूर्वोक्त श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी ही व्यवहार, परमार्थ सम्बन्धी संसार का उपकार कर सकता है पूर्वोक्त संन्यासाश्रम का अदर्शन हो जाने के कारण इस समय सुलफेबाज तथा गंजेड़ी हुक्केबाज अफीमची रंडीबाज मद्यमांसाहारी संन्यासियों के लशकर हो बैठे हैं विद्याभ्यास का तो उनमें लेशमात्र नहीं देखा जाता है हां वह स्वयं भी कुकर्मी हो रहे हैं गृहस्थों को भी कुकर्मसागर में डुबाते जाते हैं गृहस्थ लोगोंको चाहिये कि वेदोक्त जो कि पूर्वोक्त वर्णन किये हैं ऐसे संन्यासियों ही का सत्कार करें, वेदविरुद्ध पाखण्डी संन्यासियोंके प्रध्वंसाभाव ही का पुरुषार्थ कर्तव्य है। तभी भारतवासियों को सुख का लाभ होगा ॥

ओ३म्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

आर्य्यसमाजोक्त १० नियम खण्डन ।

व्याख्यान नं० १८

ओम्-ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन् यस्मिन्देवाअधिविश्वेनिषेदुः । यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यति यइत्तद्विदुस्तइमेसमासते ॥ ऋ० मण्ड० १ सू० १६४ मं० ३९ ॥ ओम् शान्ति शान्तिः शान्तिः ॥

ईश्वर प्रशंसात्मक मङ्गल के पश्चात् व्याख्यान का प्रारम्भ किया जाता है (तथाहि) विदित हो कि दूसरे सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास की समाप्ति में दयानन्द का लेख है कि--जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम उसको मानते हैं' ७ वें समुल्लास में भी यही प्रतिज्ञा है । यहां आर्य्य समाजियों से प्रष्टव्य यह है कि दयानन्द का यह लेख सत्य है अथवा मिथ्या। यदि मिथ्या कहो तो दयानन्द मिथ्यावादी सिद्ध होगा ॥ यदि कहो कि उक्त लेख सत्य है तो कहिये आर्य्यसमाज शब्द वेद में है अथवा नहीं, यदि कहो कि है तो दिखलाइये कौन वेद के कौन से मंत्र में आर्य्यसमाज शब्द लिखा है । यदि कहो कि वेद में आर्य्य समाज शब्द नहीं है तो आर्य्यसमाज इतना नाम वेद विरुद्ध सिद्ध हुआ । क्योंकि दयानन्द की प्रतिज्ञा है कि जो कुछ वेदों में कहा है हम उस को मानते हैं (किंच) आर्य्यसमाज के १० नियमों की संख्या वेदों में हैं वा नहीं । यदि है तो दिखलाइये कौन से वेद में १० नियम लिखे हैं, यदि कहो कि १० नियमों की संख्या वेदों में नहीं है तो आर्य्यसमाज के १० नियम भी वेद विरुद्ध सिद्ध हो चुके ॥ क्योंकि वेदों में १० नियमों की संख्या का अत्यन्ताभाव देखा जाता है ॥

आर्य्यसमाज के प्रथम नियम का खण्डन कहा जाता है (नियम १) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल ईश्वर है ॥ यहां आर्य्यसमाजियोंसे पूछना चाहिये कि इस प्रथम नियम में मूल शब्द कारण का वाचक है अथवा अकारण का ॥ यदि कहो कि मूल शब्द अकारण का वाचक है तो बाबा जी दयानन्द का लेख मिथ्या होगा

क्योंकि सत्यार्थ प्रकाशके अष्टम समुल्लास में (मूलेमूलाभावादमूलंमूलम्) इस के भाष्य में मूल शब्द कारण का वाचक लिखा है यदि कहो कि मूल शब्द कारण का वाचक है तो समाज के प्रथम नियमस्य मूल शब्द भी कारण का वाचक सिद्ध हुआ। यदि आप ऐसे ही मानें तो कहिये नियमस्य मूल शब्द उपादान कारण को वाचक है, अथवा निमित्त कारण का वा साधारण कारण का वाचक मूल शब्द है। यदि कहो कि मूल शब्द उपादान कारण का वाचक है तो आर्य्यमत वाला ईश्वर भी सब पदार्थों का उपादान कारण सिद्ध होगा ॥ इससे सब पदार्थ ईश्वर के गुणों वाले सिद्ध होंगे ॥ देखो सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ८ (कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः) इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि उपादान कारण के सदृश कार्य्य के गुण होते हैं। ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप जगत् के कार्य्यरूप से असत् जड़ और आनन्द रहित है ॥ दयानन्द के इस लेखसे ईश्वर भी असत् जड़ और आनन्द रहित होगा क्योंकि नियम में दयानन्द ने सब पदार्थों का आदि मूल ईश्वर को कहा है ॥

किंच दूसरा सत्या० समुल्लास ८ (सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत) इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि दूसरा उपादान कारण उस को कहते हैं कि जिस के विना कुछ न बने वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी। दयानन्द कृत इस उपादान कारण के लक्षण से ईश्वर ही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़ेगा। इत्यादि दोषों से उपादान कारण ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता उस से प्रथम नियमस्य मूल शब्द उपादान कारण का वाचक नहीं। यदि आर्य्यसमाजी कहें कि नियमस्य मूल शब्द निमित्त कारण का वाचक है सो भी असङ्गत है क्योंकि दूसरा सत्या० समुल्लास ८ दयानन्दने निमित्त कारण दो प्रकारका कहा है जैसे कि एक तो सब सृष्टि को कारण बनाने धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखने वाला, मुख्य निमित्त कारण परमात्मा दूसरा परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विध अर्थान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव है। इन दो निमित्त कारणों के लक्षणों में से यदि प्रथम नियमस्य मूल शब्द को दूसरे निमित्त कारण का वाचक कहें सो ठीक नहीं क्यों कि नियम में सब का आदि मूल ईश्वर को कहा है जीव को नहीं यदि नियमस्थ मूल शब्द को प्रथम निमित्त कारण के लक्षण का वाचक कहें तो जीव

ईश्वर प्रकृति परमाणु आदि सर्व पदार्थ उत्पत्ति नाश वाले सिद्ध होंगे। क्योंकि सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल ईश्वर है यह आर्यसमाज का प्रथम नियम है॥ सो जीव ईश्वर प्रकृति परमाणु आदि सर्व पदार्थ विद्या ही से जाने जाते हैं। उस से आर्यमत वाला ईश्वर अपना तथा प्रकृति परमाणु जीव आदि पदार्थों की उत्पत्ति का आदि मूल निमित्त कारण सिद्ध हुआ। आर्यमत में आर्यसमाज के प्रथम नियम की कृपा से कोई भी पदार्थ अनादि सिद्ध नहीं होता॥

दूसरे सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लासमें (द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते) इस मन्त्रके भाष्य में जो जीव ईश्वर और प्रकृति इन तीन पदार्थोंको स्वरूप से अनादि लिखा है वह लेख भी प्रथम नियम की दया से शशशृङ्ग के समान मिथ्या सिद्ध हुआ। अभिप्राय यह कि यदि आर्यसमाजी जीव ईश्वर प्रकृति परमाणु को अनादि कहें तो आर्यसमाज का प्रथम नियम मिथ्या सिद्ध होगा। यदि प्रथम नियम को सत्य कहें तो जीव ईश्वर प्रकृति परमाणु सर्व पदार्थ उत्पत्ति नाशवाले सिद्ध होंगे। उभयपाशारज्जुन्याय से आर्यसमाजियों का छूटना सर्वथा असम्भव अनर्थ प्रतिपादक होगा। उससे आर्यसमाज का प्रथम नियम असङ्गत है॥ १॥

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप निर्विकार सर्व शक्तिमान् न्यायकारी दयालु अजन्मा अनन्त निराकार अनादि अनुपम सर्वाधार सर्वेश्वर सर्वव्यापक अन्तर्यामी अजर अमर अभय नित्य पवित्र और सृष्टि कर्त्ता है। यह आर्यसमाजका दूसरा नियम है॥ यहां आर्यसमाजियोंसे पूछना चाहिये कि इस दूसरे नियम में जितने शब्द हैं वह सबके सब संहिता भाग वेदों में हैं अथवा नहीं, यदि कहो कि उक्त नियमस्थ सब के सब शब्द वेदों में हैं तो दिखलाइये कि जिस से हम भी द्वितीय नियम को स्वीकार कर लेवें। यदि आर्यसमाजी कहें कि द्वितीय नियमस्थ सच्चिदानन्दादि सब शब्द वेदों में नहीं तो दूसरा नियम भी वेदों से विरुद्ध सिद्ध होगा। यदि आर्यसमाजी कहें कि द्वितीय नियमस्थ सच्चिदानन्दादि सब शब्द तो वेदोंमें नहीं, परन्तु उन शब्दोंके अर्थ तो वेदों में से निकल सकते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि आर्यसमाजियों का विशेष विवाद शब्दों पर ही देखा जाता है जैसे कि आर्यसमाजी कहते हैं कि हिन्दु शब्द वेदोंमें नहीं देखा जाता उससे हिन्दु नाम वेदों के विरुद्ध है। आर्यसमाजियों के इस कथनानुसार हम भी कह सकते

हैं कि द्वितीय नियमस्थ सच्चिदानन्दादि शब्द भी वेदोंमें नहीं उससे वे शब्द भी वेदों से विरुद्ध हैं। उससे भी द्वितीय नियम वेदों से विरुद्ध है। यदि सच्चिदानन्दादि शब्दों के अर्थों को दर्शाकर द्वितीय नियम को वेदानुसार कहें तो हिन्दु शब्द का अर्थ व्याकरण से अहिंसा सिद्ध हो चुका है उससे हिन्दु नाम को भी वेदानुसार मानने पड़ेगा ॥

किंच यदि आर्यसमाजी द्वितीय नियमस्थ सर्वशक्तिमान् विशेषणको सत्य कहें तो ईश्वरमें रामकृष्णादि अवतार धारण करनेकी शक्ति भी सिद्ध होगी। यदि ईश्वर में अवतार धारण करने की शक्ति न मानें तो द्वितीय नियमस्थ सर्वशक्तिमान् विशेषण मिथ्या होगा। दयानन्दकृत सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ युक्ति और प्रमाण के विरुद्ध है। यदि ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता कहें तो द्वितीय नियमस्थ निराकार शब्द निष्फल प्रवृत्ति का जनक सिद्ध होता है यदि द्वितीय नियमस्थ निराकार शब्द को सत्य कहें तो ईश्वर का सृष्टिकर्त्ता विशेषण मिथ्या होगा। किंच दूसरा सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७—

अपाणिपादोजवनोगृहीता पश्यत्यचक्षुःसशृणोत्यकर्णः ।

इसके भाष्य में दयानन्द ने ईश्वर के शक्ति रूपी हाथ भी लिखे हैं ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका प्रकरण ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य । (इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्) इस मन्त्र के भाष्य में दयानन्द ने प्रकृति ही को ईश्वर की शक्ति कहा है। दूसरा सत्या० समुल्लास ८ । (तम आसीत्तमसा-गूढ़मग्रे) इसके भाष्यमें सरस्वती ने प्रकृतिको साकार कहा है। और युक्ति से भी प्रकृति साकार सिद्ध होती है क्योंकि उक्त समुल्लास ही में प्रकृति को जगत् का उपादान कारण कहा है सिद्धान्त यह कि निराकार उपादान कारण से साकार जगत् का होना पदार्थ विद्या के विरुद्ध है। यदि दयानन्दके उक्त लेखोंको आर्यसमाजी सत्य कहें तो ईश्वर का निराकार विशेषण असंगत है यदि द्वितीय नियमस्थ निराकार विशेषण को सत्य मानें तो दयानन्दके उक्त सब लेख मिथ्या सिद्ध हो जायंगे। कालीमहिषान्याय से आर्य मत का बचाव कभी नहीं हो सकता। यदि ईश्वर चेतन को जीव चेतन के भीतर व्यापक कहें तो जीव चेतन निराकार निरवयव न रहेगा यदि जीव चेतन को निराकार निरवयव मानें तो ईश्वर का सर्वव्यापक विशेषण मिथ्या होगा क्योंकि पदार्थ विद्या से निर्णय हो चुका है कि निराकार निरवयव पदार्थ अवकाश रहित होता है विना अवकाश के पदार्थ में ईश्वर

को सर्वव्यापक कथन करना लालबुझक्कड़ों की लीला है। उस से द्वितीय नियमस्थ सर्वव्यापक विशेषण भी अप्रसिद्ध है॥

यदि द्वितीय नियमस्थ ईश्वर के अनुपम विशेषण को सत्य मानें तो सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास का लेख झूठा होगा क्योंकि वहां–

अथोदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति द्वितीयाद्वै भयं भवति॥

इसके भाष्य में दयानन्द ने ईश्वर की व्यापकता में आकाश की उपमा दी है। उससे भी द्वितीय नियमस्थ ईश्वर का अनुपम विशेषण मिथ्या है। किंच दूसरा सत्या० समुल्लास ७ (ईश्वरासिद्धेः) इसके भाष्यमें दयानन्दकी प्रतिज्ञा है कि यहां ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। उसीका समुल्लास (पञ्चावयवात्सुखसंवित्तिः) इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान, उपमान, और शब्दप्रमाण भी नहीं घट सकता। यदि आर्यसमाजी दयानन्दके इन लेखों को ठीक समझें तो आर्यमत में ईश्वर का सर्वथा अत्यन्ताभाव सिद्ध होगा। उससे द्वितीय नियमस्थ ईश्वर के जितने विशेषण हैं वह सर्वथा मिथ्या सिद्ध होंगे क्योंकि विना विशेष्य के विशेषण ही नहीं रह सकता। यदि दयानन्द के लेखों से विशेष्य ईश्वर ही सिद्ध नहीं हुआ तो द्वितीय नियमस्थ सच्चिदानन्दादि विशेषणों का भी सर्वथा अत्यन्ताभाव है॥ उससे आर्यसमाज का दूसरा नियम भी असंगत है॥ २॥

वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्यों का परमधर्म है। यह आर्यसमाज का तीसरा नियम है॥ सो भी ठीक नहीं, क्योंकि इस तृतीय नियम में वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्य्यों का परमधर्म कहा है। परन्तु इसके विरुद्ध दूसरा सत्या० समुल्लास ३

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳪ शूद्राय च स्वाय चारणाय॥

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि स्त्री शूद्रादि के लिये भी ईश्वर ने वेद का प्रकाश किया है यहां आर्यसमाज का तृतीय नियम मिथ्या

सिद्ध होता है क्योंकि उस नियम में वेदों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्यों ही का परम धर्म कहा है। यदि आर्यसमाज के तृतीय नियम को सत्य कहें तो ईश्वर का नियम झूंठा होगा क्योंकि ईश्वर के नियम में शूद्रादि के लिये भी वेद पढ़ने आदि की आज्ञा है॥

किंच दूसरा सत्या० समुल्लास॥ ३॥

विश्वानिदेवसवितर्दुरितानिपरासुव। यद्भद्रंतन्नआसुव॥

इस मन्त्र के भाष्यमें पुस्तक को वेद कहा है यदि दयानन्दके इस लेख को सत्य कहें तो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का लेख झूंठा होगा क्योंकि वहां वेदोत्पत्ति प्रकरणमें कहा है कि पुस्तक वेद नहीं। यदि आर्यसमाजी ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के लेखको सच्चा कहें तो सत्यार्थप्रकाश का लेख मिथ्या होगा। पूर्वापर विरोध से दोनों लेख ही झूंठे सिद्ध हो जायंगे। दूसरा सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास १३ की समाप्ति में पूर्वापर विरुद्ध लेखों ही को दयानन्द ने झूंठी दरोगहलफी कहा है। समुल्लास १३। तौरेत उत्पत्ति पर्व ३ आयत २ की समीक्षा में दयानन्द ही का लेख है कि जो आप झूठा और दूसरे को झूठ पर चलावे उस को शैतान कहना चाहिये, दयानन्द के इन लेखों से आर्यमत में वेद ही कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होता उससे आर्यसमाज का तीसरा नियम भी असङ्गत है॥ ३॥

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये। यह आर्यसमाज का चौथा नियम है। सो भी ठीक नहीं क्योंकि दूसरा सत्या० समुल्लास ७॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषौप्रयत्नाश्चात्मनोलिंगानि।

इस के भाष्य में दयानन्द ने इन्द्रियों को जीवात्मा के गुण कहा है उसी का समुल्लास ३॥

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः समवायः।

इसके भाष्य में बाबा जी ने गुण गुणीका नित्य समवाय सम्बन्ध लिखा है। दयानन्द के इन लेखोंसे जीवात्माके साथ इन्द्रियों का नित्य समवाय सम्बन्ध सिद्ध हो चुका॥ उसी का समुल्लास ४॥

वाच्यर्था नियताःसर्वे वाङ्मूलावाग्विनिःसृताः ।

इसके भाष्यमें दयानन्द ने कहा है कि जो वाणी को चुराता अर्थात् मिथ्या भाषण करता है वह चोरी आदि पापों का करने वाला है । दयानन्दके इत्यादि लेखोंसे यह सिद्धान्त सिद्ध होता है कि सत्य और असत्य यह जीवात्मा ही के धर्म हैं वागिन्द्रिय द्वारा जीव ही सत्य वा असत्य भाषण करता है यदि आर्यसमाजी भी सत्य और असत्य को जीवात्मा के धर्म मानें तो जब तक जीव है तब तक जीवके सत्य और असत्य धर्म भी जीव से नहीं छूट सकते उस से चतुर्थ नियमस्थ सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग भी आर्यमत में सिद्ध नहीं हो सकता । यदि और भी सत्यार्थ प्रकाश की समालोचना करी जाय तो दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थ ही सारे दरोगहलफियोंके मिथ्या सिद्ध हो चुके हैं कि जिस का सिद्धान्त यही निश्चय होता है कि आर्यमत के मूलाचार्य दयानन्द ही सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में उद्यत नहीं हुए तो आर्य समाजियोंमें समाज का चतुर्थ नियम कैसे सफल होगा किन्तु कभी नहीं ॥

अब स्थालीपुलाकन्याय से दयानन्द कृत ग्रन्थों का असत्य प्रकाशित किया जाता है (तथाहि) दूसरा सत्या० समुल्लास ४ ॥

देवरः कस्मादुद्धितीयो वर उच्यते ॥

इसको दयानन्द ने वेद प्रमाण कहा है सो असत्य है क्योंकि वेदों में इस प्रमाण का नाम तक भी नहीं पाया जाता । चतीका समुल्लास ५ ॥

विविधानिचरत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ।

इसको मनुस्मृति का कहा है सो भी असत्य है इत्यादि दयानन्द कृत ग्रन्थों में से तीन हजार झूंठ हमने निकाले हैं । जब वह निष्पक्ष धर्म वीरों के दृष्टिगोचर होंगे तो विदित हो जायगा कि दयानन्द के सदृश कोई असत्यवादी न हुआ न है और न होने का संभव है । दयानन्दकृत ग्रन्थों पर ही आर्यसमाजियों का विश्वास है उस से आर्यसमाजी भी असत्य को नहीं छोड़ सकते (किंच) दूसरा सत्या० समुल्लास ८ दयानन्दने जगत्को असत्य कहा है यदि जगत् को न छोड़ेंगे तो उस से भी आर्यसमाजी असत्का त्याग नहीं कर सकते । स्थूल सूक्ष्म कारण यह तीन शरीर भी उत्पत्ति वाले हैं इसी सिद्धान्त को सत्यार्थ प्रकाश के समुल्लास नौवेंमें दया-

नन्द ने लिखा है उत्पत्ति वाले होने के कारण यह तीन शरीर भी असत्‌ हैं उनको आर्यसमाजी नहीं छोड़ सकते उस से भी सत्य के ग्रहण और असत्य के त्यागने में आर्यसमाजी उद्यत नहीं हो सकते उस से आर्यसमाज का चतुर्थ नियम भी असंङ्गत है ॥ ४ ॥

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार के करने चाहिये ॥ यह आर्यसमाज का पांचवां नियम है ॥ ५ ॥ यह भी ठीक नहीं क्योंकि आर्यसमाज के इस पंचम नियम को देखकर ज्ञात होता है कि सत्य और असत्य के विचार ही का नाम धर्म है। अब आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि जिस को दयानन्द ने सत्य और असत्य का विचार कहा है वह आत्मा का धर्म है वा सूक्ष्म शरीर का किंवा वह स्थूल शरीर का धर्म है ॥ यदि स्थूल सूक्ष्म वा कारण शरीर का धर्म कहो सो ठीक नहीं क्योंकि स्थूल सूक्ष्म कारण यह तीनों शरीर जड़ हैं, जड़ पदार्थ का धर्म विचार कभी नहीं हो सकता क्योंकि जड़ पदार्थ का विचार हो ही नहीं सकता। प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि उक्त तीनों शरीरों का एक दूसरे में व्यतिरेक है परन्तु आत्माका तीनों शरीरों में अन्वय है। तीनों शरीर करण और कर्त्ता आत्मा ही अनुभव सिद्ध है। अनुभव सिद्ध बात किसी युक्ति से भी खण्डित नहीं हो सकती किन्तु प्रकरण में सत्य और असत्य के विचार का कर्त्ता आत्मा ही सिद्ध होता है ॥ यदि न मानें तो सत्यार्थ प्रकाश के लेख भी मिथ्या होंगे ॥

किंच दूसरा सत्या० समुल्लास ८ ॥ दयानन्द का लेख है कि यही जीव सब का प्रेरक सब का धर्त्ता साक्षी कर्त्ता भोक्ता कहाता है जो कोई कहे कि जीव कर्त्ता भोक्ता नहीं तो उस को जानो कि वह अज्ञानी अविवेकी है ॥ दयानन्द के इस लेख से भी सत्य और असत्य के विचार का कर्त्ता आत्मा ही सिद्ध हुआ। यदि आर्यसमाजी कहें कि हम भी सत्य और असत्य के विचार को आत्मा ही का धर्म मानते हैं तो आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि सत्य और असत्य के विचाररूपी धर्मको आप आत्मा से भिन्न मानते हैं अथवा अभिन्न यदि भिन्न कहो तो आत्मा में वह विचार रूपी धर्म किसी सम्बन्ध से रहता है वा सम्बन्ध के विना। यदि सम्बन्ध के बिना कहो तो पदार्थ विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरोध होगा॥

क्योंकि (भूतले घटोस्ति) इत्यादि उदाहरणोंसे घटादि और पृथिवी आदि पदार्थों का आधाराधेयभाव सम्बन्ध प्रतीत होता है। यहां तक कि (भूतले घटो नास्ति) इत्यादि उदाहरणों से घटाभाव और पृथिवी का भी व्यधिकरणता सम्बन्ध भान होता है। उससे पञ्चम नियमस्थ सत्यासत्यके विचारका भी आत्माके साथ सम्बन्ध सिद्ध होता है। यदि आर्यसमाजी कहें कि आत्मा के साथ विचार का सम्बन्ध है, तो प्रष्टव्य यह है कि आत्माके साथ विचार का संयोग सम्बन्ध है वा संयुक्त समवाय, किंवा संयुक्तसमवेत, अथवा संयुक्त संबन्ध विशेषणता सम्बन्ध है, वा आधाराधेयभाव किंवा कर्तृ कर्तव्य संबन्ध आत्मा के साथ विचार का है। यदि संयोग संबन्ध कहें तो ठीक नहीं क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से देखा जाता है कि साकार सावयव पदार्थों का संयोग ही अनुभव सिद्ध है। निराकार निरवयव पदार्थों का संयोग लोकानुभव और पदार्थविद्या से भी विरुद्ध है। यदि आत्माके साथ धर्मका समवाय संबन्ध कहें तो सत्यार्थप्रकाशके तीसरे समुल्लासमें दयानन्द ने नित्य संबन्ध ही को समवाय कहा है। यदि दयानन्द का वह लेख ठीक मानें, तो पञ्चम नियममें दयानन्द ने धर्म शब्द का अर्थ सत्य और असत्य का विचार ही लिखा है। इस पंचम नियम की दया दृष्टि से आर्यमत के आत्मा के साथ असत्य का भी समवाय संबन्ध सिद्ध होगा। उस से आर्य मत वाले आत्मा में से असत्य का त्याग भी कभी न होगा॥

(किञ्च) दूसरा सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११॥

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्० ॥

इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दने सत्यभाषण में धर्म और असत्यभाषणमें अधर्म कहा है उससे भी आर्य आत्मा अधर्मी सिद्ध हुए। यदि समवेत समवाय संबन्ध आत्मा में धर्माधर्म का कहें तो उससे भी आर्य आत्मा अधर्मी सिद्ध होंगे। यदि आत्मासे सत्यासत्य को विचाररूपी धर्म का आत्मा के साथ संयुक्त संबन्ध विशेषणता संबन्ध मानें तो सो भी ठीक नहीं। क्योंकि दयानन्द के लेख से सत्य का नाम धर्म और असत्य का नाम अधर्म सिद्ध हुआ है। सत्यासत्य का भाषण भावरूप है विशेषणता संबन्ध न्यायमत में अभाव का कहा है। यदि कहो कि धर्माधर्मका आत्माके साथ आधाराधेय भाव संबन्ध है, तो ईश्वर को सर्वाधार कथन मिथ्या होगा॥

(किंच) आत्मा और सत्यासत्यका आधाराधेयभाव संबन्ध भी नित्य ही सिद्ध होगा क्योंकि नास्ति से अस्ति वा अस्ति से नास्ति कथन सर्वथा मिथ्या है ॥

यदि आर्यसमाजी कहें कि आत्मा और सत्यासत्य के विचार का कर्तृ-कर्त्तव्यभाव संबन्ध है तो उस से भी आर्य आत्मा अधर्मी सिद्ध होंगे । क्योंकि भाव से अभाव अथवा अभाव से भाव का होना सर्वथा असंभव है । पहिले हमने दो विकल्प किये थे कि पञ्चमनियमस्थ सत्यासत्य का विचार रूपी धर्म आत्मा से भिन्न है अथवा अभिन्न, इन में से भिन्नका खण्डन वा समाधान हो चुका । यदि आर्यसमाजी कहें कि पंचमनियमस्थ सत्यासत्य का विचाररूपी धर्म आत्मा से अभिन्न है तो कहिये वह धर्म चेतनस्वरूप है अथवा जड़, यदि जड़ कहो तो धर्म को आत्मा से अभिन्न कथन करना पदार्थ विद्या से विरुद्ध होगा ॥

क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के अष्टमसमुल्लास में दयानन्द ने आत्मा को चेतन लिखा है । जड़ और चेतन का अभेद पदार्थ विद्या से सिद्ध ही नहीं हो सकता । यदि कहो कि धर्म भी चेतन है तो बतलाइये कि आत्मासे अभिन्न धर्म है अथवा धर्मसे अभिन्न आत्मा है । यदि प्रथम पक्ष कहो तो शेष आत्मा ही रहेगा । यदि कहो कि धर्मसे अभिन्न आत्मा है तो शेष धर्म ही रहेगा॥

(किंच) दयानन्दोक्त आर्यसमाज के पंचम नियमस्थ धर्म शब्द के सत्य और असत्य दो अर्थ किये हैं सत्यासत्य ही को दयानन्द ने धर्माधर्म कहा है । उस से आर्यआत्मा में धर्माधर्म दोनों ही सिद्ध हो चुके । यद्यपि एक धर्मी में दो विरुद्ध धर्माधर्म नहीं रह सकते तथापि दयानन्दकृत ग्रन्थों की दया से आर्य आत्मारूपी धर्मी तथा अधर्मी में धर्माधर्म दोनों ही सिद्ध हो चुके । सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति में—

नहि सत्यात्परो धर्म्मो नानृतात्पातकं परम् ।

इस दयानन्द के दिये प्रमाण से आर्यमत वाले आत्मा पापी सिद्ध हो चुके क्योंकि पंचम नियम की कृपा से असत्य भी आर्य आत्मा में ही रहता है उस से आर्यसमाज का पंचम नियम भी असङ्गत है ॥ ५ ॥

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना । यह आर्यसमाज का छठा नियम है । सो भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रकरणमें संसार और जगत् यह दोनों

शब्द पर्यायवाची हैं। सत्यार्थप्रकाशके अष्टम समुल्लास से सिद्ध हो चुका है कि जगत् असत्य जड़ और आनन्द रहित है। यदि दयानन्द के इसलेख को मिथ्या कहें तो दयानन्द को महर्षि कथन करना असंगत होगा। और दयानन्द मिथ्यावादी सिद्ध होगा। यदि उक्त लेख को सत्य कहें तो असत्य जड़, और आनन्द रहित संसार को लिख कर फिर छठे नियम में संसार के उपकार को समाज का मुख्य उद्देश्य कहनेसे यही सिद्ध होगा कि आर्यसमाजके छठे नियम के कर्ता दयानन्द जी असत्य जड़ आनन्द रहित संसार का उपकार करते थे। आर्यसमाजी भी दयानन्दकृत आर्यसमाज के दश नियमों की लकीर के फकीर ही देखे जाते हैं। उससे आर्यसमाजी भी असत्य जड़ आनन्द रहित संसार के उपकार का पुरुषार्थ कर रहे हैं॥

अब विद्वान् लोग फैसला कर लेवें कि आर्य लोग सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर परस्त हैं, अथवा असत्य जड़ और आनन्द रहित संसारपरस्त हैं। अभिप्राय यह है कि षष्ठ नियमस्थ संसार का उपकार तो दयानन्द ही की दयासे सर्वथा सर्वदा अमंगल कारक है। क्योंकि असत्य जड़ और आनन्द रहित संसार के उपकार में अमंगल का भय दूर नहीं हो सकता। षष्ठ नियमस्थ जो आत्मा की उन्नति को समाज का मुख्योद्देश कहा है सो भी उन्मत्त प्रलाप के समान है। क्योंकि दयानन्दकृत ग्रन्थोंकी रीति से आत्मा की उन्नतिका होना सर्वथा असंभव है। देखिये दूसरा सत्यार्थप्रकाश समुल्लास३—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति।

इस सूत्र के भाष्य में दयानन्द ने दुःख को आत्मा का गुण कहा है। उसी सत्यार्थप्रकाश का समुल्लास ९—

गण्यन्ते ते गुणा वा यैर्गणयन्ति ते गुणाः०।

इस के भाष्य में दयानन्द ने अविद्या आदि क्लेशों को भी जीवात्मा का गुण लिखा है। उसीके तीसरे समुल्लाससे सिद्ध हो चुका है कि गुण और गुणी का नित्य समवाय संबन्ध है। दयानन्द के इन लेखों से सिद्ध होता है कि आर्यमत वाले आत्मा में से दुःख और अविद्या आदि क्लेश कभी दूर नहीं हो सकते। उस से आर्य आत्मा मोक्षपद को भी कभी सम्पादन नहीं कर सकता क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के नवमें समुल्लास में दयानन्द ने भी दुःख और क्लेशों से छूट जाने ही का नाम मोक्ष कहा है। परन्तु

आर्य आत्मा में दुःख तथा क्लेशों का नित्य समवाय सम्बन्ध कभी नष्ट हो ही नहीं सकता। उससे भी आर्य आत्मा मुक्तिपदको प्राप्त नहीं हो सकते।

यदि आर्य्यसमाजी कहें कि दुःख और क्लेश आत्मा में आगमापायीगुण हैं। उस से मोक्ष के समय वह नष्ट हो जाते हैं। सो भी ठीक नहीं क्योंकि दुःख क्लेशादि को आगमापायी गुण मानें तो आत्मा से भिन्न उन गुणों का गुणी कोई दूसरा मानना होगा। यदि गुणी न मानें तो गुणत्वहानि दोष की प्राप्ति होगी। यदि दुःख क्लेशादि गुणों का आत्मा ही को गुणी कहें तो आर्य्य आत्मा दुःख और क्लेशों से कभी न छूटेगा। उस से आर्यमत में आत्मा की उन्नति का होना भी सर्वथा असंभव है। षष्ठ नियम में दयानन्द ने शरीर की उन्नति करना कहा है, सो भी ठीक नहीं क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के द्वादशसमुल्लास में दयानन्द ही ने लिखा है कि शरीर दुर्गन्ध से भरा है दुर्गन्ध से भरे शरीर की उन्नति का करना भी असंभव है। यदि कहो कि ब्रह्मचर्य से गुरुकुल में शरीर की उन्नति करायी जाती है सो भी दयानन्दकृत ग्रन्थों से असम्भव है। क्योंकि दूसरा सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३॥

(अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः)

इस के भाष्य में दयानन्द ने उपस्थेन्द्रिय के रोकने को ब्रह्मचर्य कहा है। वही सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३—

(चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता०)

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि ४० वर्ष की उमर के पश्चात् शरीर में जो धातु उत्पन्न होता है वह शरीर के बाहर निकल जाता है इस लेख से उपस्थेन्द्रिय का रोकनारूपी ब्रह्मचर्य भी आर्यमत में सिद्ध नहीं होता उसी सत्यार्थप्रकाश का समुल्लास ३—

(पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि०)

इत्यादि मन्त्रों के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि ब्रह्मचर्य से चार सौ वर्ष आयु को बढ़ावे। दयानन्द के इस लेख को यदि सत्य कहें तो चार सौ वर्ष के पहिले आर्यों के शरीर का मृत्यु न होना चाहिये, दयानन्द भी ब्रह्मचारी कहाता था। परन्तु उस के शरीर को ५० वर्ष की उमर ही में काल ने ग्रस लिया था उस से भी आर्यमत में शरीर की उन्नति का होना असम्भव है॥

षष्ठ नियम में तीसरी सामाजिक उन्नति लिखी है सो भी ठीक नहीं क्योंकि दूसरा सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८ ॥ (उतशूद्रेतरार्थं) इसके भाष्यमें दयानन्द ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णों को आर्य कहा है। दयानन्दकृत संस्कारविधि नामकरण संस्कार से आर्यमत में जन्म ही से वर्णव्यवस्था सिद्ध हो चुकी है। कर्म्म से नहीं परन्तु प्रत्यक्षप्रमाण से देखा जाता है कि आर्यलोग अब मुसलमान भंगी चमार आदि को भी साथ मिलाते जाते हैं। और बहाना बताते हैं कि हम मुसलमान आदि को शुद्ध कर लेते हैं। परन्तु

(चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णंमूत्रपुरीषयोः)

इत्यादि मनुजी के प्रमाण से शरीर शुद्ध नहीं हो सकता। मुसलमान भंगी चमारादि का साथ मिलाने से आर्यसमाज नाम भी संवादी नहीं हो सकता किन्तु आर्य्यसमाज' मुसलमानसमाज, भंगीसमाज, चमारसमाज। इत्यादि नाम आर्यमत में समाज के सिद्ध होने से सामाजिक उन्नति भी आर्यमत में अप्रसिद्ध है। इस से आर्यसमाज का षष्ठ नियम भी असङ्गत है॥६॥

(सब से प्रीतिपूर्वक यथायोग्य धर्मानुसार वर्तना चाहिये) यह आर्य समाज का सप्तम नियम है। सो भी ठीक नहीं क्योंकि प्रीति नाम प्रेम का है प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जाना जाता है कि प्रत्येक मनुष्य का प्रेम अपने आप से है, आप से भिन्न किसी का भी प्रेम नहीं देखा जाता। यद्यपि लोक में भी परस्पर प्रेम देखने में आता है। तथापि वह प्रेम स्वार्थ के लिये है परार्थ के लिये नहीं। जब किसी मनुष्य का सम्बन्धी परदेश में चला जाता है और वह सम्बन्धी कुछ दिन के पश्चात् परदेश से लौट आवे तो उस मनुष्य को संबन्धी के दर्शन से अत्यानन्द होता है। परन्तु थोड़ी देर के पश्चात् वह आनन्द अदर्शन हो जाता है। जब वह मनुष्य का संबन्धी कोई विपरीत कर्म्म करे तो उस से भी अप्रेम हो जाता है। इस से भी आप से भिन्नपदार्थों में प्रेम सिद्ध नहीं होता। राजा के साथ प्रजा का प्रेम भी स्वार्थ के लिये है। जब राजा प्रजापर अन्याय करता है तो राजा के साथ प्रजा का प्रेम नहीं रहता, राजा का प्रेम भी प्रजा के साथ स्वार्थ के लिये है, जब प्रजा में विद्रोह होता है तो राजा का प्रेम भी प्रजा से नहीं रहता, प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जब किसी लाला बाबू के घर में आग लग जाती है तो उस समय लाला बाबू को स्त्री पुत्र धन का प्रेमभी नहीं रहता किन्तु अपने

को बचाने के लिये घर से निकल भागता है। जब किसी खूनी को राजा फांसी देने लगता है तो वह खूनी चाहता है कि मेरा हाथ पैर कट जाय परन्तु फांसी न मिले। उस से ज्ञात होता है कि हस्त आदि अंगों के साथ प्रेम भी स्वार्थके लिये है। रोगी आदमी भी कहता है कि मेरा शरीर अथवा प्राण छूट जाय तो मैं सुखी होऊं। इस अनुभव से शरीर और प्राण के साथ भी स्वार्थ ही के लिये प्रेम है। जब मनुष्य को गाढ़ी नींद आती है उसी समय कुटुम्बी लोगों के साथ भी विक्षेप होता है। उस से कुटुम्ब के साथ भी स्वार्थ के लिये ही प्रेम है जब निर्विकल्प समाधि के आनन्द की जिज्ञासा होती है तो संसार के सब पदार्थों से प्रेम छूट जाता है उस से संसार के सब पदार्थों के साथ भी स्वार्थ के लिये ही प्रेम है।

सिद्धान्त यह है कि नाम रूप और क्रियात्मक असत्य जड़ दुःख स्वरूप दृश्य और अनात्म पदार्थों में सुखका सर्वथा अत्यन्ताभाव है। दृश्य पदार्थों में सुख को मान लेना अविद्या और हठ है किन्तु अपने आप स्वजातीय विजातीय स्वगतभेद रहित सब का द्रष्टा आत्मा ही सुख स्वरूप है। उस से भी अपने आप ही में जीवों का प्रेम है। यह सिद्धान्त वेदान्त के ग्रन्थों में भली भांति से वर्णन किया है। प्रेम और प्रीति दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है इस से अभिप्राय यह सिद्ध हुआ कि अपने से भिन्न पदार्थों के साथ प्रीति स्वार्थ के लिये है परार्थ के लिये नहीं। (किंच) दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में हर एक संप्रदाय के आचार्यों को लाल बुझक्कड़ कसाई गधा डाकू चोर वेश्या भड़ुआ इत्यादि गाली दी है। उन्हीं ग्रन्थों को आर्य स्कूलों में पढ़ाया जाता है कि जिस से आर्य विद्यार्थी गाली देने का इमूतिहान पास कर लेते हैं और प्रत्येक जिले वा ग्राम में गाली देने का हल्ला मचाते फिरते हैं। मार खाते हैं क़ैद होते हैं जुर्माने देते हैं क़तल होते हैं फिर कहते हैं कि (सब से प्रीति पूर्वक वर्त्तना चाहिये) अब निष्पक्ष लोग जान लेवें कि आर्यसमाजियों का वर्ताव सब से प्रीति रखने का है अथवा गाली दे २ कर सब से विरोध डाल बलवा मचाने का है। अभिप्राय यह है कि आर्यसमाज-का सातवां नियम भी असंगत है ॥ ७ ॥

(अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये) यह आर्य समाजका अष्टम नियम है दयानन्द की दया से सो भी ठीक नहीं क्योंकि

आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि विद्या और अविद्या जीव के गुण हैं अथवा स्वरूप । यदि स्वरूप कहो तो ठीक नहीं क्योंकि दूसरा स० स० ४

(शूद्रोब्राह्मणतामेतिब्राह्मणश्चैतिशूद्रताम्)

इस के भाष्य में दयानन्द ने गुणों से वर्णव्यवस्था लिखी है । ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका जगदुत्पत्ति प्रकरण—

(यत्पुरुषं व्यदधुःकतिधा०) (ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहू०)

इत्यादि मन्त्रों के भाष्य में विद्या को गुण कहा है । प्रथम समुल्लासमें अविद्या को भी गुण लिखा है । यदि आर्यसमाजी विद्या अविद्या को जीव का स्वरूप कहें तो उक्त लेख मिथ्या होंगे । यदि कहो कि विद्या और अविद्या जीवके गुण हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि जैसे अन्धकार और प्रकाश एक साथ नहीं रह सकते वैसे ही विद्या और अविद्या एक साथ नहीं रह सकते यदि कहो कि पहिले अविद्या गुण जीव में रहता है फिर विद्या गुण का जीव में दर्शन होता है उससे अविद्या गुण जीव में से नष्ट हो जाता है यह भी असंगत है क्योंकि दूसरा सत्या० समुल्लास ३ (प्राणापाननिमेषोन्मेष०) इस के भाष्य में दयानन्द की प्रतिज्ञा है कि जो जिस का गुण होता है वह उस से जुदा नहीं रहता जैसे दीप सूर्यादि का प्रकाश गुण दीप सूर्यादि से जुदा नहीं रहता । दयानन्द के इस लेख से विद्या और अविद्या दोनों गुण आर्यों से जुदा नहीं हो सकते उससे आर्य लोग अविद्या का नाशकर विद्या की वृद्धि नहीं कर सकते (किंच) दूसरा सत्या० समुल्लास ३ ।

असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय० ।

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि हे परमात्मन् हमको अविद्यान्धकार से छुड़ाकर विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये । यहां पहिले अविद्यान्धकार का छूटना पश्चात् विद्या सूर्य की प्राप्त होना कहा है उस से भी आर्यों में से अविद्या गुण नष्ट नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि पहिले सूर्योदय होता है पश्चात् उसके अन्धकार का अदर्शन होता है किंच आर्यलोग यदि ईश्वर को सर्वाधार सर्वव्यापक मानें तो आर्यमत वाला ईश्वर अविद्याका भी आधार और अविद्या के बाह्याभ्यन्तर व्यापक होगा । उस से आर्यमत वाला ईश्वर भी अविद्या गुण से जुदानहीं हो सकता तो आर्य जीव अविद्या गुण से कहां जुदा होंगे किन्तु कभी नहीं

(किंच) यदि अविद्या को भावरूप मानें तो अविद्यागुण का अभाव न होगा यदि भावका अभाव कहें तो दूसरा सत्या० समुल्लास ८ ॥

नासतोविद्यतेभावो नाभावोविद्यतेसतः ।

इस का दयानन्दकृतभाष्य मिथ्या होगा क्योंकि इसके भाष्यमें दयानन्द नें कहा है कि भावका वर्तमान अभाव नहीं हो सकता । उस से भी आर्य जीवों में से अविद्या का नाश नहीं हो सकता ।

यदि अविद्या को अभाव रूप कहें तो पदार्थ विद्या से विरोध होगा किन्तु जैसे अन्धकार भाव पदार्थ है वैसेही विद्या गुण भी भाव पदार्थ है । दयानन्द की दया से आर्यसमाजी अविद्या का नाश और विद्या गुण की वृद्धि नहीं कर सकते (किंच) दूसरा सत्या० समुल्लास ९—

विद्यांचाऽविद्यांचयस्तद्वेदोभयꣳसह० ।

इस के भाष्य में दयानन्द ने लिखा है कि जिस से पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो वह विद्या और जिस से यथार्थ ज्ञान न हो वह अविद्या है फिर इसके विरुद्ध वही सत्या० समुल्लास ३ ॥

तद्दुष्टं ज्ञानम्,—अदुष्टम् विद्या ।

इत्यादि सूत्रोंके भाष्य में दयानन्द ही ने लिखा है कि अयथार्थ ज्ञानका नाम अविद्या और यथार्थ ज्ञानका नाम विद्या है। वही सत्या० समुल्लास ११॥

भवान्कल्पविकल्पेषुनमुह्यति० ।

इस के भाष्य में दयानन्द ही की प्रतिज्ञा है कि यदि एक बात को सच्ची मानें तो दूसरी झूंठी ऐसे होकर दोनों बातें झूंठी हो जाती हैं । दयानन्द के इन लेखों से आर्यमत में विद्या और अविद्या का सर्वथा अत्यन्ताभाव सिद्ध होता है तो अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि बताने वाला आर्यसमाज का अष्टम नियम कैसे सिद्ध होगा किन्तु कभी नहीं । उस से आर्यसमाज का अष्टम नियम भी असंगत है ॥ ८ ॥

(प्रत्येक को अपनी ही उन्नतिमें सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति से अपनी उन्नति समझनी चाहिये यह आर्यसमाज का नववां नियम है सो भी ठीक नहीं क्योंकि दूसरा सत्या० समुल्लास ११ प्रकरण ब्राह्मसमाज में दयानन्द ने कहा है कि जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त्त देश की उ-

न्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता । दयानन्द के इस लेख से साफ सिद्ध होता है कि दयानन्द अपने आर्यसमाज ही को उन्नति का कारण समझ बैठा था। दूसरी सभायें वा समाजों को उन्नतिका कारण नहीं जानता था। आर्यसमाजी कहते हैं कि भारत वर्ष में विद्याका प्रचार दयानन्द ही ने कराया है । आर्यसमाज भी दयानन्द ने कायम कराई है उस से आर्यसमाज ही उन्नति का कारण है। यह भी ठीक नहीं क्योंकि भारतवर्ष में विद्या का प्रचार सदा से चला आता है, दयानन्द दिग्विजय से जाना जाता है कि दयानन्द ने स्वयं पूर्णानन्द सरस्वती आदि विद्वानों से विद्या का पठन पाठन किया था। परन्तु दयानन्द कृत ग्रन्थों के तीन हजार विरोध तो हम ने निकाले हैं उससे ज्ञात होता है कि दयानन्द स्वयं विद्वान् नहीं था । तो उस का कायम किया आर्यसमाज उन्नति का कारण कैसे होगा । किन्तु कभी नहीं ॥

किंच भारतवर्षमें जब से अंगरेजी राज्य हुआ है तभीसे अंगरेजों ही ने गवर्नमेन्ट कालिजों वा गवर्नमेन्ट स्कूलोंमें संस्कृत विद्या के पठन पाठनकी इजाजत दे रक्खी है। उस से वृटिश गवर्नमेण्ट ही वर्त्तमान समयमें उन्नति का कारण है, आर्यसमाज नहीं । आर्यसमाजी कहते हैं कि दयानन्दने गोरक्षा की अनाथालय बनवाये, ईसाई और मुसलमानों से बचाया है, उस से आर्यसमाज ही उन्नतिका कारण है। यह भी ठीक नहीं क्योंकि हिन्दूमात्र गोरक्षा को सदा से करते कराते आये हैं । सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द ने गोमेधयज्ञ में बैल और बन्ध्या गाय का मारना कहा है, होम कर मांस खाना लिखा है। दयानन्द के पहिले काशीजी में बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु जी ने गौरक्षिणी सभा कायम की थी और गोरक्षा नामक पुस्तक छपवाई थी दयानन्द ने हिन्दुओं को आर्यसमाज में शामिल करने को गोकरुणानिधि किताब छपवाई थी। परन्तु दूसरा सत्या० समुल्लास ॥ ४ ॥

निर्दुग्धाचापिगौः पूज्यानचदुग्धवतीखरी ।

इस के भाष्य में दयानन्द ने गौ को गधी के समान लिखा है। फिर क्या दयानन्द गोरक्षक हो सकता है किन्तु कदापि नहीं। अनाथालयके नाम से आर्यसमाजी लोग हिन्दुओंसे हजारों रुपैये बटोर लेते हैं। आर्यअनाथालय के लड़कों को सत्यार्थप्रकाश पढ़ाया जाता है । वह लड़के बड़े होकर ऋषि मुनि तीर्थ अवतार मूर्तिपूजा आदि को गाली देते फिरते हैं ॥

जब दयानन्दने स्वयं मन्दिर शिवालय वा तीर्थादि के उठा देनेका पुरुषार्थ किया है। तो उस ने ईसाई मुसलमानों से क्या बचाया। ईसाई मुसलमानों के शरीर गो बैल मांस के परमाणुओंसे भरे हैं। आर्यसमाजी उन के साथ खाते पीते हैं उस से दयानन्द ने ईसाई मुसलमान होनेका हिन्दुओंके लिये रेजुलेशन पास कर दिया है। उस से भी आर्यसमाज उन्नति का कारण नहीं। आर्यसमाजी कहते हैं कि दयानन्द ने साधु ब्राह्मणों को जगा दिया है यह भी ठीक नहीं क्योंकि दयानन्द जैसे नादिरशाह महमूदगजनवी, औरंगजेब आदिकों ने भी गुरुगोविन्दसिंह जी और शिवाजी को जगा दिया था। अंगरेजीराज्यमें देखा जाता है कि धनी लोगोंका खजाना लूटने के लिये जब डाकू चोर बढ़ जाते हैं। तब वह धनी लोग खजाने की रक्षा के लिये पुलिस रख लेते हैं। वैसे ही सनातन वेदोक्त हिन्दुधर्म रूपी खजाना है। उस को लूटने के लिये जब बड़े २ डाकू चोर उठे तब साधु ब्राह्मणरूपी पुलिसमैन भी हिन्दुधर्मकी रक्षा के लिये कटिबद्ध होगए। उस से भी आर्यसमाज उन्नति का कारण नहीं। किन्तु दूसरी सभाओं वा समाजों की उन्नति को देख कर आर्यसमाजियोंके कलेजे ईर्ष्यारूपी ज्वाला से दग्ध हो रहे हैं। उस से आर्यसमाज का नववां नियम भी असंगत है॥ ९॥

(सब मनुष्यों को सामजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें) यह आर्यसमाज का दशवां नियम है सो भी ठीक नहीं क्योंकि दूसरा सत्या० समुल्लास४

यद्यत्परवशंकर्म तत्तद्यत्नेनवर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशंतुस्या–त्तत्तत्सेवेतयत्नतः ॥
सर्वंपरवशंदुःखं सर्वमात्मवशंसुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणंसुखदुःखयोः ॥

इत्यादि श्लोकों के भाष्य में दयानन्द ही का लेख है कि–जो २ पराधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्न से त्याग और जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्न के साथ सेवन करे क्योंकि जो २ पराधीनता है वह २ सब दुःख और जो २ स्वाधीनता है वह २ सब सुख है। यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानना चाहिये। यदि दयानन्द के इस लेख को आर्यसमाजी सत्य कहें तो आर्यसमाज का दशवां नियम झूंठा होता है। क्योंकि दशवें

नियम में दयानन्द ने परतन्त्र रहने की भी आज्ञा दी है यदि दशवें नियम को सच्चा कहें तो सत्यार्थप्रकाशोक्त परतन्त्रता और स्वतन्त्रता का लक्षण झूंठा होता है ॥

(किंच) दूसरा सत्या० समुल्लास ७ ॥ (स्वतन्त्रः कर्ता) इस पाणिनि मुनि के सूत्र प्रमाण से सर्वथा परतन्त्रता का लेख आकाश पुष्प के समान निष्फल प्रवृत्ति का कारण सिद्ध हो चुका। इस से आर्यसमाज का दशवां नियम भी असंगत है। आर्यसमाज के दश नियमों को देख कर जो लोग फूले नहीं समाते और कहते हैं कि बाबा जी ने जो आर्यसमाज के दश नियम रचे हैं। उन्हें कोई भी खण्डन नहीं कर सकता। उन विद्याहीनों को चाहिये कि इस दश नियमों के खण्डन के व्याख्यान को देखकर आर्यपण्डितों से दशनियमों का मण्डन करावें कि आर्य्यसमाज के दश नियमों की संख्या कौन से वेद में लिखी है। अथवा कौन से ऋषिकृत ग्रंथ में आर्य्यसमाज के दश नियमों की संख्या है ॥ हां—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिनियमाः।

इस योग सूत्र में पतञ्जलि मुनि जी ने पांच नियमों की संख्या तो अवश्य लिखी है। अथवा हठयोग प्रदीपिका में दश नियमों की संख्या भी लिखी है परन्तु बाबा जी दयानन्दकृत आर्यसमाज के दश नियम सब से विलक्षण हैं। और सारे दरोगहलफियों के मिथ्या हैं। इस से सनातनधर्मवीरों को उचित है कि ऋषिकृत ग्रन्थोक्त पांच वा दश नियमों को मानें और बाबा जी के दश नियमों को तिलाञ्जली दे डालें ॥ किमधिकम् ॥

॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

मदिरापानादि खण्डन ।

व्याख्यान नं० १९

ओ३म् -यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवन्तदुसुप्रस्यतथैवैति ।
दूरंगमंज्योतिषांज्योतिरेकन्तन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु ॥
य० अ० ३४ मं० १ ॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

प्रार्थनात्मक मंगलके पश्चात् इस व्याख्यान में मदिरापानादि का खंडन लिखा जायगा। प्रथम दयानन्दोक्त मदिरापानादि का खण्डन लिखाजाता है (तथाहि) सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में दयानन्द ने रोग दूर करने के लिये मदिरापानादि का करना लिखा है। दूसरे सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में दयानन्द ने राजा को कहा है कि वह रात्रि के समय मदिरापान किया करें। फिर इसके विरुद्ध दूसरे सत्यार्थप्रकाशके ग्यारहवें समुल्लास में दयानन्द का लेख है कि मदिरापान करना वाममार्गियोंका मत है मदिराआदि नशों को छोड़ देना चाहिये। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के ये दोनों लेख झूंठे हैं ॥

वादी कहते हैं कि रोग दूर करने के लिये नशा पीना चाहिये, वादी लोगों की यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि पूर्ण विद्वान् वैद्य लोगों की सम्मति है कि नशा पीनेसे गर्मी होती है। गर्मीके परमाणु शरीर के परमाणुओं में संयुक्त हो जाते हैं। मन बुद्धि चित्त अहंकार स्वरूप चतुष्टय अन्तःकरण में भी नशाके परमाणु संयुक्त होजाते हैं। उससे अन्तःकरण विपरीत होजाता है, बुद्धि नष्ट होजाती है, मन चपल हो जाता है।

सुरापानतेहानिस्मति करिहैकामबिहोश ।
नारीमहतारीउभय भोगै गनै न दोष ॥

इस प्रकारके कुकर्मों को नशा पानो कर लेता है, नशा पानीसे कमजोर हो जाता है। क्योंकि नशे के गर्म परमाणुओं से वीर्य छिन्न भिन्न हो जाता प्रमेहादि रोगों से चिल्लाता है ॥

वादी कहते हैं कि श्रीमद्भागवत में मदिरा को चौदहवां रत्न वर्णन किया है, उससे नशा पीना चाहिये। वादी का यह कथन भी असंगत है क्यों-

कि श्रीमद्भागवत ही से सिद्ध होचुका है कि समुद्र मथने के समय मदिरा रत्न असुरों को दिया गया था। ब्राह्मणादि चार वर्णों को नहीं दिया था। यद्यपि मदिरादि नशा किसी को भी योग्य नहीं, तथापि असुरों के प्रारब्ध में वही था असुर ही उनके अधिकारी थे उससे असुरों ही को वह नशा दिया गया था॥

भाग सर्वत्र फलति हैं, नच पौरुष विद्या सरल।
हरि हर मिलि सागर मथ्यो, हरको मिलियो गरल॥
हर को मिलियो गरल, हरिने लक्ष्मी पाई। षटभग दोऊ संपन्न भाग की कही न जाई॥ कह गिरधर कवि राय कोऊ मिलि खेले फाग। कोऊ हमेशा रोवे आपो अपने भाग॥

वादी कहते हैं कि इस समय जो ब्राह्मणादि वर्ण मदिरा पान करते हैं वह भी प्रारब्ध है। वादी का यह कथन भी ठीक नहीं क्योंकि मन्द तीव्र तीव्रतर भेदसे प्रारब्ध कर्म तीनप्रकार का है। मन्द पुरुषार्थ से नष्ट होजाता है, तीव्र ढीला होजता है, तीव्रतर प्रारब्धकर्म अवश्य फल देता है। परन्तु ब्राह्मणादि उत्तमवर्णोंमें संगदोष से मदिरापानादि चले हैं, संगदोष प्रारब्ध नहीं कहाता। मदिरा जब कलेजे में लग जाती है तो प्राणों को लेजाती है वेदान्तके ग्रंथोंमें आठप्रकार का मद वर्णन किया है। उसमें से एक धनमद है धन मद से मनुष्य के विचार नेत्र फूट जाते हैं लड़ाई झगड़ा करने लग जाता है काम से मारा परस्त्री से समागम करता है, वेश्या लौंडोंका गाना बजाना नाच कराने लग जाता है। क्रोध में आया गदर कराने लग जाता है, लोभ में फंसकर ठगी चोरी डाका कराता है, मोह कूपमें गिर जाता है अहंकार के दरिया में बह जाता है, इत्यादि और भी धन मद से नाना भांति के कुकर्म होते हैं॥

दूसरा राजमद है राजमद से मनुष्य यहां तक विचार नेत्रों से अन्धा होजा है कि जिस से न्यायनीति को छोड़ के अन्याय और अनीति का बिगुल बजाने लग जाता है। विद्वानों से वैर और मूर्ख खुशामदखोरों से प्रेम रखता है। नाच तमाशा कराने में रात्रिदिन व्यतीत करता है, इत्यादि

और भी हजारों पाप कर्म राजमद से होते हैं। तीसरा विद्यामद है विद्या शब्द से यहां अपरा विद्या समझनी चाहिये आत्मविद्या जो कि पराविद्या है, उसको निन्दा करता है, वितण्डा और जल्प करता फिरता है. शास्त्रार्थ करता, जूतमजूता चलाने लग जाता है, गाली गलौज हो पड़ता है, इत्यादि और भी अनेक उपद्रव विद्यामद से होते हैं। चौथा रूपमद है, रूप मद से ध्यान विचार के नेत्र नष्ट हो जाते हैं, हाड़ चाम मैले मूत्रसे भरे चमड़े की चमक दमक को अपना आप जानकर, तेल फुलेल इतर आदि का उसपर मर्दन करने लगजाता है। दर्पण में मुंह देखता है नाना प्रकारका रंग दार साफा बान्धकर प्रसन्न होता है। विलायती कोट विलायती बूट विलायती अंगरखा आदि वस्त्र पहरके वेश्याके सदृश शृङ्गार लगाता है। विद्वानों का संग सत्यशास्त्र का विचार छोड़ देता है इत्यादि और भी दोष रूपमद से मनुष्य में आते हैं॥

पांचवां यौवन मद है, यौवन मद से मनुष्य लड़ाई झगड़े करने लगजाता है, मुकद्दमेबाजी चल पड़ती है, जेल में दुःख भोगना पड़ता है, इत्यादि अनेक उपद्रव यौवन मद से मनुष्य में हो जाते हैं। छठा जातिमद है, जातिमद से नाम का मारा मनुष्य यहां तक पागल हो जाता है कि हाड़ चाम मैले मूत्ररूप शरीर ही को सर्वोत्तम समझ लेता, सुकर्म छोड़ देता है, कुकर्म करने लग जाता है, इत्यादि दोष जातिमद से होते हैं। सातवां कुल मद है कुलमद से भी अनेक प्रकार के क्लेश होते हैं। आठवां मदिरा आदि मद है उस के दोष आगे वर्णन करेंगे॥

अब वेदोक्त ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रमाणों से मदिरामद के दोषों का खण्डन वर्णन किया जाता है। जैसे कि (मनु० अ० ११ श्लो० ५५)

ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमः।
महान्तिपातकान्याहुः संसर्गश्चापितैस्सह॥

इस में मनु जी ने कहा है कि जो ब्रह्मज्ञानी को मार डालता है, जो मदिरा का पीने वाला है, जो सुवर्ण की चोरी का करने वाला है, जो गुरु स्त्री से गमन करने वाला है। ये चारों बड़े महापापी हैं, जो मनुष्य इन चारोंका संग करता है, उस में भी पूर्वोक्त दोष आ जाते हैं। उससे वह मनुष्य उन चारों से भी बड़ा पापी है। यह कुसङ्ग का फल है। कबीर भक्त का वर्णन है कि—

सारी सरो कुसंगकी कैके निकट जो बेर । वो झूले जो चीरिए ताके संग न हेर । ताके संग न कीजिये दूरी जइये भाग । वासन कारो परसिये तब कुछ लागे दाग ॥ पोसत पीवत वारुणी खाय अफीम मजून । भरके गाजा चरस जो सो वैराग्य से शून ॥ सो वैराग्य से शून सुनों अब इसकी सन्धी । हुआ अमल से रहित बुद्धि उसकी भई अन्धी ॥ कह गिरिधर कविराय न दूजा उस का दोसत । भांग तमाखू चरस वारुणी पीत जो पोसत

(शार्ङ्गधर)-बुद्धिंलुम्पतियद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।

इस श्लोकका सिद्धान्त यह है कि मनुष्यको चाहिये कि जो २ द्रव्य बुद्धि को नष्ट करने वाले हैं, उन २ मदिरा आदि द्रव्योंका सेवन करना छोड़देवे ॥

एक नगरमें गुरु चेला दो महात्मा रहा करते थे । चेला मदिरा पीता था, और गुरु जी दूध पीते थे एक रोज गुरू चेलेका शास्त्रार्थ हो पड़ा, चेले का पक्ष मदिरा की प्रशंसा करता था, गुरुका पक्ष मदिराका खण्डन था, गुरु ने कहा कि मदिराका पीना खराब है, चेलेने कहा मदिरा औषधियोंका अर्क है, उस से शराबके पीनेसे कुछ हर्ज नहीं । गुरुने कहा कि अर्क भी बहुत से खराब होते हैं। देखो रात्रिको सुगन्ध युक्त हलुवा खाया जाता है । परन्तु प्रातः काल को उसी हलुवे का अर्क दुर्गन्ध युक्त हो कर निकलता है । रात्रि को गंगाजल पिया जाता है परन्तु प्रातःकाल उसी गंगाजल का अर्क दुर्गन्धयुक्त हो कर निकलता है । वैसे ही जिन द्रव्यों का अर्क शराब है, वह द्रव्य तो खराब नहीं परन्तु उन गुड़ आदि द्रव्योंका अर्क शराब बड़ा खराब है। इस उपदेश को भी चेले ने न माना, पश्चात् गुरु जी ने चेले को निकाल दिया॥

चेला एक बगीचे में गया वहां एक बंगला था, उस के चार दरवाजे थे, बाबा जी बंगलेके भीतर जाने लगे. दरवाजे पर एक लड़का बैठा था, उसने बाबा जी से कहा कि इस बंगले के मालिक का हुक्म है कि—जो मेरा शिर काट कर बंगले के भीतर जावे । इस को सुनकर बाबा जी ने अच्छा न समझा. और दूसरे दरवाजे से बंगले में जाने लगे, वहां कसाई बैठा था, उसने

कहा कि बंगलेके मालिक का हुक्म है कि जो मांस खावे वह बंगले के भीतर जावे। बाबा जी ने इसको भी बुरा जाना फिर तीसरे दरवाजे में से बंगले के भीतर जाने लगे, वहां एक वेश्या बैठी थी, उसने कहा कि बंगलेके मालिक का हुक्म है, कि जो मेरे साथ समागम करे, वह बंगलेके भीतर जावे बाबा जी ने इसको भी अच्छा न समझा। चौथे दरवाजेमें से बंगलेमें जाने लगे, वहां शराब बेंचने वाला बैठा था, उसने कहा कि बंगले के मालिकका हुक्म है कि जो शराब पीवे वह बंगले में आवे, बाबा जी ने शराब को अच्छा जान कर पी लिया उससे बाबा जी की मति मारी गई, तब मांसको भी बाबा जी खा गए, वेश्या से समागम कर लिया, लड़के का शिर काट डाला। जब नशा उतरा तो बाबा जी को निश्चय हो गया कि जैसा खराब शराब है। वैसा खराब कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि जब तक मैंने शराबको नहीं पिया तब तक मुझ से दूसरा कोई भी कुकर्म नहीं हुआ। शराब पीने से न करने योग्य कुकर्म भी मुझसे हो गया बाबा जी ने आकर गुरुसे क्षमा मांगी और कहा कि आपका कथन सब ठीक है॥

एक नगरमें एक शराबी हलवाईसे मलाई लेकर घरको जाता था, रास्तेमें शराबकी झोंकमें गिरपड़ा, और गिरकर वमन करने लगा, मलाईका दौना हाथ से छूट गया, शराबी की डाढ़ी मोछ वमन से भर गई, एक कुत्ता उसके मुख परसे वमन खाने लगा, जब वमन को कुत्ता खा चुका तो शराबी के मुखमें मूतने लगा, शराबी ने समझा कि कोई मेरा मित्र शराब पिला रहा है, फिर मलाईके दौनेको शराबी टटोलने लगा, मलाई तो न मिली, परन्तु पास में मैला पड़ा था, उसीको शराबी खाने लगपड़ा। अब विचारना चाहिये कि शराबी को भक्ष्य अभक्ष्य पदार्थ का जरा भी ज्ञान नहीं रहता॥

एक नगर में बहुत से जंटलमैन बाबू शराब पी रहे थे, शराब पीते २ आधीरात गुजर गई, बाबुओं ने नौकर को बैंगन का अचार लेने भेजा, नौकर भी शराबी था, हलवाई की दूकान पर बैंगन का आचार मांगने लगा, हलवाई सोया हुआ उठ बैठा, जिस बर्तन में बैंगन का आचार था, उसीमें तीन चार चूहे मरे पड़े थे, जैसी चूहे की पूंछ होती है, बैंगन की खूंटी भी वैसी ही होती है, दीवा भी नहीं जलता था, हलवाई ने नौकर को बर्तन में से चूहे निकाल के देदिये। नौकर बैंगन समझ कर ले गया जण्टलमैन बाबू शराब से अन्धे हुए, चूहों को खा गये फिर उलटी करने लगे तीन बाबू तो

मर गये। चार शफाखाने में भेजे गये, इस उदाहरण से भी यही सिद्ध हुआ कि शराबी को भक्ष्य अभक्ष्य का ज्ञान नहीं रहता॥

एक नगर में एक शराबी हलवाई से दूध लेकर पीता था, एक रोज उसने इतना शराब पिया कि पीते २ आधीरात गुजरगई, फिर हलवाई से दूध लेने गया, आधीरात को हलवाई की दुकान बन्द थी, शराबी हलवाई के घर गया, उस समय हलवाई कोठे पर बैठा मूत रहा था, नीचे से शराबी ने समझा कि हलवाई दूध देता है, शराबीने मूत से लोटा भर लिया, और घर को चला आया, स्त्री से कहा कि दूधमें चीनी डालो, स्त्रीने चीनी डाली शराबी पीने लगा तो शराबी को मूतका खारी स्वाद आया, शराबी ने स्त्री को पीटा और कहा कि तूने दूध में निमक डाला है। स्त्री ने कहा कि निराकार की कसम मैंने चीनी डाली है। स्त्री ने थोड़ा सा दूध जबान पर रक्खा तो मूतका स्वाद आया, स्त्री ने शराबी पति से कहा कि अरे दुष्ट तूं कहीं से मूत ले आया है। इस उदाहरण से भी यही सिद्ध हुआ कि शराब पीने से मति मारी जाती है। दूध और मूत का भी ज्ञान नहीं रहता है॥

इंडियनपिनलकोर्ट में भी शराबी को चौवीस घंटे की सजा लिखी है। ईसाईयों की इंजील में भी शराब का पीना मना किया है। मुसलमानों के कुरान में भी शराबी को शैतान से भी बड़ा पलीत वर्णन किया है। मुसलमानोंकी एक किताबसे ज्ञात होता है कि जब मुहम्मद साहिब लड़ाई करते थे तब एककिला फतह नहीं होता था मुहम्मदसाहिब ने एक नजूमीसे किला फते न होनेका कारण पूछा, नजूमी ने कहा कि किलेमें एक फकीर है, वह करामाती है, उसने शराबको कभी नहीं पिया, जो वह शराब पियेतो उस की करामात नष्ट हो जायगी, किला भी फते हो जायगा, मुहम्मदसाहिब ने वैसा ही किया किला फते हो गया। इस उदाहरण से मुसलमानोंके मतमें भी शराब का पीना बुरा है॥

सुरांपीत्वा द्विजोमोहादग्निवर्णां सुरांपिबेत्।
तयासकायेनिर्दग्धेमुच्यतेकिल्बिषात्ततः॥

मनु अ० ११ श्लो० ९१॥

इसमें मनु जी ने कहा है कि जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भूल कर भी शराब को पीवें तो बड़े पापी हो जाते हैं। जब अग्नि में शराबको जलाकर

पी लेवें उस से उन का शरीर भस्म हो जावे तो वह शराब पीनेके पापसे छूटते हैं ॥

सिन्ध देश के एक नगर में एक ब्राह्मण ने शराब पीकर कन्यासे समागम कर लिया, फिर विरादरीसे खारिज किया गया। एक नगर में एक शराबी क्षत्रिय ने भगिनी से समागम कर लिया। वह भी विरादरी से निकाला गया। एक नगर में एक शराबी वैश्य ने माता से भोग कर लिया, फिर विरादरी से निकाला गया। शराब पीना वाममार्गियोंने चलाया है ॥

मद्यंमांसंचमीनंच मुद्रामैथुनमेवच ।
एतेपञ्चमकाराश्च मोक्षदाहियुगेयुगे ॥
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्ववर्णाद्विजातयः ।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्ववर्णाःपृथक्पृथक् ॥
पीत्वापीत्वापुनःपीत्वा यावत्पततिभूतले ।
पुनरुत्थायवैपीत्वा पुनर्जन्मनविद्यते ॥
मातृयोनिंपरित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु ।
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिकाइव ॥

इत्यादि वेद विरुद्ध श्लोक वाममार्गियों के ग्रन्थों में लिखे हैं। वादी कहते हैं कि वेदान्तके ग्रन्थोंमें देवीकी उपासना को माना है वाममार्गी देवी के उपासक हैं, वादी लोगोंका यह कथन सर्वथा अविद्या मूलक है। क्योंकि वाम और दक्षिण भेद से देवी के दो मार्ग हैं। उन में से वाममार्ग का वेदान्त के ग्रन्थों में खण्डन किया है। दक्षिणमार्ग का वेदान्त के ग्रन्थों में मण्डन किया है। वाममार्ग में मदिरा का सेवन है, दक्षिणमार्ग में दुग्धादि का सेवन लिखा है। इस से वाममार्ग वेदविरुद्ध और दक्षिणमार्ग देवी का वेदानुसार है। उस से मद का पीना सर्वथा छोड़ देना ही सर्वोत्तम है। (मनु० अ० ११ श्लो० ९४ ॥

सुरावैमलमन्नानां पाप्माचमलमुच्यते ।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥

इस में मनु जी ने कहा है कि अन्नादिक द्रव्यों का दुर्गन्धयुक्त मैला

निकालकर शराब बनाई जाती है। उस से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को चाहिये कि शराब का पीना सर्वथा छोड़ देवें॥ (मनु० अ० ११ श्लो० ९५ ॥)

गौड़ीपैष्टीच माध्वीच विज्ञेयात्रिविधासुरा।
यथैवैकातथासर्वा नपातव्याद्विजोत्तमैः॥

इस में मनु जी ने कहा है कि मुख्य करके शराब तीन प्रकार का होता है। उन में से एक शराब तो गुड़ का होता है, दूसरा शराब पिसान का बनाया जाता है, तीसरा शराब मधु (महुआ) का बनता है। प्रकरण में ताड़ के वृक्ष से जो रस निकलता है उस का नाम भी मधु हो सकता है। पूर्व में उस का नाम ताड़ी कहा जाता है। जैसा एक प्रकार का शराब बुद्धि बल पराक्रम को नष्ट कर डालता है, वैसे ही दूसरी प्रकार के शराब भी हानिकारक हैं। इस से जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शराब को नहीं पीते वेही सर्वोत्तम द्विज कहे जाते हैं॥ (मनु० अ० ११ श्लो० ९४ ॥)

अज्ञानाद्वारुणींपीत्वा संस्कारेणैवशुद्ध्यति।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमितिस्थितिः॥

इस में मनु जी ने कहा है कि गुड़ वा पिसान किंवा मधु से उपजी शराब को जो भूल से भी पी लेता है वह कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत रक्खे और फिर से यज्ञोपवीतादि संस्कार करे तो शुद्ध होता है॥ (मनु०अ०११ श्लो०१५१॥)

अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेवच।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णाद्विजातयः॥

इस में मनु जी ने वर्णन किया है कि सब शराब के दोषों को न जान कर भी शराब का, अथवा अज्ञान से मल मूत्र का स्पर्श कर लेवें तो यज्ञोपवीतादि पुनः संस्कार करने से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्ण शुद्ध होते हैं॥

भांग माछली सुरापान, जो जो प्राणी खांइ।
तीर्थ व्रत नियम किये, सभी रसातल जांइ॥

इस में कबीर भक्त जी ने वर्णन किया है कि जो मनुष्य मच्छी का मांस खाते हैं, भांग और शराब को पीते हैं, उन के गंगादि तीर्थ करने भी निष्फल प्रवृत्ति के जनक होते हैं। एकादश्यादि व्रत भी उन को कुछ फल नहीं

देते। क्योंकि शराब आदि नशों से बुद्धि बल और पराक्रम का सर्वथा अत्यन्ताभाव हो जाता है ॥

मद्यपाहारीतुगर्दभः।

इस गरुड़ पुराण के श्लोक का सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि जो शराब पीता है वह मरकर गधे के जन्म को प्राप्त होता है। जिस पदार्थ के खाने पीने में जिस मनुष्य का प्रेम हो जाता हैं, वह पदार्थ चाहे हानिकारक भी हो तो भी वह उस की मिथ्या प्रशंसा करने पर उद्यत हो जाता है। विष्ठा और मूत्र महा हानिकारक हैं, जिन के लिये वेद और मनुस्मृति में यहां तक नफरत दर्शाई है कि विष्ठा मूत्र में उपजे हुए अन्न को भी कभी न खावे और खेत में भी विष्ठामूत्र को कभी न डाले क्योंकि खेत में विष्ठा मूत्र डालने से दुर्गन्ध युक्त अन्न पैदा होता है। उस अन्न के खाने से शरीर में नाना भांति के रोग पैदा होते हैं। ऐसे खराब विष्ठा और मूत्र को भी अघोरी लोग खा जाते हैं और विष्ठा मूत्र की प्रशंसा करते हैं॥

सुना जाता है कि किसी बगीचे में एक मदपानी और दूसरा दुग्धपानी दोनों चले जाते थे, रास्ते में टूटा हुआ पात्र पड़ा था, उस के साथ मद पानी का पैर छू गया, दुग्ध पानी ने उसे कहा कि भूल कर भी मद के पात्र के साथ जिस का पैर छू जावे, उसके सात कुल नरक में जाते हैं। इस को सुनकर मदपानी ने उत्तर दिया कि जरूर सात कुल नरक में जा सक्ते हैं। क्योंकि शराब चौदहवां रत्न है। पैर छूने से चौदहवें रत्न की बे अदबी होती है। हां यदि अदब से पेश आवे तो मदपान के पात्र से छूने वाले के सात कुल स्वर्ग में जा सके हैं। इस उदाहरण का भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि जिस बुरे पदार्थ को भी जो सेवन करता है। उस के दोष देखता हुआ भी वह नहीं देखता किन्तु उस पदार्थ को वह प्रशंसा से वर्णन करता है ॥

वादी कहते हैं कि—

वायवायाहिदर्शतेमेसोमाअरङ्कृताः ॥

इत्यादि वेद मन्त्रों में सोमलता का रस पीना लिखा है। सोमलता का रस भी ऋषि मुनि पीते थे वह भी एक प्रकार का शराब होता है। वादी लोगों का यह कथन भी अयुक्त है क्योंकि वैद्य लोगों ने सोम नाम दिव्य औषधी का वर्णन किया है। उसका रस शराब नहीं सिद्ध होता किन्तु सोम का रस एक प्रकार का औषध है उसका रस पीने से शरीर को आ-

रोग्यता का लाभ होता है। शराब के पीने से भारतवर्ष की उन्नति का स-र्वथा प्रध्वंसाभाव होगया है। यहांतक कि धनी शराबी लोगों का धन नष्ट होजाता है गरीब शराबी मजूरी करते हैं, जो पैसा मिलता है उसका श-राब पी लेते हैं। अन्न के बिना बाल बच्चेके समेत भूखे मरने लग जाते हैं माता की नथुनी जोरू का लहँगा पिता की धोती, पगड़ी चुराकर शराब पी लेते हैं। जमीदारों की जमीनें बिकजाती हैं परन्तु शराब नहीं छूटती। कौरव पाण्डवों का शराब पीने से संग्राम हो पड़ा, उस से उन का सर्वस्व नष्ट होगया, रावण कुम्भकर्ण आदिका शराब पीनेसे खाना खराब होगया। जबतक भारतवासी लोग शराब का पीना नहीं छोड़ते और उसी दाम का दूध नहीं पीते तब तक बुद्धि बल वीर्य का सत्यानाश होता चला जायगा। हमारी सम्मति है कि भारतवासी लोगोंको चाहिये कि शराबका पीना सर्वथा छोड़देवें। शराब के पियाले तोड़ताड़ पायखाने में फेंकदेवें बोतल शराब की उठाकर टुकड़े २ करडालें। किन्तु उसी दामका दूध पीना प्रारम्भ करदेवें। दूध पीनेसे शरीरमें आरोग्यता का लाभ होता है। शराब पीनेसे शरीर रोगी होकर बहुत जल्द नष्ट भ्रष्ट होजाता है। यहां तक हमने प्रमाण और युक्ति से मदिरा नशे का खण्डन किया॥

अब अफीम के नशेकी समालोचना की जाती है। वैद्यलोगों का वर्णन है कि अफीम खाने वाले का खून सूख जाता है, चमड़ा सकुड़ जाता है गर-दन नीचे झुकती जाती है, पेट में बदहज़मी रहती है, पायखाना भी ज्यों का त्यों नहीं निकलता, अपान वायु सर्वथा बन्द हो जाता है पेट फूलजाता है, वीर्य जलजाता है आंखें अंधी हो जाती हैं, जहां मूतता है वहां हजारों जीव मरजाते हैं। अफीम के उतरने पर मुखका रंग दूसरा और अफीम खा लेने पर मुखका दूसरा रंग होजाता है। जो धनीलोग अफीमची होजाते हैं उनकी ऐसी लीला है। परन्तु जो गरीब अफीमची हैं, वह अफीम नशा न मिलने से चिल्लाते हुये मरजाते हैं। जिनको अफीम का नशा लगजाता है उन को छोड़ना मुश्किल हो जाता है। अफीम की मारी उस की अक्ल भी नष्ट हो जाती है॥

एक नगर में दो अफीमची बैठे थे अफीम के नशे की झोक में परस्पर गपोड़े हांकने लगे। एक ने कहा कि मेरे नानाजान ने एक ऐसा घोड़े बां-धने को तवेला बनवाया कि हम घोड़े पर असवार होकर उस तवेले के एक शिरे से दूसरे शिरे का सैल करने निकले। पचीस वर्ष चलते २ खतम हो गये

परन्तु दूसरे शिरे तक न पहुंचे । इसको सुनकर दूसरे अफीमची ने कहा कि कि मेरे नानाजान के पास एक इतना लम्बा नेजा था कि जब आवश्यकता होती थी तब अन्तरिक्ष को मोरी करके वृष्टि कर लेते थे । इस को सुनकर पहिले अफीमची ने सवाल किया कि इतना बड़ा लम्बा नेजा कहां रक्खा जाता था । दूसरे अफीमची ने इसका जवाब दिया कि आपके नानाजान ने जो घोड़ोंका तबेला बनाया था, उस तबेलेमें वह नेजा रक्खा रहता था। इस को सुनकर पहिला अफीमची लज्जित हो गया । अभिप्राय यह है कि अफीमची मनुष्य गपोड़े भी बहुत हांकता है ॥

एक नगर में एक अफीमची चांदनी रात में ढालू जमीन पर पेशाब करने लगा पेशाब की धारा अफीमची की ओर आने लगी, वह अफीम के नशे में सर्प जानकर पीछे हटता २ खड्डे में गिर पड़ा, वहां से उठकर पेशाब की धारा में चिल्लाकर लिपट गया और कहने लगा कि ले मूंजी काट खा । इस उदाहरण का सिद्धान्त यह है कि अफीम के नशे में बुद्धि भी विपरीत हो जाती है ॥

एक नगर में एक अफीमची तरकारी में डालने के लिये बाजार से निमक लाया, जब घर के पास आया तो पेशाब करने बैठ गया, पेशाब रुक कर ऊपर को उठा अफीमची को ज्ञान हुआ कि हांडी में से तो तरकारी उफनाती जाती है, निमक तो अफीमची ने पेशाब में डालदिया और आप घर में आया स्त्री ने पूछा कि आप निमक लाये हैं। उसने कहा कि निमक हमने तरकारी में डालदिया है । जब हजरत खाने लगे तो तरकारी बे निमक की भान होने लगी । तब अफीमची को स्मरण हुआ कि निमक तो पेशाब में डाला गया इस उदाहरण का तात्पर्य यह है कि अफीमची पागल के सदृश अज्ञानी हो जाता है ॥

एक नगर में एक अफीमची कथा सुनने जाया करता था, गर्मी के दिन थे, एक दिन सभा में जगह न मिली सभा के बाहर ही अफीमची बैठ गया अफीम के झोंके में मुख भी अफीमची का खुला रहा, अफीमची के मुख में कुत्ता पेशाब कर गया । कथा भी खतम होगई श्रोतागण कहने लगे कि आज कथामें अमृत वर्षा है, अफीमची बोला कि अमृत कुछ खारा सा भान होता है । श्रोता हंसने लगे अफीमची बोला कि मेरी जबान को अमृत तो लगा है परन्तु खारा है श्रोता लोगों ने जान लिया कि इसके मुख में कुत्ता मूत

गया है। इस उदाहरण का सारांश यह है कि अफीम के नशेमें कुत्ते के पेशाव और अमृत का भी यथार्थ ज्ञान नहीं रहता॥

एक नगर में एक अफीमची बैठा था उस के नाकपर मक्खी बैठ गई। मक्खी से अफीमची कहने लगा तू उड़जा उड़जा उड़जा तू उड़ती नहीं तू उड़ती नहीं इसको मक्खीने न सुना और न समझा किन्तु अफीमची के नाकपर ही बैठी रही अफीमची ने छुरी लेकर अपनी नाकही काट डाली और मक्खी को गाली देने लगा कहा कि ले ससुरी तेरे बैठने का अड्डा ही मैंने उड़ा दिया अब कहां बैठेगी। इस उदाहरण का मतलब यह है कि अफीमके नशे में बोली भी विलक्षण हो जाती है। अभिप्राय यह है कि अफीम खाने वालों को चाहिये कि अफीम का खाना छोड़ देवें। उतने दाम का दूध घृत मक्खन मलाई लेकर खालिया करें।

यहां तक स्थाली पुलाकन्याय से अफीम नशे के दोष वर्णन किये गये। अब तमाकू नशेकी समालोचना करी जाती है। बहुत लोग तमाकू पीसकर उसमें चूना मिलाकर चबाते हैं थूकने लग जाते हैं यहांतक कि जमीन और हवा गन्दी हो जाती है बीमारी फैलती है दांत जकड़ जाते हैं और जल्दी टूट जाते हैं जैसे घोड़ा दाना चावता हुआ खुरर खुरर करता है वैसे ही तमाकू चावने वाला करने लग जाता है। उस से तमाकू नशे का खाना भी छोड़ देना चाहिये। उतने दाम का दूध पी लेना चाहिये। बहुत से लोग तमाकू पीसकर सूंघनी बना लेते हैं नाक में सूंघने लग जाते हैं डाढी मोंछ पीले हो जाते हैं सूंघनी के परमाणुओं से शरीर की हड्डीके जोड़ हिलने लग जाते हैं छींकें और जंभाई आने लग जाती हैं शिर पीला हो जाता है उस,से पीसे हुए तमाखू का सूघनी नशा भी छोड़ देना चाहिये। उतने दाम की चीनी खा लेनी चाहिये। बहुत से लोग तमाकू के बीड़ी चुरट बनाते हैं आग लगाकर पीने लग जाते हैं रेल में बैठे फुंकारे लगाते हैं कोई रोके तो गीदड़ के समान खिसियाने लग जाते हैं कपड़े जला लेते हैं डाढी मूछों को आग लग जाती है। एक नगर में एक बाबू मुख में चुरट लेकर खाटपर लेटा हुआ पी रहा था। ऐसा जोर से बाबू ने चुरुट का फुंकारा मारा कि बाबूके डाढी मोछ शिर को आग लग गई लंका के रावणों जैसा मुख भान होने लगा एक आंख भी जलकर कानी हो गई सिद्धान्त यह है कि बीड़ी चुरट में लपेटे तमाकू का पीना भी छोड़ देना चाहिये। उतने दाम का दूध घृत खा लेना चाहिये।

बहुत से लोग नारियल की गुड़गुड़ी में तमाकू डालकर फुंकारे मारने शुरू कर देते हैं।

पत्रंपुष्पंफलंतोयं योमेभक्त्याप्रयच्छति ।

इस गीता के श्लोक का गुड़गुड़ी बाज अर्थ करते हैं कि (पत्रम्) तमाकू के पत्ते लेकर (पुष्पम्) अर्थात् चिलम् में डालने चाहिये (फलम्) नारियल के फल में (तोयम्) जल डालकर आग लगाकर गुड़गुड़ी पीनी चाहिये। ऐसा श्लोक का मिथ्या बनावटी अर्थ लगाकर गुड़ गुड़ी बाज कहते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् की आज्ञा तमाकू पीने की है। गुड़गुड़ीबाजों का यह कथन सर्वथा असंगत है क्योंकि गीताके श्लोक का उक्त अर्थ सर्वथा मिथ्या है किन्तु उक्त पत्र० श्लोक का अर्थ यह है कि श्रीकृष्णजी कहते हैं कि हे अर्जुन जो भक्त पत्र फूल फल जल को समर्पण कर श्रद्धा से मेरा पूजन करते हैं उसी पूजा को प्रसन्न होकर मैं स्वीकार करता हूं। गुड़ गुड़ी पीने से शरीर की हानि होती है। हुक्का पीने वालों का शिर कमजोर हो जाता है नेत्रों की निगाह मारी जाती है छातीमें गोला हो जाता है छाती कमजोर हो जाती है। जैसे हुक्के की नली में धुआं जम जाता है वैसे ही शरीर की नसों में जम जाता है। उस से हुक्केबाज को दमा का रोग हो जाता है। हुक्केबाज का दिल सियाह हो जाता है खांसी शुरू हो जाती है शरीर के अंगों में से मारे गर्म्मी के वीर्य छिन्न भिन्न हो जाता है। बवासीर का रोग हो जाता कलेजा घबराने लग जाता है खून बदल जाता है जबान में स्वाद की ज्ञान शक्ति नष्ट हो जाती है श्वास में दुर्गन्ध भरी रहती है, जगत् की जूंठन खानी पड़ती है इत्यादि हजारों नुकसान हुक्केबाजों में देखे जाते हैं।

सुना जाता है कि एक हुक्केबाज मर गया उस को मौत के फरिश्ते पकड़ कर दोजख में डालने के लिये ले चले रास्तेमें वहिश्त आ गया वहिश्त के दरवाजे के पास मौत के फरिश्ते जरा ठहर गये हुक्केबाज फरिश्तों की नजर बचाकर वहिश्त के भीतर चला गया मौतके फरिश्ते उसको बुलाने लगे परन्तु हुक्केबाज न बोला एक फरिश्ते ने तमाकू डाल हुक्का भर कर हुक्केबाजको दिखाया हुक्केबाज हुक्के के लालच से फिर वहिश्त के बाहर निकल आया मौत के फरिश्तों ने उसे गिरफ़ार कर लिया। इस उदाहरण का सिद्धान्त यह है कि हुक्का वहिश्त में गये हुए हुक्केबाजोंको वहिश्त से भी निकाल देता है। इसलामियां किताबसे जाना जाता है कि जब

हुक्केबाज मर जाते हैं तब यमके पारिषते उनको पकड़ के दोजख में ले जाते हैं वसुधा सिर नीचे और पैर ऊपर करके टांग देते हैं। उन के मल द्वार की चिलम बनाते हैं उस में तमाकू डाल कर ऊपर अंगार धर देते हैं हुक्के बाज के मूत्र द्वार को नली बनाते हैं, हुक्केबाज के मुख में घुसेड़ देते हैं जूते मारने शुरू कर देते हैं और कहते हैं कि बेटा और हुक्का पीओ इस उदाहरण का मतलब यह है कि हुक्केबाज की ईश्वर की ओर से भी बुरी दुर्दशा होती है। उस से भी हुक्के का पीना छोड़ देना चाहिये॥

एक नगर में एक सौ वर्ष की उमर का बूढ़ा हुक्केबाज रहता था, एक रोज वह हुक्का पीने लगा, उस को खांसी ने इतना सताया कि खांसते खांसते उस की छाती से जमा हुआ थूक खकार बहुत निकला यहां तक कि हुक्के बाज का मुख भर गया नली के बाहर थूकने की होश जाती गई किन्तु नली के भीतर ही वह थूक सब का सब फंस गया, नली थूक से भर गई, हुक्केबाज हुक्का छोड़ कर बिस्तरे पर जा बैठा। इतने में एक नौजवान हुक्केबाज तशरीफ ले आया, देखा भाला उस ने कुछ नहीं, झट हुक्के की नली को मुख में पकड़ लिया, और ऐसी जोर से दम खींचा कि जितना नली में थूक खकार फंसा था वह सब का सब हुक्केबाज के मुख में जा फंसा, हुक्केबाज लज्जा सागर में डूब गया। इस उदाहरण का सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि हुक्केबाज के सर्वथा होश हवास मारे जाते हैं थूक खकार को भी हजम कर जाता है। उस से भी हुक्के का पीना छोड़ देना चाहिये। यद्यपि आयुर्वेद में धूम्रपान का करना कहा है तथापि आयुर्वेद का तमाकू के धूम्रपान कराने में अभिप्राय नहीं किन्तु वहां केसर कस्तूरी मुश्क कपूरादि के धूम्रपान कराने ही की आज्ञा है हुक्का पान करने से भी भारतवर्ष का सत्यानाश हो गया है। हुक्के का पीने वाला आलसी यहां तक हो जाता है कि दो २ घंटे हुक्का पीने में नष्ट हो जाते हैं॥

गुरु गोविन्दसिंह जी ने सिक्ख लोगोंको हुक्का पीने से सर्वथा मना कर दिया है। यहां तक कि शेर के सामने जाकर मर जाना अच्छा है। अग्नि में कूद कर मर जाना अच्छा है खूनी हाथी के सामने जाकर मर जाना अच्छा है, परन्तु तमाकू का स्पर्श करना भी सबसे बुरा है। ऐसा हुक्म जारी करने से गुरू गोविंदसिंह जी ने खालसे लोगों के आलस्य का सत्यानाश कर डाला है। इस समय बहुत से पण्डित लोग भी तमाकू पीने का अभ्यास बहुत करते हैं। यहां तक कि पुस्तक भी फूंक जाते हैं। पण्डित और वि-

द्वान् संन्यासियों को चाहिये कि आप भी हुक्केबाजी छोड़ देवें और उपदेश भी ऐसा पदार्थ विद्या से भरा हुआ देवें कि जिसको सुनकर दूसरे लोग भी हुक्का आदि नशों से विरक्त हो जावें ॥

एक नगर में एक पण्डित विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे, पण्डित जी को गुड़ खाने का अभ्यास बहुत था, पण्डित जी के विद्यार्थी पण्डित जीको देखकर घर से पैसा चुराकर गुड़ खाने का अभ्यास करने लगे, विद्यार्थियोंके मातर पिता ने पण्डित जी से कहा कि विद्यार्थियों को गुड़ खाने से रोकिए उनको चोरी की आदत पड़ गई है, इस को सुन कर पण्डित जी ने आप गुड़ खाना छोड़ दिया। दो महीने के पश्चात् विद्यार्थियों को उपदेश देने लगे कि गुड़ के खाने से गर्मी होती है, पेट में कीड़े पड़ जाते हैं, उस से गुड़ का खाना अच्छा नहीं। इस को सुनकर विद्यार्थियों ने सोचा कि पण्डित जी पहिले गुड़ खाते थे दो महीने से नहीं खाते, ऐसा विचार कर विद्यार्थियों ने गुड़ का खाना छोड़ दिया उस से पैसे का चुराना भी विद्यार्थियों से छूट गया। अब विचारना चाहिये कि जब पण्डित जी गुड़ खाते हुए विद्यार्थियों को गुड़ में दोष दिखाते तो विद्यार्थी गुड़ का खाना कभी न छोड़ते। जब पहिले पण्डित जी ने गुड़ का खाना छोड़कर गुड़में दोष दिखाए तो विद्यार्थियों ने भी गुड़ का खाना छोड़ दिया ॥

वैसे ही पण्डित और संन्यासी लोग मदिरादि हुक्के आदि नशों का खाना पीना स्वयं छोड़ देवें तो बेशक उनके उपदेश को सुनकर दूसरे लोग भी नशों का खाना पीना छोड़ देवेंगे। हुक्केबाजों को चाहिये कि उतने दाम का दूध पीवें और दूध देने वाले गाय आदि जीवों की रक्षा करने के लिये तन मन धन से कटिबद्ध हो जावें ॥

हुक्का से हुरमत गई, नियम धर्म गए छूट। दानें बेच तमाकू लेते, गई हिये की फूट ॥ गई हिये की फूट चिलम ले घर घर डोलें। चंगा कोई न कहे, मुखों सब मन्दा बोले ॥ कह गिरिधर कविराय यमों का आया रुक्का। प्राण जायंगे छूट तभी नहिं छूटे हुक्का ॥ हुक्का लुच्चा पीवता, अफीम हरामी खाय। भांग निमरदा पीवता, ऊत पोसती जाय ॥ ऊतपोसती जाय चर्स को पीवनहारा ॥ खुर खुर कर मर जाय महापापी हत्यारा ॥ कह

गिरिधर कविराय इन्हों में कोई न सुच्चा । पीवत जो शराब फिरे गलियों में लुच्चा ॥

इन का अर्थ स्पष्ट भाव से यह है कि नशा कोई अच्छा नहीं । चरसपीने वाले के हाथ पीले हो जाते हैं, दाढ़ी मूंछ फूंके जाते हैं, हृदय कमल भस्म हो जाता है, सुलफा पीने वाले के दांत जबान कपोल पीले होजाते हैं, दाढ़ी मूंछ अधर पीले होजाते कमर सूख जाती है । गांजा पीने वाला खांसता २ पागल होकर सो जाता है तूमा माला चोर ले जाते हैं ॥

एक नगर में एक गंजेड़ी रहता था, गांजा पीने का अभ्यास बहुत रखता था, लड़का उसका उस से भी गांजा पीने में बहादुर था, एकदिन गंजेड़ी ने लड़केसे कहा कि बहुत गांजा पीना अच्छा नहीं, लोकमें निन्दा होतीहै यदि तुझको गांजा पीना भी हो तो इस प्रकारसे पिया कर । जैसे कि जब रात्रि के चार बज जावें तो उस वक्त उठ कर गांजेसे चिलमभर ऊपर आगी धर कर सूर्य उदय तक गांजे का दम लगायाकर । फिर पायखाने जायाकर पायखानेसे बाहर निकलकर फिर गांजा पीना शुरूकर दिया कर और जो इष्ट मित्र आवें तो उनको भी गांजेकी चिलम पिलाया कर । कमसे कम बारह बजे तक गांजाके पीनेमें समय खतम हो जावे, पश्चात् भोजन खाया कर । भोजन खाकर फिर गांजा पीनेका प्रारंभ कर दिया कर शामके पांच बजे तक इष्टमित्रों के साथ खूबही गांजेका दम लगाया कर । फिर पायखानेमें खास कर जाबैठा कर । यदि पायखाना न उतरे तो गांजेकी चिलम भरकर वहां भी गांजे का दम लगाया कर । फिर हाथ मुख धो भोजन खाया कर । पश्चात् उसके रात्रि के दश बजेतक गांजा फूंकाकर, फिर सो जाया कर । यदि सोये सोये गांजा पीने की इच्छा हो तो उस वक्त भी गांजे का दम लगाया कर । जब इस प्रकारसे तू गांजा पीनेका अभ्यास करेगा तो हमारी भी लोक में निन्दा न होगी और तुझको भी फिर गंजेड़ी कोई नहीं कहेगा । लड़के ने वैसे ही किया अब विचारना चाहिये कि ऐसे गंजेड़ियों ही ने भारतवासी लोगों का सत्यानाश कर डाला है ॥

पोस्त पीने वाले का चमड़ा सूख जाता है, आंखों से अन्धा हो जाता है, कमर टूट जाती है, जबान बन्द हो जाती है. मक्खी आती देखकर चिल्लाने लग जाता है, जानता है कि शेर खाने आता है । एक जंगलमें एक पोस्ती पोस्त मलने लगा, और पीने के लिये उसने पोस्तका गिलास भरकर

धर दिया, उसी वक्त झाड़में से एक खरगोश कूदकर भागा, उस की दुलत्ती से पोस्त का भरा हुआ गिलास उलट गया, पोस्त गिर पड़ा। पोस्ती खरगोश को गाली देने लगा और कहा कि बेईमान अब तुझे क्या कहूं जो कुछ कहना होगा तेरे बाप ही को कहेंगे। पोस्ती नगर में आकर खरगोशके बापकी तहक़ीक़ात करने लगा। एक कुम्हार के घर में जा घुसा, उसके गधेके कानों की पोस्ती ने निगरानी करी और समझा कि खरगोश का यही बाप है। पोस्त के नशे की झोंक में गधे के चूतड़ों पर उसने हाथ लगाया, गधे ने ऐसी दुलत्ती ठांकी कि पोस्ती लोट पोट होकर खड्डेमें जा गिरा, मुख विष्ठासे भर गया, खड्डु से निकल कर पोसती ने गधेको कहा कि जिस का लड़का शैतान है, उसका बाप क्यों न बड़ा शैतान होवे। इस उदाहरण का सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि पोस्त का पीना भी हानिकारक है, इसको भी छोड़ देना चाहिये। उतने दाम का दूध पीकर शरीर को आरोग्य रखना चाहिये ॥

भांग पीनेसे मनुष्य भोजन अधिक खा लेता है, पेट फूल जाता है, बात चीत भूल जाती है, आलसी हो जाता है, भांग पीने वाले कहते हैं कि भांग शिव जी की प्रसादी है, भांग पीने वालोंका यह कथन सर्वथा असंगत है। क्योंकि शिव जी ने तो समुद्रसे निकला हलाहल भी पी लिया था। भांग पीने वालोंको भी चाहिये कि शिव जीकी प्रसादी जानकर हालाहल भी पीवें। यदि भांग पानी ऐसा न करेंगे तो शिव जी का उदाहरण देना केवल बहाने बाजी है। यदि सूक्ष्मविचार किया जावे तो वेदोक्त ईश्वराऽवतार शिवजी भांग नहीं पीते थे, किन्तु भांग पीने वालोंने शिव जी का नाम बदनामकर रक्खा है। नशे बाजों को चाहिये कि भांगका नशा पीना भी छोड़ देवें। अर्क धतूरा संखिया जरदा इत्यादि जितने नशे हैं, वह सर्वथा हानिकारक हैं, कोई नशा पीने योग्य नहीं, नशोंसे यहां तक भारतवासियों की मति मारी गई है कि उनको पायखाने में बैठे भी दो २ घंटे तक हुक्के का दम लगाते हम ने देखा है। कहते हैं कि बिना हुक्के के पायखाना ही नहीं उतरता, जब तक भारतवासी नशेबाजी को नहीं छोड़ते तब तक शरीर आत्मा और देश की उन्नति का होना सर्वथा असंभव है। हां आत्मज्ञानरूपी नशे का संपादन करना अवश्य ही मनुष्य का मनुष्यपन है ॥

जिन को आत्मज्ञानस्वरूप नशा आता है उनके दूसरे अनात्म नशे सब छूट जाते हैं आत्मज्ञान स्वरूप नशा कभी नहीं उतरता। (वि० सा०) (अ० ८ श्लोक २६ ॥

क्रीडेयंज्ञानयुक्तस्य जाग्रत्यपिसुषुप्तिवत् ।
चेष्टतेबालवद्ज्ञानी ब्रह्मानन्देनलोपितः ॥

दो०—जाग्रत मांहि सुषुप्ति सी मत वारे की केल ।
करे चेष्टा बाल ज्यों आत्मसुख रह्यो झेल ॥

अभिप्राय यह है कि ज्ञान नशे से आत्मज्ञानी सदा ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है। अनात्मज्ञानियों की दृष्टि में आत्मज्ञानी मतवारे बालकों के सदृश भान होता है। (वि० सा०) अ० ८ श्लो० १६ ॥

भास्करस्योदयेयद्वद्दीपकान्तिस्तिरोहिता ।
ब्रह्मानन्देतथालब्धे सर्वानन्दागतालयम् ॥

दो०—जैसे दिन करके उदय दीपकद्युति दुरिजात ।
तैसे ब्रह्मानन्द में आनन्द सबै विलात ॥

इत्यादि श्लोकों में ज्ञानस्वरूप नशा ही सर्वोत्तम वर्णन किया है। (पञ्चदशी चित्रदीप)—

स्वप्नेन्द्रजालसदृशमचिन्त्यरचनात्मकम् ।
दृष्टनष्टंजगत्पश्यन् कथंतत्रानुरज्यति ॥

इत्यादि श्लोकों में अनात्म नशों को हानिकारक कहा है। मनुष्यको चाहिये कि स्थूल शरीर रूपी भाटी में आत्मज्ञान की उत्कट जिज्ञासारूपी कलश बनावे। पूरक, रेचक, कुम्भक, तीन प्रकार के प्राणायामरूपी नल को करे। पांच यम और पांच नियमरूपी मसाला डाले, श्रवण मनन निदिध्यासनरूपी अग्निको प्रज्वलित करें, ब्रह्मज्ञानरूपी नशे का प्रादुर्भाव करे आत्मा में प्रेमरूपी गिलास को भरकर ब्रह्माकार वृत्तिरूपी मुख से ब्रह्मज्ञानरूपी नशे को पी जावे। उससे निर्विकल्प समाधि में निरावरण स्वप्रकाश ब्रह्मचेतनस्वरूप आनन्द में मग्न हो जावे इस प्रकार के नशे को जबतक मनुष्य सेवन नहीं करता, तबतक मनुष्य जन्मको सफल नहीं कर सकता। पेट तो पशु भी भर लेता है, आत्मज्ञानरूपी नशे के बिना पूर्वोक्त सत्यानाशी नशों के सेवन से सींग पूंछ के बिना मनुष्य भी पशु हो जाता है ॥ किमधिकम् ॥

॥ ओम्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

धृतिक्षमादिधर्म्मव्याख्यान ।

व्याख्यान नं० २०

सर्व हिन्दुधर्मवीरों को प्रकाशित किया जाता है कि इस व्याख्यान में वेदोक्त सनातन हिन्दुधर्म्म का मण्डन होगा । प्रथम दयानन्दोक्त वेदविरुद्ध धर्म का खण्डन किया जाता है ॥ (तथाहि) (१ सत्या० समुल्लास ५) दयानन्द ने सदा धैर्य्य के रखने को धर्म्म कहा है परन्तु उसके विरुद्ध (१ सत्या० समुल्लास ४) उसमें दयानन्द ने कहा है कि जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना । दयानन्द के इस लेख से धैर्य का न रखना सिद्ध हुआ परन्तु दरोगहलफी से दोनों लेख झूंठे हैं ॥१॥ निन्दास्तुति आदि दुःखोंमें सहनशील रहने को दयानन्द ने दूसरा धर्म्म कहा है फिर इसके विरुद्ध आर्याभिविनय में दयानन्द ने कहा है कि हे ईश्वर हमारी निन्दा कोई न करे किन्तु सर्वत्र हमारी कीर्त्ति हो प्रकरणसे कीर्त्ति नाम स्तुतिका है परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दके यह दोनों लेख भी झूंठे हैं ॥ २ ॥

(१ सत्या० समुल्लास ५) दयानन्दने मनके रोकनेको तीसरा धर्म कहा है, फिर उसके विरुद्ध आर्याभिविनय में दयानन्द ने कहा है कि हे ईश्वर आपकी कृपा से मेरा मन दूर २ निकल जाता है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके यह दोनों लेख भी झूंठे हैं॥ ३॥ (१ सत्या० समुल्लास ५) दयानन्द ने चोरी के त्याग को चौथा धर्म कहा है फिर उसके विरुद्ध आर्याभिविनय में ईश्वर को भी चोर और चोरी करानेवाला कहा है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके यह दोनों लेख भी झूंठे हैं । ४ । (सत्या० समुल्लास५) दयानन्द ने रागद्वेषादि के छोड़ देने को पांचवां धर्म कहा है । फिर उसके विरुद्ध (१ सत्या० समुल्लास ३) दयानन्द ने लिखा है कि रागद्वेष आत्मा के गुण हैं और गुणगुणी का नित्य समवाय सम्बन्ध है परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं॥५॥ (१ सत्या समुल्लास ५) दयानन्द ने इन्द्रियों के रोकने को छठवां धर्म कहा है फिर उसके विरुद्ध (सन् १८७५ का सत्या० समु० ५) दयानन्द ने इन्द्रियों का न रोकना भी कहा है ॥ परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं ॥६॥ (१सत्या० समु० ५) दयानन्द ने मादक द्रव्यों से बुद्धि का रोकना भी सातवां धर्म्म कहा है । फिर उसके विरुद्ध (१ सत्या० समुल्लास ६) में राजा को मदि·

रा पीने की आज्ञा दी है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूठे हैं ॥

(१ सत्या० समुल्लास० ५) दयानन्दने जैसा मनमें हो वैसा वाणीसे बोलने को आठवां धर्म्म विद्या कहा फिर उसके विरुद्ध (१ सत्या० समुल्लास ३) दयानन्दने यथार्थ ज्ञान को विद्या कहा है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के दोनों लेख झूठे हैं ॥८॥ (१ सत्या० समुल्लास ५) दयानन्द ने जो पदार्थ जैसा हो वैसाही उसको बोलना उसको नवां सत्य धर्म्म कहा है फिर उस के विरुद्ध (१ सत्या० समुल्लास ३) में दयानन्द ने कहा है कि ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता का काम है इस लेख से ईश्वर त्रिकाल दर्शी नहीं सिद्ध होता किन्तु वेद में ईश्वर त्रिकालदर्शी है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूठे हैं॥ ९ ॥ (१ सत्या० समुल्लास ५) दयानन्द ने क्रोध के त्याग को दशवां धर्म कहा है फिर उस के विरुद्ध (१ सत्या० समुल्लास ३) में बाबा जी ने निराकार ईश्वर से क्रोध मांगा है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के दोनों लेख झूठे हैं ईश्वर की वेद विद्यामें दरोगहलफी नहीं हो सक्ती उससे दयानन्दकृत १० धर्म के लक्षण दरोगहलफी से युक्त झूठे वेद विरुद्ध हैं ॥

अब वेदोक्त सनातनहिन्दुधर्म दर्शाया जाता है (तथाहि धृञ्धारणे) इस धातु से धर्म शब्द सिद्ध होता है ॥

ध्रियतेसुखंप्राप्यतेसेव्यतेवायेनसधर्म्मः ।

इस उणादिकोश की व्युत्पत्ति से परिणाम में जिसका फल सुख लाभ हो उस पदार्थको ही धर्म कहा है साधारण असाधारण भेद से वह धर्म्म दो प्रकार का है जो किसी खास मत के लिये नियत हो चुका हो वह असाधारण धर्म है। जैसे मुसलमानोंके लिये निमाज रोजा करना इत्यादि असाधारण धर्म है हिन्दु ईसाई उसको नहीं मानते ईसाइयों के लिये इंजील ईसामसीह पर ईमान रखना असाधारण धर्म है। हिन्दु मुसलमान उस को नहीं मानते हिन्दुओंके लिये सन्ध्या गायत्री तिलक माला कण्ठी शिखा सूत्र इत्यादि असाधारण धर्म हैं ईसाई मुसलमान इसको नहीं मानते ॥

साधारण धर्म उसको कहते हैं कि जिसके मानने में किसी को भी इ-न्कार नहीं हो सक्ता जैसे कि सत्य बोलने को सब मतवाले मानते हैं इससे सत्य बोलना साधारण धर्म्म है ॥

धर्मंशनैस्संचिनुयाद्वल्मीकमिवपुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि सर्व जीवोंके साथ मनुष्य को प्रेम रखना उचित है जैसे धीरे २ चींटी दानों को बटोरकर बिलको भर लेतीहै वैसेही परलोक में सहायता के लिये मनुष्य को भी उचित है कि धीरे २ धर्म को संपादन करे ॥

नामुत्रहिसहायार्थं पितामाताचतिष्ठतः ।
नपुत्रदारानज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठतिकेवलः ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि परलोक में माता पिता स्त्री पुत्र रिश्तेदार कोई भी सहायता नहीं दे सकते एक धर्म ही परलोक में सहायता देता है ॥

एक नगरमें १० क्रोड़ धनका पति एक धनी रहता था पच्चीस उसके पुत्र थे किसीने उस धनीसे पूछा कि आपके पास धन कितना है और आपके लड़के कितने हैं धनी ने कहा कि मेरे पास पचास हजार धन है और एक पुत्र है पूछने वालेने कहा कि आप झूंठ क्यों बोलते हैं आपके पास दश क्रोड़ धन है और पचीस आपके पुत्र हैं धनी ने कहा कि यह देखो वही खाता इस में लिखा है कि पच्चास हजार धन हमने दान दिया है वही हमारा है दान से हमारे अन्तःकरण में धर्म उपजा है वही एक हमारा पुत्र है प्रश्नकर्त्ता चले गये ॥

मृतंशरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमंक्षितौ ।
विमुखाबान्धवायान्तिधर्मस्तमनुगच्छति ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि जब यह मनुष्य मर जाता है तो कुटुम्बी लोग उसे निकम्मे ढेले के समान वा निकम्मी लकड़ी के समान चिता में डाल कर घर को लौट आते हैं परलोक में कोई साथ नहीं जाता शरीर भी यहां ही भस्म हो जाता है परन्तु परलोक में सहायता के लिये एक धर्म्म ही साथ जाता है ॥

यत्रधर्म्मोह्यधर्म्मेण सत्यंयत्रानृतेनच ।
हन्यतेप्रेक्षमाणानां हतास्तत्रसभासदः ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि जिस सभा में अधर्म से धर्म की हानि और असत्य से सत्य की हानि होती है और सभासद् देखते भी हैं परन्तु हानि को दूर नहीं करते वह सभासद् जीते नहीं किन्तु मर गये हैं ॥

दूषितोऽपिचरेद्धर्मंयत्रतत्राश्रमेरतः ।

समःसर्वेषुभूतेषुनलिङ्गं धर्मकारणम् ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि जिस आश्रम में इच्छा हो उसी में मनुष्य रहे निन्दा होने पर भी धर्म को कभी न छोड़े धर्म का संपादन ही लाभदायक है केवल सम्प्रदायों के चिन्हमात्र धर्म के कारण नहीं हो सकते ॥

फलंकतकवृक्षस्य यद्यप्यंबुप्रसादकम् ।

ननामग्रहणादेव तस्यवारिप्रसीदति ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि एक कतक वृक्ष का निर्मली नामक फल होता है जब वह पीस कर पानी में डाला जावे तो पानी की मलिनता नष्ट हो जाती है केवल उस फल का नाम लेने ही से जल की मलिनता नष्ट नहीं होती वैसे ही धर्म नाम लेने ही से अन्तः करण की मलिनता नष्ट नहीं होती किन्तु धर्म पर चलने ही से अन्तःकरण की मलिनता जाती है ॥

आहारनिद्राभयमैथुनंच, सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।

धर्मोहितेषामधिकोविशेषो,धर्मेणहीनाःपशुभिः समानाः॥

इस में चाणक्य मुनि जी कहते हैं कि भोजन खाने से तृप्ति का होना १ सो जाने से सुखका होना २ मारपीट से डर का होना ३ स्त्री के साथ समागम से सुख की प्राप्ति, यह चार बातें पशु और मनुष्य में एक सदृश देखी जाती हैं धर्म का सम्पादन करना ही मनुष्य में पशु से अधिक है धर्म के सम्पादन विना जैसे गधा कुत्ता सूकरादि पशु पैदा होके मर जाते हैं वैसे ही मनुष्य भी जन्म लेकर मर जाता है। (संगच्छध्वं संवदध्वं०) इत्यादि वेद मन्त्रों में भी धर्म ही का वर्णन किया है ॥

धन के भागी चार हैं धर्म चोर नृप आग ।

कोपें वापै भ्रात त्रय करे जो ज्येष्ठे त्याग ॥

इत्यादि प्रमाणों से धर्म कर्त्तव्यता का मनुष्य को ज्ञान होता है ॥

धृतिःक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकंधर्मलक्षणम् ॥

इस में मनु जी ने साधारण धर्म को दश प्रकार से वर्णन किया है। उन में से प्रथम धृति को साधारण धर्म कहा है शुभमार्ग में चलने के समय विघ्नजाल पड़ने पर भी घबड़ाहट में न गिरने का नाम धृति है इतिहासों से जाना जाता है कि धर्ममार्ग में चलते समय राजा मोरध्वज को अपने पुत्र की बलि को करना पड़ा परन्तु वह घबराहट में नहीं गिरे इसी का नाम धृति धर्म है ॥

योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिःसापार्थसात्विकी ।
धृत्याययाधारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ॥

इस में अर्जुन से श्रीकृष्णपरमात्मा कहते हैं कि जो मनेन्द्रियप्राणों के निरोध से व्यभिचारादि दोषों में न गिरना है उसका नाम सात्विकी धृति धर्म है ॥

ययातुधर्मकामार्थान् धृत्याधारयतेऽर्जुन ! ।
प्रसंगेनफलाकांक्षी धृतिः सापार्थराजसी ॥

इस में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन ! उद्योग से जो धर्म और अर्थ तथा काम वा मोक्ष को निष्कामता से सम्पादन करना और सर्वोत्तम कर्मों के सुख फल प्राप्ति की जिज्ञासा का नाम राजसी धृतिधर्म है ॥

ययास्वप्नंभयंशोकं विषादंमदमेवच ।
नविमुञ्चतिदुर्मेधाधृतिःसापार्थतामसी ॥

इस में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन सोते पड़े रहना भय शोक झगड़ा करना मदिरादि का पान करना इन का त्याग न करना इस को तामसी धृति कहते हैं ॥

(विपदिधैर्यमथोभ्युदयेक्षमा)

इस में भर्तृहरि जी कहते हैं कि विपत्तिपड़ने पर भी धैर्य को धारण करना वही धृति धर्म है ॥

प्रारभ्यतेनखलुविघ्नभयेननीचैः प्रारभ्यविघ्नविहता-विरमन्तिमध्याः ॥ विघ्नैः पुनः पुनरपिप्रतिहन्यमानाः प्रा-रभ्यचोत्तमजनानपरित्यजन्ति ॥

इस में भर्तृहरि जी कहते हैं कि नीच मनुष्य विघ्न जाल के डर से धर्म्म कार्य्य का आरंभ ही नहीं करते। मध्यम मनुष्य विघ्नजाल के डर से धर्म्म कार्य को बीच ही में छोड़ देते हैं उत्तम मनुष्य विघ्न जाल के होने पर भी धर्म्म कार्य को नहीं छोड़ते। इसी का नाम धृति धर्म्म है॥

घृष्टंघृष्टंपुनरपिपुनश्चन्दनंचारुगन्धम्।
छिन्नंछिन्नंपुनरपिपुनश्चेक्षुकाण्डंरसालम्॥
दग्धंदग्धंपुनरपिपुनःकांचनंकान्तवर्णम्।
नहिप्राणान्तेप्रकृतिर्विकृतिर्जायतेसज्जनानाम्॥

इन हठयोगप्रदीपिका के प्रमाणों का सिद्धान्त यह है कि चन्दन की लकड़ी को पाषाण पर जैसे २ अधिक रगड़े वैसेही उस में से सुगन्धि अधिक निकलती है गन्ने को जैसे २ छुरी से अधिक छीलते जावें वैसेही मधुरता अधिक निकलती है सुवर्ण को जैसे २ अग्नि में अधिक जलाते जावें वैसे ही वह अधिक चमक दमक से प्रकाशित होता है। वैसे ही जो धर्मवीर धर्म मार्ग में चलता है वह शिर कट जाने प्राण छूट जाने तक भी विघ्नजाल से न डरकर धर्ममार्गको नहीं छोड़ता उसीका नाम धृति धर्म है।

निन्दन्तुनीतिनिपुणायदिवास्तुवन्तु।
लक्ष्मीःसमाविशतुगच्छतुवायथेष्टम्॥
अद्यैववामरणमस्तुयुगान्तरेवा।
न्याय्यात्पथःप्रविचलन्तिपदंनधीराः॥

इस में भर्तृहरिजी कहते हैं धर्म मार्ग में चलते समय मनुष्य की कोई स्तुति वा कोई निन्दा करे धन का खजाना डाकू चोर लूट लेवें वा धनसे भर जावे चतुर्युग पर्यन्त जीता रहे अथवा अभी मर जावे इतनेपर भी वह धर्मवीर धर्ममार्ग को घबराहट में गिर कर नहीं छोड़ता इसी

का नाम धृति धर्म है । जब हिन्दूलोग इस साधारण धृति धर्म को बाल्यावस्था में ही सन्तानों को सिखला देंगे तो उन बालकों को ब्रह्माण्डभर में से सनातनहिन्दुधर्म से गुमराह करके कोई भी अपने नवीन मिथ्यामत में नहीं ले जा सकेगा ॥ १ ॥

द्वितीय साधारण धर्म का नाम क्षमा है गोबरगणेश होकर बैठ रहने का नाम क्षमा नहीं हो सकता । किन्तु जो कोई मनुष्य किसीके मन को विना अपराध के सतावे वा दुःखावे किंवा क्रोध दिलावे वा मान हानि करे अथवा गाली गुसा निकाले वा मारे पीटे वा किसी से ज़ाल साजी धोखेबाजी दगा कपट फरेब करे परस्त्री से वा लड़के से कुकर्मादि बुरी चेष्टा करे उस के बमूजिब राजाके न्याय से कारागार में कैद करवा देनेका नाम क्षमा है । अपराधी को छोड़ देने का नाम क्षमा न थी न है और न होने को सम्भव है ।

यदि विना दण्डके अपराधी को छोड़ दिया जावे तो वह अधिक अपराध कर विशेष दुर्गति को प्राप्त होता है सिद्धान्त यह है कि न्यायमार्ग में चलने ही का नाम क्षमा है ।

क्षमाहिपरमंज्ञानं क्षमाहिपरमंतपः ।
क्षमाहिपरमंतीर्थं सर्वतीर्थेषुपाण्डव ! ॥

इस का सिद्धान्त यह है कि क्षमाही से यथार्थज्ञान का लाभ होता है क्षमा ही से सर्वोत्तम मोक्षरूपी तप का लाभ होता है क्षमाही गंगादितीर्थों में से सर्वोत्तम तीर्थ है क्योंकि तारने वाले का नाम तीर्थ है क्षमारूपी तीर्थ से मनुष्य क्रोध रूपी नदी को तर जाता है (क्षमागुरुजने) इसमें भर्तृहरिजी कहते हैं कि बड़े लोगों में क्षमा ही सर्वोत्तम है (अभ्युदये क्षमा०) इस में भर्तृहरि जी का सिद्धान्त है कि जब ऐश्वर्य का लाभ हो तब क्षमाका धारण करना ही अच्छा है । महाभारत—

क्षमावतोहिभूतानां जन्मचैवप्रकीर्तितम् ।
आक्रुष्टस्ताडितःक्रुद्धः क्षमतेयोबलीयसः ॥

इसका अभिप्राय यह है कि क्षमायुक्त पुरुष ही मनुष्यों में प्रशंसित होता है क्षमाही से क्रोध का अत्यन्ताभाव होता है ।

क्षमाधर्म्मःक्षमायज्ञः क्षमावेदाःक्षमाश्रुतम् ।
यएतदेवंजानाति ससर्वंक्षन्तुमर्हति ॥

इस का सिद्धान्त यह है कि क्षमाही से वर्णाश्रमके धर्म का लाभ होता है क्षमा ही से यज्ञ शब्द का वाच्य जो कि विष्णुशिवादि देवोंकी मूर्ति का ध्यान पूजन है उस का लाभ होता है (यजदेवपूजासंगतिकरणदानेषु) इस यजधातु ही से प्रकरण में हमने यज्ञ शब्द का अर्थ किया है। क्षमा ही ने वेद शब्द का वाच्य प्रकरण में सत्यासत्य के विचार अथवा आत्मज्ञान का लाभ होता है क्षमा ही से वेदान्त के श्रवण मनन और निदिध्यासन का लाभ होता है जिसको इस प्रकार का विज्ञान होता है वह मनुष्य सर्वत्र क्षमा ही का प्रचार करता है ॥

क्षमाब्रह्मक्षमासत्यं क्षमाभूतंचभाविच ।
क्षमातपःक्षमाशौचं क्षमयेदंधृतंजगत् ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि क्षमा ही से जीव अपने को ब्रह्मस्वरूप निश्चय करता है क्षमा ही से मनुष्य सत्यवादी हो सक्ता है क्षमा ही से योगीजन को भूत भविष्यत् वर्तमान तीनकालों के व्यवहार का ज्ञान हो सक्ता है क्षमा ही से शीतोष्ण का वा क्षुधा पिपासा का अथवा मानापमान का स हारना इस तीन प्रकार के तप का मनुष्य को लाभ होता है क्षमा ही से मनवाणी और शरीर की पवित्रता का लाभ हो सक्ता है इदं वृत्तिगोचर जितना नामरूप और क्रियात्मक प्रपंच है वह क्षमा ही से धारण हो रहा है॥

क्षमावतामयंलोकः परश्चैवक्षमावताम् ।
इहसन्मानमृच्छन्ति परत्रचशुभांगतिम् ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि इस लोक वा परलोक में क्षमायुक्त मनुष्य ही सुशोभित होता है क्षमायुक्त मनुष्य ही का इस लोक में सत्कार होता है और परलोक में क्षमायुक्त मनुष्य सर्वोत्तम गति को प्राप्त होता है ॥

क्षमावशीकृतिर्लोके क्षमयाकिंनसाध्यते ।
क्षमाखड्गःकरेयस्य किंकरिष्यतिदुर्जनः ॥

इसका अभिप्राय यह कि क्षमा ही से स्वर्ग, पाताल, जहान यह तीनों लोक वशमें हो जाते हैं। सब प्रकारसे क्षमा रूपी धर्म ही को संपादन

करना उचित है। जिस मनुष्यको अन्तःकरण के सत्त्वगुण के परिणाम वृत्ति-ज्ञानरूपी हाथ में क्षमा रूपी तलवार का यथावत् संपादन हुआ है वह मनुष्य धर्म रूपी संग्राम में राजा की नीति रूपी ढाल की ओट लेकर सनातन हिन्दुधर्म के विरोधी दुर्जनों को खण्ड २ कर डालता है, वे दुर्जन उसको कुछ भी हानि नहीं कर सकते। देखिये हम ने सनातनहिन्दुधर्म रूपी क्षमा तलवार को अन्तःकरण की वृत्तिज्ञानरूपी हाथ में संपादन किया है और राजा की नीति रूपी ढाल का सहारा लिया है तो हमने हिन्दुधर्म के विरोधियों को उस से खण्ड २ कर डाला है। हिन्दुधर्म के विरोधी हमारी कुछ भी हानि नहीं कर सकते। हमारा रोम तक भी नहीं उखाड़ सके, मुकद्दमे चला कर भी परास्त हो जाते हैं। गवर्नमेण्ट पर झूंठी चुगली खाकर भी अन्त को काला मुंह करवाते हैं। जब बीसकरोड़ हिन्दु सन्तान क्षमा धर्म रूपी तलवार को यथावत् अन्तःकरण की वृत्ति रूपी हाथ में संपादन कर लेंगे, और राजा की नीति ढाल को सजा लेंगे, तो हम सत्य कहते हैं कि ईश्वर रचित ब्रह्माण्ड भर में उन का जय २ कार होगा। हिन्दु धर्मके विरोधी लोप हो जायगे। जब तक सनातन धर्मावलंबी हिन्दु धर्मवीर क्षमा तलवार और नीति ढालको लेकर धर्म संग्राम न करेंगे, तब तक उनकी दुर्गति हो गई और हो जायगी ॥

नरस्याभरणंरूपं रूपस्याभरणंगुणः ।
गुणस्याभरणंज्ञानं ज्ञानस्याभरणंक्षमा ॥

इसका सिद्धान्त यह है कि मनुष्य जन्म का भूषण सुन्दर रूप है, परन्तु सुन्दर रूप प्राप्त होकर भी जब यह मनुष्य किसी गुण को संपादन नहीं करता, तब तक सुन्दरता से भी मूर्ख कहाता है उदाहरण (मूर्खोपाख्यानम्) अर्थात् सुन्दर रूप भी हो परन्तु मूर्ख गुण हीन रहें तो उसका पोल निकल जाता है। जैसे कि एक नगर में हाथियोंके सौदागर आ उतरे, एक सुन्दर रूप वाला नवजवान सुन्दर वस्त्र तथा भूषण पहिरे हुए हाथियोंका दर्शन करने गया। सौदागरों ने उस का रंग रूप चमक दमक देख के उसे दलाल समझ लिया, और उसे हाथियों का दर्शन कराने लगे, तीन सौ के नोट भी उसकी जेब में डाल दिये इस लिये कि यह हाथियों का कोई दोष न वर्णन करदे, दो घण्टा तक वह सुन्दर रूप वाला हाथियोंका दर्शन करता रहा, बाद नगर को जाने लगा, सौदागरोंसे पता पूछने लगा कि हा-

थियों का मलद्वार किस तर्फ होता है। सौदागरों को ज्ञान होगया कियह तो बड़ा मूर्ख है, झट उसकी जेबसें से नोट निकाल लिये और दो चार थप्पड़ लगा कर हाथियों मेंसे निकाल दिया। अब विचारना चाहिये कि जब वह मूर्ख कुछ देर तक मौन साध रखता तो कलई न खुलती और तीनसौ के नोट भी हजम कर लेता। सुन्दर रूप का भी दवाब बना रहता, परन्तु वह मूर्ख मौन न साध सका ढोल की पोल निकल खड़ी हुई, थप्पड़ खाकर बंगले में आबैठा। इसी लिये यह ऋषिमुनियोंने कहा है कि मनुष्य शरीर का भूषण सुन्दररूप और सुन्दररूप का भूषण विद्यादि गुणों का संपादन है॥

गुणैरुत्तमतांयाति नीचैरासनसंस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकःकिंगरुड़ायते ॥१॥
गुणाःसर्वत्रपूज्यन्ते नमहत्योऽपिसंपदः।
पूर्णेन्दुःकिंतथावन्द्यो निष्कलंकोयथाकृशः ॥२॥
गुणोभूषयतेरूपं शीलंभूषयतेकुलम्।
सिद्धिर्भूषयतेविद्यां भोगोभूषयतेधनम् ॥३॥

इत्यादि—प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अन्धे, काने, गंजे, काले रूपवाले, नीचकुल वाले, वकालत, बारिष्टरी, सिविलसर्विसके इम्तिहान देकर राजनीति की विद्या को संपादन कर न्यायालय में ऊंचे तख्त पर सुशोभित हो रहे हैं। और विद्याहीन मूर्खधनी सेठ वस्त्र भूषण पहिरे हुए सुन्दररूप वाले कमल नयन चन्द्रमुख उनके नीचे हाथ बान्धे खड़े हो रहे हैं। जनाब २ गरीबपरवर साहिब २ मुख से वर्णन कर रहे हैं। परन्तु वह काने गंजे काले रूपवाले साहिब उनकी ओर निगाह भी नहीं करते। हजारों रुपये देने पर भी वह उनके सुन्दररूप वस्त्र भूषण की परवाह नहीं रखते। कहते हैं कि वेल टुम कोर्ट के बाहर जाओ। अब सोचो कि विना विद्यादि गुणोंके सुन्दररूप की भी ऐसी २ दुर्दशा होती प्रत्यक्ष देखी है। यदि वस्तुतः विचार किया जावे तो सुन्दररूप दुर्गन्ध युक्त खून ही की चमक है। परन्तु विषयलम्पट सुन्दररूप पर ही मर जाते हैं। तन मन धन को बरबाद कर डालते हैं। अन्त को बुद्धिबल पराक्रम का सत्यानाशकर दुःखी हो मर जाते हैं। उससे विद्यादि गुणों से हीन केवल सुन्दररूप का लाभ मनुष्यको सुखदायक नहीं हो सक्ता॥

सुना जाता है कि लार्डनार्थब्रुक एक बार भारतवर्ष की निगरानी करने के लिये भ्रमण करने लगे एक नगर के बाहर आ उतरे, उस नगर में एक करोड़पति धनी अक्षरशत्रु था सुन्दररूप वाला था, हजारों रुपयों के गहने पहरता था हजारों रुपयों के शाल दुशाले ओढ़ता था, दो घोड़े की फिटन गाड़ीपर प्रतिदिन भ्रमण करता था, नौकर सुवर्ण के चौर से उसके मुखपरसे मक्खियां उड़ाते थे. चुरट बीड़ी को बार २ पीता था बरांडीकी बोतलें उड़ाता रंडियों लौंडोंका हर वक्त नाच देखता था। हजारों नौकर उसको हाथ बान्धे सेठ सेठ पुकारते थे लाखों रुपयोंके बंगले बगीचों में आराम करता था। हार-मोनियम बाजा खुद बजाता और गाता था फोनोग्राफ का गाना बजाना नाचना देखता था। परन्तु विद्यादिगुणों का उस में सर्वथा अत्यन्ताभाव था, यहांतक कि काला अक्षर भी उस को भैंस बराबर दिखाई देता था। वह सेठ फिटन गाड़ी पर असवार होकर गवरनर जनरल के साथ मुलाकात करने को गया, और गाड़ी से उतर लाटसाहिबके तंबू में घुसने लगा, इतने में लाट साहिबके चपरासीने सेठ जीको झट रोकदिया सेठ जी एक पत्थर पर चूतड़ धरकर बैठ गये, एक घंटा गुजर गया, चपरासी से प्रार्थनाकी और कहा कि जरा जाइये लाटसाहिब को इत्तिला दीजिये कि सेठ सुन्दरमल्ल जी मुलाकातके लिये आए हैं। चपरासीने लाटसाहिब को इत्तिला दी लाटसाहिब ने कहा भेजा कि एक घंटा हमें काम है पश्चात्‌एक घंटा के मुलाकात होगा सेठ सुन्दरमल्ल जी और भी एक घंटा पत्थर पर बैठे तकलीफ उठाते रहे। एक घंटे के पश्चात् साहिब ने सेठ जी को अन्दर बुलाया गुड्मार्निङ् तक सेठ सुन्दरमल जी से न किया चपरासी ने सेठ जी को एक टूटी फूटी पुरानी कुर्सी पर बिठा दिया इतनी इज्जत भी साहिब ने सेठ जी की इस लिये करी कि सेठ जी करोड़पति थे। इन्कमटैक्स का उन से लाभ होता था, इतनेमें लाटसाहिब की मुलाकात के लिये एक इस प्रकारके बाबू आये कि जो महा कंगाल फटी पतलून फटा कोट फटा जूता फटा शिर पर टोप रक्खा था, पैदल ही चले आते हैं, एक आंख भी कानी है, शीतलाके दागों से मुख भी ठीक नहीं, जैसे तवेकी स्याही होती है, वैसे मुख भी काला है। परन्तु बाबू जी ने एम० ए० बी० ए० पास किये हैं। सिविलसर्विस का इम्तिहान भी दिया है। उस बाबू को देखते ही लाटसाहिब के चपरासी हाथ जोड़ उठ खड़े हुए। और सलाम किया कहा कि हजूर हुक्म, बाबू जी

ने चपरासी को रुक्का देकर लाटसाहिब के पास भेजा, रुक्का देखते ही साहिब ने काम छोड़ दिया, बाबू जी को तम्बू के भीतर बुला लिया। उठकर टोपी उतार कर बाबू जी के साथ साहिब ने गुड्मानिङ् किया। और फर्स्ट क्लास कुर्सी पर बिठा लिया। इस लीला को देख कर सुन्दरमल्ल सुन्दर रूप वाले सेठ जी के कलेजे को आग लग उठी, मन में सोचने लगे कि मैं करोड़पति धनी मुझे साहिब ने टूटी फूटी कुर्सी दी, और राजी खुशी भी नहीं पूंछी इस काले बाबू की नवजवानकला रूप रंग भी काला है, साहिब ने इस को कुर्सी भी फर्स्टक्लास की दी, उठकर बड़ी इज्जतसे गुड्मानिङ् की, सेठजी लज्जित हुए। इधर से लाटसाहिब और बाबू की अंगरेज़ीभाषामें यहां तक बातचीत हुई कि साहिब अट्टहास से कुर्सी पर से लोट पोट होते जावें दो घंटे इसी भांति गुजर गए, सेठ सुन्दरमल्ल जी देख २ शर्म्मसागरमें गोते खाते जावें। बाबू जी ने लाटसाहिब को नौकरी की दरखास्त दी, साहिबने झट लिख दिया कि अमुक जिले में डिप्टी कमिश्नरसाहिब पिन्शन पाने वाले हैं वह जगह आपको मिलेगी, इसको सुनते ही बाबू जी रवाना हो गये। और सेठ सुन्दरमल्ल जी फिटन गाड़ी पर सवार हो कर अपने बंगले में जा बैठे॥

अब विचारना चाहिये कि ऋषि मुनियोंने जो कहा है कि विद्यादि गुणों के बिना सुन्दर रूप भी किसी कामका नहीं इस बातका फैसला लाला सुन्दरमल्ल सेठ जी के उदाहरण से हो चुका॥

न हायनैर्नपलितै-र्नवित्तेननबन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरेधर्म्मं योऽनूचानःसनोमहान्॥

इस में मनु जी भी कहते हैं कि अवस्थासे मनुष्य बड़ा नहीं हो सकता श्वेतकेश हो जानेसे भी मनुष्य बड़ा नहीं हो सकता, धन और कुटुम्ब से भी मनुष्य बड़ा नहीं हो सकता। किन्तु विद्वानों की प्रतिज्ञा हो चुकी है कि विद्या आदि गुणों को सम्पादन करने ही से मनुष्य बड़ा हो सकता है। इस से भी यही सिद्ध हुआ कि सुन्दर रूपादि का भूषण विद्यादि गुणहैं। परन्तु पूर्वोक्त श्लोक के कर्त्ता आगे यों भी कहते हैं कि विद्यादि गुणों का भूषण आत्मज्ञान है। जब तक यह मनुष्य आत्मज्ञान को संपादन नहीं करता, तब तक विद्यादि गुणों का संपादन करना भी किसी काम का नहीं क्योंकि राजनीत्यादि विद्या के संपादन से मनुष्य को धनादि पदार्थ तो

मिल जाते हैं। उससे वह मनुष्य नाना भान्ति के भोजन खाकर पेट भी भर लेता है। परन्तु पेट मात्र तो कूकर सूकरादि भी भर लेते हैं। जब तक आत्मज्ञान का संपादन नहीं होता है तब तक जैसे कूकर सूकरादि पेट भरते मर-जाते हैं वैसे ही विद्यादि गुणों से लाला बाबू राजा महाराजा भी जो कि केवल पेट को भर लेते हैं। वस्त्र भूषण पहिर लेते हैं, रूप रंग के नशे में अन्धे हो जाते हैं, वह भी मर जाते हैं। यदि वह आत्मज्ञान को संपादन कर लेते तो उन का जन्म सफल हो जाता। किसी कविने वर्णन किया है कि —

रागी मन्दभागी बोधशून्य अभी दागी जाके हृदय आग लागी प्रचण्ड भीम काम की। खुद से विमुख विषय जन्य चाहें सुख बोवें दुःखन के रूख अन्तर तृष्णा है बाम की। कपटी कठोर चोर पातकी निघोर घोर राखें सदा लोर हाड़ चाम दाम ताम की। लंपट विषयी नारी चितें नई नई वाकी बुद्धि मारी गई सुध नाहीं चिद्राम की ॥ १ ॥ नर नारी वृद्ध बार ग्रामक नगर वासी ऊंच नीच यावत पद कथके अलापते। स्वरचित अन्य रचित वार्तिक श्लोक छन्द शब्द साखी सोरठा चौपाई सुनावते। संस्कृत प्राकृत अरबी अंगरेजी पश्तो पारसी मरहटी तिलंगी बंगला सो गावते। वर्णन को जोड़ जोड़ कथनी तो बहुत करें नवरसमें रस जाको वाको नहीं पावते ॥२॥ कोई मूड़ को मुण्डावे कोऊ केश को बढ़ावे कोऊ मेंढर कटावे कोऊ कान को छिदावही ॥ कोऊ श्वेत अंबर नीलांबर पीतंबर कषाय पट करे कोऊ कुलहा पैरावही ॥ देवदत्त यज्ञदत्त चैत्र मैत्र आदि नाम पांच भौतिक शरीर के कहावही ॥ मिथ्या-उरझाने मूढ़ आप को न लखें गूढ़ बिना आत्म ज्ञान भवभ्रम न मिटावही ॥ ३ ॥ विप्र आदि वर्ण जेते संन्यास लौं आश्रम लेते तूषन को कूटें सो तो नीर को विलोवते ॥ बूझबे के योग्य सो तो बूझैं नहीं महा सोग भ्रान्ति भूत लाग्यों रोग शूल दृष्टि जोवते ॥ कौनैं नाम कौनैं धाम कौनैं मढ़ी कौनैं मठ बूझैं खट पट चीर कर्दम में धोवते ॥ देखबे को नर पर हैं तो महा खर त्रिगुतन्तुन सों बान्धे मूढ़ जाग्रत ही सोवते ॥४॥ बड़े चित्त के उदार राज नीति में खबरदार समय अनुसार वाणी बोलत लपेट की ॥ करें पावक अहार फोरैं नखसों पहार जल की बहावें धार जगमांहि बड़े चेटकी ॥ योग कला में प्रपक्ष जामें कछू नांहीं शक्य सिद्ध वर हक्क जान लेते पर पेट की ॥ ऐसे तो प्रतापी आत्मज्ञान बिना पापी वाकी यावत है कथा सो तो सर्व अलसेट की ॥ ५ ॥

एक पहाड़ की गुफा में एक परमहंस आत्मज्ञानी रहते थे, एक राजा भी उन के पास आता था, ज्ञान चर्चा करके चला जाता था, एक दिन परमहंस जी भ्रमण करते २ राजा के नगर में आये, राजा के नौकरोंने राजा को परमहंस जी के आने की इत्तिला दी, राजा ने परमहंस जी का सत्कार करने के लिये एक सुवर्ण का पलग बिछवाया उस पर जरीदार बिछौना बिछवाया। जरीदार गद्दी बिछवाई जरीदार तकिया लगवाया, इतर गुलाब केवड़ा इत्यादि सुगन्ध युक्त द्रव्यों का पलंग पर छिटका करवा दिया और हाथजोड़ परमहंसजीसे राजाने प्रार्थनाकी कि इस पलंग पर आप विराजिये। परमहंसजी ने कहा कि ऐसे पलंग पर विराजने से बुद्धि मारी जाती है। राजा ने कहा कि महाराज देखिये ऐसे २ पलंगों पर हमारे अहिलकार विराजते हैं। उनकी बुद्धियों की यहां तक उन्नति हुई है कि वह ५ मिनट में ब्रह्माण्ड भर का हिसाब बतलादेते हैं। परमहंसजी ने कहा कि ऐसे अहिलकारों को जरा बुलाइये तो सही राजाने ५० अहिलकार तलब कर लिये और कहा कि परमहंसजी से कुछ बातचीत कीजिये। अहिलकार परमहंसजी के सामने उपस्थित हुए, उनसे परमहंसजी ने पूछा कि आप क्या चीज हैं कहां से आप आये और कहां जाओगे। अहिलकारों ने कहा कि इस बात की हमें कुछ भी खबर नहीं परमहंसजी ने राजा से कहा कि देखिये हमने अहिलकारों से कोई बड़ी बात नहीं पूछी, किन्तु इनको अपने स्वरूप का पता पूछा है, परन्तु वह लाल बुझक्कड़ कुछ भी नहीं बतला सके। राजा ने अहिलकारों से कहा कि आप लोगों ने बड़े २ इम्तिहान दिये हैं। परमहंसजी के सवालका जवाब आप किसलिये नहीं देते। अहिलकारोंने कहा कि हमने दूसरे २ इम्तिहान दिये हैं परन्तु जो बात परमहंसजी ने पूछी है, इसका आजकल हमने इमतिहान नहीं दिया, तो उस बात का उत्तर कैसे देवें। परमहंसजी ने राजासे कहा कि आप अब फैसला कर लीजिये कि जिन को अपने आपका ज्ञान नहीं तो आपकी रियासतके काम करने का इनको कैसे ठीक २ ज्ञान होगा। राजा ने निश्चयकर लिया कि जो आत्मज्ञानसे हीन मनुष्य हैं, और नीत्यादि विद्याका विषय भोगनेके लिये इम्तिहान देतेहैं। उनकी बुद्धि हकीकत में मारी जाती है। मनुष्य जन्म उनका व्यर्थ नष्ट हो जाता है। खाली पशु सदृश पेट भरते २ ही एक रोज मरजाते हैं। अपना भला कुछ नहीं करते। प्रकरण यह है कि ऋषियोंका यह सिद्धान्त है कि जब

तक यह मनुष्य आत्मज्ञान को संपादन नहीं करता तबतक संसार संबन्धी विद्यादि गुणों का संपादन करना भी सर्वथा निष्फल प्रवृत्तिका जनक है ॥

सम्यक ज्ञान भयो जिनके उर भ्रांति गई तिनकी सगरी।
आश्रम वर्णकी धूलि उड़ी पुनि फूट गई मोहकी गगरी ॥
प्रवृत्ति निवृत्ति उभय उखरो सबहानि भई कुलहा नगरी।
इक आत्मदेव सर्वत्र पिखेवत शैलगुफा नभरी डगरी ॥

इत्यादि प्रमाण युक्त और उदाहरणों का सिद्धान्त यह है कि आत्म ज्ञान के बिना व्यवहार संबन्धी विद्या भी किसी काम की नहीं। परन्तु ऋषि मुनि कहते हैं कि जब तक यह मनुष्य क्षमारूपी धर्म को सम्पादन नहीं करता तब तक आत्मज्ञान भी मुक्तिरूपी फलको सम्पादन नहीं करा सकता। उससे आत्मज्ञान का भूषण क्षमारूपी धर्म है। क्योंकि न्याय के मार्गमें चलने का नाम हम क्षमाधर्म सिद्ध कर चुके हैं आत्मज्ञानी होकर भी यदि न्यायमार्ग को छोड़ अन्यायपथ में चलेगा तो उसे भी आत्मसुख का लाभ न होगा।

इसी प्रकार का एक आत्मज्ञानी एक नगर में चला गया एक मकानमें उतरा एक धनी उस का दर्शन करने आया और आत्मज्ञानी से कहा कि हमको भी आत्मज्ञानका उपदेश दीजिये। आत्मज्ञानी ने कहा कि जिस मनुष्य पर आप की बड़ी श्रद्धा होवे उस को आप एक जूता पहिले लगाइये। फिर हम आपको आत्मज्ञान का उपदेश देंगे। धनीने कहा कि महाराज सब से बड़ी श्रद्धा मेरी आप ही के ऊपर है। आज्ञा दीजिए तो एक जूता क्या हम हजारों जूते लगवा सकते हैं। इसको सुन वह आत्मज्ञानी चला गया अभिप्राय यह है कि जिस मनुष्य को संशय विपर्यय के रहित दृढ यथार्थ ज्ञान हो जाता है। वह न्यायमार्ग में चलना रूपी क्षमा धर्मको अवश्य संपादन करता है। जो क्षमा धर्मरूपी न्यायमार्ग को छोड़ देता है वह नाम का आत्मज्ञानी जाना जाता है। बिना क्षमा धर्म के ऐसा दुकानदार आत्मज्ञानी भी जहां तहां दुर्दशा कराता है। सिद्धान्त यह है कि आत्म ज्ञान का भूषण क्षमाधर्म है। जब हिन्दु लोग बाल्यावस्था में अपने सन्तानों को क्षमारूपी द्वितीय धर्म का भी संपादन कराने लग जावेंगे तो ब्रह्माण्ड भर में हिन्दुबालकों को बहकाने में कोई भी समर्थ न होगा।

तीसरा साधारण धर्म मनु जी ने दमको वर्णन किया है । प्रकरण में दम नाम मनके रोकने का है । यद्यपि वेदान्त सिद्धान्त में इन्द्रियों के निरोध का नाम भी दम है तथापि मनुजी ने मन को भी इन्द्रिय कहा है । गौतमसूत्रोंमें भी मनको इन्द्रिय कहा है वाचस्पति मिश्र आदिकों ने भी मनको इन्द्रिय माना है । उस से यहां भी मननिरोध का दम नाम वर्णन करना दोष नहीं ।

देहाभिमानेगलिते विज्ञातेपरमात्मनि ।
यत्रयत्रमनोयाति तत्रतत्रसमाधयः ॥

इत्यादि श्लोकों का तो यही सिद्धान्त है कि ज्ञानी का मन सदा एकाग्र रहता है । क्योंकि जिस २ पदार्थ के आकार ज्ञानी का मन होता है उस २ पदार्थावच्छिन्न ब्रह्मचेतनाश्रित आवरण ही को नष्ट करता है । पदार्थ विद्या से सिद्ध हो चुका है कि जिस पदार्थावच्छिन्न चेतन के आश्रित आवरण दूर होता है वहां ब्रह्मचेतन ही में मन की गोचरता है । किसी कवि ने कहा है कि—

न्यारे २ देश न्यारे २ उपदेश मन्त्र न्यारे २ इष्टदेव न्यारीही उपासना न्यारे २ चिन्ह न्यारी धर्म मर्यादा सब न्यारे लोक न्यारी २ मोक्षवासना । न्यारे २ खान पान न्यारे २ पहिरान न्यारे २ वेद न्यारी २ कर्मभावना । जेते नाना मत सभी तत्त्व सो अतत्त्वधीर कौन का निषेध करे काको करे थापना ॥ १ ॥ मतन के भेद कर भेद नहीं आत्मा में मत नाना दीखें भो तो बुद्धिकी कल्पना । बुद्धि आप कल्पित है बुद्धि कल्पे मत जो जो कल्पित अवस्तु केवल वाणी की जल्पना ॥ बुद्धि जहां नाहीं वहां मतों को न रहे झांहीं सुषुप्ति में देखो मत पर का न अपना । याही तें वेदान्ती कहैं आत्मा अद्वितीय ब्रह्म मत पुनः मति दोऊ मिथ्या भ्रम स्वप्ना ॥ २ ॥

पीरन की पीरी फकीरी फकीरन की मीरनकी मीरी जहां तनिक न ठैरात है । योगकला योगी की भोगी की भोग कला क्रोधी को क्रोध जानें बह्यो चल्यो जात है । सिद्धन की सिद्धाई कवियन की कविताई पण्डितनकी पण्डिताई जहां रंच ना दिखात है । ऐसो जो असङ्ग वामें काहू को न चढ़े रङ्ग सो स्वरूप मेरो मन वाक्य का पलात है ॥ ३ ॥ ब्रह्माविष्णु रुद्र इन्द्र चन्द्रमा कुबेर यम मारुत गणेश जहां भानु न भवानी है॥ भूमि बुध बृहस्पति शुक्र शनि राहु केतु मध्यमा पश्यन्ती परा वैखरी न बानी है । मतवादी

भेष धारी दर्शन पषण्ड लिङ्ग गुरू शिष्य पक्षपात सभी जहां फानी है। कवि कोविद वाचाल जामें काहू की न गले दाल सो स्वरूप मेरो जहां ज्ञानी न अज्ञानी है ॥ ४ ॥ ज्ञानके प्रकाश कर नाश भए तीन ताप कौन जपे ईश जाप भूली सुध तनकी। जान्यो अविनाशी हृदय समता प्रकाशी सर्व चंचलता नाशी जो बाह्य इन्द्रिय गनकी। भई वृत्ति ब्रह्माकार छूटी वासना की छार कुछ रही न संभार स्वलोक पुत्र धनकी। वृत्ति ज्ञानीकी जो भाषीं जामें साक्ष्य हूं न साखी अब कहत हूं साख कछू अज्ञन के मन की ॥ ५ ॥ मनके अधीन सिद्ध साधक पण्डित तापसी मन के अधीन योगी यती ब्रह्मचारी हैं ॥ मन के अधीन शूर कायर बली निर्बल मन के अधीन राव रंक नर नारी हैं ॥ मनके अधीन पीर मीर खान सुलतान मनके अधीन जो पैगंबर चार यारी हैं। और सर्व सृष्टि एक मनके अधीन देखी ज्ञानी की जो गति सो तो मनसे न्यारी है ॥ ६ ॥ मन कसमाती बाह्य सुख धावे दिन राती विषय जन्य सुख सदा चहे वदचालिया। घरे सों न घिरे रंच फेरे सों न फिरत है जैसे वे मुहार शत्रु चण्ड बकरा लिया। ऐसो है शिकारी सर्व घाट को खिलारी कोऊ बड़ो है पकारी नट खट तेरा तालिया। जाको वांका है ध्यान ताको तो ये माने आन औरन भ्रमावे सूत्रधार इन्द्र जालिया ॥ ७ ॥

इत्यादि प्रमाणों का भी यही सिद्धान्त है कि ज्ञानीका मन सदा स्थिर रहता है और अज्ञानीका मन चञ्चल होता है। अब मन के निरोध रूपी तीसरे धर्म के साधारण लक्षण पर संस्कृत के प्रमाण दिये जाते हैं जैसे कि योगवासिष्ठ मुमुक्षुप्रकरण अ० १३ श्लोक ५ ॥

शमेनसाध्यतेश्रेयः शमोहिपरमंपदम् ।
शमःशिवःशमः शान्तिःशमोभ्रान्तिनिवारणम् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि मन के रोकने ही से मनुष्य को मोक्ष का लाभ होता है। मनके रोकने ही से शान्ति का, मनके रोकने ही से भ्रान्ति का नाश, मन के रोकने ही से सर्वोत्तम ब्रह्मधाम, मनके रोकने ही से कुशलता का लाभ मनुष्य को होता है ॥

योगवासिष्ठ मुमुक्षुप्रकरण अ० १३ श्लो० ६२ ॥

नरसायनपानेन नलक्ष्म्यालिङ्गितेनच ।
तथासुखमवाप्नोति शमेनान्तर्यथामनः ॥

इस में वसिष्ठ मुनि जी कहते हैं कि रसायन पान करने से वह आनन्द नहीं मिल सक्ता लक्ष्मी के साथ स्पर्श से वह सुख नहीं मिल सकता जो ब्रह्म सुख मन के निरोध से प्राप्त होता है ॥

(दमो धर्म्मः सनातनः)

इस में व्यास जी कहते हैं कि मन का रोकना ही सनातनधर्म है।

दमस्तेजोवर्द्धयति पवित्रञ्चदमःपरम्।

इस में व्यास जी कहते हैं कि मन के रोकने ही से मनुष्य का तेज बढ़ता है, मन के रोकने ही से मनुष्य पवित्र कहाता है। (शमः पापहरंस्मृतम्) इसमें व्यास भगवान् जी कहते हैं कि मनके रोकने ही से पाप नष्ट होते हैं।

शमेमनःसमाधाय ध्यानयोगपरोभव।

इसमें व्यास जी का सिद्धान्त यह है कि मन के रोकने ही से अन्तःकरण के चिन्तनात्मकवृत्ति चित्त का निरोध होता है। मन के रोकने ही से योगविद्या का यथावत् लाभ होता है॥

शमःसर्वेषुभूतेषु नालिङ्गं धर्मकारणम्॥

इसमें व्यास जी का सिद्धान्त यह है कि मनके रोकने ही से सर्वजीवों में दयाधर्म का लाभ होता है। केवल चिन्ह लगा रखने ही से दयाधर्म का लाभ नहीं हो सकता॥

दमेनसदृशंधर्मं नान्यंलोकेषुशुश्रुम॥

इसमें व्यास जी कहते हैं कि मन के रोकने के सदृश संसार में दूसरा कोई भी धर्म नहीं सुना जाता। (तन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु) इस वेद मन्त्र में मन के रोकने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की है। इसी भांति के और भी बहुत से मन्त्र हैं कि जिन में मन को रोकनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थनाकी गयी है (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) इस योगसूत्र में मन की वृत्तियों के रोकने का नाम ही योग वर्णन किया है। पूर्व जहां २ व्यास जी के नाम हैं वहां २ महाभारत के प्रमाण हैं॥

मन विषयन ते रोकनो शम तिह कहत सुधीर॥

इसमें निश्चल पण्डित कहते हैं कि विषयों की ओर से मन का रोक लेना ही शम कहाता है॥ (मन मरे धातु मर जाय) इसमें गुरु नानक जी कहते हैं कि मन के रोकने से ही वीर्य भी रुक जाता है॥

सत्यपूतांवदेद्वाचं मनःपूतंसमाचरेत्॥

इसमें मनु जी कहते हैं कि मनुष्य को चाहिये कि जैसी बात मन में हो वैसी ही वाणी से उच्चारण करे मन से विरुद्ध भाषण न करे॥

इस कठवल्ली उपनिषद् के मन्त्र का सिद्धान्त यह है कि संन्यासी मन और वाणी को कुकर्मों से रोके। (मनःसत्येन शुध्यति) इसमें मनु जी कहते हैं कि सत्य के संपादन ही से मन रोका जा सकता है। इत्यादि और भी अनेक प्रमाण हैं कि जिन से सिद्ध हो चुका है कि विषयों की ओर से मन का रोकना ही सर्वोत्तम धर्म है॥

अद्वैतकौस्तुभ वेदान्त के ग्रन्थ में मुख्य करके मन के रोकने के चार साधन लिखे हैं। उन में से एक सन्तों का सङ्ग है। उस का सत्संग महिमा वर्णन व्याख्यान में हम कथन कर ही चुके हैं। सन्तों के सङ्ग में जो मनुष्य रहता है उसको लज्जा भी पड़जाती है कि जब मैं कोई कुकर्म करूंगा तो जूतों से शिर गंजा हो जायगा। ऐसा विचार कर सत्सङ्गी मनुष्य लज्जा से भी विषयों की ओर से मन के रोकने का उद्योग करने लग जाता है। परन्तु अंगरेजी राज्यमें केवल अंगरेजी पठन पाठन करने वाले लाला बाबुओं ने सन्तों को बदनाम कर रक्खा है। उस से भारतवर्षमें सत्संग का करना लोप होता जाता है। यद्यपि नाम मात्रके सन्त अनेक फिरते हैं, तथापि पूर्ण लक्षणोंसे युक्त विद्वान् सन्तभी तो अंगरेजी राज्यमें हैं। परन्तु भारतवासी लाला बाबू यहां तक विज्ञान विवेक नेत्रों से अन्धे हो बैठे हैं कि उनको भारतवर्ष में एक भी सन्त नजर नहीं आता। उस से मनुष्य को चाहिये कि सन्तों के संग पहिले साधन से मनको रोके। फिर दूसरे साधन वेदान्त के विचारका मन के रोकनेके लिये सम्पादन करे। वेदान्त सिद्धान्त मण्डनके व्याख्यान में उसका भी हम विस्तार पूर्वक वर्णन कर चुके हैं। जिसको जिज्ञासा हो वहां देखकर भ्रम दूर करले परन्तु वेदान्त का विचार भी बिना विद्वान् सन्तोंके सङ्ग से नहीं हो सक्ता। उस से मन के रोकने का तीसरा साधन योगाभ्यास वर्णन किया है। उसका योगाभ्यासमण्डनव्याख्यान में हम वर्णन कर चुके हैं। यदि योगाभ्यास न हो सके तो चौथा साधन मन के रोकने का मलिन वासना का त्याग, और शुद्ध वासना का संपादन है। ये चार साधन मन रोकने के लिये मुख्य हैं। इस मनके रोकने रूपी तीसरे धर्म के साधारण लक्षण का ज्ञान जब हिन्दुबालकों को हो जावेगा तो उन बालकों को भारत वर्ष भर में कोई भी गुमराह न कर सकेगा॥ ३॥

चोरी के त्याग को-मनु जी ने चौथा धर्म्म का साधारण लक्षण वर्णन किया है॥

वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः॥

इस में मनु जी ने मिथ्याभाषण करने वाले को चोर कहा है ॥

यथोद्धरतिनिर्दाता कक्षंधान्यंचरक्षति ।
तथारक्षेन्नृपोराष्ट्रं हन्याच्चपरिपन्थिनः ॥

इत्यादि श्लोकों में मनुजी ने चोर को मारने तक की सख्त सजा लिखी है। अंगरेजी पिनलकोट में चोर को तीन वर्ष की सजा लिखी है। उस से सिद्ध होता है कि चोरी का करना अधर्म और चोरी का न करना धर्म्म है। इस से हिन्दुधर्म्म वीरों से निवेदन है कि चौथा चोरी का त्यागरूपी जो साधारण धर्म्म है उस का ध्यान भी आप अपने बालकों को दिया कीजिये। उस से भी आप के सन्तानों को उच्चे हिन्दुधर्म्म से कोई न गिरा सकेगा ॥ ४ ॥

शौच नाम पवित्रता का है उसका लाभ जलस्नान अथवा होमादि कर्मों से होता है। होम के परिमाणु सुगन्धयुक्त होते हैं, वह दुर्गन्धयुक्त परमाणु रूपी मलिनता का प्रध्वंसाभाव कर देते हैं। जल परमाणुओं से भी दुर्गन्ध युक्त परमाणुरूपी मलिनता का तिरस्कार हो जाता है। शरीर वाणी और अन्तः करण के भेद से पवित्रतारूपी शौच तीन प्रकार का सिद्ध होता है। किसी को कटुवाक्य से न बुलाना वाणी की पवित्रता शौच धर्म्म है। रोग रहित शरीर को जल में मज्जन कराना यह दूसरा पवित्रतारूपी शौच धर्म्म है। अन्तः करण से रागद्वेषादिकों को निकाल देना तीसरा पवित्रता रूपी शौच धर्म्म है हिन्दु धर्मवीरों को चाहिये कि इस शौच धर्म्म की उन्नति करें (महाभारत)

ज्ञानोत्पन्नंचयच्छौचं तच्छौचंपरमंमतम् ।

इस श्लोक में व्यासजी कहते हैं कि आत्मज्ञान रूपी जल के संपादन से अज्ञान रूपी मलिनता का नाश हो जाना वह सर्वोत्तम शौच धर्म्म है।

केवलंगुणसंपन्नः शुचिरेवनरःसदा

इस में व्यास जी कहते हैं कि जो विवेक वैराग्यादि गुणों के संपादन से अविवेक और रागादिमलिनता को नष्ट कर देना है वह भी अत्युत्तम शौच है॥

एवंशरीरशौचेन तीर्थशौचेनचान्वितः ।
शुचिःसिद्धिमवाप्नोति द्विविधंशौचमुत्तमम् ॥

इस में व्यास जी का सिद्धान्त यह है कि पूर्वोक्त प्रकार से बाह्याभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का शौच है। शरीर वाणी भेद से बाह्य द्विधा शौच तृतीय अन्तःकरण का शौच, यह तीन प्रकार का मुख्य करके शौच धर्म है। मनुस्मृति के पञ्चम अध्याय में नाना भांति से शौच धर्म का वर्णन किया है। (अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति०) इत्यादि वाक्यों में मनुजी ने शरीरस्थ अंगों का शौच कहा है कि पायखाना करने के पश्चात् चार बार मिट्टी लगा कर हाथों को धोना, दोबार मिट्टी से मर्दन कर लघुशंका के पश्चात् मूत्रद्वारका धोना, दोबार मिट्टी लगाकर मलद्वार को धोना, इत्यादि सर्व अंगों की सफाई के करने को मनुजी ने शौच कहा है। उस शौच से मनुष्य को आरोग्यता का लाभ होता है ॥

गुरोःप्रेतस्यशिष्यस्तु पितृमेधंसमाचरन् ।
प्रेतहारैःसमंतत्र दशरात्रेणशुध्यति ॥

इस में मनुजी कहते हैं कि जब गुरु का मरण हो जावे तो गुरु की लाश को मरघट में ले जाकर शिष्य फूंक डाले, दाह के पश्चात् ईश्वर नाम स्मरण अग्निहोत्र का करना जल स्नानादि करना इत्यादि कर्मानुष्ठान से दश रात्रि के पश्चात् शिष्य शुद्ध होता है यह भी बाह्य शौच कहा जाताहै॥

समारोपितशौचस्तु नित्यंभावसमाहितः ॥

इत्यादि वाक्यों में व्यास जी ने मन की स्थिरता हो कर चपलता के रोकने को शौच कहा है॥

मुर्या जीवतियां गति होवै जो शिर पाइये पानी ॥

इत्यादि वचनों में गुरु नानक जी ने जल स्नानादि से शरीर की आलस्यादि मलिनता के नष्ट हो जाने को शौच करके वर्णन किया है ॥

सरस्वती न्हात हैं पूर्व पाप उतारण को ॥

इत्यादि वाक्योंमें सरस्वती तीर्थमें नहानेसे बाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकार की मलिनता के नष्ट होने को शौच कहा है। यह गुरु गोविन्दसिंह जीका सिद्धान्त है। इत्यादि और भी शौचरूपी ५ वें साधारण धर्म की सिद्धि में हजारों प्रमाण हैं। सनातनहिन्दुधर्मवीरों को उचित है कि इस शौचरूपी साधारण पांचवें धर्म का ज्ञान आप भी संपादन करें। और अपने बालकों को भी संपादन करा देवें। उस से भी हिन्दु बालकों को कोई न बहका सकेगा। इस व्याख्यान में हमने पांच प्रकार के साधारण धर्म का वर्णन किया शेष पांच प्रकार के साधारण धर्म का आगे वर्णन होगा ॥ओंशान्तिः३॥

इन्द्रियनिग्रहधीविद्यासत्याक्रोध—

व्याख्यान नं० २१

विदित हो कि इस व्याख्यान में इन्द्रिय निरोधादि पांच साधारण हिन्दु धर्म के लक्षण लिखे जाते हैं कि ॥ (मनु० अ० ६ श्लो० ६० ॥)

इन्द्रियाणांनिरोधेन रागद्वेषक्षयेनच ।
अहिंसयाचभूतानाममृतत्वायकल्पते ॥

इसमें मनु जी कहते हैं कि विषयों की ओर से इन्द्रियोंको रोक लेने से और रागद्वेष को छोड़ देने से, जीवों पर दया रखने से, मनुष्य मोक्ष का अधिकारी होता है ॥ (मनु० अ० ६ श्लो० ७१ ।)

दह्यन्तेध्मायमानानां धातूनांहियथामलाः ।
तथेन्द्रियाणांदह्यन्ते दोषाःप्राणस्यनिग्रहात् ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि जैसे सुवर्ण के तपानेसे सुवर्णका मल नष्ट हो जाता है वैसे ही प्राणायामसे इन्द्रियोंके दोष नष्ट हो जाते हैं (मनु० अ० ४ श्लोक० ७७ ॥)

नपाणिपादचपलो ननेत्रचपलोऽनृजुः ।
नस्याद्वाक्चपलश्चैव नपरद्रोहकर्मधीः ॥

इसमें मनु जी कहते हैं कि मनुष्य को उचित है कि विना प्रयोजन वस्तुओं को उठाता हुआ हस्तेन्द्रिय को चपल न करे विना प्रयोजन के भ्रमण करके पादेन्द्रिय को चपल न करे । वेश्या परस्त्री देखने आदि से नेत्रेन्द्रिय को चपल न करे किसी की चुगली निन्दा करके वागिन्द्रिय को चपल न करे कपट छलादि से मन इन्द्रिय को चपल न करे चित्त से राजविद्रोह का चिन्तन वा निश्चय कर चित्त और बुद्धिको चंचल न करे ॥

इन्द्रियार्थेषुसर्वेषु नप्रसज्येतकामतः ।
अतिप्रसक्तिंचैतेषां मनसा संनिवर्त्तयेत् ॥

मनु०अ० ४ श्लो० १६

इसमें मनु जी कहते हैं कि इन्द्रियों के विषय शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध हैं मनुष्य को चाहिये कि उन में लंपट न हो जावे क्योंकि शब्दादि विषय मुक्ति के विरोधी हैं इस से मनकर के भी उनका स्मरण न करे ॥

अविद्वांसमलंलोके विद्वांसमपिवापुनः ।
प्रमादाह्युत्पथंनेतुं कामक्रोधवशानुगाः ॥

[मनु० अ० २ श्लो० १४]

इसमें मनु जी कहते हैं कि मैं विद्वान् अथवा पण्डित हूं मैं जितेन्द्रिय हूं ऐसे अभिमान से भी स्त्रियों के साथ बैठना उचित नहीं स्थूल शरीर के धर्म पूर्वक विद्वान् वा मूर्ख हो काम क्रोधादि में फंसा हो तो उसे स्त्रियां भ्रष्ट कर देती हैं । गिरधर जी कहते हैं कि–

पढ़ो वेद और स्मृति गीता । तर्कनिपुण पुन अनहूं न जीता ॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसे । बाजीगर बन्दर कूं जैसे ॥

मात्रास्वस्रादुहित्रावा नविविक्तासनोभवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपिकर्षति ॥

[मनु० अ० २ श्लो० १५]

इसमें मनु जी का सिद्धान्त यह है कि माता भगिनी वा कन्या हो तो मनुष्य को उचित है कि इनके साथ भी एकान्त में एक आसन पर कभी न बैठे क्योंकि इन्द्रियों का समुदाय अत्यन्त बलवान् है पण्डितों को भी विषयों में खैंच के ले जाता है ॥

इन्द्रियाण्येवसंयम्य तपोभवतिनान्यथा ।
इन्द्रियाण्येवतत्सर्वं यत्स्वर्गनरकाविमौ ॥ (महाभारत)

इसमें व्यास भगवान् कहते हैं कि शब्दादि विषयों की ओरसे इन्द्रियों का जो रोकना है वह सर्वोत्तम तप है इससे भिन्न सर्वोत्तम तप कोई नहीं इन्द्रियों का विषयों की ओर से रोकना स्वर्ग की प्राप्ति का कारण है इन्द्रियों का विषयों में फंसना नरक की प्राप्ति का कारण है ॥

आत्मानंरथिनंविद्धि शरीरंरथमेवतु ।
बुद्धिन्तुसारथिंविद्धि मनःप्रग्रहमेवच ।

इन्द्रियाणिहयानाहुर्विषयांस्तेषुगोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेनमनसासदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वाइवसारथेः ॥

(कठवल्ली उपनिषद्)

इस मंत्र में रूपकालंकार से आत्मा को रथी और शरीर को रथ रूप करके वर्णन किया है बुद्धि को रथ हांकने वाला सारथी इन्द्रिय घोड़े हैं ॥ और मन को डोर रूप करके कहा है, शब्द स्पर्श रूप रस गन्धको सड़करूप करके कथन किया है । जो विद्वान् आत्मज्ञानी हैं वह इस रथको दुष्ट विषय रूपी सड़क पर नहीं चलने देते किन्तु जो अविद्वान् आत्मज्ञानसे रहित देहात्मवादी पामर मनुष्य हैं वह दुष्ट विषय रूपी सड़क पर शरीर रूपी रथ को चलाते हैं। अभिप्राय यह है, कि वेश्या वा लौंडों का गाना बजाना नाचना देखना, उन से स्पर्श करना, उन के सुन्दर रूप को देखना, उन के दुर्गन्ध रूप शरीर को सूंघना, मुख चुंबनादि दुष्ट चेष्टा का करना, उन की, प्रशंसा करना, हाथ से स्तनादि को ग्रहण करना, उन के मकानों पर जाना गुप्तांगों से नफरत न करना, इत्यादि दुष्ट विषय हैं । विद्वानों के वेदोक्त उपदेश को सुनना, विद्वानों की सेवा करना, दर्शन करना, चरणामृत पीना, चन्दनादि का तिलक लगाना उन के गुणों का वर्णन करना, जहां विद्वान् संत हों वहां सत्संग करनेको जाना, सन्तोंको पंखा आदिका झुलाना, मल मूत्रादि त्याग के स्नानादि क्रिया कर सन्तन के संग में योगाभ्यासका करना, इत्यादि सर्वोत्तम मोक्ष संबन्धी विषयोंमें उद्योग करना चाहिये । सिद्धान्त यह है कि दुष्ट विषयोंमें अज्ञानी मनुष्यों का शरीर रूपी रथ चलताहै, और सर्वोत्तम विषयों में आत्मज्ञानी विद्वान्का रथ चलता है । हम अज्ञानी लोगों को भी इत्तिला देते हैं कि आप दुष्ट विषय रूपी मार्गसे शरीररूपी रथ के रोकनेका यत्न कीजिये। किन्तु श्रेष्ठ विषय रूपी मार्ग ही में शरीर रूपी रथ को चलाइये । संन्यासी को उचित है कि सर्व प्रकार से विषयों की ओरसे इन्द्रियों को रोके, वैसे ही गृहस्थ को भी शुभमार्ग रूपी विषयों में चलना चाहिये ॥ (महाभारत)—

इष्टानांरूपगन्धानामभ्यासञ्चनिषेवते ।

ततोरागःप्रभवति द्वेषश्चतदनन्तरम् ॥
ततोलोभः प्रभवति मोहश्चतदनन्तरम् ॥

इस में व्यास जी कहते हैं कि जब शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध दुष्ट विषयों में मनुष्य लंपट होता है तो उस के अन्तःकरण में राग द्वेष शत्रु उत्पन्न होते हैं। राग द्वेष से लोभ उत्पन्न होता है लोभसे दुष्ट विषयों में मोहित हो मनुष्य लंपट हो जाता है, आत्मज्ञान को भूल जाता है। तबसे हरएक मनुष्य को उचित है कि दुष्ट विषयों की ओर से इन्द्रियों को रोके। परन्तु पदार्थ विद्या से विदित होता है कि जब तक मनुष्य के मन संयुक्त श्रोत्रादि इन्द्रियों का शब्दादिक विषयों के साथ संबन्ध नहीं होता, तब तक मनुष्य को किसी विषयका भी ज्ञान नहीं हो सक्ता। मन संयुक्त श्रोत्रेन्द्रिय का शब्दसे संबन्ध होकर श्रोत्र अन्य शब्दविषय का ज्ञान होता है। मन संयुक्त त्वगिन्द्रिय का स्पर्श विषय से संबन्ध होकर कोमल कठोर शीतोष्णादि स्पर्श का ज्ञान होता है। मन संयुक्त नेत्रेन्द्रिय का रूपादि से संबन्ध होकर गोरे काले रूपादि विषयका ज्ञान होता है। मन संयुक्त रसनेन्द्रिय का मधुर कटु अम्ल इत्यादि रस विषयों से संबन्ध हो कर रसविषय का ज्ञान होता है। मन संयुक्त घ्राणेन्द्रियका सुगन्धादि विषयोंसे संबन्ध होकर सुगन्ध दुर्गन्धादि विषयोंका ज्ञान होता है। मन संयुक्त निर्दोष इन्द्रियों का विषयों से संबन्ध होकर विषयों का यथार्थ ज्ञान होता है। सदोष मन संयुक्त इन्द्रियों का विषयों से संबन्ध होकर विषयों का भ्रान्ति ज्ञान होता है। परन्तु मन संयुक्त इन्द्रिय के संबन्ध से एक काल में एक ही विषय का ज्ञान हो सकता है। मन के संयोग विना एक काल में सर्वेन्द्रियों से सर्व विषयों का सम्बन्ध हो भी जावे तो भी सर्व विषयोंके एक काल में ज्ञान नहीं होते। क्योंकि एक काल में एक ही इन्द्रिय से मन का संयोग होता है। परन्तु जब तक पहिले जीव और मन का संयोग नहीं होता तब तक मन संयुक्त इन्द्रिय का विषय से संबन्ध होकर भी विषयका ज्ञान नहीं हो सक्ता। क्योंकि मन और इन्द्रिय जड़ पदार्थ और करण हैं। जीव ज्ञानों का कर्त्ता है, ज्ञानों का होना कर्म है, मनुष्य को चाहिये कि सत्संगादि साधनों को संपादन करके दुष्ट विषयों की ओर से इन्द्रियों के रोकने का उद्योग करे॥

अब इन्द्रियों के दुष्ट विषयों के दुष्ट परिणाम पर उदाहरण लिखे जाते हैं (तथाहि) प्रत्यक्ष देखा जाता है कि हिरण को मारने वाला बधिक वनमें जा बैठता है, और बाजा बजानेका प्रारंभ कर देता है, हिरण उस बाजे का शब्द सुनकर बधिक के पास आता है, बधिक उस को गोली से मार डालता है। अब विचारना चाहिये कि श्रोत्रेन्द्रिय का विषय जो कि दुष्ट शब्द है वह पशु के भी प्राण ले डालता है, तो मनुष्य होकर दुष्ट शब्द से प्रेम करेगा वह कैसे बचेगा, किन्तु कभी नहीं। सुना जाता है कि एक नगर में एक धनी का लड़का हर रोज वेश्या का गाना सुनने जाया करता था, हजारों रुपैये वेश्याको दिया करता था, इसी भांति रुपैये वेश्या को देते २ उसका दिवाला निकल गया, फिर खाली हाथ वेश्या के मकान पर गया, वेश्या को ज्ञात था कि अब इस लाला भोगीमल के पास एक कौड़ी भी देने को नहीं है, तो वेश्या ने भडुवों को इशारा कर दिया, भडुओं ने जूतों से लाला भोगीमल का पहिले तो शिर गंजा कर डाला। पश्चात् उनके भडुवे ने लाला भोगीमल के नाक कान काट दिये। टूटी सारंगी जैसा लाला जीका मुख हो गया, जन्मभर को कलंक लगा। अब सोचना चाहिये कि श्रोत्रेन्द्रियके दुष्ट विषय शब्द पर जो मनुष्य लम्पट हो जाता है उस को इस प्रकारका लाभ होता है जैसे कि लाला भोगीमल को मिला था ॥ १ ॥

प्रत्यक्ष देखा जाता है कि हाथी के पकड़ने वाले महावत हाथियों के वन में चले जाते हैं, बड़ा गहरा खड्डा खोद देते हैं, तृण लेकर ऊपर से खड्डे को छत्त देते हैं, उस के ऊपर कागजों की हथिनी बनाकर खड़ी कर देते हैं, त्वगिन्द्रिय के विषय स्पर्श का मारा हाथी उस से सभागम करने आता है, छत्त टूट पड़ती है, हाथी गड्ढे में गिर पड़ता है, महावत लोहे का अंकुश लेकर हाथीको ऐसी मार देता है कि हाथीका चमड़ा चिर जाता है, प्राणान्त तक हाथीको दुःख होता है। अब विचार लीजिये कि त्वगिन्द्रिय के विषय स्पर्श के मारे पशुकी जब ऐसी दुर्गति होती है तो मनुष्य की क्यों न होगी किन्तु अवश्य होगी। बहुत वर्ष गुजरे हैं जब पंजाब की फरीदकोट रियासत में एक जमीदार सुसरालसे अपनी स्त्री को लिये आता था, रास्ते में थाना था, कुआ लगा था, वह जमीदार पानी पीने लगा, थानेदार ने उस की स्त्री को देखा और जमीदार से कहा कि यह स्त्री चो-

री की है, बिना जमानत के स्त्री को न लेजा सकोगे, जमीदार सुसराल में जमानत लेने को गया, थानेदार ने स्त्रीको अपने मकानमें बन्द रक्खा, सूर्य अस्त होने पर त्वगिन्द्रिय के विषय स्पर्शका मारा थानेदार मकानमें आया, कपड़े उतारे, कुड़ता उतारने के वख्त आंखों के आगे कपड़ा हो गया, ज-मीदार की स्त्री ने अवकाश पाकर तलवार लेकर थानेदार की गर्दन को कतल कर डाला। इतने में एक चालान आया, उस की रिपोर्ट देनेको ज-मादार भी थानेदार के मकान में शिरको नीचे कर देखने लगा, स्त्रीने उस की गर्दनको भी कतल कर डाला। ऐसे ही दो सिपाहियों को कतल किया, फिर दरवाजा बन्द कर वह स्त्री भीतर बैठ रही, आधी रात्रि को वह ज-मीदार तीन चार आदमियों को सुसराल से जमानत देने के लिये लाया, और पुकारा कि थानेदार साहिब जमानत लीजिये। जमीदार जहां थाने-दार का मकान था वहां गये, और पुकारा भीतर से स्त्री बोली कि थाने-दार जमादार और दो सिपाही कतल हुए पड़े हैं। जब तक महाराजा साहिब न आवेंगे। तब तक मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी, महाराजा साहिब को खबर गई, महाराजा साहिब ने वजीर को भेजा, उस के बोलने से स्त्री ने दरवाजा खोला, स्त्री और थानेदारादि की लाशें महाराजा के दरबार में लाईं गईं, महाराजा साहिब के पूछने पर स्त्री ने सब हाल ठीक २ बतला दिया, महाराजा साहिब ने स्त्री को बहादुरी देख कर इनाम दे स्त्री को विदा किया ॥

प्रकरण का सिद्धान्त यह है कि जो मनुष्य त्वगिन्द्रिय के स्पर्श विषय पर मरते हैं। उन को वैसा ही लाभ होता है जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है उस से त्वगिन्द्रिय को भी स्पर्श विषय की ओर से रोकना चाहि-ये ॥ २ ॥ वैसे ही नेत्र इन्द्रिय का विषय रूप है प्रत्यक्ष देखा जाता है कि पतंगा आदि अनेक जीव दीपक की सुन्दर लौ पर लंपट हुए जल के मरजाते हैं। यह सुन्दररूप का परिणाम है वैसे ही मनुष्य भी सुन्दररूप पर मन को चलाकर नष्ट हो जाता है। सुना जाता है कि एक जंगीपलटन में एक नवयुवा कमलनैन मधुरबैन गौरांग बिम्बफलाधरादि अंगयुक्त सुन्दररूप वाला बीसवर्ष का क्षत्रिय कुमार नौकर था। उस के सुन्दररूप पर एक सि-पाही मोहित था कुमार से अवकाश पाकर दिल्लगी किया करता था, एक दिन वह कुमार भोजन बनाता था उसी समय वह सिपाही भी मारा सु-

न्दररूपका उस कुमारसे दिल्लगी करने लगा, कुमारने कहा कि इस दिल्लगी का परिणाम अच्छा न होगा, इसको सुन सिपाही दिल्लगी करने से न हटा। नवयुवा कुमार ने बन्दूक लेकर सिपाही की छाती में गोली को दाग दिया, सिपाही मरगया, नवयुवा कुमार को कप्तान की ओर से तोप से उड़ा देने का हुक्म हुआ नवयुवा तोप के सामने खड़ा किया गया, तीनवार तोप को पलीता लगाया गया, परन्तु तोप न चली, कप्तान ने समझा कि लड़का निर्दोष है, ईश्वर ने इसको तीनवार तोप के गोले से बचाया है। कप्तान ने खून माफ करदिया, और वह कप्तान पिन्शन पा कर नवयुवा कुमार को कप्तान बनाकर चलागया। इस उदाहरण का भी यही सिद्धान्त है कि रूप विषय का मारा मनुष्य तन मन और धनका सर्वथा सत्यानाश कर डालता है प्राण भी नष्ट कर लेता है॥

राजा रावणने सुन्दररूप पर लंपट होकर अपना सर्वस्व नष्ट करडाला। सुन्दररूप पर लंपट होने के कारण नारदमुनि जी का बन्दर का मुख हो गया, सुन्दररूप पर लंपट होने से इन्द्रके हजार भग हो गए, चन्द्र को कलंक लग गया, सुन्दररूप ही की कृपासे शिशुपाल राजा का सत्यानाश हो गया। यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो सुन्दररूप कुछ चीज नहीं केवल चमड़े के नीचे खून चमकता है। चारदिन तक सुन्दररूप वाले को बुखार आवे तो उस के सुन्दररूप का अदर्शन होजाता है। वृद्ध अवस्था में सुन्दर रूप सर्वथा बिगड़ जाता है, चमड़ा हाड़मांस खून मैला मूत्र का शरीर है। उस की सुन्दरता पर जो लंपट होता है, वह मनुष्य जन्म को पशुसमान नष्ट कर डालता है। आत्मज्ञान मोक्ष सुख से भी विमुख होजाता है। इस समय हिन्दुसंतान सारे सुन्दररूप के विलायत की स्त्रियों के साथ शादी कर लेते हैं। मुसलमानों की स्त्रियों के सुन्दररूप पर लंपट होकर कर्म धर्म से भ्रष्ट हो जाते हैं॥

-- शोभा मूर्त्ति पापकी पिखजिह भूले गंवार। पौर दिखाकर नरकका नर को करे खुआर॥ नरको करे खुआर नचावत विधि पुन हरिहर। मोहरजू से आलध नचावत कवित घरघर॥ कहि गिरधर कविराय यहै नर और निज मोक्षा। कौन तौन प्रकार तजे वो सुन्दर शोभा॥

जब दीवे की ज्योति को देखकर पतंगा जानवर जलकर मरजाता है तो सुन्दर रूप मनुष्य का सत्यानाश क्यों न करेगा किन्तु अवश्य करेगा॥

(अन्य उदाहरण) एक नगर में एक धनी की कन्या विधवा बैठी थी वहां एक नियोगी बाबा आये, उसी धनीकी फुलवारीमें उतरे, धनी ने अपनी विधवा कन्याको पढ़नेके लिये नियोगी बाबाको सौंप दिया, आप वह धनी तीर्थयात्रा को चले गये, नियोगी बाबा ने कन्या से कहा कि आप रात्रिको यहां आकर हमारी टांगें दाबिए, कन्या ने कहा आज आप क्षमा कीजिये कल्ह मैं आऊंगी, दूसरे रोज वह कन्या एक लाल ले आई, और नियोगी बाबा से कहा कि इसे जौहरी के पास ले जाइये, दाम पूछिये, फिर वापिस ले आइये, नियोगी बाबा जौहरी की दूकान पर गए, और लाल का दाम पूछा, जौहरीने लालका दाम एकलाख रु० बतलाया, और नियोगी बाबा को पूड़ी कचौड़ी खिला प्रणाम कर विदा किया, नियोगी बाबा ने कन्या को वह लाल वापस दिया, और कहा कि यह लाल एकलाख दाम का है। हमने पूड़ी कचौड़ी खाई, कन्या ने उस लाल को अग्नि में रख दिया, बीस मिनट में लाल जलकर कौड़ी के दाम का न रहा, कन्या ने वह लाल फिर नियोगी बाबा को दिया और कहा कि अब इस लाल का दाम जौहरी से पूछिये, नियोगी बाबा जौहरी के पास गये और लाल का दाम पूछा, जौहरी ने लाल को जला देखा और दो मुनीमों को इशारा किया, मुनीमोंने नियोगी बाबा की जूतों से हजामत करडाली, नियोगी बाबा शिर गंजा कराकर कन्याके पास आए, और लाल वापिस दिया, पूछा अब लाल का क्या दाम हुआ, नियोगी बाबा ने कहा कि कुछ भी नहीं, कन्याने कहा कि आप की खातिरदारी कैसे हुई, नियोगी बाबाने साफा उतार शिर दिखला दिया कन्याने कहा कि देखो बाबा जो यह लाल जब तक अग्नि से नहीं छुआ तबतक इसका लाख रु० दाम था, और आपको पूरी कचौड़ीका भोजन मिला फिर यही लाल बीसमिनट अग्निमें रखने से कौड़ी के काम का नहीं रहा, और आप का तो मारे जूतों का शिर ही गंजा हो गया, यह तो हुआ दृष्टान्त और सिद्धान्त इस का यह है कि आप साधु होकर जब हम स्त्रियों से बचेंगे तो आप की ब्रह्मावडभर में इज्जत होगी, यदि आप हम स्त्रियोंसे टांगें दबवानेकी कोशिश करेंगे तो आप का शिर तक कतल हो जायगा। नियोगी बाबा कन्या को प्रणाम कर वहांसे कमण्डलु उठा के चलेगये। अब श्रोतागण समझ लेवें कि सुन्दर रूपके इस प्रकार के खराब नतीजे निकलते हैं। जैसे कि नियोगी बाबा का मारा जूतों का शिर गंजा हो गया था॥

(अन्य उदाहरण)-एक समय एक नगर के पास २ एकान्तशर्मा योगी चले जातेथे, वह गौरांगरूप वाले नव जवान थे, एक सेठकी सेठानी ने उन की निगरानी करी और सुन्दर रूप पर लम्पट हो गई, मुनीमको भेज योगी को मकान में बुलवाया, योगी ने योगसिद्धि से सेठानी को व्यभिचारिणी जान लिया, मकान के भीतर जाने लगे, योगीने कमण्डलुको पत्थर पर मार टुकड़े २ कर डाला, और आप रोने पीटने लगा, हाय कमण्डलु फूट गया, इस प्रकार का हल्ला मचाने लगे, सेठानी ने कहा कि आपको दूसरा कमण्डलु मिल जावेगा। योगी ने कहा कि ऐसा कमण्डलु न मिलेगा। सेठानी ने पूछा कि इस में क्या विशेषता थी, योगी ने कहा कि २५ वर्षसे यह कमण्डलु हमारे पास था पायखाने जाकर इसी कमण्डलु से हम चूतड़ सफा करते थे, २५ वर्ष तक इस कमण्डलु ने हमारे मल द्वार को नंगा देखा है। अब हम ऐसे मूर्ख नहीं हैं, कि दूसरे कमण्डलु को अपना मलद्वार नंगा कर दिखावें। इसको सुनकर सेठानी लज्जा सागर में गोते खाने लगी, सोचा कि योगी जी दूसरे जड़ कमण्डलु को भी अपना मल द्वार नंगा कर दिखाना बुरा मानते हैं तो कोटिशः धिक्कार मुझे है जो कि नेत्र के विषय सुन्दर रूप की मारी विवाहित पति सेठ का अपमान कर सुन्दर रूप वाले योगी को अपना मूत्र वा मलद्वार नंगाकर दिखाने की कोशिश करने लगी। ऐसा विचार कर सेठानी ने योगी से क्षमा मांगी और प्रणाम कर विदा किया। आप तन मन धन से सेठ जी की सेवा पूजन करने लगी। अब विचारो कि मनुष्य के सुन्दर रूप को देखकर स्त्रियोंको भी कैसे बुरे नतीजे मिलते हैं॥

बहुत वर्षों की बात है कि बंगाल लैन में एक गार्ड स्त्रियों के डब्बे में आ घुसा, एक सुन्दर रूपवती स्त्रीको छेड़छाड़ करनेकी चेष्टा करने लगा, स्त्री ने लोटा उठाकर गार्ड के माथे में ऐसा जोर से जमा दिया कि गार्ड की खोपड़ी फूट गई रेल स्टेशन पर खड़ी हुई गार्ड साहिब चुपके से उतर कर अस्पताल को चले गये इत्यादि और भी अनेक उदाहरण हैं कि जिनसे नेत्रेन्द्रिय के विषय सुन्दर रूप पर लंपट हो जाने के निहायत बुरे २ नतीजे निकलते हैं। उसी से मनु जी ने कहा है कि मनुष्य को चाहिये सुन्दर रूप की ओर से नेत्र इन्द्रिय को रोकने का भी उद्योग करें॥ ३॥

रसनेन्द्रिय के विषयरस के बुरे नतीजे पर उदाहरण ।

पन्द्रह वर्ष के लग भग गुजरे होंगे कि पंजाब जिला लाहोर तहसील कसूर थाना मुनावा में हम लेक्चर देते हुए चले गये । वहां एक जमींदारका तालाव था उस में पानी को निर्मल रखने के इरादे से मच्छी बहुत रक्खी थीं वहां पर तहसीलदार जी भी दौरा करने आए उसी तालाब पर डेरा जमा दिया ववर्ची को हुक्म दिया कि तालाव में से मच्छी मारिए और तरकारी बनाइये ववर्ची मच्छी पकड़ने लगा जमींदार जो तालावके मालिक थे आए तहसीलदार से कहा कि हजूर आप तालाव में से मच्छीको न मारिए । तहसीलदार ने कहा कि खुदा ने मारने और खाने ही के लिये मच्छी को पैदा किया है । जमींदार ने बाल वाहगुरू जी का खालसा वाह गुरू जी की फते बजा कर लोहे की कुदाली उठाई और तहसीलदार के शिर में जमादी तहसीलदार की खोपड़ी फूट गई कुर्सी के नीचे जा गिरे लाहौर में तार गया डिप्टी कमिश्नर आये तहकीकात करी उससे तहसीलदार जी कसूरवार निकले । अब विचार से देखो कि रसनेन्द्रिय के विषय रस पर लंपट होने के ऐसे बुरे नतीजे निकलते हैं जैसे कि मारे रसनेन्द्रियके विषय रससे तहसीलदार की भी खोपड़ी फूट गई । प्रत्यक्ष देखा जाता है कि मच्छी के मारने वाले लोहे की कुण्डी को आटा वा मांस मिला रस्सी से बांध नदी वा तालाव में फेंक देते हैं रसनेन्द्रिय के विषय रस को मारी मच्छी उस कुण्डी कोमुख में ले प्राण देदेती है । जब रसनेन्द्रिय का विषय रस जानवरों के भी प्राण ले डालता है तो मनुष्य का सत्यानाश क्यों न करेगा । इस से मनुजी कहते हैं कि रसनेन्द्रिय को भी रस विषय की ओर से रोक लेना सर्वोत्तम है ॥ ४ ॥

इसी भांति कमल फूलस्थ गन्ध जो कि घ्राणेन्द्रिय का विषय है उस पर लंपट हुआ भ्रमर पक्षी भी प्राण दे देता है । तो मनुष्य होकर जो गन्ध विषय पर लंपट होगा उसका सत्यानाश क्यों न होगा? किन्तु अवश्य होगा । इस से मनुष्य को उचित है कि घ्राणेन्द्रिय को भी गन्ध विषय की ओर से रोकने का यत्न करे मनुष्य होकर भी इन्द्रियों को दुष्ट विषयों की ओर से न रोकेगा तो जैसे जानवर हैं वैसा ही वह मनुष्य होगा । सूरत की विलक्षणता होगी अकल का जानवर होगा। प्रकरण का सिद्धान्त यह है कि दुष्ट विषयों की ओरसे इन्द्रियोंके रोकनेको भी मनुजी ने साधारण धर्म

करके वर्णन किया है। इस साधारण धर्म को भी अब हिन्दु बालक संपादन कर लेंगे तो उनको कोई भी मतवादी अपने मिथ्या जाल में नहीं फंसा सकेगा ॥ ६ ॥

(सातवां साधारण धर्म धी है) धी नाम बुद्धि का है उसीको उर्दू वाले अक्ल कहते हैं।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानिचहितानिच ।
नित्यंशास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैववैदिकान् ॥

इस में मनु जी कहते हैं कि जिस को धनोपार्जन करने की अभिलाषा हो और परस्पर प्रेम लगाने की इच्छा हो वह सत्यशास्त्र के विचारसे बुद्धि के बढ़ाने का प्रयत्न करे (धियो योनः प्रचोदयात्) इस वेदमंत्रका सिद्धान्त यह है भक्त कहता है कि दुष्ट कर्मों की ओरसे हमारी बुद्धि को ईश्वर रोक देवे किन्तु सर्वोत्तम आत्मज्ञानकी ओर हमारी बुद्धि को ईश्वर लगावे प्रकरण में यहां यही सिद्धान्त समझो कि मनुष्य को उचित है कि प्रथम आत्मज्ञान के संपादन का स्वयं प्रयत्न करे पश्चात् ईश्वरसे सहायता मांगे आलसी को ईश्वर सहायता नहीं देता किन्तु पुरुषार्थी ही को ईश्वर सहायता देता है।

दृश्यतेत्वग्र्यायाबुद्ध्या सूक्ष्मयासूक्ष्मदर्शिभिः ।

इस मंत्र का सिद्धांत यह है कि जो मनुष्य निष्काम कर्मोपासना से बुद्धिको शुद्ध कर लेता है उसकी बुद्धिमें 'आत्मज्ञानोदय होता है। ज्ञान से अज्ञान नष्ट हो जाता है उससे उसकी बुद्धि में स्वप्रकाश स्वरूप से आत्मा का निरावरण भान होता है।

यांमेधांदेवगणाः पितरश्चोपासते ।

इस वेदमंत्र का अभिप्राय यह है कि पुरुषार्थी होकर जब मनुष्य आत्म ज्ञान लाभके हितार्थ उद्यत होवे तो आत्माका दृढ़ निश्चय करनेके लिये ईश्वरसे निर्दोष बुद्धिकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करे। बुद्धिके बढ़ाने पर और भी अनेक वेदादिके प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अंगरेज बहादुर कहां तक बुद्धि अर्थात् अक्ल की उन्नति करी है जो कि अगाध समुद्र में स्टीमर बनाये हुए जमीन की माफक चले जाते हैं। रेल में लाखों नर नारियों को हजारों कोशों पर पहुंचा देते हैं। टेलीग्राम से हजारों कोशों पर बैठे बातचीत करते हैं।

आधीरात को जेब घड़ी से समय जान लेते हैं, हारमोनियम फोनोग्राफादि बाजों गाजों से प्रजा के मन को आकर्षण कर लेते हैं कल बल से सिल पुतली घरादि से कई करोड़ रुपयों का कपड़ा बनाते हैं जहां जल नहीं मिलता था, वहां नल कल से जल पहुंचाते हैं। वगैर आदमी की चेष्टा से चक्की कल से करोड़ों मन आटा पीसते जाते हैं। इत्यादि-और भी अनेक प्रकार के विचित्र काम अंगरेज़ों ने दर्शाये हैं। यह सब अक्ल की उन्नति का नतीजा है। अक्ल ही से अंगरेज़ों ने जंगीदल, पुलिसकोर्ट, कचहरी, लेजिस, लेटिव, वाइसराय कौंसिल पार्लीमेंट, म्यूनिसिपिल अस्पताल स्कूल कालिजादि महकमे रचे हैं। देखिये हाथी कैसा बलवान् है, परन्तु अक्ल से एक आदमी उसे वश कर लेता है। अजगर सर्प कैसा बलवान् है परन्तु अक्ल से बाजीगर उसे पिटारे में कैद कर रखता है। अक्ल ही से देखिये इस समय सर्कस करने वाले बंगाली आदि चीते शेर बड़े २ बलधारी जानवरों को वश में कर उन से दंगल करवा हजारों रुपये बटोरते फिरते हैं॥

सुना जाता है कि एक जंगल में स्यार स्यारी अर्थात् गीदड़ गीदड़ी रहते थे गीदड़ीको गर्भाधान संस्कार था, प्रसूत होने का दिन समीप आया देख गीदड़ीने कहा कि जहां कोई विघ्न न होवे वहां बच्चोंको पैदा करें, गीदड़ ने कहा कि शेर के मकानमें चलें, गीदड़ीने कहा कि शेर मार डालेगा गीदड़ ने कहा कि जहां अक्ल है वहां कोई नहीं मार सक्ता, गीदड़ी गीदड़ को साथ लेकर शेर के मकान में जा बैठी, शेर उस वक्त कहीं जानवर के शिकार को गया था, गीदड़ी ने दो बच्चे पैदा किये इतने में शेर भी आया गीदड़ी ने कहा कि अब मारे जायंगे गीदड़ ने कहा कि जहां अक्ल है वहां कोई नहीं मार सक्ता, हम तुम को रानीनाम से बुलायंगे, तुम हम को राजा नाम से बुलाना, शेर भी दरवाजेके बाहर उपस्थित हुआ, गीदड़ी बोली कि ऐ राजा साहब! गीदड़ बोला अरी क्या है रानी साहिब! गीदड़ी ने कहा कि आप के बच्चे भूख रोते हैं। गीदड़ ने कहा कि क्या मांगते हैं, गीदड़ी ने कहा शेर का मांस मांगते हैं, गीदड़ ने कहा कि कल मैं दो शेर मार के लाया था, वे कहां गए, गीदड़ी ने कहा कि वह मांस बासी हो गया है, गीदड़ ने कहा कि अभी मैं दो शेर जीते ही पकड़ ले आता हूं, यहां मारकर बच्चों का खिला दूंगा ऐसे कहकर गीदड़ शेर के मकानके बाहर निकलने ही लगा था, तब तक शेर डर के मारे भाग गया। क्योंकि शेर में अक्ल नहीं थी, भागकर दूसरे जंगल में शेर निकल गया॥

आगे एक वृक्षपर बन्दर बैठा था, उसने शेरसे कहा कि मृगराज! आप कहां जाते हैं शेर ने कहा कि कुछ पूछो ही नहीं, बन्दर ने कहा कि कुछ

तो बतलाइये, शेर ने कहा कि मेरे मकान में एक रानी और दूसरा राजा आ बैठे हैं। शेर के मांस का खाना खाते हैं। दो शेर उन के पास कल के मरे रक्खे हैं। अब दो शेरों को मारने के लिये वह राजा फिर निकला है। मैं बड़े यत्न से प्राण बचा कर भाग आया हूं। बन्दर ने कहा कि आप के मकान में राजा रानी कोई नहीं। किन्तु गीदड़ और गीदड़ी बैठे हैं। शेर ने कहा कि इसमें सबूत क्या है, बन्दरने कहा चलिए हमारे साथ हम दिखलाते हैं। शेर ने कहा कि आप कूदकर वृक्षपर जा बैठेंगे हम मारे जायंगे, बन्दर ने कहा कि यह पांच सातसौ हाथ लम्बा रस्सा किसी का पड़ा है, एक तर्फ से मैं आप के गले में बांध देता हूं, दूसरी तर्फ से मैं अपने गले में बांधता हूं, मैं आगे २ चलूंगा आप मेरे पीछे २ आना शेर ने कहा कि अच्छी बात, बन्दरने वैसे ही किया आगे २ बन्दर चला पीछेसे शेर चलने लगा, गीदड़ी को ज्ञान हो गया कि अब शेर को बन्दर लिये आता है। गीदड़से बोली कि अब मरेंगे, गीदड़ ने कहा कि तुम मकान में बैठो जहां अक्ल है वहां कोई नहीं मार सकता। देखो अभी शेर भागता है बन्दर दरवाजे के पास आ उपस्थित हुआ भीतर से गीदड़ बोला कि डामियर सूअर नमकहराम बन्दर! हमने तुमको हुक्म दिया था कि दो शेर ले आओ। तुम एक शेर लाया है, खबरदार अब दूसरे शेर की एवज में तुम को हलाल करता हूं इस बात को सुनकर शेर तो ऐसा भागा कि बन्दरके रोकने पर भी न रुका समझा कि राजा और रानी हो ने इस बन्दर को जासूस बना कर रक्खा है यह धोखा देकर हम को ले आया है। सिद्धान्त यह है कि शेरतो दूसरे जंगल को निकल गया, बन्दर घसिटता २ मारा गया, गीदड़ गीदड़ी आराम से शेर के मकान में रहने लगे। अब विचारना चाहिये कि जब जानवर भी अक्ल की उन्नति करते हैं तो पूर्वोक्त रीति से उनको भी अच्छे २ नतीजे मिलते हैं तो जो मनुष्य होकर अक्ल की उन्नति करेगा वह निर्विघ्न सर्वोत्तम कामों को संपादन क्यों न करेगा किन्तु अवश्य करेगा। अभिप्राय यह है कि अब हिन्दुधर्मवीर सातवें बुद्धिरूपी साधारण धर्म को भी भलीभांति से संपादन करेंगे और अपने सन्तानों को भी संपादन करा देंगे तो कोई भी ब्रह्माण्डभर में उन को न बहका सकेगा ॥ ७ ॥

आठवां मनु जी ने विद्या को भी धर्म करके वर्णन किया है। जितने बुरे काम हैं वह सब अविद्या से होते हैं। और जितने अच्छे काम हैं, वह सब विद्या से होते हैं। इस से मनुजीने विद्या को भी धर्म कहा है। यद्यपि विद्या पढ़न के व्याख्यान में हम ने विद्या का माहात्म्य विस्तारपूर्वक

वर्णन किया है तथापि धर्मप्रकरण में भी किञ्चित् विद्याका मण्डन और अविद्या का खण्डन किया जाता है। जैसे कि—

अविद्यायामन्तरेवर्त्तमानाः स्वयंधीराःपण्डितंमन्यमानाः०।

इत्यादि मन्त्रोंमें विद्याहीन अविद्वान् गप्पी पण्डितोंका खण्डन किया है।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनि।

इत्यादि श्लोकों का सिद्धान्त यह है कि विद्वान् को चाहिये कि सर्व जीवों में समदृष्टि रक्खे और नम्रता युक्त रहे विद्या विना मनुष्यको बोलने की अक्ल नहीं आती॥

एक नगर में एक विद्वान् रईस ने बिरादरीको निमन्त्रण दिया, नाना प्रकार का भोजन तैयार कराया, बिरादरी के लोगों ने प्रसन्न वदन होकर भोजन खाया विद्वान् रईसने बिरादरी के लोगों से प्रार्थना पूर्वक कहा कि मैं आपका शुक्रिया अदा करता हूं क्योंकि आप मेरे गरीबखाने पर तशरीफ लाए, और जो कुछ मुझसे रूखा सूखा बन पड़ा वह आपने प्रसन्न वदन होकर खाया, बिरादरी में एक मूर्ख रईसने विपरीत समझा और निश्चय किया कि बड़ा साहूकार होकर भी जो मनुष्य अपने को नीच कहता है उसकी इज्जत अधिक होती है। ऐसा विचार कर वह रईस अपने मकानमें गया, वह रईस धनी बहुत था परन्तु विद्या उस में कुछ भी नहीं थी, उसने भी अपनी बिरादरी का निमन्त्रण दिया, हजारों रुपये खर्चकर भोजन बनवाया, जब सर्व बिरादरीके लोग खाचुके तो उस ने भी बिरादरी से प्रार्थना की कि ऐ साहबान! आपने मुझ पर बड़ी कृपा करी, क्योंकि आप मुझ गरीबके पायखाने में तशरीफ लाए, और जो कुछ गू गोबर मैंने आप साहिबों के आगे रक्खा उसे आप प्रसन्न हो कर खा गए, इस को सुनकर बिरादरीके लोग गुस्से हो कर चले गये, समझा कि इस मूर्ख ने हम को मकान पर बुलाकर बेइज्जत किया। इस उदाहरण का सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि विद्याके विना धनी लोग भी अण्ड बण्ड बकने लग जाते हैं॥

(विद्याकामदुघाधेनु०) इसका सिद्धान्त यह है कि जैसे कामधेनु गौसे मनुष्यकी सर्वकामनाएं पूर्ण होती हैं। वैसे ही विद्यारूपी कामधेनु गौ से भी मनुष्य की सर्व कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। (विद्यारूपं कुरूपाणां०) इसका मतलब यह है कि विद्वानों में रूपहीन मनुष्य भी सुशोभित होता है। (येषांनविद्या०) इस में भर्तृहरि जी वर्णन करते हैं कि विद्याहीन मनुष्य पशु है। विद्या ही से मनुष्यको सर्वोत्तम कार्य करनेका पूर्णज्ञान होता है। विद्या विना मनुष्य को कुत्ते की पूंछ के समान वर्णन किया है। जैसे

कुत्ते की पूंछ न गुह्यांग को ढांकती है और न मक्खी को उड़ा सकती है। वैसे ही विद्याहीन मनुष्य न अपना भला कर सकता है और न दूसरे का भला करने में समर्थ हो सकता है। हिन्दुशास्त्र का सिद्धान्त यह है कि साधारण मनुष्य का अपने घर ही में सत्कार होता है। नंबरदार का सत्कार अपने ग्राम में होता है। राजा का सत्कार अपनी रियासत में होता है। परन्तु विद्वान् का सत्कार सब देशों में होता है। मनु जी का वर्णन है कि जैसे कुदाली से खोदने करके पृथिवी से जल निकल आता है वैसे ही गुरुभक्त विद्यार्थी के मन में शीघ्र ही वेदादि सत्यविद्या का लाभ भी गुरु से हो जाता है। अंगरेजी राज्य में यद्यपि संस्कृत विद्या का अंगरेजी भाषा में दर २ प्रकाश हो रहा है तथापि संस्कृत की पदार्थ विद्या अर्थात् फिलोसफी अत्यन्त सूक्ष्म है। वह विना संस्कृत भाषा के दूसरी किसी भाषा में दर्शन नहीं दे सक्ती॥

परीवादात्खरोभवति श्वावैभवतिनिन्दकः।
परिभोक्ताकृमिर्भवति कीटोभवतिमत्सरी॥

इस में मनुजी की प्रतिज्ञा है कि जो वेदादि विद्या पढ़ाने वाले आचार्य हैं जो विद्यार्थी कहा कर उन से वितण्डा और जल्प करता है वह विद्यार्थी कुत्ते की योनि में जाता है। जो अध्यापक के द्रव्य को उठा लेता है, वह विद्यार्थी विष्ठा का कीड़ा होता है। जो अध्यापक की सर्वोत्तमता को नहीं सहार सक्ता वह विद्यार्थी विष्ठा के कीड़े से कुछ मोटा कीड़ा अर्थात् काले रंग का कीड़ा होता है॥

नतेनवृद्धोभवति येनास्यपलितंशिरः।
योवैयुवाप्यधीयानस्तंदेवाःस्थविरंविदुः॥

इस में मनुजी कहते हैं कि शिर के बाल सफेद हो जाने से मनुष्य बड़ा नहीं हो सक्ता, किन्तु जो युवावस्था वाला भी वेदादि परा अपरा विद्या को पूर्ण रीति से संपादन कर लेता है तो उसी को विद्वान् लोग बड़ा कहते हैं

विद्ययैवसमंकामं मर्त्तव्यंब्रह्मवादिना।
आपद्यपिहिघोरायां नत्वेनामिरिणेवपेत्॥

इस में मनु जी कहते हैं कि जो विद्या के पढ़ाने वाला अध्यापक हो उस को मर जाना अच्छा है परन्तु कुपात्र रूपी भूमि में विद्या रूपी कल्पतरु का बीज न बोवै—

विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिष्टेऽस्मिरक्षमाम्।
असूयकायमांमादास्तथास्यांवीर्यवत्तमा॥

इस में मनुजी कहते हैं कि एक समय आत्मविद्या की अभिमानी सरस्वती देवी एक श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आत्मज्ञानी विद्वान्के पास जाकर पुकारने लगी कि मैं आप की निधि हूं आप मेरी रक्षा करो कुपात्र के प्रति मुझे कभी न दीजिये। किन्तु सुपात्र में मुझ आत्मविद्या को दान दीजिये, कि जिस से मैं अधिक लाभ पहुंचाने में समर्थ हो जाऊं। इत्यादि विद्याके लाभ और विद्या के न होने से हानि होती है तथा सुपात्र को विद्या देने और कुपात्र को न देने पर अनेक प्रमाण हैं ॥

विद्या वीचारी तां पर उपकारी। विद्या नहीं मुक्ति विनज्ञान॥

इत्यादि प्रमाण विद्या की प्रशंसा पर गुरु ग्रन्थसाहिब के भी हैं ॥

सो पण्डित जो मन प्रबोधे। राम नाम आत्मामें सोधे।
रामनाम सारस पीवे। तिस पण्डितके उपदेश जगजीवे॥
चहुं वर्णाको दे उपदेश। नानक तिस पंडितको सदा आदेश॥

इत्यादि भी गुरुग्रन्थसाहिब ही के प्रमाण हैं। अभिप्राय यह है कि मनु जी ने विद्या को आठवें प्रकार का धर्म वर्णन किया है जब हिन्दु और अपने बालकों को पूरी वेदादि विद्या तथा साधारण धर्म सिखला देंगे तो उन को कोई भी बहका न सकेगा ॥

सत्यको मनु जीने नववां साधारण धर्म कहा है (नहिसत्यात्परोधर्मो०) इस में व्यास भगवान् कहते हैं कि सत्य के सदृश कोई भी सर्वोत्तम धर्म नहीं है (बोलिये सच धर्म झूठ न बोलिये) यह गुरु ग्रन्थ साहब का वचन भी साधारण सत्य धर्म ही का बोधक है ॥ (सत्यमेव जयते नानृतम्) इस मुण्डकोपनिषद् का सिद्धान्त यह है कि सत्यका सदा जय और झूठका पराजय होता है ॥

(ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्)

इस प्रश्नोपनिषद् वाक्यका सिद्धान्त यह है कि सत्य हीमें ब्रह्मचर्य स्थित है (सत्यंधर्मः सनातनः) इस महाभारतके प्रमाण से सिद्ध होता है कि सनातनधर्म एक सत्य ही है। यद्यपि सत्य की प्रशंसा से अन्य धृत्यादि धर्मों की नीचता पाई जाती है तथापि स्व स्वप्रकरण में धृत्यादि धर्म्मों की सर्वोत्तमता इस लिये दर्शाई है कि करोड़ों विद्याहीनों ने दुष्ट कर्मों को भी धर्म मान रक्खा है। उन से विलक्षणता दर्शाने के लिये धृत्यादि धर्म्मों को उन्हीं से सर्वोत्तमता का वर्णन किया है ॥

स्थितिर्हिसत्यंधर्म्मस्य तस्मात्सत्यं नलोपयेत्।

इसमें व्यास जी कहते हैं कि सत्य साधारण धर्म का स्थिर होना ही उत्तम है उससे मनुष्य को उचित है कि सत्य का लोप कदापि न करे ॥ (सत्यंदेवेषुजागर्ति) इस में व्यास जी कहते हैं कि विष्णु आदि देवों में सत्य धर्म सदा जागता है ॥ (प्राणिनांजननंसत्यं०) इस में व्यास मुनिजी का सिद्धान्त यह है कि जीवोंमें मनुष्यपन का लाभ कराने वाला एक सत्यही है॥

सत्येनवायुरभ्येतिसत्येनतपतेरविः ।
सत्येनचाग्निर्दहति स्वर्गःसत्येप्रतिष्ठितः ॥

इस में वेदव्यास जी कहते हैं कि सत्य ही की सत्तास्फूर्तिसे वायु में चेष्टा होती है । सत्य ही की सत्तास्फूर्ति से सूर्य प्रकाशित हो रहा है । सत्य ही की सत्तास्फूर्ति से अग्नि में दाहादिक्रिया की शक्ति होती है ॥ स्वर्गलोक जो कि राजा इन्द्रकी रियासत है वह भी सत्य ही की सत्तास्फूर्ति से सुशोभित होती है ॥

यतोधर्मस्ततःसत्यं सर्वंसत्येनवर्द्धते ।

इस में व्यास भगवान् वर्णन करते हैं कि सत्य हीकी सत्तास्फूर्तिसे वर्णा-श्रमके धर्म प्रकाशित होते हैं । सत्य की सत्तास्फूर्ति ही से बाग तड़ागा-दि के वृक्ष तथा माता के गर्भाशय में जीवों के शरीरों की वृद्धि होती है (ओंकारः सत्यमेवच) इस में व्यास जी वर्णन करते हैं कि सत्य ही की सत्तास्फूर्ति से ईश्वर का ओंकारनाम, सुशोभित होता है त्रिकाल अबाध पदार्थका नाम सत्य है नाम रूप दृश्य जाग्रत् के पदार्थों में जो सत्ताका स्वप्र काशसे भान होता है वह सत्ता ब्रह्म स्वरूप है । स्वप्न के पदार्थों में जो सत्ता है वह भी ब्रह्म स्वरूप है सुषुप्ति की सत्ता भी त्रिकाल अबाध ब्रह्म स्वरूप है उस सत्य स्वरूप ब्रह्म चैतन्यको सत्य और मिथ्या नाम रूप दृश्य को मिथ्या वर्णन करना ही सत्यभाषण है ॥

अब सत्यभाषण पर उदाहरण लिखा जाता है (तथाहि) एक नगर में एक राजाकी रानी स्नान करने लगी, उसपर किसी जानवर ने विष्ठाकर दिया, रानीने राजा से कहा कि आप सब जानवरोंको मरवा डालिए, यदि आप ऐसा न करेंगे तो हम मर जांयगी राजा ने जानवरों का मारना आ-रंभ करवा दिया । एक बिजड़ा अर्थात् बया जानवर था उसने जानवरों से कहा कि आप राजा को इत्तिला दीजिये कि आप जानवरों के मरवाने की तकलीफ न कीजिये । किन्तु हमारे राजा बिजड़ेको बुला लीजिये वह संसारभरके

जानवरोंको मारनेके लिये उपस्थित कर देगा। जण्टलमैन जानवरों ने वैसा ही राजा से जाकर कहा राजाने जानवरों का मारना बन्द कर दिया एकवर्षके पश्चात् वह बिजड़ा हजारों जानवरों को साथ लेकर राजाके इजलास में आ बैठा। राजा ने उस से पूछा कि आप एकवर्ष कहां रहे बिजड़ा राजा ने राजा से कहा कि दो मनुष्यों के मुकद्दमे का फैसला करते रहे थे। राजा ने पूछा कि वह मुकद्दमा क्या था और उसका फैसला कैसा हुआ। बिजड़ा साहिब ने कहा कि मुद्दई बोलता था संसार में स्त्रियां बहुत हैं। और मुद्दाला का इजहार था कि जगत् में मनुष्य बहुत हैं। परन्तु फैसलेमें कहा गया कि जगतमें स्त्रियां बहुत हैं क्योंकि एक तो ईश्वर की रची स्त्रियां अनुभव सिद्ध हैं। परन्तु जो स्त्री की आज्ञामें चलें वह मनुष्य भी एक प्रकार की स्त्री ही है। इस को सुन राजा ने सोचा कि हम भी तो स्त्री की आज्ञा से जानवरों को मरवाने लगे हैं। सिद्धान्त यह कि राजाने प्रतिज्ञा लिख दी कि हम जानवरों को कभी न मरवाएंगे। इस को सुन बिजड़े राजाके समेत सब जानवर चले गए। कुछ दिन के पश्चात् फिर रानी की आज्ञा से राजा ने जानवरों का मरवाना शुरू कर दिया। फिर जण्टलमैन जानवरों ने राजाको समझाया कि हमारे राजाको बुलवा लीजिये सब जानवर आप ही आजावेंगे राजा ने जानवरों का मारना बन्द कर दिया। छः महीने के पश्चात् फिर हजारों जानवरों की फौज को साथ लेकर बिजड़ा साहिब राजा के इजलास में आ उपस्थित हुए। राजा ने बिजड़ा से पूछा कि आप छः महीने कहां रहे उन ने उत्तर दिया कि हमारे इजलास में मुकद्दमा पेश था उस की निगरानी करते रहे। राजा ने पूछा वह मुकद्दमा कैसा था और फैसला क्या हुआ। बिजड़ा राजाने कहा कि मुद्दई का इजहार था कि संसार में मलद्वार बहुत हैं मुद्दालह का इजहार था कि संसार में मुख बहुत हैं। परन्तु फैसले में सिद्ध हुआ कि संसार में मलद्वार ही बहुत हैं। क्योंकि जो मनुष्य अपने मुख से कोई प्रतिज्ञा करके उस प्रतिज्ञा को तोड़ देता है उस मनुष्य का मुख मलद्वार ही कहा जाता है। इसको सुन राजाने जान लिया कि मेरा मुख भी तो मलद्वार ही सिद्ध हुआ क्योंकि मैंने एक बार जानवरों के न मारने की प्रतिज्ञा करी फिर उसे छोड़ दिया। अब चाहें रानी मर जावे परन्तु जानवरों के न मारनेकी सत्य प्रतिज्ञा को मैं कभी न छोड़ूंगा। इस को सुनकर सब जानवर चले गए। इस उदाहरण से भी यही सिद्धान्त निकला कि सत्य धर्म सर्वोत्तम है इस नवें साधारण सत्य धर्म को भी जब हिन्दु लोग आप धारण करेंगे वा सन्तानों को धारण करवावेंगे तो उनको संसार भर में कोई न बहका सकेगा ॥ ९ ॥

दशवां धर्म्म अक्रोध है क्रोध के न करने का नाम अक्रोध है । (क्रो-धं वैवस्वतोराजा०) इसमें चाणक्य मुनि ने क्रोध का खण्डन किया है । (किमरिभिः क्रोधोस्ति) इसमें भर्तृहरि जी कहते हैं कि जिसमें क्रोध है। उस को दूसरे शत्रु की आवश्यकता कुछ नहीं रहती ।

नस्यात्सन्धिर्मनुष्याणां क्रोधमूलोहिविग्रहः ।

हन्युर्हिपितरःपुत्रान् पुत्रांश्चापिहन्युः पितॄन् ॥

इस में व्यास जी कहते हैं क्रोधसे मनुष्योंमें मेल नहीं हो सकता क्रोध से शरीर नष्ट हो जाता है क्रोध में आया पिता पुत्र को मार डालता है । क्रोध में आया पुत्र पिता की हिंसा कर डालता है । क्रोध में आया पति स्त्री की हत्या कर देता है । क्रोध में आई स्त्री पतिको मार डालती है । उस से ऋषि मुनियों का वा वेदकर्त्ता ईश्वर का यही उद्देश्य है कि क्रोध को मनुष्य दूर कर देवे उस ही का नाम अक्रोध है ।

कालकूट पुनि क्रोध में बड़ो अन्तरौ जान ।

क्रोध निजाश्रय को दहत विष नहिं दहत प्रमान ।

इस का अभिप्राय यह कि विष सर्प के मुख मक्खी के सिर विच्छू के डंक में रहता है परन्तु उनको मारता नहीं क्रोध जिस में उत्पन्न होता है पहिले उस को जलाता है फिर दूसरों की हिंसा करवाता है । सरकारी आईन में क्रोध दिलाने वाले को सजा लिखी है । शुभ गुण रूपी गुलचमन भी क्रोधरूपी अग्निसे मनुष्य के अन्तःकरण रूपी भूमि में से जल जाता है ।

क्रोधमें आया मनुष्य सुनता हुआ भी नहीं सुनता, देखता हुआ भी नहीं देखता क्रोध में आया मित्र मित्र को मार डालता है क्रोधीके मन में आत्मज्ञान का होना असंभव है जिस मनुष्य के अन्तःकरण में आत्मज्ञान का लाभ होता है उस के अन्तःकरणमें क्रोध का निवास कभी नहीं हो सक्ता । क्रोधसे देखिये दुर्वासा ऋषि की भी कैसी दुर्दशा हुई थी उस से ऋषिमुनियों का यही अभिप्राय है कि क्रोध को छोड़ अक्रोध साधारण धर्म के संपादन करने का मनुष्य पुरुषार्थ करे । जब अक्रोध साधारण धर्म को हिन्दु सन्तान संपादन कर लेंगे तो उनको नवीन मतावलंबी मिथ्यावादी कभी गुमराह नहीं कर सकेंगे । इस व्याख्यान में हमने जितेन्द्रियता बुद्धि की वृद्धिता विद्या की सर्वोत्तमता सत्यभाषणता और अक्रोधता यह पांच साधारण हिन्दु धर्म के लक्षण कहे और पांच प्रकार से साधारण हिन्दु धर्म का इससे प्रथम वर्णन हो चुका है अब यह व्याख्यान भी समाप्त हुआ ।

ओ३म् शान्तिः ३ ॥

आर्यसमाजोक्त ३० प्रश्नोत्तर

व्याख्यान नं० २२

ओम् शन्नोमित्रः शंवरुणः शन्नोभवत्वर्य्यमा। शंन्न-इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नोविष्णुरुरुक्रमः ॥ ऋ० मण्ड० १ अ० ६ मं० ९ ॥ ओम् ॥ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

प्रशंसात्मक मंगल के पश्चात् दानापुर आर्यसमाजियों के तीस प्रश्नों के उत्तर लिखे जाते हैं। जैसे कि—

(१) ईश्वर के लक्षण गुण कर्म और स्वभाव क्या २ हैं।

यह आर्यसमाजियों का पहिला प्रश्न है, इसका उत्तर वक्ष्यमाण रीति से दिया जाता है (तथाहि) (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) यह तैत्तिरीयोपनिषद् का मन्त्र है, इसमें ईश्वर का स्वरूप लक्षण है। (जन्माद्यस्य यतः) यह वेदान्तदर्शन का सूत्र है, इस सूत्र में ईश्वर का तटस्थ लक्षण है, (योगुणैः सह वर्त्तते स गुणः) इसमें सर्व सुख पवित्रादि ईश्वर के गुण वर्णन किये हैं। जीव को कर्मों का फल देना ही ईश्वर का सर्वज्ञता कर्म है, दयालु न्यायकारी ईश्वरका स्वभाव है। यहां तक आर्यसमाजियों के प्रथम प्रश्न का सप्रमाण उत्तर दिया ॥ १ ॥

दूसरा प्रश्न यह है कि (२) यदि ईश्वर साकार है तो किसके आधार ठहरा हुआ है, क्योंकि साकार पदार्थ बिना आधार के नहीं रह सकता। अब आर्यसमाजियों के इस दूसरे प्रश्न का उत्तर दिया जाता है, जैसे कि (सत्या० समुल्लास ७) वहां दयानन्द ने (अहं ब्रह्मास्मि) इस मन्त्रको लिखा है इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं, दयानन्द के इस लेख से सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि आर्यमत वाले ईश्वर का आधार एक अवकाश है। यदि आर्यसमाजी दयानन्द के इस लेख को सत्य मानें तो सत्यार्थप्रकाश का अन्य लेख मिथ्या होता है। क्योंकि (सत्या० समु० १)

विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन्यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः ॥

दयानन्द के लेख से आकाश का आधार ईश्वर सिद्ध हो चुका। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के दोनों लेख झूठे हैं वेदान्त की रीति से जीवेश्वरादि सर्व का आधार शुद्ध ब्रह्मचेतन है। यद्यपि शुद्धब्रह्म चेतन को जीवेश्वरादि का आधार मानें तो निर्विकारता की हानि होगी, तथापि अध्यस्त जीवेश्वरादि के आधार होनेसे निर्विकारता की हानि होनेका सर्वथा असम्भव है। यहां तक आर्यसमाजियों के दूसरे प्रश्न का उत्तर दिया॥ २॥

(३) साकार ईश्वरका रूप रंग किस प्रकार का है, क्योंकि सारी साकार वस्तु किसी न किसी आकार और रंग ढंग के बिना हो ही नहीं सकी। यह आर्यसमाजियों का तीसरा प्रश्न है, अब आगे इसका उत्तर दिया जाता है (तथाहि) (य० अ० ३१ मं० २२)

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च० नक्षत्राणिरूपम्०॥

इस मन्त्र में तारे आदि पदार्थों को ईश्वर का रूप वर्णन किया है, (ऋग्वेदादिभाष्यभू०) (इदंविष्णुर्विचक्रमे०) इसके भाष्य में दयानन्द ने प्रकृति परमाणु को ईश्वर की सामर्थ्य कहा है, उससे प्रकृतिस्थ सर्व रूप रंग ईश्वर के सिद्ध होचुके, यहां तक आर्यों के तीसरे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ॥ ३॥

(४) साकार वस्तु व्यापक हो सकती है वा नहीं। यह आर्यों का चौथा प्रश्न है अब इसका उत्तर दिया जाता है जैसे कि सत्यार्थप्रकाश समु० १

सपूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात्।

इस योगसूत्र के भाष्य में दयानन्दने आकाशको प्रकृतिका अवयव कहा है उससे आकाश साकार है क्योंकि आठवें समुल्लास में दयानन्द ही ने प्रकृति को साकार लिखा है। साकार अवयवी का अवयव आकाश भी साकार है फिर उसी सत्यार्थप्रकाश का समुल्लास ७ (यदायदाहि धर्मस्य०) इस गीता श्लोक के भाष्यस्थ प्रश्नोत्तर प्रकरण में दयानन्द ने आकाश को सर्वव्यापक अनन्त वर्णन किया है। यदि इस लेखको मिथ्या मानें तो दयानन्द मिथ्या वादी होगा, यदि सत्य मानें तो साकार आकाश जैसे सर्वव्यापक सिद्ध हो चुका वैसेही साकार ईश्वर भी सर्व व्यापक है (किंच) जैसे साकार चीनी का भरा कलश हो तो उसमें साकार घृत भी व्यापक हो जाता है, साकार दूध में जैसे साकार घृत व्यापक है, साकार पदार्थों में जैसे साकार अग्नि व्यापक है, वैसे ही साकार पदार्थों में साकार ईश्वर व्यापक है। त्रिगु-

त्रात्मक माया नाम प्रकृति ही प्रकरण में ईश्वर का आकार है। यहां तक आर्यों के चौथे प्रश्न का उत्तर पूरा हुआ ॥ ४ ॥

(५) जो जो साकार वस्तु है उसका नाप हो सकता है वा नहीं यदि हो सकता है तो ईश्वर की लम्बाई चौड़ाई वा उसकी परिधि लिखिए कितनी है। यह आर्यों का पांचवां प्रश्न है इस का उत्तर नीचे लिखा जाता है। य० अ० ३१ मन्त्र १५—

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः० ।

इस मन्त्रमें इक्कीस परिधि ईश्वरकी वर्णन की गई हैं परन्तु यदि दयानन्द जी के लेख से ईश्वर की सामर्थ्य प्रकृति परमाणु सिद्ध हो चुके हैं तो जितनी लम्बी चौड़ी प्रकृति है उतना ही लम्बा चौड़ा आर्यों का ईश्वर सिद्ध होता है आर्यों को चाहिये कि ईश्वर को नाप लेवें यदि प्रकृति से अधिक भी ईश्वर को मानें तो वह ईश्वर सामर्थ्य हीन मुर्दा हो जायगा। यदि प्रकृति के बाहर अधिक न मानें तो ईश्वर प्रकृति जितना ही लम्बा चौड़ा सिद्ध होगा। यहां तक आर्यों के पांचवें प्रश्न का उत्तर दिया ॥ ५ ॥

(६) जो वस्तु साकार होती है वह सत्य होती है वा असत्य अनादि होती है वा सादि। यह आर्यों का छठा प्रश्न है इस प्रश्न का सिद्धान्त यह है कि साकार ईश्वर सत्य है वा असत्य अनादि है, वा सादि इसका उत्तर वेदान्त रीति से दिया जाता है जैसे कि जीवेश्वर और जगत् यह सर्व सत्यासत्य से तथा अनादि सादि से विलक्षण अनिर्वचनीय हैं अभिप्राय यह है कि साकार ईश्वर के स्वरूप में जो चेतन है वह सर्वथा सर्वदा त्रिकाल अबाध सत्य और अनादि है। परन्तु ईश्वर के स्वरूप में जो त्रिगुणात्मक माया है वह सत्यासत्य अनादि सादि से विलक्षण अनिर्वचनीय है। माया युक्त चेतन ईश्वर है माया विना केवल चेतन में ईश्वरता का अत्यन्ताभाव है यहां तक आर्यों के छठे प्रश्न का उत्तर पूरा हुआ ॥ ६ ॥

(७) यदि वह मूर्त्तिमान् है तो उसकी मूर्त्ति क्या मनुष्य पशु पहाड़ वा वृक्षादिकों के समान है अर्थात् उस की आकृति किस प्रकार की है। यह आर्यों का सातवां प्रश्न है अब इस का उत्तर दिया जाता है जैसे कि (शत० कां० १४ ब्रा० कं० ७ से २६ तक) (यस्य पृथिवी शरीरम्०) इत्यादि मन्त्रों में ईश्वर की नाना भांति की मूर्त्तियों का वर्णन किया है। (य० अ० ३२ मं० ४) (एषोह० सर्वतोमुख०) (सर्वतो मुखाद्यवयवा यस्य स सर्वतो मुखः)

इस वेद मन्त्र से सर्व मूर्त्तियों वाला ईश्वरही सिद्ध हो चुका है (ऋ० मण्ड० ३ सू० ५५ मं० ९)-

निवेवेति पलितो दूत० श्वेतकेशःसमाचारदातेव ।

इस मन्त्र में ईश्वर को दयानन्द ने बुड्ढे चिट्ठीरसां के सदृश वर्णन किया है (वृद्धेव वाशी०) इस मन्त्र को आर्याभिविनय में लिखा है और इस के भाष्य में दयानन्द ने ईश्वर को बैल और घोड़े के सदृश वर्णन किया है दयानन्द के लेखों से ईश्वर की नाना भांति की मूर्त्तियां सिद्ध होती हैं परन्तु वेदान्त रीति से रामकृष्णादि नाम वाली मूर्त्तियां ईश्वर ही की अनुभव सिद्ध हैं । यहां तक आर्यों के सातवें प्रश्नका उत्तर पूरा हुआ ॥ ७ ॥

(८) उस ईश्वरकी मूर्त्ति एकरस रहती वा बदलती रहती है और जैसे अन्य मूर्त्ति हैं वैसे यह भी विकारवान् है वा नहीं । यह आर्यों का आठवां प्रश्न है अब इस का उत्तर दिया जाता है जैसे कि (सत्यार्थ० अ० ८)

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः० ।

इस के भाष्य में दयानन्द ने प्रकृति को अविकारिणी कहा है और दयानन्दके लेख से प्रकृति साकार और ईश्वर की सामर्थ्य सिद्ध हो चुकी है सिद्धान्त यह है कि ईश्वर की प्रकृति मूर्त्ति एक रस बनी रहती है परन्तु रामकृष्णादि नाम वाली ईश्वर की मूर्त्तियों का दर्शन अदर्शन होता रहता है । नास्तिसे अस्ति न किसी पदार्थ की थी न है और न कदापि होने का सम्भव है। यहां तक आर्योंके आठवें प्रश्नका उत्तर कहा ॥ ८ ॥

(९) वेदोंमें कोई स्पष्ट मंत्र बताइये कि जिसमें यह विधान हो कि परमात्माकी मूर्त्ति अमुक मनुष्य बना सकता और उसे भोग विलास करा सकता है और उसे यह फल मिलता वा मिलेगा ॥ आर्यों का यह नववां प्रश्न है अब इस का उत्तर दिया जाता है जैसे कि ईश्वर की प्रकृतिमूर्त्ति तो आत्मज्ञान तक बिना बनाये एक रस रहती है परन्तु (शत० कां० १४ ब्रा० २ कं० ९)

अथमृत्पिण्डं परिगृह्णाति तन्मृदश्चापाञ्चमहावीराः कृता भवन्ति ।

इत्यादि वेदमन्त्रों में महावीर शब्द के वाच्य ईश्वरकी मूर्त्ति का बनाना कहा है और कारीगर के ज्ञान इच्छा प्रयत्नरूपी निमित्त कारण से रामकृष्णादि नाम वाली ईश्वर की मूर्त्तियां बनाई जाती हैं । यदि कहो कि

उक्त मन्त्र ब्राह्मण ग्रन्थों का है वेद का नहीं सो भी आप की अविद्या है क्योंकि युक्ति और वेदादि प्रमाणोंसे ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद सिद्ध हो चुके हैं रामकृष्णादि नाम वाली ईश्वर की मूर्त्तियों के ध्यानपूजनसे मन एकाग्र होता है ईश्वर के गुण स्मरण होते हैं ईश्वर प्रसन्न होता है। यहां तक आर्योंके नववें प्रश्न का उत्तर पूरा हुआ ॥ ९ ॥

(१०) धर्मसभा जिन २ पुस्तकों को प्रमाण मानती है, उनमें पाषाणादि मूर्त्तिका खण्डन लिखा है, वा नहीं ॥ यह आर्यों का दशवां प्रश्न है। अब इस का उत्तर दिया जाता है (प्रतिमानां च भेदकः) इस श्लोकमें मनु जी ने वर्णन किया है कि जो मनुष्य मूर्त्ति को तोड़ डाले उसको राजा पांचसौ रुपयाका दण्ड देवे और मूर्त्ति उससे बनवा लेवे। इत्यादि प्रमाणोंका सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि हिन्दुमत के ग्रन्थों में मूर्त्ति के ध्यान पूजन का खण्डन कहीं नहीं लिखा किन्तु मण्डन लिखा है। वेदान्त के ग्रन्थों में कहा है कि जब मूर्त्तिके ध्यानपूजनसे मन एकाग्र हो जावे तो मूर्त्तिका ध्यान पूजन छोड़कर वेदान्त का श्रवण मनन और निदिध्यासन ही जिज्ञासु करे। वेदान्तके इस सिद्धान्त से मूर्त्ति के ध्यान पूजन का खण्डन सिद्ध नहीं होता, किन्तु आत्मज्ञान होनेके पश्चात् गृहस्थ अथवा संन्यासी लोक संग्रहके लिये मूर्त्ति का ध्यान पूजन करे तो उस की हानि नहीं है। किन्तु वेदान्तश्रवण के अधिकारी नाम जिज्ञासु को तो मूर्त्ति के ध्यान पूजन से अवश्य हानि होती है, क्योंकि मूर्त्ति अनात्म साकार पदार्थ है। आत्मा निराकार पदार्थ है, वेदान्त के ग्रन्थों से सिद्ध हो चुका है कि निराकार आत्मा का निश्चय तभी होता है कि जब अनात्म पदार्थों का निश्चय उठ जाता है। क्योंकि अन्तःकरण का वृत्तिरूप ज्ञान एक कालमें एक पदार्थ ही के आकारका होता है। जब साकार मूर्त्ति का ध्यान होगा तो निराकार आत्मा के ज्ञान का होना सर्वथा असंभव अनर्थ प्रतिपादक होगा। जब वृत्तिज्ञान आत्मा की ओर होगा, तो अनात्म साकार मूर्त्ति का ध्यान पूजन न होगा। उस से जिज्ञासु के लिये मूर्त्ति के ध्यान पूजनका सर्वथा निषेध है। किन्तु जो वेदान्त श्रवणका अधिकारी नाम जिज्ञासु नहीं हुआ, मन जिसका चंचल है, उसके लिये अथवा आत्मज्ञान के पश्चात् लोक संग्रहार्थ गृहस्थ वा संन्यासी ज्ञानीके लिये भी मूर्त्ति का ध्यानपूजन अवश्य है परन्तु परमहंस संन्यासी के लिये लोकसंग्रहार्थ भी मूर्त्ति के ध्यान पूजन की विधि नहीं, यहां तक आर्यों के दशवें प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ ॥ १० ॥

(११) ईश्वर का ऐसा कोई नाम वेद में आप को मिला है, जो उसके साकारत्व को कथन करे॥ यह आर्यों का ग्यारहवां प्रश्न है, अब इस का उत्तर दिया जाता है जैसे कि—

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्ष० ।

इस मन्त्र में ईश्वरके सहस्र शीर्षादि नाम हैं। षष्ठी तत्पुरुष समासकी रीतिसे ईश्वरके असंख्यात शिर आदि अवयव सिद्ध होते हैं। दयानंदने जो इस मंत्रका अनर्थ किया है, सो युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके विरुद्ध है। क्योंकि दयानन्दकृत वेदभाष्य भूमिकासे सिद्ध हो चुका है कि प्रकृति ईश्वर की सामर्थ्य है, सत्यार्थप्रकाशके आठवें समुल्लास से सिद्ध हो चुका है कि प्रकृति साकार है, दयानन्द ही के लेखोंसे साबित है कि नानाभान्तिके चित्र विचित्र जगत्का उपादान कारण प्रकृति है। उपादान कारण से भिन्न कार्य्य सिद्ध नहीं होता, वेदान्त की रीतिसे आकार विशिष्ट चेतन के ईश्वरादि नाम रूप शब्द शक्तिवृत्ति से शाब्दबोध के हेतु हैं। और शब्दकी लक्षणा-वृत्तिसे ईश्वरादि नाम शुद्ध ब्रह्म चेतन के बोधक हैं। शुद्धब्रह्म चेतन शब्द की शक्तिवृत्तिके अगोचर है। अहन्ता त्वन्ता इदन्तादि वृत्तिके भी शुद्धब्रह्म चेतन सर्वथा अगोचर है, किन्तु साकार ईश्वर चेतन ही सर्ववृत्तियोंके गोचर सिद्ध हो चुका है। उससे भी ईश्वरादि नामरूप शब्द शक्तिवृत्तिसे साकार ईश्वर ही के वाचक हैं। यहांतक आर्योंके ग्यारहवें प्रश्नका उत्तर दिया॥११॥

(१२) जब वह ईश्वर साकार है तो प्रत्यक्ष रूपमें क्यों नहीं दिखाई देता॥ यह आर्योंका बारहवां प्रश्न है, अब इसका उत्तर वर्णन किया जाता है। प्रत्यक्ष प्रमाण से सूक्ष्म साकार पदार्थ दिखाई नहीं देता, जैसे सूक्ष्म साकार पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय चतुष्टय अन्तःकरणादि प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते, वैसे ही ईश्वर भी सूक्ष्म आकार प्रकृति सहित है, वह भी श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रियों से दिखाई नहीं देता। हां साकार जगत् रचना रूप हेतुसे साकार ईश्वरका भी अनुमान प्रमाण द्वारा अनुमिति ज्ञान हो सक्ता है। यदि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश का लेख देखा जाय तो सूक्ष्म आकार युक्त ईश्वर का भी प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाता है, जैसे कि (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १२) (नचान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदन्ति०) इसके भाष्यमें दयानन्द ने कहा है कि इस सृष्टि में परमात्मा के रचना विशेष लिंग को देखके परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है। दयानन्दके इस लेखको यदि आर्य झूठा कहें तो दयानन्द झूठा

होगा। यदि इस लेखको सच्चा कहैं तो ईश्वर प्रत्यक्ष दिखाई देता सिद्ध हो चुका, वेदान्त की रीति से रामकृष्णादि शरीर विशिष्ट ईश्वर चेतन प्रत्यक्ष दिखाई देता है। राम कृष्णादि नाम वाली मूर्त्ति विशिष्ट ईश्वर भी प्रत्यक्ष दिखाई देता सिद्ध हो सक्ता है। क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण मूर्त्तियों में भी व्यापक है. यहां तक आर्यों के बारहवें प्रश्न का उत्तर दिया ॥ १२ ॥

(१३) ईश्वर साकार और निराकार दोनों प्रकारका एक ही साथ हो सक्ता है वा ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं ॥ यह आर्यों का तेरहवां प्रश्न है अब इसका भी उत्तर दिया जाता है जैसे कि—

शत० कां० १४ अ० ३ कं० १। द्वेवावब्रह्मणोरूपेमूर्त्तं-ञ्चैवामूर्त्तंच० ।

इस वेदमंत्र में मूर्त्ति सहित और मूर्त्ति रहित दो प्रकार से साकार निराकार एक ही समय ईश्वरको वर्णन किया है। युक्तिसे भी सिद्ध होता है कि जैसे जीव निराकार साकार एक ही समय है । वैसे ही मायायुक्त साकार केवल चेतनता से निराकार ईश्वर है विरोध नहीं आसक्ता। यहां तक आर्यों के तेरहवें प्रश्न का उत्तर कहा।

(१४) यदि मूर्त्तिपूजा सत्य है और विहित कर्म है तो क्या चार वर्णों और चार आश्रमों में किस के लिये उस का विधान है ॥ यह आर्यों का चतुर्दशवां प्रश्न है अब इस का उत्तर दिया जाता है। जैसे कि आत्मज्ञान का अधिकार मनुष्य मात्र को है वैसे ही मूर्त्ति के ध्यान पूजन का अधिकार भी मनुष्य मात्र को है। क्योंकि मूर्त्ति के ध्यान पूजन से अन्तःकरण का विक्षेप दोष नष्ट हो जाता है। (यद्यपि)

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा तत्र प्रत्येकतानताध्यानम् ।

इत्यादि योग सूत्रों के भाष्य में व्यास मुनि जी ने कहा है कि नाभि आदि देशों में मन लगाने से विक्षेप दोष नष्ट होता है मूर्त्तिके ध्यान पूजन का वहां नाम तक भी नहीं तथापि (मूर्त्तौ घनः) इस पाणिनीय सूत्र और—

व्यक्तिर्विशेषगुणाश्रयो मूर्त्तिः ।

इस गौतम सूत्र से साकार पदार्थ का नाम मूर्त्ति है। प्रकरणमें नाभि भी साकार पदार्थ है उस से नाभि कमल में मन रोकने से भी मन से वि-

क्षेप दोष नष्ट हो जाता है। व्यास जी ने नाभिको भी चक्र नाम से वर्णन किया है। न मानें तो दयानन्दोक्त पंच महायज्ञ विधि का लेख भी मिथ्या होगा क्योंकि वहां दयानन्द ने ध्यान के समय (ओं नाभिः २) इसप्रकार का मन्त्र लिखा है। और नाभि को हाथ से स्पर्श करना कहा है। उस में भी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि नाभि कमलमें रोकनेसे मन का विक्षेप दोष नष्ट हो जाता है। यद्यपि नाभि कमल एक गांठदार टुकड़ा दुर्गन्ध रूप है उस में रोककर मन का विक्षेप दोष नष्ट नहीं हो सकता। तथापि पांचवें अध्याय शौच प्रकरण में मनु जी ने नाभि आदि अंगों को पवित्र वर्णन किया है उससे भी नाभिमें रोकने से मन का विक्षेप दोष दूर हो सकता है हृदय कमलादि देशों में भी व्यास जी ने मनका रोकना वर्णन किया है। अभिप्राय यह कि मूर्त्ति के ध्यान पूजनको मनुष्य मात्र कर सकते हैं। यद्यपि रामकृष्णादि नाम वाली मूर्त्तियां हिन्दुमत में ईश्वर की हैं नाभि हृदय कमलादि को ईश्वर की मूर्त्तियां हिन्दुमतके लोग नहीं मानते तथापि नाभि हृदय कमलादि मूर्त्तियां ईश्वर ही की रचना हैं उस से वे मूर्त्तियां भी ईश्वर ही की हैं अथवा नाभि चक्रादि में भी रामकृष्णादि नाम वाली मूर्त्तियोंका ध्यान हो सकता है उस से भी मनका विक्षेप दोष दूर होजाता है। यहां तक आर्यों के चतुर्दशवें प्रश्न का उत्तर दिया ॥ १४ ॥

(१५) ईश्वरकी कल्पित मूर्त्ति बन सकती है तो उस के पूजनमात्र ही से संसार की उन्नति हो सकती है वा नहीं और आज तक मूर्त्ति पूजा से आर्यावर्त्त को क्या लाभ हुआ है ॥ यह आर्यों का पन्द्रहवां प्रश्न है अब इस का उत्तर लिखा जाता है (तथाहि) मूर्त्तिके ध्यान पूजन से आत्माकी उन्नति होती है। यदि संसार भर के नर नारी मूर्त्तिका ध्यान पूजन विधि पूर्वक करने लग जावें तो अवश्य ही संसार भर के नर नारी आत्मा की उन्नति कर सकते हैं। प्रकरण में लक्षण से सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि जब विधि पूर्वक मूर्त्तिका ध्यान पूजन किया जाता है तो मन एकाग्र हो जाता है एकाग्र हुए मनमें वेदान्त के श्रवण से प्रमाण संशय नष्ट हो जाते हैं। वेदान्त के मनन से मन में से प्रमेय संशय दूर हो जाते हैं। वेदान्त के निदिध्यासन से विपरीत भावना का अत्यन्ताभाव हो जाता है उस के पश्चात् जीवेश्वर के स्वरूप में जो नित्य मुक्त नित्य शुद्ध सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित जो ब्रह्मचेतन है वही ब्रह्मचेतन निरावरण स्व-

प्रकाश से भान होने लग जाता है उसी का नाम आत्मा की उन्नति है उसी का नाम मोक्षपद है। यदि आर्य लोग भी विषयों से विरक्त होकर पूर्वोक्त रीति से मूर्त्ति का ध्यान पूजन करने लग जावें तो अवश्य ही उन के आत्मा की उन्नति हो सकती है। इस से आर्यों का मनुष्य जन्म भी सफल हो सकता है आर्यावर्त्त वासी आर्यों को मोक्ष पद का लाभ भी हो सकता है। यहां तक आर्यों के पन्द्रहवें प्रश्न का उत्तर दिया अब आर्यों के सोलहवें प्रश्न का उत्तर लिखा जाता है ॥ १५ ॥

(१६) आज कल जो मूर्त्तियां प्रचलित हो रही हैं उनका ईश्वर के साथ क्या सदृश सम्बन्ध है। यह आर्यों का सोलहवां प्रश्न है, इसका उत्तर इस प्रकार से है, जैसे कि ईश्वर और मूर्त्तियोंका आधाराधेय भाव सम्बन्ध है, क्योंकि ईश्वर आधार है, मूर्त्तियां आधेय हैं, जैसे भूषणके पकड़नेसे सुवर्ण ही हाथ में आता है, शस्त्र के पकड़ने से लोहा ही हाथ में आता है, वैसे ही मूर्त्ति के ध्यान पूजन से ईश्वर ही का ध्यान पूजन होता है। क्योंकि मूर्त्ति में नाम रूप ईश्वर की शक्ति प्रकृति है और अस्ति भाति प्रिय अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप जो आत्मा मूर्त्ति में है, वही आत्मा ईश्वर शब्द का लक्ष्यार्थ है, मूर्त्तियोंका त्रिकाल अबाध आत्मा के साथ कल्पित तादात्म्य संबन्ध भी कहा जाता है। यह वेदान्त सिद्धान्तकी रीति है, जैसे जल में तरङ्गादिका कल्पित तादात्म्य संबन्ध है, वैसेही मूर्त्तियोंका भी आत्मासे कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है, जैसे तरंगादिका आधार जल, और तरंगादि आधेय है, वैसे ही आत्मा भी मूर्त्तियों का आधार है, मूर्त्तियां आधेय हैं। उससे आत्मा और मूर्त्तियोंका आधाराधेयभाव सम्बन्ध है। सदृश संबन्ध ही कोई नहीं, उससे मूर्त्तियोंका ईश्वरसे सदृश संबन्ध कथन करना सर्वथा असंभव है। यहां तक आर्यों के सोलहवें प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ ॥१६॥

(१७) पूजा पुजारी प्रतिमा शिवलिंग शालिग्राम जगन्नाथ काशीनाथ रूपकेश्वर लंकेश्वर नीलेश्वर भवलेश्वर और बिल्वेश्वरादि शब्दोंका क्या अर्थ है। यह आर्यों का सत्रहवां प्रश्न है, अब इस का उत्तर दिया जाता है, (तथाहि) धातुपाठ की रीति से (पूजा) शब्द का सत्कार अर्थ है, जैसे दयानन्दकी मूर्त्तिका आर्यलोग सत्कार करें तो दयानन्द ही का सत्कार होता है। यदि दयानन्द की मूर्त्तिका आर्य लोग तिरस्कार करें तो दयानन्द ही का तिरस्कार होता है वैसे ही रामकृष्णादि नाम वालों

ईश्वर की मूर्त्तियों का सत्कार करने से ईश्वर का सत्कार होता है। उन मूर्त्तियोंका तिरस्कार करनेसे ईश्वरका तिरस्कार होता है। अभिप्राय यह है कि मूर्त्तियों को पूजन करने से ईश्वरही का पूजन होता है, पूजा वा सत्कार यह दोनों शब्द एक अर्थ ही के वाचक हैं। पुजारी नाम प्रकरण में पूजा करने वालेका है, दयानन्द ने जो पुजारी शब्द का अर्थ किया है, सो प्रकरण के विरुद्ध है, प्रकरणके विरुद्ध अर्थ करने वालेको निरुक्तकार ने मूर्ख कहा है। किन्तु प्रकरणमें मूर्त्ति की पूजा करने वाले भक्त ही का नाम पुजारी है। यदि न माने तो धातुपाठ की रीतिसे (दय) धातुका हिंसा अर्थ भी हो सकता है, उस से दयानन्द शब्द का भी दूसरा अर्थ करना चाहिये, प्रकरणमें प्रतिमा शब्दका अर्थ भी मूर्त्ति है। (संवत्सरो वै प्रजापतिः) इस मन्त्र में संवत्सर नाम प्रजापतिका है (सप्रजापतिः) इस मन्त्र में प्रजापति नाम ईश्वरका है (संवत्सरस्य प्रतिमा) इस मन्त्रमें ईश्वर हीकी मूर्त्तिका वर्णन है। यह अर्थ युक्ति प्रमाण और प्रकरणसे सिद्ध होता है। (शिवु कल्याणे) इस धातुसे शिव शब्द सिद्ध होता है, प्रकरणमें लिङ्ग नाम चिन्हका है, (शिवाय नमः) प्रकरणानुसार इस वचन में शिव नाम ईश्वर का है, शिवालय में ईश्वर का स्मरण चिन्तवन सत्कार करनेके लिये एक चिन्ह रक्खा जाता है। दयानन्द ने जो लिंगका अर्थ लिया है सो प्रकरण के विरुद्ध है। प्रकरण में शालिग्राम जगन्नाथ काशीनाथ नाम भी ईश्वर के हैं। प्रकरण के विरुद्ध अर्थ करना आर्यों की अविद्या है, यहां तक आर्यों के सत्रहवें प्रश्नका उत्तर दिया ॥ १७ ॥

(१८) जो वर्त्तमान कालमें आर्यावर्त्त में जिन मूर्त्तियोंकी पूजा हिन्दु लोग करते हैं, उन मूर्त्तियों में कुछ शक्ति वा करामात है वा नहीं। यह आर्यों का अठारहवां प्रश्न है, अब इसका उत्तर दिया जाता है, जैसे प्रत्यक्ष देखा जाता है कि दयानन्दकी मूर्त्तिका दर्शन करके आर्यलोग प्रसन्न होते हैं दयानन्दका स्मरण करते हैं, उससे साबित हो चुका कि जैसे दयानन्द की मूर्त्ति में आर्यों को प्रसन्न करने और दयानन्दका स्मरण करानेकी शक्ति है वैसे ही राम कृष्णादि नाम वाली ईश्वर की मूर्त्तियोंमें ईश्वरको प्रसन्न और ईश्वरका स्मरण करानेकी शक्ति है। भक्त लोगोंका मन भी मूर्त्ति के ध्यान से एकाग्र हो जाता है, उस में मनको एकाग्र करने की शक्ति है औरंगजेबके सर्वस्वका नाश हो गया क्योंकि वह मूर्त्तियों के तोड़ देने का

पुरुषार्थ करता था, उससे मूर्त्तियों में सर्वस्व नष्ट कर देने की भी शक्ति है। मूर्त्तिपूजा से पुजारियों को जीविका भी चल पड़ती है, उस से मूर्त्तियों में जीविका चलानेकी शक्ति है. जिला इटावा कसबा भरथना मौजा पाली में आठ दश आर्यसमाजी मूर्त्तिको तोड़नेसे कैद हो गये थे। उससे मूर्त्तिमें कैद कराने की भी शक्ति है. नैपाल में गुरुदयालसिंह आर्य को मूर्त्ति को बुरा कहने से डाढ़ी नोंची गई देश निकाला मिल गया, उससे मूर्त्तिमें डाढ़ी नुचवानेकी देश निकाला करानेकी शक्ति भी अनुभव सिद्ध है। इत्यादि और भी मूर्त्ति में नाना भांति की शक्ति और करामात है, यदि भक्त का दृढ़ विश्वास हो तो मूर्त्ति के ध्यान पूजन से भक्त को ईश्वर का दर्शन भी हो जाता है॥ यहां तक आर्य्यों के अठारहवें प्रश्न का उत्तर पूरा हुआ॥ १८॥

अब आर्य्यों का उन्नीसवां प्रश्न दर्शाया जाता है (तथाहि) (१९) पाषाणादि मूर्त्तियोंमें जो वेद मन्त्रोंके द्वारा तुम्हारे पण्डित प्राणप्रतिष्ठा कराते हैं, सो उनमें क्या सचमुच प्राणादि आजाते हैं, वा नहीं यदि आजाते हैं तो उन मूर्त्तियोंकी नाड़ी परीक्षा हकीमों वैद्यों और डाक्टरोंसे करानी अवश्य चाहिये, यदि प्राण नहीं आए तो वह मंत्र सत्य हैं वा असत्य हैं, और वह पण्डित धोखेबाज हैं वा नहीं, यदि आए हैं तो प्राणरहित बालकके शरीर में भी प्राणादि बुला सक्ते हैं वा नहीं,॥ यह आर्य्यों का उन्नीसवां प्रश्न है, अब इसका उत्तर दर्शाया जाता है, पण्डित नाम आत्मज्ञानी विद्वान् का है, प्रतिष्ठा शब्द प्रशंसा का वाचक है. लोक संग्रह के लिये आत्मज्ञानी भी प्राणप्रतिष्ठा करते हैं। उन को देखकर भक्तलोग भी उसी प्रकार से प्राणप्रतिष्ठा करते हैं।

अथर्व० कां० १० अनु० ४ मं० ३४—यस्य वातः प्राणापानौ० अथर्व०कां० ५ सू० ९ मं० ७ सूर्यो मे चक्षुर्वातःप्राणो०

इत्यादि मन्त्रोंसे सिद्ध हो चुका कि ईश्वर के भी प्राण हैं जैसे मूर्त्ति में ईश्वर व्यापक है वैसे ईश्वर के प्राण भी मूर्त्तिमें व्यापक हैं। जैसे हिन्दु लोग मूर्त्ति के ध्यान पूजन से ईश्वर की प्रशंसा करते हैं, वैसे ही मूर्त्ति के ध्यान पूजन से भक्त अथवा ज्ञानी लोग ईश्वर के प्राणों की भी प्रशंसा करते हैं। मायाशक्ति से जैसे ईश्वर अवतार धारण करता है; वैसे ईश्वर के प्राण भी अवतारों के शरीरों में हैं। परन्तु जैसे जीव के प्राण भौतिक

हैं, वैसे ईश्वर के प्राण भौतिक नहीं, किन्तु ईश्वर के माया शक्तिरूप प्राण हैं। मूर्त्ति में जीव के प्राणों की प्रतिष्ठा भक्तलोग नहीं करते किन्तु मूर्त्ति में ईश्वर के प्राणों ही की भक्तलोग प्रतिष्ठा करते हैं। यजुर्वेद के चाली- सवें अध्याय में वर्णन किया है कि ईश्वर नाड़ी बन्धन से रहित है, नाड़ी नसों के बन्धन में जीव होता है, आर्यमत वाले डाक्टर हकीम वैद्य जीव की नाड़ी परीक्षा कर सकते हैं, ईश्वर की नाड़ी परीक्षा को आर्य नहीं कर सकते। प्राणप्रतिष्ठा प्रकरण में मन्त्र सर्वथा सत्य हैं, किन्तु पूर्वोक्त शंका करने वाले आर्यलोग ही मिथ्यावादी सिद्ध होते हैं। सनातनहिन्दुधर्माव- लम्बी आत्मज्ञानी पण्डित धोखेबाज नहीं, किन्तु आत्मज्ञान से हीन आर्य मत वाले पण्डित ही धोखेबाज हो सकते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त प्रश्न करनेवाले आर्यों को वेदोक्त प्राणप्रतिष्ठा का ज्ञान ही नहीं, यदि ज्ञान होता तो ऐसा ऊटपटाङ्ग प्रश्न नहीं करते। जीव के प्राण जब शरीरमें से निकल जाते हैं तो फिर नहीं आ सकते, उस से प्राण रहित बालक में प्राणोंके बुलाने का प्रश्न सर्वथा अविद्या मूलक है। यहां तक आर्यों के उन्नीसवें प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

(२०) गृहस्थोंके वास्ते धर्मशास्त्रमें जो नित्य और नैमित्तिक कर्म लिखे हैं उनमें जड़मूर्त्तियों का पूजन कौन.सा . कर्म लिखा है। और देवता किसे कहते हैं, और देवपूजन का वेदों में क्या प्रकार लिखा है॥ यह आर्यों का बीसवां प्रश्न है। अब इस का उत्तर कहा जाता है, जैसे कि गृहस्थों के लिये मूर्त्ति का ध्यान पूजन नित्य कर्म है। प्रत्यक्ष में अनुमान के लिये प्रमाणकी कुछ भी आवश्यकता नहीं होती, किन्तु प्रत्यक्ष देखा जाता है कि भक्तलोग प्रतिदिन मूर्त्तिका ध्यान पूजन करते हैं। मूर्त्तिद्वारा ईश्वर को भोजन का समर्पण कर फिर आप भोजन करते हैं। उसी से मूर्त्तिका ध्यान पूजन गृहस्थ लोगों का नित्यकर्म है, तीनकाल की सन्ध्यामें मूर्त्ति ही का ध्यान पूजन किया जाता है। जैसे दयानन्द ने देवता शब्द का विद्वान् अर्थ किया है, वैसा देवता शब्द का अर्थ वेदोंसे विरुद्ध है, क्योंकि वेदमें मनुष्य से भिन्न ही देवता सिद्ध होते हैं। जैसे कि (अथर्व० का० ११ अनु० २ मं० २७)

देवाःपितरोमनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्चये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरेसर्वे दिविदेवादिविश्रिताः॥

इस मन्त्र में ईश्वर ने स्वयं देव पितर मनुष्य गन्धर्व भिन्न २ वर्णन किये हैं। यद्यपि आर्य भी (विद्वांसो हि देवाः) इत्यादि प्रमाणों से विद्वान् का नाम देवता कहते हैं, तथापि आर्यमत में ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं, और उक्त वचन ब्राह्मणग्रन्थों का है। और उक्त मन्त्र का अर्थ वेदानुसार नहीं क्योंकि दयानन्द ने विद्वान् मनुष्य ही का नाम देव वर्णन किया है। परन्तु अथर्ववेद के मंत्र में ईश्वर ने देव को मनुष्य से भिन्न वर्णन किया है। ब्राह्मणग्रन्थों के वचन का सिद्धान्त यह है कि जो देव हैं वे विद्वान् ही होते हैं, यही अर्थ वेदानुसार सिद्ध होता है। पंचमहायज्ञविधि में यद्यपि दयानन्द ने सच्च बोलने वाले को देव, और झूंठ बोलने वाले को असुर कहा है। तथापि पञ्चमहायज्ञविधि में भी दयानन्दने ब्राह्मणग्रन्थों के प्रमाणों ही से देव मनुष्य का वर्णन किया है। प्रकरणमें उस वचन का भी वेदानुसार यही अर्थ सिद्ध होता है कि जो देव हैं वह कभी झूंठ नहीं बोलते, किन्तु मनुष्य झूंठ और सच्च दोनों प्रकार से बोल सकता है, यही अर्थ वेदानुसार सिद्ध होता है। हां, सत्यभाषणमें मनुष्य भी देवता के सदृश हो सकता है, परन्तु वेद में मनुष्य जाति का देवजाति से भिन्न ही वर्णन किया है। किंच—

(य० अ० १४ मं० २०) अग्निर्देवता वातोदेवता चन्द्रमादेवता वसवोदेवता रुद्रादेवतादित्यादेवता मरुतोदेवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रोदेवता वरुणोदेवता॥

इत्यादि वेदमंत्रके प्रमाणोंसे भी मनुष्यसे भिन्न ही देवता सिद्ध होते हैं। यद्यपि शतपथ ब्राह्मण में जहां तेंतीस देवोंका वर्णन किया है, सो ठीक है तथापि लक्षण और प्रमाण तथा प्रकरण के अनुसार वहां भी जीव शब्द मनुष्य का वाचक नहीं, किन्तु वहां भी जीव शब्द देव जीवों ही का वाचक है, मनुष्यजीवोंका वाचक नहीं, क्योंकि देवता भी जीवकोटी में हैं, ईश्वर कोटी में नहीं। यहां तक आर्यों के वीसवें प्रश्नका उत्तर पूरा हुआ ॥२०॥

(२१) क्या कृष्ण महाराज और राधिकाजीका स्वांग बनाकर उनके नाम से भीख मंगाना और जिस हालतमें एक व्यभिचारिणी वेश्याको एक रातके नाच के लिये हजार रुपया दे डालते हो तो ईश्वरावतार को स्त्री के नृत्य में थोड़े से पैसे दे कर उनका नाम बढ़ाते हो वा घटाते हो और इससे अधिक कोई और बात लज्जा की है वा नहीं ॥ यह आर्यों का इक्कीसवां

प्रश्न है। अब इसका उत्तर दिया जाता है, जैसे कि यदि कृष्ण जीका स्वांग बनने वाले लड़के और स्वांग बनाने वाले मनुष्य कुकर्मी न हों, तो स्वांग ब नाना अच्छा है। यदि वे कुकर्मी हों तो हम भी ऐसे स्वांग को बुरा समझते और बुरा कहा करते हैं। यदि भीख मांगनेको बुरा कहें तो सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ५ (लोकैषणायाश्च०) इस मंत्रके भाष्यमें दयानन्दने संन्यासीको भीख मांगने वाला वर्णन किया है, तो आर्य्यमत वाला संन्यासी भी बुरा सिद्ध हो जा-यगा। यदि नाचनेको बुरा समझें और नाचने वाली वेश्याका उदाहरण देवें तो सत्यार्थप्रकाशके तीसरे समुल्लासमें दयानन्दने वर्णन किया है कि कन्या और लड़के भी ब्रह्मचर्य में गाना बजाना नाचना यथावत् सीखें। यदि इस लेखको ठीक कहें तो आर्यमत वाले सब लड़का लड़की भी वेश्या के सदृश बुरे सिद्ध हो जांयगे। दयानन्द छलकपटदर्पण से सिद्ध हो चुका है कि घर में स्वयं दयानन्द भी सोलह वर्ष की उमर तक स्त्री बनकर गाता बजाता नाचता रहा था दयानन्द के बाप दादा आदि भी गाते बजाते नाचते रहे थे। उससे दयानन्द का गोत्र ही बुरा हो जाना चाहिये। दयानन्द छल कपटदर्पण से सिद्ध हो चुका है कि एक रोज दयानन्द ने जंगलस्थ महादेव के मन्दिर में ऐसी नृत्यकारी करी, कि जैसे राजा इन्द्र की सभा में उर्वशी अप्सरा नाची थी, परन्तु उस दिन दयानन्दको पैसे बहुत कम मिले थे, बस उसी समय दयानन्द ने मूर्त्तिपूजा की निन्दा पर कमर बान्ध ली और सा-धु बनकर जगह २ पर भीख मांगने लगा, उससे भी दयानन्द बुरा होना चाहिये। क्या आर्यमत में ऐसे दोष होने पर भी लज्जा के सींग पूछ होते हैं। रासधारी भीख मांगने वालों के चाल चलनों से कृष्ण जी दोषी नहीं हो सकते, हां दयानन्द वा आर्य तो अवश्य दोषी हो सकते हैं। यहां तक आर्यों के इक्कीसवें प्रश्न का उत्तर वर्णन किया है ॥ २१ ॥

इसके आगे बाईसवें प्रश्नका वर्णन किया जाता है (२२) यदि कहो कि मूर्त्ति तो पाषाण रूप है, परन्तु भावना से परमेश्वर बन जाता है, वाह? तुम्हारी भावना बड़ी प्रबल है, जरा अपनी भावना से कीच को तो हमें मोहनभोग बना दीजिये॥ यह आर्योंका बाईसवां प्रश्न है। अब इसका भी उत्तर लिखा जाता है (तथाहि) भावना नाम यथार्थज्ञान का है, जैसा पदार्थहो उसको वैसा जानना यथार्थ ज्ञान है, कीच में मोहन भोग नहीं उससे कीच में मोहनभोग के यथार्थ ज्ञानरूप भावना का होना सर्वथा असंभव है। कीच

को मोहनभोग बनाना वा कथन करना भी भ्रान्ति है। परन्तु मूर्त्तिमें ईश्वर के यथार्थ ज्ञानका होना रूप भावना सर्वथा सत्य है। मूर्त्तिको हिन्दुलोग ईश्वर नहीं कहते किन्तु मूर्त्ति को हिन्दुलोग ईश्वर की मूर्त्ति कहते हैं, उससे आर्यों का बाईसवां प्रश्न भी खण्डन हो चुका ॥ २२ ॥

(२३) यदि तुम कहो कि यह पत्थर की मूर्त्ति हमारी बनाई हुई उस ईश्वर की याद् कराती है, तो इस पत्थरके बिना और भी कोई ईश्वर रचित सूर्यादि पदार्थ उन की स्मृति कराने वाले हैं वा नहीं, यदि हैं तो करोड़ों रुपयों का नाश क्यों करते हो, क्यों नहीं विद्यालय अनाथालय स्थापित करते ॥ यह आर्यों का तेईसवां प्रश्न है, अब इसका उत्तर दिया जाता है। जैसे कि जगत् की विचित्र रचना के ज्ञान से जगत् कर्त्ता ईश्वर का अवश्य यथार्थ ज्ञान होता है, परन्तु मन एकाग्र करनेके लिये ध्यान पूजन उन्हीं का अनुभव सिद्ध है, जो कि रामकृष्ण नाम वाली ईश्वर की मूर्त्तियां हैं। दयानन्दके रचे तो सत्यार्थप्रकाशादि हैं, उनसे आर्यलोग दयानन्द नाम वाली व्यक्ति का ज्ञान हासिल नहीं कर सकते, जैसे कि दयानन्द की मूर्त्ति को देखकर आर्य लोग दयानन्द की व्यक्ति का ज्ञान संपादन कर सकते हैं, वैसे ही हिन्दू लोग ईश्वर की मूर्त्तियों के ध्यान पूजन से ही ईश्वर में प्रेम लगा सकते हैं, और मूर्त्ति के ध्यान पूजन द्वारा ईश्वर के ध्यान पूजन से हिन्दुलोग मन को भी एकाग्र कर सकते हैं हिन्दुओं के विद्यालय सनातन से चले आते हैं कि जिन से आर्यों के मूलाचार्य दयानन्द को भी यथार्थभव विद्या का लाभ हुआ था। परन्तु दयानन्द विद्या का पात्र नहीं था, उसी से दयानन्द में विद्या भी विपरीत हो गई थी वही हाल आर्यों का देखा जाता है। हिन्दुओं के अनाथालय सदा से चले आते हैं, कि जिनको अन्नक्षेत्र कहते हैं, लाखों मनुष्यों का वहां से पेट भरता है, आर्यलोग अनाथालय का नाम लेकर हजारों रुपये हिन्दुओं से लेते हैं। वहां नीचजाति के बालकों को सत्यार्थप्रकाश पढ़ाते हैं, वेही नीच बालक बड़े होकर वेदोक्त सनातन हिन्दुधर्म को गाली देते फिरते हैं। उससे हम हिन्दुओंको चेताते हैं कि अपने २ अन्नक्षेत्ररूपी अनाथालयों की उन्नति कीजिये और आर्योंके अनाथालय का नाम सुनकर हजारों रुपये देकर बरबाद न कीजिये। यहां तक आर्यों के तेईसवें प्रश्न का उत्तर कहा ॥ २३ ॥

(२४) जैसे प्रत्यक्ष पत्थरमय मूर्त्ति को ईश्वर जानकर पूजना है, वैसे ही गर्दभको गौ मानना, यह कहिये धर्म है वा अधर्म है, ईश्वर की चार भुजा

तुम मानते हो वा नहीं, यदि मानते हो तो सहस्रबाहु का तुम क्या अर्थ करते हो, वा इस नाम वाला कोई ईश्वर से भी बड़ा है ॥ यह आर्यों का चौबीसवां प्रश्न है, अब इसका भी उत्तर दिया जाता है (तथाहि) हिन्दुलोग मूर्त्ति को ईश्वर जान कर नहीं पूजते, किन्तु हिन्दुलोग मूर्त्ति के ध्यान पूजन से मन को रोक कर मूर्त्ति वाले ईश्वर का नाम जपते हैं। हिन्दुलोग गधे को गौ नहीं मानते किन्तु गौ को हिन्दु लोग जगत्‌की माता कहते हैं, हां सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास में दयानन्द ही ने गौको गधों के सदृश वर्णन किया है। अब आर्य ही बतावें कि दयानन्दने यह धर्म कहा है वा अधर्म। ईश्वर की इच्छा संकल्प से ईश्वर चाहे असंख्यात भुजा रचले चाहे चार अथवा दो (सहस्रशीर्षा०) इस मन्त्र में ईश्वरके असंख्यात शिरादि अङ्ग वर्णन किये हैं। यजुर्वेदभाष्य में दयानन्द लिखता है कि योगी एक ही काल में हजारों शरीर धारण कर लेता है। अब विचारना चाहिये कि जब आर्यमत वाला योगी जीव होकर भी हजारों शरीर धारण करने की सामर्थ्य रखता है, तो सर्वशक्तिमान् ईश्वर की भी इच्छा चाहे असंख्य भुजा रच लेवे, चाहे दो ही रहने देवे, अथवा चतुर्भुज संकल्प ही से होजावे ईश्वर से भी बड़ा किसी को वर्णन करना यह आर्यों की अविद्या है। यहां तक आर्यों के चौबीसवें प्रश्न का उत्तर दिया ॥ २४ ॥

(२५) जिस रीतिसे पाषाणादि मूर्त्तियों द्वारा ईश्वरका पूजन कियाजाता है, क्या यह असल में भगवदुपासना कहला सकतीहै और जो पुष्प नैवेद्यादि वस्तु मूर्त्तियों को भेंट की जाती हैं। क्या उन के आगे रखने से पहिले वह ईश्वर को अप्राप्त थीं, और वह उनके बिना भूखा वा प्यासा था ॥ यह आर्यों का पच्चीसवां प्रश्न है, अब इस का उत्तर कहा जाता है ॥

आर्याभिविनय। वायवायाहिदर्शतेमेसोमाअरङ्कृताः ॥

इस के भाष्य में दयानन्द ने ईश्वर से कहा है कि हम लोगोंने आप के लिये सोमवल्ल्यादि के रस निकाल कर तैयार किये हैं, आप उनको पान करो। अब आर्यों को चाहिये कि बतलावें कि आर्यमत वाले ईश्वर को क्या सोमवल्ल्यादिके रस पहिले अप्राप्त थे, क्या आर्यमत वाला ईश्वर भूखा प्यासा बैठा था, जैसे दयानन्द ने सोमवल्ल्यादि के रसों का देना ईश्वर के लिये कहा है वैसे ही हिन्दुलोग भी मूर्त्तिद्वारा ईश्वर को समर्पण करते हैं। यहां तक आर्यों के पच्चीसवें प्रश्न का उत्तर खतम हुआ ॥ २५ ॥

(२६) ईश्वर को जो तुमने देहधारी और उस पर चोरी जारी असत्यभाषण छलादि अनेक कलङ्क लगाये हैं, तो इस कर्म का तुम्हें पाप होगा वा नहीं। यह आर्योंका छब्बीसवां प्रश्न है, अब इस का उत्तर कहा जाता है (आर्याभिविनय) (मानःप्रियाभोजनानि प्रमोषीः७) इस मन्त्रके भाष्य में दयानन्द ने स्वयं निराकार ईश्वर को चोर और चोरी करानेवाला कहा है, जिन आर्योंका निराकार ईश्वर चोर और चोरी कराने वाला है, उसीके भक्त दयानन्द वा आर्य भी उस दोष से जुदा नहीं हो सकते। कृष्णजी पर चोरी का दोष नहीं लग सकता, क्योंकि कृष्णजी बाललीला दर्शाते थे, यहां तक आर्यों के छब्बीसवें प्रश्न का उत्तर दिया ॥ २६ ॥

(२७) जो तुम्हारा ईश्वर देहधारी है तो उसका शरीर ईश्वर है, वा उस का आत्मा ईश्वर है, वा दोनों हैं। यह आर्यों का सत्ताईसवां प्रश्न है, अब इस का भी उत्तर सुनो–जैसे दयानन्द ने प्रकृति शक्तियुक्त चेतन को ईश्वर माना है, वैसे वेदान्त के ग्रन्थों में भी मायायुक्त चेतन को ईश्वर कहा है, केवल शुद्ध चेतन में ईश्वरभाव का अत्यन्ताभाव है। यहां तक आर्यों के सत्ताईसवें प्रश्नका उत्तर दिया ॥ २७ ॥

(२८) यदि तुम निराकारकी मूर्त्ति बनानेमें शक्ति रखते हो तो आकाश, शब्द, सुख, दुःख, बुद्धि, मन, ज्ञान, आत्मा, काल, वायु, दिशादिकोंकी भी मूर्त्ति बनाकर हमें दिखाइये। यह आर्योंका अट्ठाईसवां प्रश्न है, अब इसका उत्तर दिया जाता है, जैसे कि आकाशादि पदार्थ उत्पत्ति वाले होने से साकार हैं, परन्तु उनका सूक्ष्म आकार है, उससे आकाशादिक का फोटो नहीं खींचा जाता। वैसे साकार ईश्वर भी साकार है, निराकार नहीं, जब वह रामकृष्णादि स्थूल आकार को धारण करता है तो ईश्वर की मूर्त्ति बन सकती है। यहां तक आर्यों के अट्ठाईसवें प्रश्नका उत्तर दिया ॥ २८ ॥

(२९) जब मूर्त्तियोंके उपासक देवी आदिको मांसादिका भोग लगाते हैं, तो वराह भगवान् की मूर्त्ति को भी भोग लगाने की आवश्यकता है वा नहीं यह आर्यों का उनत्तीसवां प्रश्न है, अब इस का उत्तर दियाजाता

है। जैसे कि—वाम मार्ग मत की देवी को मांस का भोग लगता है, वेदोक्त धर्मावलम्बी दक्षिणमार्गकी देवीको भी भोग लगाते हैं। दक्षिणमार्गमें मांसादि का भोग नहीं लिखा, वराह भगवान् जी का शरीर मनुष्य का है, केवल मुख सूकर के सदृश है, मूर्त्तिपूजादिके निन्दक असुरों को मारनेके लिये ईश्वरने वराह अवतारको धारण किया है। यह उनतीसवें प्रश्नका उत्तर है ॥२९॥

(३०) वेदोंके जो अनेक भाष्य आज कल वर्त्तमान हैं, उनमें से आप किस को यथार्थ और प्रामाणिक मानते हो। यह आर्यों का तीसवां प्रश्न है, अब इस का उत्तर देकर व्याख्यान खतम किया जाता है। जैसे कि हम वेदान्ती हिन्दुलोग युक्ति से सिद्ध वेदभाष्य को मानते हैं, युक्ति के विरुद्ध वेदभाष्य को हम नहीं मानते। अब आर्यों के तीस प्रश्नोंके तीस उत्तर समाप्त हो गये ॥ ३० ॥

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

स्त्रीशिक्षा तथा पतिव्रत धर्म्म ।

व्याख्यान नं० २३

ओम् ॥ नमःशंभवायच मयोभवायच नमःशंकरायच मयस्करायच नमःशिवायच शिवतरायच॥य०अ०१६।१४॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

नमस्कारात्मक मंगल के पश्चात् सर्वसाधारण को विदित किया जाता है कि इस व्याख्यान में स्त्रियों को शिक्षाका देना और स्त्रियों के पातिव्रत धर्म का वर्णन किया जाता है ॥

स्त्यायति शब्दयति गुणान् गृह्णाति वा सा स्त्री प्रसिद्धा भार्य्या वा ।

इस वाक्य में स्त्री शब्द की व्युत्पत्ति की गई है, इसका सिद्धान्त यह है कि स्त्री वही कहाती है जो कि विद्यादि गुणों से युक्त और पतिव्रत धर्म का संपादन करने वाली हो । उससे अतिरिक्त गधी वा कुतियाके सदृश अक्ल वाली स्त्री पद का वाच्य नहीं हो सकती । वादी कहते हैं कि स्त्री को विद्या का पढ़ाना हानिकारक है, पढ़ी लिखी स्त्री व्यभिचार दोष युक्त हो जाती है । वादी का यह प्रश्न सर्वथा असंगत है, क्योंकि यथार्थ ज्ञान के साधन का नाम विद्या है, अयथार्थ ज्ञान के साधन का नाम अविद्या है । यथार्थ ज्ञान के होने से स्त्री में व्यभिचारादि दोषों का सर्वथा अत्यन्ताभाव हो जाता है । जैसे सूर्य का उदय होनेसे घट पटादि पदार्थों का यथावत् भान होता है, सूर्य के अस्त होने पर अन्धकार छा जाता है । उससे किसी पदार्थ का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता । वैसे ही जब स्त्री के अन्तःकरण रूपी आकाश में विद्या रूपी सूर्य का उजाला हो जाता है, तो स्त्री के हृदयाकाश में से व्यभिचारादि दोषों का भी सर्वथा प्रध्वंसाभाव हो जाता है । जब तक स्त्री के हृदयाकाश में विद्या सूर्य का उजाला नहीं होता, तब तक अविद्यान्धकार नष्ट नहीं होता । विना अविद्यान्धकार के नष्ट हुए व्यभिचारादि दोषों का भी अत्यन्ताभाव कदापि नहीं होता । शतपथ ब्राह्मण तथा वृहदारण्यक उपनिषदादि प्राचीन ग्रन्थों से

जाना जाता है कि गार्गी कात्यायनी मैत्रेयी आदि स्त्रियों ने परा अर्थात् आत्मविद्या तथा अपरा अर्थात् संसार संबन्धिनी विद्या का पूर्ण रीति से अभ्यास किया था। उससे वे स्त्रियां मोक्ष पदको संपादन कर पातिव्रत धर्म पर भी मरण तक आरूढ़ रहीं थी॥

(विद्यांचाविद्यांच०) इस वेदमन्त्र का सिद्धान्त यह है कि जो विद्या और अविद्या के स्वरूप को जानकर विद्या रूपी सूर्य से अविद्यान्धकार को नष्ट कर देता है, वह मोक्षपद को उत्पादन कर लेता है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन किया है कि एक समय राजा जनक ने आत्मविद्या पर विचार करने के लिये सभा लगाई थी, देश देशान्तरों के पंडितों को निमंत्रण दिया गया था, दश हजार गौवें मंगाईं थीं, उसका सिद्धान्त यह था कि आत्मविद्या के विचार संग्राम में जिसका विजय होगा, उसी को वे दश हजार गौवें दीजायगी। उसी सभा में शिष्यों के सहित महर्षि याज्ञवल्क्य जी भी आये और याज्ञवल्क्य जी ने शिष्यों को आज्ञा दी कि ये दशहजार गौवें हमारे स्थान पर ले जाओ। इसको सुनते ही गौवों को विद्यार्थी ले चले, इस बातको देशान्तरों से आए हुये पण्डित क्रोध से वर्णन करने लगे कि सभा में विजय किये विना गौवों को ले जाना अन्याय है याज्ञवल्क्य जी ने इसका उत्तर दिया कि सभा में जो हमें जीत लेगा, उसी के मकान पर हम गौवें पहुंचा देंगे, यदि हम जीत गये तो गौवें हमारे मकान ही में रहेंगी। राजा जनक ने भी इस बातको समर्थन किया, पश्चात् शास्त्रार्थ का प्रारम्भ किया, याज्ञवल्क्य जी ने अनेक पण्डितों को परास्त कर दिया॥

उसी सभामें एक वचक्नुऋषि की कन्या वाचक्नवी गार्गी बैठी थी वह आत्मविद्यामें निहायत विदुषी थी, वह गार्गी याज्ञवल्क्यके सामने उपस्थित होकर निम्न रीति से वर्णन करने लगी कि हे याज्ञवल्क्य! इस आत्मविद्या संग्राम में जितने पण्डित आये हैं वे सब स्त्रियां हैं, किन्तु एक हम और दूसरे आप यह दोही इस सभा में पुरुष हैं, क्योंकि वेदान्त सिद्धान्त में पुरुष वही है जो कि आत्मविद्या युक्त आत्मज्ञानी है। उस की आकृति चाहे स्त्रीकी हो वा पुरुष की हो आत्मविद्या से हीन और आत्मज्ञान से शून्य सर्व स्त्रियां हैं। इस को सुनकर आत्मज्ञान से हीन नाम के पण्डितों के कलेजे जलने लगे, परन्तु कुछ कर न सके। गार्गी ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि जागृति के समय जगत् का व्यवहार सिद्ध करने वाला कौन सा

ज्योति है। याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि हे गार्गि ! जागृत् में व्यवहार सिद्ध करने वाला सूर्य ज्योति है। सूर्य्य के अस्त होने पर व्यवहार सिद्ध करने के लिये अग्नि ज्योति है। अग्नि ज्योति के न होने पर व्यवहार सिद्ध करने के लिये विजुली ज्योति है। विजुली ज्योति के न रहने पर व्यवहार सिद्ध करने के लिये शब्द ज्योति है। जब स्वप्न के समय सूर्य अग्नि विजुली और शब्द इन चार ज्योतियों का अदर्शन हो जाता है। तो स्वप्न के व्यवहार सिद्ध करने के लिये निराकार निर्विकार सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित अपने प्रकाश में प्रकाशान्तर की अपेक्षा के विना निरावरण एक आत्मा ही ज्योति है। इस को सुनकर गार्गी ने हाथ जोड़ कर याज्ञवल्क्य जी को प्रणाम किया और याज्ञवल्क्य जी से फिर पूछा कि पृथ्वी किस में ओत प्रोत है, याज्ञवल्क्य जी ने उत्तर दिया कि हे गार्गि ! पृथ्वी जलमें ओत प्रोत है जल अग्निमें ओत प्रोत है, अग्नि वायु में ओत प्रोत है, वायु आकाश में ओत प्रोत है आकाश माया और माया ईश्वर में ओत प्रोत है, ईश्वर निराकार निर्विकार आत्मामें ओत प्रोत है, सो आत्मा (अहं ब्रह्मास्मि) अर्थात् मैं ही हूं॥

इस को सुनकर गार्गी ने फिर याज्ञवल्क्य जी को प्रणाम किया और याज्ञवल्क्य जी से पूछा कि आप आत्मा को जानकर वर्णन करते हैं, अथवा न जानकर, यदि कहो कि हम आत्मा को न जानकर वर्णन करते हैं, तो आप अज्ञानी हो। जो स्वयं अज्ञानी है वह दूसरे को आत्मज्ञान का उपदेश देनेको समर्थ नहीं हो सकता। यदि कहो कि हम आत्मा को जान कर दूसरे को आत्मविद्या का उपदेश देते हैं तो आप आत्मा के द्रष्टा और आत्मा दृश्य सिद्ध होगा, उससे आप आत्मा के निन्दक सिद्ध होंगे। क्योंकि वेदान्त का सिद्धान्त है कि दृश्य पदार्थ असत्य जड़ दुःख स्वरूप हैं। और द्रष्टा सत्चित् आनन्दस्वरूप है, वेदान्त का यह भी सिद्धान्त है कि आत्मा अहं त्वं इदं इत्यादि वृत्तियों के अगोचर है। उससे आप वेदान्त सिद्धान्त के विरोधी सिद्ध हो जांयगे। इस प्रश्न का उत्तर याज्ञवल्क्य जी ने उदयसाधारीति से दिया जैसे कि हे गार्गी—

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेदसः।

अर्थात् हम आत्मा को जानकर भी वर्णन नहीं करते, और न जानकर भी वर्णन नहीं करते, क्योंकि आत्मा जानने और न जानने दोनों से

रहित है जानना न जानना व्यवहार अनात्म अनेक दृश्य पदार्थों में होता है। एक आत्मा में जानना न जानना दोनों का बाध निश्चय होता है। किन्तु जैसे पात्र के नीचे रक्खी मणि का भान नहीं होता, किन्तु पात्र को हटादेने से मणि का स्वप्रकाश स्वरूपसे भान होता है। सूर्य दीपादि के प्रकाश की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहती वैसे ही अविद्या पात्र से आत्मा का भान नहीं होता किन्तु आत्मविद्या से जब अविद्यापात्र हट जाता है तो अहं एवं इदं इत्यादि वृत्तियों की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहती किन्तु जिज्ञासु के अन्तःकरणमें निरावरण आत्मा स्वप्रकाशसे भान होता है।

इस को सुन कर गार्गी ने दोनों हाथ जोड़ कर याज्ञवल्क्य जी को पुनः प्रणाम किया और कहा कि हे याज्ञवल्क्य ! आप को कोई भी पंडित नहीं जीत सकेगा क्योंकि आप के पास मैंने अति प्रश्न किये हैं परन्तु आपने उन का उत्तर देनेमें कुछ भी विलम्ब नहीं किया फिर गार्गी ने स्मरण कराया कि हे याज्ञवल्क्य जी ! इस सभा में जितने पंडित आये हैं वह सब आत्म ज्ञान से हीन होने के कारण स्त्रियां हैं। हम और आप आत्मज्ञानी हैं इस से हम और आप ही पुरुष हैं। इस को सुनकर निष्पक्ष पंडितों ने भी हाथ जोड़कर याज्ञवल्क्य जी को प्रणाम किया एक शाकल ब्राह्मण ने याज्ञवल्क्य जी से जल्प और वितण्डा किया सो उस का सभा ही में मरण हो गया प्रकरण का सिद्धान्त यह है कि जैसे गार्गी स्त्री विदुषी थी वैसे ही कात्यायनी और मैत्रेयी याज्ञवल्क्य की दो स्त्रियां भी विदुषी थीं। इस समय भारतवर्ष में एक भी स्त्री विदुषी नहीं देखी जाती हां इस समय व्यभिचारमूलक सत्यार्थप्रकाश की तालीम वा इंजील की तालीम देने वाली तो सैकड़ों स्त्रियां हल्ला मचाती फिरती हैं। विद्या उनमें कुछ भी नहीं किन्तु अविद्या का जाल फैला रही हैं। हिन्दुधर्मवीरों को चाहिये कि ऐसी स्त्रियों से कन्याओं का कभी संग भी न होने देवें। किन्तु गार्गी मैत्रेयी कात्यायनी के सदृश स्त्रियों से अपनी कन्याओं को सुशिक्षा दिलावें। जब कन्याओं के हृदयाकाश में विद्या सूर्य का उजाला होगा तो कन्याओं के हृदयाकाश में से अविद्यान्धकार नष्ट हो जायगा। उस से अविद्या के कार्य व्यभिचारादि दोषों का भी अत्यन्ताभाव हो जायगा।

कामके पुत्र क्रोध का भी सत्यानाश हो जावेगा उन से क्रोध के कार्य लड़ाई झगड़े आदि दोष भी कन्याओं के हृदयाकाश में से नष्ट हो जायंगे

क्रोध के पुत्र लोभ का भी प्रध्वंसाभाव हो जायगा । उस से लोभ के कार्य पराधीनतादि दोषों का भी अत्यन्ताभाव हो जायगा । लोभका पुत्र मोह भी नष्ट हो जायगा उस से मोह के कार्य लंपटतादि दोष भी नष्ट हो जा- यंगे । मोहका पुत्र अहंकार भी नष्ट हो जायगा अहंकार के कार्य अभिना- नादि दोषोंकाभी प्रलय हो जावेगा । अभिप्राय यह है कि जब विद्या सूर्यके उजाले से कन्याओं के हृदयाकाश में से अविद्यान्धकार नष्ट हो जायगा तो काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि अविद्या के कार्य भी नष्ट हो जायंगे । चोरी जारी ठगी फरेब कपट छल मिथ्याभाषणादि दोष भी अविद्या ही के कार्य हैं वे दोष भी कन्याओं के हृदय में से दूर हो जायंगे ।

देखिये योगवाशिष्ठ में एक पद्म राजा की कथा लिखी है उसकी रानी का नाम लीला था वह लीला योगविद्यामें प्रवीणा थी उस के पति पद्म राजा का देहान्त हो गया था परन्तु योगविद्या के बल से वह लीला पर- लोक से अपने पति पद्मराजा को फिर ले आई । परन्तु इस समय वैसी योगविद्या में प्रवीण कोई भी स्त्री नहीं देखी जाती । ऋग्वेदमें लिखा है कि कपिलावतार ने अपनी माता देवहूति को आत्मविद्या का प्रदान कियाथा इतिहासों से ज्ञात होता है कि एक मन्दालसा नाम वाली स्त्री ने अपने पांच पुत्रों को आत्मविद्या का उपदेश देकर आत्मज्ञानी बना दिया था । आज भारतवर्ष में एक भी वैसी स्त्री नहीं सुनी जाती जो कि पुत्रों को आत्मविद्या का उपदेश देवे ।

महाभारत से जाना जाता है कि एक राजाकी कन्या का नाम सावित्री था वह सावित्री आत्मविद्या और योगविद्या में अत्यन्त प्रवीण थी एक राजा का सत्यवान् पुत्र था उस के साथ सावित्रीने विवाह करा लिया। परन्तु नारदमुनि ने सावित्री को कहा कि एक वर्ष के पश्चात् सत्यवान् तु- म्हारो पति मर जावेगा । इसको सुनकर सावित्री को भी ज्ञान हो गयाकि एक वर्ष के पश्चात् मेरा भर्ता मर जावेगा । क्योंकि सावित्री योगविद्या में निपुण थी जब सत्यवान् के मरने का दिन आया तो वह यज्ञशाला में होम करनेके लिये वनको फल फूल लेने गया सावित्री भी योगविद्यासे उस का मरण जानकर साथ ही वनमें गई सत्यवान् के माथे में दर्द होने लगा वह सावित्री के उरू पर शिर रखकर सो गया इतने में यमराज उसके शरीर में से उसके जीव को निकाल कर यमलोकको ले चले साथही योगविद्या के

वन से सावित्री चली यमराज ने सावित्री से पूछा तुम कहां जाती हो, सावित्री ने कहा कि जहां मेरा भर्ता जायगा वहांही मैं जाऊंगी यमराज ने कहा कि तुम वर मांगो हम देंगे फिर घर में जाओ तुम्हारे भर्ता को हम नहीं देंगे इस को सुनकर यमराज से सावित्री ने कहा कि मुझे पुत्र दीजिये यमराज ने कहा कि तुम्हारे पुत्र होगा अब घर को जाओ तुम्हारे पति को हम नहीं देंगे। इसको सुनकर सावित्री ने यमराजसे कहा कि जब पुत्र देने का वर आप का सत्य है तो मेरे पतिको दीजिये क्योंकि बिना पति के पुत्रका होना सर्वथा असंभव है। यदि मेरे पतिको आप न देंगे तो आप मिथ्यावादी सिद्ध होंगे, इसको सुनकर यमराजजी ने झूठी दरोगहलफीके भय से सावित्री के पति सत्यवान् को छोड़ दिया॥

अब विचारना चाहिये कि ऐसी विदुषी और पतिव्रताधर्मयुक्त इस समय एक भी स्त्री नहीं देखी जाती, किन्तु इस समय महा व्यभिचारिणी स्त्रियां प्लेट फारम पर खड़ी होकर कुशिक्षा का उपदेश देरही हैं। विद्याहीन लाला बाबू जैसे दीवेकी सुन्दर लाट को देखकर पतंगा जानवर नष्ट हो जाता है, वैसे ही इस समय व्यभिचारिणी स्त्रियोंके रूप लाटमें जलनेके पतंगे बन रहे हैं। वेदोक्त सनातन रीति से कन्याओं को शिक्षा नहीं देते, सो उनकी भूल है।

योग वासिष्ठमें एक कथा लिखी है कि एक राजाका नाम शिखरध्वज था, उसकी रानीका नाम चुड़ाला था, वह रानी और राजा दोनों ही विद्वानों के संग में जाते थे, रानी का अन्तःकरण शुद्ध था, उस से उस को आत्मज्ञान हो गया, राजाका अन्तःकरण मलिन था, उसको आत्मज्ञान न हुआ, रानी और राजा घर में आये, बंगले में बैठे परन्तु चुड़ाला रानी का राजा ने कमल के सदृश प्रसन्न वदन देखा, राजाने पूछा कि हे चुड़ाला जब से तेरे साथ मेरा विवाह हुआ है, तब से तेरा ऐसा वदन कभी नहीं देखा, सत्य कहो आज आपको कौन सा पदार्थ मिल गया है। इस को सुनकर चुड़ाला ने कहा कि हे राजन्! आज हमें वह पदार्थ मिला है कि जिस को लोग मन और इन्द्रियों करके नहीं जान सकते। इस को सुनकर राजा हंसने लगा और चुड़ाला रानी से कहा कि जाना जाता है कि आज तुमने नशा पान किया है, उससे तू पागल हो गई है। क्योंकि जो पदार्थ मन इन्द्रियों से नहीं जाना जाता, वह पदार्थ ही जगत् में कोई नहीं। इसको सुनकर रानीने सोचा कि अहो! मेरा पति अज्ञानी है, जब

और भी कुछ आत्मविद्या की बात चली तो कोई उपद्रव कर देगा, ऐसा विचार कर रानी ने आत्मज्ञान की बात को छोड़ दिया, और उसी दिन से योगविद्याका अभ्यास करने लगी, योगविद्यामें भी रानी चुड़ाला प्रवीण हो गई, फिर बड़े २ पण्डित और विद्वानों से प्रार्थना करी कि राजा को ऐसा उपदेश दीजिये कि जिस से इस को वैराग्य हो जावे ॥

पण्डित और विद्वान् राजा शिखरध्वज को निम्न रीति से उपदेश देने लगे। जैसे कि हे राजन् ! जिस स्त्री को आप सुख देने वाली जानते हैं, यदि विचार नेत्रों से देखो तो वह सर्वथा दुःख देने वाली है क्योंकि हाड़ चाम मांस मैला मूत्रसे बिना दूसरा कोई भी पदार्थ स्त्रीमें सिद्ध नहीं होता, हाड़ चाम मैले मूत्रके साथ कूकर सूकर गर्दभादि का प्रेम होता है। सुषुप्ति के समय प्यारी स्त्री दुःखदायक भान होती है, व्यभिचारिणी हो तो वह स्त्री सर्वथा दुःख दायक प्रतीत होती है। वैसे पुत्र भी दुःख दायक है, जिस के पुत्र नहीं होता उसको तो पुत्रके न होने का एक ही दुःख होता है। परंतु जिस की स्त्री को गर्भ हो जाता है, वह मनुष्य और स्त्री निम्न रीति की चिंता से दुःखी रहते हैं, सोचते हैं कि पुत्रका कोई ग्रह न बिगड़ जावे, पुत्र जन्म के समय स्त्री को अत्यन्त दुःख होता है, जब लड़का किसी बीमारी से दूध नहीं पीता तो भी माता पिता दुःखी होते हैं। जब लड़केके दांत उगने लगते हैं, तो लड़का रोता है, उससे भी माता पिता को दुःख होता है, जब शीतला निकलती है, जब बालक को अत्यन्त दुःख होता है, उससे भी माता पिता को दुःख होता है, जब पुत्र मर जाता है तो उस के माता पिता माथा पीटते दुःखी हुए मर जाते हैं। उस से पुत्र भी दुःख रूप है, धन भी दुःखों करके जमा होता है, नष्ट होते समय मनुष्य के प्राण ले डालता है, उस से धन भी दुःख रूप है। राजा के छोटे कर्म्मचारियों को बड़े कर्म्मचारियों का डर रहता है, राजा को सदा शत्रुओं का डर रहता है, उस से राज्य भी दुःख रूप है। एक वैराग्य ही निर्भय और सुख रूप है ॥

इत्यादि उपदेशों को सुनकर राजा शिखरध्वज को वैराग्य हो गया, राजा ने रानी चुड़ाला को कहा कि राज्य के जितने पदार्थ हैं सो सर्व दुःख रूप हैं, हम छोड़ कर तप करने जाते हैं, इसको सुनकर चुड़ाला मन में तो प्रसन्न भई, परन्तु राजा शिखरध्वज को कहा कि तप करना हो तो घर ही में कीजिये, इस को सुनकर राजा चुप रहा, रात्रि के बारह बजे वनको

चला गया। चुड़ाला ने सुनकर राजकर्म्मचारियों को आज्ञा दी कि राज काज को नीति से चलाइए। ऐसा वर्णन कर योग शक्ति से चुड़ालाने ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण कर लिया, और जहां वनमें राजा तप करता था वहां गई, राजा ने जाना कि कोई महात्मा आये हैं। राजा ने प्रणाम कर आसन पर बिठाया और पूछा कि महाराज आपका नाम क्या है। उसने उत्तर दिया कि मेरा नाम कुंभ मुनि है। राजा ने कहा कि मुझे उपदेश दीजिये, कुंभ मुनि ने पूछा कि हे राजन्! आप क्या चीज हैं। राजा ने कहा कि मैं स्थूल शरीर हूं, कुंभ मुनिने पूछा कि सो जाने के समय स्थूल शरीर तो यहां है, आप स्वप्न में देशान्तराटन कर रहे हैं, उससे आप स्थूल शरीर नहीं हो सकते, राजा ने कहा कि मैं सूक्ष्म शरीर हूं कुम्भमुनि ने कहा कि सूक्ष्म शरीर तो सुषुप्ति के समय अदर्शन हो जाता है, आप उस समय आनन्द का आस्वादन करते हैं, उससे आप सूक्ष्म शरीर भी नहीं हो सकते। राजा ने कहा कि हम कारण शरीर हैं, कुम्भ मुनि ने कहा कि कारण शरीर का जाग्रत् और स्वप्न के समय अदर्शन हो जाता है, परन्तु आप जाग्रत् और स्वप्न प्रपञ्च के द्रष्टा साक्षी एक रस रहते हैं। आप त्याग कीजिये, राजा ने कहा कि हमने राज्य का त्याग कर दिया है। कुम्भमुनि ने कहा राज्य तुम्हारा नहीं, जो तुम्हारा है, उस का त्याग कीजिये। राजाने कहा हमारा कमण्डलु है, हम उस का त्याग कर देते हैं, कुम्भमुनि ने कहा कमण्डलु लकड़ीका है, जो तुम्हारा है, उसका त्याग कीजिये। राजाने कहा हमारी माला है हम उस का त्याग कर देते हैं। कुंभमुनि ने कहा कि माला मोतियों की है, जो तुम्हारा है, उसको त्याग कीजिये। राजा ने कहा कि हमारी कुटी है हम उसका त्याग कर देते हैं, कुंभमुनि ने कहा कि कुटी पत्तों की है, जो तुम्हारा है, उसका त्याग कीजिये। सिद्धान्त यह कि जितने दृश्य और अनात्मपदार्थ हैं, उनमें से कोई भी पदार्थ आत्मा नहीं, उन सब का कुंभमुनि ने खण्डन कर डाला। शेष निराकार निर्विकार सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप निरावरण आत्मा राजा शिखरध्वज के अन्तःकरण में स्वप्रकाश से भान होने लगा, राजा की निर्विकल्प समाधि लग गई, चुड़ाला रानी अपने स्वरूप में निकल खड़ी हुई, कुंभ मुनि के स्वरूप का लोपकर डाला, राजा ने देखकर कहा आप तो कुंभमुनि थे अब मेरी चुड़ाला रानी का स्वरूप कैसे हो गए। चुड़ाला ने कहा कि हे

राजन् मैं आप की रानी हूं आप को आत्मज्ञान देनेके लिये मैंने योगशक्ति से कुंभमुनि का स्वरूप धारण किया था ॥

अब आप ही कहिये आत्मस्वरूप आनन्द कैसा है, इस को सुन राजा ने रानी को प्रणाम किया, और कहा कि हे रानी आत्मविद्या का उपदेश देने से मैं आप को गुरु मानता हूं, और जगत् व्यवहारसे आप मेरी स्त्री हैं। आत्माका ज्ञान मन इन्द्रियसे होना सर्वथा असंभव है किन्तु अज्ञान नष्ट होने से आत्मा स्वप्रकाश से भान होता है। जब मैं आत्मज्ञानसे हीन था तो मैंने आप को पागल कहा था, परन्तु हकीकत में पागल मैं स्वयं ही था। इसको सुन चुड़ालाने कहा कि हे राजन्! अब आप चाहे राज्य कीजिये, चाहें सन्यास लीजिये, सर्व प्रकार से आप का जन्म सफल है। अभिप्राय यह कि आत्म ज्ञानी होकर राजा और रानीने दशहजार वर्ष तक राज्य किया। अब विचारना चाहिये कि पूर्वोक्त स्त्रियां पहिले भारत भूमि में विदुषी और पतिव्रतधर्म युक्त ऐसी होती थीं, इस समय विद्या न पढ़ाने के कारण एक भी ऐसी स्त्री नहीं देखी और सुनी जाती॥

इतिहासों से ज्ञात होता है कि एक राजा ने एक समय रात्रि के समय डाकुओं को पकड़ा और सूली पर टांग दिया, रात्रि के समय ज्ञात न होने के कारण एक मांडव्य ऋषि को भी राजा ने सूली पर टांग दिया, मांडव्य ऋषि ने प्राणों को रोक निर्विकल्प समाधि लगा रक्खी थी उसी समय एक पतिव्रता स्त्री अपने अंध पिङ्गल कुष्ठी पति को टोकरे में बैठाल के कहीं लिये जाती थी, मांडव्य ऋषि को टोकरे की ठोकर लगी, उससे उन की समाधि खुल गई, और सूली का दुःख भान होने लगा, तब माण्डव्य ऋषि ने शाप दिया कि जिसने मेरी समाधि खोली है, वह सूर्य्य के उदय होनेके साथ ही मृत्युक्त हो जावेगा। इसको सुन पतिव्रता स्त्रीने कहा कि सूर्य्य ही नहीं उदय होगा, सिद्धान्त यह कि पतिव्रता स्त्री की शक्ति से बहुत काल तक सूर्य का उदय नहीं हुआ, ब्रह्मांडभर में अन्धकार छा गया ब्रह्मा जी देवताओं को साथ लेकर पतिव्रता के पास आए, और प्रार्थना की कि हे पतिव्रते! सूर्य्य के उदय होने का वाक्योच्चारण कीजिये। हम आपके पति को जिन्दा कर देंगे। इस को सुन कर पतिव्रता ने सूर्य्य के उदय होने का वाक्योच्चारण किया, सूर्य्य उदय हुआ, पतिव्रताका पति मृत्युक्त हो गया, परन्तु ब्रह्मा जी ने उसे जिन्दा कर दिया। यह योगशक्ति की महिमा है, अब

विचारना चाहिये कि जो स्त्री पतिव्रताधर्म का पालन करती है, उस में ऐसी शक्ति हो जाती है कि उस से ईश्वर का नियम भी टूट जाता है ॥

पंजाब में एक पतिव्रता स्त्री का कुष्ठी और पिङ्गला पति था, वह स्त्री उस पति को टोकरे में बैठाल कर भीख मांगकर पति को खिलाया करती थी। एक रोज वह स्त्री जंगल में एक वृक्ष के नीचे टोकरे में पतिको रखकर तुंग नामक नगरमें भीख मांगने गई, पीछे उस पिंगलने एक पानीसे भरा हुआ खड्डा देखा, उसमें कौवे गोता लगा लगाके सुफेद रंग युक्त हो२ कर उड़ जाते थे। पिंगल भी उसी खड्डे में जा गिरा, जल में गोता लगाने से अच्छा हो गया, कुष्ठ रोग भी उसका नष्ट हो गया, फिर टोकरेके ऊपर बैठगया, इतने में पतिव्रता स्त्री आई और उससे पूछा कि मेरा पति कहां गया है। उसने उत्तर दिया कि तेरा पति मैं हूं, इस खड्डे के जल में गोता लगानेसे अच्छा हुआ हूं। इस को सुनकर स्त्री ने कहा कि तू मिथ्यावादी है, सच कहो मेरा पति कहां है, इतने में गुरु अर्जुन जी आ पहुंचे और योगशक्ति से भूत काल की बात को जानकर पतिव्रता से कहा कि तेरा यही पति है। देख इस खड्डे के जल में गोता लगाकर जैसे कौवे सफेद हो जाते हैं, वैसे ही तेरा पति भी यहां गोता लगाकर अच्छा हो गया है। इसको सुनकर पतिव्रता अपने पतिको साथ लेकर चली गई, इस उदाहरण से भी यही सिद्ध हुआ कि स्त्री को पतिव्रत धर्म का सम्पादन करना ही सर्वोत्तम है। यहां तक स्त्री शिक्षा और पातिव्रतधर्म का वर्णन किया, अब स्त्री शिक्षा और पातिव्रतधर्म पर प्रमाण दिये जाते हैं॥ जैसे कि—

पाणिग्राहस्यसाध्वीस्त्री जीवतोवामृतस्यवा।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥

भाष्यम्—पाणिग्राहस्येति पत्या सहधर्माचरणेन योऽर्जितः स्वर्गादिलोकस्तमिच्छन्ती साध्वी स्त्री जीवतो वामृतस्य वा भर्तुर्न किंचिदप्रियमर्जयेत् ॥

मनु० अ० ५ श्लो० १५६ ॥

इस श्लोक में मनुजी का सिद्धान्त यह है कि विवाहित पति जब मर जावे तो स्त्री को उचित है कि दूसरे को पति बनाने की इच्छा भी न करे,

किन्तु विवाहित मृतपति ही का स्मरण करती रहे, वही स्त्री स्वर्ग में जाती है तुलसीकृत रामायण में अनुसूया और सीता जी का संवाद वर्णन किया है कि—

जगपतिव्रताचतुर्विधअहहीं । वेदपुराणश्रुतिसबकहहीं ॥ उत्तमकेअसबस मनमांहीं । सपनेहुआनपुरुषजगनाहीं ॥ मध्यमपरपतिदेखैंकैसे । भ्रातापिता पुत्रनिजजैसे ॥ समझविचारधर्मकुलरहहीं । सोनिकृष्टतियश्रुतिअसकहहीं ॥ बिनअवसरभयतेरहजोई । जानहुअधमनारिजगसोई ॥ पतिवंचकपरपति रति करई । रौरवनरकघोरशतपरई ॥ ग्रंथ साहिब में कहा है कि जित घर पिर सोहाग बनाया । तित घर सखिए मंगल गाया ॥ आनन्द विनोदति ते घर सोहहि, जो धन कन्त सिंगारी जोड ॥ खसम मरे फिर नारी न रोवे उस रखवारा औरो होवे ॥ रखवारे का होय विनाश । आगे नरक ईहा भोग विलास ॥ इत्यादि पातिव्रतधर्म विषयक और भी ग्रन्थसाहिब के अनेक प्रमाण हैं ॥

विशीलःकामवृत्तोवा गुणैर्वापरिवर्जितः ।
उपचर्यःस्त्रियासाध्व्या सततंदेववत्पतिः ॥

भाष्यम्—विशीलइति सदाचारशून्यः स्त्र्यन्तरानुरक्तोवा विद्यादिगुणहीनो वा तथापि साध्व्या स्त्रिया देववत्पतिराराधनीयः ॥

मनु० अ० ५ श्लो० १५४ ॥

इसमें मनुजी का अभिप्राय यह है कि विवाहित पति चाहे दुष्ट स्वभाव वाला वा विद्याहीन अथवा व्यभिचारी भी हो तो भी जो स्त्री ऐसे पति पर भी श्रद्धाभक्ति और विश्वास रखती है वही स्त्री सर्वोत्तम है वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना । अन्ध वधिर क्रोधी अति दीना ॥ ऐसेहु पति कर किय अपमाना । नारि पाय यमपुर दुःख नाना ॥ इस तुलसीदासकृत वचन से भी मनुस्मृत्युक्त सिद्धान्त ही सिद्ध हुआ ॥

उतयत्पतयोदशस्त्रियाः पूर्वेअब्राह्मणाः । ब्रह्माचेद्धस्तमग्रहीत सएवपतिरेकधा ॥

अथर्व० का० ५० सू० १८ मं० ८ ॥

इस वेदमन्त्र में सर्वशक्तिमान् ईश्वर का सिद्धान्त यह है कि मनुष्य दश स्त्री तक रख सकता है परन्तु स्त्री का एक विवाहित पति ही होता है। अधिक पति स्त्री के नहीं हो सकते,

रक्षेत्कन्यांपिताविन्नां पतिःपुत्रास्तुवार्धके।
अभावेज्ञातयस्तासां स्वातन्त्र्यंनक्वचित्स्त्रियाः॥

इस याज्ञवल्क्यस्मृति का सारांश यह है कि स्त्री पहिले पिता के फिर पति के पश्चात् पुत्र के आधीन रहे स्त्री स्वतन्त्र कभी न होवे॥

पितारक्षतिकौमारे भर्त्तारक्षतियौवने।
पुत्राश्चस्थाविरेभावे नस्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति॥
एतेवैविधिनाप्रोक्ताः स्त्रीणांधर्माःसनातनाः।
तेनौकाःपरमाप्रोक्ता भवसंसारतारणे॥

इन श्लोकों में वसिष्ठमुनि जी का अभिप्राय यह है कि पिता आदि के आधीन रहना स्त्रीका सनातन धर्म है, पतिव्रत धर्मरूप जहाज़ पर आरूढ़ हुई स्त्री संसार सागर से पार हो जाती है॥

द्वारोपवेशनंनित्यं गवाक्षेणनिरीक्षणम्।
असत्प्रलापोहास्यंच दूषणंकुलयोषिताम्॥

इस स्मृति में व्यासमुनि जी वर्णन करते हैं कि स्त्री घर के द्वारपर भी खड़ी होकर बाहर की ओर न देखे झूठ न बोले हंसे नहीं क्योंकि ऐसी चेष्टा से स्त्री दूषित हो जाती है।

दुःशीलोदुर्भगोवृद्धो जड़ोरोग्यधनोऽपिवा।
पतिःस्त्रीभिर्नहातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥ १॥
अप्रमत्ताशुचिःस्निग्धा पतिंत्वपतितंभजेत्।
यापतिंहरिभावेन भजेच्छ्रीरिवतत्परा॥ २॥
वाक्यैःसत्यैःप्रियैःप्रेम्णा कालेकालेभजेत्पतिम्।
संतुष्टाऽलोलुपादक्षा धर्मज्ञाप्रियसत्यवाक्॥ ३॥

स्त्रीणांचपतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता ।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यंतद्व्रतधारणम् ॥ ५ ॥

इत्यादि श्रीमद्भागवत के श्लोकों में भी व्यास जी ने स्त्री के पतिव्रत धर्म का वर्णन किया है ॥

अपत्यलोभाद्यातुस्त्री भर्त्तारमतिवर्त्तते ।
सेहनिन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्चहीयते ॥ १६४ ॥
व्यभिचारात्तुभर्त्तुःस्त्री लोकेप्राप्नोतिनिन्द्यताम् ।
शृगालयोनिंचाप्नोति पापरोगैश्चपीड्यते ॥ १६४ ॥
सदाप्रहृष्टयोभाव्यं गृहकार्येषुदक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्ययेचामुक्तहस्तया ॥ १५० ॥
यस्मैदद्यात्पितात्वेनां भ्राताचानुमतेपितुः ।
तंशुश्रूषेतजीवन्तं संस्थितंचनलंघयेत् ॥ १५६ ॥
अनेननारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ।
इहाग्र्यांकीर्त्तिमाप्नोति पतिलोकंपरत्रच ॥ १६६ ॥

मनु० अ० ५ श्लो० १६१ ॥

परस्त्रियंयोऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्येवनेऽपिवा ।
नदीनांवापिसंभेदे ससंग्रहणमाप्नुयात् ॥ ३५६ ॥
भर्त्तारंलंघयेद्यातु स्त्रीज्ञातिगुणदर्पिता ।
तांश्वभिःखादयेद्राजा संस्थानेबहुसंस्थिते ॥ ३७१ ॥
पुमांसंदाहयेत्पापं शयनेतप्तआयसे ।
अभ्यादध्युश्चकाष्ठानि तत्रदह्येतपापकृत् ॥ ३७२ ॥

मनु० अ०८ श्लो ३५६ ॥

विधायवृत्तिंभार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ।
अवृत्तिकर्षिताहिस्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ७४ ॥

त्रिधायप्रोषितेवृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।

प्रोषितेत्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥ ७४ ॥

मनु० अ०९ श्लो० ७४ ॥

अर्थ–स्पष्ट भाव यह है कि इत्यादि श्लोकों में मनु जी ने स्त्रियों का पतिव्रतधर्म ही वर्णन किया है। अन्तिम श्लोक में स्त्री की शिल्पविद्या का संपादन करना भी सिद्ध हो चुका। वेदान्त के ग्रन्थों में लिखा है कि अथर्ववेद का उपवेद जो अर्थवेद है, उसी में शिल्पविद्या का वर्णन है जब स्त्री लोग अर्थवेद को पढ़ेंगी तभी तो स्त्रियों को शिल्प विद्या का लाभ होगा ॥

नास्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञो नव्रतंनाप्युपोषितम् ।

पतिंशुश्रूषतेयेन तेनस्वर्गेमहीयते ॥ १५५ ॥

मनु० अ० ५ श्लो० १५५ ॥

भाष्यम्—नास्तिस्त्रीणामिति यथा भर्तुः कस्याश्चित्पत्न्या रजोयोगादिनाअनुपस्थितावपि पत्न्यन्तरेण यज्ञनिष्पत्तिः न तथास्त्रीणां भर्त्रा बिना यज्ञसिद्धिः । नापि भर्त्तुरनुमतिमन्तरेण व्रतोपवासौ किन्तुभर्तृपरिचर्ययैव स्त्री स्वर्गलोके पूज्यते ।

इस श्लोक में मनु जी ने वर्णन किया कि जो विवाहित पति की तन मन धर्म से सेवा का करना है वही स्त्री का यज्ञ है और वही व्रत है, (जायापत्येमधुमतिम्) इस अथर्ववेद के मन्त्र में ईश्वर ने आज्ञा दी है कि विवाहित स्त्री पति परस्पर प्रसन्न वदन हुए मधुर वाणीसे भाषण करें।

कामन्तुक्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैःशुभैः ।

नतुनामापि गृह्णीयात् पत्यौप्रेतेपरस्यतु ॥

तथा च भाष्यम्–कामंत्विति पुष्पमूलफलैः पवित्रैश्च देहं क्षपयेत् । अल्पाहारेणक्षीणं कुर्यात् न च भर्तरि मृते व्यभिचारधिया अन्यपुरुषस्य नामाप्युच्चारयेत् ॥

(मनु० अ० ५ श्लो० १५७)

अर्थ स्पष्ट भावसे यह है कि पति मरेके पश्चात् भी स्त्री शरीरको अल्प भोजन खाकर सुखा देवे। परन्तु दूसरे पति का कभी मन से भी सङ्कल्प न करे। आर्यसमाजी कहते हैं कि जब स्त्री का पति मर जाता है, तो पति भाव भी छूट जाता है, उससे स्त्री को दूसरे पति का कर लेना सर्वथा निर्दोष है आर्यसमाजियों की यह शंका भी अविद्यामूलक है। क्योंकि प्रत्यक्ष में अनुमान प्रमाण की कुछ भी आवश्यकता नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण से देखा जाता है कि हजारों सेठ साहूकार राजा ताल्लुकेदार जमींदार मरजाते हैं। तो उनके माल खजाने रियासत की मालिक उनकी स्त्रियां रह जाती हैं, उससे सिद्ध हो चुका कि विवाहित पति के मर जाने के पश्चात् भी स्त्री का पति भाव यथावत् बना रहता है, न माने तो आर्यमत में भी कई एक साहूकार मर गये हैं। परन्तु उनके माल खजाने की मालिक उनकी स्त्रियां बनी बैठी हैं। इस पर भी आर्यसमाजियों को जरा शर्म नहीं आती, किन्तु शर्म वा शर्मा सागर में गोते खा रहे हैं। देखिये श्रीमती महारानी विक्टोरिया का पति जब मर गया था, तो उसके चक्रवर्तिराज्य की मालिक महारानी विक्टोरिया ही बनी थी। इस उदाहरण से भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि जब विवाहित पति मर जाता है, तब भी उस का और उसकी स्त्री का स्त्री पति भाव संम्बन्ध बराबर बना रहता है॥

(किंच) पति मरे के पश्चात् भी स्वप्न अवस्था में विवाहित स्त्री मरे पति से मिलती और ग्राम्य धर्म भी कर लेती है। उस से मरे पति और जीती स्त्री का स्त्री पति भाव संबन्ध नष्ट नहीं होता। उस से स्त्री को उचित है कि मरे पति का भी स्मरण करती रहे॥

बालयावायुवत्यावा वृद्धयावापियोषिता।
नस्वातन्त्र्येणकर्त्तव्यं किंचित्कार्यंगृहेष्वपि ॥१४६॥
बाल्येपितुर्वशेतिष्ठेत्पाणिग्राहस्ययौवने।
पुत्राणांभर्त्तरिप्रेते नभजेत्स्त्रीस्वतन्त्रताम्॥

(मनु० अ० ५ श्लो० १५१)

इत्यादि श्लोकों में मनु जी ने स्त्री को पराधीन रहने का रिजुलेशन पास कर डाला है। आर्यसमाजी कहते हैं कि (स्वतन्त्रः कर्त्ता) इस पाणिनीय सूत्र के प्रमाण से जीव कर्म करने में स्वतन्त्र वर्णन किया है, स्त्री

भी जीव है, वह भी कर्म करने में स्वतन्त्र हो सकती है आर्यसमाजियों की यह शंका भी अज्ञान-मूलक है क्योंकि दयानन्द ही के लेख से (श्रीश्चते लक्ष्मीश्च०) इस वेद मंत्र के भाष्यमें सिद्ध हो चुका है कि शोभा और लक्ष्मी ईश्वर की दो स्त्रियां हैं। परन्तु वे स्त्रियां ईश्वरके आधीन हैं, स्वतन्त्र नहीं वेदान्त के ग्रन्थों से साबित है कि माया भी ईश्वर के आधीन है, स्वतन्त्र नहीं। वैसे ही वर्तमान समयमें जीव जब कर्मानुसार स्त्री के शरीर को धारण करता है, तो वह अपने को स्त्री जानता है। अपनेको पुरुष नहीं जानता, उस से भी स्त्री स्वतन्त्र सिद्ध नहीं होती। लीला चुडाला गार्गी मैत्रेयी कात्यायनी आदिक महाविदुषी स्त्रियां भी परतन्त्र ही रही हैं स्वतन्त्रता का उन में अत्यन्ताभाव सिद्ध होता है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि जबतब स्त्री मुख पर से पड़दा दूर नहीं करेगी तब तक स्त्री जाति की उन्नति का होना सर्वथा असंभव है। आर्यसमाजियों का यह सरक्यूलर भी जहालतसे भरा है, क्योंकि स्त्री जाति की उन्नति का कारण वेदोक्त विद्या का अभ्यास और पातिव्रत धर्म का संपादन है, यदि मुख के पड़दे का दूर करना ही स्त्री जाति की उन्नति का कारण हो तो आर्यसमाजियों को चाहिये कि आर्या स्त्रियों का पैर से लेकर शिर तक पड़दा दूर करा देवें, उस से आर्या जाति की स्त्रियां बहुत जल्दी उन्नतिके शिखर पर जा बैठेंगी। डाक्टरी विद्या से सिद्ध हो चुका है कि गर्भवती स्त्री यदि दूसरे मनुष्य को देख लेगी, तो उस मनुष्य का फोटो उस स्त्री के गर्भाशय में खड़ा हो जायगा। उस से गर्भस्थ संतान की चेष्टा वा स्वभाव और रूप रंग भी वैसे ही हो जायंगे, इससे अपने पति के बिना स्त्रीको चाहिये कि दूसरे पुरुषको अपने मुखादि अंगोंको कभी न दिखावे॥

उतोत्वस्मैतन्वंविसस्रे जायेवपत्यउशतीसुवासाः।

इस ऋग्वेदके मन्त्रका भी यही सिद्धान्त सिद्ध होचुका है कि जो पतिव्रता स्त्री होती है, वह अपने विवाहित पति ही को अपने मुखादि अंगों को दर्शाती है, दूसरे मनुष्य को कभी नहीं दर्शाती। आर्यसमाजियों ने विदेशी ईसाइयों की हां में हां मिलाई है, सो उन की अत्यन्त भूल है॥

क्योंकि ईसाई मत की स्त्रियां अत्यन्त व्यभिचारिणी सुनी जाती हैं यह वेदोक्त विद्या तथा पतिव्रत धर्म के त्याग कर देने और मुखादि अंगों

को नंगे रखने ही का परिणाम है। सोलह वर्ष की स्त्री का विवाह करना भी आर्यसमाजियों ने ईसाइयों ही से सीखा है, वेद में इस रूल का भी अत्यन्ताभाव है। यद्यपि दयानन्द ने (पञ्चविंशेततोवर्षेपुमान्नारीतुषोडशे) इस आयुर्वेद के प्रमाण को दिया है, तथापि वह श्लोक अंगपरीक्षा प्रकरण का है विवाह के प्रकरण का उस मन्त्र में अत्यन्ताभाव है प्रकरण के विरुद्ध मंत्र को वर्णन करना विद्याहीनों का तमाशा और निरुक्तकार यास्कमुनि से भी विरुद्ध है। ईसाइयों का विलायत देश शीत प्रधान है, भारतवर्ष देश उष्ण प्रधान है, शीत प्रधान ईसाइयों के देश में स्त्री सोलह वर्षमें रजस्वला होती है, उस से ईसाईमत में सोलह वर्ष की आयु में स्त्री का विवाह कराना ठीक है। क्योंकि रजस्वला होने के पश्चात् ही स्त्री को गर्भाधान का समय होता है। भारतवर्ष उष्णप्रधान देश होनेके कारण दश वर्षकी आयुके पश्चात् स्त्री रजस्वला हो जाती है। यदि उस समय विवाह न किया जावे तो स्त्री के व्यभिचारिणी हो जाने का सन्देह रहता है॥

देखिये सिक्खलोग शीघ्रबोध के अनुसार छोटी आयु ही में लड़का लड़की का विवाह करदेते हैं, परन्तु बलवान् यहां तक सिक्खलोग देखे जाते हैं, कि एक सिक्ख का मुकाबला बीस आर्यसमाजी भी नहीं कर सक्ते। पठान और मरहठे तथा गोरखा भी छोटी उमरमें विवाह कर लेते हैं। परन्तु आर्यसमाजी उनका मुकाबला नहीं कर सक्ते। अंगरेज गवर्नमेण्ट ने सिक्ख आदिकों ही को संग्राम करने में शूरवीर समझ रक्खा है। सत्यविद्या और वेदोक्त पतिव्रत को तिलांजली देदेनेके कारण आर्याकन्या पाठशालाओं में व्यभिचारकी शिकायत सुनी जाती है। यहां तक सुना जाता है कि हर एक आर्यापुत्री पाठशालाओं में हरसालमें बहुतसी कुमारी कन्यायें गर्भवती हो जाती हैं। यह परिणाम भी सोलह वर्ष की आयु में लड़कियों के विवाह करने का है॥

वेद और वेदमूलक सत्यग्रन्थोंमें आर्यासमाजियों का एक रूल भी नहीं पाया जाता, किन्तु वेदकी बहाने बाजी से आर्यसमाजियों ने ईसाइयोंका अनुकरण कर लिया है। उस से हिन्दुधर्मवीरों को सूचना दी जाती है कि वेदविरुद्ध आर्यमत से आप भी बचें और अपने बालकों को भी बचावें विधवा का पुनर्विवाह वा नियोग का खण्डन इस व्याख्यान से आगे के व्याख्यान में होगा। यह व्याख्यान स्त्री शिक्षा और पातिव्रत धर्म विषय

का है । विद्याहीन और पतिव्रत धर्म रहित स्त्रियां व्यभिचारिणी हो जाती हैं । वैराग्यशतक से जाना जाता है कि राजा भर्त्तृहरि पूर्ण विद्वान् सुन्दर रूपयुक्त युवा आरोग्य सर्वथा निर्दोष थे । परन्तु उनकी स्त्री विद्याहीन पतिव्रत धर्मरहित थी, उससे उस स्त्री ने दो आने के मजूर से व्यभिचार कर लिया । जब तक भारत वर्ष की स्त्रियां विद्या न पढ़ेंगी, और पातिव्रत धर्मको धारण न करेंगी, काम क्रोधादि दोषान्धकार में फंसी रहेंगी, तब तक उन की कैसे भी कोई रक्षा करे, परन्तु वह व्यभिचार से बाज न आवेंगी ॥

एक नगर में से एक साहूकार व्यापार करने के लिये देशान्तर को चला गया, पीछे उस की स्त्री ने एक परमहंस को हट्टा कट्टा सुन्दर रूप युक्त देखा और मुनीम को भेजकर व्यभिचारके इरादे से परमहंस को अपने पास बुलाया; परमहंसने योगशक्ति से जान लिया कि सेठानी ने हमें व्यभिचार करने की गर्ज से बुलाया है ऐसा विचार कर परमहंस जी ने अपने कमंडलु को पत्थर पर मारके तोड़डाला और रोने लगा, सेठानीने परमहंस से रोने का कारण पूछा, परमहंस जी ने कहा कि मेरा कमण्डलु टूट गया है, सेठानीने कहा कि कमंडलु आप को दूसरा मिल जावेगा आप आइये पलंग पर विराजिये, परमहंस ने कहा कि ऐसा कमण्डलु हमें तीनलोक में से भी न मिलेगा सेठानी ने पूछा कि इस कमंडलु में कौनसी सर्वोत्तमता है, परमहंसने कहा कि पच्चीस वर्ष गुजरे हैं, कि जब से यह कमंडलु हमारे पास है, जब २ हम दिशा जाते थे तो - इसी कमंडलु के जल से चूतड़ धोते थे, २५ वर्ष तक इस कमंडलु ने हमारे नंगे चूतड़ देखे हैं, अब हम गधे नहीं हैं कि दूसरे कमंडलु के सामने नंगे चूतड़ कर दिखावें । इसको सुनकर सेठानी को ज्ञान हो गया कि जो स्त्री बिना पतिसे भिन्न दूसरे मनुष्य को अपने अंग दिखाती है वह जड़ कमंडल के सदृश भी उत्तम नहीं हो सकती किन्तु वही स्त्री सदाव्यभिचारिणी है, ऐसा सोचकर सेठानी ने परमहंस जी से क्षमा मांगी और भोजन जिमाकर सेठानी ने परमहंस जी को विदा किया ॥

इस उदाहरण का सिद्धान्त यह कि इस समय के परमहंस भी कोई २ ऐसे जितेन्द्रिय हिन्दुमत में देखे जाते हैं, जो कि स्त्रियों को पातिव्रतधर्म्म की शिक्षा देते हैं । परन्तु आर्यमत में जितने साधु देखे सुने जाते हैं, वे [illegible] यों का पातिव्रतधर्म बिगाड़ने के लिये ग्यारह २ पतियोंका हल्ला मचाते

फिरते हैं। जब वेद वेदांगोपांग में स्त्रीको दूसरा खसम कराने का कोई प्रमाण नहीं मिलता तो पुराण वगैरह के हवाले देने लगजाते हैं। सो भी उन का हठ और अज्ञान है, क्योंकि सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में दयानन्दने पुराणों को विषसे मिले अन्नके सदृश त्याग देना वर्णन किया है। और पुराणों को झूठे जालग्रंथ कहा है, पुराणोंके बनानेवालों को अन्धे और लालबुझक्कड़ लिखा है, यदि आर्यसमाजी पुराणों के प्रमाणों से स्त्री को ग्यारह से भी अधिक पति बनाने की चेष्टा करें तो दयानन्द के कथनके अनुसार आर्यसमाजियों को शर्म्मसागर में डूबना पड़ेगा। हिन्दुमत सर्वथा निर्दोष है क्योंकि हिन्दुमतके वेदान्त ग्रन्थोंमें रिजुलेशन पास होचुका है कि वेद सर्वज्ञ ईश्वर के बनाए हैं। उससे वह स्वतः प्रमाण हैं, वेद से भिन्न जितने पुराणादि ग्रन्थ हैं वे सब युंजान योगी जीवों के रचे हैं। उससे वेदानुसार पुराणादि प्रमाण और वेद विरुद्ध अप्रमाण हैं। वेदान्तके ग्रंथोंमें यों भी लिखा है कि वेद सिद्ध योगीश्वर कृत हैं, उन से कल्प कल्पांतरों में भी वेदों की आनुपूर्वी एक रस बनी रहती है। रदबदल नहीं होती किन्तु पुराणादि युंजान योगी जीवों के रचे हैं, उनकी आनुपूर्वी कल्पान्तर में रद बदल हो जाती है, उसी से वेदमूलक पुराणादि प्रमाण और वेद अमूलक अप्रमाण हैं। जिस आर्यसमाजी को सन्देह हो तो वेदान्त के इस सिद्धान्त को विचार सागर वृत्तिप्रभाकरादि ग्रन्थों में देखकर दूर कर सक्ता है। ये दोनों ग्रन्थ दयानन्द के बहुत वर्ष पहिले बने हैं, आर्यसमाजी बहाना तो वेदमत का करते हैं, परन्तु वेद विरुद्धांश में पुराण वगैरह के प्रमाण देने लग जाते हैं सो आर्यसमाजियों की सर्वथा अविद्या और लड़कपन है॥

प्रकरण यह है कि स्त्रीको बाल्यावस्था ही से वेदोक्त विद्या की शिक्षा देनी चाहिये, और साथ ही पतिव्रत धर्म भी सिखला देना चाहिये, तभी स्त्री जाति की उन्नति होगी। यदि ऐसा न होगा तो भारतवर्ष की स्त्रियां सब की सब व्यभिचारिणी हो जायंगी, कुछ अर्सा गुजरा है कि पञ्जाबी सिक्खोंके गुरू एक बाबा खेमसिंह नाम वाले थे और जबतक जीते रहे तबतक वायसराय की कौंसिलके मेम्बर थे, लार्डडफरिनके समय एकबार वायसराय की कौंसिलके दूसरे मेम्बरोंने दरखास्त दी कि भारतवर्षकी अपराध करनेवाली स्त्रियों को जो दण्ड दिया जाता है वह न दिया जावे। इस को सुन कर वायसराय ने बाबा खेमसिंह से जवाब तलब किया कि आपकी इस पर

क्या सम्मति है। इसपर बाबा खेमसिंहने उत्तर दिया कि भारत भरकी स्त्रियां निहायत मूर्ख और विद्या हीन हैं, उनको कानून में लिखे दंडसे भी अधिक दंड देना चाहिये। यदि ऐसा न होगा किन्तु भारत की अपराधिनी स्त्रियों पर से दंड उठा दिया जावेगा, तो थोड़े ही दिनों में वे स्त्रियां भारतवर्ष के मनुष्यमात्र का प्रलय कर देंगीं। इसको सुनकर वायसराय ने बाबा खेमसिंह को धन्यवाद दिया, और बाबा जी के कूल ही को स्वीकार किया। इस उदाहरण से भी यही सिद्ध हुआ कि स्त्री को वेदोक्त विद्या की शिक्षा और पतिव्रतधर्म ही का उपदेश होना चाहिये। आर्यसमाजियों की वा ईसाई आदि की स्त्रियोंका व्यभिचार मूलक उपदेश सर्वथा छोड़ देना चाहिये॥

पानंदुर्जनसंसर्गः पत्याचविरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्चनारीसंदूषणानिषट् ॥

मनु० अ०९ श्लोक० १३।

इस श्लोक में स्त्री को विगाड़ने वाले नशापानादि छै दोष मनुजी ने वर्णन किये हैं, जब स्त्री विद्या पढ़ेंगी तो इन दोषों को भी तिलाञ्जली दे डालेंगीं॥

नैतारूपंपरीक्षन्ते नासांवयसिसंस्थितिः ।
सुरूपंवाविरूपंवा पुमानित्येवभुञ्जते ॥ १४ ॥

मनु० अ० ९ श्लो० १४॥

इसमें मनु जी वर्णन करते हैं कि विद्याहीन स्त्री सुन्दर रूप वाले वा कुरूप वाले मनुष्य को नहीं परखती किन्तु अविद्यान्धकार से केवल मनुष्य मात्र के साथ भ्रष्ट हो जाती है। जब स्त्री वेदोक्त विद्या पढ़ लेंगी तो वह पूर्वोक्त दोष को भी तिलाञ्जलि दे डालेगीं॥

भार्यायैपूर्वमारिण्यै दत्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ।
पुनर्दारक्रियांकुर्यात्पुनराधानमेवच ॥ १६८ ॥

मनु० अ० ५ श्लो० १६८॥

इस में मनु जी का सिद्धान्त यह है कि एक स्त्री के मरजाने पर मनुष्य तो दूसरी स्त्रीसे विवाह कर सक्ता है, परन्तु विवाहित पति के मरजाने पर स्त्री दूसरा पति नहीं कर सकती, क्योंकि विदुषी स्त्री को पतिव्रत धर्म का यथार्थ ज्ञान होता है॥

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमेतुमृतप्रजा ।
एकादशेस्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥

इस श्लोक में भी मनु जी ने यही रूप पाप करडाला है कि एक मनुष्य अनेक स्त्रियोंसे विवाह कर सकता है, परन्तु एक स्त्री अनेक पति नहीं कर सकती । प्रकरण में एक से भिन्न संख्या का वाचक अनेक शब्द है ॥

(सत्यार्थप्रकाश दूसरी आवृत्ति तीसरा समुल्लास ४)—

तामनेनविधानेन निजोविन्देत देवरः ।

इसके भाष्य में दयानन्द ने विधवा का विवाह लिख मारा है । परंतु इस श्लोकके पहिले भाग को बावा जी ने गप्पन कर डाला है, पहिलाभाग हम दर्शाते हैं जैसे कि—

यस्याम्रियेतकन्याया वाचासत्येकृतेपतिः ।

इसमें मनुजी का सिद्धान्त यह है कि कन्या के पिता ने इतना ही वाणी से कहा हो कि मैं अमुक कुमार को कन्या दूंगा, इतना कहने के पश्चात् यदि वह लड़का मर जावे तो कन्या का पिता उस के छोटे भाई के साथ कन्याका विवाह करा देवे । क्योंकि वह कन्या विधवा नहीं हुई किन्तु वह कन्या कुमारी है । यदि हस्तग्रहण से विवाह हो जावे, तत् पश्चात् पति मर जावे तो वह विधवा कहाती है । जाना जाता है कि बावा जी के अंतःकरणमें अविद्यान्धकार छा रहा था, यदि बावा जीके अन्तःकरणमें विद्या सूर्य्य का उजाला होता तो अर्थ से भूलकर अनर्थ कदापि न करते ॥

(सत्यार्थप्रकाश आवृत्ति ७ समुल्लास ४) बावा जी का लेख है कि ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् लड़का लड़कीको फोटो खींचकर विवाह होना चाहिये । बावा जी का यह लेख भी वेदादि सद्ग्रन्थों के विरुद्ध है क्योंकि वेद वेदांगोपांग प्राचीन ग्रन्थों में फोटो खींचकर विवाह का करना कहीं भी नहीं लिखा, क्योंकि खाली फोटो के खींचने से आर्यों को यह पता नहीं लग सक्ता कि स्त्री वन्ध्या है अथवा पुरुष नपुंसक है, जबतक लड़का लड़की परा अर्थात्

आत्म विद्या और अपरा अर्थात् व्यवहार संबन्धिनी विद्याका बाल्यावस्था में अभ्यास न करेंगे। तब तक मूलाविद्या अथवा तूलाविद्या का अत्यन्ताभाव कदापि न होगा, किन्तु परा अपरा दोनों प्रकार के विद्यारूपी सूर्य का उजाला जब लड़का लड़की के हृदयाकाश में होजावेगा, तो अविद्यान्धकारका भी सर्वथा अभाव होजायेगा। इससे पतिके मरजाने पर भी दूसरे पति करनेका संकल्प विधवाको न उठेगा। क्योंकि विद्याके अभ्यासकाल में व्यभिचार के मूल काम क्रोध लोभादि दोष स्त्री के हृदय से नष्ट हो जाते हैं। मूलके नष्ट होजाने से कार्य भी उत्पन्न नहीं होता है॥

यदिहिस्त्रीनरोचेत पुंमासंनप्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनःपुंसः प्रजननंप्रवर्त्तते॥

मनुजी के इस श्लोकका भी यही गूढ़ सिद्धान्त है कि विद्वान् स्त्री पुरुष ही एक दूसरे को प्रसन्न कर सकते हैं। और प्रसन्नता ही से शुभसंतान हो सक्ते हैं। इस व्याख्यानमें वेदोक्त स्त्री शिक्षाका संक्षेपसे हमने वर्णन कियाहै॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

विधवाविवाह तथा नियोग खण्डन ।

व्याख्यान नं० २४

ओम्—यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवंतदुसुप्तस्यतथैवैति ।
दूरङ्गमंज्योतिषांज्योतिरेकन्तन्मेमनःशिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥
ओ३म्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

य० अ० ३४ मं० १ ॥

ईश्वर प्रार्थनात्मक मङ्गल करने के पश्चात् सर्व हिन्दु धर्मवीरों को प्रकाशित किया जाता है कि इस व्याख्यान में विधवा के पुनर्विवाह तथा नियोग और स्वयंवर विवाह का खण्डन होगा। जैसे कि सन् १८७५ का छपा सत्यार्थप्रकाश पृ० १४४ पं० ५ से० ।

नान्यस्मिन्विधवानारी नियोक्तव्याद्विजातिभिः ।
अन्यस्मिन्हिनियुञ्जाना धर्मंहन्युःसनातनम् ॥

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि विधवाका नियोग अपने से भिन्नके साथ न करे। किन्तु अपने कुटुम्बी के साथ ही विधवाका नियोग करे। बाबा जी का यह अनर्थ पूर्वोक्त श्लोक के किसी पदसे भी नहीं निकलता किन्तु उक्त श्लोक के पदार्थों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीन वर्णोंमें नियोग का होना सर्वथा असंभव है। जो तीन वर्णों में नियोग करता है वह सनातन हिन्दु धर्म को नष्ट करता है। द्वितीय सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द ने इस श्लोक को लिखा ही नहीं यदि लिख देता तो नियोगी बाबा की ढोल का पोल शीघ्र खुल जाता।

वन्ध्याष्टमेधि० । (सन् १८७५ का सत्या० पृ० १४६ पं०३॥

इस श्लोक के भाष्य में दयानन्द ने पुनर्विवाह का करना लिखा है। फिर द्वितीय सत्यार्थप्रकाशके चतुर्थ समुल्लास में दयानन्द ने इसी श्लोक को लिखा है वहां इस के भाष्य में बाबा जी ने पुनर्नियोग का करना लिखा है परन्तु दरोगहलफी होने के कारण बाबा जी के यह दोनों लेख झूठे हैं। यद्यपि इस समय के आर्यसमाजी सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाश को

नहीं मानते तथापि दयानन्द तो मानता था। हमारा परिश्रम दयानन्दकृत ग्रन्थों ही के खण्डन का है।

नोद्वाहिकेषुमन्त्रेषु नियोगःकीर्त्यतेक्वचित्।
नविवाहविधावुक्तं विधवावेदनंपुनः॥ ६५॥

भाष्यम्—नोद्वाहिकेष्विति० अर्यमणंनुदेवम्। इत्येवमादिषु विवाहप्रयोगजनकेषु मन्त्रेषु क्वचिदपि शाखायां न नियोगः कथ्यते। न च विवाहविधायकशास्त्रेऽन्येन पुरुषेण सहपुनर्विवाहउक्तः॥

मनु० अ० ९ श्लो० ६५।

इस श्लोक में मनु जी ने सिद्ध कर दिया है कि स्त्री का पुनर्विवाह अथवा नियोग वेदोक्त नहीं है।

अयंद्विजैर्हिविद्वद्भिः पशुधर्म्मोविगर्हितः।
मनुष्याणामपिप्रोक्तो वेनेराज्यंप्रशासति॥

भाष्यम् (अयमिति०) यस्मादयं पशुसम्बन्धी मनुष्याणामपि व्यवहारो विद्वद्भिर्निन्दितः। योयमधार्मिके वेने राज्ञि राज्यं कुर्वाणे तेन कर्त्तव्यतया प्रोक्तः, अतो वेनादारभ्य प्रवृत्तोऽयमादिमानिति निन्द्यते॥

मनु० अ० ९ श्लो० ६६।

इस श्लोक में मनु जी ने वर्णन किया है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों में नियोग का होना पशु धर्म है। और निन्दनीय है नियोग वेदोक्त नहीं किन्तु पापात्मा वेन राजा ने नियोग का प्रचार किया है।

समहीमखिलांभुञ्जन् राजर्षिप्रवरःपुरा।
वर्णानांसङ्करंचक्रे कामोपहतचेतनः॥

मनु० अ० ९ श्लो० ६७।

मनुजी के इस श्लोकका सिद्धान्त यह है कि नियोगका प्रचार करके वेन राजाने वर्णसंकरता चला दी वेन राजा ने काम के वश होकर इस पाप कर्म को चलाया है।

आर्य्यसमाजी कहते हैं कि मनुजीने नियोगके श्लोक भी तो लिखे हैं तो इस का उत्तर यह कि नियोग के श्लोक वेदविरुद्ध होने के कारण अप्रमाण और पूर्वपक्ष के हैं। वेदमत के वह श्लोक नहीं क्योंकि मनुजी पूर्ण विद्वान् थे अपने वेदोक्त सिद्धान्त के विरुद्ध लेख कभी नहीं लिखते थे। आर्यसमाजी कहते हैं कि महाभारत में द्रौपदी के पांच पति लिखे हैं। वाल्मीकीय रामायण में वालि की स्त्री का पति सुग्रीव, और रावणकी स्त्री का पति विभीषण, लिखा है तो इस का उत्तर यह कि वाल्मीकीय रामायण और महाभारत वेदानुसार प्रमाण और वेदविरुद्ध अप्रमाण है। वह वेदमत नहीं क्योंकि वेदमें उन कथाओंका मूल एक भी मंत्र नहीं देखा जाता, यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो प्रकरणानुसार (पाति रक्षतीति पतिः) अर्थात् रक्षाकरने वाले का नाम भी पति होता है। जैसे वेदमें ईश्वर को सर्वका पति कहा है, तो ईश्वर भी भक्तों की रक्षा करता है, सभा नियत कर एक सभापति बनाया जाता है, वह भी सभा की रक्षा करने से पति कहाता है। सेना में एक सेनापति नियत किया जाता है वह भी सेनाकी रक्षा करने होसे पति कहाता है। वैसे ही कीचकादि सौ भाइयोंसे भीमसेनादि द्रोपदीकी रक्षा करते थे, इसीसे पति कहाते थे। सुग्रीव भी वाली की स्त्री की रक्षा करता था, उससे वह वाली की स्त्री का पति था। विभीषण रावण की स्त्री की रक्षा करता था, उससे विभीषण रावण की स्त्री का पति कहाता था। अभिप्राय कि पति शब्द का प्रकरण से विरुद्ध अर्थ करना विद्याहीनों की लीला है, और मुख्य उत्तर यह है कि जिस कथा का वेद में मूल न हो उस कथा को वेदान्ती लोग मिथ्या कहते हैं॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि जब विधवा का दूसरा पति न होगा तो ईश्वर की सृष्टि कम हो जावेगी। आर्यसमाजियों की यह शंका भी भ्रान्तिमूलक है, क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे जाना जाता है कि पुरुष के अनेक विवाह होने से ईश्वर की सृष्टि बढ़ती है, स्त्री के अनेक विवाह होने से ईश्वर की सृष्टि के सत्यानाश हो जाने का सन्देह पैदा होता है। क्योंकि पुरुष यदि दश स्त्रियां विवाह लेवे तो एकसौ सन्तान पैदा कर सकता है। परन्तु एक स्त्री हजार पति भी कर लेवे तो दश से अधिक संतानोंको पैदा नहीं कर सकती। द्वितीयादि पति कर लेने से काम के वश हो कर स्त्री सैकड़ों पतियों का सत्यानाश कर डालती है। उस से ईश्वर की सृष्टि का

शीघ्र ही प्रलय होने की शंका पैदा होती है। विधवा स्त्री का पालन करना और उस को पातिव्रत धर्म का सिखलाना ही सर्वोत्तम है। यदि विद्या पढ़ने के समय स्त्री के मन से काम दोष दूर हो जावे तो पति मरने के पश्चात् दूसरे पति करने का संकल्प भी नहीं उठाती। यदि काम शत्रु स्त्री के मन में खड़ा है तो सर्वोत्तम पति के होते भी वह स्त्री हजारों मनुष्यों से ग्राम्यधर्म कर डालती है॥

आर्यसमाजियों को चाहिये कि स्त्रियों के मन में से काम शत्रु के निकालनेका पुरुषार्थ करें। हिन्दुमतमें वर्त्तमान समय में भी पातिव्रतधर्मयुक्त स्त्रियां सुनी जातीं, और देखी भी जाती हैं। हिन्दीसमाचार पत्रों से प्राप्त होता है कि हिन्दुमत की अनेक स्त्रियां इस समय भी पति का मरना सुनते ही प्राण त्याग देती हैं। कुछ वर्ष गुजरे हैं, एक बीजापुर के रेलवे स्टेशन पर एक विधवा स्त्री माता पिता के मकान को जाने के लिये आयी तीन वर्षका उसका लड़का भी साथ था। स्त्री का सुन्दर रूप था रेल छूट गयी उस विधवा को टिकट न मिला, टिकट बाबू विधवा को बंगले में ले गये दूसरे रेलवे कर्मचारी भी बंगले में आए, विधवा ने जान लिया कि ये बाबू मेरे पातिव्रतधर्म को भ्रष्ट करने की चेष्टा करेंगे। ऐसा जान कर विधवाने लड़का तो बंगले में बाबुओं के पास बिठा दिया, आप पानीका लोटा लेकर बंगलेसे निकल कर दिशा करने को चली. बंगले के बाहर होकर बंगले के फाटक को बन्द कर दिया। बाबू जी बंगले में कैद हो गये. झरोखे में से विधवा को डराने लगे कि दरवाजा खोलो, नहीं तो हम तुम्हारे लड़के को मार डालेंगे। विधवा ने कहा कि मेरे लड़केको मार डालो मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी, बाबुओंने लड़के को छुरी से चीर डाला, विधवा ने कहा कि मुझे पातिव्रतधर्म की आवश्यका है लड़के की मुझे आवश्यका नहीं। इतने में दूसरी ट्रेन आई बाबू जी गिरफ्तार हो गए। यदि आर्या स्त्री होती तो सब रेलवे बाबुओं से स्टेशन पर ही नियोग कर लेती परन्तु वह हिन्दु स्त्री पातिव्रतधर्मयुक्त थी॥

(दूसरा सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४) दयानन्द का लेख है कि रांड़ स्त्री और रंडुवे पुरुष ही का आपस में नियोग होना चाहिये, जीते पुरुष की स्त्री और जीती स्त्री के पुरुष का नियोग कभी न होवे। फिर इस के विरुद्ध उसी समुल्लास में दयानन्द ने जीते स्त्री पति का भी नियोग लिख

दिया है। यहां तक दयानन्द ने आज्ञा दी है कि जो पुरुष स्त्री को दुःख देवे, उस को स्त्री छोड़ देवे किन्तु दूसरे पुरुष से नियोग कर लेवे। उस से लड़का पैदा कर लेवे, उस लड़के को पहिले विवाहित दुःख देने वाले पति का दायभागी बना देवें। अब विचारना चाहिये कि दयानन्द का यह लेख धर्मशास्त्र से तो विरुद्ध था ही परन्तु बृटिश गवर्नमेण्ट के कानून से भी सर्वथा विरुद्ध है। यदि आर्यमत वाली स्त्री पूर्वोक्त रूल को सफल करेगी, तो उस का विवाहित पहिला पति वर्णसंकर लड़के को दायभागी तो नहीं होने देगा। किन्तु लड़के समेत उस व्यभिचारिणी स्त्री की जान को तो अवश्य मार डालेगा। जो हो पूर्वोक्त दयानन्द के दोनों लेख ही मारे दरोग हलफी के झूठे हैं। दयानन्द की दयासे आर्यमत में न तो जीते नर नारी का नियोग सिद्ध होता है और न मरे नरनारीका नियोग सिद्ध हो सक्ता है।

सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास की समाप्ति में दयानन्द ने झूठी दरोगहलफी का सरक्यूलर जारी किया है उसी तेरहवें समुल्लास के आरम्भ से जरा आगे जाकर दयानन्द ने रूल पास किया है कि जो आप झूठा और दूसरे को झूठ पर चलावे उसको शैतान कहना चाहिये। अब आर्य समाजियों को चाहिये कि जरा ज्ञान और विचार के नेत्रों को खोलें और निष्पक्षताकी दूरबीनसे निगरानी कर लेवें कि पूर्वोक्त दोष किसपर आता है।

२ सत्या० आवृत्ति ३ समुल्लास ४। (अङ्गादङ्गात्०)

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि गर्भवती स्त्री एक साल तक विवाहित पतिसे समागम न करे यदि इच्छा हो तो विवाहित पतिसे भिन्न किसी मनुष्य से नियोग करके उसको भी संतान उत्पन्न कर देवे। दयानन्द के इस लेखसे जाना जाता है कि दयानन्द को सर्वथा अविद्या पिशाची ने ग्रसा हुआ था। इतना भी बाबा जी के हृदय में विचार न रहा कि स्त्री के गर्भ में जब एक सन्तान उपस्थित है तो उसी गर्भाशय में द्वितीय सन्तानको पैदा कर देना सर्वथा असम्भव और पदार्थ विद्या के विरुद्ध है। ऐसे लेखों पर ही पेशावर की फौजदारी और जजी अदालत में दयानन्द बदनाम हो चुका है।

प्रोषितोधर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योष्टौनरःसमाः।
विद्यार्थंषड्यशोर्थंवा कामार्थंत्रींस्तुवत्सरान् ॥

(सत्या० आवृत्ति ३ पृ० १९७ पं० २२। मनु० अ० ९ श्लोक ७३।)

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जब स्त्री का विवाहित पति धर्मके संपादन करनेको गया हुआ ८ वर्ष तक न आवे विद्या और कीर्त्ति के लिये विदेश गया छः वर्ष तक धनोपार्जन के लिये विदेश गया तीन वर्ष तक न आवे तो स्त्री को उचित है कि पीछे किसी दूसरे मनुष्य से नियोग करके पुत्र उत्पन्न कर लेवे जब विदेश गया हुआ विवाहित पति आवे तो नियोग छूट जावे फिर वह स्त्री विवाहित पतिके पास आवे। अब आर्यसमाजियोंसे पूछना चाहिये कि दयानन्दकृत श्लोक के इस भाष्य को आप मानते हैं, अथवा नहीं। यदि कहो कि दयानन्दकृत इस भाष्य को हम नहीं मानते तो उसको सत्यार्थप्रकाश में से निकाल किस लिये नहीं देते ?। यदि कहो कि दयानन्दकृत भाष्य को हम नहीं निकाल सकते तो दूसरी २ अनेक बातें दयानन्दकृत ग्रन्थों में से आप क्यों निकालते जाते हैं। यदि कहो कि दयानन्दकृत भाष्य को हम मानते हैं तो कहिये मनूक्त श्लोकका दयानन्दकृत भाष्य व्यभिचार मूलक है वा पतिव्रत धर्म मूलक है। यदि पतिव्रतधर्ममूलक कहो तो कहिये व्यभिचार मूलक लेख के भी क्या सींग पूछ होते हैं।

किंच आप जब विदेश यात्रा को चले जावें और आपकी स्त्री पूर्वोक्त चाल पर चले तो क्या विदेश से आकर आप उस स्त्री को ले सकते हैं और क्या नियोग से उपजा पुत्र आप का तुख्म हो सकता है यदि हो सकता है तो कहिये कौनसी युक्ति और प्रमाण से हो सकता है ?। यदि कहो कि नियोग से उपजा पुत्र हमारा तुख्म नहीं हो सकता तो कहिये उस स्त्री पुत्र को लेने से क्या लाभ आप को होगा। यदि कहो कि हम उस स्त्री को नहीं ले सकते तो दयानन्दकृत व्यभिचारमूलक मत को तिलाञ्जलि देकर वेदोक्त सनातन हिन्दू धर्म ही को फिर क्यों नहीं मान लेते ?। यदि कहो कि हिन्दुमत के वेदसे भिन्न पुराणादि में बहुत से व्यभिचार मूलक लेख लिखे हैं हिन्दु धर्ममें आनेसे वे सब हमारे गले में लपट जाते हैं तो उत्तर यह कि पुराणों में हजारों लेख ऐसे भी तो हैं जो कि वेदोक्त हैं। यदि कहो कि पुराणों के अच्छे लेखों को हम विष से मिले अन्न के समान छोड़ देते है तो वैसे दयानन्दकृत ग्रन्थों को भी क्यों नहीं छोड़ देते। क्योंकि उन में भी बहुत से मिथ्या और व्यभिचार मूलक लेख अनुभव सिद्ध हैं। अनुभव सिद्ध बात किसी युक्ति से भी खण्डन नहीं हो सकती यदि कहो कि दयानन्दकृत ग्रन्थों की अच्छी बातें हम मान लेते हैं। व्यभिचार मूलक

और मिथ्या बातों को छोड़ देते हैं तो फिर आप पुराणों की अच्छी बातों को भी क्यों नहीं मान लेते यदि कहो कि हिन्दु धर्म में मुसलमान भंगी चमारों को साथ नहीं मिलाते उससे हम हिन्दुधर्ममें नहीं आसकते। तो उत्तर यह कि मुसलमान भंगी चमारों के शरीर गी बैलके मांस से बने हैं इसलिये वह ब्राह्मणादि चार वर्ण नहीं हो सकते। हां हिन्दु धर्म को धारण कर वह हिन्दु तो कहा सके हैं, परन्तु चार वर्णों से उनकी रिश्तेदारी वा खानपान होना सर्वथा असंभव है। इस विषयको हमने शुद्धि अशुद्धि के व्याख्यान में विशेष करके वर्णन कर दिया है, जिस आर्य्यसमाजी को उत्कट जिज्ञासा हो वह वहां देखकर सन्देह नष्ट कर लेवे। हिन्दु विद्वानों की विद्वत्ता शक्तिसे पूर्वोक्त मनुजी के श्लोक का अर्थ सर्वथा निर्दोष है, उक्त श्लोक में मनुजी स्त्री के लिये पातिव्रत धर्म्म का वर्णन करते हैं, स्त्री को उचित है कि धर्म्म संपादन के लिये विवाहित पति विदेश चला जावे और आठसाल तक न आवे तो जहां वह पति गया हो वहां उसके पास चली जावे। तथा विद्या और कीर्त्तिके लिये विदेशमें गयाहो तो आठ और धनोपार्जन के लिये गया विवाहित पति विदेशसे तीन वर्ष तक न आवे तो स्त्री पतिके पास चली जावे। मनुजी का यह भी वर्णन है कि विदेश में स्त्री को साथ ही पति ले जावे, यदि न लेजावे तो स्त्री के खानपान पहरान का प्रबन्ध कर जावे। यदि न कर जावे तो स्त्री को उचित है कि सूत कातना आदि अथवा शिल्पविद्या से गुजारा करे, परन्तु दूसरे को पति बनाने की इच्छा तक भी कभी न करे॥

सुना जाता है कि एक वाचस्पति मिश्र थे, वे धर्म्म संपादन के लिये काशी चले गये विवाहिता स्त्री को घर ही में छोड़ गये, पच्चीस वर्ष तक न आये, उनकी स्त्री का नाम भामती था, वह पता पूछकर काशी में आई उसके पति वाचस्पति मिश्र ने उसके आने का कारण पूछा स्त्री ने कहा कि मुझे पुत्र की इच्छा है। वाचस्पति जी ने कहा कि अब हम वृद्धायु हो गए हैं, काम चेष्टा की इच्छा भी नहीं, यदि तुम्हें नाम चलानेकी इच्छा हो तो हमने एक वेदान्त का ग्रन्थ रचा है, उसका नाम हम भामती निबन्ध रख देते हैं। जब तक चन्द्र सूर्य हैं तब तक तुम्हारा नाम संसार भर में अटल रहेगा। भामतीने इस बातको स्वीकार कर लिया। अभिप्राय यह कि प्रथम ऐसी २ पतिव्रता धर्म्मयुक्त स्त्रियां होचुकी हैं, आजकल भी स्त्रियोंको उचित

है कि इस प्रकार के पतिव्रता धर्म्म के धारण करने का पुरुषार्थ करें। जाना जाता है कि दयानन्द के अन्तःकरण में कामकी ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी; यदि कुछ दिन हजरत और भी जिन्दे रहते तो दफ़र वा आफिस में गये पतिको घंटा दो घंटा ज्यादा लग जावे तो स्त्री तुरन्त पीछे नियोग कर लड़का पैदा करलेवे इस रूल को भी पास कर जाते। क्योंकि यह काम की महिमा है। कुछ भारतवासियों के भाग्य अच्छे ज्ञात होते हैं, क्योंकि ऐसे कामी को ईश्वर ने शीघ्र ही असार संसार से उठा लिया॥

(किंच) कुछ वर्ष गुजरे हैं कि हम लाहौर लड्गी बाजारमें लिकचर दे रहे थे, वहां ऐसी घटना हुई कि मियांमीर की छावनीसे एक जंगी सिपाही छुट्टी लेकर बाजार में टहल रहा था। उसकी स्त्री किसी दूसरे मनुष्य के साथ एक कहार के दूकान पर बैठी थी, उसने सिक्ख सिपाही से कहा कि अब मैं दूसरे मनुष्य के साथ निकल आई हूं। आप में जो शक्ति हो सो दिखाइये, इसको सुनकर जंगी सिपाही ने कहार की दूकान में तलवार उठा कर स्त्री तथा दूसरे मनुष्य और कहार तीनों ही को कतल कर डाला। पुलिस ने जंगी कमान को तार दिया; जंगी कमान आये और जंगी सिपाही सिक्ख को जंगी पलटन में लेगये, इतनेमें जंगी सिपाही पर लाहौर से वारंट आया, परन्तु जंगी कमान ने उस वारंटको वापिस कर दिया और अदालत को लिखा कि हमारा जंगी सिपाही कसूरदार नहीं किन्तु कसूरदार वह स्त्री थी जिसने कि हमारे जंगी सिपाही को ताना लगाया। लोहे की तलवार का जखम मिट जाता है, परन्तु ताना रूपी तलवार का जखम मरण तक कलेजे को जलाता है। सिद्धान्त यह कि सिक्ख जंगी सिपाही बरी हो गये। प्रकरण यह कि विदेश से आया पति अब अपनी स्त्री में पर पुरुष से पैदा किये लड़के को देखेगा, तो वह क्रोध में आया उस स्त्री को कतल कर डालेगा। उससे दयानन्दोक्त नियोग खून का कारण है। मुसलमान ईसाई भी ऐसा रूल पास नहीं करते जैसा कि दयानन्द ने किया है॥

अन्यमिच्छस्व सुभगे ! पतिं मत्॥ २ सत्या० समुल्लास ४॥ ऋ० मण्ड० १० सू० १० मं० १०॥

इसके भाष्य में दयानन्द ने वर्णन किया है कि स्त्रीका विवाहित पति जब बीमार हो जावे तो स्त्रीको आज्ञा देवे कि अब मेरे में संतानोत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं, तू दूसरे से नियोग कर सन्तान की उत्पत्ति करले इस लेख से

जाना जाता है कि दयानन्द का भीतरी सिद्धान्त यह था कि भारतदेश में भगिनी भ्राता का परस्पर विवाह अथवा नियोग होने लग जावे। क्योंकि उक्त ऋग्वेद के दशवें मंडल का दशवां सूक्त सारा ही यमयमी नामके भगिनी भ्राता के संवाद का है। भ्राता और स्वसा ऐसे शब्द उस सूक्त के मन्त्रों में देखे जाते हैं। दयानन्द ने वेद मन्त्रों की तो एक बहाने बाजी करी थी, परन्तु सिद्धान्त उसका व्यभिचार मूलक था॥

सुना जाता है कि इंगलैंड के विद्वान् मोक्षमूलर साहिब ने दयानन्द से पूछा था कि आप ने भगिनी भ्राता को स्त्री पति क्यों लिख दिया, इस का उत्तर दयानन्द ने कुछ भी नहीं दिया, वैसे ही डाक्टर विलसन साहिब ने भी आर्य्यमत वाले गुरुदत्त से पूछा था कि दयानन्द ने यमयमी भगिनी भ्राता को जोरू खसम क्यों बना डाला। तो गुरुदत्त पंडित ने भी इस का उत्तर कुछ नहीं दिया। इस समय इन्डिया भर के आर्यसमाजी इस पर निरुत्तर हुए बैठे हैं। मुसलमान ईसाई भी सहोदर भगिनी भ्राता के नियोग वा विवाह होने में नफरत करते हैं। परंतु दयानन्दको इस व्यभिचार मूलक लेख लिखने में कुछ भी नफरत नहीं आई, उसी से दयानन्द के भक्त आर्यों को भी दयानन्दोक्त व्यभिचार मूलक लेख पर कुछ भी नफरत नहीं आती। हम हिन्दु मुसलमान तथा ईसाई भंगी चमार नाई धोबी जुलाहे ढेढ़ वगैरह को चेताते हैं कि आप होश कीजिये शर्मा वर्मा खिताबके लालच से आप कभी आर्यमत में शामिल न हूजिये। क्योंकि दयानन्दकृत अनर्थ की दया से आप को भी भगिनी भ्राता का आपस में विवाह वा नियोग करना पड़ेगा॥

अब हम निष्पक्ष विद्वानों को सूचना देते हैं कि दयानन्द ने पूर्वोक्त वेदमंत्र का एक अन्तिम टुकड़ा ले लिया है, सारा मंत्र छोड़ दिया है, अब सारा मंत्र सुनिये। जैसे कि—

आघाताग च्छानुत्तरायुगानि यत्रजामयःकृणवन्नजामि।
उपबर्बृहिवृषभायबाहुमन्यमिच्छस्वसुभगेपतिंमत् ॥

ऋ० मण्ड० १० सू० १० मं० १०॥

(तथाचसायणाचार्यकृतभाष्यम्) (यत्र येषु कालेषु जामयो भगिन्य अजामि भ्रातरं पतिं कृणवन् करि-

ष्यन्ति (ता) तानि उत्तराणि युगानि कालविशेषाओ-गच्छान् आगमिष्यन्ति। घेति पूर्णः। यस्मादेवं तस्मात् हे सुभगे ! त्वं इदानीं मत् मत्तः अन्यं पतिं भर्त्तारं इ-च्छस्व कामयस्व तदनन्तरं वृषभाय तव योनौ रेतःसेक्त्रे पुरुषाय आत्मीयं बाहुमुपबर्हि शयनकाले उपवर्हणं कुरु)

अर्थ स्पष्ट है। भाव यह है कि उक्त मंत्र में सायणाचार्य ने यथावत् दर्शा दिया है कि यमी भगिनी को यम भ्राता ने व्यभिचार से रोका है, और पतिव्रता धर्म्म का उपदेश बतलाया है॥

किसी नगर में एक मियां जी मुसलमान् थे उनको नया मजहब चलाने का इरादा हुआ, मुसलमानों को बहकाने लगा कि नमाज का पढ़ना छोड़ दो, मुसलमानों ने कहा कि कुरान में तो निमाज का पढ़ना लिखा है, आप कैसा तूफान बकते हैं, मियां जी ने कुरान का एक सफा निकाला, उस में लिखा था कि नमाज न पढ़ो जब कि नशे में हो मियां जी ने (जब नशे में हो) इतना फिकरा तो अंगूठे से दबा रक्खा और (नमाज न पढ़ो) इ-तना फिकरा मुसलमानों को दिखला दिया हजारों मुसलमानों ने निमाज का पढ़ना छोड़ दिया, इतने में एक मौलवी साहिब भी तशरीफ ले आए। उन ने देखा कि मियां जी ने (जब नशे में हो) इतना फिकरा अंगूठे से दबा रक्खा है, और (निमाज न पढ़ो) इतना फिकरा दर्शाकर मुसलमानों को बहका रहा है मौलवी जी ने मियां जी को कहा कि आप जरा अंगूठे को तो उठाइये। मियां जी ने अंगूठा न उठाया, परंतु मौलवी जी ने मियां जी के अंगूठे को उठादिया तो (जब नशे में हो) इस फिकरे को सब मुस-लमानों ने देख लिया, उस दिन से मियां जी के मजहब का प्रध्वंसाभाव हो गया। वैसे ही दयानन्द की लीला है कि (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्) इतना टुकड़ा वेद मंत्र का ले लिया, शेष मंत्र का लोपकर डाला, परंतु अब दयानन्द की ढोल का पोल निकल खड़ा हुआ है। अब आर्यमत की तर-क्की का भी अत्यन्ताभाव होता है॥

एक नगर में एक स्वार्थी बाबा तशरीफ ले आए, वहां एक मूर्ख राजा था, स्वार्थी बाबा ने उस को एक गीताका श्लोक सिखला दिया, उस श्लोक

का दाल रोटी अर्थ भी राजा को बतला दिया उस दिन से राजा ने बड़े २ विद्वानों से गीता के श्लोक का अर्थ पूछा विद्वानों ने राजा को यथार्थ सुनाया, परंतु मूर्ख राजा के मनमें दाल रोटी अर्थ घुसा था राजा ने विद्वानों का अपमान कर डाला। एक फक्कड़ परमहंस विद्वान् भी राजा को मिले, स्वार्थी का दाल रोटी अर्थ राजा को उन ने दर्शा दिया, राजा खुश हुआ फिर परमहंस ने व्याकरण कोष वगैरह भी राजाको पढ़ादिये, उस से राजा को श्लोक का सत्यार्थ ज्ञात हो गया, राजा ने स्वामी को ठग जान लिया और परमहंस को सत्यवादी जाना और नीति से राजा ने पुलिससुपरिण्टेण्डेंट को हुक्म दिया कि दाल रोटी अर्थ बतलाने वाले बाबा जी को पकड़ कर हमारे पास ले आओ। सुपरिन्टेंडेन्ट पकड़ने गये, बाबा जी उसी रोज से भाग गये थे कि जिस रोज से राजा ने विद्या पढ़ने का प्रारम्भ किया था, राजा ने बाबा जी का भाग जाना सुनकर पश्चात्ताप किया कि जाली बाबाजी के जाल में फंसकर मैंने बड़े २ विद्वानों का अपमान करडाला मैंने, बिना संस्कृत विद्या के अपनी मूर्खता से दालरोटी अर्थको सत्य जानलिया, पश्चात्ताप के पश्चात् राजाने संस्कृतपाठशाला खुलवादी और विद्वान् पंडितों द्वारा विद्या का प्रचार कराने लगा॥

इस उदाहरण का सिद्धान्त यह है कि वर्तमान समयमें भी लाखों लाला बाबुओं ने संस्कृत विद्या का पठन पाठन छोड़ दिया है, संतों के संग को तिलाञ्जलि दे डाली है। यही हाल राजा महाराजा सेठ साहूकारों का देखा जाता है दयानन्दकृत व्यभिचार मूलक मिथ्या वेदमन्त्रों के अर्थों को सत्य मान बैठे हैं। परन्तु हम सत्य कहते हैं कि जिस समय राजा महाराजा सेठ साहूकार लाला बाबूजी वेदों के निघंटु निरुक्त कोष तथा अष्टाध्यायी महाभाष्य से वेदोंके व्याकरण की ठीक ठीक निगरानी करलेंगे तो दयानन्दोक्त गप्प ग्रन्थों को शीघ्र ही तिलांजली दे डालेंगे॥

देखिये ऋग्वे० मं० १० सू० १० मं० १०॥

आघाता गच्छानुत्तरा युगानि यत्रजामयः कृणवन्नजामि।
उपबर्बृहि वृषभाय बाहु मन्यमिच्छस्व सुभगेपतिंमत्॥

इस मन्त्र का यास्कमुनि ने वेदों के निरुक्तकोष में जो सत्यार्थ किया है दर्शाया जाता है॥

(तथाहि) निरु० अ० ४ पा० ३ खं० १॥ इयं यमी किल यमं प्रार्थयाञ्चकार एहि मैथुनाय संगच्छावहा इति । ताम् कामयमानोऽसावनयर्चा प्रत्युवाच (आघा-तागच्छान्) "घा,, इत्यनर्थकएव, आगच्छान् आगमिष्यन्तीत्यर्थः आह कानि ? उच्यते 'ता, तानि उत्तराणि युगानि आगमिष्यन्ति तेऽपि काला न तावत् सांप्रतं वर्त्तन्त इत्यभिप्रायः । येषु किम् यत्र येषु (जामयः) भगिन्यः भ्रातॄणां अजामि अयोग्यानि मैथुनसम्बन्धीनि कर्माणि करिष्यन्ति कलियुगान्ते हि तादृशः सङ्करो भवति नचेदं कलियुगं वर्त्तते । अतो ब्रवीमि उपबर्बृहि उप धेहि कस्मै वृषभाय तवोपरिरेतः सेक्तुमन्यकुलजो योग्यः तस्मै । किमुपबर्बृहि इति बाहुं शयनीये सर्वथा प्रार्थ्यमानोप्यहं तव पतिर्न भविष्यामि यतो ब्रवीमि—अन्यमिच्छस्व अन्यमन्वेषयस्व हे सुभगे ! पतिं मत् ॥

अर्थ स्पष्ट है । भाव यह है कि यमी भगिनी को यम भ्राता कहता है कि हे भगिनि ! वह कलियुग आगे आने वाला है कि जिस में भगिनी के साथ भ्राता समागम करेंगे. अब वह समय नहीं है , उससे तू मेरे से भिन्न गोत्र वाले के साथ विवाह करके समागम कर । स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र का निरुक्त के विरुद्ध अनर्थ किया है । हमारी संमति से निरुक्तकार का अर्थ सर्वथा निर्दोष और युक्ति प्रमाणसे सत्य सिद्ध हो चुका है । स्वामी दयानन्द जी का अर्थ आर्यसमाजियों की हां में हां मिलाने का है । जो सायणाचार्य जी ने उक्तमन्त्रका अर्थ किया है वही अर्थ निरुक्तकार का है, स्वामी दयानन्द का अर्थ दोनोंसे विरुद्ध है। अब उक्तमन्त्रके आगे का मन्त्र और उसका अर्थ दर्शाया जाता है (तथाहि) ऋग्वे० मं० १० सू० १० मं ११ ॥

किंभ्रातासद्यदनाथं भवाति किमुस्वसायन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
काममूताबह्वे३ तद्रपामि तन्वामेतन्वं १ संपिपृग्धि ॥

(तथा च भाष्यम्) यमी यमेन प्रत्याख्याता पुनराह–यत् यस्मिन् भ्रातरि सति स्वस्रादिकं अनाथं नाथरहितं भवाति भवति स भ्राता किमसत् किंभवति नभवतीत्यर्थः (किंच) यत् यस्यां भगिन्यां सत्यां भ्रातरं (निर्ऋतिः) दुःखं निगच्छात् नियमेन गच्छति प्राप्नोति सा स्वसा किमु किंवा भवति भ्रातृभगिन्योश्च परस्परं प्रीतिर्येन केनचिदुपायेनावश्यं कार्येत्यभिप्रायः । साहं-काममूता कामेन मूर्छिता सती वहु नानाप्रकारमेतदीदृश-मुक्तं वक्ष्यमाणं च रपामि प्रलपामि । एतज्ज्ञात्वा मे मम तन्वा शरीरेण तन्वं च शरीरं संपिपृग्धि संपर्चय संभोगेन संश्लेपय मांसम्यगभुङ्क्ष्वेत्यर्थः) ॥

अर्थ स्पष्ट है भाव यह कि इस मंत्र में यम भ्राता के प्रति यमी भगिनी कहती है कि जब भ्राता के होते भगिनी दुःखी हो वह भ्राता ! क्या और भगिनी के होते भ्राता दुःखी हो वह भगिनी क्या है। उस से हे भ्राता ! मैं काम से व्याकुल हूं मेरे शरीर के साथ तू अपने शरीर का स्पर्श कर। यह सायणाचार्य कृतार्थ है । स्वामी दयानन्द ने इस मंत्र का अर्थभी सायणाचार्य के विरुद्ध किया है। हमारी संमति से सायणाचार्य कृत अर्थ ही माननीय है। अभिप्राय यह कि दशवें मंत्र का अन्तिम टुकड़ा लेकर जो दयानन्द ने व्यभिचार मूलक अनर्थ किया है। उस से जाना जाता है कि बाबा जी का गूढ़ सिद्धान्त यह था कि शनैः शनैः भगिनी भ्राता का नियोग भी जारी किया जावेगा आर्यों को चाहिये कि अन्तरिक्षसे दयानन्द को बुलावें आकर उत्तर देवें ।

आर्य लोग अज्ञान और हठ से अब तो दयानन्द के दोष नहीं देखते परन्तु जब तक विद्वान् हिन्दु पण्डित दयानन्दकृत ग्रन्थों को ज्ञाननेत्र और विचार दुरबीन से निगरानी नहीं करते तब तक ही दयानन्दकृत व्यभिचार मूलक अनर्थ का दबदबा बना हुआ है। निगरानी करने पर बाबाजी की सर्वथा कलई खुल जायगी । ११ वें मन्त्र में यमी भगिनी ने यम भ्राता

से फिर व्यभिचार मूलक वचन क्यव कहे तो (११ वें मन्त्र में यम भ्राता फिर यमी भगिनी को पतिव्रताधर्म बतलाते हैं जैसे कि (ऋग्वे० मण्ड० १० सू० १० मं० १२)

नवाउतेतन्वातन्वं१संपिपृच्यांपापमाहुर्यःस्वसारंनिगच्छात्।
अन्येनमत्प्रमुदःकल्पयस्व नतेभ्रातासुभगेवष्टयेतत् ।

(सायणाचार्यकृतभाष्यम्) (यमः यमीं प्रत्युक्तवान् हे यमि ते तव तन्वा शरीरेण तन्वमात्मीयं शरीरं नवै संपिपृच्यां नैव संपर्चयामि । नैवाहं त्वां संभोक्तुमिच्छामीत्यर्थः । यो भ्राता स्वसारं भगिनीं निगच्छात् नियमेनोपगच्छति संभुंक्तइत्यर्थः । तं पापं पापकारिणं आहुः शिष्टा वदन्ति । एतत् ज्ञात्वा हे सुभगे ! सुष्ठुभजनीये हे यमि ! त्वं मत् मत्तः अन्येन त्वद्योग्येन पुरुषेण सह प्रमुदः संभोगलक्षणान् प्रहर्षान् कल्पयस्व समर्थय । ते तव भ्राता यमः एतदीदृशंत्वया सह मैथुनं कर्तुं न वष्टि न कामयते नेच्छति ।

भावार्थः—इस मन्त्रमें यमी भगिनीसे यम भ्राता कहते हैं कि हे यमि तेरा शरीर और मेरा शरीर एक उदर से उपजे हैं। इस लिये तू मेरी भगिनी है। और मैं तेरा भ्राता हूं तुम्हारे साथ मैं कदापि भोग न करूंगा। तेरे शरीर से मैं अपने शरीर का कभी स्पर्श न करूंगा क्योंकि भगिनी से कुकर्म करने वाला पापी होता है। उस से तू मुझ से भिन्न गोत्र वाले मनुष्य के साथ विवाह कराकर समागम कर।

अब दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि आप के बाबा जी इस मन्त्र का अर्थ कैसा कर गये हैं। अभिप्राय यह है कि ऋ० मण्ड० १० सू० १० वें में १४ मन्त्रों में यम यमी का इतिहास भरा है। भ्राता स्वसा शब्द मन्त्रों में अनुभव सिद्ध हैं। परन्तु बाबाजी ने भ्राता भगिनी को जोरू खसम करके लिख मारा है और भ्राता भगिनी को स्त्री पति लिखकर पति के सामर्थ्य हीन होने पर सन्तान के लिये नियोग लिख मारा है। सो निष्पक्ष

विद्वान् लोग विचार लेवें कि बाबा जी देश की उन्नति के लिये यत्न कर गये हैं अथवा पापका बीज बो गये हैं।

सन् १९०५ ईसवी के हिन्दी बंगवासी में एक लेख छप चुका है कि एक बाबू किसी आर्यसमाज के सेक्रेटरी बने उनकी लड़की विधवा हो बैठी बाबू जी ने उस का स्वयंवर किया सभामण्डप में विधवा लड़की को बुला कर उसके हाथ में फूलों का हार पकड़ा दिया। और विधवा लड़की से कहा कि जो तुम्हारे पसन्द आवे उसी के गले में फूलों का हार डालकर उसी से नियोग करले लड़की ने वह हार पिता ही के गले में डाला इसी प्रकार तीन वार पिता ही के गले में लड़की ने हार डाला सभा में उपस्थित लोगों ने लड़की को पागल समझा और पिता ही के गले में तीन वार फूलों का हार डालने का कारण पूछा लड़की ने कहा कि जब मैं बालक थी तब मुझ नंगी को पिता ने देखा था। जब मैं जवान हुई तो मुझे विवाहित पति ने नंगी देखा था। तीसरे को मैं अपना नंगा शरीर कभी न दिखाऊंगी। विवाहित पति मेरा मर गया है अब पिताने मेरी सम्मति के बिना मेरा स्वयंवर रचा है और मन पसन्द को दूसरा पति बनाने की आज्ञा दी है सो मेरे पसन्द पिता ही आया है पिता ही को दूसरा पति करूंगी। लड़की का पिता शोकसागर में डूब गया और आर्यसमाज को इस्तीफा दे डाला। इस उदाहरण का सिद्धान्त यह है कि जो लोग बिना सोचे समझे आर्यमतमें मिलकर लड़की का पातिव्रतधर्म बिगाड़ने की चेष्टा करने लग जाते हैं। तो उस की लड़की भी दूसरे को पति बनाना पाप समझती है। कहीं जीते कहीं मरे पति की स्त्री का नियोग लिखना भी दयानन्द की दरोगहलफी है, आर्यमत में न जीते स्त्री पति का नियोग सिद्ध होता है, और न मरे स्त्रीपति का, किन्तु दरोगहलफी की दयासे बाबा जी दयानन्द के सर्वलेख झूंठे हैं॥

(७ सत्या० समुल्लास ४.) दयानन्द का लेख है कि जैसे विवाहिता स्त्री पुरुष सदा साथ रहते हैं, वैसे नियुक्त स्त्री पुरुष का व्यवहार नहीं किन्तु वीर्यप्रदान के बिना वह एकत्र नहीं होते, दयानन्द के इस लेख का सिद्धान्त यह है कि नियुक्त स्त्री पुरुष भोग के समय ही साथ रहें, समागम के पश्चात् कभी साथ न रहें। इस के विरुद्ध प्रथम ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० २१३ पं० १ से० (ऋग्वे० मण्ड० १० सू० १८ मं० ८) (उदीर्ष्वनार्यभिजीवलो-

मं०) इस वेद मन्त्र के भाष्य में दयानन्द जी का लेख है कि विधवा स्त्री मरण तक नियुक्त पति की सेवा करे। परन्तु दरोगहलफी होनेसे दयानन्द के ये दोनों लेख भी झूंठे हैं। (सत्यार्थ० समुल्लास ४) (ऋग्वे० मण्ड० १० सू० ८५ मं० २५)—

इमांत्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु। दशास्यां पुत्रानाधेहिपतिमेकादशंकृधि ॥

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि हे पुरुष तू विवाहिता स्त्री में दशपुत्र उत्पन्न कर और ११ वीं स्त्री को मान। हे स्त्री तू भी विवाहित वा नियुक्त पुरुषों से १० सन्तान उत्पन्न कर और ११ वें पति को समझ। इस के विरुद्ध (३ सत्या० समुल्लास ४) इमां त्वमिन्द्र०) इस के भाष्यमें दयानन्द का लेख है कि इस मन्त्र से ११ पति तक भी स्त्री नियोग कर सकती है। इस मन्त्र का प्रथम भाष्य तो दयानन्द ने कुछ व्याकरण के अनुसार और कुछ व्याकरणके विरुद्ध किया है परन्तु दूसरा भाष्य बाबाजी ने सर्वथा व्याकरण और प्रकरण के विरुद्ध किया है। क्योंकि उक्त वेदमन्त्र विवाह प्रकरण का और ईश्वर की ओर से आशीर्वादका है और (पतिमेकादशंकृधि) इस में पति और एकादशं दो पदों में द्वितीया विभक्ति का एक वचन है। बहुवचन नहीं, उससे इस मंत्र में विधवाके ११ खसमों का अत्यन्ताभाव है। जाना जाता है कि बाबाजी को व्याकरणका भी यथार्थ ज्ञान नहीं था यदि होता तो एकवचन वाचक पदका बहुवचन वाच्यरूपी अनर्थ कभी न लिखते। (३ सत्या० समुल्लास ४) (ऋ० मण्ड० १० सू० ४० मं० २)

(कुहस्विद्दोषाकुहवस्तोरश्विना० । कोवांशयुत्राविधवेवदेवरं०)

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि इस से यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में स्त्री पुरुष सङ्ग ही में रहें। और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पन्न करलेवे। बाबाजी का यह अनर्थ पूर्वोक्त मंत्र के किसी पदसे भी नहीं निकल सक्ता। विधवाके नियोग का होना उक्त मंत्र में सर्वथा नहीं है, देवर नाम विधवा के पतिके छोटे भाई का है। यह बात लोकानुभव से सिद्ध है, उक्त मंत्रका अर्थ निरुक्त कारने भी किया है जैसे कि (निरुक्त अ० ३ पा० ३ खं० १५ ॥ आर्यसमाजी

उक्त मंत्र के इस निरुक्त को देखेंगे तो ज्ञान हो जावेगा कि वह मंत्र नियोग करणका नहीं है किन्तु कर्षिकी यात्रा प्रकरणका वह मन्त्र है उसी मन्त्रके उसी निरुक्तमें (देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते) यह वाक्य लिखा है। और दयानन्द ने इस का अर्थ किया है कि स्त्रीके दूसरे पति का नाम देवर है। चाहे वह स्त्री के पति का छोटा अथवा बड़ा भाई हो वा अपने वर्ण किंवा अपने से उत्तम वर्ण का हो जिस से नियोग करे उसी का नाम देवर है। बाबाजी का यह लेख भी असङ्गत है, क्योंकि पति के छोटे भाईका नाम देवर जब लोकानुभव से सिद्ध है तो दयानन्दका लेख कभी सत्य सिद्ध नहीं हो सकता। उणादिकोश में दयानन्द ने स्त्री के पति का जो छोटा भाई है, उस का नाम देवर कहा है। सो दयानन्द की झूंठी दरोगहलफी है, जिसके साथ नियोग हो उस ही को यदि देवर कहें तो भंगी चमारादि में भी देवर शब्द की अतिव्याप्ति चली आयगी। यदि और भी सूक्ष्म विचार किया जावे तो (देवरः कस्माद्०) यह वचन निरुक्त का नहीं, यदि निरुक्त का होता तो उस वचन के आद्योपान्त (—) इस प्रकार के चिन्ह कभी न होते चिन्ह होने ही से जाना जाता है कि वह वचन क्षेपक है, किसी लालबुझक्कड़ की बनावट का है, क्योंकि वेद मंत्र के निरुक्त की टिप्पणी में ॥

बन्धनीचिन्हान्तर्गतानीमानि पदानि न सन्ति कखग पुस्तकेषु बन्धनीचिन्हान्तर्गतानीमान्यपि पदानि न सन्ति कखग पुस्तकेषु ॥

इस प्रकारका लेख भी अनुभव सिद्ध है। उससे भी यही सिद्धान्त निकलता है कि—(देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते) यह वचन लालबुझक्कड़ों की बनावट है। वेदमूलक वह वचन कभी नहीं हो सकता, उस से भी विधवा का विवाह अथवा नियोग व्यभिचार मूलक और वेद से विरुद्ध है। (किंच) (देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते) इस वचन को बाबा जी ने वेद का कहा, सो कथन भी बाबा जी का मिथ्या है, क्योंकि उक्त वचनका चारो वेदों में अत्यन्ताभाव है। आर्यसमाजी कहते हैं कि उक्त वचन को दयानन्द ने वेद का कहीं भी नहीं लिखा, आर्यसमाजियों का यह कथन भी अज्ञानमूलक है। क्योंकि (३ सत्या० समुल्लास ४)

सोमःप्रथमोविविदे गन्धर्वोविविदउत्तरः ।
तृतीयोअग्निष्टेपतिस्तुरीयस्तेमनुष्यजाः ॥

इसके भाष्य के नीचे की ओर निगरानी करने से आर्य समाजी जान जायेंगे कि दयानन्द ने (देवरः कस्माद्०) इस वचन को वेद का कहा है, किसी स्थान में उक्त वचन को निरुक्त का और किसी स्थान में वेद का लिखना, यह भी बाबा जी की झूंठी दरोगहलफी है। (सोमःप्रथमोविविदे०) इस मन्त्र के भाष्य में बाबा जी कहते हैं कि–हे स्त्री तेरे प्रथम विवाहित पति का नाम सोम है, जो दूसरा नियोग से प्राप्त होता है, वह गन्धर्व है, दो के पश्चात् तेरा तीसरा पति अग्निसंज्ञक है, जो तेरे चौथे से लेके ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं वे मनुष्य नामसे कहाते हैं। दयानन्द का यह अनर्थ भी युक्ति और प्रकरण के विरुद्ध है क्योंकि उक्त मन्त्र में नियोग का वाचक एक भी पद नहीं देखा जाता। इससे दयानन्द कृत उक्त मन्त्र का अर्थ व्यभिचार मूलक है। दयानन्द का सिद्धान्त हम दर्शाचुके हैं कि स्त्री के दूसरे पति का नाम देवर है, इस दयानन्द के बनावटी सिद्धान्त में प्रष्टव्य यह है कि आर्यमत वाली स्त्री के दूसरे पति का नाम तो देवर है। तो कहिये तीसरे चौथे आदि पतियों का क्या नाम है, यदि आर्यसमाजी कहें कि दूसरे पतिका नाम गन्धर्व है, सो ठीक नहीं क्योंकि आर्यमतवाली स्त्री के दूसरे पति का नाम कहीं देवर और कहीं गन्धर्व लिखना, यह भी दयानन्द की झूंठी दरोगहलफी है। जिसके साथ नियोग हो यदि वही देवर है तो दूसरा पति गन्धर्व है, इस लेख का कौन सा सिद्धान्त है। क्या जिस के साथ आर्य स्त्री का नियोग हो वही गन्धर्व है। तीसरे पति का नाम बाबा जी ने अग्नि लिखा है, वह भी बाबा जी की अविद्या है, क्योंकि तीसरे पति का नाम अग्नि किसी भी कोष वा निरुक्त में नहीं कहा, दयानन्द ने अग्नि पति के साथ उष्णता विशेषण लगाया है, केवल उष्णता ही नहीं किन्तु उष्णता शब्द के साथ अति शब्द को भी मिला दिया है। उस लेख से यही सिद्धान्त माना जाता है कि आर्या स्त्री का तीसरा पति अत्यन्त उष्णता युक्त अग्नि है। यदि अत्यन्त उष्णअग्नि आर्या स्त्री का तीसरा पति होगा तो समागम के समय आर्या स्त्री जलकर भस्मीभूत हो जावेगी। चौथे आदि पतियों को दयानन्दने मनुष्य कहा है फिर पञ्चमहायज्ञविधि (पुनन्तुमादेवजनाः०) इस वेदमन्त्र के भाष्य में बाबा जी ने असुर और झूठ बोलने वाले का नाम मनुष्य लिखमारा है मनुष्य के इस लक्षण से आर्या स्त्री के पति झूंठे राक्षस सिद्ध होंगे॥

३ सत्या० समुल्ला० ४ (दाक्ष्यपोनियताःसर्वे) इसके भाष्य में दयानन्द ने झूंट बोलनेवाले स्त्री को चोर कहा है (इसी सत्यार्थप्रकाश का समुल्लास११) दयानन्द का लेख है कि चोरके नाक कान काट गलेमें फटे जूतोंका हार डलवा काला मुहं कर गली २ में घुमा जूतों से पिटवा कुत्तों से खिचवा कर राजा मरवा डाले। अब निष्पक्ष लोग विचार नेत्रों से परीक्षा कर लेवें कि आर्या स्त्री के चौथे से लेकर ग्यारह तक पति किस प्रकार के सत्कार के योग्य हैं। यदि दयानन्द के भक्त चौथे से लेकर ग्यारहवें तक पतियों को मनुष्य मानें तो जरा यह भी तो बतलावें कि आर्या स्त्री के सोम गन्धर्व और अग्नि यह तीन पति भी मनुष्य हैं वा पशु हैं । (पशुधर्मोविगर्हितः) इस मनु प्रमाण से पूर्व सिद्ध हो चुका है कि नियोग का करना पशुधर्म है यदि आर्यलोग (सोमः प्रथमो विविदे०) इस मन्त्रसे नीचे के मन्त्रको देखें, और याज्ञवल्क्यमुनि के सिद्धान्त को देखेंगे, तो स्पष्ट ज्ञात हो जावेगा कि स्त्री की बाल्यावस्था का रक्षक सोमावच्छिन्न ब्रह्मचेतन देव है, यौवनावस्था का रक्षक गन्धर्व देवता अर्थात् गन्धर्वावच्छिन्न ब्रह्मचेतन है स्त्री की वृद्धावस्था का रक्षक अग्न्यवच्छिन्न ब्रह्मचेतन देवता है, सिद्धान्त यह कि उपाधिकृत ब्रह्मचेतन का भेद है। बिना उपाधि के केवल एक शुद्ध ब्रह्मचेतन ही स्वप्रकाश स्वरूप से भान होता है॥

(मन—ज्ञाने) इस धातु से मनुष्य शब्द की सिद्धि होती है विद्वान् ही ज्ञानी कहाता है, अभिप्राय यह कि विद्वान् भी पतिव्रतधर्म के उपदेशद्वारा स्त्री की रक्षा कर सकते हैं। हम यह भी दर्शा चुके हैं कि बाल्यावस्था में स्त्री का रक्षक पिता यौवनावस्था में पति वृद्धावस्थामें स्त्री का रक्षक पुत्र हो सक्ता है। उक्त मन्त्रके इस प्रकारके अर्थोपदेश स्त्रियोंको धर्म लाभ का हेतु हैं। दयानन्दकृत अनर्थ स्त्रियों को वेश्या बना देनेका कारण सिद्ध होते हैं। उससे भी आर्योंका पुनर्विवाह अथवा विधवा नियोग सफल प्रदर्शिका आनन्द कभी नहीं हो सक्ता। (३ सत्या०समुल्लास ४)(ऋ०मं०१०सू०१८मं०८) (उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं०) इस वेद मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि हे विधवे! तू इस मरे हुए पतिकी आशा छोड़के बाकी पुरुषों में से जीते हुए दूसरे पतिको प्राप्त हो, दयानन्द का यह लेख भी असंगत है। क्योंकि उक्त मन्त्रमें पुनर्विवाह अथवा नियोग का वाचक एक भी पद नहीं देखा जाता, गोलमाल मन्त्र का अर्थ करना दयानन्द की अत्यन्त भूल है। मरे पतिकी

लाजको तो फूंका ही नहीं, किन्तु दूसरे पति करने की आज्ञा कर देदेना क्या आर्यमत में इसी का नाम पतिव्रत धर्म है । मरे पति के पास ऊंच नीच सर्वप्रकार के पुरुष खड़े हैं । यदि नीचों में से किसी दर्शक मनुष्य को आर्या स्त्री पसन्द करेगी तो दयानन्दके लेख से विरोध होगा, क्योंकि सत्यार्थप्रकाशके चौथे समुल्लासमें दयानन्दका लेख है कि विधवा को चाहिये कि अपने वर्ण वालेसे अथवा अपने वर्णसे ऊंचे वर्णवालेके साथ नियोग करावे । यदि दयानन्द के इसी लेख को सत्य मानें तो दयानन्द कृत उक्त वेद मन्त्र का भाष्य निष्फल प्रवृत्तिका जनक होगा, उभयपाशारज्जुन्यायसे आर्य समाजियोंका छूटना सर्वथा असंभव है ॥

किन्तु वक्ष्यमाण रीतिसे उक्त मन्त्रका सायणाचार्यकृत भाष्य ही समीचीन है । युक्ति प्रमाणोंसे भी वही भाष्य सिद्ध होता है और उसी भाष्य ही से स्त्रियोंके पातिव्रत धर्म की उन्नति हो सकी है । सायणाचार्यकृत उक्त मन्त्रके भाष्यका सिद्धान्त यह है कि जब स्त्रीका पति मरजावे तो कुटुम्बी लोग उस स्त्री को कहें कि हे स्त्री तूं अब इस मृतक पतिके पाससे उठ और इस पतिसे जो पुत्र पैदा हुए हैं उनका पालन कर वेही तेरी सेवा करेंगे, और मरे हुए पतिका शोक छोड़दे, हमारी सम्मतिसे भी मन्त्रका यही अर्थ सर्वथा निर्दोष है । हां (उतयत्पतयोदशस्त्रियः०) इस अथर्वण वेद के मन्त्र प्रमाणसे तो हम सिद्ध करचुके हैं कि मनुष्य दश स्त्रियों तक के साथ भी विवाह कर सक्ता है । परन्तु एक काल में एक ही स्त्री को मनुष्य भी रख सक्ता है, अधिक स्त्री एक कालमें रखने से मनुष्यके बुद्धि बल पराक्रम बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं आर्यमतके सदृश व्यभिचार मूलक चेष्टा पशुओंमें भी नहीं देखी जाती ॥

प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जिस स्थानमें सौ अथवा दोसौ गौवें रहती हैं और एक वहां सांड़ रहता है, वहां यदि दूसरा सांड़ आता है तो पहिला स्थानीय सांड़ उसके प्राण मार डालता है वा उस को वहां से निकाल भगा देता है । आर्यसमाजियोंसे पशु ही सर्वोत्तम हैं, क्योंकि एक सांड़ पशु जहां स्थिर हैं वहां वह व्यभिचार चेष्टा के दूसरे सांड़ पशु को नहीं आने देता । आर्यसमाजी स्वयं स्त्रियों को व्यभिचार मूलक चेष्टा सिखला रहे है ।

अब विधवा स्त्री के पातिव्रत धर्म पर अन्य प्रमाण लिखे जाते हैं । जैसे कि-

एकाहारःसदाकार्यो नद्वितीयःकदाचन ।
पर्य्यङ्कशायिनीनारी विधवापातयेत्पतिम् ॥

यह वृहत् नारदीय का वचन है, इस का सिद्धान्त यह है कि विधवा स्त्री एक वक्त भोजन खावे, जमीन पर सोवे, पलंग पर सोने वाली विधवा स्त्री पापिनी होती है ॥

तस्माद्भूशयनंकार्यं पतिसौख्यसमीहया ।
नैवाङ्गोद्वर्त्तनंकार्यं ताम्बूलस्यचभक्षणम् ॥
गन्धद्रव्यस्यसंयोगो नैवकार्यस्तथाक्वचित् ।
श्वेतवस्त्रंसदाधार्य-मन्यथारौरवंव्रजेत् ॥
उपवासव्रतादौतु नित्यंकार्यंयथोदितम् ।
इत्येवंनियमैर्युक्ता कर्मकुर्यादनिन्दितम् ॥

इत्यादि श्लोक वृहत् नारदीयके हैं, अर्थ स्पष्ट है भाव यह है कि विधवा स्त्री तितिक्षा से शरीरको सुखा देवे ॥

केशरञ्जनताम्बूलं गन्धपुष्पादिसेवनम् ।
भूषितंरङ्गवस्त्रंच कांस्यपात्रेचभोजनम् ॥
द्विवारभोजनंचाक्ष्णो रञ्जनंवर्जयेत्सदा ।
स्नात्वाशुक्लाम्बरधरा जितक्रोधाजितेन्द्रिया ॥
नकल्ककुहकासाध्वी तन्द्रालस्यविवर्जिता ।
सुनिर्मलाशुभाचारा नित्यंसंपूजयेद्धरिम् ॥

इत्यादि और भी अनेक प्रमाण हैं उन सब का यही सिद्धान्त है कि पति के मरजाने पर विधवा स्त्री शरीर के शृङ्गार को सर्वथा तिलाञ्जली दे डाले। मरे पति ही का स्मरण करे ॥

(सत्यार्थप्रकाशसमुल्लास ४) वहां दयानन्दका लेख है कि विवाहिता स्त्री के लड़के विवाहित पतिके दायभागी होते हैं। और विधवा स्त्री के लड़के वीर्यदाता के न पुत्र कहाते हैं और न उस का गोत्र होता है और न उन का स्वत्त्व उन पर होता है किंतु वह मृत पति के पुत्र बजते हैं। उसी

का गोत्र रहता है, उसी के पदार्थों के दायभागी होते हैं, उसीके घर में रहते हैं। दयानन्द के इस लेख का सिद्धान्त यह है कि जिससे वीर्यसे सन्तान पैदा होता है, वह उस का पुत्र नहीं कहाता, किन्तु जिस का वीर्य नहीं उस का ही वह पुत्र कहाता है। स्वामी जी का यह लेख सर्वथा व्यभिचार मूलक और वर्णसंकर कुकर्म की उन्नति कराने वाला है। खैर जो हो उस के विरुद्ध वहां ही लिखा है—

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मावैपुत्रनामासि सजीवशरदःशतम् ॥

इस के अर्थ में दयानन्द ने पुत्र के आगे पिता की प्रार्थना दर्शाई है, कि पुत्र से पिता कहता है कि हे पुत्र मेरे अंग २ से जो वीर्य उपजा है उस से तू उत्पन्न हुआ है। मेरे अन्तःकरण के भागों से तू उपजा है, मेरे आत्मा के भागों से तू उपजा है, उस से तू मेरा रूप है, १०० वर्ष तक तू जीता रहो मेरे से पहिले तू न मरे॥ इस दयानन्दकृत मंत्रके भाष्यसे यही सिद्ध होता है कि वीर्य्यदाता का वीर्य और अन्तःकरण तथा वीर्य्य दाता का आत्मा पुत्र का उपादान कारण है, और पुत्र कार्य है। फिर पहिले लेख में वीर्य्य दाताके वीर्य्य से उपजे लड़के को वीर्य्य दाता का पुत्र वा गोत्र न कथन करना यह भी दयानन्द का बुकझुपन है। परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूठे हैं। मनु जी ने भी वीर्य्य को प्रधान रखा है, अभिप्राय मनु जी का यह है कि पृथिवीमें जैसा बीज डाला जाता है, वैसा ही वृक्ष उत्पन्न होता है, वैसे ही जिस स्त्री में जिस मनुष्य का वीर्य जावेगा, वह उसीका पुत्र हो सकता है। स्त्री को यही उचित है कि विवाहित पति जीता हो तो उस की तन मन और धनसे सेवा करे विवाहित पतिसे विपरीत कभी न चले, जब पति मरजावे तो तितिक्षा से शरीर को कृश कर देवे। मर गये पति की मूर्त्ति का पूजन अथवा ध्यान करे, सूत कात कर अथवा शिल्प विद्या से गुजारा करे, दूसरे मनुष्य को पति बनानेका नाम तक कभी न लेवे॥

यदि वेदान्त रीति से विधवा स्त्री अपने मृतक पति की मूर्त्तिका ध्यान वा चिन्तन करेगी तो मोक्ष पद को भी अवश्य प्राप्त हो जावेगी। यद्यपि वेद में ब्रह्मज्ञान ही से मोक्ष पद का लाभ लिखा है, तथापि पतिकी मूर्त्ति

के ध्यान अथवा पूजन से भी ब्रह्मज्ञान हो सकता है, जैसे कि विधवा स्त्री जब एकान्त में बैठकर मृतक पति की मूर्त्ति का ध्यान अथवा पूजन करने लगेगी, तो विधवा के अन्तःकरण के सत्व गुण का परिणाम वृत्ति विधवा के नेत्र द्वारा निकलेगी और लोह चुंबक न्यायसे झट अपने उपादान अन्तःकरणमें पति की मूर्त्ति का चित्र खैंचलेगी, उस वृत्ति से पति की मूर्त्यंवच्छिन्न ब्रह्मचेतनाश्रित आवरण दूर हो जायगा किन्तु विधवाके अन्तःकरणावच्छिन्न और मूर्त्यंवच्छिन्न ब्रह्मचेतन का अन्तःकरण और मूर्त्ति ही से कल्पित भेद था, जब स्त्री के पति का मूर्त्ति रूपी चित्र और स्त्री का अन्तःकरण एक देश में हुए तो उस कल्पित भेदका भी अत्यन्ताभाव व बाध निश्चय हो जावेगा। किन्तु स्त्री शब्दका लक्ष्यार्थ व्यष्टि तीन शरीर रहित शुद्ध ब्रह्म चेतन और पति शब्द का लक्ष्यार्थ व्यष्टि तीन शरीर रहित शुद्ध ब्रह्मचेतन सर्वथा भेद भाव से रहित स्वप्रकाशता से विधवा के अन्तःकरण में भासित होता, वारम्बार उस ब्रह्मचेतन स्वरूप आनन्दका वह स्त्री जब अभ्यास द्वारा चिन्तन करेगी तो अपरोक्ष ज्ञान अज्ञान को नष्ट कर डालेगी। अज्ञान तत्कार्य्य नाम रूप और क्रियात्मक प्रपंच की निवृत्ति और ब्रह्मचेतन स्वरूप परमानन्द की प्राप्ति का नाम ही वेदान्त के ग्रन्थों में मोक्ष पद है उस से विधवा स्त्री को चाहिये कि मोक्ष पद की प्राप्ति का हेतु जो मृतक पतिकी मूर्त्ति का ध्यान पूजन है। उसी को विधि पूर्वक करे अन्यथा विधवा नरक में जायगी॥

ओंशान्तिः॥ शान्तिः॥ शान्तिः॥

विद्याऽविद्याविषयक—

व्याख्यान नं० २५

सर्व सज्जनों को विदित हो कि इस व्याख्यान में विद्या अविद्या के लाभ और हानि दर्शाये जाते हैं। प्रथम दयानन्दोक्त विद्या अविद्याका खण्डन किया जाता है। जैसे कि (१ सत्या० समुल्लास ३) (वैशेषिक० अ० ९ आ० २ सू० १२॥ (अदुष्ट विद्या) इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि यथार्थ ज्ञान का नाम विद्या है (वही समुल्लास) (वैशेषिकद० अ० ९ आ० २ सू० ११) (न दुष्टं ज्ञानम्) इस के भाष्य में दयानन्द ने अयथार्थ ज्ञान का नाम अविद्या कहा है फिर उस के विरुद्ध (१ सत्या० समुल्लास ९)

वेत्तियथावत्तत्वपदार्थस्वरूपं यया सा विद्या।

इस के भाष्य में बाबा जी सरस्वती जी ने लिखा है कि जिससे पदार्थ का यथार्थज्ञान हो, उस का नाम विद्या है॥

यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति यया साऽविद्या॥

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जिस से तत्त्वस्वरूप न जान पड़े अन्य में अन्य बुद्धि हो वह अविद्या है। परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्द के सर्वलेख झूंठे हैं॥ (१ सत्या० समुल्लास १)—

गण्यन्ते ये ते गुणा वा यैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः सनिर्गुण ईश्वरः॥

इसके भाष्य में दयानन्द ने अविद्या को जीव का गुण कहा है। उसी के तृतीय समुल्लासमें बाबा जी ने गुणगुणीका नित्य समवाय संबन्ध लिखा है। उस से दयानन्द वा उन के भक्तों के आत्मा में से अविद्या का नाश नहीं हुआ, उससे यदि अविद्याका नाश नहीं हुआ तो उनके आत्मा में विद्या का लाभ भी नहीं हुआ, उस से दयानन्द और उसके भक्त दोनों ही अविद्वान् सिद्ध हो चुके॥

(खैर जो हो, उसके विरुद्ध) (१ सत्या० समुल्लास ३) (वैशेषिक द० अ० ९ आ० २ सू० ११) (इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या) इस के भाष्य

में दयानन्द का लेख है कि इन्द्रिय और संस्कारोंके दोषसे अविद्या उत्पन्न होती है, यहां आर्योंसे पूछना चाहिये कि इन्द्रिय और संस्कार आप लोगों की अविद्या का निमित्त कारण है, वा उपादान कारण, अथवा साधारण कारण है। यदि निमित्त कारण कहो तो बतलाइये आप की अविद्या के उपादान और साधारण कारण कौन हैं।? यदि कहो कि इन्द्रिय अथवा मन उपादान और साधारण कारण हैं, तो सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लासमें आपके बावा जी ने इन्द्रिय और मन को भी आत्मा के गुण लिखे सारा है। फिर ११ वें और १३ वें समुल्लास में आपके बावाजी का ही लेख है कि गुण से गुण वा गुण से द्रव्य की उत्पत्ति कभी नहीं होती। यदि कहो कि आत्मा ही अविद्या का उपादान और साधारण कारण है, तो सत्यार्थप्रकाश के ८ वें समुल्लास में आप के बावा जी ने कार्य और उपादान कारण के गुणों का एकत्व वर्णन किया है। इससे, दयानन्द और उस के भक्त आप लोगों का आत्मा ही अविद्या गुणवाला सिद्ध हो चुका।

यदि अविद्याकी उत्पत्ति मानें तो साथही आपके आत्माकी भी उत्पत्ति होगी, यदि आप आत्मा को अनादि मानें तो दयानन्द वा आपके आत्मा का गुण अविद्याभी अनादि सिद्ध होगी, परन्तु दरोगहल्फी से आपके बावा जी के यह दोनों लेख झूंठे हैं। (३ सत्या०समुल्लास१२) दयानन्द ही का लेख है कि जो आप झूंठा और दूसरे को झूंठ पर चलावे उसको शैतान कहना चाहिये। (३ सत्या०समुल्लास१४) दयानन्द ही ने कहा है कि शैतान ही बागी और गदर करने वाला है (किमधिकम्) (३ सत्या० समुल्लास ३) (शतप०कां०१४प्रा०१कं०३०। असतो मासद्०) इसके भाष्य में दयानन्द ने ईश्वर से कहा है कि हे ईश्वर! आप हमको अविद्या अन्धकार से छुड़ाकर विद्या रूपी सूर्य को प्राप्त कीजिये। अब दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि विद्या सूर्य उदय होकर फिर अविद्यान्धकार दूर होता है, अथवा अविद्या अन्धकार दूर होकर फिर विद्यारूपी सूर्यको जीव प्राप्त होता है यदि द्वितीय पक्ष मानें तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरोध होगा, क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जाना जाता है कि पहिले सूर्य उदय होता है, पश्चात् उस से अन्धकार नष्ट होता है वैसे ही प्रथम विद्या सूर्य उदय होगा तो पश्चात् अविद्या अन्धकार नष्ट होगा। यदि दयानन्दके भक्त ऐसे ही मानें तो दयानन्द की प्रार्थना झूंठी होगी, क्योंकि बाबाजी की प्रार्थना से सिद्ध होता है

कि ईश्वर पहिले अविद्या अन्धकार को नष्ट करता है पश्चात् उसके विद्या सूर्य को प्राप्त कराता है उभयपाशारज्जुन्याय से दयानन्दके भक्तों का किसी ओर से भी छूटना नहीं हो सकता ॥

किंच पूर्व हमने दयानन्द ही के लेखों से दर्शा दिया है कि दयानन्द और उसके भक्तों के आत्माका अविद्या गुण है, सो यदि दयानन्दका ईश्वर आत्माके अविद्या गुणको नष्ट करेगा, तो साथ ही दयानन्द और उसके भक्तों के आत्माका भी सत्यानाश हो जावेगा। आत्मा के सत्यानाश का हेतु दयानन्द का मत सर्वथा त्याज्य है। (किञ्च) दयानन्द की उक्त प्रार्थना सत्य है अथवा मिथ्या यदि सत्य कहो तो दयानन्द के भक्त जो स्कूल कालिज वा गुरुकुल बना चुके वा बनाते हैं वे सर्वथा निष्फल प्रवृत्ति के जनक होंगे। क्योंकि ईश्वर की प्रार्थना ही से उनको विद्या का लाभ दयानन्दकी दया से हो जावेगा। यदि दयानन्द के भक्त कहें कि दयानन्दोक्त ईश्वर की प्रार्थना मिथ्या है तो दयानन्दोक्त आर्यमत ही मिथ्याजाल सिद्ध हो जावेगा यद्यपि अनेक प्रकरणोंमें दयानन्दने यों भी लिखा है कि गुरुकुल अथवा आर्यकुलमें विद्यार्थी विद्या पढ़ें। उससे अविद्याका नाश होगा तथापि दरोगहलफीकी दयासे दयानन्दोक्त विद्या विषयक सर्व लेख झूंठे हैं।

वेत्ति अनयायथार्थान्पदार्थान् साविद्या। नवेत्ति-अनयायथार्थान्पदार्थान् साऽविद्या ॥

इन वाक्यों का सिद्धान्त यह कि जिस से पदार्थ का यथार्थ ज्ञान हो वह विद्या और जिस से यथार्थज्ञान न हो वह अविद्या है सो विद्या परा अपरा भेद से दो प्रकार की है। ब्रह्मविद्या अथवा आत्मविद्या का नाम परा विद्या है उस का वर्णन हमने मुक्तिखण्डन के व्याख्यान में किया है। जिसको जिज्ञासा हो वहां देख लेवे।

विद्यांचाऽविद्यांचयस्तद्वेदोभयꣳसह।
अविद्ययामृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

य० अ० ४० म० १४।

इसका अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य विद्या और अविद्याके स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह विद्या जहाज से अविद्या और तत्कार्य जन्म मरणादि सागर को तरके परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होता है इत्यादि

प्रमाणसे परा विद्या सिद्ध होती है। संसार सम्बन्धी कार्य अथवा कर्मोपासना प्रतिपादक शास्त्र अपरा विद्या है इन व्याख्यान में विशेष करके अ० २ में परा विद्या ही का वर्णन है ॥ विद्या की महिमा में प्रमाण—

अध्यापयामासपितॄन् शिशुराङ्गिरसःकविः।
पुत्रकाइतिहोवाच ज्ञानेनपरिगृह्यतान् ॥

मनु० अ० २ श्लो० १५१

इस में मनु जी कहते हैं कि अंगिरा ऋषि के पुत्र बृहस्पति जी ने अपने चाचा पितरों को पढ़ाया और उन्हें शिष्य मानकर हे पुत्रो! इसप्रकार कहा। यह प्राचीन इतिहास है।

तेतमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः।
देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यंवःशिशुरुक्तवान् ॥

मनु० अ० २ श्लो० १५२

इस में मनुजी कहते हैं कि जब अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति ने अपने पितरों को पुत्र नाम से पुकारा तो पितरों को क्रोध हुआ और देवताओंसे इस का उत्तर पूछा तो देवताओं ने वक्ष्यमाण उत्तर दिया जैसे कि—

अज्ञोभवतिवैबालः पिताभवतिमन्त्रदः।
अज्ञंहिबालमित्याहुः पितेत्येवतुमन्त्रदम् ॥

मनु० अ० २ श्लोक० १५३

इस का सिद्धान्त यह है कि देवताओंने कहा कि जो मूर्ख हैं वह बालक और जो विद्या का देने वाला है वह पिता होता है क्योंकि ऋषियों ने मूर्ख को बालक और विद्या पढ़ाने वालेको पिता कहा है।

नहायनैर्नपलितैर्नवित्तेननबन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरेधर्मं योऽनूचानःसनोमहान् ॥

मनु० अ० २ श्लोक १५४

इस में मनु जी ने कहा है कि देवताओं ने पितरों को समझाया कि वर्षों की संख्या से मनुष्य बड़ा नहीं होता बाल सुफेद होने से मनुष्य बड़ा नहीं होता बन्धु धनादि के अधिक होने से बड़ा नहीं होता किन्तु विद्वानों ने यही निर्णय कर दिया है कि जो विद्या धर्मको संपादन कर विद्वान् होता है वही बड़ा होता है।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनि ।
शुनिचैवश्वपाकेचपण्डिताःसमदर्शिनः ॥

इस गीता के प्रमाण से पण्डित भी वही है जो कि विद्या और विनयादि गुणों से युक्त होता है ।

आत्मज्ञानंसमारंभस्तितिक्षाधर्मनित्यता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति सवैपण्डितउच्यते ।

इस व्यास वचन का भी यही सिद्धान्त है कि जो आत्मविद्यादि गुणोंसे युक्त है वही पण्डित है ।

सदसद्विवेककर्त्रीबुद्धिःपण्डा, पण्डासंजायतेऽस्य पण्डितः

इस व्याकरणके प्रमाणसे भी विवेकी विद्वान् हीको पण्डित वर्णन किया है ।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यःपश्यतिसपण्डितः ॥

इस में चाणक्यमुनि कहते हैं कि जो परस्त्री को माता के समान जानता है, और दूसरे के धन को जो मट्टी के ढेला के समान जानता है, जो सर्व जीवों के आत्मा को अपना आत्मा जानता है, वही पण्डित है । यहां भी आत्मविद्या की प्रशंसा है ॥

किंकुलेन विशालेन गुणहीनस्तुयोनरः ।
अकुलीनोऽपिशास्त्रज्ञो दैवतैरपिपूज्यते ॥

इसमें चाणक्य मुनि का सिद्धान्त यह है कि जो मनुष्य विद्यादि गुणों से हीन हैं, उनका उत्तम कुल में जन्म लेना भी अकिञ्चित्कर है । और जो नीच कुलमें उत्पन्न हो कर भी विद्यादि गुणों को संपादन करलेता है, उस का पूजन अर्थात् सत्कार देवता के समान सर्वत्र होता है ॥

विद्वत्वंचनृपत्वंच नैवतुल्यंकदाचन ।
स्वदेशेपूज्यतेराजा विद्वान्सर्वत्रपूज्यते ॥

इस में चाणक्य मुनिजी कहते हैं कि विद्वान् और राजा सदृश नहीं हो सक्ते क्योंकि राजा का सत्कार अपने देश में होता है, सर्वत्र नहीं और विद्वान् का सत्कार सर्व देशोंमें होता है ॥

विषादप्यमृतंग्राह्य–ममेध्यादपिकाञ्चनम् ।

नीचादप्युत्तमांविद्यां स्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि ॥

इस में चाणक्यमुनि कहते हैं कि जैसे विष में अमृत और कीचड़ में से सुवर्णका ग्रहण करलेना उचित है, वैसे नीच वर्ण से भी उत्तम विद्या का ग्रहण करना सर्वोत्तम है ॥

कोकिलानांस्वरोरूपं नारीरूपंपतिव्रता ।

विद्यारूपंकुरूपाणां क्षमारूपंतपस्विनाम् ॥

इस में चाणक्यमुनि कहते हैं कि जैसे कोयल पक्षी का रूप सुन्दर स्वर है, पतिव्रता धर्म का संपादन करना स्त्री का रूप है, साधु का रूप क्षमाका सम्पादन है। वैसे ही कुरूप मनुष्य का रूप विद्या है। ऐसे देखा भी जाता है कि अंगरेजी राज्यमें भी विद्या ही का मान अनुभव सिद्ध है। भंगी चमार तेली तंबोली जुलाहे नाई आदि कुरूप राजनीति विद्याको पढ़कर न्याय कारी साहिब कहाते हैं। और जो विद्याहीन ब्राह्मणादि धनवान् सुन्दर-रूप वाले हैं, वे उन के नीचे खड़े हाथ बांधे हुए गुलाम कहाते हैं। यह विद्या ही की महिमा है ॥

येषांनविद्यानतपोनदानं ज्ञानंनशीलंनगुणोनधर्मः ।

तेमर्त्यलोकेभुविभारभूता मनुष्यरूपेणमृगाश्चरन्ति ॥

इस में भर्तृहरि जी कहते हैं कि जिन मनुष्योंने मनुष्य जन्म तो धारण करलिया, परन्तु आत्मज्ञान अथवा दान वा शील किंवा धर्म वा विद्या को संपादन नहीं किया, समझो कि वे मनुष्य पृथिवी पर व्यर्थ बोझा रक्खे हुए हैं। सूरत ऐसे आदमियों की मनुष्यों कीसी है, परन्तु मूर्खतादि दोषों से वे अकल के गधा कुत्ता सुअर के सदृश भ्रमण करते हैं ॥

विद्यानामनरस्यरूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम् ।

विद्याभोगकरीयशःसुखकरी विद्यागुरूणांगुरुः ॥

विद्याबन्धुजनोविदेशगमने विद्यापरंदैवतम् ।

विद्याराजसुपूजितानहिधनं विद्याविहीनःपशुः ॥

इस में भर्तृहरि जी कहते हैं कि विद्याहीन मनुष्य सींग पूंछके विना गधा कुत्तादि के सदृश जाना जाता है। विद्या की अधिकता ही से सुन्दर

रूप भी सुशोभित हो सकता है, विद्या के बिना सुन्दर रूप भी किसी काम का नहीं ॥

इतिहासों से विदित होता है कि अष्टावक्र जी महान् कुरूप थे, परन्तु राजा जनकादिके सामने ऐसा सत्कार दूसरे किसी का नहीं होता था, जैसा कि आत्मविद्या युक्त अष्टावक्र जी का सत्कार होता था। जैसा सत्कार कुरूप होने पर भी आत्मविद्या से युक्त आपकजी ऋषि का होता था, वैसा सत्कार उस समय सुन्दर रूप वालों का भी नहीं होता था। विद्या ही प्रच्छन्न गुप्त धन है, क्योंकि उस से विद्यावान् का अन्तःकरणरूपी कोश भरा रहता है। विद्या ही नानाभांतिके भोगों को प्राप्त कराने वाली है, प्रत्यक्ष में अनुमान की कुछ भी आवश्यकता नहीं, अंगरेजी राजनीति की विद्याको संपादन कर गरीब भी नानाभांति के भोगों को भोग रहे हैं। विद्या ही कीर्त्ति कराने वाली है, विद्या ही से मनुष्यको व्यवहार अथवा परमार्थ सुख का लाभ होता है। देखो कि जिस समय शंकराचार्य और व्यासादि विद्वान् थे, उस समय के लक्षाधीशों का नाम तक भी इस समय कोई नहीं जानता परन्तु विद्याकी महिमा से जैसे ब्रह्माण्ड भर में सूर्यका उजाला है, वैसे ही इस समय शङ्कराचार्यादिकों का नाम सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है ॥

जगत् के प्रत्येक सम्प्रदायमें कुलगुरु कहाते हैं परन्तु विद्वान् विद्याके बल से उन सबका भी गुरु कहाता है। विपत्तिके समय इष्टमित्र साथ नहीं देते, किन्तु विद्या विपत्तिके समय भी सहायता देती है। परदेशमें इष्ट मित्र काम नहीं आते, परन्तु विद्या परदेशयात्रामें भी आनन्द ही का लाभ कराती है। ऐसा लाभ दूसरे किसी देवता से नहीं हो सकता, जैसा कि विद्या रूपी देवतासे लाभ होता है। राजा के सामने विद्या ही का मान होता है, विद्याहीनका मान राज दरबारमें नहीं हो सकता। चाहे विद्याहीन मनुष्य कोट्यधिपति भी हो। (किमु धनैर्विद्याऽनवद्या०) इसमें भर्तृहरि जी कहते हैं कि जिस मनुष्य ने विद्या को संपादन कर लिया है, उसको धन की भी कुछ आवश्यकता नहीं रहती ॥

दुर्जनःपरिहर्त्तव्यो विद्ययाभूषितोऽपिसन् ।
मणिनाभूषितःसर्पः किमसौनभयङ्करः ॥

इसमें चाणक्य जी कहते हैं कि जो मनुष्य विद्या पढ़ जाता है, और अपने चाल चलन को नहीं सुधारता, ऐसे मनुष्य से अलग रहना ही सर्वो-

त्तम है। यह विद्याका दोष नहीं किन्तु वह दोष उस कुपात्र मनुष्यही का है। जैसे सर्प के पास मणि भी हो तो वह काटनेसे बाज नहीं आता। वैसे ही विद्यायुक्त मनुष्य भी कामादि दोषोंके निमित्त सर्वथा हानिकारक है। विद्यारूपी मणि सर्वथा निर्दोष है, प्रत्यक्ष देखा जाता है कि एक ही जल नींब से मिल के कटु और अंगूर से मिलकर मीठा मान होता है। वायु दुर्गन्ध से मिलकर दुर्गन्धित और सुगंध से मिलकर सुगंधित प्रतीत होता है, लोहे की छुरी कसाई के पास जीवहिंसा और पढ़े लिखे के पास कलम बनाने का काम करती है। शेरनी का दूध सुवर्ण के पात्र में ठहरता और लोहे आदि के पात्र को चीर के निकल जाता है। वैसे ही विद्या भी सुपात्र में सफल और कुपात्र में निष्फल होती है। वृहदारण्यकोपनिषद् से ज्ञात होता है कि एक ही आत्मविद्या राजा इन्द्र में निष्फल और अश्विनीकुमारों में सफल हुई थी, वैसे एक ही आत्मविद्या राजा विरोचन में निष्फल और राजा इन्द्र में सफल हुई थी ॥

बहुत दिन की बात है कि एक विद्यार्थी ने एक पण्डित से चतुर्दश विद्या का पठन पाठन तो कर लिया परन्तु सिद्धान्त कुछ न समझा, पण्डित जी ने उस विद्यार्थी के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया, एक दिन वह विद्यार्थी हाथ में कुदाली लेकर मकान की छतली तोड़ने लगा, पण्डित जी ने पूछा अरे क्या करता है, विद्यार्थीने कहा कि (उद्योगः पुरुषलक्षणम्) इसको सुनकर पण्डित जी ने विद्यार्थी को दूसरा उद्योग बताया। एक रोज पण्डितजीने कन्याको विद्यार्थीके पास एकान्तमें भेजा वह कन्या सुन्दर रूप वाली थी, विद्यार्थी को सुन्दररूप देख कर श्लोक याद आया कि (भार्या रूपवती शत्रुः) फिर दूसरा श्लोक याद आया कि (शत्रोश्च हननं कुर्यात्) फिर तीसरा श्लोक याद आया कि (स्त्रीवधे पातकम्) फिर चौथा श्लोक याद आया कि (नासिकामुखखण्डनम्) ऐसा कहकर विद्यार्थी ने कन्या की नाक काटना प्रारंभ किया, कन्या चिल्लाने लगी, पण्डित जीने विद्यार्थीको मूर्ख जानकर निकाल दिया। चलने के समय विद्यार्थीको पांचवां श्लोक याद आया कि (वृद्धैः सह गन्तव्यम्) इतने में पांच आदमी मुर्दा फूंकने जालेथे, विद्यार्थी उन्हीं के साथ चला और छठा श्लोक विद्यार्थी को याद आया कि (पञ्चभिः सह भुञ्जीताम्) इस को सुनकर मुर्दा फूंकने वालों ने विद्यार्थी को निकाल दिया, फिर विद्यार्थी को सातवां श्लोक याद आया कि (सप्तपदेन

समपदे मैत्री) ऐसा कहकर एक कुत्तेके साथ विद्यार्थी जलेबी खाने लगा, इतने में पुलिसने विद्यार्थी को पागल जानकर गिरफ्तार किया और राजा के पास चालान कर दिया, विद्यार्थीको आठवां श्लोक याद आया कि—

नरिक्तपाणिःपश्येत्तु राजानंदैवतंगुरुम् ।

ऐसा कहकर विद्यार्थी ने धोती खोलकर राजा को दी राजाने विद्यार्थी से पूछा तू कौन है, विद्यार्थी को नवमां श्लोक याद आया कि (यथाराजा तथाप्रजा) इसको सुनकर राजा ने विद्यार्थी को पागल जानकर निकाल दिया, ठीक है कुपात्र में विद्या भी सफल नहीं होती ॥

एक नगर में एक राजा की पाठशाला थी प्रतिपदा के रोज राजा ने अध्यापक को निमंत्रण दिया, परन्तु पण्डित जी को हैजे की बीमारी थी, दो विद्यार्थियों को पण्डित जी ने मीठा और कोमल बोलियो ऐसे सिखला कर भेज दिया। राजा ने विद्यार्थियों से पूछा कि पाठशाला कैसे चलतीहै, विद्यार्थियों ने कहा कि लड्डू पेड़ा जलेबी, राजाने विद्यार्थियोंसे दूसरी बात पूंछी कि पाठशाला में कितने विद्यार्थी हैं। विद्यार्थियोंने कहा कि कपास रुई और रेशम, इस को सुनकर राजा ने विद्यार्थियों को कुपात्र जानकर निकाल दिया और पाठशालाके पण्डित से विद्यार्थियों की वक्तृता का जबाब तलब किया, पण्डित जी ने विद्यार्थियों से पूछा कि तुम ने राजाके पास क्या वाहियात बका विद्यार्थी पण्डितसे बोले कि आप ही ने तो कहा था कि राजाके पास मीठा और कोमल बोलना। सो मीठे तो लड्डू पेड़ा जलेबी और कोमल रुई कपास रेशम होते हैं। पण्डित जी ने कुपात्र जान कर विद्यार्थियों के निकाल दिया।

एक नगर में एक साहूकार ने पुत्र जन्मकी खुशी का जलसा किया वह साहूकार विद्वान् था हजारों रईसों को निमन्त्रण दिया पंगत लगादी लड्डू पेड़ा वगैरह भोजन खिलाने के पश्चात् साहूकार ने रईसों से कहा कि ऐ मित्रो मैं अपने को धन्य मानता हूं कि आप गरीबखाने पर तशरीफ लाये और जो कुछ मैंने आप के आगे रूखा सूखा रक्खा आपने उसे बड़ी खुशी से खाया। इस बात को एक विद्याहीन मूर्ख साहूकार ने सुना और समझा कि अच्छे पदार्थ को बुरा कहने से बड़ाई होती है। उस ने भी एक समय पिताके मरने का जलसा किया बड़े २ रईसों को निमंत्रण दिया पङ्गत लगादी लड्डू पेड़ा वगैरह रईसोंको खिलाये फिर उस मूर्ख साहूकार ने रईसों

से कहा कि ऐ प्रभुओ! मैं आपको लाख लानत का पात्र समझता हूं क्योंकि आप मेरे पायखाने में तशरीफ लाये और जो कुछ गू गोवर मैंने आप के आगे रक्खा आपने उसे बड़ी खुशी से खा लिया इस को सुनकर सब रईस उस मूर्ख साहूकार को फटकारते चले गये।

अब सोचो कि विद्याहीन साहूकार भी ऐसे लाल बुझक्कड़ होते हैं। भारतवासी लोग जब तक प्रत्येक जिले वा प्रत्येक जिले के नगर में संस्कृत पाठशालाओं को स्थापित नहीं करते और उन पाठशालाओंमें सुपात्र पण्डितों को नहीं रखते वे सुपात्र पण्डित भी जब तक विद्यार्थियों को खण्डन मण्डन के ग्रन्थों का पाठ नहीं कराते तब तक वेदोक्त सनातन हिन्दू धर्म्म की रक्षा का होना भी सर्वथा सर्वदा असम्भव है। कुपात्र विद्याको सीखकर विपरीत कर्म करने लग जाता है। वृहदारण्यक उपनिषद्से पीछे हम दर्शा चुके हैं कि राजा इन्द्र यहां तक कुपात्र था कि उसने दध्यङ् ऋषिसे आत्मविद्या का उपदेश भी सुना परन्तु क्रोध में आकर उसने वज्र से दध्यङ्ऋषि के सिर को काट डाला। विरोचन यहां तक कुपात्र था कि उस ने ब्रह्मा जीसे ब्रह्मविद्या का उपदेश भी सुना परन्तु सिद्धान्त न जानकर नास्तिक मत का प्रचार कर डाला। यही हाल दयानन्द का था कि जिन मतोंको वेदान्तके ग्रन्थों में वेदान्ती लोगों ने खण्डन कर डाला है। उन्हीं खण्डित हुए मतोंको लेकर एक आर्यमत का हल्ला मचा दिया। सिद्धान्त यह है कि ब्रह्माण्ड भरमें जब वेदान्त फिलासफी का प्रचार हो जायगा तो दयानन्दोक्त आर्यमतका भी साथ ही प्रलय हो जायगा।

सामृतैःपाणिभिर्घ्नन्ति गुरवोनविषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणोदोषास्ताडनाश्रयिणोगुणाः॥

महाभाष्य अ० ८ आ० १ सू० ८॥

इसमें पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि विद्यार्थीको ताड़ना करना वैसा है जैसे कि किसी सुहृद्को अमृत पिलाया जाता है। लालन करना विद्यार्थी को वैसा है, जैसे कि कोई किसीको विष पिलाता है। अभिप्राय यह कि लालन करनेसे विद्यार्थी कुपात्र हो जाता है॥

लालयेत्पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणिताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशेवर्षे पुत्रंमित्रवदाचरेत्॥

इसमें चाणक्य मुनि कहते हैं कि ५ वर्षकी आयु तक सन्तानका यथोचित लालन करावे, छठे वर्षसे १५ तक ताड़न करनेका प्रारंभ हो जावे। १५ वर्षकी आयु तक विद्यार्थी बालक है, तब तक ताड़ना पूर्वक प्रेमसे विद्याको संपादन कर सक्ता है, तत्पश्चात् विद्यार्थी ताड़नाके योग्य नहीं रहता, किन्तु १५ वर्षकी आयुके पश्चात् यदि विद्यार्थी सुपात्र होगा, तो स्वयं ही प्रेम पूर्वक विद्याभ्यासमें लगेगा, यदि ताड़ना होनेपर विद्यार्थी कुपात्र रहेगा तो जैसे पूर्व उदाहरण हमने दिया है, वैसा मतवाला हो जावेगा। इस समय देखा जाता है कि सनातन हिन्दु धर्म्म वीरोंके सन्तान विना ताड़ना और जैसे आगे वर्णन होगा वैसे पूर्ण विद्याका अभ्यास न होनेसे विद्यार्थी कुपात्र होते जाते हैं, खाली विशारद वा माझ पास कर लेते हैं। खण्डन मण्डनके ग्रन्थोंका अभ्यास नहीं करते, किन्तु दयानन्दके भक्त अथवा राधास्वामीके भक्त किंवा ईसामसीहके भक्त दश अथवा पन्द्रह मासिक देकर अपने मिथ्या मतोंमें लेते जाते हैं। यदि वह विद्यार्थी ताड़ना सहारते हुए सुपात्र होकर खण्डन मण्डनके ग्रन्थोंका अभ्यास कर लेते, तो वेदोक्त सत्य सनातन हिन्दु धर्मसे विमुख कभी नहीं होते। हिन्दुओं ही से उन पण्डितोंकी जीविका चल पड़ती, चार आनेके लोभसे आर्यसमाजियोंके आगे पूंछ कभी न हिलाते॥

धोबीका कूकर न घरका न घाटका, ऐसी चाल पर कभी न चलते। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि एक कोयल जानवर होता है। वह अपने बच्चेको कौएके घरमें रख आता है; कौआ उसे अपना बच्चा जानकर पालन करता है क्योंकि कौवा और कोयल दोनों काले रंगके होते हैं, जब कौआ वृक्ष पर नहीं होता, तब कोयल अपने बच्चेको अपनी बोली सिखला आता है, जब वह कोयलका बच्चा बड़ा होता है तो वह कोयलके पीछे जाता है, कौओंमें नहीं रहता। अब विचारना चाहिये कि जानवरोंमें भी ऐसी अक्ल देखी जाती है कि अपने बच्चोंको अपनी कौम ही में रखते हैं। दूसरी कौममें नहीं जानेदेते, परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रकी यहां तक अक्ल मारी गई कि अपने बच्चोंको अपनी कौममें रखनेका ज्ञान नहीं रहा। जानवरों से भी नीचताको प्राप्त हो गये। वेदसे विरुद्ध कौमोंमें अपने बच्चोंको शामिल करते जाते हैं, यह संस्कृत विद्याके प्रचार न होनेका बुरा नतीजा है॥

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

इस मन्त्र को हम अनेकवार दर्शाचुके हैं, कि ऐसे गुरुके पास ही विद्यार्थी ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक परा अपरा विद्याका अभ्यास करे । उक्त मन्त्र का अर्थ विद्वानों ने किया है कि—

वेद अर्थको भले पहचाने । आतम ब्रह्म रूप इक जाने । भेदपंचकी बुद्धि नशावै । अद्वैत अमल ब्रह्म दर्शावै ॥ भव मिथ्या मृगतृष्णसमाना ॥ अनुभव बिन भाखत नहिं आना । सो गुरु दे अद्भुत उपदेशा ॥ छेदक शिखा न लुंचत केशा । करत मोक्ष भव ग्राहते है अस निज उपदेश ॥ सो देशिक बुध जन कहत मेरि कुवेश ॥ दृत पुट घट सम अखसम भेषउपात सुभाव । पढ़े वेद या हेतु ते ज्ञानी पै तज मान ॥

गुकारःप्रथमोवर्णो मायादिगुणभासकः ।
रुकारोऽस्तिपरंब्रह्म मायाभ्रान्तिनिवारकः ॥
गुकारश्चान्धकारोहि रुकारस्तेजउच्यते ।
अज्ञानग्रासकंब्रह्म गुरुरेवनसंशयः ॥
सर्वश्रुतिशिरोरत्न नीराजितपदाम्बुजम् ।
वेदान्तार्थप्रवक्तारं तस्मात्संपूजयेद्गुरुम् ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागोविधीयते ॥
ज्ञानहीनोगुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादीविडम्बकः ।
स्वविश्रान्तिं नजानाति परशान्तिंकरोतिकिम् ॥
मधुलुब्धोयथाभृङ्गः पुष्पात्पुष्पान्तरंव्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथाशिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरंव्रजेत् ॥

इत्यादि श्लोकों का अर्थ स्पष्ट है व्याख्यान वृद्धि के भय से वर्णन नहीं किया, ब्रह्मचर्य विषय के व्याख्यानमें भी इन श्लोकों को दर्शादिया है । सिद्धान्त यह कि शिष्यको चाहिये कि पूर्वोक्त गुरु ही से वेदादि विद्या का पठन पाठन करे अज्ञानी और विषय भोगी अगुरुओंको विद्यार्थी तिलांजली देदेवे नीति में लिखा है कि—

लालनेबहवोदोषास्ताड़नेबहवोगुणाः ।
तस्मात्पुत्रंचशिष्यंच ताड़येन्नतुलालयेत् ॥

इत्यादि श्लोकों का भी यही सिद्धान्त है कि शिष्य और पुत्र को ताड़ना कर गुरु वा पिता वेदादि विद्या का पठन पाठन करावे। विद्याहीन गुरु नहीं हो सक्ते, जैसे कि वर्त्तमान समयमें स्कूलों कालिजों अथवा वेद विरुद्ध पाठशालाओं में गुरु तो कहाते हैं, परन्तु लक्षण उन में गुरुओं का एक भी नहीं देखा जाता, यहां तक शिकायत सुनी जाती है कि विद्यार्थियों के साथ कुकर्म कर डालते हैं। किन्तु जैसे पूर्व दोषोंसे रहित गुरु होते थे वैसे गुरुओं से पढ़कर ही विद्यार्थी पूर्ण विद्वान् हो सक्ता है। जैसे पूर्व समय में गार्गी कात्यायनी मैत्रेयी चुड़ाला मंदालसा आदि निर्दोष विदुषी स्त्रियां हो चुकी हैं, वैसी स्त्रियोंसे पढ़कर कन्या भी निर्दोष विदुषी हो सकती है। वर्त्तमान समय की व्यभिचारिणी स्त्रियां जैसे लिक्चर देती फिरती हैं, वैसी स्त्रियों से पढ़ने वाली कन्यायें निर्दोष विदुषी तो नहीं हो सक्ती, किन्तु बाजार की वेश्यायें तो जरूर हो सक्ती हैं॥

स्थाणुरयंभारहारःकिलाभूदधीत्यवेदं नविजानातियोऽर्थम्०।

इस प्रमाण को हम अनेक वार दर्शा चुके हैं, यह प्रमाण निरुक्तकार यास्क मुनिका है, इसका मूल सिद्धान्त यह है, कि जो मनुष्य केवल वेदादि ग्रन्थोंको कण्ठस्थ तो करलेता है, परन्तु वाच्य लक्ष्य गौण अथवा व्यंग्यार्थको सम्यक् प्रकारसे नहीं जानता, वह मनुष्य भारवाही जड़ता बैल अथवा गधेके सदृश है। अभिप्राय यह कि पढ़ने वाले विद्यार्थियोंको चाहिये कि विवेक वैराग्यादि साधन संपन्न होकर गुरु के पास ब्रह्मचर्य्य और विद्या अभ्यासके लिये जावें और गुरु भी सर्वदोषों से रहित होवे, तभी तो विद्यासूर्यसे अविद्यान्धकार दूर होगा॥

अब कुपात्र वितण्डा और जल्प करने वाले अविद्वानों पर उदाहरण दिया जाता है जैसे कि एक विद्वान् राजाने दूसरे विद्वान् राजा से चार बैल मांगे। उस राजा ने चार वितण्डा वादी भेज दिये, एक उनमें ज्योतिषी था, दूसरा नैयायिक था, तीसरा वैयाकरण था, और चौथा राजवैद्य था,। ये चारों ही प्रत्येक विषय को पढ़ तो गये थे, परन्तु सिद्धान्त कुछ नहीं समझे थे, विद्यामें दोष कोई नहीं परन्तु पात्र कुपात्र का भेद है। वेदान्त

का यह सिद्धान्त है कि ज्योतिष से शुभाशुभ काल का ज्ञान होता है। न्याय से बुद्धि तीव्र होती है, व्याकरण से शब्दकी शुद्धि अशुद्धिका ज्ञान होता है, वैद्यक शास्त्र से रोग नाश करने का ज्ञान होता है। परन्तु ज्योतिषादि के इन सिद्धान्तों से वे चारों ही शून्य थे केवल पाठ मात्र कर वितण्डा और जल्पका हल्ला मचाते फिरते थे। ऐसे मनुष्योंकी बुद्धि भी पशु के सदृश होती है खैर जो हो। इस प्रकार चार बैलोंको राजाने अपने मित्र राजा के पास रवाना कर दिया और उन चारों से यह कहा कि अमुक राजा के पास जाइये, और उससे मुलाकात कर फिर वापस आइये, वे चारों लाल-बुझक्कड़ दूसरे राजा के नगर को गये, राजाके बगीचेमें चारों ही ने डेरा जमा दिया। दिशा फराकत होकर पण्डितोंका पहरावा पहर कर बिछौना बिछाकर बैठगये और परस्पर सम्मति करने लगे, अंतरङ्ग सभामें अपनी २ राय पेश करी, एक उनमें ज्योतिषी था, उसने सम्मति दी कि अर्द्धरात्रि को राजा से मुलाकात करने की शुभ घड़ी है, दूसरा विद्यार्थी नैयायिक था, उसने सबसे आज्ञा मांगी कि हम भोजन बनानेको बाजार से सामग्री लाते हैं। तीसरा विद्यार्थी डाक्टर था उसने आज्ञा मांगी कि हम बाजार से शाक भाजी लाते हैं। चौथा विद्यार्थी वैयाकरणी था उसने आज्ञा मांगी कि मैं शाक भाजी तैयार करूंगा। मतलब यह है कि नैयायिक विद्यार्थी बाजार से आटा और पत्तल पर घृत ले कर वापस आया, रास्ते में तर्क उठी कि—

घृताधारं पत्तलं वा पत्तलाधारं घृतम् ॥

इतनी तर्क उठाकर पत्तल को उलट दिया घृत मैलेमूत्रसे जा मिला, नैयायिक विद्यार्थी ने निश्चय करलिया कि घृत स्वतन्त्र नहीं किन्तु परतन्त्र है तो खाने से लाभ भी न होगा। डाक्टर विद्यार्थी बाजारमें एक कूजड़ी की दूकान पर जा खड़े हुए, और संस्कृत बोलना प्रारम्भ कर दिया कि—

भो हलग्राहिन् अहं त्वां ताम्रं ददामि, त्वं मां चूतं देहि।

यद्यपि संस्कृतकोष में चूत नाम आम्र फलका है, तथापि कुपात्र विद्यार्थी को कूजड़ी के पतिने ऐसा जूतोंसे पीटा कि उसका शिर गंजा करडाला कहा कि बेईमान हमारी जोरूको गाली बकता है, डाक्टर जी हजामत साफ करा वापस आए। और दूसरे साथियों को इत्तिला दी कि शाक भाजी सब खराब हैं। नीम की पत्ती का शाक बनाना ठीक है॥

वैयाकरणी विद्यार्थीने नीम की पत्ती तोड़ कर हांडी में डाली साथ गर्म मसाला डाल दिया, नीचे अग्नि प्रज्वलित करदी, हांडीमें शब्द निकलने लगा, वैयाकरणी विद्यार्थी ने हांडी से कहा कि (अशुद्धां ब्रूषे) अभिप्राय यह कि तू अशुद्ध बोलती है। विद्यार्थी को ज्ञान हो आया कि जो अशुद्ध बोले उसके मुखमें खाक डालना उचित है, तो हांडी को खाकसे भर दिया, शब्द बन्द हो गया, वैयाकरणी विद्यार्थी ने एक दण्डा पकड़ा और गुस्सेसे हांडी के टुकड़े २ कर डाले हांडीसे कहा कि ले सुमरी प्रथम तो तू अशुद्ध बोलती थी, अब न धातु न प्रत्यय। इतने में अर्धरात्रिका समय आगया नगर के फाटक बन्द हो गये तो चारों विद्यार्थी नगरकी दीवारमें कीलें ठोंक २ राजा के बंगले को चले अन्धेरी रात्रि थी चारों विद्यार्थी पायखानेमें गिर पड़े, डाढ़ी मूंछ मुखादि मैले मूतसे भर गये। पुलिस ने गिरफ्तार किया। सूर्योदय के समय राजा के पास पेश हुए, राजाने पूछा तुम कौन और रात्रि को दिवाल कूद कर नगर में क्यों घुसे, उन ने क्रम से राजा को कहा कि हम नैयायिक हैं, यह डाक्टर हैं, यह ज्योतिषी हैं, यह वैयाकरणी हैं, आपसे मुलाकात करने को आए हैं। अर्द्धरात्रिका समय ही मुलाकातके लिये लाभ घड़ी थी। राजा को स्मरण हो आया कि यह वही बैल आए हैं। जो कि अमुक राजा से हमने मांगे थे॥

अभिप्राय इस उदाहरण का यह है कि जो कुपात्र अध्यापकोंसे कुपात्र विद्यार्थी पढ़ते हैं उन को विद्या ही विपरीत फल के देने वाली हो जाती है। विद्यामें कोई दोष नहीं किन्तु दोष उन कुपात्रों का है। उस से हिन्दुधर्मवीरों को चाहिये कि सुपात्र अध्यापकोंके पास से आप अपने सन्तानों को विद्या का अभ्यास करावें कि जिस से आप के संतान सुपात्र होवें और सर्वत्र मान को प्राप्त होवें॥

> माताशत्रुःपिताव्वैरी येनबालोनपाठितः।
> नशोभतेसभामध्ये हंसमध्येबकोयथा॥

इस का अर्थ स्पष्ट और भाव यह कि हर एक आदमी को उचित है कि स्वसन्तानों को यथावत् विद्या का अभ्यास करा कर सुपात्र बनावें॥

> गुणैर्गौरवमायाति नोच्चैरासनसंस्थितः।
> प्रासादशिखरस्थोऽपि काकःकिंगरुडायते॥

इसका सिद्धान्त यह कि ऊंचे स्थान पर बैठने से मनुष्य ऊंचा नहीं हो सका किन्तु विद्या ही से ऊंचा होता है जैसे कौवा ऊंचे बंगलेके शिखर पर बैठने से भी गरुड़ नहीं हो सकता वैसे हीन मनुष्य भी गद्दी कुर्सी आदि पर बैठने से जगद्गुरु नहीं हो सक्ता ॥

सुखार्थिनःकुतोविद्या नास्तिविद्यार्थिनःसुखम् ।
सुखार्थीवात्यजेद्विद्यां विद्यार्थीवात्यजेत्सुखम् ॥

यह श्लोक महाभारत का है । इस में व्यास जी कहते हैं कि जिस का मन शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि विषय जन्य सुख में लंपट है, उस को विद्या ही नहीं आती और जिन को विद्या लाभ की उत्कट जिज्ञासा है वह विषय जन्य सुख की इच्छा नहीं करते । जिसको विषय जन्य सुखकी इच्छा है वह मनुष्य विद्या का अभ्यास नहीं करता और जिस को विद्या लाभकी इच्छा है वह विषय जन्य सुख का त्यागकर देता है । अब इस समयके विद्यार्थियोंकी यदि निगरानी करी जावे तो दश हजार में से एक दो ऐसे विद्यार्थी निकलेंगे कि जिनके अन्तःकरण में यथार्थ ज्ञान के साधन ग्रन्थों के पठन पाठन की उत्कट जिज्ञासा लगी हो और वे विषय जन्य सुख से विरक्त रहते हों ॥

वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धंमाल्यंरसान्स्त्रियः ।
शुक्तानियानिसर्वाणि प्राणिनांचैवहिंसनम् ॥
अभ्यंगमञ्जनंचाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।
कामंक्रोधंचलोभंच नर्त्तनंगीतवादनम् ॥

इत्यादि श्लोकों में मनुजी की आज्ञा है मद्य मांस गन्ध माला रस स्त्री दुष्टपुरुष का सङ्ग जीवहिंसा गुह्यांगोंका मर्दन आंखोंमें काजल लगाना जूता छत्र का धारण काम क्रोध लोभ गाना वजाना नाचना इत्यादि कुकर्मों को विद्यार्थी छोड़ देवें । अब पक्षपात छोड़कर विचारना चाहिये कि इस समय के विद्यार्थियोंमें इस प्रकार के कितने निकलेंगे । यदि न्याय की रीतिसे आप देखेंगे तो ऐसे विद्यार्थियोंका सन्नाटा ही ज्ञात होगा, क्योंकि हजारों विद्यार्थी मद्यमांसादि खाते पीते हैं । वैसे ही उन के अध्यापक हैं रंडियोंका गाना वजाना नाचना देखते हैं, हारमोनियम वा फोनोग्राफ तब-

ला सारंगी आदि बाजे बजाते हैं। विलायती बूट कोट पटलून पहरते हैं विलायती टोप पहनते हैं। चुरट बीड़ी मुख में रखते हैं, अंगरेजी साबन से बार बार मुखको धोते हैं। ब्रह्मचारीयों गाना बजाना नाचना यथावत् सीखनेकी आज्ञा देते हैं, विधवा के ग्यारह २ खसम होनेका हल्ला मचाते फिरते हैं फिर उन को यथार्थ ज्ञान का साधन रूप विद्या का लाभ कैसे होगा किन्तु कभी नहीं ॥

सर्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानंविशिष्यते ।
वार्य्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥

इस में मनु जी वर्णन करते हैं कि जैसा आत्मविद्या का दान है वैसा जल अन्न गौ पृथिवी वस्त्र तिल सुवर्ण घृतादि का कोई भी दान नहीं, सिद्धान्त यह कि आत्मविद्यासे अविद्या तत्कार्य्य जन्ममरणादि की निवृत्ति और निराकार निर्विकार सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित ब्रह्मात्मा की प्राप्ति स्वरूप मोक्ष का लाभ हो जाता है। जलादि के दान से यह लाभ नहीं हो सकता ॥

अन्नदानसमंनास्ति विद्यादानंततोऽधिकम् ।
अन्नेनक्षणिकातृप्तिर्यावज्जीवंतुविद्यया ॥

इस में याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि यद्यपि अन्नदान के समान दूसरा दान संसार में कोई नहीं तथापि अन्नदान से विद्या का दान अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि अन्न से थोड़ी देर तक तृप्ति रहती है, परंतु विद्यासे मरण तक तृप्ति रहती है। विद्यासे मान प्रतिष्ठा धनादि अनेक पदार्थ मिलते रहते हैं॥

कोकिलानांस्वरोरूपं स्त्रीणांरूपंपतिव्रतम् ।
विद्यारूपंकुरूपाणां क्षमारूपंतपस्विनाम् ॥
एकेनापिसुपुत्रेण विद्यायुक्तेनसाधुना ।
आल्हादितंकुलंसर्वं यथाचन्द्रेणशर्वरी ॥
किंतयाक्रियतेधेन्वा यान दोग्ध्रीनगुर्विणी ।
कोऽर्थःपुत्रेणजातेन योनविद्वान्नभक्तिमान् ॥

इत्यादि नीति के श्लोकों में विद्या की नाना प्रकारसे प्रशंसा करीहै, इन श्लोकों के अर्थ स्पष्ट हैं। भाव यह कि ईश्वर रचित संसारमें विद्याही सर्वोत्तम पदार्थ है।

आलस्योपहताविद्या परहस्तगतंधनम्।
अल्पबीजंहतंक्षेत्रं हतंसैन्यमनायकम्॥
येषांनविद्यानतपोनदानं नचापिशीलंनगुणोनधर्मः।
तेमृत्युलोकेभुविभारभूता, मनुष्यरूपेणमृगाश्चरन्ति॥

इत्यादि श्लोकों का शब्दार्थ भी अत्यन्त स्पष्ट है, सिद्धान्त इन श्लोकों का यह है कि विद्या के बिना अथवा विद्या के ग्रन्थ तो पढ़ लिये परन्तु तात्पर्य कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ, ऐसे मनुष्यकी केवल सूरत मनुष्यके सदृश भान होती है परन्तु चेष्टा उसकी पशुकी सी है। विद्याको मनुजी ने धर्म्म करके वर्णन किया है (धर्म्मेणहीनाःपशुभिः समानाः) इस प्रमाणसे भी विद्या धर्म्मसे हीन आदमी पशुके सदृश है॥

प्रकरण यह है कि यथार्थ ज्ञानके साधनका नाम विद्या और भ्रान्ति ज्ञानके साधनका नाम अविद्या है, इस बातको हम इसी व्याख्यानमें पूर्व वर्णन कर चुके हैं। यहां पक्षपात छोड़कर हम विशेष वर्णन करते हैं कि संस्कृत अंगरेजी उर्दू फारसी अरबी बंगाली गुजराती दक्षिणी मदरासी पल्ली आदि कोई भी भाषा क्यों न हो किसी खास भाषाका नाम विद्या सिद्ध नहीं हो सक्ता, हां जितनी भाषासे यथार्थ ज्ञान होता है, उतनी भाषा ही विद्या सिद्ध होती है। चाहे वह कोईभी भाषा हो जितनी भाषासे भ्रान्ति ज्ञान हो वह भाषा कोई भी क्यों न हो उसको विद्या कथन करना लाल बुझक्कड़ लोगोंका काम है। विचारो कि वेद मनुस्मृत्यादिकोंमें जो चार वर्णोंके कर्म लिखे हैं, उन कर्मोंको यथावत् संपादन करना चार वर्णोंकी विद्या है। कर्मोंको न संपादन करना चार वर्णोंकी अविद्या है। वैसे ही ब्रह्मचर्य्यादि चार आश्रमोंके जो कर्म वर्णन किये हैं उन कर्मोंको यथावत् संपादन करना यह चार आश्रमोंकी विद्या है और जो कर्मोंका न संपादन करना है वह चार आश्रमोंकी अविद्या है। वर्णव्यवस्थाके व्याख्यानमें हमने चार वर्णोंके कर्म्म वर्णन कर दिये हैं। चतुराश्रम मण्डनके व्याख्यानमें हमने चार आश्रमोंके कर्म्मोंका भी वर्णन कर दिया है। जितने राजाके छोटे वा बड़े

कर्म्मचारी हैं, उनको जितना इख्तियार मिला हैं, उस पर यदि वह यथावत् चलें तो वह उनकी विद्या है, यदि विपरीत चलें तो उनकी अविद्या है, वकील बारिष्टरादिकों जो जो इख्तियार मिला है, यदि उस २ पर वह यथासंभव चलें तो उनकी विद्या है, यदि उससे विपरीत चलें तो वह उनकी अविद्या है। हिन्दुमतमें जितने संप्रदाय हैं, वह वेदोक्त कर्म्मों पर चलें तो उनकी विद्या है यदि वे विपरीत चलें तो सम्प्रदायोंकी अविद्या है। राजा के जो कर्म्म हैं यदि राजा उन पर यथावत् चले तो वह राजाकी विद्या है, यदि उससे विपरीत चले तो वह राजाकी अविद्या है। अभिप्राय यह कि यथार्थ ज्ञानके साधन ही नाम युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विद्या सिद्ध हो चुका है॥

अपशब्दज्ञानपूर्वकेशब्दज्ञानेधर्म्मः

इस महाभाष्य के वचनसे सिद्ध होता है कि संस्कृत और संस्कृत से भिन्न भाषाओं को परस्पर अपेक्षा है। जब संस्कृत भाषा से भिन्न अशुद्ध शब्दयुक्त भाषाका मनुष्यको यथार्थज्ञान हो जाता है, तब तो शुद्ध संस्कृत भाषाका यथार्थज्ञान भी विद्यार्थीको हो सकता है। दूसरी युक्ति संस्कृत भाषाके सर्वोत्तम होनेकी यह है कि संस्कृत भाषाके जितने वर्ण हैं, वे सब कण्ठ तात्वादि स्थानोंमें स्वतन्त्र बोले जाते हैं। जैसे कि (क ख ग घ ङ) इतने वर्ण कण्ठ स्थानमें (च छ ज झ ञ) इतने वर्ण तालु स्थानमें, (त थ द ध न) इतने वर्ण दन्त स्थानमें (प फ ब भ म) इतने वर्ण ओष्ठ स्थानमें स्वतन्त्र बोले जाते हैं। दूसरी भाषाओंके वर्ण कण्ठ तात्वादि स्थानोंमें स्वतन्त्र नहीं बोले जा सकते। जैसे कि (अलिफ, बे, ते, से, जीम, हे, खे, दाल्. जाल्०) इत्यादि फारसी उर्दू अर्बीभाषाके वर्ण प्रत्येक वर्णके परतन्त्र हैं,। स्वतन्त्र नहीं। देखो अलिफ़ इन तीन संस्कृत भाषाके वर्णोंके परतन्त्र अलिफ़ वर्ण है। वैसे ही बे ते से आदि भी जान लीजिये (अ, ल, फ,) ये तीन वर्ण उपादान कारण हैं। और (अलिफ़) यह उनका कार्य है। उपादान कारण बड़ा और कार्य छोटा समझा जाता है। उपादान कारण पिता और कार्य उसका पुत्र सिद्ध होता है, उससे (अ, ल, फ) यह तीन वर्ण (अलिफ़) इस वर्णके पिता हैं और (अलिफ़) यह उनका पुत्र है। यही रीति बे ते से जीम चे हे खे आदि वर्णोंकी मिलावटमें भी समझ लीजिये। उससे भी संस्कृत भाषा सर्वोत्तम है॥

यदि औरभी सूक्ष्म विचार किया जावे तो संस्कृत भाषाकी सर्वोत्तमता में एक वक्ष्यमाण तीसरी युक्ति भी मिल सकती है। जैसे कि उर्दू भाषामें

करण का कान अक्षि का आंख जिह्वा का जीभ नासिका का नाक हस्त का हाथ पाद का पैर अस्तिका हस्ति नास्ति का नेस्ति सप्त का हफ्त स्वतःका खुदा आत्मका आदम इत्यादि हजारों संस्कृतके शब्द बिगड़कर उर्दू फारसी आदि शब्दोंका प्रचार हो रहा है। उर्दू भाषा के शब्द तो सर्वथा विपरीत हैं जैसे कि लिखने में (घड़ा) आता है। परन्तु पढ़नेके समय गधा पढ़ा जाता है। जब सप्तम एडवर्ड को राजगद्दी मिली थी, तब उस की खुशीमें लार्डकर्जन ने दिल्ली दरबार किया था। उसी समय रोहतक जिले के डिप्टी कमिश्नरने भी छोटा दिल्ली दरबार करडाला, सरिस्तेदार को हुकुम दिया कि देहाती तहसीलदारको रुक्का लिखिये कि पांचसौ घड़ा फौरन भेज दीजिये। सरिस्तेदारने रुक्का भेज दिया तो देहाती तहसीलदार के सरिस्तेदार ने घड़ेका गधा पढ़ा और तहसीलदार को इत्तिला दी कि साहिब बहादुरने छोटा दिल्ली दरबार करने के लिये पांच सौ गधा मांगे हैं। तहसीलदार साहिब ने चार पांच घंटेमें तीन सौ गधा मंगवाकर चपरासीके साथ डिप्टी साहिबके बंगले पर भेज दिये। साहिब कहीं हवा खानेको गये थे जब साहिब वापस आये तो देखा कि बंगले के आस पास तीनसौ गधा रेंगने लगे हैं हल्ला मचा रहे हैं एक दूसरे को दुलत्तियां ठोंक रहे हैं साहिब ने पूछा यह क्या हो रहा है तहसीलदार साहिब के चपरासी ने जवाब दिया कि हुजूर ने पांचसौ गधा मांगा था। सो तीनसौ हाजिर हैं दो सौ की कोशिश हो रही है। साहिब ने अपने सरिस्तेदारसे जवाब तलब किया। उसने जवाब दिया कि हुजूर यह उर्दूभाषाका नतीजा है। लिखें तो घड़ा और पढ़नेमें गधा आता है। हाजीपुरका चाचीतुर बहंगीका भंगी पढ़नेमें आता है।

अभिप्राय यह कि संस्कृतसे भिन्न भाषायें अशुद्ध हैं अंगरेजी भाषा में अनेक शब्द संस्कृत के बिगड़े देखे जाते हैं और अंगरेजी वर्णभी परतंत्र हैं मिलावट से बने हैं जैसे कि (अ इ) दो मिलके (ए) बना है (ब ई) यह दो वर्ण मिलकर बी (स ई) यह दो वर्ण मिलके सी (ड ई) इन दो वर्णोंकी मिलावट से डी बना है। इसी भांति अन्यवर्ण अंगरेजी के भी मिलावटी जान लीजिये वैसे ही (यूयं) शब्द का यू (वयं) का वी (मातृ) का मादर पितृका फादर (दुहिता) का डौटर (सर्प) का सर्पेंट इत्यादि संस्कृत भाषाके शब्द बिगड़कर अंगरेजी भाषाका प्रचार हुआ है। संस्कृत भाषाके शब्दों की नकलें भी अंगरेजी भाषा में अनेक देखी जाती हैं। जैसे

कि संस्कृत भाषामें एतवार का नाम (रविवार) है सूर्य के दिन को संस्कृत भाषा में रविवार कहते हैं अंगरेजी भाषामें (सण्डे) सन् नाम सूर्यका और डे नाम अंगरेजीमें दिन का है। अभिप्राय यह कि अंगरेजी भाषा में भी सूर्यके दिन हीका नाम सण्डे है। वैसे ही संस्कृत भाषामें ऐतवारके पश्चात सोमवार रक्खा है (सोम) नाम चन्द्रमाका और (वार) नाम दिनका है। अंगरेजीमें (सोमवार) को मण्डे कहा है (मून) नाम चन्द्रमाका और डे नाम दिनका है इत्यादि और भी संस्कृत शब्दोंकी नकलें अंगरेजी भाषामेंकी गईहैं।

चौथी युक्ति संस्कृतभाषाके सर्वोत्तम होनेकी यह है कि संस्कृतके जितने शब्द हैं वह सर्व किसी निमित्तको लेकर बने हैं अंगरेजी आदि भाषाओंके शब्द किसी निमित्तको लेकर बने सिद्ध नहीं हो सकते जैसे कि संस्कृत भाषामें (सूनु) नाम पुत्र का है अंगरेजी भाषा में पुत्रका नाम (सन) है दोनों शब्दों में (षुञ् अभिषवे) यह धातु और ल्युट्प्रत्यय है जैसे पुत्र जन्मके समय वायु का उच्चारण होता है वैसे ही (षुञ् अभिषवे) इस धातु का भी उच्चारण होता है इसी निमित्तको संस्कृत भाषाके विद्वान् तो दर्शा सकते हैं परन्तु अंगरेजी भाषाके विद्वान् इस निमित्तको नहीं दर्शा सक्ते वैसेही संस्कृत भाषामें चूहेका नाम (मूषक) है अंगरेजीमें चूहे का नाम मौस है (मुष स्तेये) इस धातुसे उक्त दोनों शब्दोंमें (मुषधातु) एक ही है। पदार्थ को चुराके भाग जानेके निमित्त से ही चूहेका नाम मूषक रक्खा गया है। अंगरेजीके विद्वान् किसी निमित्त को भी नहीं दर्शा सकते। इसी भांति संस्कृतके सर्व शब्द निमित्त पूर्वक हैं अंगरेजी आदि भाषाओंके शब्द किसी निमित्तको लेकर बने सिद्ध नहीं हो सकते। संस्कृतभाषाकी सर्वोत्तमता में और भी अनेक युक्तियां हैं परन्तु विद्या नाम खास संस्कृत भाषाका सिद्ध नहीं हो सक्ता किन्तु विद्या नाम यथार्थज्ञानके साधनही का है। सनातन हिन्दुधर्मवीरोंको हम विदित करते हैं कि आप प्रत्येक जिले अथवा कसबे में पाठशाला ये नियत कीजिये उनका नाम संस्कृत पाठशाला रखिये, उन में मुख्य करके संस्कृत भाषाका पठन पाठन कराइये। संस्कृत भाषा पढ़ाने से बालकोंको धर्म और आत्मा का ज्ञान होगा अंगरेजी वगैरह पढ़ाने से बालकों को नौकरी द्वारा पेट पूजा का करना नतीजा मिलेगा, आप के बालकोंके लोक परलोक दोनोंही सफल हो जावेंगे। और वर्त्तमान समय के ठग भांग तमाखू गांजा चर्स सुलफा अफीम पोस्त मदिरादि नशा पीने वाले जो गुरु बने हैं उनको सर्वथा तिलाञ्जलि दे डालो।

त्यजेद्धर्मंदयाहीनं विद्याहीनंगुरुंत्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखींभार्यां निःस्नेहान्बान्धवान्त्यजेत् ॥

इत्यादि नीतिशास्त्र के प्रमाण हम पीछे भी दे चुके हैं ।

शुनःपुच्छमिवव्यर्थं विद्याहीनस्तथानरः ।
नगुह्यगोपनेशक्तं नचदंशनिवारणे ॥
रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसंभवाः ।
विद्याहीनानशोभन्ते निर्गन्धाइवकिंशुकाः ॥

इत्यादि नीतिके प्रमाणोंका भी यही सिद्धान्त है कि विना विद्या के मनुष्य में मनुष्यपन सफल नहीं हो सकता ।

सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि । तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति ॥

यह शतपथ ब्राह्मणका मन्त्र है इसका भी यही तात्पर्य है कि जो सत्य विद्या का अभ्यास करता है वह मनुष्य भी विद्या आदि गुणोंसे देवता हो जाता है । विद्याहीन मनुष्य भी मिथ्यावादी होनेके कारण मनुष्यपनसे रहित असुर हो जाता है । एक ही मनुष्य विद्या से सत्यवादी अविद्यासे मिथ्यावादी हो जाता है । (मां मूंडों उस गुरुकी जिस ते भ्रम न जाय । आप डुबे चहुं वेदमें चेले दिये बहाय) यह कबीर जीका वचन है ॥

गुरु जो कहावे शिष्य हूं ते उर पावे विषय भोग न छुड़ावे भ्रम रहे ताके मनमें । वैद्य जो कहावे सो कुपथ न छुड़ावे बार बार ही खुलावे रोग रहे वाके तनमें ॥ मन्त्री जो अहे सच राजा सों न कहे वाको राज ही न रहे हार होत ताकी रनमें । कहे कवि श्रोता यामें रंचक न झूंठ कछू सांच सो न कहें तीनों पड़ें घी के टन में ॥

अभिप्राय यह है कि "अनाथ सुज्ञानी कोटको निश्चय निज मत एक । एक अज्ञानीके हिये वर्त्तत मते अनेक, प्रकरण यह है कि विद्याका अभ्यास और ब्रह्मचर्य मनुष्यमात्र को सम्पादन करनेका उद्योग करना चाहिये । पन्द्रह सोलह वर्षकी आयु तक लड़का विद्या पढ़े और ग्यारह वा बारह वर्ष की आयु तक कन्या पढ़े ॥

अब अष्टादश विद्या के प्रस्थानों का संक्षेप से वर्णन किया जाता है (तथाहि) ४ वेद, उपवेद, वेदोंके छः अंग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म-

शास्त्र, यह विद्याके अष्टादश प्रस्थान हैं (ऋग् १ यजुः २ साम ३ अथर्वण ४ यह चार वेद हैं। इनका कर्ता ईश्वर है, इनके पढ़नेसे विद्यार्थीको कर्मोपासना और आत्मज्ञानका लाभ होता है। मूर्तिध्यान गंगादि तीर्थ ईश्वरके अवतार मृतक श्राद्ध इत्यादिका भी वेदोंसे ज्ञान होता है। परन्तु ऐसा यथार्थ ज्ञान विद्यार्थीको वेदोंसे तब होता है कि जब पहिले वेदोंके छः अंगों को विद्यार्थी पाठशाला में अध्यापक से यथावत् पढ़ लेता है। शिक्षा १ व्याकरण २ निरुक्त ३ ज्योतिष ४ पिङ्गल ५ कल्प ६ यह वेदोंके छः अङ्ग हैं। शिक्षाके पढ़नेसे विद्यार्थीको अक्षरोच्चारण के स्थान प्रयत्न का ज्ञान होता है। व्याकरणसे शब्दकी शुद्धि अशुद्धिका ज्ञान निरुक्तसे वेद मन्त्रोंके अर्थों का ज्ञान, ज्योतिषसे कालका ज्ञान, पिंगलसे वेदस्थ छन्दोंका ज्ञान, कल्पसे विद्यार्थी को कर्मोंके अनुष्ठानका ज्ञान हो जाता है। (आयुर्धनुर्गान्धर्व अर्थ यह चार उपवेद हैं।) आयुर्वेद से विद्यार्थीको चिकित्साका ज्ञान हो जाता है, धनुर्वेदसे राजधर्मका ज्ञान, गान्धर्व वेदसे राग रागिनीका ज्ञान, अर्थवेदसे विद्यार्थीको नीति विद्या अश्वविद्या सूपकार विद्या और शिल्प विद्याका ज्ञान हो जाता है।

(न्याय १ वैशेषिक २ सांख्य ३ योग ४ पूर्वमीमांसा ५ उत्तरमीमांसा ६ ये छः उपांग हैं। न्याय और वैशेषिकके पढ़नेसे विद्यार्थीकी बुद्धि प्रश्नोत्तर करनेमें तीव्र हो जाती है। सांख्य शास्त्रसे सृष्टि क्रमका ज्ञान योगशास्त्रसे मन एकाग्र करनेका ज्ञान, पूर्व मीमांसाशास्त्रसे निष्काम कर्मों द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिका ज्ञान और उत्तर मीमांसाशास्त्रसे जीव ब्रह्मके अभेदका ज्ञान विद्यार्थीको हो जाता है। शतपथादि चार ब्राह्मणोंके पढ़नेसे विद्यार्थी को आत्मविद्याका विशेष ज्ञान और ऋषि मुनियों तथा राजा महाराजाओंके इतिहासोंका भी विशेष ज्ञान हो जाता है। दश उपनिषदोंके पढ़नेसे विद्यार्थीको आत्मविद्यामें और विशेष सहायता मिल जाती है। मन्वादि स्मृतियोंसे विद्यार्थीको वर्णाश्रम व्यवस्थाका ज्ञान होजाता है। अष्टादश पुराणोंके पढ़नेसे विद्यार्थीको ऋषि मुनि राजा महाराजाओंकी वंशावली गोत्रावली आदिकोंका तथा इतिहासों और ईश्वरके अवतारोंका ज्ञान विद्यार्थीको होजाता है। इन अष्टादश विद्याके प्रस्थानोंको जब विद्यार्थी ब्रह्मचर्य्यसे पढ़ेगा तभी पूर्ण विद्वान् होगा अन्यथा नहीं॥

ओ३म् शान्तिः॥ शान्तिः॥ शान्तिः॥

अष्टादश पुराण समीक्षा ।

व्याख्यान नं० २६

ओ३म् । पुनन्तुमादेवजनाः पुनन्तुमनसाधियः । पुनन्तुविश्वाभूतानि जातवेदःपुनीहिमा ॥ य० अ० १९ मं ३९
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

सर्व हिन्दुधर्मवीरों को विदित किया जाता है कि इस व्याख्यान में पुराणों का मण्डन किया जायगा, परन्तु प्रथम पुराण विषयक दयानन्दोक्त विरोधों का खण्डन किया जाता है तथाहि (७ सत्या० भूमिका प्रकरण) दयानन्द का लेख है कि मैं पुराणों को प्रथम ही बुरी दृष्टिसे न देखकर उन में से गुणोंका ग्रहण और दोषों का त्याग करता हूं । दयानन्द के इस लेख में सिद्ध हो चुका कि वह पुराणों की सत्य बातोंको भी मानता था । परन्तु उसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ३) दयानन्द ही का लेख है कि जैसे विषसे मिले अन्न का सर्वथा त्याग किया जाता है वैसेही पुराणों में मिला थोड़ा सत्यभी त्याग देना चाहिये, यदि ऐसे न होगा तो पुराणों का मिथ्याभी गले में लपट जायगा । दयानन्द के इस लेख से जाना जाता है कि बाबाजी पुराणों की सत्य बातों को नहीं मानते थे । परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के दोनों लेख झूठे हैं (किंच) दरोगहलफियोंसे भरा दयानन्दकृत सबही सत्यार्थप्रकाश झूठा सिद्ध हो चुका है । ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका वा दयानन्दकृत ऋग्वेद यजुर्वेद भाष्य तथा आर्याभिविनय पंचमहायज्ञ विधि, संस्कारविधि, आदि दयानन्द कृत सर्व ग्रन्थ पूर्वापर विरोधों से मिथ्या सिद्ध हो चुके हैं । यदि आर्यसमाजियों का विश्वास दयानन्द पर है तो उनको चाहिये कि दयानन्दकृत ग्रन्थों को भी विषसे मिले अन्न के समान जानकर त्याग देवें । यदि वे ऐसा न करेंगे तो दयानन्दके लेखानुसार ही आर्यसमाजियोंके गलेमें दयानन्दोक्त झूठ रूपी पिशाच लपट जावेगा ।

(किंच) (सन् १८७५ का सत्या० समुल्लास ११) दयानन्द का लेख है कि राजा भोजने एक संजीवनी नाम इतिहास बनाया था, बटेश्वरके पास होलीपुरा ग्राममें चौबे लोगोंको वह संजीवनी इतिहास ग्रन्थ मालूम है, उसमें लिखा है कि राजा भोजके समय पण्डित लोगोंने पुराण बनाये हैं ।

इस लेखमें दयानन्द ने होलीपुरा ग्राममें संजीवनी इतिहास ग्रन्थ का पतादिया है। परन्तु इसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ११) दयानन्द का लेख है कि रियासत गवालियर में एक भिण्ड ग्राम है उसमें रामदयाल तिवारी जी रहते हैं उनको संजीवनी इतिहास मालूम है। दयानन्दके इस लेखसे संजीवनी इतिहास का पता भिण्ड ग्राम में है। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके यह दोनों लेख भी झूंठे हैं। राजा भोज कृत संजीवनी इतिहासका पता लगानेके लिये होलीपुरा तथा भिण्ड ग्राममें सनातनहिन्दुधर्म वीरों ने बहुत उद्योग किया है। परन्तु वहांके रईसोंको संजीवनी इतिहास यह नाम भी मालूम नहीं इस से दयानन्द के ये दोनों लेखभी झूठे हैं (७ सत्या० समुल्लास ११ भूमिका प्रकरण) दयानन्द का लेख है कि सब मतोंमें चार मत अर्थात् जो वेद विरुद्ध पुराणी जैनी किरानी और कुरानी सब मतों के मूल हैं वे क्रमसे एकके पीछे दूसरा तीसरा चौथा चला है दयानन्दके इस लेखका सिद्धान्त यह हुआ कि पुराण जैनमतसे पहिले चले हैं और उसी समुल्लासमें दयानन्दका लेख है कि अढ़ाई तीन हजार वर्ष जैन मत चले को गुजरे हैं। दयानन्दके इस लेखकी दयासे अढ़ाई तीन हजार वर्षोंसे भी पहिलेके बने पुराण सिद्ध हो चुके। फिर इसके विरुद्ध (७ सत्या० समुल्लास ११) (घटैकयाक्रोशदशैकमश्वःशुकृत्रिभोगच्छति०) इस के भाष्यमें दयानन्द ही ने कहा है कि जब जैनियों ने उत्तर पुराणादि बनाये वैसे अठारह पुराण बनाने लगे। राजा भोजके डेढसौ वर्षके पश्चात् शैवों ने शिवपुराणादि शाक्तों ने देवी पुराणादि वैष्णवोंने वैष्णव पुराणादि बनाये बाबाजी के इस लेखसे सिद्ध हो चुका है कि तेरहसौ वर्षसे भी कम वर्षों से पुराण बने हैं। कहीं तीन हजार वर्षों से पहिले कहीं तेरहसौ वर्षोंसे भी कम वर्षोंसे पुराणोंका लेख लिखना दयानन्दकी यहभी झूंठी दरोगहलफी है

(३ सत्या० मन्तव्य २३) पुराण जो ब्रह्मादिके बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण इतिहास कल्प गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूं अन्य भागवतादिको नहीं। यहां आर्यसमाजियों से प्रष्टव्य यह है कि भागवतादि का नाम पुराण न मानना यह दयानन्द का मत है अथवा किसी ऋषि मुनि का, यदि आर्यसमाजी कहें कि यह मत ऋषिमुनि का है सो ठीक नहीं क्योंकि ऐसा प्रमाण किसी ऋषिमुनिका नहीं मिल सकता कि जिस से सिद्ध हो जावे कि भागवतादि का नाम पुराण नहीं। और

हैं, यह बात पूर्वोक्त महाभारतादि के प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुकी है। परन्तु भागवतादि नाम नवीन रखना या ऐसा लिखना दयानन्द की अविद्या है। (किन्तु) दयानन्दकृत ग्रन्थों ही में लिखा है कि जो पूर्व हो वह प्राचीन और पीछे हो वह नवीन कहाता है; अब दयानन्द के भक्तों से पूछना चाहिये कि दयानन्द और दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थ भागवतादि के पूर्व बने हैं, वा पीछे? यदि पूर्व कहो तो ठीक नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि दयानन्द थोड़े ही दिनोंसे हुआ है, सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में उसने भागवतादिकी झूंठी निन्दा लिखी है। उससे दयानन्द और दयानन्दकृत ग्रन्थ ही नवीन सिद्ध हो चुके। भागवतादि ग्रंथ तो दयानन्द और दयानन्दकृत ग्रन्थोंसे पहिले बने हैं। उससे भागवतादि ग्रन्थ प्राचीन हैं, प्राचीन भागवतादि को नवीन लिखना भी दयानन्दका अज्ञान है॥

(छान्दोग्योपनि० प्रपा० ७ खं०१॥ सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं०) (शत० कां० १३ ब्रा० १कं० १२॥ पुराणं वेदः०) (अथर्व० कां० १५ प्रपा० ३० मं० ४॥ इतिहासश्च पुराणंच०) (महाभारतस्वर्गारोहणपर्व॥ अ० ५ श्लो० ६॥ अष्टादशपुराणानि०) (विष्णुपुराणे॥ अङ्गानिचतुरोवेदा मीमांसान्यायविस्तरः। पुराणंधर्म्मशास्त्रंचविद्याह्येताश्चतुर्दश॥१॥ आयुर्वेदोधनुर्वेदोगांधर्वश्चैवतेत्रयः। अर्थशास्त्रंचतुर्थन्तु विद्याह्यष्टादशैवताः) (विष्णुपुराणे—ब्राह्मं पाद्मंवैष्णवंचशैवंभागवतंतथा। अथान्यंनारदीयंचमार्कण्डेयंचसप्तमम्॥ आग्नेयमष्टमंचैवभविष्यंनवमंतथा। दशमंब्रह्मवैवर्त्तंलैङ्गमेकादशंस्मृतम्॥ मात्स्यंचगारुडंचैवब्रह्माडंचतथापरम्॥

इत्यादि प्रमाणोंसे प्रकरण में पुराण शब्द व्यासकृत अष्टादश पुराणों ही का वाचक सिद्ध होता है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि वेद में अष्टादश पुराणोंका नाम होने से पुराणोंकी रचना वेद से पहिले होना चाहिये। आर्यसमाजियों की यह शंका भी असंगत है, क्योंकि ईश्वर भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालोंका ज्ञाता है॥ जैनमत के ग्रन्थोंमें पुराणोंकी निन्दा लिखी है, उस से अष्टादश पुराण जैनमत से पहिले बने हैं। वेद ईश्वर, सिद्ध वा युक्तयोगी कृत हैं। पुराण व्यास युंजान योगीकृत हैं, वेदोंकी आनुपूर्वी प्रत्येक कल्प में एकसी बनी रहती है, पुराणोंकी आनुपूर्वी प्रत्येक कल्प में बदल जाती है। यदि आर्यसमाजी पक्षपात छोड़कर विवेक के नेत्रोंसे पुराणों को देखेंगे तो वर्णाश्रमों के गुण कर्म्म, योग के अष्टांग, मुक्ति के आठ साधनादि हजारों

सर्वोत्तम कर्म्मोंका संपादन करना आर्य्यसमाजियों की दृष्टिगोचर हो जा-वेगा। उस से आर्य्यसमाजी स्वयं ही पुराणों की झूंठी निन्दा करना अपनी भूल समझ छोड़ दें।

वेदान्ती लोग सारग्राही दृष्टिसे अष्टादश पुराणों को तो मानते ही हैं। परन्तु अहिंसा अंशमें बौद्धमत को भी सारग्राही दृष्टिसे वेदान्ती लोग मानते हैं। यदि आर्यसमाजी भी ऐसे मान लेवें तो उनके लिये अच्छा होगा। आ-र्य्यसमाजी कहते हैं कि वेदादि पुस्तकों की अपेक्षा से पुराण पीछे बने हैं, उससे पुराण नवीन हैं। आर्यसमाजियोंका यह कथनभी असंगत है। क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लासमें कहा है कि इतिहास जिस का होता है वह उसके जन्म के पश्चात् होता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। यदि दयानन्द के इस लेख को आर्यसमाजी मिथ्या मानें तो दयानन्द मिथ्यावादी होगा। यदि बाबाजी के इस लेखको सच्चा मानें तो दयानन्दोक्त मत रीतिसे पुराण वेद से भी पहिले उपजे सिद्ध हो जावेंगे। क्योंकि ऋग् यजुःसाम अथर्वण चारों वेदोंमें पुराण इतिहास गाथादि शब्द अनुभव सिद्ध हैं अनुभव सिद्ध बात किसी युक्ति से भी खण्डन नहीं हो सकी इस बातको वेदोत्पत्तिमण्डन व्याख्यानमें हम विस्तारसे वर्णन कर चुके हैं।

(किंच) ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरिति ।

इसको दयानन्दने सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा है। इसके भाष्य में बाबाजीने वर्णन किया है कि ब्राह्मण ग्रन्थोंका नाम पुराण है सो बाबाजी की मूलाविद्या है। क्योंकि सत्यार्थ प्रकाशके सातवें समुल्लास की समाप्ति में बाबा जी का लेख है कि जो कुछ वेदमें कहा है हम उसीको मानते हैं उसीसे हमारा वेदमत है। यदि बाबा जी के इस लेख को आ-र्यसमाजी सच्चा मानें तो उक्त वचन अप्रमाण होगा क्योंकि उक्त वचन का चारों मंत्र संहिता में अत्यन्ताभाव है। यदि सातवें समुल्लास के लेखको झूंठा कहें तो दयानन्द झूंठा सिद्ध होगा। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के दोनों लेख झूंठे हैं। (किंच)व्यासजी को हुए साढ़े पांच हजार वर्ष गुजरे हैं जब उनने भी अष्टादश पुराणोंका प्रादुर्भाव किया है क्योंकि नास्तिसे अस्ति का होना कुत्तेके सींग सदृश सर्वथा असंभव है पु-राण कारण रूपसे अनादि और कार्यरूप से सादि हैं। यह सिद्धान्त युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध होता है।

आर्यसमाजी कहते हैं कि राजा परीक्षित को शुकदेव जी ने भागवतका सप्ताह सुनाया था उनकी मुक्ति हो गई यह बात ठीक नहीं क्योंकि राजा परीक्षितके समय शुकदेव जी ही नहीं थे तो सप्ताह का सुनाना और राजा परीक्षितको मुक्तिका लाभ होना यह सब गप्पें हैं। यदि ठीक हो तो आजभी वैसा हो जाना चाहिये। आर्यसमाजियों की यह शंकाभी ठीकनहीं क्योंकि विद्वान् वक्ताओं का जब तक तात्पर्य नहीं जाना जाता तब तक विद्वानोंके रचे हुए ग्रन्थोंपर सन्देह रहता है किसी सभामें जाकर एक विद्वान् ने कहा कि आकाशमें कूकर रोता है उसने किसीने पूछा कि आकाशमें कूकर कैसे रोता है विद्वान्ने कहा कि एक गीध पक्षी कूकरीके छोटे बच्चे को आकाशमें उड़ाकर ले गया था वह रोता था इसको सुनकर श्रोता के सन्देह दूर हुये वैसेही पुराण भी निर्दोष हैं व्यास शुकाचार्य ज्ञानीयोगी कारक कोटि में थे। कारक ज्ञानी योगीका शरीर प्रलय होते तक रहता है यह योग की महिमा है। योग सिद्धिसे ज्ञानी योगी अपने शरीरको चक्षुगोचर अथवा अगोचर भी कर सकता है यह भी योगकी शक्ति का परिणाम है।

एक नगर में एक राजाके पास एक पण्डित भागवत की कथा करते थे एक दिन पण्डित जी ने कहा कि राजा परीक्षित भागवतका सप्ताह सुनकर मोक्ष पदको प्राप्त हुए थे राजाने कहा कि जब राजा परीक्षित् सप्ताह सुनकर ही मोक्षपदको प्राप्त हुए थे तो हम को भी मोक्षपद का लाभ सप्ताह सुनकर हो जाना चाहिये। यदि ऐसे न हुआ तो हम निश्चय कर लेंगे कि राजा परीक्षित्भी सप्ताह सुनकर मोक्षको प्राप्त नहीं हुए। इसको सुनकर पण्डित जी तो चुप हो बैठे परन्तु एक परमहंस ने कहा कि आपके प्रश्नका उत्तर हम देते हैं। राजाने कहा दीजिये परमहंस ने कहा कि एक चीज हमें दीजिये राजाने कहा कि आप जो मांगेंगे सो हम देंगे परमहंस ने कहा कि दो घंटे तक अपने राज्यकी हकूमत आप हमें दीजिये दो घंटे खतम होने पर वापस लीजिये राजाने कहा कि बहुत अच्छा परमहंस ने कहा कि लिखदीजिये राजाने लिख दिया परमहंस ने कानिष्टेबलों को आज्ञादी कि एक रस्सेसे खम्भेके साथ राजाको बांधदो कानिष्टेबिलों ने वैसे ही किया फिर परमहंस ने कहा कि दूसरे खंभेके साथ पण्डितजी को बांध दो कानिष्टेबलोंने वैसे ही किया जब एक घंटा गुजरा तो राजाने परमहंससे कहा कि हमें छोड़ाइये परमहंस ने कहा कि आप को सवाल का जवाब मिला आपका

नहीं राजाने कहा कि आप समझा दीजिये कौनसा अन्याय है परमहंस ने कहा कि देखो आप और पण्डित जी एक २ रस्से से बंधे हुए हैं। एक दूसरे को छुड़ा नहीं सक्ता, तीसरा जो कोई न बंधा हो वह आप दोनों को छुड़ा सक्ता है। वैसेही आपका अन्तःकरण तो राजाभिमानरूपी रस्सेसे बंधा है। पण्डित जी के अन्तःकरण को विद्या अभिमान रूपी रस्से ने जकड़ रखा है। जो सर्व प्रकार के अभिमान रूपी रस्से से छूटा होगा वही दूसरे को भी छुड़ा सकेगा। राजा परीक्षित् ने पूर्व जन्म में विवेक वैराग्य षट्सम्पत्ति मुमुक्षुता चतुष्टय साधन सम्पादन कर लिये थे, राज्याभिमान रूपी रस्सेसे उन का अन्तःकरण नहीं बंधा था, किन्तु मोक्ष पद की राजा परीक्षित्को उत्कट जिज्ञासा थी, वैसे शुकदेव जी विषयों से विरक्त विद्यादि अभिमान से रहित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वेदोक्त विद्वान् थे। तभी तो राजा परीक्षित् श्रीमद्भागवत् के श्रवण मनन और निदिध्यासन से जीव ब्रह्माभेद ज्ञानके द्वारा मोक्ष पद को प्राप्त हुए थे। राजा परीक्षित् के समान विवेकादि साधन सम्पन्न मोक्ष के अधिकारी आप हूजिये। और शुकदेवजी के समान श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सर्वाभिमान रहित जीव ब्रह्म अभेद के दृढ ज्ञानी पण्डित जी होवें फिर आप को मोक्ष पद लाभ न होवे, तो आप जैसी इच्छा होवे वैसी ही हमें सजा दीजिये॥

इसको सुनकर राजा के सर्व सन्देह नष्ट होगये, प्रकरण में सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि पुराण सर्वथा निर्दोष हैं, जैसे वेद मन्त्रोंके अर्थ रूपक से किये जाते हैं वैसे ही व्यास कृत अष्टादश पुराणों के अर्थ भी विशेष कर रूपकादि अलंकारों से किये जाते हैं, आर्यसमाजियों को चाहिये कि पहिले काव्यकोष काव्य प्रदीप वेदान्त न्याय मीमांसादि ग्रन्थों का विद्वानों से पठन पाठन करें। फिर पक्षपात को छोड़कर स्वयं ही बतलावें कि पुराण सत्य हैं अथवा मिथ्या। केवल राजनीति विद्या के पढ़ने से पुराणों का सिद्धान्त आप लोगों की बुद्धि में नहीं आ सकेगा, अधिकारी सम्बन्ध विषय प्रयोजन यह ग्रन्थ के चार अनुबन्ध हैं, इन अनुबन्धों का ज्ञान भी जब आप को हो जावेगा तो पुराणों पर कुछ भी सन्देह आप लोगों को न रहेगा॥

भवान्कल्पविकल्पेषु नविमुह्यति कर्हिचित्।

७ सत्या० समुल्लास ११

इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि कल्पसृष्टि और विकल्प प्रलय में भी मोह को कभी प्राप्त न होंगे। ऐसा लिख के पुनःदशम स्कन्ध में मो-

हित हां के वत्सहरण किया इन दोनों में से एक बात सच्ची दूसरी झूठी ऐसा होकर दोनों बात झूठी हैं। दयानन्द की यह शङ्का भी असङ्गत है (क्योंकि) कल्पशब्द का सृष्टि और विकल्प शब्द का प्रलय अर्थ किसी वैदिक कोष में नहीं लिखा, केवल दयानन्द कृत उक्त शब्दों का अनर्थ सत्य मान लेना दयानन्दके भक्तों की अत्यन्त भूल है। (संवत्सरो वै ब्रह्मा) प्रकरण रूपक और लक्षणा से उक्त शतपथब्राह्मण के मन्त्र का अभिप्राय यह विदित होता है कि संवत्सररूपी ब्रह्मा है, यद्यपि संवत्सर जड़ पदार्थ है, जड़को ज्ञान नहीं हो सक्ता। तथापि लक्षणा से संवत्सर विशिष्ट ब्रह्म चेतन ही प्रकरण में ब्रह्मा शब्द का वाच्य संवत्सर हो सकता है। रूपक से संवत्सरस्य दिन और रात्रि शब्दोंके वाच्य बछड़ा बछड़ी अर्थ होसक्ता है। कोष में रात्रिका नाम और दिनका नाम भी गौ है, यहां भी रात्रि दिन विशिष्ट चेतन ही वत्स वत्सी शब्दोंसे लिये जाते हैं। ईश्वर साक्षी ब्रह्मचेतन रूपक से कृष्ण शब्दका वाच्य है', संसाररूपी वृन्दावन है, शुद्ध सत्वगुण प्रधान मायारूप विक्षेप शक्ति रूपी यमुना है। तमोगुण प्रधान मायारूप अज्ञान ही प्रकरण में काली नाग है, जीवों की अनेक बुद्धियां रूपी गोपियां हैं, वेद वाणी रूपी बांसुरी की ध्वनि हो रही है, संवत्सर विशिष्ट चेतनरूपी ब्रह्मा में से चेतन भाग सर्वथा सर्वदा मोह नाम अज्ञानसे रहित है। किन्तु केवल नामरूप भाग संवत्सर मोह नाम अज्ञान से युक्त है। यदि बाबा जी वेदान्त के ग्रन्थों का विचार कर लेते तो रूपक से भरे श्रीमद्भागवत के लेख पर सन्देह कभी न उठाते ॥

(किञ्च) लक्षणा से यों भी जाना जाता है कि कृष्णावतार द्वापर के अन्त और कलियुग के आरम्भ में हुआ है। यह अट्ठाईसवां कलियुग है, इस के पहिले सत्ताईस कलियुग होचुके हैं। इस कलियुगके पहिले भी शुद्ध सत्व गुण प्रधान माया विशिष्ट परमात्मा सत्ताईस वार कृष्णावतार हुए हैं। ब्रह्मा स्वरूप भी सत्ताईस वार हुये, किसी युगके ब्रह्मा योगसिद्धि रहित थे, किसी युग में योगसिद्धि सहित थे, यद्यपि श्रीकृष्ण जी विष्णुके अवतार थे तथापि (विष्लृ) (व्याप्तौ) इस धातु से विष्णु शब्द सिद्ध होता है, (वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरञ्जगत् स विष्णुः) अभिप्राय यह कि माया विशिष्ट व्यापक परमात्मा ही विष्णु शब्दका वाच्य है। यद्यपि वाल्मीकीयरामायण में चतुर्भुज व्यक्ति का नाम विष्णु है, तथापि रूपक से माया शक्ति रूपी

चार भुजा हैं, शक्तिरूपी शंख चक्र गदा पद्म आयुध हैं. सतोगुण युत शक्ति रूपी क्षीरसागर है. रजोगुण शक्तिरूपी शेषनाग है। (श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०) अर्थात् शक्तिरूपी शोभा और लक्ष्मी विष्णु की दो स्त्रियां हैं । शक्तिरूपी मुकुट और शक्तिरूपी नाभि है, शक्तिरूपी नाभि ही से चतुर्मुख ब्रह्मा का प्रादुर्भाव है क्योंकि—

यत्पुरुषंव्यदधुःकतिधा० परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते०

इत्यादि वेद और उपनिषद्के प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि परमात्मा की अनेक प्रकारकी शक्तियां हैं। भागवत के पूर्वोक्त लेख सर्वथा निर्दोषहैं ॥

आर्य्यसमाजी कहते हैं किसी पुराण में लिखा है कि विष्णु के केश से श्री कृष्ण जी उपजे हैं, कहीं लिखा है कि कृष्णजी विष्णुके अंश थे, पूर्वापर विरोधसे दोनों लेख मिथ्या हैं। आर्य्यसमाजियोंकी यह शङ्का भी असङ्गत है, क्योंकि किसी युगमें विष्णुके शक्तिरूपी केशसे किसी युगमें विष्णु के अंशसे श्रीकृष्ण जी का प्रादुर्भाव हुआ है। युगोंके भेदसे कृष्णावतारके होने में विरोध नहीं आसक्ता। किंच) मुख्य सिद्धान्त तो यह है कि पूर्व हम- ने वेदादि प्रमाणोंसे मायाविशिष्ट परमात्मा ही को विष्णु शब्द का वाच्य सिद्ध किया है, और प्रकाशित कर दिया है कि विष्णु परमात्मा की अनेक प्रकार की शक्तियां हैं। विष्णु परमात्मा के आर्य्यसमाजियों जैसे केश नहीं किन्तु परमात्मा के शक्ति रूपी केश हैं। शक्तिरूपी ही विष्णु परमात्माके अंश हैं। जीवोंके अधिष्ठानानुसार विष्णु परमात्माको जगत् रचनाका संक- ल्प होता है। संकल्प ही से नाम रूप और क्रियात्मक जगत् का दर्शन हो जाता है। फिर भक्तोंके भक्ति रूपी और दुष्टों के दुष्टता रूपी निमित्त कारण से विष्णु परमात्माको संकल्प होता है कि मैं राम कृष्णादि नाम युक्त अवतार धरकर भक्तोंकी रक्षा करूं और दुष्टों को दण्ड देऊं। इस संकल्प ही से विष्णु परमात्मा अवतार धारण कर दर्शन देता है। शुद्ध सत्वगुण प्र- धान माया शक्ति रूपी अंश अथवा वालका परिणाम राम कृष्णादि नामवाले अवतार शरीरोंको विष्णु परमात्मा धारण कर लेता है। उससे भी पुराण निर्दोष हैं ॥

आर्य्यसमाजी कहते हैं कि वेदांती लोग जीवेश्वर जगतको मिथ्या क- हते हैं, उससे रामकृष्णादि अवतार भी मिथ्या होंगे, उससे वेदांतियों का बौद्धमत का शून्यवाद सिद्ध होगा । आर्य्यसमाजियोंकी यह शंका भी अ-

संगत है क्योंकि वेदान्ती लोग निराकार निर्विकार नित्यमुक्त नित्यशुद्ध ब्रह्म चेतन ही को त्रिकाल अबाध नित्य मानते हैं। माया युक्त चेतनको ईश्वर और अविद्या युक्त चेतनको वेदान्ती जीव कहते हैं। जैसे स्वप्नके जीवेश्वर जगत् मिथ्या हैं वैसे ही जाग्रत के जीवेश्वर जगत् मिथ्या हैं, यह बात युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुकी है। यदि आर्य्यसमाजियोंमें शक्ति है तो युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से इस वेदान्त सिद्धान्तको खण्डन कर दिखावें, यदि शक्ति नहीं है तो मौन साध कर बैठें। शुद्ध ब्रह्मचेतन जिस को कि वेदान्ती लोग निराकार निर्विकार सजातीय विजातीय स्वगतभेदसे रहित मानते हैं। वही शुद्ध ब्रह्म चेतन ही जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति निर्विकल्प समाधि में स्वप्रकाश स्वरूप से एकरस भान होता है। जीवेश्वर जगत् का उन शुद्ध ब्रह्म चेतन में परमार्थ से सर्वथा सर्वदा अत्यन्ताभाव है। इसी सर्वोत्तम वेदान्त सिद्धान्तका नाम वेदान्ती लोगोंने दृष्टि सृष्टिवाद, एक जीववाद, अजसवाद, अजातवादादि नामोंसे वर्णन किया है। इस सत्य सिद्धान्तको शून्य वाद वर्णन करना आर्य्यसमाजियोंका सर्वथा पागलपन है, उस से भी पुराण निर्दोष हैं। दृष्टिसृष्टिवाद आत्मपुराणमें विशेष वर्णन किया है अष्टादश पुराणोंमें जो आत्मपुराण है उस में दृष्टि सृष्टिवाद नहीं, किन्तु उपपुराण आत्मपुराण ही में दृष्टिसृष्टिवाद का विशेष वर्णन है॥

(सत्य० आवृत्ति ३ समुल्लास ११) दयानन्द का लेख है कि भागवतमें लिखा है विष्णु की नाभि से कमल कमल से ब्रह्मा ब्रह्माके दहिनेपगके अंगूठेसे स्वायंभुव मनु उपजा, और बायें पैरके अंगूठेसे शत रूपा राणी उपजी, इन गप्पोंसे पुराण मिथ्या हैं। दयानन्द वा आर्य्यसमाजियोंकी यह शंका भी मिथ्या है। क्योंकि ब्रह्मा जी के दहिने पैर के अंगूठ से स्वायंभुव मनुकी तथा बायें पैरके अंगूठे से शत रूपा राणीकी उत्पत्ति का कथन सर्वथा नास्ति है। सत्यार्थप्रकाश का लेख गप्प है, पुराण सर्वथा निर्दोष हैं, क्योंकि (संवत्सरो वै ब्रह्मा) यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है, सर्व शक्तिमान् ईश्वर विष्णु है, शक्ति रूपी विष्णुकी नाभि है, उस से पंची करण रूपी कमल उपजा है, उस कमल से संवत्सर रूपी, ब्रह्मा उपजा है, अथवा उपनिषद्कारोंकी रीतिसे, सर्वशक्तिमान् ईश्वर ही शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान माया शक्ति रूपी नाभि का परिणाम ब्रह्मा नामवाले शरीरको धारण करता है। शक्ति रूपी उस ब्रह्मा के चार मुख और शक्ति रूपी चार भुजा हैं, उस से भी पुराण निर्दोष हैं॥

आर्य्यसमाजी प्रश्न करते हैं कि ऐसे ब्रह्मा का हंस कौन था है, और उसकी सावित्री स्त्री कौन है, तो उत्तर यह कि सतोगुण रूपी ब्रह्मा का हंस है, शक्ति रूपी ब्रह्मा जी की सावित्री स्त्री है किंच--संवत् १९४१ में हम मेरठ में गये थे, और आर्य्यसमाज में उतरे थे, वहां एक ज्योतिस्वरूप नाम वाले आर्य्यसमाजके सेक्रेटरी थे उन ने हमें एक किताब दी थी, उस किताब का नाम सतमत निरूपण था, वह किताब बनारस में रहने वाले पादरी पोलट साहिब की बनाई हुई थी, उस किताबमें अष्टादश पुराणादि ग्रन्थों की झूठी निन्दा थी, सिक्रेटरी ने हम से कहा कि दयानन्द को भी हम ने यही किताब दी थी, इसी को देखकर दयानन्द ने पुराणोंका खंडन किया है। उस किताब को देखकर हमने जाना कि दयानन्द गुप्त ईसाई था, खैर जो हो ॥

(सत्यार्थप्रकाश आवृत्ति ७ समुल्लास ११) वहां लिखा है कि—

ज्ञानंपरमगुह्यंमे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यंतदङ्गञ्च गृहाणगदितंमया ॥

इसके भाष्य में दयानन्द का वर्णन है कि जब विज्ञानयुक्त उक्त श्लोक में ज्ञान कहा तो परमशब्द ज्ञान का विशेषण रखना व्यर्थ है। और गुह्य विशेषण होने से रहस्य शब्द भी पुनरुक्त दोष करके ग्रस्त है। बाबा जी दयानन्द का यह लेख भी सर्वथा लाल बुझक्कड़ों का तमाशा है। क्योंकि (हर्षे कर्षे आमर्षेपुन तथा दीनता उक्त। स्तुति निन्दा वाद में दोष नहीं पुनरुक्त) अर्थात् हर्ष १ खेंचना २ क्रोध ३ दीनता ४ स्तुति ५ निन्दा ६ सुब्राहिता ७ इन सात स्थानों में पुनरुक्त दोष नहीं आसक्ता। भागवतके मूल श्लोक में भागवत की स्तुति है, उस से स्तुति वाचक श्लोक पुनरुक्त दोषसे रहित है ऋग्वेद भाष्य भूमिका वेदोत्पत्ति प्रकरण में दयानन्द ने भी ज्ञान विज्ञान दोनों शब्द भिन्नार्थ बोधक लिखे हैं। प्रकरण में ज्ञान शब्द से परोक्ष ज्ञान और विज्ञान शब्दसे अपरोक्ष ज्ञान लिया जाता है। प्रकरण और लक्षणा से परम शब्द सर्वशक्तिमान् परमात्मा का वाचक है। (सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म) इत्यादि परमात्मा के बोधक अवान्तर वाक्योंसे परमात्मा का परोक्ष ज्ञान होता है (तत्वमसि) इत्यादि महावाक्यों से (अहंब्रह्मास्मि) ऐसा अपरोक्ष ज्ञान होता है। यद्यपि दयानन्द की रीति से उक्त वाक्य वेद के नहीं और उन वाक्योंका नाम महावाक्य भी नहीं, तथापि ऋषि मुनि प्रणीत ग्रन्थों के प्रमाणोंसे पूर्वोक्त वाक्य वेद के हैं। क्योंकि ऋषिमुनियों ने

ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद नाम से वर्णन किया है, इस का विशेष निर्णय ... मण्डन व्याख्यान में कहा है, शङ्कराचार्यादि जो कि दयानन्दके ... हो चुके हैं उन्हीं ने उक्त वाक्यों को महावाक्य कहा है न मानें तो (सत्या० समुल्ला०) सातवेंका लेख भी मिथ्या होगा क्योंकि वहां दयानन्द ने (इत्यपिनिगमोभवति, इतिब्राह्मणम्) इस पाणिनीय सूत्र के भाष्य में कहा है कि मंत्र भाग और ब्राह्मण भाग। अब विचारना चाहिये कि भाग एक वेद के हैं, वा नहीं; सिद्धान्त यह कि दयानन्द के लेख से ही एक वेदके मंत्र और ब्राह्मण यह दो भाग सिद्ध होते हैं ॥

(७सत्या० समुल्लास ४) (ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यम्) इस गीता वचनके भाष्य में भी ज्ञान और विज्ञान शब्द के भिन्न २ अर्थ किये हैं, उससे भागवत के मूल श्लोक में पुनरुक्त दोष नहीं आसक्ता। (संकल्प) का अर्थ उत्पत्ति और (विकल्प) का अर्थ प्रलय करने से भी दयानन्द विद्वान् सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि संकल्प विकल्प मन का नाम है, न मानें तो दयानन्दका लेख भी निष्फल प्रवृत्तिका जनक होगा। क्योंकि (७ सत्या०समुल्लास९) दयानन्द ने संकल्प विकल्प ही का नाम मन कहा है ॥

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाउपासनाप्रकरण) (प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः)

इस योग सूत्रके भाष्य में बावा जी ने विकल्प शब्द को सन्देह वाचक कहा है (किंच) वेदान्त का सिद्धान्त है कि अर्थ पुनरुक्त होता है, शब्द पुनरुक्त नहीं हो सकता। उससे भी भागवतके मूल श्लोक में पुनरुक्त दोष नहीं हो सकता किन्तु भागवत के मूल श्लोक सर्वथा निर्दोष हैं। दयानन्द कृत ग्रन्थोंमें अनेक पुनरुक्त दोष आते हैं, आर्यसमाजियों को चाहिये कि पहिले दयानन्दोक्त पुनरुक्त दोष की निगरानी करें ॥

देखिये (सायं सायं०) (प्रातः प्रातः०) इन मन्त्रों में दयानन्द ने दो दो शब्दों का सत्यार्थप्रकाश में एक ही अर्थ किया है, उस से दयानन्दोक्त अर्थ पुनरुक्त दोष से ग्रस्त हो सकता है। यदि और भी समालोचना की जावे तो (७ सत्या० समुल्लास २) (दशरात्रेण शुद्ध्यति) इस मनु वाक्यके भाष्यमें श्लोकस्थ रात्रि शब्द का अर्थ दयानन्द ने दिन किया है सो रात्रि शब्द का दिन अर्थ किसी कोषसे भी सिद्ध नहीं हो सकता। किन्तु रात्रिको दिन जानना जानवरों की लीला है, उससे दयानन्द ही दोषी हो सकता है, भागवत सर्वथा निर्दोष है ॥

(सन् १८७५ का सत्या० समुल्लास ११) (यावती सिकताभूमौ यावन्तश्चन्द्रतारकाः) इस श्लोकके भाष्यमें दयानन्द ने कहा है कि जितने पृथिवी में परमाणु और जितने आकाश में चन्द्रमा तारे तथा जितनी वृष्टि की बून्दें हैं उतनी गौओं का दान राजा नृग ने दिया। इस को लिखकर दयानन्द कहता है कि यह झूठ है क्योंकि एक गौ दो तीन हाथ जमीन को रोक लेती है, इतनी गौयें खड़ी होने के लिये ज़मीन ही इतनी बड़ी सिद्ध नहीं हो सकती, दयानन्द का यह लेख भी मिथ्या है। क्योंकि ब्रह्मचर्य से पूर्व राजाओं की आयु बड़ी होती थी, न मानें तो (७ सत्या० समुल्लास ३) दयानन्द ने ब्रह्मचर्य से ४०० वर्ष की आयु का होना तो लिख ही दिया है। परन्तु भारतवर्षके राजा योगी होते थे, योगविद्या से हजारों वर्षोंकी आयु हो जाती थी अखण्ड भरके राज्ययुक्त राजा का नाम चक्रवर्ती होता था, पृथ्वी तो तब भी यही थी जो कि अब है परन्तु लक्षणा और भागवत के लेख यथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी यही सिद्धान्त सिद्ध होता है। जैसे कि प्रयाग हरद्वारादि तीर्थों पर पण्डे लोग एक गाय खड़ी कर रखते हैं। लाखों क्रोड़ों यात्री आते हैं, दाता यात्री गोदान करते हैं, पण्डे लोग रुपैये ही दाता से लेते जाते हैं। एक ही दिन में कई लाख गौएं दान हो जाती हैं, वैसा ही राजा नृग के चक्रवर्ती राज्यभर की गौएं भी दिनभर में कई करोड़ दान हो सकती हैं। हजारों वर्षकी आयुमें इतनी गौयें दान हो सकती हैं कि जैसे चन्द्रतारका वा वृष्टि विन्दु अथवा पृथिवी के कणों की संख्या नहीं हो सकती वैसे राजा नृग की आयुभर में चक्रवर्ती राज्यके गोदानकी संख्या भी जीव को नहीं आ सकती। भागवत ही में लिखा है कि एक दिन की दान दी हुई गौ दूसरे दिन दूसरे ब्राह्मण को दान दी गई थी, इस लेख से भी यही सिद्ध होता है कि नृगराजा के कोष से ब्राह्मणों को गौओंका दाम मिल जाता था, वेही गौएं दूसरे दिन दान दी जाती थीं, इस तरीके से असंख्यात् गौओंका दान हो सकता है। भागवतका लेख निर्दोष है। आर्यसमाजी कहते हैं कि इतनी गौओं के दान से नृग राजा किरड़े की योनि में क्यों गया तो उत्तर यह है कि पहिले अधिक विद्वान् ब्राह्मण होते थे। वर, शाप देना योग की शक्ति है, राजा नृग ने जो असंख्यात गौओं का दान दिया था, उससे उसका अन्तःकरण शुद्ध था क्योंकि संसार संबन्धि कामनाओं से निष्काम होकर कर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होजाता है यह वेदांत का सिद्धान्त है। जब ब्राह्मणके शाप से राजा नृगने गिरगिट का जन्म पाया था तो पूर्व जन्मके निष्काम कर्मों से उसका अन्तःकरण शुद्ध था उसीसे कृष्ण

परमात्मा ने उसे प्राणों से रहित कर दिया। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरोंके अभिमानसे रहित कर कृष्ण परमात्मा ने उसे निराकार निर्विकार सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित निरावरण स्वरूप दर्शा दिया, उसको मोक्ष पद में प्राप्त कर दिया था ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि शाप देने वाला ब्राह्मण जब आत्मज्ञानी था, तो वह शाप नहीं दे सकता था, क्योंकि शाप क्रोध से होता है आत्मज्ञानी में क्रोध का अत्यन्ताभाव है। आर्यसमाजियों की यह शंका भी अविद्या मूलक है, क्योंकि वर, शाप आत्मज्ञानका फल नहीं, किन्तु वर शाप योग शक्तिका फल है। केवल आत्मज्ञानी वर शाप नहीं दे सक्ता किन्तु योग शक्ति युक्त आत्मज्ञानी ही आभासरूप से वर, शाप देसक्ता है मन्द तीव्र प्रारब्ध पर ही वर, शाप लग सकते हैं। तीव्रतर प्रारब्ध पर वर, शाप की भी दाल नहीं गलसक्ती, यह वेदान्तका सिद्धान्त है, उससे भी भागवत निर्दोष है।

आर्य समाजी कहते हैं कि पुराणों में एक दूसरे सम्प्रदाय की मालाकी निन्दा करी है, जैसे कि—

यस्याङ्गेनास्तिरुद्राक्ष एकोऽपिबहुपुण्यदः।
तस्यजन्मनिरर्थंस्यात् त्रिपुंड्ररहितंयदि ॥

इत्यादि श्लोक शिवपुराण में लिखे हैं ॥

काष्ठमालाधरश्चैव सद्यश्चाण्डालउच्यते।
ऊर्ध्वपुंड्रधरश्चैव विनाशंव्रजतिध्रुवम् ॥

इसके विरुद्ध वैष्णव—

रुद्राक्षधारणेनैव नरकंप्राप्नुयाद्ध्रुवम्।
शालग्रामसहस्राणां शिवलिङ्गशतस्यच ॥
द्वादशकोटिविप्राणां तत्फलंश्वपचवैष्णवे।
विप्राद्विषड्गुणयुतादरविंदनाभ पादारविंदविमुखाच्छ्वपचंवरिष्ठम् ॥
अभाग्यंतस्यदेशस्य तुलसीयत्रनास्तिवै।
अभाग्यंतच्छरीरस्य तुलसीयत्रनास्तिह ॥

इत्यादि श्लोकों में एक दूसरे संप्रदाय की माला की निन्दा है, उस से पुराण ठीक नहीं, आर्यसमाजियों की यह शंका भी अज्ञान मूलक है।

क्योंकि वेदान्त की रीतिसे इसका उत्तर यह है कि माला चाहे किसी प्रकार की भी हो वह बुरी नहीं किन्तु मनुष्य बुरा हो सक्ता है । दुष्ट कर्म करने वाला मनुष्य कैसी भी माला पहिरे तो वह माला निष्फल है । श्रेष्ठ कर्म करने वाले की माला सर्व श्रेष्ठ है । इस से भी पुराण निर्दोष हैं ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि शिवपुराण में वैष्णवोंके मन्दिर का प्रसाद खाना बुरा कहा है । और विष्णुपुराणमें शैवोंके मन्दिरका प्रसाद खाना बुरा कहा है, इससे पुराण ठीक नहीं आर्यसमाजियोंकी-यह शंका भी असंगत है क्योंकि प्रकरण और लक्षणावृत्ति से सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि जो श्रद्धाभक्ति से प्रसाद लेगा और खावेगा वह चाहे शैव हो चाहे वैष्णव हो सर्वथा सर्वोत्तम है वह प्रसाद चाहे किसी मन्दिर का भी हो और जो श्रद्धाभक्ति से रहित होकर प्रसाद लेकर खावेगा वह प्रसाद खाने वाला अवश्य पापी होगा परन्तु प्रसाद सर्वथा निर्दोष है, इससे भी पुराण निर्दोष हैं ॥ (किंच)—

हरिरूपीमहादेवो लिंगरूपीजनार्दनः ।
ईषदप्यन्तरंनास्ति भेदकृन्नरकंव्रजेत् ॥

यह नारदीय पुराणका वचन है ।

वेदबाह्येनमार्गेण पूजयन्तिजनार्दनम् ।
निन्दन्तिशङ्करंमोहात्पाखण्डोपहताजनाः ॥
ब्रह्माणंकेशवंरुद्रं भेदभावेनमोहिताः ।
पश्यन्त्येकंनजानन्ति पाखण्डोपहताजनाः ।

इत्यादि स्कन्दपुराणके वचन हैं, वेदान्तरीतिसे इनका यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि विष्णु शिवादि शब्दोंका शुद्ध ब्रह्मचेतन एक लक्ष्यार्थ है । तथा विष्णु शिवादि शब्दोंका वाच्यार्थ सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक ईश्वर भी एक है । किन्तु विष्णु शिव आदि शब्दोंके व्यष्टि शरीर विशिष्ट ही भिन्न २ अर्थ हैं सो सम्प्रदायोंके भेदसे हैं । बाधसमानाधिकरण से वह भी शुद्ध ब्रह्म से अभिन्न हैं । उनमें भेद मानने वाला मनुष्य पापी होता है उससे भी पुराण निर्दोष हैं ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि भागवतमें लिखा है कि माता यशोदा कृष्ण जी को बांधने लगीं, परन्तु कृष्ण जी बंधन में न आए, यह भागवत का गपोड़ा है आर्यसमाजियों की यह शंका भी अविद्या मूलक है । क्योंकि श्री-

कृष्ण जी मुक्त, वा सिद्ध योगी थे युंजान योगीमें भी बन्धनका अभाव हो जाता है। तो युक्त योगी श्रीकृष्ण में शंका करना केवल लड़कपन है। उससे भी पुराण निर्दोष हैं। आर्यसमाजी कहते हैं कि भागवतमें लिखा है कि कृष्ण जी के मुख में यशोदाने त्रिलोकी देखी ऐसी गप्पोंसे पुराण झूठे हैं। आर्य समाजियोंकी यह शंका भी असङ्गत है। क्योंकि कृष्ण परमात्मा के मुख में त्रिलोकी का दीखना असंभव नहीं है। आर्य कहते हैं कि त्रिलोकी के नर नारी कृष्ण के मुख ही में मैला मूत्र फिरते होंगे। आर्योंकी यह शङ्का भी अज्ञानमूलक है क्योंकि कृष्ण परमात्मा ने मायामय जगत् रचना का मुख में दर्शन कराया था।

यदि न मानें तो आर्यमत में निराकार भी सर्वाधार है। सर्व जगत् का मैला मूत्र निराकार ही में है॥

(किंच) इस समय अंगरेजी राज्यमें ऐसे २ कलायन्त्र देखे जाते हैं कि जिनके भीतर त्रिलोकी का दर्शन हो जाता है, तो सर्वशक्तिमान् परमात्मा कृष्ण जीके मुखमें त्रिलोकीका दर्शन सुनकर गन्दा सन्देह करना आर्यसमाजियोंकी सर्वथा अविद्या है। (किञ्च) वेदान्तकी रीतिसे यह बात अनुभव सिद्ध है कि जब जीव सो जाता है तो शरीरके भीतर जीव का मन पुरीतत नाम नाड़ीमें प्रवेश करता है। उसी नाड़ीमें स्वप्नावी जीवको त्रिलोकी का दर्शन होता है। जब साधारण जीव के भीतर त्रिलोकी का दर्शन होता है, तो परमात्मा कृष्णके मुखमें त्रिलोकीका दर्शन होने में आर्यसमाजियों का सन्देह सर्वथा अज्ञान मूलक है। छोटे दर्पणमें भी त्रिलोकीका दर्शन अनुभव सिद्ध है, श्री कृष्ण नाम वाला शरीर शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया का परिणाम है उसमें त्रिलोकी के दर्शन का होना कुछ भी असंभव नहीं।—

(किंच) परमात्मामें त्रिलोकी का होना आर्यसमाजी भी मानते हैं, यही सिद्धान्त दयानन्दका है, बल्कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना प्रकरण में दयानन्दही का लेख है कि समाधिके समय हृदय देशस्थ परमात्मामें जीव मग्न हो जाता है, उसी परमात्मामें चन्द्र सूर्यादि जगत् ठहरा है, हृदय देश ही परमात्माका नगर है, दयानन्दके इस लेखसे आर्यसमाजियों के हृदय में स्थित परमात्मामें भी त्रिलोकीका ठहरना सिद्ध होता है। फिर त्रिलोकीके नर नारी न जाने मैला मूत्र कहां फिरते होंगे॥

(किंच) एक हुज्जत बाज ने एक हिन्दु के पास हुज्जतबाजी करी थी कि जब कृष्ण जी के मुख में माता यशोदा को त्रिलोकी का दर्शन हुआ था

तो उस समय मैला मूत्र कहां फिरा जाता था, हिन्दु ने इसका उत्तर दिया कि उस समय आपके बाप दादा भी त्रिलोकी ही में थे, उन का मुख बंपुलिस था उसीमें मैला मूत्र डाला जाता था। इस बातको सुनकर हुज्जतबाज चला गया अभिप्राय यह कि ऐसी गन्दी शङ्काओंके समाधान भी ऐसे ही होते रहते हैं। भागवतके लेख पर कोई भी दोष नहीं आ सक्ता ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणोंमें लिखा है कि पृथिवी शेषनाग पर है, कहीं बैल पर, कहीं कूर्म पर, पृथिवीका होना कहा है। उस से पुराणों में झूठी हलफदरोगी है। आर्यसमाजियों की यह शंका भी मिथ्या है। क्योंकि लक्षणा वृत्ति और वेदान्त की युक्ति से सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि जगत् स्थिति प्रकरण में शेष वृषभ कूर्मादि नाम उसी परमात्मा के हैं। जो कि सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक है, उसी परमात्मा पर पृथिवी है, परमात्मा सूक्ष्म है, पृथिवी स्थूल है, परमात्मा व्यापक और पृथिवी व्याप्य है। उससे पुराणोंमें दरोगहलफी का होना सर्वथा असंभव है ॥

(किंच) एक हुज्जतबाज ने किसी कट्टर हिन्दुसे पूछा था कि पुराणों में लिखा है पृथिवी शेष पर है, भला शेष किस पर है। कट्टर हिन्दुने कहा शेष हाथी पर है हुज्जत बाजने पूछा हाथी किस पर है कट्टर हिन्दुने कहा हाथी कूर्म पर है, हुज्जतबाजने पूछा कूर्म किस पर है, कट्टर हिन्दु ने कहा कि कूर्म बैल पर है, हुज्जतबाजने पूछा बैल किस पर है, कट्टर हिन्दुने कहा कि बैल मेरे पिता पर है, हुज्जतबाज ने पूछा आप का पिता किस पर है कट्टर हिन्दुने कहा कि हमारा पिता तेरी माता पर है, इसको सुनकर हुज्जतबाज लज्जित हुआ और उसी दिनसे हुज्जतबाजीका करना उसने छोड़ दिया। अभिप्राय यह कि वाहियात शङ्काओं का परिणाम भी वाहियात समाधान से निकलता है। हमारा सिद्धान्त तो यह है कि ऐसे सवाल और जबाब करने वाले दोनों ही वितण्डावादी हैं। यदि पहिले कोई ऐसा सवाल न करे तो जवाब भी वैसा कोई न दे। अपराधी सवाल करने वाला ही सिद्ध होता है। भागवतादि पुराणों में कोई भी दोष नहीं आसक्ता ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि भागवत में लिखा है कि हिरण्याक्षने पृथिवी को चटाई के समान लपेट लिया और शिर के नीचे धर के सो गया, परमात्मा ने वाराह का रूप धरकर, पृथिवी को निकाल लिया, ऐसी गप्प से भागवत पुराण मिथ्या है। इसी लेख को दयानन्द ने भी (७ सत्या० समुल्लास ११) में लिखा है, परंतु दयानन्दोक्त आर्यसमाजियोंका यह लेख भी

सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि भागवतमें ऐसा कहीं भी नहीं लिखा कि हिरण्याक्ष पृथिवीको चटाईके समान लपेट कर सिरहाने धरके सो गया किन्तु भागवत में इतना लिखा है कि जगदुत्पत्ति के समय जलमें से वराह भगवान् ने पृथिवीको निकाला। एक असुर के साथ वराह भगवान् का संग्रामहो पड़ा सो वराह भगवान् का होना वेद और शतपथ ब्राह्मणोक्त है। अवतार मण्डन के व्याख्यान में हम ने वराह अवतार को वर्णन कर दिया है। उससे भी भागवत निर्दोष है॥ (७ सत्या०समुल्लास ११) दयानन्दका लेख है कि हिरण्यकशिपुने प्रह्लाद को मारने के लिये आगी में लोहे का खंभा तपवाया, और प्रह्लाद से कहा कि जो तेरा राम सच्चा है, तो तू इस खंभे को पकड़ने से न जलेगा, प्रह्लाद खंभे को पकड़ने चला और मन में डरा कि कहीं जल न जाऊं तब नारायण ने खंभे पर चीटियोंकी पंक्ती चलादी, प्रह्लाद का डर दूर हो गया खंभे को जा पकड़ा खंभा ठण्डा हो गया, ऐसी २ गप्प लिखनेसे भागवत पुराण मिथ्या है। दयानन्दकी यह शंका भी निर्मूल है क्योंकि पूर्वोक्त कथाका नाम तक भी भागवत में नहीं, उस से दयानन्द का लेख तो मिथ्या हो सक्ता है भागवत पुराण मिथ्या नहीं। हां इतनी कथा तो भागवत में देखी जाती है कि हिरण्यकशिपु ने गुस्सेमें आकर खंभे पर मुष्टिका प्रहार किया खंभा फट गया, उसमें से नृसिंह अवतार होकर ईश्वर ने हिरण्यकशिपु को मार डाला नृसिंह अवतार का विशेष वर्णन हम ने अवतार मण्डन के व्याख्यान में दर्शा दिया है उससे भी भागवतादि पुराण सर्वथा निर्दोष हैं॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणोंमें लिखा है कि चन्द्रमा ने अपने वृहस्पति गुरू की स्त्री को भोग लिया, उससे बुध पुत्र उत्पन्न हुआ, इन्द्र फैसला करने वाला बना, इत्यादि मिथ्या असंभव कथाओंसे पुराण मिथ्या हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी वेदान्त ग्रन्थोंके अज्ञानसे है। क्योंकि (अग्नइन्द्रोवृहस्पतिः०) इस ऋग्वेद के प्रमाण से प्रकरण में वृहस्पति नाम परमात्मा का है व्याकरण के अनुसार भी वृहस्पति शब्द का वाच्य ब्रह्मचेतन ही है। जैसे कि (पा रक्षणे) इस धातु से (डतिप्रत्यय) वृहत्के तकार का लोप होकर सुडागम हो जाने से वृहस्पति शब्द सिद्ध होता है॥

(यो वृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स वृहस्पतिः)

इस व्युत्पत्ति को कोई भी आर्यसमाजी खण्डन नहीं कर सकता । वेदान्त के ग्रन्थों में लिखा है कि बुद्धि का देवता बृहस्पति है । प्रकरण में सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि बुद्ध्यवच्छिन्न ब्रह्मचेतन ही बुद्धिका देवता है, रूपकालङ्कार से ब्रह्मचेतन स्वरूप बृहस्पति देवता की बुद्धिरूपी स्त्री है, वेदान्त के सिद्धान्त में अन्तःकरण की निश्चयात्मक वृत्ति ही बुद्धि है । यहां मायाविशिष्ट ब्रह्मचेतन ही बृहस्पति देवता शब्द का वाच्य है । निघण्टु कोष में माया नाम भी बुद्धि ही का स्पष्ट है ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।

इस यजुर्वेद के प्रमाण से प्रकरण में मायाविशिष्ट ब्रह्मचेतन ही का नाम चन्द्रमा है ॥

यदि कहो कि ब्रह्मचेतन का तो मन ही नहीं तो उत्तर यह कि (चन्द्रमा मनसोजातः०) इस यजुर्वेद के मन्त्र प्रमाण से ब्रह्मचेतन का मन भी सिद्ध हो चुका है । यद्यपि वेदान्त के ग्रन्थों में शुद्ध ब्रह्मचेतन में नाम रूप भेद सर्वथा नास्ति है । तथापि माया विशिष्ट ब्रह्मचेतन में उपाधिकृत भेद है । प्रकरण में मन और बुद्धि जीव चेतन के समझने चाहिये ईश्वर के नहीं धातुपाठ में (बुध) इस धातु का अर्थ ज्ञान भी है, जब जीव चेतन चतुष्टय साधन संपन्न होता है, तो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से वेदान्त का श्रवण करता है । उससे जीव के अन्तःकरण में से प्रमाणगत संशय नष्ट हो जाते हैं । मनन से प्रमेयगत संशय का अत्यन्ताभाव हो जाता है । निदिध्यासन से विपरीत भावना का सत्यानाश हो जाता है । वार वार ब्रह्माभ्यास का करना ही रूपक से समागम है । मनोऽवच्छिन्न ब्रह्मचेतन ही प्रकरण में चन्द्रमा शब्द का वाच्य है, मनोऽवच्छिन्न ब्रह्मचेतन जो कि चन्द्रमा शब्द का वाच्य है, उसका सत्तास्फूर्ति ही वीर्य प्रदान है, उससे अन्तःकरण की निश्चयात्मक बुद्धिरूपी जो कि बुद्ध्यवच्छिन्न ब्रह्मचेतन रूपी बृहस्पति देवता की स्त्री है, उससे बुध अर्थात् ज्ञानरूपी पुत्र उत्पन्न होता है । (इन्द्रोमायाभिः०) इस वेद प्रमाणसे इस्तावच्छिन्न ब्रह्मचेतन ही प्रकरणमें इन्द्र देवता शब्द का वाच्य है, वही बुध अर्थात् ज्ञानरूपी पुत्र का न्याय करने वाला है । उससे आर्यसमाजियों ही का विचार मिथ्या है, पुराण मिथ्या नहीं हो सकते ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणों में रामकृष्णादि को ईश्वर कहा है, उससे ईश्वर अनेक सिद्ध होते हैं अनेक ईश्वर मानने से वेदसे विरोध होगा

क्योंकि वेदमें ईश्वर एक ही कहा है आर्यसमाजियोंकी यह शंका भी असङ्गत है। क्योंकि पुराणोंमें एकही ईश्वर माना है, अनेक ईश्वर तो दयानन्दोक्त ग्रन्थोंसे सिद्ध होते हैं। जैसे कि ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकामें दयानन्दने राजा को भी ईश्वर कहा है। राजाको ईश्वरत्व होनेमें महाभाष्य का प्रमाण भी दिया है। पुराणोंमें अनेक ईश्वर नहीं माने, हां वाचस्पति वेदान्तीने अनेक ईश्वर भी माने हैं। परन्तु वाचस्पति मिश्रने भी जीव कल्पित ईश्वर ही अनेक माने हैं। वाचस्पति मिश्र को छोड़कर अनेक वेदान्ती आचार्यों ने वेदोक्त एक ही माया विशिष्ट ईश्वर माना है। वह एक ही शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान मायाविशिष्ट ईश्वर भक्तों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने के लिये अनेक रामकृष्णादि नाम वाले अवतार शरीरों को धारण कर लेता है। उस से पुराणोक्त ईश्वर अनेक सिद्ध नहीं हो सकते। सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास में भी अनेक ईश्वर लिखे हैं। यजुर्वेदमें लिखा है कि एकही योगी असंख्यात शरीरों को एक ही समय धारण कर लेता है। असंख्यात शरीरों के कार्य भी भिन्न २ कर सकता है। जब जीवचेतन योगी भी अनेक शरीरों को धारण कर अनेक नहीं होता, किन्तु एक ही रहता है तो सर्वशक्ति विशिष्ट ईश्वर चेतन में सन्देह करना भी आर्यसमाजियोंकी अत्यन्त भूल है।

किन्तु एक ही मायाविशिष्ट ईश्वर रामकृष्णादि नाम वाले शरीरों को धारण कर लेता है। उन्हीं शरीरों से भक्तों की रक्षा और दुष्टोंको दण्ड कर देता है। उन शरीरोंका माया में अदर्शन कर लेता है। यदि और भी सूक्ष्म विचार किया जावे तो जैसे चुम्बक धातु में चेष्टा का सर्वथा अत्यन्ताभाव है, किन्तु चुम्बक की सन्निधि से लोहा ही नानाभांति की चेष्टा करता है। वैसे ही शुद्ध ब्रह्मचेतनमें परमार्थसे सर्वप्रकार की चेष्टा का अत्यन्ताभाव है किन्तु शुद्ध ब्रह्मचेतनकी सन्निधि ही से माया के परिणाम रामकृष्णादि नाम वाले शरीरों में भक्तों की रक्षा का करना और दुष्टों को दण्ड देना आदि चेष्टा होती हैं। यही अष्टादश पुराणों का सिद्धान्त है। यदि और भी सूक्ष्म विचार किया जावे तो जैसे समुद्र जलस्थ तरङ्गादि जल स्वरूप ही हैं वैसे ही रामकृष्णादि नाम वाले शरीर भी शुद्ध ब्रह्मस्वरूप ही हैं परन्तु रामकृष्णादि नाम वाले शरीर बाध समानाधिकरण से शुद्ध ब्रह्मचेतन स्वरूप हैं। यद्यपि ऐसे तो रामकृष्णादि से भिन्न शरीर भी शुद्ध ब्रह्मस्वरूप हैं तथापि बाधसमानाधिकरण ही से सर्वशरीर शुद्ध ब्रह्मचेतन स्वरूप हैं परन्तु मुख्य समानाधिकरण से रामकृष्णादि नाम वाले शरीरों का अन्य शरीरों से अत्यन्त भेद है। पुराणोक्त ईश्वर एक ही है उससे भी पुराण निर्दोष हैं॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

अष्टादशपुराणमण्डन।

व्याख्यान नं० २७

सर्वश्रोतागणोंको विदित हो कि इस व्याख्यानमें पुराणोंका विशेष मण्डन होगा,

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणों में लिखा है कि समुद्र मन्थनके समय विष्णु जी मोहिनी रूप बने थे. उनको देख रुद्रजी का वीर्य गिर गया, समुद्रमें घोड़ा हाथी लक्ष्मी आदि १४ रत्न निकले, उससे हाथी घोड़ा आदि लक्ष्मीके भ्राता और विष्णु जी के साले हुए। ऐसी कथाओंसे पुराण मिथ्या हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका अविद्यान्धकार से भरी है। क्योंकि उक्त कथा में रूपकालंकार भरा है। तथाहि (यज्ञोविष्णुरुरुक्रमः०) (इदंविष्णुर्विचक्रमे०) इत्यादि वेदमन्त्र प्रमाणोंसे मायाविशिष्ट ईश्वरका नाम विष्णु है। (यज्ञो वै विष्णुः) इस शतपथ ब्राह्मणके प्रमाणसे भी व्यापक मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वर ही विष्णु शब्दका वाच्य सिद्ध हो चुका है। (यत्पुरुषं व्यदधुःकतिधा०) इस यजुर्वेदके प्रमाणसे ईश्वरकी मायाशक्ति नाना प्रकार की है। प्रकरणमें सजातीय विजातीय स्वगतभेद से रहित ब्रह्मस्वरूप सागर है सत्यासत्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय मायाशक्ति है। मायाविशिष्ट चेतन ही ईश्वर है केवल चेतन शुद्ध ब्रह्म है, विराट्रूपी मेरु है, सत्त्व रजस् तमस् तीन गुणों की साम्यावस्था शेषनाग है, दैवी संपदा के गुण देवता, और आसुरी संपदाके गुण असुर हैं, अहंकार शक्ति विशिष्ट चेतन रुद्र है। प्रकरण में पाद शक्ति विशिष्ट चेतन विष्णु है। यहां समष्टि अहंकारावच्छिन्न रुद्र और समष्टि पादावच्छिन्न विष्णु समझना चाहिये॥

(श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्नय०) इस यजुर्वेदके मन्त्रमें शक्तिरूपी लक्ष्मी है। (वृषेववाजी०) इस ऋग्वेदके मन्त्रमें शक्तिरूपी घोड़ा है। मायाशक्ति विशिष्ट ब्रह्मचेतन ही, इनका अभिन्न निमित्तोपादानकारण है। मायाशक्ति भागमें उपादानत्व और केवल चेतन भाग में निमित्तत्व है। केवल चेतन भाग में भी सत्तास्फूर्तिरूपी निमित्त कारणता है। वस्तुतः केवल चेतन शुद्ध ब्रह्म है प्रकरण में रूपक ही से शुद्ध ब्रह्म को सागर की उपमा दी है। उसी में मायाशक्ति के कार्य लक्ष्मी घोड़ा हाथी आदि १४ रत्नों का प्रादुर्भाव हुआ है। क्योंकि (णश) अदर्शने (जनी प्रादुर्भावे) इन धातुपाठ के

प्रमाणों से लक्ष्मी आदि १४ रत्नों का माया में दर्शन अदर्शन हो सिद्ध हो चुका है। १४ रत्न किसी के रज वीर्य से नहीं उपजे, किन्तु इन का साक्षात् माया उपादान कारण है। उस से हाथी घोड़ा आदि रत्न लक्ष्मी के भाई और विष्णु परमात्मा के साले नहीं हो सक्ते। न मानें तो दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्यमें भी जगत्के आदि में ईश्वर पिता और प्रकृति मातासे नर नारी आदि पदार्थ उपजे हैं। ऐसे लिखा है गधे घोड़े बैल बकरी बकरे भालू बन्दर गधे ऊंट गीदड़ कुत्ते आदि सबके सब भ्राता भगिनी होने चाहिये ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में दयानन्द ने खुद भी लक्ष्मी को ईश्वर की जोरू लिखा है।

मायाशक्तिरूपी उपादान कारणसे उपजी ही लक्ष्मी सिद्ध होती है, उस से आर्यमत वाले ईश्वरके भी हाथी घोड़े बकरा बकरी ऊंट गधे कीड़े मकोड़े वगैरः साले होने चाहिये और ईश्वर की जोरू लक्ष्मी उन की भगिनी होनी चाहिये (शुद्धमपापविद्धम्०) इस वेदप्रमाण से प्रकरण में यही सिद्ध होता है कि शुद्ध सत्वगुण प्रधान मायाशक्ति ही मोहनी है। अहंकाराभिमानी रुद्रदेवता चेतन ही मायारूपी मोहनी पर लम्पट है। पञ्चीकरणरूपी वीर्यसे सर्व नाम रूप और क्रियात्मक प्रपञ्च को रचता है। आर्यसमाजियों को अविद्यान्धकार से कुछ भी नहीं सूझता पुराण सर्वथा निर्दोष हैं। आर्यसमाजी कहते हैं कि मायारूपी मोहनी पर जब चेतन ही लम्पट है तो निर्विकारता की हानि होगी। यदि चेतनको शुद्ध निर्विकार मानें तो पूर्वोक्त रूपक मिथ्या होगा इस शंका का समाधान यह है कि केवल शुद्ध ब्रह्मचेतन ही निर्विकार है। मायाविशिष्ट निर्विकार नहीं, यह वेदान्तका सिद्धान्त है। वस्तुतः जितने विकार हैं सो सर्व मायाशक्ति ही में हैं, चेतन में भी आवरण शक्ति नहीं, हां विक्षेप शक्ति है, आवरण शक्ति का तिरोभाव कर शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया ही प्रकरण में विक्षेप शक्तिका वाच्य है। उस से आर्यसमाजियोंका उक्त विकल्प भी सर्वथा मिथ्या है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणों में लिखा है कि प्रजापति ने अपनी सरस्वती लड़कीको पकड़ लिया, इन अश्लील बातोंसे पुराण व्यभिचार मूलक हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी सर्वथा मिथ्या है क्योंकि—

प्रजापतिश्चरतिगर्भेअन्तरजायमानोबहुधाविजायते।

इस यजुर्वेद प्रमाण और (संवत्सरो वै प्रजापतिः) इस शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से प्रजापति नाम मायाविशिष्ट परमात्मा का है। (संवत्सरो वै ब्रह्मा) इस गोपथ ब्राह्मणके प्रमाण से ब्रह्मा नाम भी प्रकरण में माया विशिष्ट परमात्माका है (वृहि वृद्धौ) इस धातुसे ब्रह्मा शब्द सिद्ध होता है॥

(योऽखिलं जगन्निर्माणेन वृंहति वर्द्धयति स ब्रह्मा)

इस व्याकरणके नियम से भी परमात्माका नाम ब्रह्मा है॥

(आत्मा वै प्रजापतिः) (अतति सर्वत्र व्याप्नोतीति आत्मा) (प्रजापतिर्वै ब्रह्मा)

इत्यादि प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि मायाशक्ति विशिष्ट परमात्मा ही का नाम ब्रह्मा है। पूर्वोक्त प्रमाणों से प्रकरणमें संवत्सर, प्रजापति, ब्रह्मा, इत्यादि शब्द एक अर्थ के वाचक ही सिद्ध हो चुके हैं। रूपकालंकार से सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि सृष्टिके आदिमें माया विशिष्ट परमात्मा ही ब्रह्मा नाम वाले शरीर को धारण करता है जैसे योगसिद्धि सम्पन्न योगी संकल्प ही से शरीर को धारण कर लेता और त्याग भी देता है। वैसे ही माया विशिष्ट परमात्मा रूपी ब्रह्म मायाशक्तिरूपी उपादान कारण से ब्रह्मा नाम वाले शरीर का प्रादुर्भाव करता है। (कविर्मनीषी०) इस वेद मंत्र प्रमाणसे जाना जाता है कि वह परमात्मा कवि नाम वेदोंका कर्त्ता होनेके कारण महान् विद्वान् है (वाग्वै सरस्वती) यह शतपथ ब्राह्मण का मन्त्र है (सहोजसः सरस्वती) यह यजुर्वेदका मन्त्र है। इत्यादि प्रमाणोंसे साफ विदित होता है कि प्रकरणमें वेदवाणी ही का नाम सरस्वती है। वेदान्तके ग्रन्थोंमें परा १ पश्यन्ती २ मध्यमा ३ वैखरी ४ भेदों से चार प्रकार की वाणी लिखी है। सिद्धान्त यह है कि सृष्टिके आदि में मायाविशिष्ट परमात्मा ब्रह्मा नाम वाले व्यष्टि शरीरका संकल्प ही से प्रादुर्भाव करता है। इसी शरीर से परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, चार प्रकार की वेदवाणी रूपी सरस्वतीजी को उपजाता है। चारो हाथों में पकड़ कर वेदवाणी रूपी सरस्वतीजी का प्रचार करता है॥

यदि आर्यसमाजी कहें कि ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में दयानन्दने सूर्य का नाम प्रजापति कहा है और उषा को सूर्य की कन्या लिखा है इस से आपका अर्थ ठीक नहीं तो उत्तर यह है कि दयानन्द का अर्थ प्रकरण के

विरुद्ध होनेके कारण सर्वथा असंगत है। प्रकरण में सूर्य नाम भी ईश्वर ही का हो सकता है। प्रजापति नाम भी ईश्वरका है। यह वेदका सिद्धान्त है। यद्यपि दयानन्दने भी रूपकालंकार ही दर्शाया है, तथापि दयानन्द का रूपक भी प्रकारण के विरुद्ध है। किन्तु पूर्वोक्त जो कि वेद और शत-पथादि प्रमाणोंसे जो अर्थ हमने किया है युक्तिसे भी वही अर्थ सिद्ध होता है। ब्रह्मा जी को लड़की के साथ समागम करनेका लेख लिखना दयानन्द का सर्वथा अज्ञान और हठ है। उस से भी पुराण सर्वथा निर्दोष हैं॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणोंमें लिखा है कि शिवलिङ्ग का आदि अन्त न पाया शिवलिङ्ग से ब्रह्माण्ड भर गया उससे शिवलिङ्ग के बारह टुकड़े हो गये। ऐसी २ असंभव कथाओंसे पुराण मिथ्या हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी सर्वथा भ्रान्तिमूलक है। क्योंकि इस कथा में भी रूपका-लङ्कार है (तथाहि) (शिवु कल्याणे) इस धातुसे शिव शब्द सिद्ध होता है (स रुद्रस्स शिवः) इस कैवल्योपनिषद्के मन्त्र से भी प्रकरण में शिव नाम मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वरका है (शिवस्य परमेश्वरस्याऽयं भक्तः शैवः) इस व्युत्पत्ति से भी प्रकरण में शिव नाम परमेश्वरका और परमेश्वरके भक्तों का नाम शैव है (नमः शिवायच शिवतरायच०) इस यजुर्वेदके मन्त्र से भी शिव नाम मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वर ही का है (ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः०) इस यजुर्वेदके मन्त्रसे जाना जाता है कि मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वरने जगत्के आदि में पंचीकरणरूपी वीर्य से विराट्रूपी लिंग को सृजा है। प्रकरणमें लिङ्ग नाम चिन्हका है, न मानें तो दयानन्द का लेख भी मिथ्या होगा क्योंकि (७ सत्या० समुल्लास १२) दयानन्दने भी ई-श्वरके ज्ञानके लिये जगत् रचना को लिङ्ग ही लिखा है। वहां आर्यसमाजी भी लिङ्गका अर्थ चिन्ह ही करते हैं। वैसे रूपक से जगदुत्पत्ति प्रकरण में हमने भी विराट्को लिङ्ग माना है। विराट्रूपी लिङ्ग नाम चिन्हके ज्ञान से जगत् कर्त्ता शिव परमात्मा का भी ज्ञान होता है। रूपकसे रजोगुणरूपी ब्रह्मा और सत्वगुणरूपी विष्णु विराट्रूपी लिङ्गका आदि अन्त नहीं पासके विराट् ही के १२ भाग १२ महीने हैं वही लिङ्गके १२ टुकड़े हैं। अथवा (ना-नाज्ञानत्वात् ऋतूनां नानासूर्यत्वम्) इस तैत्तिरीयारण्यकके प्रमाणसे ज्ञात होता है कि १२ मास के सूर्य भी १२ हैं सो विराट् हीके भाग सूर्य हैं वही १२ टुकड़े हैं। जिस मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वररूपी शिवने विराट्रूपी लिङ्ग को सृजा है, उसी शिवके चिन्तन करनेके लिये शिवालयों में १२ लिङ्ग नाम

चिन्ह रक्खे हैं । (द्वादशादित्या०) इस शतपथके प्रमाण से भी १२ सूर्य सिद्ध हो चुके हैं (भग एव भगवान्) इस यजुर्वेद के मन्त्र से प्रकरणमें भग नाम भी सर्वैश्वर्य्यवान् शिव परमात्मा ही का है उस से भी दयानन्द वा आर्यसमाजियों की शङ्का असङ्गत है । पुराणों में दोष नहीं आ सकता ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणों में लिखा है कि अदिति से पक्षी सर्पादि उपजे और दिति आदिसे गधे कुत्ते हाथी घोड़े ऊंटादि उत्पन्न हुए ऐसी मिथ्या बातों से पुराण मिथ्या हैं । आर्यसमाजियों की यह शंका भी अज्ञानमूलक है क्योंकि—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्मातासपितासपुत्र:० ।

इस यजुर्वेद के मन्त्र में प्रथम अदिति शब्द मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वर का वाचक है, द्वितीय अदिति शब्द केवल मायाशक्ति का वाचक है । मायाप्रकृति दोनों शब्द पर्यायवाची हैं । दयानन्द ने उक्त मन्त्र के भाष्य में ईश्वर को पिता और प्रकृति को माता कहा है ॥

तस्मादश्वाअजायन्त येकेचोभयादत: ।
गावोहजज्ञिरेतस्मात्तस्माज्जाताअजावय: ॥

इस यजुर्वेद के मन्त्र से साफ सिद्ध होता है कि मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वर ही से हाथी घोड़े गधे ऊंट गाय बैल बकरा बकरी आदि उत्पन्न हुए हैं । सर्पादि की उत्पत्ति भी वेद में उसी ईश्वर से कथन करी है । प्रकरणमें मायाशक्ति उपादान और चेतन निमित्त कारण सिद्ध होता है । पदार्थ विद्या से जाना जाता है कि मायाशक्ति ही में नाना प्रकारके चित्र विचित्र आकार सदैव रहते हैं । और ब्रह्मचेतन में उनका भान होता है ब्रह्मचेतनकी सत्तास्फूर्त्ति निमित्त कारणसे मायामें चित्र विचित्र जगत् रचना का दर्शन अदर्शन ही होता है । अभाव से भाव अथवा भाव से अभाव नहीं होता ॥

कश्यपोवैकूर्मस्तस्मादाहु:सर्वा:प्रजा:काश्यप्यइति ।

इस शतपथ ब्राह्मण के मन्त्र प्रमाण से कश्यप नाम भी मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वर ही का सिद्ध होता है भागवत में भी अदिति शब्द का अर्थ मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वर देहली दीपन्याय से हो सकता है । मायाशक्तिरूप अदिति से हाथी घोड़े गधे कुत्ते व्याघ्र सर्पादि की उत्पत्ति में शंकाका सर्वथा असंभव है । भागवत के कर्त्ता व्यास जी को दयानन्दने लालबुझक्कड़ कहा है

वह दोष दयानन्द पर ही आ सकता है। व्यास जी अथवा व्यास जी कृत भागवतपुराण सर्वथा निर्दोष है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि देवी भागवत में लिखा है कि एक श्रीपुर में रहने वाली देवी ने जगत रचना की इच्छासे दोनों हाथ घिसे उस से हाथों में छाला हो गया, छालेमें से ब्रह्मा विष्णु शिव उपजे, और सावित्री पार्वती लक्ष्मी तीन स्त्रियां उपजीं, ब्रह्मा विष्णु शिव तीनोंने क्रम से सावित्री पार्वती और लक्ष्मी से विवाह कर लिया। फिर दयानन्द ने लिखा है कि वाहरे वाह मा से विवाह न किया, किन्तु भगिनी से कर लिया, दयानन्द की यह शंका भी सर्वथा सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि देवी भागवत में इस कथा का नाम तक भी नहीं देखा जाता। प्रत्युत देवी भागवतमें प्रकृति ही को देवी कहा है जैसे कि—

प्रकृष्टवाचकःप्रश्च कृतिश्चसृष्टिवाचकः

सृष्टौप्रकृष्टायादेवी प्रकृतिःसाप्रकीर्त्तिता ॥४॥

दे० स्कं० ९ अ० १ श्लो० ४।

(प्र) अर्थात् विशेष नाम रूप और क्रियात्मक प्रपंच का (कृति) अर्थात् जो उपादान कारण देवी है वही प्रकृति है॥ (किंच) उसीका श्लो० ५—

गुणेसत्त्वेप्रकृष्टेच प्रशब्दोवर्त्ततेश्रुतः।

मध्यमेरजसीकृश्च तिशब्दस्तमसिस्मृतः॥

इस श्लोकका सिद्धान्त यह कि (प्र) अर्थात् सत्त्वगुण, (कृ) अर्थात् रजोगुण, (ति) अर्थात् तमोगुण. अभिप्राय यह कि सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंसे युक्त जो देवी है, वह प्रकृति है (किंच) उसी का श्लोक ६—

त्रिगुणात्मकस्वरूपाया साचशक्तिसमन्विता।

प्रधानासृष्टियादेवी प्रकृतिःसाप्रकीर्तिता॥

इसका अभिप्राय यह कि त्रिगुणात्मक ईश्वर की माया शक्ति ही प्रधान वा देवी अथवा प्रकृति आदि शब्दों का वाच्य है॥ उसी का श्लो० ७—

प्रथमेवर्त्ततेप्रश्च कृतिश्चसृष्टिवाचकः।

सृष्टेरादौयादेवी प्रकृतिःसाप्रकीर्तिता॥

इस का सिद्धान्त यह कि (प्र) अर्थात् प्रथम जगदुत्पत्ति के समय (कृति) अर्थात् स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च का जो उपादान कारण है उसीके वाचक देवी प्रकृति आदि शब्द हैं॥

शन्नोदेवीरभिष्टय आपोभवन्तुपीतयेशंयोरभि०

इस यजुर्वेद के मंत्रका भी प्रकरणमें यही अर्थ सिद्ध होता है कि सुख-स्वरूप व्यापक ईश्वर की माया शक्ति ही देवी है। (कालीश्वरशक्तिः) इस वाक्यमें भी काली शब्दसे ईश्वरकी माया शक्ति काही ग्रहण है।

अपाणिपादोजवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुःसशृणोत्यकर्णः०

इस श्वेताश्वतर उपनिषद् के मंत्र को दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में लिखा है। और उसके भाष्य में ईश्वर के शक्तिरूपी हाथ पैरादि वर्णन किये हैं। (श्रिञ् सेवायाम्) इस धातुसे श्री शब्द सिद्ध होता है—

यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः।

यहां श्री नाम भी ईश्वर ही का है उसी ईश्वरको जगत्के पहिले जगद्रचना की इच्छा हुई॥

(तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति)

इस छान्दग्योपनिषद् के मंत्र में माया शक्ति रूपी देवी विशिष्ट ईश्वर को जगत् रचने की इच्छा अत्यन्त स्पष्ट है दयानन्दने जो देवी भागवतकी बहाने बाजी करी है, सो बाबा जी की भूल है। क्योंकि देवी भागवत में उस कथाका नाम तक भी नहीं देखा जाता। यदि आर्यसमाजी कहें कि देवीभागवत से भिन्न किसी दूसरे ग्रन्थ में वह कथा लिखी होगी, तो उत्तर यह कि दयानन्दने देवीभागवत के नामसे उस कथा को क्यों लिखा? क्या इस पर भी दयानन्द को सत्यवादी सिद्ध कर सक्ते हैं? किन्तु कभी नहीं। हां बाबाजी दयानन्द ऐसे मिथ्या लेखोंसे मिथ्यावादी तो अवश्य सिद्ध हैं॥

किसी नगर में गुरू चेला रहते थे चेले को मिथ्या बोलने की आदत थी, एक रोज चेलेसे गुरू ने कहा कि झूठ को छोड़ दीजिये, चेलेने कहा कि अब मैं झूठ को छोड़ने जाता हूं, चेला जी तीन महीने तक सैल सपाटा करने को निकल गये तीन महीने के बाद फिर गुरू जी के पास आये गुरू

ने पूछा अरे तूने झूंठ को छोड़ा वा नहीं, चेले ने कहा कि मैंने झूंठ को छोड़ दिया, गुरूने पूछा कौनसी रीति से तूने झूंठको छोड़ा, चेलेने कहा कि जब मैं झूंठको छोड़ने चला तो झूंठ ने हाथी का रूप धारण कर लिया मैं डरकर भागा, झूंठने भी मेरा पीछा किया, मैं मारा डरका एक चनेके खेत में जा घुसा, झूंठ भी हाथी बना हुआ उसी खेतमें आ घुसा, मैं चनेके वृक्ष पर चढ़ा और झूंठ भी हाथी रूप हुआ उसी चने के वृक्ष पर चढ़ा मैं उस चनेके वृक्षकी डाली २ पर कूदने लगा, परन्तु वह झूंठरूपी हाथी उस चने के वृक्ष के पत्ते २ पर कूदने लगा, मैं मारा डरका चनेके वृक्ष पर से नीचे एक कमण्डल में आ गिरा, झूंठ भी हाथी बना हुआ उसी कमण्डलमें आ गिरा, उस कमण्डलकी टोंटीसे मैं निकल कर भागा और भागकर आपके पास आया हूं, झूंठ हाथी हुआ टोंटी से निकलने लगा परन्तु टोंटीमें उस की पूंछ फंस गई, वहां ही झूंठ मर गया है। इसको सुनकर गुरू बोला अरे तुम्हारा सत्यानाश हो जावे तूं तो पहिलेसे भी बड़ा झूंठ बोलने वाला हो गया ॥

वैसे ही दयानन्द का तमाशा-बनाया तो सत्यार्थप्रकाश परन्तु मिथ्या अर्थात् झूंठे लेख लिखता चला गया, यदि दयानन्दोक्त देवीकी कथा देवीभागवत से भिन्न किसी ग्रन्थ में हो तो वहां रूपकालंकार है। जैसे कि ईश्वरकी शक्ति रूपी देवी है आवरण विक्षेप शक्ति रूपी हाथ हैं। जगत् रचना का संकल्परूपी छाला है, सतो गुणरूपी विष्णु रजोगुण रूपी ब्रह्मा, तमोगुण रूपी शिव हैं, सतोगुणस्य शक्ति सावित्री रजोगुणस्य शक्ति लक्ष्मी, तमोगुणस्य शक्ति पार्वती हैं।

(किंच) (देवीभागवत) (अकारोभगवान्ब्रह्माप्युकारःस्याद्धरिःस्वयम् । मकारोभगवान्रुद्रोपि०)

इस देवी भागवतके श्लोकसे सिद्ध होता है कि (ओम्) शब्दस्य अकार, उकार, मकार, ये तीन अक्षर हैं, रूपकसे अकार ब्रह्मा १ उकार विष्णु २ मकार ३ शिव हैं। अकार अक्षरस्य शक्ति सावित्री उकारस्य शक्ति लक्ष्मी मकार अक्षरस्य शक्ति पार्वती है। अभिप्राय यह कि ईश्वर की माया शक्तिरूपी देवीके आवरण विक्षेप शक्तिरूपी हाथोंमें जो जगत् रचना का संकल्प रूपी छाला है उसमें से अकार ब्रह्मा उकार विष्णु मकार शिव उत्पन्न हुए रूपकसे तीन वर्णस्थ तीन शक्तियां तथा सावित्री लक्ष्मी पार्वती

तीन स्त्रियां क्रमसे उपजीं, लक्षण से जाना जाता है कि ओम् यह शब्द आकाश का गुण है, प्रत्यक्ष प्रमाण और पदार्थ विद्या से ज्ञात होता है कि माया शक्ति रूपी देवी से शब्दगुणयुक्त आकाश उपजा और आकाश से वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथिवी, पांच सूक्ष्म भूत उपजे, पांच सूक्ष्म भूतोंसे पांच स्थूल भूत और पञ्चीकरण उपजे, उस से नाम रूप और क्रियात्मक सर्व प्रपञ्चका प्रादुर्भाव हुआ ॥

यद्यपि वेदमें जगत् रचना का संकल्प ईश्वरको करना कहा है माया शक्ति देवी को नहीं, तथापि ईश्वरके स्वरूप में जो चेतन है उस में तो संकल्प का होना सर्वथा असंभव है, किन्तु संकल्प माया शक्ति ही में होताहै यदि कहो कि माया शक्ति जड़ है जड़ में संकल्प नहीं हो सक्ता, तो उत्तर यह कि जैसे चुम्बककी समीपता से लोहे में चेष्टा होती है, चुम्बकमें चेष्टा का अत्यन्ताभाव है। वैसे ही चेतनकी समीपतासे माया शक्ति ही में जगत् रचना की संकल्प रूपी चेष्टाका संभव है। चेतन में उस चेष्टा का सर्वथा अत्यन्ताभाव है। यदि कहो कि वेद में ईश्वर को जगत् का कर्त्ता कहा है, उससे विरोध होगा, तो उत्तर यह कि माया शक्तियुक्त चेतन का नाम ईश्वर है। माया शक्ति के विना केवल चेतन का नाम ईश्वर नहीं हो सक्ता और न केवल चेतन जगत् का कर्त्ता है, माया शक्ति जगत्का उपादान और केवल चेतन निमित्त कारण है, सत्तास्फूर्त्तिके विना केवल चेतन में निमित्त कारणता का भी सर्वथा असंभव है। माया शक्ति की उपादान कारणता ही की दृष्टि से देवी को जगत् का कर्त्ता कहा है। यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो जैसे स्वप्न जगत् रचना का निमित्त कारण नींद है। वैसे ही जाग्रत् जगत् रचना का निमित्त कारण मायाशक्ति है। चेतन न तो किसीका उपादान और न किसी का निमित्त कारण सिद्ध होता है किन्तु जाग्रत् स्वप्न की जगत् रचना के उपादान और निमित्त कारण भिन्न २ अनुभव सिद्ध हैं। जैसे कि घटका उपादान कारण मृत्तिका और घटका निमित्तकारण कुलाल है, ऐसे हीं सर्वत्र जान लेना चाहिये। यदि दयानन्दमें कुछ भी विद्या होती तो ब्रह्मा विष्णु शिव को बहिन से विवाह करने वाले कभी न लिखता। ऐसा लिखनेसे दयानन्द सर्वथा विद्याहीन सिद्ध होता है पुराण निर्दोष हैं ॥

आर्य समाजी कहते हैं कि गणेशपुराणमें लिखा है कि गणेश जी से जगत उपजा, सूर्यपुराण में सूर्य से, देवीपुराण में देवी से, शिवपुराण में शिव से, विष्णुपुराण में विष्णुसे, जगत् उपजा लिखा है। परस्पर विरोध होने

के कारण पुराण झूठे हैं। इसी शंका को सत्यार्थप्रकाश के समुल्लास ११ में दयानन्द ने लिखा है, परन्तु यह शंका भी सर्वथा अज्ञान सूचक है। क्योंकि वेदान्त के ग्रन्थों से विद्वानों ने फैसला कर दिया है कि गणेशादि शब्दों का अर्थ प्रकरणके अनुसार होता है। न मानें तो दयानन्दका लेख भी मिथ्या होगा, क्योंकि सत्यार्थप्रकाशके प्रथम समुल्लास में बाबाजी ने भी इसी नियमको पुष्ट किया है (हे भृत्य त्वं सैन्धवमानय) इस उदाहरणको भी दयानन्दने लिख दिया है, खैर जो हो। हम वेदान्तकी साक्षी देकर दरशाते हैं कि गणेशपुराणादिमें जहां २ जगत् की उत्पत्ति का प्रकरण आता है, वहां २ गणेश सूर्य देवी शिव विष्णु इत्यादि नाम शुद्ध सत्व गुण प्रधान मायाशक्ति विशिष्ट ईश्वर चेतन के हैं। ईश्वर चेतन सर्वव्यापक है और जहां मन स्थिर करने का प्रकरण आता है, वहां गणेश सूर्य देवी शिव विष्णु इत्यादि नामों से व्यष्टि व्यक्तियोंका ग्रहण किया जाता है। सर्वव्यापक स्वरूप ईश्वर सूक्ष्म होनेके कारण ध्यान में नहीं आ सकता, किन्तु ध्यान में स्थूल आकार ही आ सकता है। यदि वेदान्त के ग्रन्थोंको दयानन्द अथवा आर्यसमाजी देख लेते, तो पुराणों पर दोष कभी न लगाते, किन्तु प्रकरणके अनुसार गणेशादि शब्दोंका अर्थ करते। उससे भी पुराण सर्वथा निर्दोष हैं॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणों में लिखा है कि एक जंगल में शिव जी हाथमें लिंग पकड़कर भ्रमण करते थे, पार्वती भी साथ थीं जंगलनिवासी ऋषियोंकी स्त्रियां लिंगका दर्शन कर लज्जित होने लगीं, ऋषि लोग भी लज्जित होने लगे, ऐसी २ कथाओंसे पुराण व्यभिचार सूचक हैं। आर्यसमाजियोंकी यह शंका भी मिथ्या है। क्योंकि इस कथामें भी रूपकालङ्कार है। संसाररूपी वन है, संवत्सररूपी लिंग नाम चिन्ह है, परमात्मारूपी शिव है उस ने शक्तिरूपी हाथों से संवत्सररूपी लिंग को पकड़ा है, अनिर्वाच्य मायारूपी पार्वती है, जीवोंकी निश्चयात्मक अन्तःकरण की वृत्तिरूपी बुद्धि स्त्रियां हैं, बुद्धयवच्छिन्न चेतनरूपी ऋषि हैं, संवत्सररूपी लिंग के द्वादशमास रूपी द्वादश भाग हैं, इस रूपकालङ्कार से भूल कर बाबा जी अथवा आर्यसमाजियों ने लिंग का अर्थ गुप्तांग समझ रक्खा है। परन्तु लक्षणा और प्रकरण में लिंग शब्द चिन्ह का वाचक है, अर्थात् संवत्सररूपी लिंग नाम चिन्हसे जगत्कर्त्ता परमात्मा शिवजी का जीवों को ज्ञान होता है। उस से भी पुराण निर्दोष हैं॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि किसी पुराण में त्रिपुण्ड्र ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि तिलकोंका खण्डन और किसी पुराणमें तिलकोंका मण्डन है, उमसे पुराण व्यासकृत नहीं हो सकते। आर्यसमाजियोंकी यह शंका भी अविद्यामूलक है। क्योंकि (न लिङ्गं धर्मकारणम्) इस मनुवचनसे जाना जाता है कि जब तक मनुष्य अपने अन्तःकरणमें से काम क्रोध लोभ मोहाऽहंकारादि दोषों को नहीं निकालता, तब तक बाहर के चिन्ह ऊर्ध्वपुण्ड्रत्रिपुण्ड्रादि सफल प्रवृत्ति के जनक नहीं हो सक्ते, जब अन्तःकरण में से काम क्रोधादि दोषोंको जीव निकाल देता है तो ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्रादि बाहर के लिंग नाम चिन्ह भी सफल हो जाते हैं। अभिप्राय यह कि बुरा भला जीव हो सक्ता है, और भले बुरे कर्म का सुख दुःख रूपी फल भी जीव ही भोग सक्ता है, ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्रतिलकादि चिन्ह बुरे भले नहीं हो सकते और न वे भले बुरे कर्म का फल सुख दुःख भोग सकते हैं। न मानें तो आर्यसमाजियों के शिखासूत्र भी बुरे होने चाहिये, क्योंकि जैसे आर्यसमाजियों के शिखासूत्र हैं वैसे हिन्दु लोग शिखासूत्र ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र भस्मादि को चिन्ह नहीं मानते किन्तु धर्म मानते हैं आर्यसमाजी शिखासूत्र को धर्म नहीं कहते किन्तु शिखासूत्र को विद्याका चिन्ह ही आर्यसमाजी कहते हैं। बहुत से आर्यसमाजी शिखासूत्र को विद्या का चिन्ह भी नहीं मानते जब उन से पूछा जाता है कि जब तुम भस्म ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलकादि को बुरा समझते हो। तो शिखासूत्र को आप धारण किस लिये करते हो। तो वे आर्यसमाजी उत्तर देते हैं कि जब कहीं जूता टूट जाय और गठवाने को तागा न मिले तो झट सूत्र तोड़कर जूता गठवा सकते हैं। ऐसे उत्तरसे निश्चय होता है कि आर्य लोग सूत्र को विद्या का चिन्ह भी नहीं मानते। भला सूत्र से तो जैसे कैसे जूता भी गांठा जा सकता है। पर शिखासे आर्यसमाजी क्या गंठवाते हैं।

(किंच) सत्यार्थप्रकाश के दशवें समुल्लास में दयानन्द का लेख है कि गर्मीमें शिखा मुंडवा डाले, क्योंकि शिखा रखनेसे गर्मी अधिक होती है उस से बुद्धि कम हो जाती है, दयानन्द के इस लेख से भी शिखा विद्या का चिन्ह नहीं हो सकता, सत्यार्थप्रकाश का समुल्लास ११ दयानन्दका लेख है कि शिखा सूत्र के न होने से मनुष्य ईसाई और मुसलमान के समान हो जाता है। परन्तु यह दयानन्दकी झूंठी दरोगहलफी है किंच दयानन्दकृत ग्रन्थों में जन्म से नववें वर्ष में शिखासूत्र का रखना कहा है उसी समय

विद्या का आरंभ कहा है और लिखा है कि २५ अथवा ४८ वर्ष तक विद्या पढ़े दयानन्द के इन लेखों से भी शिखा और सूत्र विद्याके चिन्ह सिद्ध नहीं हो सकते। क्योंकि ९ वर्ष की उमर तक तो आर्य बालकों ने विद्या का इमृतिहान ही कुछ नहीं दिया, किन्तु २५ अथवा ४८ वर्ष की उमर तक आर्य बालकोंका विद्या पढ़ने ही में समय नष्ट हो गया २५ अथवा ४८ वर्ष के पश्चात् आर्यमतमें शिखा और सूत्र विद्या के चिन्ह हो सकते हैं। यदि २५ वा ४८ वर्ष तक शिखा सूत्र को आर्यसमाजी न धारण करेंगे तो दयानन्द ने लिखा है कि शिखा सूत्र के बिना ईसाई मुसलमान के समान हो जाता है। इस लेखके विरोधी होना पड़ेगा। और जो २५ अथवा ४८ वर्षकी उमरके पहिले शिखा सूत्र को रक्खेंगे तो शिखा सूत्र विद्याके चिन्ह सिद्ध न होंगे। उभयपाशारज्जुन्याय से आर्यसमाजियोंका छूटना न होगा। दयानन्द कृत नवीन ग्रन्थों में यों भी लिखा है कि शिखासूत्रको त्याग के संन्यासी हो जावे। यदि इस लेखको ठीक मानें तो आर्यमत वाले संन्यासियोंमें विद्या के चिन्ह शिखा सूत्र नष्ट हो जावेंगे। उस से आर्यसमाज के संन्यासी विद्वान् नहीं जान पड़ेंगे। हिन्दुमतोक्त भस्मतिलकादि के धारण करनेमें कोई भी दोष नहीं आ सकता उससे भी पुराण निर्दोष हैं।

आर्यसमाजी कहते हैं कि विष्णु पुराण में लिखा है कि जो वैष्णव शिवजी का नाम जपता है वह पापी और शिवपुराण में कहा है कि जो शैव विष्णु का नाम जपता है वह पापी है। इस विरोध से पुराण मिथ्या हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी असंगत है। क्योंकि लक्षण तथा प्रकरण से निश्चय होता है कि जो श्रद्धा भक्ति के विना विष्णु आदि का नाम जपता है वही पुरुष पापी है चाहे वह विष्णुका भक्त हो अथवा शिव का भक्त हो, कोई भी क्यों न हो, अथवा जो मनुष्य शिव किम्वा विष्णु शब्दके वाच्य एक ईश्वर को निश्चय नहीं करता, किन्तु भेद बुद्धि रखकर शिवादि का नाम जपता है, वह चाहे वैष्णव हो चाहे शैव हो वही मनुष्य पापी है। क्योंकि विष्णु शिवादि एक परमात्मा के नाम हैं वह मायाशक्ति विशिष्ट एकही परमात्मा विष्णु शिव नाम वाले साकार शरीरोंको धारण करता है। विष्णु अथवा शिव नाम दोषी नहीं हो सकता किन्तु दोषी निर्दोषी जीव हो सकता है। उस से भी पुराण निर्दोष हैं।

(सत्या० ७ समुल्लास ११) दयानन्द का लेख है कि शिवपुराणमें शैवों ने शिवको परमेश्वर मानके विष्णु ब्रह्मा इन्द्र गणेश और सूर्यादि को उन के दास ठहराये वैष्णवों ने विष्णु पुराणादिमें विष्णुको परमात्मा माना है और शिव आदि को विष्णु के दास, देवी भागवत में देवी को परमेश्वरी और शिव विष्णु आदिको उसके किंकर बनाये गणेशखण्ड में गणेश को ईश्वर और शेष सब को दास बनाया भला यह बात इन संप्रदाई लोगोंकी नहीं तो किन की है एक मनुष्यके बनाने में ऐसी परस्पर विरुद्ध बात नहीं होती तो विद्वान् के बनाने में कभी नहीं आसकती इसमें एक बात का सच्ची मानें तो दूसरी झूंठी जो दूसरी को सच्ची मानें तो तीसरी झूंठी और जो तीसरीको सच्ची मानें तो अन्य सब झूंठी होती हैं। दयानन्दकी यह शंका भी अज्ञान और हठसे भरी है। यदि परस्पर विरोध से सर्व बातें झूंठी हैं तो दयानन्दकृत सर्व ग्रन्थ झूंठे हैं क्योंकि उन में एक भी बात विरोधके विना नहीं सिद्ध होती, किन्तु दयानन्दकृत ग्रन्थ ही विरोधरूप सिद्ध हो चुके हैं। पुराणों में विरोध नहीं सिद्ध होता, क्योंकि (हरयः शता-दश) इत्यादि वेद मन्त्रोंके प्रमाणों से जाना जाता है कि विष्णु शिव आदि ईश्वर के मुख्य दश अवतार हैं, उपासना प्रकरण में विष्णु शिव आदि ईश्वर के मुख्य दश अवतार हैं, उपासना प्रकरणमें विष्णु शिव आदि शब्द साकार व्यक्तियोंके वाचक हैं। क्योंकि उपासना नाम ध्यान का है। ध्यान साकार का ही हो सकता है। निराकारका ध्यान सर्वथा असंभव है, यद्यपि मायाशक्ति विशिष्ट सर्वव्यापक परमात्मा भी साकार है क्योंकि मायाशक्ति साकार पदार्थ है, यदि मायाशक्तिको निराकार कहें तो वह साकार जगत्का उपादान कारण न होगी तथापि माया का आकार अत्यन्त सूक्ष्म है, उस से मायाशक्ति विशिष्ट परमात्मा ध्यानगोचर नहीं हो सकता, किन्तु शुद्ध सत्वगुण प्रधान मायाशक्ति के परिणाम विष्णु शिव देवी गणेशादि नाम वाले आकार ही ध्यानगोचर अनुभव सिद्ध हैं ॥

जिस २ आकार में जिस २ भक्तका अधिक प्रेम है उस २ आकार ही में उस २ भक्तका मन स्थिर हो सकता है उस २ आकार के ध्यान से मन को स्थिर कर भक्त लोग उसी परमात्माका चिन्तन करते हैं, जो कि मायाशक्ति विशिष्ट सर्वव्यापक है। चाहे शिव नाम वाले, चाहे विष्णुनाम वाले, चाहे गणेशनाम वाले, चाहे देवीनाम वाले आकार का ध्यान करें, मुख्य करके प्र-

शंका उसी की होती है जो कि मायाशक्ति विशिष्ट व्यापक सूक्ष्म आकार युक्त परमात्मा है। दास स्वामी भाव भी स्थूल आकारों ही में अनुभव सिद्ध है। लक्षणा और प्रकरण से सिद्ध होता है कि पुराणों में निन्दा किसी की नहीं, किन्तु जिस आकार में जिस भक्तका अधिक प्रेम है, उस आकार हीमें भक्तका मन स्थिर होता है। उसी आकारको वह भक्त सर्वोत्तम जानता है। जैसे वैराग्य शतक में भर्तृहरि जीका वर्णन है कि हम ब्रह्मा शिव विष्णुको एक ब्रह्मरूप जानते हैं। तो भी हमारा विशेष प्रेम शिव जीमें ही है। यहां भर्तृहरि जीका यही सिद्धान्त ज्ञात होता है कि वह बाधसमानाधिकरण से ब्रह्मा विष्णु शिवको सजातीय विजातीय स्वगतभेद से रहित ब्रह्मस्वरूप जानते थे। और मुख्य समानाधिकरण से व्यष्टि आकार शिव में प्रेम लगाकर उस में मनको स्थिर करते थे, वैसे ही पुराणोंका सिद्धान्त समझना चाहिये। कि बाधसमानाधिकरण से शिव विष्णु आदि नाम सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित परमात्मा के हैं। और ध्यान प्रकरण में मुख्य समानाधिकरण से शिव विष्णु देवी गणेशादि नाम व्यष्टि स्थूल आकारों के हैं। पुराणोंका अभिप्राय किसीकी निन्दा में नहीं किन्तु किसी एक आकार में विश्वास कर भक्त लोग मनको स्थिर करें। पुराणोंका यही सिद्धान्त है (स माता स पिता स पुत्रः) इत्यादि वेदमन्त्रोंका भी लक्षणा और प्रकरण से यही सिद्धान्त पाया जाता है कि सर्व दोष रहित भक्तोंके प्रेमानुसार मायाशक्ति विशिष्ट परमात्मा माता पिता आदि वा पुत्रादि शरीरको भी धारण कर लेता है परन्तु वह शरीर परमात्मा का भौतिक नहीं होता किन्तु वह शरीर शुद्ध सत्वगुणप्रधान माया का परिणाम होता है। दास स्वामीभाव भी व्यष्टि स्थूल शरीर ही में होता है पुराणोंमें जितना उपदेश है वह सर्वथा अवित लक्षणावृत्तिसे प्रकरणानुसार सर्वोत्तम है। सत्संग रहित और सत्यशास्त्र के विचार शून्य हिन्दुसन्तान दयानन्दोक्त मिथ्या उपदेशजाल में चिड़िया के सदृश फंसकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं सो हिन्दुसन्तानों की अत्यन्त भूल है॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणोंमें लिखा है कि महावीरजी ने सूर्य को निगल लिया, फिर उगल दिया, इन मिथ्या बातोंसे पुराण मिथ्या हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी असंगत है, क्योंकि (महावीरस्यनग्नहुः) यह यजुर्वेदका वचन है॥

अथ मृत्पिण्डमादाय महावीरं करोति ।
तदेतत्प्रचरणीयं महावीरमाज्येत ॥

इत्यादि शतपथब्राह्मणके वचन हैं। इत्यादि प्रमाणोंसे प्रकरणानुसार महावीर नाम भी सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक ईश्वर का है, वही महावीर ईश्वर प्रलय के समय शक्तिरूपी मुख में सूर्यको निगल लेता है, फिर-

सूर्य्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

यह ऋग्वेदका वचन है, इत्यादि प्रमाणोंका प्रकरण में सिद्धान्त यह है कि जगदुत्पत्ति के समय पहिले शक्तिरूपी मुख ही से सूर्यको सर्वशक्तिमान् महावीर ईश्वरशक्तिरूपी मुख से उगल देता है। उपाधि भेद से शक्तिरूपी अञ्जनी और शक्तिविशिष्ट चेतन प्रकरण में शिव है, उससे भी पुराण निर्दोष हैं ॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणों में लिखा है कि अगस्तिमुनि ने समुद्र को पान कर लिया इत्यादि शब्दोंसे पुराण मिथ्या हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी अविद्यामूलक है क्योंकि प्रकरण में अगस्तिमुनि नाम भी सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् ईश्वर का है (परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते) इत्यादि प्रमाणों का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर की शक्ति अनेक प्रकार की है। शक्तिरूपी मुखसे अगस्तिमुनि संज्ञक ईश्वर समुद्रको पी जाता और शक्तिरूपी उपस्थ से समुद्र को ईश्वर भर देता है। उससे भी पुराण निर्दोष हैं। (किंच) उणादि कोष का पाद ४ सू० १८०—

(वसोस्तिः) तथा च भाष्यम् । अङ्गं वृक्षमस्यत्युत्पाटयति सा अगस्तिः मुनिर्वा तस्यापत्यमागस्त्यः ।

प्रकरणानुसार इस उणादिकोषके वचनका सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि मायाविशिष्ट सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् ईश्वर का नाम अगस्तिमुनि है। उसी से माया शक्तिका परिणाम अगस्ति मुनि नाम वाला शरीर है वही शक्ति रूपी मुखसे समुद्र को पी लेता और शक्ति रूपी उपस्थ से निकाल देता है। उस से भी पुराण निर्दोष हैं।

आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणों में लिखा है कि पृथुराजा ने शिकार के समय कमानके गोशे के साथ पहाड़ोंको बटोरकर इकट्ठे कर दिये हैं प्रियव्रत राजा के रथ के जो पहिये थे उन की लीकों के सात समुद्र बन गये,

ऐसी २ गप्पों से पुराण भिरया हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी अविद्यामूलक है क्योंकि प्रकरण में लक्षणावृत्तिसे पृथु मिनगत शब्दभी सर्वव्यापक ईश्वर के वाचक हैं पृथु शब्दका वाच्य ईश्वर ही शक्तिरूपी हाथ से पहाड़ोंके समवायी कारण परमाणु आदि को बटोर अर्थात् मिलाकर एकत्र करता है। शक्तिरूपी रथके सप्त समुद्रों को प्रकृति तथा महत्तत्त्व और पांच सूक्ष्म भूत रूपी पहियोंसे वही ईश्वर सप्तसागर रचता है। उससे भी पुराण सर्वथा निर्दोष हैं।

आर्यसमाजी कहते हैं कि शिवपुराण में त्रयोदशी तथा सोमवारादि के व्रत लिखे हैं आदित्य पुराणादि तथा निर्णयसिन्धु आदि में एकादश्यादि व्रत लिखे हैं। सो ठीक नहीं, एकादश्यादि व्रतोंके बताने वाले कसाई और निर्दयी थे इसी शंका को सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लासमें दयानन्दने भी वर्णन किया है। आर्यसमाजी वा दयानन्दकी यह शंकाभी अज्ञान और हठसे भरी है। क्योंकि वेदान्तके ग्रन्थोंका यह सिद्धान्त है कि विवेक वैराग्य षट्सम्पत्ति मुमुक्षुता इन चार साधनों की प्राप्ति से मनुष्य वेदान्त सुनने का अधिकारी होता है। इन चार साधनोंमें से षट्सम्पत्ति नाम छै साधनों की प्राप्तिका है। शम १ दम २ श्रद्धा ३ समाधान ४ उपराम ५ और तितिक्षा ये छै साधन हैं। इन छै साधनोंमें से क्षुधापिपासा के सहारने का नाम ही तितिक्षा है एकादश्यादि व्रत भी तितिक्षा ही में शामिल हैं। तितिक्षा मुक्ति का परम्परा साधन है। उससे एकादश्यादि व्रत भी मुक्तिके परम्परा साधन हैं। सत्यार्थप्रकाशके नवमें समुल्लासमें दयानन्दने भी तितिक्षाको मुक्ति का परम्परा साधन माना है। परन्तु तितिक्षा शब्दका अर्थ बाबाजी ने वेदान्त फिलासफी के विरुद्ध किया है सो बाबाजी दयानन्दकी अत्यन्त भूल है। संस्कारविधि केयज्ञोपवीतसंस्कारमें दयानन्दने स्वयं भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बालकों को तीन दिन उपवास अर्थात् व्रतों के रखनेकी आज्ञा दी है यदि व्रतोंके बताने वालोंको निर्दयी कसाई मानें तो दयानन्द भी व्रतों का बतलाने वाला था उस को भी वही पदवी मिलेगी।

(प्राजापत्यंनिरूप्येष्टिम्) इत्यादि श्लोकोंमें मनुजी ने प्राजापत्यादि व्रतका रखना वर्णन किया है ग्यारहवें अध्यायमें भी मनुजी ने नाना प्रकार के व्रतोंका रखना कहा है बाबाजी के इस रूलसे मनुजी भी कसाई निर्दयी हुए सन् १८७५ का छपा सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४ वहां दयानन्द ने विधवा स्त्री को भी चान्द्रायणादि व्रतों का रखना कहा है फिर आर्यसमाजी

दयानन्दको भी कसाई निर्दयी क्यों नहीं कहते ? वेदान्त सूत्रों में व्यासजी ने भी प्राजापत्य व्रतका समर्थन किया है। दयानन्द के लेखसे व्यास जी भी निर्दयी कसाई हुए। अथर्ववेद में भी प्राजापत्यादि व्रत रखनेकी आज्ञा है। बाबाजी के लेख से वेद के कर्त्ता ईश्वर भी निर्दयी हुए। दयानन्द अथवा दयानन्दके माता पिता भी व्रत रखते थे आर्यसमाजियों के माता पितादि भी व्रत रखते रखाते हैं दयानन्दोक्त कसाई निर्दयी खिताब उन सबोंको भी मिल चुके। वैद्य लोगोंका सिद्धान्त है कि मनुष्य को जब अजीर्ण हो तो एक दिन फांका कर देवे उससे हाजमा दुरुस्त हो जाता है यही लाभ एकादश्यादि व्रतों से भी होता है उस से बाबाजी वेदोंके उपवेद आयुर्वेद के भी पूरे शत्रु सिद्ध हुए।

(किंच) सत्यार्थप्रकाशके बारहवें समुल्लासमें दयानन्दका लेख है कि जो जैसा मनुष्य होता है वह प्रायः अपने ही सदृश दूसरेको समझता है। यदि आर्यसमाजी दयानन्द के इस रूल को सत्य मानें तो दयानन्दोक्त कसाई निर्दयी यह दोनों दोष रूपी पिशाच दयानन्द वा आर्यसमाजियों के गलेही में लपटते हैं। पुराणमत सर्वथा निर्दोष है। आर्यसमाजी कहते हैं कि पुराणों में लिखा है, विष्णु के पैर से गंगा निकली हैं फिर शिवजी के शिरः में गंगा गिरी थीं, वहां से गंगा पृथिवी पर आईं, गणेश शिवजी का पुत्र है, गणेश का शिर हाथी का है, चूहे पर गणेश बैठा है, ऐसी गप्पों से पुराण मिथ्या हैं। आर्यसमाजियों की यह शंका भी असंगत है। क्योंकि—

यत्पुरुषंव्यदधुःकतिधाव्यकल्पयन् ।

इस यजुर्वेदके मन्त्रका सिद्धान्त यह है कि ईश्वर में अनेक प्रकार की शक्ति है। प्रकरण में प्रकृति ही का नाम शक्ति है, वेदान्ती लोग माया भी उसीको कहते हैं, सिद्धान्त यह है कि ईश्वरके शक्तिरूपी पैरसे गंगा निकली हैं, प्रकरण में शिव नाम भी ईश्वर का है, ईश्वर के शक्तिरूपी शिर में गंगा जी गिरी हैं, शक्तिरूपी ईश्वरका बैल और शक्तिरूपी पार्वती है। प्रकरणमें गणेश नाम ईश्वर का शक्तिरूपी उसका हस्तिसदृश शिर है। शक्तिरूपी चूहे पर वह विराजता है। उस से भी पुराण निर्दोष हैं॥

आर्यसमाजी कहते हैं पुराणों में लिखा है कि देवी ने जब रक्तबीज को मारा तो उसके रुधिर से ब्रह्माण्ड भर गया, ऐसी गप्पों से पुराण मिथ्या है। आर्यसमाजियोंकी यह शंका भी भ्रान्तिमूलक है। क्योंकि प्रकरण में

देवी नाम ईश्वर की शक्ति का है तमोगुणरूपी रक्तबीज है, रजोगुणरूपी मायाशक्ति देवी का सिंह है, शुद्ध सत्त्वगुणप्रधान प्रकृति देवी और तमोगुण रूपी रक्तबीज का विरोध ही संग्राम है, तमोगुणरूपी रक्तबीज को असंख्यात अंशोंरूपी रुधिरसे सारा ब्रह्मांड भरा है, उससे भी पुराण निर्दोष हैं॥

आर्यसमाजी कहते हैं कि भागवत को वैष्णव बोपदेवने बनाया है, बोपदेव ही के भाई जयदेव ने गीतगोविन्द बनाया है. हेमाद्रिग्रन्थभी बोपदेवने बनाया है, हेमाद्रि ग्रन्थोक्त तीन पत्रे हमारे पासथे, ऐसी कथा दयानन्द ने भी सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखी है तीन पत्रों में से दो पत्रे दयानन्दके पास थे एक खोगया था। उन दो पत्रोंका सारांश दयानन्द ने दो श्लोकों में रचकर सत्यार्थप्रकाश में छपवा दिया है। आर्यसमाजियों की यह शंका भी दयानन्दोक्त मिथ्या है। क्योंकि दयानन्द ने भागवत और हेमाद्रि ग्रन्थका केवल नाम ही याद कर रक्खा था, देखाभाला कुछ नहीं था, किसी लालबुझक्कड़ बाबू की गप्प को सुनकर बाबाजी ने सत्यार्थप्रकाशमें गप्प हांक दिया, कि भागवत बोपदेवने बनाया है॥

हां बोपदेव का बनाया एक दूसरा छोटा भागवत तो मुरादाबाद में छपा है उसी का भ्रम बाबा को हुआ होगा। बाबा जीने लिखा कि हेमाद्रि ग्रन्थके तीन पत्रे मेरे पास थे एक खो गया है अब विचारना चाहिये कि एक पत्रा तो खोगया था, दो पत्रे बाबा जीके पास थे, वह दो पत्रे सत्यार्थप्रकाश में क्यों न छपवा दिये। तीसरा पत्रा तो दयानन्दसे खोगया था, हेमाद्रि ग्रन्थ तो नहीं खो गया था, किन्तु हेमाद्रिग्रन्थकी आठ जिल्दें छपी हुई थीं, उन में से वह तीसरा पत्रा क्यों न देख लिया, दयानन्द को मिथ्या गप्पें लगाते हुए निराकार ईश्वरका कुछ भी भय न हुआ, दो श्लोक तो बाबा जी ने खोए हुये पत्रेके आशयके बनावटी बना लिये। सारा पत्रा बाबा जी ने बनावटी क्यों न बना लिया?। एक उदासीन पण्डित तो हमें भी बरेली में मिले थे, जो कि दयानन्द के यथावत् भेदिये थे, उन ने हम से कहा कि सत्यार्थप्रकाश में जो तीन पत्रे लिखे हैं, वह तीन पत्रे हमारे रचे थे, दयानन्द ने वह तीन पत्रे हम से ले लिये, और दयानन्द की चालाकी देखने के लिये हमने कहा कि यह तीन पत्रे बोपदेव के बनाये हैं। बस इस को सुनते ही दयानन्द ने सोचा भाला तो कुछ भी नहीं, झट सत्यार्थप्रकाश में दर्ज कर दिया कि बोपदेवके बनाये तीन पत्रे हमारे पास

थे इस से भी यही सिद्ध हुआ कि भागवत वोपदेवका बनाया नहीं दयानन्द ने जो विना सोचे समझे गपोड़ा हांका कि वोपदेव के भाई जयदेव ने गीतगोविन्द बनाया है । सो भी सर्वथा मिथ्या है ॥

क्योंकि तवारीख़ फरिश्तः तथा इतिहासों से ज्ञात होता है कि नदियाप्रान्ति में एक लक्ष्मणसेन राजा था, जयदेव उस राजा के पण्डित थे, और यह बंगाली ब्राह्मण थे, उन्होंने गीतगोविन्द बनाया है । उस गीतगोविन्द की समाप्तिमें देखा जाता है कि जयदेव जी ने अपने माता पिता का नाम भी लिख दिया है । उन्हीं इतिहासादि से विदित होता है कि दक्षिण में एक देवगिरी नगर का राम राजा था, उसका वजीर हेमाद्रि था, उस हेमाद्रिके पास वोपदेव पण्डित रहता था । उसने एक शब्दकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ रचा है । उस ग्रन्थ में वोपदेव ने अपने माता पिता का नाम लिख दिया है । वह वोपदेव दक्षिणी ब्राह्मण था, जयदेव बंगाली और वोपदेव दक्षिणी ब्राह्मण होने से भी वोपदेव के भाई जयदेव नहीं थे, जयदेव और वोपदेवके माता पिता भिन्न २ होनेसे भी जयदेव जी वोपदेव के भाई नहीं हो सक्ते । इतिहासादि से जाना जाता है कि जयदेवजी वोपदेव से साठ वर्ष पहिले हो चुके थे । उस से भी जयदेव जी को वोपदेव के भाई लिखना दयानन्द की चालाकी और गपोड़े बाजी है । उस से भी भागवतपुराण सर्वथा निर्दोष और व्यासकृत हैं ॥

(३ सत्या० समुल्लास ११) दयानन्दका लेख है कि शिव पुराण में बारह ज्योतिर्लिङ्ग हैं, जिन में प्रकाश का लेश भी नहीं, रात्रिको बिना दीपक किये लिङ्ग भी अन्धेरेमें नहीं दीखते, यह सब लीला पोपजीकी है दयानन्द का यह लेख भी भ्रान्ति मूलक है । क्योंकि लिङ्ग शब्द का अर्थ प्रकरण में चिन्ह है इस सिद्धान्त को मूर्त्तिमण्डनव्याख्यान में हम लिखेंगे । क्योंकि उन चिन्हों के ध्यान द्वारा मायाविशिष्ट सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ सर्वव्यापक परमात्मा शिव ही का चिन्तन होता है । अन्धेरा दूर करनेको लिये शिवालयों में दीपक जलाये जाते हैं । लक्षणा से जाना जाता है कि द्वादशलिङ्गावच्छिन्न परमात्मा ही ज्योतिः अर्थात् प्रकाश स्वरूप है । प्रकरणमें ज्योतिः शब्दसे भौतिक प्रकाश का स्वीकार नहीं, किन्तु ईश्वर चेतन ही का ज्योतिः शब्दसे ग्रहण है । यद्यपि ईश्वर एक है और शिवपुराण में द्वादशज्योति लिखे हैं । तथापि विशेषण वा उपाधि कृत ईश्वर चेतन का भेद है बिना विशेषण वा उपाधि के ईश्वर चेतन एक ही है ॥

द्वादशलिङ्ग अर्थात् चिन्हरूप विशेषण वा उपाधि भेदसे द्वादशज्योति शब्द का प्रयोग हो सकता है। ज्योतिःस्वरूप ईश्वर चेतन में सन्देह करना कि लिङ्गमें प्रकाश का लेश भी नहीं यह दयानन्द की अविद्या है क्योंकि द्वादश लिङ्गों में विशेष भौतिक प्रकाश तो नहीं किन्तु ईश्वर चेतन स्वरूप समान प्रकाश तो द्वादशलिङ्गोंमें बराबर है। न मानें तो ईश्वर चेतन सर्व-व्यापक न होगा, ईश्वर चेतनमें द्वादशलिङ्गोंका स्वरूप सम्बन्ध है। परन्तु द्वादश लिङ्गों में ईश्वर चेतन का आधाराधेय व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध है। दयानन्द की मूर्खता का लेख कि अंधेरे में लिङ्ग भी नहीं दीखता यह शंका भी अविद्या मूलक है। क्योंकि ज्योति शब्द का वाच्य ईश्वर भी तो भौतिक अंधेरे अथवा भौतिक प्रकाश में नहीं दीख पड़ता। यह लीला भी आर्यमत वाले पोप जी की होनी चाहिये। वेदान्त में दोष नहीं आ सकता क्योंकि वेदान्त में भौतिक प्रकाश वा अन्धेरा आदि सर्व पदार्थों का आधार एक ज्योतिःस्वरूप ईश्वर चेतन है। द्वादशलिङ्गविशिष्ट वा उप-हित ईश्वर चेतन ही द्वादशज्योतिर्लिङ्ग का वाच्य है। उस से शिवपुराण भी सर्वथा निर्दोष है। हमने स्थालीपुलाकन्याय से दो व्याख्यानों में पुराणों को निर्दोष दर्शाया है। और भी पुराणों में अनेक रूपक भरे हैं सो फिर किसी व्याख्यान में दर्शावेंगे॥

ओ३म्-शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

दयानन्दोक्तवेदभाष्यस्थदरोगहल्फी

व्याख्यान नं० २८

ओ३म् ॥ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्य्यंकरवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै ॥

तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपा० १० अनु० १ ॥

ईश्वरके प्रार्थनात्मकमंगल करनेके पश्चात् दयानन्दोक्त दरोगहल्फी का व्याख्यान दिया जाता है (तथाहि) (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आवृत्ति १ पृ० १६ पं० १७) अथर्ववेद कां० १९ अनु० १ मं० १० ॥

नमस्तेअस्तुपश्यत पश्यमेपश्यत० ।

इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि हे मनुष्यो ! आप मुझ को देखते रहो वैसे जीव भी कहता है कि हे ईश्वर ! आप मुझको देखते रहो । यहां आर्योंसे प्रष्टव्य यह है कि आप के ईश्वरके नेत्र हैं अथवा नहीं, यदि नहीं कहो तो आपका ईश्वर अन्धा होगा । उस से वह जीव को नहीं देख सकेगा, क्योंकि देखना कर्म नेत्रोंका है, यदि कहो कि ईश्वर के नेत्र हैं, तो आपका ईश्वर साकार होगा, क्योंकि विना साकार गोलकके नेत्र नहीं ठहर सकते यदि कहो कि ईश्वरके भौतिक इन्द्रिय नहीं किन्तु ईश्वर के शक्ति रूप नेत्र इन्द्रिय हैं, तो कहिये वह शक्ति साकार सावयव है, अथवा निराकार निरवयव, यदि निराकार निरवयव कहो तो वह शक्ति त्रिगुणात्मक प्रकृति है, अथवा प्रकृति से भिन्न कोई शक्ति है । यदि भिन्न कहो तो आप सिद्ध नहीं कर सकेंगे । यदि प्रकृति हीको शक्ति कहो तो वह निराकार निरवयव होनेके कारण जगतका उपादान कारण न होगी । यदि कहो कि ईश्वर की प्रकृतिशक्ति साकार सावयव है, तो वह घट पटादि पदार्थों के सदृश उत्पत्ति विनाश वाली होगी उभयपाशारज्जुन्यायसे आर्य समाजियों का छूटना न होगा खैर जो हो । यदि आर्यमतका जीव आर्योंके ईश्वर को देखेगा, तो वह ईश्वर काले पीले वा गोरे रूप वाला होगा, क्योंकि जीव नेत्रों से काले पीले गोरे आदि रूप ही को देखता है, देखना कर्म नेत्रों का अनुभव सिद्ध है अनुभव सिद्ध बात किसी युक्ति से खण्डित नहीं हो सकती पूर्व लेख से आर्य्यमत वाला ईश्वर देखने वाला सिद्ध हुआ फिर उस के

विरुद्ध ऋग्वे० मण्ड० १ सू० १६४ मं० ६१ ॥ अपश्यं गोपा० ॥ इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि, ईश्वर को जीव नहीं देख सकता, ईश्वर सब को देखता है, सूक्ष्म होने के कारण जीव भी देखने में नहीं आता, यदि आर्य्य-समाजी दयानन्दके इस लेखको सत्य मानें तो पहिला लेख मिथ्या होता है, क्योंकि पहिले लेखमें बाबा जी ने कहा है कि जीव को ईश्वर देखता है, और ईश्वरको जीव देखता है। यदि आर्यसमाजी पहिले लेख को सत्य मानें तो दयानन्द का दूसरा लेख मिथ्या होता है, क्योंकि दूसरे लेख में दयानन्दका सिद्धान्त यह है कि जीव ईश्वर को नहीं देख सकता। और सूक्ष्म होनेके कारण जीव को भी कोई नहीं देख सकता। परन्तु दरोगह-लफी होनेके कारण दयानन्दके ये दोनों लेख झूंठे हैं। सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास में बाबा जी ने रूल पास कर दिया है कि जो आप झूंठा और दूसरे को झूंठ पर चलावे उस को शैतान कहना चाहिये ॥

(यजुर्वेद अ० ६ मं० १४ ॥ पायुं ते शुन्धामि०)

इस मंत्रके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि शिष्य को गुरु कहे कि हे शिष्य ! मैं तेरे गुदेन्द्रिय को पवित्र करता हूं. यहां आर्य्यों से प्रष्टव्य यह है कि आर्य्यमत वाला गुरु आर्यमत वाले शिष्य के गुदेन्द्रिय को कौन से तरीके से पवित्र करता है। यदि कहो कि शिष्य को व्यभिचार से गुरु रोकता है, तो क्या आर्यमत वाले शिष्य व्यभिचारी हैं?। यदि कहो कि व्यभिचारी नहीं तो उन को व्यभिचार से रोकना निष्फल प्रवृत्ति का जनक होगा। यदि कहो कि आर्य शिष्य व्यभिचारी हैं, तो वे शिष्य शब्द का वाच्य सिद्ध न होंगे, क्योंकि वेदमत में शिष्य उसीको कहा है कि जिस में विवेक वैराग्य षट्संपत्ति मुमुक्षुता ये चार साधन होते हैं। न मानें तो दयानन्दका लेख भी मिथ्या होगा, क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के नववें समुल्लास में दयानन्द ने भी विवेकादि चतुष्टय साधन सम्पन्न ही को मोक्ष का अधिकारी कहा है। मोक्ष का अधिकारी शिष्य ही कहाता है, सिद्धान्त यह कि व्यभिचार से रोकना तो गुदेन्द्रिय का पवित्र करना सिद्ध न हुआ, यदि आर्य कहें कि जलसे सफा करना यही गुदेन्द्रिय की पवित्रता है सो भी ठीक नहीं क्योंकि जब आर्यशिष्य पायखाना फिरेगा तो वह स्वयं ही अपने गुदेन्द्रिय को जल से सफा कर सकता है। क्योंकि मनुजी ने तीन बार मिट्टी लगाकर गुदेन्द्रिय सफा करना कहा है ॥

यदि आर्य शिष्य पाखाने होकर उठेगा और गुरु उस के गुदेन्द्रिय को जल से पवित्र करना आरम्भ करेगा तो वह आर्य गुरु भी पागल साबित होगा। यदि आर्यसमाजी कहें कि शिष्यके गुदेन्द्रिय में कोई रोग होगा। उस को औषध से जल से शिष्य के गुदेन्द्रिय को गुरु पवित्र करेगा, तो आर्यसमाजी याद रक्खें कि भगन्दर रोग तो आर्यशिष्य के प्राणों को ले डालेगा और भगन्दर से भिन्न रोगको आर्यशिष्य वैद्यसे औषध ले के गुदेन्द्रिय के रोग को हटा लेगा गुरु का तो वेदादि विद्या पढ़ाकर अविद्या रोग को दूर कर देना ही काम है। सो अविद्या रोग जीवके अन्तःकरण में है शिष्य के गुदेन्द्रिय में अविद्या रोग का होना सर्वथा असंभव है और जो हो। पूर्वोक्त लेख से विरुद्ध सन् १८७५ के छपे सत्यार्थप्रकाश को पृ० १५१ पं० १ से दयानन्दका गूढ़ सिद्धान्त यह है कि गुदेन्द्रिय से मैला निकलता है गुदेन्द्रिय अपवित्र है उस से सूकर और कौवे प्रीति करते हैं। इसी को पृ० ३८१ पं० १० से दयानन्द ने शरीरके नीचे के छिद्रों को अपवित्र कहा है। मनुस्मृतिके पांचवें अध्यायमें नाभिके नीचे के अंगों को अपवित्र कहा है प्रमाणों से भी यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ है कि मलद्वार अत्यन्त अपवित्र है पहिले लेख में दयानन्दने शिष्य के गुदेन्द्रिय को पवित्र करनेकी गुरु को आज्ञा दी है और दूसरे लेखमें बाबा जी ने गुदेन्द्रिय को अपवित्र बना डाला उससे प्रीति रखने वाले को कौवा, सूकर कहा है। यदि दयानन्द के पहिले लेख को आर्य सत्य मानें तो दूसरा लेख मिथ्या, यदि दूसरे लेख को सत्य मानें तो पहिला लेख मिथ्या होता है परन्तु दुरीगहकर्ताकी दया से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूठे हैं। सत्यार्थप्रकाशके ग्यारहवें समुल्लासमें दयानन्दने नक्कारा जारी कर दिया है कि जिस बात में परस्पर विरोध हो वह बात कल्पित झूठी और अधर्म है।

यातेअग्नेपर्वतस्ये० । ऋग्वेद मण्ड० २ सू० ५० मं० ६

इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि हे ईश्वर! हम लोगोंको आप ऐसी स्त्री दीजिये कि जिससे हम लोग सुखी रहें। यहां आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि आप स्त्री किसको कहते हैं। यदि कहो कि प्रकरण में बुद्धि को स्त्री कहा है सो ठीक नहीं क्योंकि बुद्धि तो पूर्व जन्म के कर्मानुसार और वर्तमान में जीवके सत्यशास्त्रका विचार और सत्संग द्वारा शुभ कर्मों से प्राप्त होती है। यदि ईश्वर की ओर से बुद्धि मिले तो जीव

करें करनेमें परतन्त्र होगा स्वतन्त्रता का अदृशन हो जावेगा। इससे सुन्दर रूपी स्त्री को ईश्वरसे मांगना केवल लालबुझक्कड़ों की लीला है। यदि आर्यसमाजी कहें कि जैसी स्त्रीके अंगों सहित जगत् में स्त्री अनुभव सिद्ध है वैसी स्त्री ही दयानन्द ने मांगी है तो कहिये दयानन्द संन्यासी था अथवा गृहस्थी, यदि दयानन्द को गृहस्थी कहो तो उस को परिव्राजकाचार्य सरस्वती की उपाधि देना निष्फल प्रवृत्ति का जनक होगा क्योंकि उक्त उपाधियां संन्यासी ही को दी जाती हैं। यदि कहो कि दयानन्द संन्यासी था तो कहिये ईश्वर से सुन्दर स्त्री का मांगना यह संन्यासी का कौन सा लक्षण है जो हो। फिर उसके विरुद्ध देखिये ऋग्वे० मण्ड० ३ सू० ५६ मं० ५। अोषधस्था विन्धवश्रिः०। (भा०) इसके भाष्यमें दयानन्द ने कहा है कि हे मनुष्यो! ईश्वर स्वामीकी पतिव्रता स्त्री के सदृश निरंतर सेवा हम लोग करें। यहां दयानन्द ने अपने को स्त्री की उपमा दी है परन्तु प्रकरण में उपमानोपमेय भाव तब सफल हो सकता है कि एकनो जगत् प्रसिद्ध स्त्री के सदृश दयानन्दको अंगोंका लाभ हो जाता परन्तु बाबाजी न तो डाढ़ी मोंछ रखते थे और न शिर पर केश रखते थे, घोटम घोटे शिर घुटे रहते थे लुंहगा नथुनी भी नहीं रखते थे हां बाबा जी के नाकमें नथुनी डालने का छेद तो भान होता था वैसे ही कानोंमें गहने डालने के भी निशान दिखाई देते थे परन्तु वह छेद वा चिन्ह वा निशान उस समय के थे कि जब दयानन्द जी घरमें स्त्री बनकर गाते और नाचा करते थे। यह बात पं० जियालाल कृत दयानन्द छलकपटदर्पण पुस्तक में अत्यन्त स्पष्ट है जिस को उत्कट जिज्ञासा हो वह देखकर सन्देह नष्ट कर लेवे। पं० जियालाल वर्णन करते हैं कि दयानन्द जी नृत्यकारिणी बनकर ऐसी नृत्यकारी करते थे कि जैसे इन्द्र की सभामें मेनका अप्सरा नाचती थी। सो यदि बाबा जी संन्यासी नाम रखाकर भी बाप दादाका पेशा साथ२ करते रहते तो हम सत्य कहते हैं कि २५ क्रोड़ हिन्दुओं में से कोई २ एक दो जितेन्द्रिय विरक्त विद्वान् बचता उससे भिन्न सबके सब हिन्दु जो कि सत्संग शून्य और सत्यशास्त्रके विचारसे रहित हैं। वह दयानन्द की हां में हां मिलाने वाले हो जाते और मन्दिर शिवालयों तथा गुरुद्वारोंके वैसे टुकड़े कर डालते कि जैसे नादिरशाह महमूदगजनवी और औरंगजेब ने किये थे खैर जो हो, पहिले लेख में दयानन्दने निराकार ईश्वर से सुन्दर स्त्री मांगी है परन्तु निश्चय नहीं कि निराकारकी सुन्दर स्त्री लड़की थी वा बहिन वा मां

अथवा मौसी थी। फिर दूसरे लेखमें दयानन्द स्वयं ही निराकार की स्त्री बन गये। परन्तु दरोगहलफी से बाबा जी के ये दोनों लेख भी झूठे हैं। सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास में दयानन्दने झूठ बोलनेवाले ही को चोर कहा है, छठे समुल्लास में दयानन्द ने चोर को सजा का देना कहा है॥

ऋग्वे० मण्ड० २ सू० २९ मं० २-यूयंदेवाःप्रमतिर्यूयमोजो०

इसके भाष्य में दयानन्द ने वर्णन किया है कि हे विद्वानो! तुम लोग हमारे अपराध को सब प्रकार से क्षमा कीजिये। यहां आर्यों से पूछना चाहिये कि अपराध शब्दका अर्थ पाप है, अथवा पुण्य, यदि कहो कि अपराध शब्द का अर्थ पुण्य है तो आप मूसलचन्द की अक्लवाले सिद्ध होंगे, क्योंकि अपराध शब्द का अर्थ पुण्य किसी कोषकार ने भी नहीं लिखा और अपराध शब्द का पुण्य अर्थ करने में कोई वेदादि का प्रमाण भी नहीं मिल सकता। यदि आर्य कहें कि अपराध शब्द का अर्थ पाप है तो कहिये आर्यमत वाले विद्वान् पापका फल देकर आर्यों के अपराध शब्द के अर्थ पाप को क्षमा करेंगे अथवा फल दिये विना ही पाप को क्षमा करेंगे। यदि फल देकर आर्यमत वाले विद्वान् पाप को सब प्रकारसे क्षमा करेंगे तो इस के विरुद्ध दयानन्द का नीचे लिखा लेख झूंठा होगा जैसे कि—

ऋ० मण्ड० ४ सू० १२ मं० ४-यच्चिद्धितेपुरुषत्रायविष्ठा०

इसके भाष्यमें दयानन्द का ऋजुलेशन है कि हे राजन्! जो कदाचित् अज्ञान वा प्रमाद से हम लोग अपराध करें तो उस को भी दंड के विना आप क्षमा न कीजिये। यदि आर्यलोग बाबा जी के इस लेख को सत्य मानें तो पहिला लेख मिथ्या होगा। क्योंकि पहिले लेख में दयानन्द ने अपराधी को दण्ड दिये विना ही क्षमा का कर देना कहा, यदि उस को सत्य मानें तो यह लेख झूंठा होता है। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं। झूंठे के लिये पूर्व हम दयानन्द ही के दृष्टान्त दर्शा चुके हैं॥

ऋ० मण्ड० २ सू० २४ मं० ६-आनोब्रह्माणिमरुतः०॥

इसके भाष्य में दयानन्द ने क्रोधी लोगों से प्रार्थना करी है कि हे क्रोध से युक्त मनुष्यो! हमारे लिये आप धनोंको सिद्ध करो। यहां आर्यों से पूछना चाहिये कि आर्यमतवाले क्रोधी मनुष्य धनको सिद्ध करेंगे अथवा

क्रोध से उपजे दोषरूपी अग्नि ही में मनुष्यजन्म को भस्म कर डालेंगे, यदि आर्य प्रथम पक्ष को स्वीकार करें तो ठीक नहीं क्योंकि—

पैशुन्यंसाहसंद्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजञ्चपारुष्यं क्रोधजोऽपिगणोऽष्टकः ॥

इस श्लोक में चुगली १ परस्त्रीगमन २ राजविद्रोह ३ दूसरे के ऐश्वर्य को देखकर जलना ४ झूंठी निन्दा किसी की करते रहना ५ चोरी या ठगी से धनोपार्जन करना ६ विना अपराध किसी को वाक्दंड अथवा शरीरदंड देना ७ भले काम में विघ्न डालना यह ८ आठ प्रकार के दोष जिसमें क्रोध होता है उसमें होते हैं। उन दोषों की दया से आर्यमत वाले क्रोधी मनुष्य आर्यमत का सत्यानाश तो अवश्य कर देंगे। परन्तु धन की प्राप्ति कुछ भी नहीं करा सकेंगे। फिर उससे विरुद्ध ॥

ऋग्वे० मं० १ सू० २५ मं० ४—पराहिमेविमन्यवः०

इसके भाष्य में बाबा जी क्रोधियों के लिये कड़ी सख्ती से पेश आये, क्रोधियों को कहते हैं कि अत्यन्त धन होनेके लिये मेरे निवासस्थान से अनेक प्रकार के क्रोध करने वाले दुष्टजन दूर ही चले जावें। दयानन्द के इस लेख का अभिप्राय यह प्रकाशित होता है कि धनके उपार्जन करनेमें क्रोधी लोग विघ्न डाल देते हैं। आर्याभिविनय तथा सत्यार्थप्रकाश का सातवां समुल्लास और ऋग्वेदभाष्यभूमिकादि दयानन्द कृत ग्रन्थों में आर्यमतवाला ईश्वर भी क्रोधी सिद्ध हुआ है। परन्तु ईश्वर को आर्य दूर नहीं कर सकते क्योंकि सर्वशक्तिमान है, अल्पशक्तिमान् आर्यों से वह कभी दूर नहीं हो सकता। दयानन्द के लेख से वह ईश्वर आर्योंका गुरू है, गुरू ईश्वर को दूर करने से आर्य गुरु विद्रोही सिद्ध होंगे। दयानन्द कृत ग्रन्थों से साबित है कि दयानन्द ने स्वयं भी निराकार ईश्वरसे क्रोध मांगने की प्रार्थना करी है उसी प्रार्थना को आर्यलोग करते हैं दयानन्दोक्त ग्रन्थों की दया से आर्य मत वाले गुरू चेले सर्व क्रोधी सिद्ध हो चुके ॥

दो०—लोभी गुरू लालची चेला। दोनों होगये ठेलम ठेला॥

कहीं क्रोध को धन लाभ का हेतु कहीं धन की हानि करने का हेतु [illegible] से भी बाबाजी दरोगहलफी रूपी सागरमें गिरकर गोते खा रहे हैं।

उक्त दोनों लेख दयानन्द के झूंठे हैं॥

(ऋग्वे० मण्ड० १ सू० २५ मं० १) तस्माअग्निर्भारतः शर्म०

इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जो खगोल विद्या को प्राप्त होता है, वह १०० वर्ष तक जीता रहता है, यहां आर्य्योंसे पूछना चाहिये कि आपके बाबाजी का यह लेख सत्य है अथवा मिथ्या, यदि मिथ्या कहो तो दयानन्द मिथ्यावादी होगा इस लेखपर विश्वास रखने वाले आर्यसमाजी भी मिथ्यावादी होंगे, यदि कहो कि दयानन्दका उक्त लेख सत्य है, तो कहिये दयानन्द को खगोल विद्या का ज्ञान हुआ था अथवा नहीं, यदि नहीं कहो तो आपका आचार्य दयानन्द अज्ञानी होगा, और उसीकी लकीर के फकीर आर्य भी कभी ज्ञानी नहीं हो सकते। यदि कहो कि दयानन्द और हमको खगोल विद्याका ज्ञान था अथवा है, तो दयानन्द ५० वर्ष की उमर हीमें क्यों मर गया ? । १०० वर्ष तक क्यों न जीता रहा आप भी १०० वर्ष से पहिले क्यों मर जाते हैं १०० वर्षसे पहिले ही मर जाने रूप हेतुसे साबित हो चुका कि न तो बाबा जी दयानन्दको खगोल विद्या का ज्ञान था और न खगोल विद्या का ज्ञान आर्य्यों को है फिर उसके विरुद्ध ॥

त्वंविश्वेषांवरुणासिराजा०

ऋग्वे० मण्ड० २ सू० ५७ मं० १०

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि जो मनुष्य विषयासक्ति को छोड़ देते हैं वह १०० वर्षसे न्यून आयुको नहीं भोगते हैं, यहां आर्य्यसमाजियोंसे पूछना चाहिये कि दयानन्द ने विषयासक्ति छोड़ी थी अथव नहीं यदि कहो कि दयानन्दने विषयासक्ति नहीं छोड़ी थी तो दयानन्द संन्यासी नहीं सिद्ध होता, ऋग्वेदभाष्यभूमिका प्रकरण मङ्गलाचरणमें भी दयानन्द ने (विश्वानिदेवसवितर्दुरितानि०) इस मंत्र के भाष्य में वेदभाष्य पूराकरने के लिये स्त्री का सुख मांगा है। सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ५ वहां भी बाबाजी ने-

विविधानिचरत्नानिविविक्तेषूपपादयेत् ॥

इस मिथ्या श्लोक के भाष्य में बाबाजी ने कहा है कि संन्यासी को रत्न सुवर्णादि भी देवे। उणादिकोष में दयानन्द ने स्त्री का नाम भी रत्न वर्णन किया है अब आर्य्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि क्या विषयासक्ति के भी सींग पूंछ होते हैं। (किंच)-

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानंविधीयते ।

इसमें मनुजीने कहा है कि जो स्त्री आदिके विषयोंमें आसक्त है, उस को धर्म ज्ञान नहीं होता, मनुजी के इस सिद्धान्त से भी दयानन्द विषया-

सक्त था, उससे वह धर्म ज्ञान से हीन था, दयानन्द छलकपटदर्पण पुस्तक का भी यही सिद्धान्त है कि दयानन्द जाति का कापड़ी था, घरमें स्त्री बन कर नृत्यकारी करता था। यदि दयानन्द ही विषयासक्त था तो उस के भक्तआर्य भी विषय विरक्त नहीं हो सकते। यदि आर्य्य कहें कि दयानन्द विषयासक्त नहीं था तो वह सौ वर्ष से पहिले ही क्यों मरगया, यदि कहो किसी ने विष देके दयानन्दको मार डाला था, तो प्रारब्ध कर्मों के अनुसार जाति आयु और भोग मिलते हैं, इस योग सिद्धान्तसे विरोध होगा, और दयानन्द पर भी प्रतिज्ञाहानि दोष असवार होगा॥

फिर उक्त लेख से विरुद्ध दयानन्द ने देखिये और ही लीला दर्शाई है। जैसे कि—

त्रीण्यायूंषितवजातवेदस्तिस्र०

ऋ० मण्ड० ३ सू० १७ मं० ३

उसके भाष्य में दयानन्दकी प्रतिज्ञा है कि जो बहुत काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य करता है, वह ३०० वर्ष तक जीवता है, सत्यार्थप्रकाशके चतुर्थ समुल्लास में बाबाजी ने वर्णन किया है कि जो ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य करता है, वह ४०० से भी जियादा वर्ष तक जीता रहता है। परन्तु दयानन्द ५० वर्ष की आयु ही में खतम हो गया, उस से सिद्ध हो चुका कि दयानन्द ने ब्रह्मचर्याश्रम भी नहीं किया था यदि कर लेता तो चारसौ वर्ष से पहिले कभी न मरता, परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दोक्त पूर्व लेख सर्व झूठे हैं। ग्रन्थ साहिब में लिखा है कि—

कूड़बोलमुरदारखाय। अवरेनोंसमझावनजाय॥
मुठाआपमुहाएसाथे। नानकऐसाआगूजापे॥

महाभारत में कहा है कि—

(सत्यंयत्रक्षमातत्र) नसत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकंपरम्

इत्यादि प्रमाणोंसे दयानन्द मिथ्यावादी पर अनेक दोषरूपी वज्रपड़रहे हैं॥

त्वयावयमुत्तमंधीमहेवयोबृहस्पते०

ऋ० मण्ड० २ सू० २३ मं० १०

इसके भाष्य में दयानन्द ने विद्वानों से प्रार्थना करी है कि हे विद्वान्! ...को दुष्ट कहावत प्रसिद्ध हो वह चोर इस लोगोंका ईश्वर न होवे। बाबाजीके इस लेख से ज्ञात होता है कि ईश्वर के अवतार कृष्णजी पर

हजरत ने कदाग्र लड़ाया है। क्योंकि सत्यार्थप्रकाशके ग्यारहवें समुल्लास में बावाजी ने कृष्ण जी को माखन चोर कहा है, परन्तु श्रीकृष्णजी माखन उठाने के समय तीन चार वर्ष की आयु में थे, उन पर चोरी का दफा कभी नहीं लग सकता। दयानन्दछलकपटदर्पण से हम सिद्ध कर चुके हैं कि दयानन्द घरमें राम लीला करता था और नृत्यकारिणी बनकर नाचा करता था। ठीक किसीने कहा है (बिल्ली नौ सौ चूहा खाकर मक्केके हज्ज को जाती है) जो हो उसके विरुद्ध दयानन्दने और हां कुछ वर्णन किया है जैसेकि

आर्याभिवि० ऋ० मण्ड० १ सू० १६४ मं० ८ मानोव धीरिन्द्रमापरादा मानः प्रियाभोजनानिप्रमोषीः०

इसके भाष्य में दयानन्द ने निराकार ईश्वर से वर्णन किया है कि हे ईश्वर! मेरे प्रिय भोगोंको मत चुरा और मत चोरवा। दयानन्दकी इस प्रार्थना को यदि आर्यसमाजी मिथ्या कहें तो दयानन्द मिथ्या वादी सिद्ध हो जावेगा। यदि आर्य कहें कि दयानन्दोक्त प्रार्थना सत्य है तो सचित यह होगा कि वेद मंत्र के दयानन्दकृत भाष्यसे आर्यमत वाला निराकार ईश्वर स्वयं चोर और चोरी कराने वाला है। यदि दयानन्दके लेख ही से आर्यों का ईश्वर चोर और चोरी कराने वाला है तो उसी ईश्वर के भक्त दयानन्द और आर्यसमाजी भी साधु कभी नहीं हो सकते। कहीं निराकार ईश्वर को चोर और चोरी कराने वाला लिख देना और कहीं लिख देना कि हमारा ईश्वर चोर कभी न होवे परन्तु दरोगहलफी से बावाजी के यह दोनों लेख भी झूठे हैं इससे दयानन्द विद्याहीन था॥

(ऋ० मण्ड० ३ सू० १० मं० ६ ॥ त्रीणिशतात्रीसहस्राण्यग्निं)

इसके भाष्य में बावाजी ने वर्णन किया है कि ३३३४२, तैंतीस हज़ार तीनसौ ब्यालीस तत्त्व हैं यहां आर्योंसे प्रष्टव्य यह है कि आप ३३३४२ तत्त्वों के नाम तो बतलाइये। यदि कहो कि हम नाम नहीं बतला सकते तो कहिये हिन्दुओंसे आप तैंतीस क्रोड़ देवताओंके नाम में से किस नाम को पूछते हैं। हिन्दु तो भला बहुतसे देवताओंके नाम भी बतला सकते हैं। परन्तु आपदो तीनसौ तत्वों ही के नाम तो बतलाइये। फिर उस के विरुद्ध ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आवृत्ति १—

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षःसहस्रपात्० ।

इस वेद मन्त्रके भाष्य में बाबा जी ने दश तत्व ही लिखे हैं, सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ८—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः० ।

इस सांख्यसूत्र के भाष्य में भी हजरत ने दशतत्त्व ही वर्णन किये हैं यद्यपि वहां ग्यारहवां महत्तत्त्व भी बाबा जी ने वर्णन कर दिया है, तथापि महत्तत्त्व नाम दयानन्द ने वहां बुद्धि का कहा है उस से बुद्धि शामिल नहीं हो सकती। कहीं तैंतीस हजार तीन सौ ब्यालीस तत्वों को बतलाना कहीं दश तत्वों का रूल पास करना, उससे आर्यमत वाला ईश्वर अथवा निराकारका भक्त दयानन्द दोनोंमें से एक तो अवश्य ही लालबुझक्कड़ होगा, परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके पूर्वोक्त ये दोनों लेख भी झूठे हैं॥

आर्याभि० ऋ० मण्ड० १ अ० ६ सं० ५—तमीशानंज-गतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसेहूमहेवयम्० ।

इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि हे ईश्वर हम अपनी रक्षा के लिये आपका आवाहन करते हैं। दयानन्दके इस लेख से विदित होता है कि वह निराकार ईश्वर का आवाहन भी करता था। ऋग्वेदभाष्य में दया-नन्दने और भी अनेक मन्त्रों से निराकार ईश्वर का आवाहन लिखमारा है जिस आर्यको जिज्ञासा हो वहां देख कर सन्देह को नष्ट कर लेवे। फिर उस के विरुद्ध (सत्यार्थप्रकाश दूसरा आवृत्ति ५ समुल्लास ११) वहां दयानन्दने कहा है कि वेदों में ईश्वर के आवाहन करने का एक अक्षर अथवा एक मंत्र भी नहीं, दयानन्द के इस लेख का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर का आवाहन करना वेदोक्त नहीं है। कहीं वेदमन्त्रों से ईश्वर का आवाहन दरशाना, और कहीं लिख देना कि ईश्वर का आवाहन करनेके लिये वेदों में एक अक्षर अथवा एक मन्त्र भी नहीं, यह भी बाबा बुझक्कड़ की झूठी दरोगह-लफी है, उस से दयानन्द के ये दोनों लेख भी झूठे हैं॥

ऋ० मं० १ व० १२ सं० ५—आर्याभि०—योविश्व-स्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणेप्रथमोगाअविन्दत्० ।

इसके भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि आओ मित्रो! भाई लोगो! अपने सब प्रीतिसे मिल के परमानन्द परमात्मा को सखा होने के लिये अ-त्यन्त प्रार्थना से गद्गद हो कर बुलावें॥

अभीकआसांपदवीरबोध्यादित्यामह्वे० ।

इसके भाष्यमें भी दयानन्द का लेख है कि वर्तमान समय में मैं ईश्वर को बुलाता हूं, उसी को आप लोग भी बुलाओ ॥

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा० ।

ऋ० मं० २ सू० ३४ मं० १५ ।

इसके भाष्य में भी दयानन्द का लेख है कि हे ईश्वर ! आप वेद से बुलाने को प्राप्त होते हो । इत्यादि वेद मन्त्रोंके दयानन्दकृत भाष्य से साबित हो चुका कि दयानन्द मत वाला ईश्वर वेद मंत्रों से बुलाया भी जाता है । फिर उस के विरुद्ध (सत्यार्थप्रकाश आवृत्ति ५ समुल्लास ११) यहां दयानन्दने कहा है कि जो तुम मन्त्रसे मूर्ति में ईश्वरको बुला लेते हो तो मरे पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते ? ।दयानन्द के इस लेख का सिद्धान्त यह है कि निराकार ईश्वर बुलानेसे नहीं आता, कहीं ईश्वर को बुलाना लिखना और कहीं ईश्वर को न बुलाना लिखना यह दोनों लेख भी परस्पर विरुद्ध हैं, परन्तु झूंठी दरोगहलफी से बाबा जी के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं ॥

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापवि०

आर्याभिवि० य० अ० ४० मं० ८ ॥

इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि ईश्वर आकाश के समान सर्वत्र व्यापक निष्कम्प और अचल है, इस मंत्र के भाष्य में दयानन्दने लिख मारा है कि निराकार ईश्वर कभी चलता फिरता नहीं । फिर इसके विरुद्ध—

प्रजापतिश्चरतिगर्भेअन्तरजायमानो बहुधाविजायते०

य० अ० ३२ मं० १९ ॥

इस के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि ईश्वर सर्वत्र विचरता है । दयानन्दके इस लेखसे निराकार ईश्वर चलने वाला सिद्ध हो चुका । किंच

एभिरग्नेदुवोगिरो० ।

ऋ० मण्ड० १ सू० १४ मं० १ ॥

इसके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि हे ईश्वर ! आप सब विद्वानों के साथ सुख करने वाले हो, सब पदार्थों को पीनेके लिये आप प्राप्त हूजि-

थे। यहां दयानन्द ने सब पदार्थ पीलने के लिये निराकार ईश्वर का निमन्त्रण दिया है। इससे भी ईश्वर चलने वाला सिद्ध हुआ क्योंकि विना चलने से निमंत्रण खानेको कोई कहीं नहीं जा सकता॥

नियुत्वानवायवागह्यं०।

ऋ० मण्ड० २ सू० ४० मं० २॥

इस मंत्रके भाष्यमें दयानन्द का ऋजुलेशन पास हो चुका है कि ईश्वर वायु के समान भाग जाता है। दयानन्दके इस लेख से भी ईश्वर चलने वाला सिद्ध हो चुका॥

निवेवेतिपलितोदूत०।

ऋ० मण्ड० ३ सू० ५५ मं० ९॥

इसके भाष्यमें दयानन्दका गूढ़ सिद्धान्त यह है कि ईश्वर श्वेतकेशों वाले समाचार लेआने वाले दूत के सदृश चलता है॥

मित्रोजनान्यातयतिब्रुवाणो०

ऋ० मण्ड० ३ सू० ५९ मं० १॥

इस मंत्रके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि हे ईश्वर! मित्रके लिये बहुत घृतादि से युक्त हविष्यान्न दीजिये। इस दयानन्द के लेख से ज्ञात होताहै कि दयानन्द का ईश्वर भूखा मरता है, यदि ऐसे न मानें तो ईश्वरको बहुत अन्न देनेका लेख मिथ्या होगा। इस मन्त्रसे पूर्व मन्त्रके भाष्य से सिद्ध हो चुका कि आर्यमत वाले ईश्वर की सफेद डाढ़ी है, और सफेद केश हैं, यदि आर्य न मानें तो ईश्वर को दूतकी उपमा का देना गवगंडोंकी लीला है। कहीं ईश्वर को चलता और कहीं अचल लिखना यह भी दयानन्दकी झूठी दरोगहलफी है इससे दयानन्द के पूर्वोक्त सर्व लेख भी झूठे हैं॥

विश्वानिदेवसवितर्दुरितानि०

वेदभाष्यभू० आवृत्ति १ पृ० ३ पं० १॥ य० अ० ३० मं० ३॥

इस मंत्र के भाष्य में दयानन्दने वेद भाष्य पूरा करने के लिये ईश्वर से स्त्री पुत्र का सुख मांगा है। फिर इसके विरुद्ध—

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च०।

इसीका पृ० २४३ पं० ४॥ शत० कां० १४ ब्रा० २ कं० ३॥

इस मंत्र के भाष्य में—

अभ्यादधामिसमिधमग्ने० ।

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ५ ॥ य० अ० २० मं० २४ ॥

इस मंत्र के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि संन्यासी पुत्रादि की इच्छा भी न करे और वानप्रस्थ से संन्यास लेनेके समय स्त्री को भी पुत्रोंके पास भेज देवे। परन्तु झूंठीदरोगहल्फी होनेके कारण बाबाजी के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं।

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११ प्रकरणब्राह्मसमाज खंडन

यहां दयानन्दका लेख है कि जो विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना यह भी व्यर्थ है। दयानन्द के लेख का अभिप्राय यह है कि जो लोग जनेऊ को तोड़ डालते हैं और चोटी को कटवा डालते हैं वह मुसलमान और ईसाइयों के सदृश हो जाते हैं। फिर इसके विरुद्ध (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ५)

(प्राजापत्यांनिरूप्येष्टिं तस्यांसर्ववेदसं हुत्वा०)

इसके भाष्य में दयानन्द ने वर्णन किया है कि यज्ञोपवीत शिखादि चिन्हों को छोड़कर संन्यासी हो जावे बाबाजी के इस लेख का तात्पर्य यह है कि जनेऊ को तोड़ और चोटी को कटवा कर संन्यासी हो जावे, यहां आर्यों से पूछना चाहिये कि आर्यमत वाला संन्यासी मुसलमान और ईसाइयों के सदृश होगा ? अथवा उनसे विलक्षण ? यदि कहो कि ईसाई मुसलमानोंसे आर्यमत वाला संन्यासी विलक्षण होगा तो दयानन्द का पहिला लेख मिथ्या होगा क्योंकि पहिले लेखमें जनेऊ तोड़ने और चोटी कटवाने को दयानन्द ने मुसलमान और ईसाइयों की उपमा दी है। यदि कहो कि आर्यमत वाला संन्यासी भी जनेऊ तोड़ और चोटी कटवाकर ईसाई और मुसलमानोंके सदृश हो जाता है तो दयानन्द स्वयं भी संन्यासी कहाता था उसने भी जनेऊको तोड़ और चोटीको कटवा डालाथा उससे दयानन्द भी मुसलमानों और ईसाइयों के सदृश सिद्ध हो चुका परन्तु दरोगहल्फी से दयानन्द के ये दोनों लेख भी झूंठे हैं (क्रिंच)

ऋगादिवेदभाष्यभूमिकाआवृत्ति १ पृ० २३० पं० १३

अथर्व० कां० ११ अनु० ३ मं० ६ । ब्रह्मचार्येतिसमिधा-समिद्धःकार्ष्णं०)

इस के भाष्य में दयानन्द ने सरक्यूलर जारी कर दिया है कि जो ब्रह्मचारी होता है वही ज्ञानसे प्रकाशित तप और बड़े २ केश श्मश्रुओं से युक्त दीक्षा को प्राप्त होके विद्याको प्राप्त होता है। दयानन्दके इस लेख का सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि जो ब्रह्मचारी डाढ़ी मूंछें और केश रखता है वही विद्या को हासिल करता है। फिर इसके विरुद्ध—

केशान्तःषोडशेवर्षे ब्राह्मणस्यविधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्यद्व्यधिकेततः॥

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १०

इस के भाष्यमें दयानन्द की वक्तृता है कि जो अति उष्ण देश होवे तो सब शिखा सहित कटा देना चाहिये। क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है उस से बुद्धि कम हो जाती है। डाढ़ी मूंछ रखने से भोजन भी अच्छे प्रकार नहीं हो सकता और उच्छिष्ट भी बालों में लगा रहता है।

यदि दयानन्द के इस लेखको आर्यसमाजी सत्य मानें तो दयानन्द का पहिला लेख मिथ्या होगा क्योंकि पहिले लेख में दयानन्द ने डाढ़ी मूछों केशों वाले ब्रह्मचारी को विद्या का लाभ वर्णन किया है परन्तु दूसरे लेखकी दया से आर्यमत वाले ब्रह्मचारी को विद्या का लाभ नहीं हो सकता क्योंकि उस ब्रह्मचारी के बड़े २ डाढ़ी मूछें और केश हैं दूसरे लेख की रीति से आर्यमत वाले ब्रह्मचारी को शिर पर केश रखने से उष्णता अधिक होगी उस से उस की बुद्धि कम हो जावेगी बुद्धि के कम हो जाने रूपी हेतु से उस ब्रह्मचारी में विद्या का भी अत्यन्ताभाव हो जावेगा और ब्रह्मचारी के बड़े २ डाढ़ी मूछें के हेतु से वह ब्रह्मचारी भोजन भी अच्छे प्रकारसे नहीं कर सकेगा और ब्रह्मचारीके डाढ़ी मूछोंमें जूठन भी फंसी रहेगी। आर्यमतवाली स्त्रियों की भी बड़ी दुर्दशा होगी क्योंकि उन के शिर पर भी बड़े २ केश सुने जाते हैं उस में उनको उष्णता अधिक होगी तो उन स्त्रियों की बुद्धि का भी सर्वथाप्रध्वंसाभाव हो जावेगा। परन्तु झूंठी दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनो लेख भी झूंठे हैं।

(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १०) यहां दयानन्द का लेख है कि जिन्हों ने चीनी घृत दूध पिसान शाक फल मूल खाया उन्हों ने भंगी चमार मुसल-

मान ईसाई सब जगत् भर के हाथ का बनाया और जूंठा खा लिया। यहां आर्यों से पूछना चाहिये कि दयानन्द जी भी चीनी घृत दूध मिष्टान्न शाक फल मूल खाते थे अथवा नहीं? यदि कहो कि दयानन्द नहीं खाते थे, तो कहिये दयानन्द जी पेट पूजा कौन सी चीज़ से करते थे? यदि कहो कि दयानन्दजी भी पूर्वोक्त पदार्थों को खाते थे, तो कहिये दयानन्दजी भी भंगी चमार मुसलमान ईसाई सब जगत् भर के हाथ का बनाया और जूठा खाने वाले हुए अथवा नहीं? यदि नहीं कहो तो दयानन्द का पूर्वोक्त लेख झूंठा साबित होगा, यदि उस लेखको सच्चा कहो तो भंगी चमार मुसलमान ईसाई सब जगत् के हाथ का बनाया और जूठा खाने वाले हेतु से दयानन्द पूर्वोक्त नीच जातियोंके असर को हासिल करनेवाले सिद्ध हो जावेंगे। खैर जो हो उसके विरुद्ध उसी समुल्लासमें दयानन्दने वर्णन किया है कि शाकफल आदि भक्षण करने के योग्य हैं, परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठे हैं॥

(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १०) यहां दयानन्द ने कहा है कि आर्यों के घर में यदि शूद्र शूद्री रसोई बनावें तो मुख पर कपड़ा बांध के बनावें क्योंकि उन के मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास अन्न में न गिरे। दयानन्द के इस लेख का तात्पर्य यह है कि जब शूद्र शूद्री रसोई करने लगें तो खुला मुख न रक्खें, क्योंकि खुले मुख में से श्वास निकल कर दाल रोटी में गिरेगा और मुख में से थूक भी अन्न में गिरेगा उसी से जब रसोई करने में लगें तब शूद्र शूद्री मुख में कपड़ा बांध लेवें और हफ्ते वार हजामत भी करवाया करें। पहिले आर्यों को भोजन खिला कर पश्चात् शूद्र शूद्री खावें। यहां आर्यों से प्रष्टव्य यह है कि रसोई बनाने के समय आर्य्यमत वाले शूद्र शूद्री नासिकाके आगे भी कपड़ा बांधेंगे वा नहीं? यदि कहो कि बांधेंगे तो वह शूद्र शूद्री दम बन्द होने रूपी हेतु से रसोई ही में मर जावेंगे। यदि कहो कि नासिका के आगे वह कपड़ा नहीं बांधेंगे तो नासिका से निकल के शूद्र शूद्री का श्वास भी आर्यों के दाल रोटी में गिरेगा। उस से वह दाल रोटी भ्रष्ट हो जावेंगे। उभयपाशारज्जुन्याय से आर्यों का छूटना कदापि न होगा॥

जो हो पूर्वोक्त लेख के विरुद्ध दयानन्द जी ने दूसरा रिजुलेशन पास किया है जैसे कि (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १२) यहां बावा जी ने वर्णन किया है कि जब मुख पर कपड़ा बांधा जाता है तो मुख से वायु का नि·

कलना रुक जाता है परन्तु नीचे से बड़े वेग से निकल जाता है यदि आर्य-समाजी दयानन्द के इस लेख को सत्य मानें तो आर्यमत वाले शूद्र शूद्रीका वायु भी नीचे के रास्ते से बड़े वेग से निकल जावेगा, और वह वायु दाल रोटी में जा गिरेगा क्योंकि आर्यमत वाले शूद्र शूद्री के मुख कपड़े से बंधे हुये हैं। खराबी तो यह होगी कि आर्यमत वाले शूद्र शूद्री का वायु जो नीचे से निकलेगा, वह अत्यन्त दुर्गन्ध दार होगा, मैले मूत के परमाणु उस में भरे होंगे, मैले मूत के परमाणुओं से संयुक्त जब नीचे से निकला वायु आर्यों की दाल रोटी में गिरेगा तो वह दाल रोटी उनके गन्दे परमाणुओं से भर जावेंगी, ऐसी दाल रोटी खाने से आर्यों में हैज़े अथवा प्लेग की बीमारी शुरू हो जावेगी, परन्तु झूंठी दरोगहलफी की दया से दयानन्द के यह दोनों लेख भी झूंठ हैं ॥

प्रजापतिश्चरतिगर्भेअन्तरजायमानोवहुधाविजायते० ।

(ऋग्वेदादिभाष्यभू०आवृत्ति १ पृ० १३२ पं० १९)

इसके भाष्य में दयानन्द का लेख है कि ज्ञानी लोग ईश्वर में मोक्ष सुख को प्राप्त होके जन्ममरणादि आने जाने से छूट करके सदानन्द में रहते हैं। दयानन्द के इस लेख का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर ही मुक्ति लोक है, मुक्त जीव ईश्वर ही में मोक्ष सुख को भोगता है फिर जन्म में नहीं आता ॥

फिर इस के विरुद्ध सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास में बाबा जी ने सरक्यूलर जारी किया है कि मुक्त जीव फिर जन्म में आता है। यदि मुक्त जीवका जन्म न मानें तो मुक्तिलोकमें भीड़ भड़क्का हो जावेगा! यहां आर्यों से पूछना चाहिये कि ईश्वर सर्वव्यापक है अथवा एकदेशी, यदि एकदेशी कहो तो वह ईश्वर जीवके सदृश अल्पज्ञ होगा, यदि कहो कि ईश्वर सर्वव्यापक है तो कहिये नाम रूप और क्रियात्मक चराचर जगत् ईश्वर में है अथवा दूसरे किसीमें, यदि दूसरे किसीमें कहो तो वेदादि प्रमाणोंसे सिद्ध कीजिये। यदि कहो कि सर्वजगत् ईश्वर में है तो कहिये ईश्वर ही में सर्व जगत् होने से भीड़ भड़क्का होता है वा नहीं, यदि कहो कि ईश्वर में सर्वजगत्का भीड़ भड़क्का होता है तो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरोध होगा। क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जाना जाता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, जगत् का उपादान कारण प्रकृति ही ईश्वर की शक्ति है इस बातको वेदभाष्यभूमिका प्रमाणाप्र-

माया प्रकरण (इदं विष्णुर्विचक्रमे०) इस वेदमन्त्र के भाष्यमें दयानन्दने वर्णन किया है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति हीका नाम वेदान्ती लोग माया कहते हैं। नामरूप और क्रियात्मक सर्वजगत् कार्य है, और ईश्वरकी प्रकृतिशक्ति उपादान कारण है, उपादान कारण से अधिक देशमें कार्यका सर्वथा असंभव है, यह बात अनुभव सिद्ध है। जैसे कि मृत्तिका उपादानसे घटकार्य अधिक देश में नहीं, तन्तु उपादान से पटकार्य अधिक देशमें नहीं, वैसे ही प्रकृति उपादानसे सर्वजगत् अधिक देशमें नहीं, उस से प्रकृति शक्ति युक्त ईश्वर में सर्वजगतका भीड़ भड़क्का बतलाना लालबुझक्कड़ोंकी लीला है। जैसे सर्वजगत् का ईश्वर में भीड़ भड़क्का नहीं, वैसे ही ईश्वर स्वरूप मुक्तिलोक में मुक्तोंके भीड़ भड़क्के होनेका भी सर्वथा असंभव है, परन्तु झूंठी दरोगहलफीसे दयानन्द के मुक्ति विषयक दोनों लेख भी झूंठे हैं। सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९ (शृण्वन् श्रोत्रंभवति०) इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दने कहा है कि मोक्षमें मुक्त जीवके साथ भौतिक शरीर नहीं रहता। किन्तु सुनने की इच्छासे श्रोत्र, देखनेकी इच्छासे नेत्र, सूंघनेकी इच्छासे घ्राण, रसकी इच्छासे रसन, संकल्प विकल्प की इच्छा से मन, निश्चयादिकी इच्छासे बुद्धि, आदि रूप अपनी शक्तिसे मुक्त जीव बनजाता है। दयानन्दके इस लेखका सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि आर्योंके मुक्त जीवके पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय पांच प्राण अन्तःकरण चतुष्टय इन सबका मुक्तिके समय सर्वथा सत्यानाश हो जाता है और ईश्वर स्वरूप मुक्तानन्दको भी वह आस्वादन नहीं करता किन्तु आर्यमत वाला मुक्तजीव विषय भोगरूपी मल ही का कीड़ा बना रहता है। क्योंकि दयानन्दके उक्त लेख से साबित है कि आर्यमत वाला मुक्त जीव राग रंग सुननेके समय श्रोत्र, कोमल कठोर शीतोष्ण स्पर्श लेनेके समय त्वगिन्द्रिय, काला पीला गोरा लाल रूप देखनेके समय नेत्र, होटल वगैरहमें खट्टे मीठे रस लेनेके समय रसन इन्द्रिय, गुलाब चमेली मोतिया आदि फूलोंकी सुगंध सूंघनेके समय नाक रूप आर्यमत वाला मुक्त जीव हो जाता है। वैसे ही बोलनेकी इच्छासे वागिन्द्रिय, ग्रहण त्यागकी इच्छासे हस्तेन्द्रिय, गमनागमन की इच्छासे पादेन्द्रिय, मूतनेकी इच्छासे उपस्थेन्द्रिय, पायखाना निकालनेकी इच्छासे गुदेन्द्रिय, आर्यमत वाला मुक्त जीव बनजाता है। वैसे ही संकल्प विकल्प की इच्छासे मन निश्चयकी इच्छासे बुद्धि चिन्तनकी इच्छासे चित्त, अभिमान की इच्छासे अहंकार भी आर्यमत वाला जीव अपनी इच्छासे बन जाता है। यदि दयानन्दके इस लेखको आर्यसमाजी मिथ्या कहें तो दया-

नन्द मिथ्यावादी होगा, उसका रचा सत्यार्थप्रकाश भी मिथ्यार्थप्रकाश होगा। यदि आर्यसमाजी कहें कि दयानन्दका उक्त लेख सत्य है तो दयानन्द मुक्त भी पूर्वोक्त रीतिसे लीला करता होगा मुक्तानन्दका दयानन्दसे अत्यन्ताभाव होता होगा किन्तु दयानन्द मुक्त जीव भोगानन्दहीमें लम्पट रहता होगा धिक् ऐसे आर्यमत वाले मुक्तलोक को, खैर जो हो। उसके विरुद्ध—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९ आवृत्ति ३–वहां दयानन्द का लेख है कि मुक्तिके समय मुक्त जीवका भौतिक शरीर भी मुक्तके साथ रहता है दयानन्दके इस लेख का अभिप्राय यह है कि मुक्तिके समय आर्यमत वाला मुक्त जीव अपनी शक्ति से इन्द्रियरूप नहीं बनता, किन्तु भौतिक इन्द्रियों हीसे वेश्यादि के शब्दको उन्हींके स्पर्शको, उन्हीं के रूप को, उन्हींके रस को, उन्हींके गन्धको ग्रहण करता है परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके यह दोनों लेख भी झूंठे हैं॥

(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८ आवृत्ति ५-नासतोविद्यतेभावो नाभावोविद्यते०)

इसके भाष्यमें दयानन्दका रेजुलेशन है कि अन्नसे वीर्य और वीर्यसे शरीर होता है परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती, क्योंकि जब स्त्री पुरुषोंके शरीर ईश्वर बनाकर उन में जीवोंका संयोग कर देता है, तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है। दयानन्द के इस लेख का अभिप्राय यह होता है कि आदि सृष्टि के नर नारी विना ही माता पिता के उपजे हैं, दयानन्द का यह लेख प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके विरुद्ध है क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणसे देखा जाता है कि जब पहिले स्त्री पति दोनों समागम करते हैं तो पश्चात् स्त्रीके गर्भाशयमें रजवीर्य इकट्ठे होते हैं, तत्पश्चात् नर नारीके शरीरों को ईश्वर रचता है। प्रत्यक्ष प्रमाण की सहायतासे लाखों वर्ष गुजर गये, और लाखों आगे आने वाले वर्षों का अनुमान प्रमाणसे अनुमित ज्ञात होता है कि स्त्री पुरुष प्रवाहरूप से चले आये और चले जावेंगे सृष्टि के दयानन्दोक्त आदि अन्त का सर्वथा अत्यन्ताभाव है, उस से दयानन्दोक्त उत्पत्ति प्रलयके प्रतिपादक सर्वलेख श्वान सींग के सदृश असंभव अनर्थ प्रतिपादक सिद्ध होचुके। यद्यपि वेदान्ती लोग भी उत्पत्ति प्रलय मानते हैं, तथापि वेदान्ती लोग दयानन्दोक्त उत्पत्ति प्रलयको नहीं मानते, किन्तु वेदान्ती लोगोंका वेदादि प्रमाणों औरयुक्ति से युक्त यह सर्वोत्तम सिद्धान्त है कि आत्माके न जाननेसे नामरूप और क्रिया-

स्मरक जगत् का भान होना वही जगदुत्पत्ति है। आत्मज्ञानसे जगत्का अदर्शन होना, वही प्रलयहै इस पर वेदान्ती लोगोंने स्वप्नका मुख्य उदाहरण दिया है स्वप्नके उदाहरणको कोईभी मतवादी खण्डन नहीं कर सकता, दयानन्दोक्त लेखसे जगत्की उत्पत्ति उन्मत्त प्रलापके समान मिथ्याहै फिर आठवें समुल्लास ही में दयानन्दका दूसरा मिथ्या लेख है॥

जैसे कि ईश्वरने आदि सृष्टिके नर नारी बाल अथवा वृद्ध अवस्थामें नहीं रचे थे किन्तु यौवनावस्था ही में रचे थे। दयानन्दके इस लेख पर वेदादि प्रमाण तो मिल ही नहीं सकते और प्रत्यक्षादि प्रमाणों तथा वेदान्तकी युक्ति से भी यहलेख खरसींगके सदृश मिथ्या होताहै। वेद और निरुक्तादिके प्रमाणों से तो यही सिद्ध हुआ है कि स्त्रीपुरुषके समागम से स्त्रीके गर्भाशय में रजवीर्य्य एकत्र होते हैं फिर ईश्वर के ज्ञान इच्छा प्रयत्नसे दश महीनेमें क्रम से लड़का लड़की पैदा होते हैं। पहिले लेखमें दयानन्दने लिखा है कि ईश्वर ने वीर्य से पहिले शरीर बनाये फिर शरीरों में जीवोंका संयोग कराया, वेद-भाष्य में भी दयानन्द ने इसी भूल को बहाल रक्खा है। फिर दूसरे लेख में दयानन्दका अनुलेपन है कि आदि सृष्टिके शरीर ईश्वरने यौवनावस्था में रचे थे। यहां आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये, कि दयानन्दमतवाले आदि सृष्टि में नर नारीके यौवन शरीर मुर्दे थे अथवा जीते थे। यदि जीते कहो तो शरीर बनाकर जीवोंका संयोग ईश्वर ने कराया दयानन्दका यह लेख मिथ्या होगा यदि कहो कि वह यौवनावस्था के शरीर मुर्दे थे तो मुर्दोंमें जीवका संयोग कराना भी प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके विरुद्ध है॥

(किंच) दयानन्द ने पहिले लेख में केवल वीर्य हीसे शरीरकी रचना लिखी है रजका नाम लिखा ही नहीं। ग्यारहवें समुल्लास में काशीने सरक्यूलर जारी कर दिया है कि माता पिताके समागम और रजवीर्य्यसे ही नर नारी उत्पन्न होते हैं। आठवें समुल्लास में दयानन्दका कथन है कि जो माता पिताके बिना सन्तानकी उत्पत्ति कहता है वह पागल है। आर्य-मत वाले ईश्वर ने अन्न से वीर्य रचकर न जाने रक्खा कहां था, नर नारी का उस समय अत्यन्ताभाव था। हां दयानन्दोक्त ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के लेखसे इतना तो पता मिल सकता है कि जगदुत्पत्तिके पहिले दो पदार्थ थे, एक ईश्वर और दूसरी ईश्वरकी सामर्थ्य, दयानन्द वहां लिखता है कि उस समय परमाणु और प्रधान भी नहीं थे। अब विचारना चाहिये कि पहिले जब प्रकृति परमाणु भी नहीं थे, तो आर्यमत वाले ईश्वरने प्रकृति

परमाणुको नास्ति से अस्ति में कौन युक्ति से किया था. और उस ईश्वरने वीर्य अपने में रक्खा था वा अपनी सामर्थ्य में ? । यदि सामर्थ्य में कहो तो वह सामर्थ्य स्त्री अथवा पुरुष था ? । यदि स्त्री कहो तो स्त्री में वीर्यका रखना डाक्टरीसे और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरुद्ध होगा। क्योंकि डाक्टरी और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे यही बात साबित है कि स्त्री में रज होता है वीर्य स्त्री में नहीं होता किन्तु वीर्य पुरुष ही में होता है। यदि कहा जाय कि ईश्वर ने अपने ही में वीर्य रक्खा था. तो ईश्वर साकार सिद्ध होगा और ईश्वरकी सामर्थ्य भी साकार सिद्ध होगी. किन्तु ईश्वर खसम सिद्ध होगा और सामर्थ्य उसकी जोरू साबित हो जावेगी दयानन्दके लेखोंसे जाना जाता है कि उसको सृष्टिक्रम का कुछ भी ज्ञान नहीं था किन्तु किसी मनुष्यका नाम उसने ईश्वर रक्खा था और उसकी स्त्री का नाम सामर्थ्य रक्खा था परन्तु दरोगहल्फी से बाबा जी के पूर्वोक्त सर्व लेख झूठ हैं॥

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाआवृत्ति १ प्रकरण उपासना॥

यहां दयानन्द ने लिखा है कि समाधि के समय केवल एक ईश्वर के आनन्दस्वरूप ज्ञान में जीवात्मा मग्न हो जाता है वहां ध्याता ध्यान ध्येय इन तीनोंका भेद भाव नहीं रहता। यहां आर्य समाजियोंसे पूछना चाहिये कि समाधिके समय ध्याता ध्यान ध्येय तीनोंके भेदभाव का न रहना अभावस्वरूप है अथवा भावस्वरूप. यदि भावस्वरूप कहो तो आप विद्याहीन सिद्ध होंगे. क्योंकि निषेधका भावस्वरूप कोई भी विद्वान् नहीं कहता, यदि कहो कि समाधिके समय ध्याता ध्यान ध्येय तीनोंका न रहना अभाव स्वरूप है तो समाधि से उत्थान के समय उक्त त्रिपुटि का भाव न होना चाहिये। उभयपाशारज्जुन्याय से आर्यसमाजियों का छूटना ही असम्भव है।

(किंच) आर्यसमाजियोंसे पूछना चाहिये कि आप जीवेश्वरका भेद मानते हैं. अथवा अभेद, यदि भेद कहो तो ईश्वर व्यापक न होगा, क्योंकि ईश्वर की व्यापकता को वह भेद छिन्न भिन्न कर डालेगा। (किंच) भेद साकार सावयव है अथवा निराकार निरवयव. यदि कहो कि भेद साकार सावयव है, तो घट पटादिकोंके सदृश वह भेद उत्पानाशी होगा। यदि कहो कि भेद निराकार निरवयव है, तो प्रत्यक्षादिप्रमाणोंसे भेदकी सिद्धि न होगी। कालसिंहपान्याय से आर्यसमाजियों का बचाव न होगा। यदि कहो कि जीवेश्वरका अभेद है तो कहिये सर्वज्ञ अल्पज्ञादि गुणों सहित जीवेश्वरका अभेद है. वा केवल चेतन स्वरूपमें अभेद है. यदि केवल चेतनमें अभेद कहो

तो आप वेदान्तियोंके चेले बन जावेंगे यदि कहो कि सर्वज्ञ अल्पज्ञादि गुणों के सहित जीवेश्वरका भेद है, तो आप भूतमचन्द सिद्ध हो जावेंगे। क्योंकि सर्वज्ञ अल्पज्ञादि गुणों का परस्पर विरोध अनुभव सिद्ध है। अनुभव सिद्ध बात किसी युक्ति वा प्रमाणसे खण्डन नहीं हो सकती।

खैर जो हो, उक्त लेखके विरुद्ध सत्यार्थप्रकाश के सातवें और ग्यारहवें समुल्लास में बाबाजी ने जीव ब्रह्म का भेद ही लिखा है। आठवें समुल्लास में भी दयानन्दने इसी अमुलेशन को पास किया है। परन्तु झूठी दरोग-हलफी होनेके कारण दयानन्दके ये दोनों लेख भी झूठे हैं।

(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८—जन्माद्यस्य यतः) इस व्यास सूत्रके भाष्य में दयानन्द ने प्रकृति का स्वरूपसे अनादि वर्णन किया है। यहां आर्यसमाजियों से पूछना चाहिये कि आप की प्रकृति निराकार निरवयव है, वा साकार सावयव। यदि निराकार निरवयव कहो तो वह साकार सावयव जगत्का उपादान कारण न होगी। यदि कहो कि प्रकृति साकार सावयव है तो प्रकृति अनादि न रहेगी। (किंच)—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः० ।

इसको दयानन्दने आठवें समुल्लासमें लिखा है, इस के भाष्य में प्रकृति को रज तम सत् तीन गुणोंका कार्य लिख मारा है। कहीं प्रकृति को तीन गुणोंका कार्य, कहीं प्रकृतिको बाबा जी ने अनादि लिखा है। परन्तु झूठी दरोगहलफीसे दयानन्दके ये दोनों लेख भी झूठे हैं॥

(किंच)-प्रकृतिको यदि निराकार निरवयव मानें तो वह नाना भांति के नामरूप और क्रियात्मक प्रपञ्चस्वरूप परिणाम को प्राप्त न होगी। यदि प्रकृति को साकार सावयव कहें तो वह अनादि सिद्ध न होगी। परन्तु उभयपाशारज्जुन्यायसे आर्यों का ढोलका पोल निकल खड़ा होगा। अब सर्व सज्जनोंको प्रकाशित किया जाता है कि इस व्याख्यानमें हमने दयानन्दोक्त वेदभाष्यकी दरोगहलफीका वर्णन किया है। सत्यार्थप्रकाश आवृत्ति तीसरी समुल्लास तेरहकी समाप्ति में दयानन्द ही ने झूठी दरोगहलफी का स्वरूप लक्षण प्रकाशित करदिया है। आर्यसमाजियों को विदित किया जाता है कि दयानन्दोक्त वेदभाष्य को सच्चा साबित करें जिस से आर्यों का वेदमत सिद्ध होवे, यदि दयानन्दोक्त वेदभाष्य निर्दोष न हुआ, तो प्रकाशित हो जावेगा कि आर्योंने वेदका नाम लेकर हिन्दुसन्तानों को धोखा दिया है, असल में आर्यों का वेदविरुद्ध मज़हब है॥ ओ३म् शांतिः ३॥

बड़वासर्वस्वनाशकस्वप्न ।

व्याख्यान नं० २९

ओ३म्-शंनोमित्रः शंवरुणः शंनोभवत्वर्यमा । शंनः इन्द्रो वृहस्पतिः शंनोविष्णुरुरुक्रमः ॥ नमोब्रह्मणे नमस्ते वायो ! त्वमेवप्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि । ऋतंवदिष्यामि सत्यंवदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतुमाम् । अवतु वक्तारम् ॥

प्रार्थनात्मक मंगल करने के पश्चात् वड़वासर्वस्वनाशक स्वप्नव्याख्यान प्रकाशित किया जाता है (तथाहि) सन् १९०८ ईसवी ता० १ अगस्त को अन्तरिक्ष में फिर निराकार ईश्वर का हाईकोर्ट इजलास लगा निराकार साहिब तखत पर विराजे प्रकृति मेम साहिबा भी साहिब की बगल में बैठीं । नाजिर चित्रगुप्त से लेके सर्व कर्मचारी निज २ कमरे में आ बैठे सवाल खानी भी हो चुकी दो यमदूत एक चालान के गले में रस्सा डालकर गुर्जों से मारते हुए इजलास में ले आये और पिंजरे में खड़ा कर दिया साहिब ने पूछा वल टुमारा नाम क्या है मुलजिम ने जवाब दिया कि मेरा नाम अपानवायुदत्त है । साहिब ने बाप का नाम पूछा मुलजिमने बाप का नाम प्राणदत्त बतलाया, साहिब ने मकान पूछा मुलजिम ने धामपुर लिखाया साहिब ने जाति पूछी मुलजिम ने ब्राह्मणत्व जाति लिखाई । साहिब ने सवाल किया कि वेल टुम ने सागर संन्यासी की झूंठी निन्दा करी है मुलजिमने जवाब दिया कि मैंने निन्दा नहीं करी ।

इस पर नाजिर चित्रगुप्त साहिब उठे और रोजनामचे के बस्ते में से खुफिया रिपोर्ट निकाली और निराकार साहिबको सुनाने लगे कि ऐ ! निराकार साहिब ! मुलजिम अव्वल दर्जे का गप्पी लालबुझक्कड़ है इस ने सागर की झूंठी निन्दा अनेक वार करी है । एक कलकत्ता से आर्यावर्त्तपत्र निकलता था उस का यह एडीटर था उस पत्र पर सागर की निन्दा छापता रहा । लाहौर से एक मित्रविलासपत्र निकलता था उस में ऐसे मजमून उधार सागरने छपवाये कि आर्यावर्त्त पत्र बन्द हो गया आठ महीने के

पश्चात् दानापुर में आर्यावर्त्त पत्रका फिरसे प्रादुर्भाव हुआ और सागरकी निन्दा फिर मुलजिम छापने लगा परन्तु मित्रविलासमें फिर सागरने युक्ति प्रमाण से ऐसे मजबूत उत्तर दिये कि दानापुर से भी आर्यावर्त्तपत्र का तिरोभाव हो गया। फिर वह पत्र छोटा नागपुर रांची में जा निकला। परन्तु सागर के मजबूत उत्तर रूपी खड्गसे यहां तक आर्यावर्त्तपत्र के टुकड़े हुए कि सर्वथा उसका अत्यन्ताभाव होगया। फिर मुलजिम बांकीपुर में रहने लगा वहां सागरकी झूंठी निन्दाका इसने एक आला हृदयान्धकार मार्तण्ड पुस्तक छपवा डाला उसका उत्तर रामानुग्रह त्रिवेदी ने ऐसी मजबूती से देकर एक आलाहृदयान्धकारमार्तण्ड प्रत्युत्तर वज्र पुस्तक छपवा डाला कि उस को देखते ही मुलजिम मारा शर्म का उत्तर देश को छोड़कर बम्बई में जा रहा वहां वेंकटेश्वरप्रेस में हिन्दू जा बना राममूर्त्ति का पूजन करने लगा प्रेस में नौकर हो गया परन्तु वहां शराब पीकर रामनारायण वाजपेई के साथ लड़ पड़ा प्रेस की नौकरी से मुलजिम निकाला गया क्योंकि मुलजिम पहिले ही से कट्टर आर्यसमाजी दयानन्द का गुलाम था। मुंगेर गोरखपुर गया इत्यादि नगरों में यह मूर्त्तिपूजा की निन्दा करने पर मार खा चुका था। मूर्त्तिकी निन्दा करना वृटिश रूलके भी विरुद्ध है। बम्बई गोस्वामी देवकीनन्दनके मकान में सागरने मूर्ति पूजा पर व्याख्यान दिये थे। वहां इस ने एक आर्यपत्र के एडीटर से सागर की निन्दा के नोटिस छपवाकर वटवा दिये सो भी इस ने वृटिश रूलके विरुद्ध काम करा था। सागर ने उस पर चैलेंज दिया कि बम्बई आर्यसमाज का सेक्रेटरी वा प्रेसिडेण्ट हस्ताक्षर कर पत्र देवे कि नीति और विद्वत्ता से आर्य लोग मूर्त्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। परन्तु ऐसे हस्ताक्षर आर्य समाजियोंकी ओरसे नहीं हुए तो सागर जी सूरत को चले गये।

अब यह बड़वा मुलजिम बम्बई वेंकटेश्वरप्रेसके दूसरे मकान की तीसरी छत के पायखाने की कोठरी में छिपा बैठा था वहां से यमदूत पकड़ कर लाये हैं। इतनी स्पीच देकर नाजिर जी आराम कुर्सीपर बैठ गये निराकार साहिबने बड़वासे पूछा कि वेल नाजिर जी का वर्णन क्या सही है बड़वाजी लाजवाब हुए। साहिबने पूछा वेल टुम बम्बईमें क्या इकला रहटा था बड़वा ने जवाब दिया कि हां मैं अकेला ही बम्बई में रहता था। इस को सुनकर फिर चित्रगुप्त नाजिर जी उठे और साहिब से कहा कि हजूर

बड़वा, मिथ्यावादी है। क्योंकि बम्बईमें इसके भाई भतीजे आदिकोंका नक्कार खाना था नीचे ऊपरकी छत तक बड़वा जातिके लोगोंने वह मकानही किराये पर लेलिया था। बड़वाकी ब्राह्मणत्व जाति नहीं किन्तु बड़वाकी बड़वात्व जाति है। यह लोग गाने बजाने नाचनेका पेशा करते हैं। हिन्दू लोग इन का छुआ पानी तक नहीं पीते, ये अत्यन्त नीच जातिके लोग होते हैं। अपान वायुदत्त बड़वाने यथासंभव सिर्फ सिद्धान्तकौमुदी को पढ़ा है। परन्तु शब्द अशुद्ध बोलता है, दयानन्दके ग्रन्थोंको ही इसने देखा है, न्याय मीमांसा वेदान्त इत्यादि पदार्थ विद्या के ग्रन्थोंका इस को कुछ भी शब्द बोध नहीं, बड़वा की पोल खोलकर फिर नाजिरजी बैठ गये ॥

इतने में एकान्तवासी योगी ब्रह्मनाथ बैरिष्टर जी इजलास में आ खड़े हुए। और बड़वासे सवाल किया कि दयानन्दका वेदमत है, अथवा वेदके विरुद्ध? बड़वाने जवाब दिया कि दयानन्दका वेदमत है। बैरिष्टर जी ने सवाल किया कि दयानन्दकृत ग्रन्थोंमे तुमने दयानन्दका वेदमत निश्चय किया है अथवा किसी दूसरे कारण से? बड़वा ने जवाब दिया कि दयानन्दकृत ग्रन्थों हीसे हमें ज्ञात हुआ है कि दयानन्दका वेदमत था। बैरिष्टर ने सवाल किया कि दयानन्दकृत ग्रन्थ सो सबके सब कुत्तेके सींग समान झूंठे हैं, क्या वेद भी वैसा है। बड़वा ने जवाब दिया कि दयानन्दकृत ग्रन्थ सच्चे हैं, उनमें जरा भी झूंठ नहीं, इस से दयानन्दका वेदमत है। बैरिष्टर जीने सवाल किया कि दयानन्दकृत ग्रन्थोंके तीन हजार झूंठ सागर जी ने दर्शाये हैं, जो कि हिन्दुधर्मव्याख्यानदर्पणमें पं० भीमसेनजी छाप रहे हैं, और आर्य समाज की ओरसे उसका अबतक कुछ भी उत्तर नहीं मिला, उससे दयानन्दके मतको वेदोक्त वर्णन करना सर्वथा गपोड़बाजी है। बड़वा ने कहा कि दिखाइये दयानन्दकृत ग्रन्थों में कहां झूंठ है। इसको सुनकर स्वच्छ इजलास में बैरिष्टर जी जवाब देने लगे ॥

(तथाहि) देखो तीसरी आवृत्ति सत्यार्थप्रकाश समुल्लास सात

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

इसके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि कमरकी हड्डीमें मन स्थिर करे। दयानन्दके इस लेख से साकार कमर की हड्डी में मनका स्थिर करना सिद्ध हो चुका, क्योंकि कमरको हड्डीका निराकार होना सर्वथा असंभव है। फिर उसके विरुद्ध उसीका समुल्लास ११ (नास्तिको वेदनिन्दकः) इत्यादिके

भाष्यमें दयानन्दने निराकार में मनका स्थिर होना लिखा है। यदि दया नन्दके पहिले लेखको सच्चा मानें तो दूसरा झूंठा, यदि दूसरेको सच्चा मानें तो पहिला झूंठा होता है। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के दोनों लेख झूंठ हैं, इससे दयानन्दका वेदमत नहीं। इसी सत्यार्थप्रकाशका समुल्लास ३-

धर्म्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्म्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ।

इस वैशेषिक सूत्रके भाष्यमें दयानन्द ने रूल पास किया है कि पृथिवी और जल जड़ हैं। इनके स्वरूप ज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है, दयानन्दके इस लेखसे, जड़ पदार्थोंके ज्ञान से मोक्षकी प्राप्ति सिद्ध हो चुकी। फिर इसके विरुद्ध इसीके नववें समुल्लासमें ब्रह्मज्ञानसे मोक्षका होना कहा है। यहां भी यदि प्रथम लेख को सत्य माना जावे तो दूसरा झूंठा, यदि दूसरेको सत्य कहें तो पहिला झूंठा होता है। परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दके ये दोनों लेख भी झूंठे हैं, इससे भी दयानन्दके मतको वेदमत कथन करना असंगत है ॥

इसीका समुल्लास ३ (तद् दुष्टं ज्ञानम्) (अदुष्टं विद्या) इन दो वैशेषिक सूत्रोंके भाष्यमें दयानन्दने यथार्थ ज्ञानको विद्या, और अयथार्थज्ञानको अविद्या कहा है, फिर इसके विरुद्ध इसीका समुल्लास ९-

(वेत्ति यथावत्तत्त्वपदार्थस्वरूपं यया सा विद्या) (यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति यया साऽविद्या)

इन वाक्योंके भाष्यमें दयानन्द ने यथार्थ ज्ञानके साधनको विद्या और अयथार्थ ज्ञानके साधनको अविद्या कहा है। परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्द के ये दोनों लेख भी झूंठे हैं। इसीका समुल्लास ८-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानाम्०।

इसके भाष्यमें बाबाजी ने प्रकृतिको अनादि वर्णन किया है। फिर इसके विरुद्ध इसी समुल्लास में-

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्०।

इस सूत्रके भाष्य में दयानन्दका रूल है कि सत्त्व रज तम तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है, वह प्रकृति है दयानन्दके इस लेख से प्रकृति

उत्पत्ति यानी सिद्ध हो चुकी। परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दके ये दोनों लेख भी झूठ हैं। उसी का समुल्लास ८—

नासतोविद्यतेभावो नाभावोविद्यते सतः।

इस गीतावाक्य के भाष्य में दयानन्दका कूल है कि—अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है, परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती। दयानन्दके इस लेखसे सिद्धान्त यह सिद्ध हो चुका कि आदि सृष्टि के नर नारी पिताके समागमसे नहीं उत्पन्न हुए। फिर इसके विरुद्ध समुल्लास वही—

मम माता पितरौ न स्तोऽहमेवमेवजातः।

इस के भाष्यमें दयानन्द का कूल है कि मेरे माता पिता नहीं थे, ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं ऐसी असम्भव बात पागल लोगोंकी होती है। ग्यारहवें समुल्लास में भी दयानन्दका यही कूल हस्वजैल है। दयानन्दके इस कूलसे सिद्ध हो चुका कि माता पिता के बिना नर नारी की उत्पत्ति नहीं होती। परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दके ये दोनों लेख भी झूठे हैं। उसी का समुल्लास ३—

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति।

इसके भाष्यमें दयानन्दका लेख है कि शूद्र को वेद न पढ़ावे फिर इस के विरुद्ध उसी समुल्लास में—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः०।

इसके भाष्य में दयानन्द ही का लेख है कि शूद्र को भी वेद पढ़ावे। यदि पहिले लेखको सत्य मानें तो दूसरा मिथ्या, यदि दूसरे लेख को सत्य मानें तो पहिला लेख मिथ्या होता है। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्दके ये दोनों लेख भी झूठे हैं॥ उसी का समुल्लास ३—

ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन्यस्मिन्देवाअधिविश्वे० ॥

इस मन्त्रके भाष्यमें दयानन्दका कूल है कि ब्रह्मचर्य में गाना बजाना नाचना भी सीखे। फिर उसके विरुद्ध समुल्लास वही—

कामंक्रोधंचलोभंच नर्त्तनङ्गीतवादनम्॥

इसके भाष्यमें बाबाजी ने वर्णन किया है कि ब्रह्मचर्यमें गाना बजाना और नाचना कभी न देखे न सुने। परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दके ये दोनों

लेख भी झूंठे हैं । सत्यार्थप्रकाश—प्रकरण वावन मन्तव्यका मन्तव्य १६ दयानन्द का लेख है कि गुण कर्मोंकी योग्यता से मैं वर्णाश्रम व्यवस्था मानता हूं । फिर इसके विरुद्ध—संस्कारविधि प्रकरण नामकरण संस्कार ।

वहां दयानन्द के लेख से जन्म ही से वर्णाश्रम व्यवस्था सिद्ध हो चुकी है, परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दके यह दोनों लेख भी झूंठे हैं । (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १०) दयानन्द का रूल है कि ब्राह्मणादि तीन वर्ण शूद्र के हाथ की बनाई रसोई खावें । फिर इसके विरुद्ध उसी समुल्लास में दयानन्द के लेखसे साबित है कि ब्राह्मण ब्राह्मणी के हाथ की बनाई रसोई खावें, क्योंकि ब्राह्मण ब्राह्मणी के रजवीर्यमें दुर्गन्ध रहित परमाणु होते हैं। यदि पहिला लेख सच्चा कहो तो दूसरा झूंठा, और दूसरे लेख को सच्चा मानें तो पहिला लेख झूंठा होता है । परन्तु दरोगहलफीसे बाबा जी केये दोनों लेख भी झूंठे हैं । उसी का समुल्लास १०—

आर्य्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः ।

इसके भाष्यमें दयानन्दका अनुलेशन है कि जब शूद्र और शूद्री आर्यों के घरमें रसोई बनावें तो मुख बांधके बनावें क्योंकि उनके मुखसे निकला हुआ उच्छिष्ट और श्वास अन्न में न गिरे । दयानन्द के इस लेखका यही सिद्धान्त है कि रसोईके समय जब शूद्र शूद्री मुख बांधलेंगे तो मुखसे गिरा थूक और श्वास अन्न में न गिरेंगे, उससे अन्न न बिगड़ेगा । फिर उसके विरुद्ध उसीका समुल्लास १२ । वहां दयानन्दका लेख है कि जो मुख पर कपड़ा बांधता है तो उस के मुख का वायु रुक के इकट्ठा होकर बड़े वेग से नीचेके द्वार से निकलता है। अब कहिये वहुवाजी रसोई के समीप मुख बांधने रूपी हेतुसे जब मुखसे निकला थूक और श्वास अन्न में न गिरेंगे, तो नीचे से निकला वायु अन्न में गिरेगा, अथवा नहीं, खैर जो हो । यदि पहिला लेख सच्चा मानें तो दूसरा झूंठा, और दूसरे लेखको सच्चा मानें तो पहिला झूंठा होता है । परन्तु दरोगहलफीसे दयानन्दके ये दोनों लेख भी झूंठे हैं उसीका समुल्लास १०—

केशान्तःषोडशेवर्षे ब्राह्मणस्यविधीयते ।

इस श्लोकके भाष्यमें दयानन्दका अनुलेशन है कि शीतप्रधान देशमें जितने जी चाहे उतने बाल रक्खे परन्तु उष्णप्रधान देशमें शिखा सहित सब कटवा डाले, क्योंकि उष्णप्रधान देशमें बाल रखनेसे गर्मी होती है, उससे बुद्धि

कम हो जाती है, भोजन भी ठीक नहीं खाया जाता, क्योंकि डाढ़ी मोंछ में जूंठन फंस रहती है। दयानन्द के इस रूल के अनुसार आर्यों को चाहिये कि जैसे बाबा जी थे, वैसे ही शिखा सहित डाढ़ी मोंछ मुंड़वा कर होजावें। यदि ऐसा न करेंगे तो गर्मी से आर्यमत वाले नर नारियों की बुद्धि कम हो जावेगी। जो हो, उस के विरुद्ध उसीका समुल्लास ११ (प्रकरण ब्राह्मसमाज) वहां दयानन्द का लेख है कि जो शिखा सूत्र उतार देता है वह मुसलमानों और ईसाइयों के सदृश हो जाता है। दयानन्द के ये दोनों लेख भी दरोग-हलफी से झूंठे हैं समुल्लास ५—

लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्च० ।

इस श्रुति के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि संन्यासी धन आदि की इच्छा भी छोड़ देवे। फिर इस के विरुद्ध समुल्लास वही—

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ।

इस गप्प श्लोक के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि संन्यासी को रत्न सुवर्णादि भी देवे। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के ये दोनों लेख भी झूंठे है उसी का समुल्लास ११—

येस्तरन्ति तानि तीर्थानि ।

इस वाक्य के भाष्य में दयानन्द का लेख है कि जल थल तीर्थ नहीं किन्तु नौका जहाजादि तीर्थ है। फिर इस के विरुद्ध—उणादि कोष पा० २ सू० ७ के भाष्य में—

तरन्ति येन यत्र वा तत्तीर्थम् ।जलाशयो वा ॥

यहां दयानन्द ने जल स्थल को भी तीर्थ कहा है। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के ये दोनों लेख भी झूंठे हैं।

(आर्य्याभिविनय) (सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्ना०)

इस मन्त्र के भाष्य में दयानन्दने पुस्तक ही को वेद कहा है, फिर इस के विरुद्ध-(वेदभाष्यभूमिका आवृत्ति १ वेदोत्पत्तिप्रकरण)

वहां दयानन्द ने कहा है कि पुस्तक वेद नहीं। परन्तु दरोगहलफी से दयानन्द के ये दोनों लेख भी झूंठे हैं

सन् १८७५ का सत्यार्थप्रकाश समुल्लास २—

ओम्—सम्बन्धिभ्यो मृतेभ्यः स्वधानमः ।

इत्यादि वाक्यों के भाष्य में दयानन्दका लेख है कि मरगये का तर्पण करे जीवितों का न करे। यहां आठवें पृष्ठ पर बाबा जी ने मरे पितरों के श्राद्ध तर्पण वर्णन किये हैं। फिर उस के विरुद्ध दूसरा सत्यार्थप्रकाश आवृत्ति ३ समुल्लास ४—

श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम् । तृप्त्यर्थं यत्क्रियते तत्तर्पणम्॥

इस के भाष्य में दयानन्द ने मृतकश्राद्ध लिखा है। वाक्य पहिले सत्यार्थप्रकाश से लिये हैं,किन्तु मृतक शब्द उन वाक्यों में से निकाल दिया है। परन्तु दरोगहलफी से श्राद्ध विषयक भी दयानन्द के दोनों लेख झूंठे हैं॥

इसी भांति से श्रीमान् श्री १०८ स्वामी आत्माराम सागर संन्यासी जी ने दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों के तीन हजार झूंठ दयानन्दोक्त दरोगहलफी से दर्शाये हैं, सो सनातनहिन्दूधर्म व्याख्यान दर्पण में छपाते जाते हैं। अब बड़वा जी पक्षपात छोड़कर बतलाइये कि आप के बाबा जी दयानन्द का वेदमत था अथवा वेदविरुद्ध मत था। इस को सुन अपानवायुदत्त बड़वा लाजवाब हुए, फिर बोले कि हम दयानन्द कृत ग्रन्थोंको नहीं मानते, किन्तु हम वेद को मानते हैं, बारिष्टर जी ने कहा कि जब तुम दयानन्दकृत ग्रन्थों को नहीं मानते तो आर्यमत जो कि दयानन्द ने खड़ा किया है। उस के पक्षी क्यों बनेहो, इसको सुनकर बड़वा पिंजरे ही में सारंगी बजाने लगा-और नाचता हुआ गीत गाता है कि—

वस्तु स्वदेशी राज स्वदेशी, इनके बानी हमीं तो हैं।
शिर जानेपर हम न हटेंगे, बड़वा ज्ञानी हमीं तो हैं॥

इसको सुनकर एक यमदूतने अपानवायुकी गर्दनपर ऐसा डंडा ठोंका कि अपानवायुदत्तकी गर्दन टूट पड़ी॥

इतनेमें यमदूतों ने तीन चालान इजलासमें और पेश किये उनमें से दो लड़के और एक बुड्ढा था निराकार साहिब ने उन तीनों से नाम वगैरह पूंछे, उनमें से एक लड़का सारंगी बजा कर गीत गाता है॥

नाम हमारा गप्पू भाई, बड़वा जाति हमीं तो हैं।
धामपुरे के हम हैं बासी, बड़वा नाती हमीं तो हैं॥

इसको सुनकर साहिब ने उसे कालयन्त्र नामा जेलमें रवाना कर दिया। फिर दूसरा लड़का सारंगी बजा कर गीत गाता है।

वड़वा के हम सगे भतीजे, आर्यमतिये हमीं तो हैं।
आर्यमतमें ब्राह्मण बन गये, पहिले वड़वा हमीं तो हैं॥

इसको सुनकर एक यमदूत ने उसे उठाकर रुरु नामके नरकमें जा फेंका, फिर वुड्ढे वड़वा ने सारंगी पकड़ी और नाचता हुआ गाता है॥

वम्बई नगर खेतवाड़ी में, अब तो रहते हमीं तो हैं।
असली वासी धामपुरे के, वड़वा भाता हमीं तो हैं।

इसको सुनकर निराकार साहिब ने सवाल किया कि वेल तुमारे पुत्र ने वम्बई में नोटिस भी बांटे थे, वुड्ढ वड़वाने जवाब दिया कि हां हुजूर सुना जाता है कि हमारे बड़े पुत्र ने नोटिस बांटे थे, साहिब ने पूछा कि उस नोटिसको तुमने भी पढ़ा था, वुड्ढे वड़वाने जवाब दिया कि हां पढ़ा था, साहिब ने पूछा कि नोटिस पर सागरकी निन्दा छपी थी, वुड्ढे वड़वा ने जवाब दिया कि हां छपी थी, परन्तु वह निन्दा आर्यसमाजकी ओर से नहीं थी, किन्तु आर्यपत्रके एडीटर और अपानवायुदत्त की ओर से वह निन्दा छपी थी, साहिबने यमदूतों द्वारा एडीटर को तलब कर लिया और उस से नाम वगैरह पूछे, उस ने कहा कि मेरा नाम रामदत्त वर्मा, वाप का नाम कामदत्त शर्मा, जाति गड्डमगड्डा, मकान अन्धेर नगरी। साहिब ने पूछा कि तुमने सागरकी निंदाका नोटिस छापा है, एडीटर ने जवाब दिया कि मैंने नोटिस नहीं छापा, इस को सुन कर चित्रगुप्त नाजिरने रोजनामचे को खुफिया रिपोर्ट निकाली और निराकार साहिब को दर्शा दिया कि एडीटर ने नोटिस और आर्यपत्र पर सागर की झूंठी निन्दा छापी है। यह झूंठ बोलता है कि हमने झूंठी निन्दा नहीं छापी साहिबने एडीटरको तिलयन्त्र नामक जेल में रवाना कर दिया॥

इतनेमें दो यमदूतों ने एक गुजराती पण्डितको इजलासमें पेश किया निराकार साहिबने उससे भी नाम वगैरह पूछे, गुजराती पण्डित ने जवाब दिया कि मेरा नाम लोभदत्तशर्मा, वापका नाम मिथ्यादत्त वर्मा, पेशा शास्त्रार्थ करना, मकान स्वप्नगढ़ (जिला खास)। इसको सुनकर एकान्तवासी योगी ब्रह्मनाथ वरिष्टर जी उठे और लोभदत्त शर्मासे पूछा कि स्वप्नगढ़ जिला के मन्दिर में आर्यों की ओर से तुम्हीं ने शास्त्रार्थ किया था, उसने कहा कि हां हमीं ने शास्त्रार्थ किया था, वारिष्टरजी ने पूछा कि शास्त्रार्थका

विषय क्या था, लोभदत्त ने जवाब दिया कि एक श्राद्ध और दूसरा वर्णव्यवस्था विषय था । बारिष्टर साहिब ने पूछा कि शास्त्रार्थ का परिणाम क्या निकला, लोभदत्त ने जवाब दिया कि आर्य्यमत का जय और हिन्दुमत का पराजय ही शास्त्रार्थ का परिणाम निकला ॥

इस को सुनकर फिर चित्रगुप्त नाजिर जी खड़े हुए, और रोजनामचा के बस्ते में से एक खुफिया रिपोर्ट की लिस्ट निकाली, निराकार साहिबको सुनाना प्रारम्भ कर दिया, कि हे! निराकार साहिब ! स्वप्नगढ़ जिलाशास्त्रार्थ का ठीक २ समाचार वक्ष्यमाण रीतिसे है, हिन्दु पण्डित और आर्य पंडित स्वप्नगढ़ जिलामें शास्त्रार्थ करने लगे, हिन्दु पण्डितों ने बड़ोदासे सागरजी को भी तलब कर लिया, इस बात को सुनते ही आर्यों ने पुलिसमें इत्तिला दी कि सागर बलवा कर डालेगा, इस को सुनकर तीस कानिष्टेबल और एक फौजदार बन्दूकें और पिस्तोल लेकर शास्त्रार्थ के मकानमें आ खड़े हुए, परन्तु सागर जी को शान्त हृदय पुलिसने देखा और आर्योंको मिथ्यावादी जाना, फिर हथियार बन्द पुलिसमैन नहीं आये, आर्य पण्डितोंने मृतक श्राद्ध को न तो ठीक २ खण्डन किया, और न जीवित श्राद्ध को मण्डन किया । वर्णव्यवस्था में भी आर्यपण्डितों ही का पराजय हुआ क्योंकि आर्य्यपण्डित गुण कर्म्मोंसे वर्ण व्यवस्था सिद्ध करने लगे, परन्तु सिद्ध न कर सके, (तथाहि) आर्य्य पण्डितोंने—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यःकृतः ।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्याᳫंशूद्रोअजायत ॥

इस यजुर्वेद के मंत्र का प्रमाण दिया और इस मंत्र का भाष्य किया कि ईश्वरके विद्या आदि गुणोंसे ब्राह्मण, शूरतादि गुणोंसे क्षत्रिय, खेती वणिज व्यापारादि गुणोंसे वैश्य और मूर्खतादि गुणोंसे शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ ॥

इस को सुनकर सागर ने कहा कि ये तो दयानन्द का अर्थ है, बड़वा तो दयानन्दकृत अर्थ को मानता ही नहीं और ईश्वरमें मूर्खता आदि गुणों का होना सर्वथा असंभव है । क्योंकि मूर्खतादि गुण जीवमें हो सक्ते हैं वेदोंके निरुक्त कोष में मुखादि शब्दोंके अर्थ विद्या आदि गुण कहीं भी नहींलिखे। सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास में दयानन्द ही का रूल है कि गुण से गुण की वा गुण से द्रव्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती । जैसे रसगुण से शब्दगुणकी

और स्पर्शगुण से आकाश द्रव्य की उत्पत्ति का होना सर्वथा असंभव है। उस से उक्त मंत्र का अर्थ सर्वथा मिथ्या और धोखे का जाल है॥

इस को सुनकर एक मुलतानी आर्य वकील उठे और बोले कि दयानन्द ने कहां लिखा है कि ईश्वर के मूर्खतादि गुणों से शूद्रवर्ण उत्पन्न हुआ। सागर ने जबाब दिया कि वेदभाष्यभूमिका जगदुत्पत्ति प्रकरण में देखिये, आर्यवकील ने वेदभाष्यभूमिका पेश करी, सागर ने—

यत्पुरुषंव्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् ।
मुखंकिमस्यासीत् किम्बाहूकिमूरूपादाउच्येते ॥

इस मंत्रके दयानन्दकृत भाष्य को दर्शा दिया कि जिस में दयानन्द ने खुद वर्णन किया है कि पुरुष नाम सर्वशक्तिमान् व्यापक ईश्वर का है उस पुरुष को विद्या आदि गुणोंके उत्पन्न हुआ उसीका उत्तर (ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीत्) अर्थात् विद्या आदि गुणों से ब्राह्मणवर्ण उत्पन्न हुआ इत्यादि दयानन्द का भाष्य देखते ही आर्य वकील तो लोप हो गये। परंतु एक हिन्दु वकील ने नोटिस छपवाकर दयानन्द का पागलपन प्रकाशित कर दिया कि दयानन्दमत में ईश्वर मूर्खतादि गुणों वाला है।

इस गपोड़वाणी को सुनकर गुजराती पंडित मौन साध बैठे। थोड़ी देर के बाद गुजराती पंडित ने—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।

इस मनु वाक्यको पेश किया और कहा कि इस मनुके प्रमाणसे वर्णव्यवस्था गुण कर्मोंसे सिद्ध होती है। इसको सुनकर सागरने गुजराती पण्डित से कहा कि इस श्लोकके आगे पीछेके चार श्लोक और देखिये कि जिन से साबित है कि छठे जन्ममें वर्णव्यवस्था में जाति का रद बदल होता है। कि गुजराती पंडित ने आपस्तम्ब ऋषि का सूत्र पेश किया परन्तु उसमें भी सागर ने जन्म जाति दर्शा दी दयानन्दकी संस्कारविधि से भी दयानन्दमत में सागरने जन्म जाति दर्शादी। फिर गुजराती पण्डितने (ब्रह्मजानातीति ब्राह्मणः) इस वचन को पेश किया परन्तु सागरने कहा कि यह वचन जीव ब्रह्मकी एकता प्रतिपादक वेदान्त ग्रन्थोंका है इसको मानने से आर्यमत को तिलाञ्जुली देनी पड़ेगी फिर गुजराती पण्डित ने—

(अध्यापनमध्ययनं० प्रजानांरक्षणंदानम्०)
(पशूनांरक्षणंदानं० एकमेवतुशूद्रस्य०)

इत्यादि मनु के श्लोक पेश किये और—

शमोदमस्तपःशौचं० शौर्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यं० कृषिगोरक्षवा०

इत्यादि गीताके श्लोक पेश किये और कहा कि इन प्रमाणों से कर्म जाति सिद्ध होती है परन्तु सागरने स्वा० शङ्करानन्दकृत गीताभाष्यसे इसको भी खण्डन कर डाला कहा कि गीताके उक्त वचनों में भी जीव ब्रह्म की एकता का प्रकरण है। उससे आर्यमतका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता ॥

(अत्यन्तमलिनोदेहो०) इत्यादि वेदान्त के वाक्योंसे और (अस्थिस्थूणं०) इत्यादि मनुवाक्योंसे भी यही सिद्ध होता है कि स्थूल शरीर हाड़ चर्ममैला मूत रुधिररूप है। ऐसे दुर्गन्धमय शरीर को भी आर्यसमाजीलोग ब्राह्मणादि वर्ण सिद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि शरीर असत्य जड़ दुःखरूप दुर्गंधमय है। विद्या आदि गुण भी असत्य जड़ दुःखरूप गन्दे शरीर का धर्म सिद्ध नहीं हो सकते। अष्टावक्र जी ने गन्दे चमड़ेमय शरीर की दृष्टि वालेको चमार नाम से वर्णन किया है। और यह बातभी अनुभव सिद्ध है कि हाड़ चर्म मैला मूतके साथ कूकर सूकर का विशेष प्रेम होता है। यदि आर्य लोग अपनी जिद्द से विद्या आदि गुणों को गन्दे शरीर के धर्म वर्णन करें तो उपरोक्त दोष आर्यमत वालों पर ही आता है। सूक्ष्म वा कारण शरीर वा जो आत्मा इस शरीर में है वही दूसरे जन्मके शरीरमें जाता है परन्तु दूसरे जन्ममें जाति वर्ण बदल जाते हैं। इस से सूक्ष्म कारण दो शरीर तीसरा आत्मा इन का धर्म भी जाति वर्ण सिद्ध नहीं हो सकते ॥

सागर ने गुजराती पण्डित से यों भी कहा कि मनु और गीतामें १५ कर्म ब्राह्मण के कहे हैं आप में कितने हैं गुजराती पण्डित ने कहा कि हमारे में १५ कर्मोंमें से एक भी नहीं। इस पर सागर ने कहा कि तब तुम ब्राह्मण सिद्ध नहीं होते किन्तु दयानन्द के रूलसे आप मूर्ख शूद्र सिद्ध हो चुके। गुजराती बोला कि हम पंडित हैं इस पर सागरने कहा कि (विद्याविनयसंपन्ने०) इत्यादि गीताके प्रमाणों से और (आत्मज्ञानंसमारम्भः०) इत्यादि महाभारत के प्रमाणों से तथा—

सद्सद्विवेकवतीबुद्धिःपण्डा पण्डासंजाताऽस्यसपण्डितः ।

इत्यादि व्याकरण के प्रमाणों से आप पण्डित सिद्ध नहीं होते । किन्तु दयानन्द के सिद्धान्तसे आप शूद्रही सिद्ध होते हैं ।-इसको सुनके गुजराती मूर्ख थोड़ी देर तक मौन साध बैठे । फिर बहादुरी दिखाने लगे कि यह देखो वज्रसूची उपनिषद् उससे वर्ण व्यवस्था कर्मसे सिद्ध होती है जैसेकि—

वज्रसूचींप्रवक्ष्यामि शास्त्रमज्ञानभेदनम् ।
दूषणंज्ञानहीनानां भूषणंज्ञानचक्षुषाम् ॥ १ ॥

ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्राइति चत्वारो वर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मणएव प्रधानइति वेदवचनानुरूपंस्मृतिभिरप्युक्तम् । तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम किं जीवः किं देहः किं जातिः किं ज्ञानं किं कर्म किं धार्मिकइति । तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मणइति चेत्तन्न अतीतनागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्वात, एकस्यापि कर्मवशादनेकदेहसंभवात, सर्व शरीराणां जीवस्यैकरूपत्वात, तस्मान्न जीवो ब्राह्मणइति । तर्हिदेहो ब्राह्मणइति चेत्तन्न आचाण्डालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वाज्जरामरणधर्म्माधर्म्मादिसाम्यदर्शनाद्ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्णइति नियमाभावात । पित्रादिशरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादिदोषसंभवाच्च । तस्मान्न देहो ब्राह्मणइति । तर्हि जातिर्ब्राह्मणइतिचेत्तन्नतत्र जात्यन्तरजन्तुष्वनेकजातिसंभवा महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यश्रृङ्गो मृग्याः । कौशिकः कुशात् । जाम्बूको जम्बुकात् । बाल्मीकिर्वल्मीकात् । व्यासः कैवर्त्तकन्यकायाम् । शशपृष्ठाद् गौतमः । वसिष्ठउर्वश्याम् । अगस्तिः कलशेजातइति श्रुतत्वात् । एतेषां जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता

ऋषयो बहवः सन्ति। तस्मान्न जातिर्ब्राह्मणइति। तर्हि ज्ञानं ब्राह्मणइति चेत्तन्न क्षत्रियादयोऽपिपरमार्थदर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति। तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मणइति। तर्हि कर्म ब्राह्मणइति चेत्तन्न सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचितागामि कर्मसाधर्म्यदर्शनात्कर्माभिप्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति तस्मान्न कर्म ब्राह्मणइति। तर्हि धार्मिको ब्राह्मणइति चेत्तन्न क्षत्रियादयो हिरण्यदातारो बहवः सन्ति। तस्मान्न धार्मिको ब्राह्मणइति। तर्हि को वा ब्राह्मणोनाम। यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जातिगुणक्रियाहीनं षडूर्मिषड्भावेत्यादि सर्वदोषरहितं सत्यज्ञानानन्दानन्तस्वरूपंस्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूतान्तर्यामित्वेन वर्तमान मन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूतमखण्डानन्दस्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्यमपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत्साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः शमदमादिसंपन्नो भावमात्सर्यतृष्णाशामोहादिरहितो दंभाहङ्कारादिभिरसंस्पृष्टचेता वर्त्तते। एवमुक्तलक्षणो यः सएव ब्राह्मणइति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः। अन्यथा हि ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव। सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेदात्मानं सच्चिदानन्दं ब्रह्म भावयेदित्युपनिषत्। ओं-आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इस वज्रसूची उपनिषत् को सुनाकर गुजराती मूर्ख ने कहा कि बस इस प्रमाण से भी आर्यमतोक्त कर्म ही से वर्णव्यवस्था सिद्ध हो चुकी। इस पर नागर जी ने कहा कि वाह! चौबे जी चले तो छबे बनने को, दुबे नगर में परन्तु दो चौबेमें से खो कर दुबेजी बन गए। जाना जाता है कि गुजराती

मूर्ख के भीतर में विचार विज्ञान नेत्र तो फूटे ही थे, परन्तु बाहरके चर्म नेत्रोंमें भी मल पित्त का रोग लगा था कि जिससे वज्रसूची उपनिषद्रूपी उस्तरे से आर्यमतोक्त कर्म से वर्णव्यवस्था की सर्वथा हजामत हो गई, दीख न पड़ी, वज्रसूची में भी जीव ब्रह्मकी एकता रूप वेदान्तका वर्णन है। कर्मसे जाति के वर्णन का उस में भी अत्यन्ताभाव है। मूर्ख गुजराती कहाते तो पण्डित हैं, परन्तु अक्ल लालबुझक्कड़ों की रखते हैं, जीव ब्रह्मकी एकता रूप वेदान्त के प्रचार विशेष करके शङ्कराचार्य जी ही हुए हैं, वज्रसूची उपनिषत् भी शंकराचार्य ही का इष्ट है. शंकर मत वेदान्तरूपी प्रज्वलित अग्निमें गुजराती आर्य पण्डित ने दयानन्दोक्त आर्यमतको सर्वथा भस्मीभूत करडाला लोभी गुरू लालची चेला, दोऊ नरकमें ठेलम ठेला। यही हाल गुजराती आर्य पण्डित का है॥

फिर चित्रगुप्त नाजिर जी बोले कि हे निराकार जी! यदि गुजराती शूद्र का शंकर मत पर भीतरी विश्वास है तो शंकरकृत अन्य ग्रन्थ भी मानने पड़ेंगे! देखिये शंकरकृत विज्ञान नौका में क्या लिखा है॥

तपोयज्ञदानादिभिःशुद्धबुद्धिर्विरक्तोनृपादौपदेतुच्छबुद्ध्या।
परित्यज्यसर्वंयदाप्नोतितत्त्वं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि १
दयालुंगुरुंब्रह्मनिष्ठंप्रशान्तं समाराध्यमत्याविचार्यस्वरूपम्।
यदाप्नोतितत्त्वंनिदिध्यास्यविद्वान्परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि॥
यदानन्दरूपंप्रकाशस्वरूपं निरस्तप्रपञ्चंपरिच्छेदशून्यम्।
अहंब्रह्मवृत्त्यैकगम्यंतुरीयंपरंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि ॥३॥
यदज्ञानतोभातिविश्वंसमस्तं विनष्टंचसद्योयदात्मप्रबोधे।
मनोवागतीतंविशुद्धंविमुक्तं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि ॥४॥
निषेधेकृतेनेतिनेतीतिवाक्यैः समाधिस्थितानांयदाभातिपूर्णम्
अवस्थात्रयातीतमेकंतुरीयं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि ॥५॥
यदानन्दलेशैःसमानन्दिविश्वं यदाभातिसत्त्वेतदाभातिसर्वम्।
यदालोचनेरूपमन्यत्समस्तं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि ॥६॥

अनन्तंविभुंसर्वयोनिंनिरीहं शिवंसङ्गहीनंयदोङ्कारगम्यम्।
निराकारमत्युज्ज्वलंमृत्युहीनं परंब्रह्मनित्यंतदेवाहमस्मि॥७॥

इत्यादि शंकराचार्यजी के युक्ति सिद्ध वेदोक्त अद्वैत सिद्धान्तको यदि आर्य गुजराती पंडित स्वीकार कर बैठे हैं, और वजसूची उपनिषदुक्त निःसन्देह आत्मज्ञानी हैं, तब तो पंडितजी बेशक ब्राह्मण हैं। यदि पंडितजी ऐसे नहीं हैं, तो वह गुजराती अतिशूद्र हैं। इतना भाषण देकर चित्रगुप्तजी ने निराकार साहब से कहा कि ऐ निराकारजी ! गुजराती शूद्रजो कि आपको शूद्र आर्योंमें पंडित कहाता है।उसका भाषण सर्वथा मिथ्या है, किन्तु स्वप्नगढ़ जिलाके शास्त्रार्थमें आर्यशूद्रोंका पराजय और हिन्दु विद्वानोंका जय हुआ था ॥

इतना भाषण देकर चित्रगुप्त नाजिरजी अपने कमरेमें जा बैठे निराकार साहब ने गुजराती आर्य पंडित से पूछा कि वेन नाजिर जी ने क्या कहा है, गुजराती आर्य पंडितके दांत निकल खड़े हुये, जैसे कि घोड़े के दांत होतेहैं और निराकार से गुजराती ने प्रार्थना करी कि हुजूर क्षमा कीजिये, हम मारे लोभके गप्प आर्यमतका भाषणदेते फिरते हैं।इसको सुनकर गुजराती आर्यशूद्र पंडितको निराकार साहिब ने अंधेरगढ़के जेलको रवाना कर दिया, और सागरको निराकार साहिब ने निर्दोष जान लिया, फिर निराकार साहिब ने अपानवायुदत्त वड्वासे सवाल किया कि वेन तुम भी स्वप्नगढ़ जिला के शास्त्रार्थमें शामिल था? अपान वायुदत्त ने जवाब दिया कि हां मुझे भी गुजराती आर्यों ने बम्बई से तलब कर लिया था,परन्तु मुझे मृगीका रोग था, चुपचाप शास्त्रार्थकी सभामें बैठा रहता था, इतनेमें फिर चित्रगुप्त नाजिर तशरीफ ले आये और रोज़नामचेकी लिस्ट लेकर निराकारसे कहते भये कि निराकार साहिब! अपानवायुदत्तका बयान सर्वथा मिथ्या हैं क्योंकि इसको मृगी रोग नहीं किन्तु अब यह बुड्ढा हुआ है, इसके पायुमें भगन्दर रोग लगा है,उससे यह शास्त्रार्थ नहीं कर सकता था, परन्तु शास्त्रार्थ करने वाले गुजरातीपंडितको गवरगड्कीसी सम्मति देता था। शास्त्रार्थ खतम होनेके दो दिन पहिले ही यह सागरसे डरता हुआ बम्बईको भाग गया था। वेंकटेश्वरके मालिकका जो दूसरा मकान था, उसके पायखानेकी साथकी कोठरीमें जाबैठा था ॥

इतना भाषण कर चित्रगुप्त जी बैठे ही थे तो १५ यमदूतों ने दो ब्रह्मचारियोंको इजलासमें पेश कर दिया। साहब ने उनसे भी नाम वगैरह पूछे एक ने कहा मेरा नाम भूतानन्द ब्रह्मचारी, गुरुका नाम कुमूलानन्द मकान शंकरगढ़में जाति ब्राह्मण,पेशा योगविद्या उमर ५२ सालकी। दूसरे ब्रह्मचारी ने कहा कि मेरा नाम प्रेतानन्द ब्रह्मचारी, गुरुका नाम पिशाचानन्द मकान श्मशानगढ़में जाति ब्राह्मण, पेशा योगविद्या उमर १० वर्षकी। साहिब ने पूछा वेल टुम वेदोंका योगाभ्यास करते हो, या योग दर्शनोंका अठवा टुमने कोई वेद विरुद्ध योगाभ्यासका टरीका सिकाया है। मुलजिम भूतानन्द ने जवाब दिया कि हम हठ योग प्रदीपिकोक्त योगाभ्यास करते हैं। अहमदाबादमें भी हमने योगाभ्यास पर भाषण दिया था, कई एक गुजराती हमारे चेले हो गये हैं। सागरको हमने नीच वर्ण प्रकट किया था॥

इसको सुनकर फिर चित्रगुप्त नाजिरजी रोजनामचेको खुफिया रिपोर्टका बस्ता लेकर कोर्ट में उपस्थित हुए। और निराकार साहिबसे कहा कि जनाब भूतानन्द ब्रह्मचारीका इजहार सर्वथा मिथ्या है। वैसेही प्रेतानन्द ब्रह्मचारी लड़केका इजहार भी गपोड़ बाजी है। क्योंकि भूतानन्दकी जाति चमार है, और प्रेतानन्द की जाति खटीक है, भूतानन्द ने प्रेतानन्द को चेला बनाया है, असल में ये दोनों गुप्त आर्य समाजी हैं। हिन्दुओं के मकानों में उतरते राजविद्रोह को फैलाते हैं, इन दोनों का योगाभ्यास वेद और पतंजलि दर्शन के विरुद्ध है। (किन्तु) हठयोग प्रदीपिका से इस ने एक बात याद कर रक्खी है, वह यह है कि छः अंगुल लंबा पोला बांस ले कर चार अंगुल तो मल द्वार में चढ़ा लेवे और दो अंगुल बाहर रक्खे। उससे मलद्वार में पानी खींचे, और निकाले यही तरीका भूतानन्द जी प्रेतानन्द चेलेको सिखाते हैं। परन्तु प्रेतानन्द की उमर १० वर्ष की है, उससे ऐसी चेष्टा नहीं हो सकती, सागर जी चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं, यही गुरु चेला दोनों ब्रह्मचारी नीच वर्ण हैं। हुजूर स्वप्नगढ़ जिला में शास्त्रार्थके पश्चात् सागर ने साबित कर दर्शाया था, कि भूतानन्द और प्रेतानन्द दोनों ब्रह्मचारी जन्म के नीच वर्णों के अति शूद्र हैं। और यह गुप्त आर्यमत वाले हैं, आर्यमत को दयानन्द ने खड़ा किया है, दयानन्द ने कर्मों से जाति मानी है, इन में ब्राह्मणादि चारों वर्णों के कर्म नहीं देखे जाते उससे भी ये दोनों गुरु चेला अति शूद्र हैं। इतना भाषण देकर चित्रगुप्त जी बैठ गये॥

फिर एकान्त वासी योगी बरिष्टर उठे और भूतानन्द प्रेतानन्द दोनोंसे पूछने लगे कि वेल मिष्टर भूतानन्द माईडीयर ! सागरसे तुम्हारा शास्त्रार्थ भी हुआ था, भूतानन्द ने जवाब दिया कि हां शास्त्रार्थ हुआ था, बरिष्टर जी ने पूछा कि शास्त्रार्थ में सबजैक्ट क्या था, भूतानन्दने जवाब दिया कि सबजैक्ट मूर्त्तिपूजा का था बारिष्टर जी ने पूछा कि मूर्त्तिपूजा सिद्ध हुई अथवा नहीं, भूतानन्द ने जवाब दिया कि सागर जी ने वेदान्त की युक्ति से तो मूर्त्तिपूजा सिद्ध करी परन्तु वेदादि प्रमाण न दिये. इसको सुनकर फिर नाजिर चित्रगुप्त जी उठे और खुफिया रिपोर्ट सुनाने लगे कि हे निराकार साहिब ! आप यद्यपि सर्वव्यापक दयालु न्यायकारी सर्वान्तर्यामी हैं। और हर एक जीव के मन की बातें जानते हो, तथापि मैं कुछ वर्णन करने की इजाजत मांगता हूं. इस को सुनकर निराकार साहिब ने इजाजत देदी, नाजिर जी भाषण करने लगे कि हे निराकार साहिब ! भूतानन्द ब्रह्मचारी अव्वल दर्जे का धूर्त्त है, क्योंकि इस ने जो कुछ वर्णन किया है, सो सर्वथा सर्वदा गपोड़बाजी है क्योंकि सागर जी ने निराकार के ध्यान खण्डन पर तो एक व्याख्यान छपवा डाला है, सो तो हुजूरकी दृष्टिगोचर हो ही चुका होगा। उसमें सागर जी वेदादि के प्रमाण भी दे चुके हैं ॥

और खप्नगढ़ जिले में जो मूर्ति विषय पर सागर और भूतानन्द का शास्त्रार्थ हुआ था, उस में सागर ने प्रमाण तो वेदादि के दिये हैं परन्तु भूतानन्द जी जाना जाता है कि सुनते भये भी नहीं सुनते थे। वेदादि के प्रमाण तो सागर जी ने बहुत दिये थे परन्तु स्थालीपुलाकन्याय में हुजूर को दरशाये जाते हैं। जैसे कि—

प्रजापतिर्वैचन्द्रमाः । प्रतिपतिर्वैर्महान्देवः ।

शत० कां० ६ ब्रा० ३ क० १६ ।

इत्यादि प्रमाणों से प्रकरण में सागरने चन्द्रमा और महान्देव नाम ईश्वर के सिद्ध किये थे। ब्रा० ३ कं० १९ ॥ प्रजापतिर्वैमनुः ॥ इस मंत्रमें मनु-नाम भी ईश्वर का है। कां० १ ब्रा० ४ कं० ५ सर्ववैपूर्णम् ॥ इस में पूर्णनाम ईश्वरका है। कां० २ ब्रा० २ कं० ६ रोहिरायां ह वैप्रजापतिः । यहां रोहिणया नाम ईश्वर का है ॥ कां० २ ब्रा० ४ कं० १० ॥ वाग्वै ब्रह्म ॥ इस में वाक् नाम ब्रह्म का है ॥ कां० ७ ब्रा० २ कं० ६ ॥ आत्मावाऽअग्निः ॥ इसमें आत्मा नाम ईश्वर का है ॥ कां० २ ब्रा० १ कं० १८ ॥ संवत्सरोवैप्रजापतिः ॥ इस में

संवत्सरनाम ईश्वर का है ॥ कां० १० ब्रा० ६ कं० २ ॥ पुरुषोवैयज्ञः ॥ इस में पुरुषनाम ईश्वर का है ॥ य० अ० ३१ मं० १० ॥ यत्पुरुषं० इस मंत्र में भी पुरुष नाम ईश्वर का है ॥ कां० १२ ब्रा० ४ कं० १ ॥ निरुक्तोवैप्रजापतिः ॥ प्रकरण में इस मंत्र से निरुक्त नाम भी ईश्वर का सिद्ध हुआ है ॥ कां० ३ ब्रा० १ कं० ३ ॥ यज्ञोवैविष्णुः ॥ इस मंत्र में और ॥ (तस्माद्यज्ञात्०) इस ऋचामें यज्ञ नाम ईश्वर का है ॥ कां० ४ ब्रा० १ कं०,२२ ॥ ब्रह्महियज्ञः ॥ इसमें ब्रह्मा नाम ईश्वर का है ॥ कां० ४ ब्रा० ३ कं० १५॥ प्राणोवैवायुः ॥ इसमें प्राणनाम ईश्वरका है ॥ कां० १ ब्रा० २ कं० १६ संवत्सरोवैपिता । इस में पिता नाम भी प्रकरणानुसार ईश्वर का है ॥ कां० ५ ब्रा० ५ कं० ८ ब्रह्महिब्राह्मणः ॥ इस में ब्राह्मण नाम भी ईश्वरका है ॥ कां० ५ ब्रा० ५ क० २६॥ सोमोहि प्रजापतिः॥ इसमें सोम नाम भी ईश्वर का है ॥ कां १ ब्रा० ५ कं० २४ ॥ सर्वं वैसंवत्सरः ॥ इसमें संवत्सर नाम भी ईश्वरका है ॥ कां० ३ ब्र० २ कं० ११॥ ब्रह्मवैवृहस्पतिः ॥ इसमें वृहस्पति नाम ईश्वर का है ॥ कां १ ब्रा० ४ कं० ५ ॥ देवाहवैयज्ञम् ॥ इसमें देव नाम ईश्वर का है ॥ कां० १ ब्रा० ३ कं० ५ ॥ वामनोहिविष्णुः ॥ इसमें वामन नाम ईश्वर का है ॥ कां० ३ ब्रा० १ कं० १ ॥ आपोवैयज्ञः ॥ इस में आप नाम ईश्वर का है ॥ कां० १३ ब्रा० ३ कं० १ ॥ ब्रह्मवैस्वयंभुः ॥ इस में स्वयंभु नाम ईश्वर का है ॥ संवत्सरस्यप्रतिमा ॥ प्रकरणमें इस मंत्रसे प्रतिमा शब्द ईश्वरकी मूर्त्तिका वाचक सिद्ध हुआ है ॥ तदेवंमहावीरसाज्येत् । इस प्रकरणमें महावीर शब्द भी ईश्वरका वाचक है ॥ त्र्यंवकंयजामहेसुगंधिं० प्रकरणमें त्र्यम्बक शब्द भी महादेव का वाचक है ॥ इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे सागर जी ने ईश्वर की मूर्ति का ध्यान पूजन सिद्ध किया था चार व्याख्यान मूर्ति पूजा मंडन के और भी सागर जी ने रचे हैं । जब वह हजूरकी दृष्टि गोचर होंगे तो भूतानन्द तथा प्रेतानन्द दोनों ब्रह्मचारी शर्म सागर में गोता खाने लग जावेंगे ॥

हुजूर सुनिये निराकार के ध्यान पूजन के खंडन पर भी सागर ने अनेक प्रमाण दिये थे जैसे कि—

सामवेदीयतलवकारोपनि० खं० १ मं० ३ ॥ (न तत्रचक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो०) उसीका खं० २ मं० २ ॥ (नाहंमन्येसुवेदेति नोनवे-

देतिवेदच । योनस्तद्वेदतद्वेदनोनवेदेतिवेदच यस्यामतं तस्यमतंमतंयस्यनवेदसः । अविज्ञातंविजानतांविज्ञातमविजानताम्) यजुर्वेदीयकठोप० अ० १ वल्ली ५ ॥ न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकन्नेमाविद्युतोभान्तिकुतोऽयमग्निः । तमेवभान्तमनुभातिसर्वं तस्यभासासर्वमिदंविभाति) उसी का अ० २ वल्लो ६ मं० १२ ॥ (नैववाचानमनसाप्राप्तुं शक्योनचक्षुपा । अस्तीतिब्रुवतोऽन्यत्र कथंतदुपलभ्यते) अथर्ववेदीयमण्डूक्योप० मं० १ (नान्तः प्रज्ञं नवहिः प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं नप्रज्ञानघनं नप्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्ष्यमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः) यजुर्वेदीयतैतिरी० ब्रह्मानन्द वल्ली अनु० ८ ॥ (यतोवाचोनिवर्तन्ते अप्राप्य मनसासह) सामवेदीयच्छान्दोग्यो० सयएपोऽणिमैतादात्म्यमिदंसर्वंतत्सत्यंसआत्मातत्त्वमसिश्वेतकेतोइत्यादि । वृहदारण्यकोपनि० अ० ७ मं० ८ नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता ॥ कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वतरोप० अ० ५ मं० १० नैवस्त्रीनपुमानेप नचैवाऽयंनपुंसकः । उसी का अ० ६ मं० १४ नतत्रसूर्यो भातिनचन्द्रतारकं नेमाविद्युतोभान्तिकुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभातिसर्वं तस्यभासासर्वमिदंविभाति ॥

इत्यादि और भी अनेक प्रमाण सागर जी ने दिये थे, उससे निराकार के ध्यान पूजन का खण्डन हो चुका था। न माने तो भूतानन्द शूद्रको खुशी इसको सुनकर निराकार साहिब ने भूतानन्द और प्रेतानन्द दोनों से पूंछा

कि नाजिर जी ने क्या कहा है भूतानन्द प्रेमानन्द दोनों ही लाजवाब हो बैठे नाजिरजी ने फिर भाषण करना शुरू किया जैसे कि हे निराकार साहिब ! भूतानन्द ने स्वप्नगढ़ जिलेमें सागर को यों भी कहा था कि आप किराची में कैद हुये थे, इलाहाबाद में आर्य्यों ने आप की जमानत मांगी हुई है, व्याख्यान आपके बन्द हैं, संस्कृत का आप एक अक्षर भी नहीं जानते इस पर सागर की बाबत अब हम खुफिया रिपोर्ट से वर्णन करते हैं, जैसे कि हे निराकार साहिब ! आप भूतानन्दसे सागर के व्याख्यान बन्द होने का सबूत मांगिये । साहिब ने भूतानन्दसे सबूत मांगा, परन्तु भूतानन्दने सबूत कुछ न दिया, साहिबको ज्ञात होगया कि भूतानन्द शूद्र ब्रह्मचारी झूंठा है॥

फिर नाजिर जी ने साहिबसे कहा कि सागरजी किराची में हाईकोर्ट से छूट गये थे, हजूर औरंगजेब के वक्त हजारों हिन्दु धर्म रक्षा पर कतल हो गये तो सागर भी धर्मवीर जगत् में प्रसिद्ध हैं । यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो इस वक्त भारतमें अंगरेजी राज्य है औरंगजेब की तलवार का सर्वथा अत्यन्ताभाव है । सिंह बकरी एक जगह पानी पीते हैं, सागर जी विद्वत्ता और नीति से हिन्दुधर्म रक्षा का उपदेश दे रहे हैं सागर के ग्रन्थोंसे सिद्ध हो चुका है कि दयानन्द कृत ग्रन्थोंको सागर ने कुत्तेके सींग समान झूंठे साबित कर डाला है । सो यह शक्ति बिना संस्कृत विद्या के नहीं हो सकती, सागरको जो भूतानन्दने कहा कि आप को संस्कृत का एक अक्षर भी नहीं आता, सो भूतानन्दका कथन गधाके सींग समान मिथ्या है। सनातन हिन्दुधर्मव्याख्यानदर्पण में सागर ने दयानन्द कृत ग्रन्थों के तीन हजार झूंठ दर्शाये हैं । जिस का आर्यों ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, इस से भूतानन्द को चाहिये कि लज्जासागर में डूब जावे । क्योंकि इस का गुरु दयानन्द ही निरक्षरभट्टाचार्य था, सागर जी पूर्ण विद्वान् हैं ॥

इस प्रकार भाषण कर नाजिर जी कमरे में जा बैठे, और एकान्तवासी योगी बरिष्टर जी उठे भूतानन्दसे बरिष्टर जी ने पूछा कि क्यों जी आपने कहा था सागर जी कैद हुए थे, सो नाजिर जी की खुफिया रिपोर्ट से निश्चय हो चुका कि सागर जी हाईकोर्ट से बरी हुए थे, परन्तु आर्यमत के लाजपतराय बलवेके जुरमसे मांडले के किले में कैद हुए थे, रावलपिण्डी में हंसराज मूलकचन्द्रादि आर्यसमाजी वकील कैद हुए थे, लाहौर में कई एक एडीटर आर्यसमाजी कैद हुए थे, आगरा में आर्योपदेशक कैद हुए थे जिला

इटावा हिंडोन भर्थना मौजा पारौं में आर्योंने मूर्त्ति तोड़ डाली, उस समय ग्यारह आर्यसमाजी कैद हुए थे, दिल्लीमें आर्य कैद हुए नेपालके राजा के सामने गुरुदयाल आदि आर्योंने मूर्त्ति की निन्दा करी, वहां एक बड़े रईस आर्यसमाजी को जन्म कैद हुई. गुरुदयाल आर्यमास्टर की जूतियों के साथ पत्थरों इन्टों के मार खाते गए, और देश निकाला मिला, बूंदीराज और नृसिंहगढ़राजसे आर्योपदेशक बाहर किये गये, निजाम सरकारके हैदराबाद से आर्योपदेशक बाहर हुए, लेखराम आर्योपदेशक और तुलसीराम स्टेशन मास्टर ने मूर्त्ति की निन्दा करी उनके छुरी के साथ कलेजे चीरे गये फिर दयानन्द जी आपको शर्म नहीं आती, नीति के विरुद्ध आप सागर जी की निन्दा करने लगे हैं ।

वर्जयेन्मधुमांसंच गन्धंमाल्यंरसान्स्त्रियः० । कामंक्रोधंच्लोभंच० अभ्यंगमंजनंचाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥ एकः शयीतसर्वत्र० ॥

इत्यादि मनुजी के कथनों से आप ब्रह्मचारी भी सिद्ध नहीं होते, किन्तु आप दुराचारी अनुभव सिद्ध होते हैं । दयानन्दछलकपटदर्पण से साबित है कि दयानन्द जाति का कापड़ी था सोलह वर्ष की उमर तक नृत्यकारिणी बनकर नाचता रहा था. एक जागीरदार पच्चीस वर्ष की उमर का दयानन्द पर आसक्त था, घर में दयानन्द का नाम शिव भजन था, इसके बाप का नाम हर भजन था, वेद वेदांगोपांगादि जितने ग्रन्थोंको दयानन्द ने माना है, उनमें कापड़ी और कड़ुवा जाति के लोगों को कहीं भी ब्राह्मण नहीं लिखा किन्तु कापड़ी कड़ुवा जाति अति शूद्रों की है । दयानन्द के कथनों से कापड़ी जाति वाले संन्यासी भी सिद्ध नहीं होते ॥

आर्यसमाज में जितने गौड़ सनाढ्य सारस्वत कान्यकुब्जादि नाम वाले नाम के ब्राह्मण लोभवश से शामिल हुये हैं । दयानन्द के कथनोंसे वे भी सब अति शूद्र हैं । क्योंकि वे कर्मसे जाति मानते हैं, परन्तु ब्राह्मणका कर्म उनमें एक भी नहीं, गौड़ सनाढ्य सारस्वतादि नाम भी वेदोक्त नहीं, किन्तु थोड़े वर्षों से यह नाम भी किसी निमित्त से पड़े हैं, उन नामों से भी आर्यमत वाले ब्राह्मण सिद्ध नहीं होते । दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में सृष्टि का आदि लिखा है परन्तु सृष्टि का आदि मानने से आदि सृष्टि के नर नारी

माता पिता के विना उत्पन्न होने सिद्ध नहीं होते। यदि उनके माता पिता मानें तो सृष्टिकी आदि कुत्ताके सींग समान मिथ्या होगी उभयपाशारज्जुन्याय से भूतानन्द आर्य का छूटना नहीं हो सकता। उससे भी आर्य मत में ब्राह्मण का होना सर्वथा असंभव है, किन्तु भूतानन्द जी अति शूद्र हैं। शरीरादि अनात्म पदार्थ भी ब्राह्मण सिद्ध नहीं होते, उससे भी शरीराभिमानी भूतानन्दादि अति शूद्र हैं। किन्तु वेदादि के सिद्धान्त और वज्रसूची आदि के प्रमाणों से सागर जी तो सर्वथा सर्वदा चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं चतुर्वेदी सागर ब्राह्मण को नीच बतलाना भूतानन्द प्रेतानन्द अपानवायुदत्त आदिकों का सर्वथा लालबुझक्कड़ वा गवरगण्डपन है। यदि और भी सूक्ष्म विचार किया जावे तो वेद सिद्धान्त जीव ब्रह्म की एकता सम्पादन करने वाले आत्मज्ञानी पर वेदोक्त विधि का भी सर्वथा अत्यन्ताभाव है॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं चैतन्यंचनिरन्तरम्।
तद्ब्रह्माहमितिज्ञात्वा कथंवर्णाश्रमेभवेत्॥ १॥
वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतेर्दासोभवेन्नरः।
वर्णाश्रमविनिर्मुक्तः श्रुतेर्मूर्ध्निसवर्त्तते॥

इत्यादि ब्रह्मबोधक वेदान्त ग्रन्थका यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टिव्यष्टि नाम रूप और क्रियात्मक अनात्म पदार्थों पर से जिस मनुष्यका आत्माभिमान नष्ट हो जाता है, जीवेश्वरभावका भी बाध निश्चय हो जाता है, किन्तु विवेक वैराग्य षट् सम्पत्ति मुमुक्षुता साधन युक्त जिसने वेदान्त श्रवण से प्रमाण और वेदान्तके मननसे प्रमेय संशय को नष्ट कर डाला है। निदिध्यासनसे जिस ने विपरीतभावना का बाध निश्चय किया है, तत् पदके और त्वं पदके तथा अहं पद के लक्ष्यार्थ निराकार निर्विकार सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित नित्य मुक्त नित्य शुद्ध स्वप्रकाश ब्रह्मचेतनके संशय विपर्यय रहित दृढ अपरोक्ष ज्ञानको जिसने सम्पादन किया है। उस ज्ञानसे ब्रह्मचेतनका न जानना अज्ञान नष्ट हो गया है। निरावरण ब्रह्मचेतन स्वरूपसे जो स्वयं भान हो रहा है। वही मनुष्य ब्राह्मण वेदान्तसिद्धान्तसे सिद्ध हो चुका है। उस ब्राह्मण पर वेदकी विधिका अत्यन्ताभाव है। किन्तु उस ब्राह्मण का वेद पर आसन है, भूतानन्द! सुनिए इस प्रकारके ब्राह्मण सागर जी निष्पक्ष विद्वानों में सिद्ध हो चुके हैं, और भी

जो ऐसे हैं वह भी ब्राह्मण हैं परन्तु भूतानन्दजी आप और आप के चेले प्रेतानन्द वर्णाश्रम अभिमानी होनेके कारण वेद के दास हैं। और देहाभिमानी होनेके कारण आप ही अतिशूद्र सिद्ध हो चुके हैं। इस भाषण को देखकर एकान्तवासी योगी खामोश हो बैठे ॥

निराकार साहिब ने हुक्म देदिया कि भूतागण्ड और प्रेतागण्ड दोनों दूरटों को पकड़ो और पचीस हजार महाकल्प तक कुम्भी नरकमें इन दोनों दूरटों कोडालो क्योंकि इनने वेदोक्त सागर संन्यासी पर झूठे दोष लगाये ठे, इसको सुनकर यमदूतों ने वैसा ही किया फिर निराकारका दूसरा हुक्म यम दूतों ने अपानवायुदत्त बड़वा की बावत सुना, बड़वा को यमदूतों ने पिंजरे के बाहर निकाला बड़वा बोला कि मुझे बम्बई वेंकटेश्वर प्रेस में ले चलिये, यमदूतोंने अपानवायुदत्त बड़वाको गर्दनसे पकड़ कर मलमूत्र नामा नरक में फेंक दिया, हमारे नेत्र खुल गए, निराकारका इजलास और एकान्त वासी योगी वरिष्ठर तथा चित्रगुप्तादि कर्मचारी इत्यादि रचना का तथा मुद्दाला मुद्दई आदि मुकद्दमेवालों का अदर्शन हो गया, अब सर्वसनातन हिन्दुधर्मवीरोंसे निवेदन है कि इस स्वप्न व्याख्यान को हमने जोधपुर में चार बजेके समय नींदमें सुना और देखा था, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि नींदमें स्वप्नरचनाका होना अनुभव सिद्ध है ॥

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति। अथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते ॥ शतपथब्राह्मण ॥

ओ३म्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ईश्वरमूर्त्तिमण्डन

व्याख्यान नं० ३०

ओ३म्-शन्नोदेवीरभिष्टयऽआपोभवन्तुपीतये । शं-योरभिस्रवन्तुनः ॥ य० अ० ३६ मं० ४१ ॥ ओ३म्-शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सर्वधर्महितैषी सज्जनों को प्रकाशित किया जाता है कि इस व्याख्यान में वेदादि प्रमाणों से ईश्वर की मूर्त्ति का मण्डन होगा, वेदान्तसिद्धान्त में मायाप्रकृति प्रधान अव्याकृत इत्यादि नाम ईश्वर की शक्ति के सिद्ध हो चुके हैं, दयानन्दोक्त वेदभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाशकी साक्षी से हम प्रकृति परमाणु नाम ईश्वर की सामर्थ्य को सिद्ध कर चुके हैं । सामर्थ्य, शक्ति यह दोनों शब्द एकार्थवाची हैं, सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८ की रीतिसे प्रकृति परमाणु साकार सिद्ध हो चुके हैं, 'निराकारध्यानखण्डन, व्याख्यान में ईश्वर सर्वथा सर्वदा साकार सिद्ध हो चुका है । जिस आर्यसमाजी को जिज्ञासा हो वहां देख कर सन्देह नष्ट कर लेवे । सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११ (न तस्य प्रतिमा अस्ति) इस के भाष्य में दयानन्द ने कहा है कि ईश्वर की मूर्त्ति नहीं, यहां प्रतिमा शब्द का अर्थ दयानन्दने मूर्त्ति किया है । परन्तु प्रकरण में (माङ् माने) इस धातु से प्रतिमा शब्द का अर्थ परिमाण सिद्ध होता है। सिद्धान्त यह कि अपरिमाण ईश्वरकी परिमाण युक्त मूर्त्तिका होना यद्यपि असंभव है तथापि ईश्वर के राम, कृष्ण, शिवादि अवतार परिमाण युक्त हैं, उनकी मूर्त्ति ही ईश्वर की मूर्त्ति युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है ॥

(किंच)-(य० अ० १५ मं० ६५ । सहस्रस्य प्रतिमासि०) यदि इस मन्त्रस्थ प्रतिमा शब्द का अर्थ प्रकरण में मूर्त्ति किया जावे तो हो सकता है क्योंकि यहां व्याकरण की रीति से मन्त्रस्थ असि पद में मध्यम पुरुष की क्रिया का एक वचन है और सहस्र शब्द असंख्यात का वाचक है उक्त वाक्यका अभिप्राय यह कि हे ईश्वर ! आप की अनेक मूर्त्तियां हैं । प्रकृति शक्ति युक्त ईश्वर व्यापक सिद्ध हो चुका है, (यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा०) इत्यादि वेदप्रमाणों और (परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते) इस श्वेताश्वरोपनिषदस्थ प्रमाण से भी ईश्वर की प्रकृति शक्ति अनेक प्रकार की सिद्ध हो चुकी है परन्तु वह प्रकृति शक्ति सूक्ष्म आकार युक्त है, तद्विशिष्ट ईश्वर भी सूक्ष्म आकार युक्त

मूर्त्तौघनः) इस सूत्र में पाणिनीय मुनि ने कहा है कि कठिन और साकार द्रव्य मूर्त्ति है। इन सूत्रों में साधारण रीति से साकार पदार्थ का नामही मूर्त्ति है परन्तु असाधारण रीति से प्रत्येक स्त्री पुरुष की मूर्त्तियें अनुभव सिद्ध हैं अनुभव सिद्ध बात किसी प्रकारसे भी खंडन नहीं होसकती (तथाहि)

गोपथब्रा० पूर्वभा० प्रपा० २ कं० २५ संवत्सरस्य प्रतिमा।

प्रकरण और लक्षणा से इस वेद मंत्र का अर्थ यह कि ईश्वरकी मूर्त्ति है यहां संवत्सर का अर्थ ईश्वर और प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्त्ति है।

गो० पूर्वभा० प्रपा०४कं०१० यःसहस्त्रस्यसंवत्सरस्यप्रतिमा०

इस मंत्र का सारांश यह कि जो संवत्सर नाम वाला ईश्वर है उस की असंख्यात मूर्त्तिएं हैं इस अर्थको हम पूर्व इसी व्याख्यान में यजुर्वेदके प्रमाणसे भी सिद्ध कर चुके हैं। आर्योंका प्रश्न है कि ईश्वर का संवत्सर नाम कौन से प्रमाण से सिद्ध होता है इस का उत्तर यह कि—

शतपथब्रा० का० २ ब्रा० १ कं० १८ संवत्सरोवैप्रजापतिः।

इस वेद मंत्र में संवत्सर को प्रजापति नाम से वर्णन किया है आर्य कहते हैं कि ईश्वर को प्रजापति कौन से वेदमें कहा है इसका उत्तर यहकि

य० अ० ३२ मं० १। तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः। तदेवशुक्रंतद्ब्रह्मताआपःसप्रजापतिः। य० अ० ३१ मं० १९। प्रजापतिश्चरतिगर्भे०।

इत्यादि और भी अनेक मंत्र हैं कि प्रकरणानुसार जिन में ईश्वर को प्रजापति नाम से वर्णन किया है।

(गोपथब्रा० उत्तरभा० प्रपा० १ कंडि० १ संवत्सरोवैब्रह्मा)

इस मंत्रसे संवत्सर नाम वाले ईश्वर ही को प्रकरणमें ब्रह्मा कहा है आर्य कहते हैं कि ईश्वर का नाम ब्रह्मा है इस पर कोई स्पष्ट प्रमाण दीजिये इस का उत्तर यह कि (सब्रह्मासविष्णुःसरुद्रः०) इस कैवल्योपनिषद् के मंत्र में ब्रह्मा नाम ईश्वर का अनुभव सिद्ध है।

माणों और (पराo का० २ ब्रा० १ कं० १८। संवत्सरोवैप्रजापतिः से भी ईश्वर की मैं भी प्रजापति और संवत्सर यह दोनों नाम प्रकरण में सर्व प्रकृति शक्ति सूक्ष्म के हैं।

शत० कां० ८ ब्रा० ५ कं० १० । प्रजापतिर्वैविश्वकर्म्मा ।

इस मंत्रमें विश्वकर्मा और प्रजापति इन दोनों वाक्योंसे भी सर्वशक्तिमान् ईश्वर ही सिद्ध होता है ।

शत० कां० ८ ब्रा० ४ कं० ११ । प्रजापतिर्वैव्योम ।

प्रकरण में इस मंत्र से प्रजापति ईश्वर ही का नाम व्योम सिद्ध होचुका है

शत० कां० ९ ब्रा० २ कं० ३९ चन्द्रमावैयज्ञो० ।

प्रकरण में इस मंत्रस्थ चन्द्रमा और यज्ञ यह दोनों नाम भी व्यापक ईश्वर के हैं ।

शत० कां० १० ब्रा० ६ कं० २ । पुरुषोवैयज्ञः ।

इस मंत्रस्थ पुरुष और यज्ञ यह दोनों नाम भी प्रकरणमें सर्वशक्तियुक्त ईश्वर के हैं ।

शत० कां० ११ ब्रा० १ कं० १ । संवत्सरोवैयज्ञःप्रजापतिः

इस मंत्रमें संवत्सर यज्ञ प्रजापति यह तीनों नाम ही प्रकरणमें ईश्वर के वाचक हैं ।

शत० कां० १२ ब्रा० ८ कं० १ पुरुषोवैसंवत्सरः

इस मंत्रमें पुरुष और संवत्सर यह दोनों नामभी प्रकरणमें ईश्वर के हैं

शत० कां० १२ ब्रा० ४ कं० १ । निरुक्तोवैप्रजापतिः

इस मंत्र में निरुक्त नामभी प्रजापति शब्द के वाच्य ईश्वरका है ।

शत० कां० ६ ब्रा० ३ कं० १६ । प्रजापतिर्वैमहादेवः

इस मंत्र में ईश्वर का नाम महादेव है ।

श० ६ ब्रा० ३ कं० ११ । प्राणोवैब्रह्म

इस मंत्र में ईश्वर का प्राण नाम है ।

शत० कां० ६ ब्रा० ३ कं० १९ । प्रजापतिर्वैमनुः

इस मंत्र में प्रजापति ईश्वर का नाम मनु है ।

श० कां० ३ ब्रा० १ कं० ३ । संवत्सरोवैप्रज्ञा ।

इस मंत्र में प्रज्ञा भी संवत्सर ईश्वर का नाम है ।

संवत्सरोहि जूः श० कां० ३ ब्रा० ५ कं० १५ ॥

इस मंत्रमें वजू नाम भी संवत्सर ईश्वरका है ॥

ब्रह्माहियज्ञं श० कां० ४ ब्रा० १ कं० २२ ॥

इस मंत्रमें ब्रह्मा और यज्ञ शब्द ईश्वरके वाचक हैं ॥

(श० कां० ४ ब्रा० १ कं० २—आत्मावैप्रजापतिः ॥) इस मन्त्र में प्रजापति ईश्वर का नाम आत्मा है (श० कां० १३ ब्रा० ६ कं० २५ ॥ ब्रह्मवैबृहस्पतिः) इस मन्त्र में बृहस्पति शब्द भी ईश्वर का वाचक है । (श० कां० १३ ब्रा० ३ कं० १ ब्रह्मवैस्वयंभुः) इस मन्त्र में ईश्वर ही का नाम स्वयंभु है । (श० कां० १४ ब्रा० ३ कं० ११ । सर्वेवैसंवत्सरः) इस मन्त्र में भी सर्व जगत्के उत्पत्ति प्रलय संहारकर्त्ता ईश्वर ही का नाम संवत्सर है । (श० कां० १४ ब्रा० ८ कं० २ । प्राणोवै ब्रह्मेति) इस मन्त्र में भी प्राण नाम ईश्वरका है (श० कां० १४ ब्रा० ८ कं० ५ वाग्वैब्रह्मेति) इस मन्त्र में वाक् नाम ईश्वरका है (श० कां० १४ ब्रा० ८ कं० ७ । चक्षुर्वैब्रह्मेति) इस मन्त्रमें चक्षु नाम ईश्वरका है (श० कां० ७ ब्रा० ३ कं० ५ ब्रह्मवै मन्त्रो०) इस मन्त्रसे प्रकरणानुसार मन्त्र शब्द भी ईश्वरका वाचक सिद्ध हो चुका । श० कां० ७ ब्रा० २ कं० ६ । आत्मा वा अग्निः) इस मन्त्रमें ईश्वरका नाम अग्नि वर्णन किया है । व्याख्यान न बढ़जानेके कारण यहां हमने क्वचित् वेदादि प्रमाणों से सर्वशक्तिमान् ईश्वर को मूर्त्ति का वर्णन किया है ।

आर्यसमाजी कहते हैं कि मूर्त्तिपूजा जैनोंके राज्यसे चली है पहिले नहीं थी, सत्यार्थ प्रकाशके ग्यारहवें समुल्लासमें दयानन्दने भी ऐसे ही कहा है जो आर्यों और दयानन्दका सर्वथा अज्ञान तथा हठ है क्योंकि सत्यार्थप्रकाशके ग्यारहवें समुल्लासमें दयानन्द हीने लिखा है कि अढ़ाई हजार वर्ष गुजरे हैं कि जबसे यहां जैनियोंका राज हुआ है । फिर दयानन्द हीने सत्यार्थप्रकाश के वारहवें समुल्लासमें जैनमतके ग्रन्थोंकी साक्षी देकर राम कृष्ण, शिव, देवी आदिकी मूर्त्तियोंका खण्डन किया है अब विचारना चाहिये कि जब जैनियों के राजसे भारतवर्ष में मूर्त्तिपूजा का प्रचार होता तो जैनमत के ग्रन्थों में राम, कृष्ण, शिवादि की मूर्त्तिपूजा का खण्डन कैसे लिखा जाता, किन्तु कभी नहीं, हां, जैनमतके ग्रन्थोंमें राम कृष्णादिकी मूर्त्तिपूजा का खण्डन देखकर जाना जाता है कि जैनराज्य वा जैनमतसे पहिले सनातनसे रामकृष्णादि मूर्त्तिका पूजन भारतवर्षमें चला आता है । यदि बाबाजी दयानन्द

के लेख ही को आर्यसमाजी सत्य मानें तो पूर्व हमने जिन वेदादि ग्रन्थोंके प्रमाण दिये हैं और आगे देंगे वह सर्व जैनराज्यसे बने होने चाहिये । यदि आर्यसमाजी ऐसे ही मानें तो सत्यार्थप्रकाशके ग्यारहवें समुल्लासकी भूमिका का लेख मिथ्या होगा, क्योंकि वहां दयानन्दका लेख है कि वाल्मीकीय रामायण महाभारत इत्यादि ग्रन्थ जैन और बौद्धमतसे पहिले बने हैं । उभयपाशारज्जुन्याय से आर्यों का छूटना सर्वथा असंभव है ॥

पूर्व जो ईश्वर की मूर्त्तिविषयक वेदादि प्रमाण हमने दिये हैं उनमें प्रकरणानुसार लक्षणासे ईश्वर की मूर्त्ति का वर्णन किया है, देखिये (शत०कां० १४ ब्रा० ३ कं० १ । द्वेवाव ब्रह्मणोरूपे मूर्त्तंचैवामूर्त्तंच०) इस वेदमन्त्रका सिद्धान्त यह कि मूर्त्तिसहित और मूर्त्ति रहित ईश्वरका दो प्रकारका स्वरूपहै। प्रकरणमें यहां भी वेद का यही अभिप्राय है कि प्रकृतिरूपी साकार मूर्त्ति युक्त ईश्वर का स्वरूप मूर्त्ति सहित है, और निराकार निर्विकार नित्य मुक्त नित्य शुद्ध ईश्वर का मूर्त्ति रहित स्वरूप है प्रकृति स्वरूप ही का परिणाम अवतार शरीर हैं, उन्हीं की मूर्त्ति ईश्वरकी मूर्त्ति है । आर्योंसे पूछना चाहिये क्या उक्त मन्त्र युक्त शतपथ ब्राह्मण भाग वेद भी जैनियोंके राजसे बना है ? । यदि कहो कि नहीं तो सिद्धान्त यह सिद्ध हुआ कि मूर्त्ति पूजा सनातन से वेदोक्त है ॥

अथमृत्पिण्डंपरिगृह्णातितंमृदश्चपञ्चमहावीराःकृताभवन्ति

(शत० ब्रा० १४ ब्रा० ३ कं०९)

इस मन्त्र में महावीर नाम भी ईश्वर का है यहां महावीर शब्द के वाच्य ईश्वर की मृण्मय पांचमुखी मूर्त्ति का बनाना वर्णन किया है ॥

अथ मृत्पिण्डमुपादाय महावीरं करोति

(शत० कां० १४ ब्रा० २ कं० ७)

इस मन्त्रसे ज्ञात होता है कि यदि ईश्वर की पञ्चमुखी मूर्त्ति बनानेकी इच्छा न होवे तो एक मुखी ईश्वरकी मूर्त्ति बना लेवे, जैसी इच्छा उपासक की होवे वैसे ही श्रद्धा भक्ति पूर्वक ईश्वर की मूर्त्ति बना कर ध्यान करे ॥

शत०कां०१४ ब्रा०३ कं०१३ तदेतंप्रचरणीयं महावीरमाज्येत्

इस मन्त्र का अभिप्राय यह कि उपासकको चाहिये कि घृतादि पदार्थोंसे महावीर की मूर्त्ति का पूजन करे। इस मन्त्रसे ज्ञात होता है कि शिव जी

का नाम ही वेदमें महावीर है, और प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी ज्ञात होता है कि शिवालय ही में घृत का दीपक विशेष कर जलाकर शिव जी का ध्यान पूजन होता है, और पञ्चमुखी महादेवकी मूर्त्ति भी शिव ही की अनुभव सिद्ध है।

(य० अ० ३ मं० ६ । त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिवबन्धनात्। मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥ (महीधर भाष्यम्) त्र्यम्बकं नेत्रत्रयोपेतंरुद्रं यजामहे पूजयामः ततोरुद्रप्रसादान्मृत्योर्मुक्षीय०)

अर्थ स्पष्ट—भाव यह कि त्रिनेत्र महादेवकी उक्त मन्त्र में प्रशंसा करी है कि वह रुद्र हमें मोक्षपद की प्राप्ति करे कि जिसके तीन नेत्र हैं ॥

(तथा च निरुक्तं । अ० १३ पा० ४ खं० ६ । त्र्यम्बकोरुद्रस्तं त्र्यम्बकंयजामहे (सुगन्धिं) सुष्ठुगन्धिं (पुष्टिवर्द्धनम्) पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनात् मृत्योःसकाशान्मुञ्चस्वमाम् ॥

इस निरुक्त और (यज, देवपूजासंगतिकरणदानेषु) इस धातुपाठके प्रमाणसे भी उक्त वेदमन्त्र का यही अर्थ सिद्ध होता है त्रिनेत्र महादेवकी मूर्त्ति का ध्यान पूजन करने से भक्त का अन्तःकरण एकाग्र हो जाता है तब के पश्चात् वेदान्त श्रवणादिके करनेसे भक्तके अन्तःकरण में संशय विपर्ययसे, रहित दृढ ब्रह्मज्ञान का आविर्भाव होता है तब से जैसे पक्का खरबूजा बल्ली से टूट जाता है वैसे भक्त भी स्थूल शरीरादि पांच के अभिमान से टूटकर अज्ञान तत्कार्य की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष पद को प्राप्त होता है ॥

दयानन्दने उक्त मंत्र का निरुक्तके विरुद्ध अर्थ किया है सो दयानन्दकी अत्यन्त भूल है किन्तु युक्ति प्रमाण और लक्षणा तथा प्रकरण से पूर्वोक्त ही सत्यार्थ है ॥ (इवेप्रतिकृतौ) यह अष्टाध्यायीके पांचवें अध्याय के तृतीय पादका अट्ठावनवां सूत्र है (लुम्मनुष्ये) यह सूत्रभी उसी अध्यायके उसी पाद का निन्यानवां है (तथा जीविकार्थे चापण्ये) यह भी उसी अध्यायके उसी पाद का सौवां सूत्र है इन सूत्रों के भाष्य में महाभाष्यकार का वर्णन

है कि (यास्त्वेताःसंप्रतिपूजार्थास्तासुभविष्यति) यहां भाष्यकारने पूजा शब्द का प्रयोग किया है मूर्ति का वाचक प्रतिकृति शब्द है प्रकरणमें भाष्य कारका यह सिद्धान्त प्रकाशित होता है कि विकारार्थ में प्रतिकृति शब्दको कन् प्रत्यय होता है पूजा अर्थ में कन्प्रत्यय नहीं होता ॥

शिवस्यप्रतिकृतिःशिवः वासुदेवस्यप्रतिकृतिःवासुदेवः

इत्यादि उदाहरण भी भाष्यकारने दिये हैं सिद्धान्त कौमुदीके कर्त्ताने उक्त सूत्रों के भाष्य में—

रामस्यप्रतिकृतिःरामः कृष्णस्यप्रतिकृतिःकृष्णः ॥

इत्यादि उदाहरण भी दिये हैं । अभिप्राय यह कि वेदांगव्याकरण के प्रमाणों से भी मूर्तिपूजा सिद्ध है वेदादि प्रमाणों से राम कृष्णादि को हम ईश्वरावतार सिद्ध कर चुके हैं ॥

मनु० अ० ९ श्लो० २८५ ॥ प्रतिमानांचभेदकः

इस श्लोक और इसके भाष्य से सिद्ध हो चुका है कि जो मनुष्य मूर्ति मन्दिर को तोड़ डाले उसको राजा पांच सौ रुपये दण्ड करे और उस में राजा मूर्ति मन्दिर भी बनवा लेवे इस मनुस्मृतिके प्रमाणसे भी भारतवर्षमें मूर्ति का पूजन सनातन से चला आता है (मनु० अ० १ श्लो० ८८ ॥ यजनं-याजनंतथा) इस मनूक्त श्लोक से भी ज्ञात होता है कि मूर्तिपूजा का करना और कराना भी ब्राह्मण के दो कर्म हैं यज धातु देवपूजा अर्थ में है इस सिद्धान्त को हम इसी व्याख्यान में वेदांग व्याकरणस्थ धातुपाठ का प्रमाण देकर सिद्ध कर चुके हैं मूर्ति प्रकरण में यजधातुका अर्थ पूजा ही सिद्ध होता है (प्रजानांरक्षणंदानमिज्याध्ययन०) इस श्लोकमें मनुजीने क्षत्रियको मूर्तिपूजाकी आज्ञा दी है (पशूनांरक्षणंदानमिज्याध्ययन०) इस श्लोकमें मनुजी ने वैश्यको भी मूर्तिपूजा करने की आज्ञा दी है न मानें तो आर्यों की मर्जी ॥

य० अ० १४ मं० २०॥ अग्निर्देवता वातोदेवता सूर्यो देवता चन्द्रमादेवता वसवोदेवता रुद्रोदेवता आदित्यादेवता मरुतोदेवता विश्वेदेवादेवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणोदेवता ॥

प्रकरण में इस मंत्रस्थ अग्नि आदि नाम भी सर्वशक्तिमान् साकार ईश्वर ही के सिद्ध होते हैं कि जिस ईश्वरकी मूर्त्तिका होना हमने इस व्याख्यान में वर्णन किया है। उस ईश्वर के मूर्ति का पूजन करने से ईश्वर की पूजा होती है इस सिद्धान्त को हम इकतीसवें व्याख्यान में युक्ति और प्रमाण से वर्णन करेंगे इस व्याख्यान में केवल ईश्वर की मूर्ति के होने का वर्णन है॥

(सामब्राह्मण ॥ ग्रा० ६॥ देवतायतनानिकम्पन्ते दैवत प्रतिमाहसन्ति रुदन्ति नृत्यन्तिस्फुटन्ति०)

इस सामवेद के साम ब्राह्मण का सिद्धान्त यह कि जब स्वप्न के समय ज्ञात हो कि देवता का मन्दिर कांपता है और देवता की मूर्ति हंसती है कभी, रोती है कभी वह मूर्ति दौड़ती है कभी नाचती है तो जानो कि राजापर कोई उपद्रव होगा उस उपद्रवकी शांतिके लिये (इदं विष्णुर्विचक्रमे०) इत्यादि मन्त्रों से होम का करना भी वहां वर्णन किया है। इस प्रमाण से भी ईश्वर की मूर्ति का पूजन सनातन से सिद्ध हुआ॥

वाल्मीकि० उत्तरकां० सर्ग ३२ श्लो० ५२ ॥ यत्रयत्र चयातिस्मरावणोराक्षसेश्वरः। जांबूनदमयंलिङ्गंतत्रतत्रस्म नीयते ॥

इसमें वाल्मीक जी ने वर्णन किया है कि राजा रावण सुवर्णमय शिव की मूर्ति को अपने पास रखते थे और उसका पूजन करते थे प्रकरण में लिङ्ग नाम चिन्ह का है साकार पदार्थ का नाम मूर्त्ति है। उक्त श्लोक का अभिप्राय यह कि त्रेतायुगमें भी ईश्वरकी मूर्तिका ध्यान वा पूजन होता था।

(छान्दोग्यो० प्रपा० १ खं० ६ मं० ६ ॥ यएषोऽन्तरा दित्येहिरण्मयः पुरुषोदृश्यतेहिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आ-प्रणखात्सर्वएवसुवर्णः। तस्ययथाकप्यासंपुंडरीकमेवमक्षि णीतस्योदितिनामसएपसर्वेभ्यःपाप्मभ्य उदित उदेतिह वै सर्वेभ्यःपाप्मभ्यो०)

इस मन्त्रसे ज्ञात होता है कि सुवर्ण मय डाढ़ी मूछें केश नख युक्त सुवर्ण मय पुरुष है यहां प्रकरण और लक्षण से यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि (पुरुष) अर्थात् सर्वशक्तिमान् सर्व व्यापक ईश्वर की सुवर्ण मय मूर्ति

सूर्यमण्डलमें हैं उसके ध्यानसे पाप नष्ट हो जाते हैं, दयानन्दने छान्दोग्योपनिषद् को भी स्वतः प्रमाण माना है यद्यपि वेद विरुद्धांश में उपनिषदों को भी दयानन्द ने नहीं माना तथापि सो दयानन्द का अज्ञान और दुराग्रह है क्योंकि मन्त्र संहिता के प्रमाणों से हम ईश्वर को साकार मूर्ति युक्त सिद्ध कर चुके हैं उससे उक्त मन्त्रका भी यही सिद्धान्त है कि सूर्यमण्डलमें ईश्वर ही की सुवर्णमय मूर्त्ति है आर्य कहते हैं कि सूर्य अत्युष्ण रूप है उस से सुवर्णमय मूर्त्ति पिघल जानी चाहिये आर्यों की यह शंका भी अज्ञान मूलक है क्योंकि पदार्थ विद्यासे ज्ञात होता है कि वह सुवर्णमय मूर्ति सूर्य के ऊपर है यदि आर्य न मानें तो दयानन्दोक्त सत्यार्थप्रकाशका चौथा समुल्लास देख लेवें उस के अन्तमें दयानन्द ही ने वर्णन किया है कि सूर्य्य के ऊपर भी मनुष्यों की सृष्टि है उनमें वर्णाश्रम व्यवस्था भी इस सृष्टि के सदृश है यदि इस सृष्टि के उदाहरणसे दयानन्दोक्त लेखसे सूर्य पर मनुष्य सृष्टि मानें तो वहां भी आर्यों को ईश्वर की मूर्त्ति माननी पड़ेगी किंवा पदार्थ विद्या से जाना जाता है कि सूर्य्य मण्डल में जो ईश्वर की मूर्त्ति है उसमें अग्निका विशेष भाग है जैसे अग्निस्थ कीटमें अग्निका विशेष भाग होता है जलस्थ जन्तु में जलका विशेष भाग है पृथिवीस्थ जन्तुमें पृथिवीका विशेष भाग है आकाश में विचरने वाले जानवरों में वायु का विशेष भाग है उससे उन जीवों की हानि नहीं होती वैसे ही सूर्य मण्डलमें भी जो ईश्वरने अपनी मूर्तिमें अग्नि का विशेष भाग रखा है उस से वह ईश्वर की मूर्ति प्रलय तक एकरस बनी रहती है। इत्यादि और भी वेदादि अनेक प्रमाण हैं जिनसे यही सिद्ध होता है कि मूर्तिपूजा जैनों के राज्य से नहीं चली किन्तु जब से ईश्वरने वेद और जगत् को रचा है तभी से मूर्ति का ध्यान पूजन चला आता है (किंच) शुक्रनी० अ० ४ श्लो० ४४८ से लेके ५२१ वें श्लोक तक मूर्तिस्थापित करने के लिये शुक्राचार्य जी ने मन्दिर तथा मूर्तियोंके बनानेके नियम लिखे हैं। तथा मूर्तियोंका परिमाण भी नानाप्रकार से वर्णन किया है ॥ व्याख्यान वृद्धि के भय से वह श्लोक हमने नहीं लिखे जिस आर्यसमाजी को जिज्ञासा हो वह वहां देखकर सन्देह नष्ट कर लेवे यदि कहो कि हम शुक्रनीतिको मानते ही नहीं तो न मानो आर्यों के मूलाचार्य दयानन्द तो शुक्रनीतिको भी प्रमाण मान गये हैं यदि आर्योंको संदेह हो तो सत्यार्थप्रकाशका छठा समुल्लास देखकर संदेह नष्टकरलेवें यदि कहो कि दयानन्दने राजनीतिके प्रकरणमें शुक्रनीति

को माना है मूर्तिपूजा प्रकरण में नहीं माना तो आर्यों का यह कथन भी अविद्या मूलक है। क्योंकि यह काम पक्षपाती स्वार्थी लोगों का है कि अपना मिथ्या पक्ष भी सत्य वर्णन के लिये ग्रंथ का कोई विषय मान लेतेहैं कोई छोड़ देते हैं खैर जो हो जिन ग्रन्थों के प्रमाण दयानन्द ने दिये हैं हम भी उन्हीं ग्रन्थों के प्रमाणों से ईश्वर की मूर्ति सिद्ध करते हैं।

एवंविधान्नृपोराष्ट्रे देवान्संस्थापयेत्सदा।
प्रतिसंवत्सरंतेषामुत्सवान्सम्यगाचरेत्॥

शुक्रनी० अ० ४ श्लो० ५२०।

इस में शुक्राचार्य जी का सिद्धान्त यह है कि राजा को उचित है कि अपने राज्य में मूर्ति का स्थापन कराकर प्रतिवर्षमें उत्सव करावे। यदि आर्य कहें कि शुक्राचार्य जी काणे थे काणेका लेख माननीय नहीं हो सकता तो आर्यों को चाहिये कि दयानन्दने जो सत्यार्थप्रकाशके छठे समुल्लास में राजनीति प्रकरण में शुक्राचार्य काणे का लेख इष्ट माना है पहिले उस को दीयासलाई लगा देवें दयानन्द का गुरु विरजानन्द तो दोनोंसे अन्धा था उस के और मेरठ निवासी तुलसीराम काणे के लेखों को भी स्वाहा कर डालें पश्चात् शुक्राचार्य पर भी लांछन लगावें।

देवालयेमानहीनांमूर्त्तिंभग्नांनधारयेत्।
प्रासादांश्चतथादेवाञ्जीर्णानुद्धृत्ययत्नतः॥

शुक्रनीति अ० ४ श्लो० ५२१।

इस में शुक्राचार्य जी का भाषण यह है कि टूटी फूटी मूर्तिको देवालय में न रहने देवे जीर्ण मन्दिर और जीर्ण मूर्ति को भी राजा उद्धार करवा देवे इत्यादि औरभी शुक्रनीतिमें मूर्तिपूजा विषयक अनेक श्लोक लिखे हैं जिस आर्य को जिज्ञासा हो वह शुक्रनीति का चौथा तथा पांचवां अध्याय देखकर सन्देह नष्ट करलेवे यदि महाभारतकी निगरानी करी जावे तो वहां लिखा है कि एक भील बाणविद्या सीखने के लिये द्रोणाचार्य के पास आया था परन्तु द्रोणाचार्य ने भील को शूद्र जानकर बाणविद्या न सिखलाई वह भील घर को लौट आया और घर में ही छोटा सा मन्दिर भील ने बना लिया द्रोणाचार्य की मूर्त्ति भी उसी मन्दिर में स्थापित करदी मूर्तिके पास एक निशान गाढ़ दिया मूर्ति का ध्यान धरकर निशान

में वह भील बाण मारने लगा उस का परिणाम यह हुआ कि श्रद्धापूर्वक स्थापित द्रोणाचार्यस्थ बाणविद्या का ज्ञान भीलके अन्तःकरण में हो गया इस उदाहरण से भी यही सिद्ध हुआ कि मूर्तिपूजा सदा से भारतवर्ष में चली आती है दयानन्द ने जो वर्णन किया कि मूर्तिपूजा जैनों के राज से चली है वह सर्वदा गपोड़बाजी है (सन् १८८४ के छपे सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द का लेख है कि) हिन्दु लोग मूर्तिमें प्राण प्रतिष्ठा करते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि मूर्ति जड़ है उस में प्राणों के आने जाने का छिद्र भी नहीं इस से मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा का होना सर्वथा असंभव है यदि मूर्ति में प्राण आ जाते तो मूर्ति चेतन हो जाती दयानन्द की यह शंका भी ठीक नहीं क्योंकि प्राणप्रतिष्ठा के सिद्धान्त को न जानकर दयानन्द को पूर्वोक्त संदेह हुआ है यदि विद्वानों से दयानन्द पूछ लेता तो सन्देहसागरमें गोते कभी न खाता सो हो अब आगे भी दयानन्दकी शंकाका समाधान वर्णन किया जाता है (तथाहि)

यस्यवातः प्राणापानौचक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशोयश्चक्रेप्रज्ञानीस्तस्मैज्येष्ठायब्रह्मणेनमः ॥

अथर्व० कां० १० अनु० ४ मं० ३४

सूर्योमेचक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मापृथिवीशरीरम्।

अथर्व० कां० ५ सू० ९ मं० ७।

यहां प्रथम मंत्रका भावार्थ यह है कि ब्रह्मांड भरका वायु जिस ईश्वर के प्राण अपान हैं उस ईश्वर को हमारा नमस्कार है दूसरे मंत्रमें स्वयं ईश्वर ही वर्णन करता है कि ब्रह्मांड भरका वायु मेरा प्राण है। इन दो वेदमंत्रोंसे निर्णय हो चुका कि नाम रूप और क्रियात्मक प्रपंचरूप वायु सर्व शक्तिमान् सर्वव्यापक ईश्वर के प्राण हैं। अब आर्योंसे प्रष्टव्य यह है कि मूर्ति सावकाश है वा निरवकाश यदि कहो कि मूर्ति निरवकाश है तो ठीक नहीं क्योंकि मूर्ति को निरवकाश मानना पदार्थ विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध है जैसे कि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि मैदानमें रक्खा हुआ पत्थर गर्मी से गर्म और सर्दीसे ठंडा हो जाता है यदि पत्थर सावकाश होता तो उस के भीतर और सर्दी के परमाणु भी कभी न जाते किन्तु गर्म सर्द होने रूप हेतु से ज्ञात होता है कि पत्थरमें आकाश अर्थात् पोल है। (किंच)

लोहेका गोला जब अग्नि में डाला जाता है तो वह गोला लाल होजाताहै जो पदार्थ उस गोलेसे संयुक्त होता है वह भस्म हो जाता है अब विचारो कि जब लोहेके गोलेमें पोल न होता तो उसके भीतर अग्नि रूप परमाणु कैसे जाते जब उसमें अग्निरूप परमाणु न जाते तो वह लोहे का गोला गर्म्म भी कभी न होता बिना गर्म्म हुए वह गोला अपने से मिले द्रव्योंको भस्म भी कभी न करता लोहेके गर्म्म गोलेसे मिले द्रव्यके जल जाने रूप हेतु से सिद्ध हो चुका कि सख्त लोहेके गोलेमें भी पोल यदि अनुभव से सिद्ध है तो मूर्तिके भीतर पोल नाम अवकाश कौन सी युक्तिसे नहीं किन्तु मूर्तिमें भी पोलका वाचक आकाश व्यापक सिद्ध हो चुका यहां तक मूर्तिमें एक ईश्वर और दूसरा पोल यह दो पदार्थ हमने पदार्थ विद्यासे सिद्ध किये यदि मूर्तिमें ईश्वरको न मानें तो वह ईश्वर सर्वव्यापक न होगा यदि सर्वव्यापक मानें तो ईश्वर मूर्तिमें भी अनुभवसे सिद्ध हो चुका सत्यार्थप्रकाशके सातवें समुल्लासमें दयानन्दने भी आकाशको और ईश्वरको सर्वव्यापक लिखा है। अब आर्योंसे प्रष्टव्य यह है कि जहां पोल है वहां वायु भी है अथवा नहीं यदि नहीं कहो तो मकानके भीतर पंखा हिलानेसे वायुका प्रादुर्भाव न होना चाहिये मकानके पंखा हिलाने रूप हेतुसे सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि आकाश अर्थात् पोल वायुसे भरा है जब पोल रूप आकाश वायुसे भरा सिद्ध हो चुका तो मूर्तिमें जो पोल है वह भी वायुसे भरा सिद्ध हुआ यदि आर्य न मानें तो वेदसे विरोध होगा क्योंकि पूर्व हमने वेद मंत्रोंसे दर्शा दिया है कि वायु ईश्वरका प्राण है यदि मूर्तिके भीतर ईश्वरको मानके वहां वायु न मानें तो वह ईश्वर प्राणहीन मुर्दा सिद्ध होगा परन्तु वेदान्त रीतिसे ईश्वर मुर्दा नहीं हो सकता किन्तु वह ईश्वर प्राणयुक्त जीवित है सिद्धान्त यह कि युक्ति और वेदादि प्रमाणोंसे मूर्तिके भीतर ईश्वर तथा आकाश और वायु रूप ईश्वरके प्राण यह तीन पदार्थ सिद्ध हो चुके। रहा प्रतिष्ठा शब्द उसकी वक्ष्यमाण रीतिसे समालोचना की जाती है (तथाहि) प्रतिष्ठा शब्द प्रकरणमें प्रशंसाका वाचक है लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अभिप्राय यह प्रकाशित हुआ कि पूर्व समयके हिन्दु जो कि ईश्वरके भक्त थे वह जब मन्दिर बनाते थे तो समारोहके साथ उत्सव करते थे यज्ञवेदि रचकर वेद मन्त्रोंसे हवन करते थे मन्दिरमें रामकृष्णादि नाम वाली मूर्ति स्थापित करते थे उसको सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी मूर्ति वर्णन करते थे भक्त जन उस ईश्वरकी मूर्तिके सामने बैठकर ईश्वरके गुणोंका वर्णन करते थे।

वायु स्वरूप ईश्वरके प्राणोंकी भी प्रतिष्ठा नाम प्रशंसा करते थे इस प्रकार की युक्ति और वेदादि प्रमाणोंसे सिद्ध प्राणप्रतिष्ठाका वर्त्तमान समय सर्वथा अदर्शन हो गयाहै यह अविद्याकी महिमा है इस समय हिन्दु सन्तान प्राण प्रतिष्ठाको तिलाञ्जली देकर मन्दिरस्थ मूर्त्तिमें प्राण प्रतिष्ठा करने लगे हैं उनकी सर्वथा भूल है प्रकरण यह कि बाबाजी दयानन्दने जो सन् १८८५ के सत्यार्थप्रकाश में गप्प हांका है कि मूर्त्तिमें प्राण प्रतिष्ठा का होना असंभव है उस गप्पको हमने वेदप्रमाण और वेदान्तकी युक्तिसे खंडन कर डाला ॥ (सत्यार्थप्रकाश आवृत्ति दूसरी समुल्लास ११ वहां ।) दयानन्दका लेख है कि शिवालयमें लिंग और भग रखे हैं यह निर्लज्जोंका काम है बाबाजी के इस लेखका सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि हिन्दु लोगोंने शिवालयमें लिंग नाम उपस्थ और भग नाम गुप्तांग रखे हैं ॥ परन्तु बाबाजीकी यह सर्वथा अविद्या है ।

क्योंकि वाक्यका अर्थ प्रकरणानुसार किया जाता है जैसे कि (सैन्धव मानय) इस वाक्य में सैन्धव शब्दके नमक और घोड़ा आदि अनेकार्थ हैं किन्तु श्रोताको चाहिये कि भोजनके प्रकरण में सैन्धव शब्दको सुनकर नमक देवे और गमन करनेके प्रकरणमें सैन्धव शब्दको श्रवण कर मालिकको घोड़ा तैयार कर देवे यदि श्रोता प्रकरणको न जानकर गमनके समय मालिक को नमक देगा और भोजनके समय प्रकरण न जानकर पाकशाला में घोड़ा घसेड़ देगा तो उसका मालिक उसको दण्ड देगा क्योंकि उसने प्रकरणके विरुद्ध काम किया है । अंगरेजी भाषामें भी अनेकार्थके वाचक शब्द आते हैं । जैसे सन शब्दका एक पुत्र और दूसरा सूर्य्य अर्थ है फारसीमें शादी शब्द का एक विवाह और दूसरा आनन्द अर्थ है इन उदाहरणोंमें भी प्रकरणानुसार शब्दका अर्थ किया जाता है वैसे ही लिंग शब्दका अर्थ भी प्रकरणानुसार सिद्ध होता है प्रकरणके विरुद्ध लिंग शब्दका अनर्थ करना दयानन्दका अज्ञान और हठ है ग्राम्यधर्मके प्रकरणमें तो लिंगका अर्थ उपस्थेन्द्रिय हो सकता था परंतु ध्यान पूजनके प्रकरणमें लिंग शब्दका उपस्थेन्द्रिय अर्थ करना दयानन्दका उन्मत्त प्रलाप है । अब प्रकरणानुसार लिंग शब्दका अर्थ दर्शानेके लिये प्रमाण वर्णन किये जाते हैं ॥ (तथाहि)

(तैत्तिरीयारण्य० प्रपा० १ अनु० कं० ६ ॥ नानालिङ्गत्वादृतूनांनानासूर्य्यत्वम्)

इस मन्त्रमें ग्रीष्म हिम आदि ऋतुओंको लिङ्ग कहा है उन लिंगों से नाना सूर्यों का ज्ञान होता है प्रकरण में सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि

अनेक सूर्यों का ज्ञान कराने के लिये ईश्वर ने ग्रीष्मादि अनेक ऋतु रूपी लिंग नाम चिन्हों को रचा है इस प्रकरण में लिंग शब्द का उपस्थेन्द्रिय अर्थ करना विद्याहीनों का तमाशा है। (अव्यक्तं त्रिगुणात् लिंगात्) इस सूत्र में प्रकृतिका ज्ञान कराने के लिये कपिलमुनिने रजस् तमस् सतो० इन तीन गुणोंको लिंग शब्द से वर्णन किया है। (शम्भुनस्थर्लिङ्ग०) इस श्लोक में वाल्मीकि जीने शिव परमात्मा का स्मरण कराने के लिये शिवजीकी मूर्ति को लिंग कहा है॥

सीमालिङ्गानिकारयेत्। मनु० अध्या० ८ श्लो० २४९॥

इसमें मनु भगवान् ने राजाके राज की सीमा पर जो ईंट पत्थर गारा वा चूनेसे बुर्जी बनाई जाती है उनको लिंग कहा है (न लिंगं धर्मकारणम्) इसमें मनुजीने शिखा सूत्रादि चिन्हों का लिंग शब्दसे वर्णन किया है॥

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति।

न्याय० अ० १ आ० १ सू० ४॥

इस सूत्रमें गौतमाचार्य जीने इच्छा द्वेष प्रयत्नादि आत्मा के गुणों का लिंग शब्दसे वर्णन किया है॥

यत्र लिङ्गज्ञानेन लिङ्गिनो ज्ञानं जायते तदनुमानम्।

इस वचनमें वात्स्यायन मुनिने अग्निके ज्ञान करानेका हेतु जो पर्वत से धूम्र दृष्टि आता है उस धूम्रको लिंग कहा है॥

निष्क्रमणंप्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्।

वैशेषिकद० अ० २२ आ० १ सू० २०।

इस सूत्र में कणाद मुनि जी ने मकानके बाह्य और भीतर प्रवेश करने के आकाश को ज्ञान करानेका लिंग वर्णन किया है॥

धर्मस्यतस्यलिङ्गानि दयाक्षान्तिरहिंसनम्।
तपोदानंचशीलंच सत्यंशौचंवितृष्णता॥

मुक्तावली अ० प्रकरणधर्म श्लो० २।

इस श्लोकमें दया क्षमा अहिंसा आदिको धर्मके लिङ्ग वर्णन किया है।

आकाशंलिङ्गमित्याहुः पृथिवीतस्यपीठिका।
आलयंसर्वभूतानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते॥

लिङ्गमध्येजगत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ।
लिङ्गेतुपूजितेसर्वं अर्चितंस्याच्चराचरम् ॥
योलिङ्गंद्वेष्टिसंमोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् ।
नरोनरकगामीस्यात् तस्यसंभाषणादपि ॥ भविष्यपुराणे

इत्यादि श्लोकोंमें व्यासजीने चराचर संसार रूपी विराट् ही को लिंग नामसे वर्णन किया है क्योंकि संसारस्थ चन्द्र सूर्य सागरादि के नियमों से विराट्के कर्ता ईश्वर का भी ज्ञान होता है। यदि आर्य न मानें तो बाबा दयानन्दजी का लेख भी मिथ्या होगा, क्योंकि सत्यार्थप्रकाशके बारहवें समुल्लास में दयानन्दने कहा है कि जगत् रूपी लिंगके ज्ञानसे जगत्कर्त्ता ईश्वरका प्रत्यक्ष होता है सत्यार्थप्रकाशके प्रथम समुल्लास में बाबाजीका लेख है कि तीनों लिंगों में ईश्वरके नाम आते हैं। यहां भी आर्य लोग लिंग शब्द का उपस्थेन्द्रिय अर्थ नहीं कर सकते, किन्तु यहां लिंग शब्द का अर्थ चिन्ह ही करना पड़ेगा। (पञ्चमहायज्ञविधि—शन्नोदेवीरभिष्टय आपो०) इस मन्त्र के भाष्य में भी दयानन्द ने (अप) नाम ईश्वरका कहा है और लिखा है कि ईश्वर का (अप नाम) (आप्लृ) धातु से सिद्ध होता है और ईश्वर का यह नाम स्त्रीलिंग है, यहां भी आर्य लोग स्त्रीलिंग का उपस्थेन्द्रिय अर्थ नहीं कर सकते ॥

अप्शब्दोनियतस्त्रीलिङ्गोबहुवचनान्तश्च ।

यह वचन भी दयानन्दकृत पञ्चमहायज्ञविधि का है। इत्यादि प्रमाणों से सिद्धान्त यह सिद्ध होता है कि उपासना प्रकरणमें लिंग शब्दका अर्थ उपस्थेन्द्रिय करना विद्याहीनोंका तमाशा है। शिवालयमें जो वर्तुलाकार शिवलिंग रखा है उस का उपस्थेन्द्रिय अर्थ करना दयानन्द की सर्वथा भूल है किन्तु (नमः शिवायच०) इस वेद मन्त्रमें शिव नाम सर्वशक्तिमान् ईश्वरका है ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना प्रकरणमें सर्वव्यापक शिव परमात्मा का स्मरण और उस के गुण वर्णन करने के लिये शिवालय में लिंग नाम चिन्ह रखा है इस युक्ति प्रमाण युक्त लिङ्ग शब्द के अर्थ से विरक्त होकर बाबाजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिङ्ग शब्द का अर्थ उपस्थेन्द्रिय लिख मारा है। अंगरेजी पढ़े हुए बाबू भी अविद्यान्धकारमें फंसकर दयानन्द हीकी लकीरके फकीर बन बैठे हैं बहुत से संन्यासी भी वेदादि सत्य विद्यासे हीन होकर लिङ्ग शब्दका अर्थ उपस्थेन्द्रिय ही लेते हैं सो उनका अज्ञान और हठ है। सत्यार्थप्रकाशमें दयानन्द का लेख है कि वाममार्गियों ने भग लिङ्ग

को स्थापित किया है दयानन्दका यह प्रश्न भी अज्ञान और हठ से भरा है क्योंकि सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाश पृ० ३०२ पर दयानन्दने वन्ध्या गौ और बैलको गोमेधमें मार कर मांस खाना लिखा है दूसरे सत्यार्थप्रकाशके दशवें समुल्लास में दयानन्दने वर्णन किया है कि हानिकारक पशुओं और मनुष्यों को मारकर उनका मांस खाले तो भी संसार की हानि कुछ नहीं होती यजुर्वेद भाष्य में आपजी ने नीलगाय का मारना भी वर्णन किया है सन् १८७५ अठारह सौ पचहत्तर के सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द ने शराबका पीना भी वर्णन किया है दूसरे सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में बाबा जी ने राजा को भी शराब पीने का हुक्म दिया है उसी के चौथे समुल्लास में (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्) इस वेद मंत्रके वचनसे अपनी भगिनी माता का नियोग लिख मारा है अब आर्य लोग पक्षपात छोड़कर बतलावें कि वाममार्गियोंके भी क्या सींग पूंछ होते हैं? हां वेदांतके ग्रन्थोंमें वेदांती लोगों ने वाममार्ग मतको सर्वथा खण्डन कर डाला है पांच देवताओंकी उपासना प्रकरण में शङ्कराचार्यजीने भी वेदोंके दक्षिण मार्ग को माना है वाममार्गको नहीं माना, विचारसागर के सातवें तरंग में वाममार्गियोंके मतको यहांतक खराब वर्णन किया है कि वाममार्ग को सुनकर म्लेच्छके भी रोमांच होजाते हैं। जैसे वाममार्गियों ने मदिरा का नाम तीर्थ और लहसुनका नाम व्यास रख लिया है वैसे ही व्यभिचारी नरका नाम शिव और व्यभिचारिणी स्त्री का नाम देवी वा पार्वती नामभी वाममार्गियोंने रख लिये हैं। वाममार्गियों के दोषों को वेदोक्त सनातनहिन्दु धर्म पर आरोपण करना भी दयानन्द की अविद्या है जहां २ भैरवी चक्र लगाकर देवी नामसे पूजन होता है वहां हिन्दुमत नहीं किन्तु वहां वाममार्गियों का मत है वह दोष वेदोक्त हिन्दू मत पर नहीं आ सकता ॥

आर्यों का प्रश्न है कि आपने लिङ्ग शब्दका अर्थ तो प्रकरणानुसार चिन्ह किया परंतु शिवालय में जहां लिङ्ग नाम चिन्ह है वह जिस में खड़ा है उस को संन्यासी योगी गुसांई वगैरा ही पार्वती की भग कहते हैं वहां भग शब्द का अर्थ आप क्या करेंगे इस का उत्तर यह कि भग नाम वेद में सर्वैश्वर्यवान् ईश्वर का भी वर्णन किया है जैसे कि—

भगएवभगवाँऽअस्तुदेवास्तेनवयंभगवन्तः० य० अ० ३४ मं० ३८

भगप्रणेतर्भगसत्यराधो० य० अ० ३४ मं० ३६ ॥

तथा (ईश ऐश्वर्य्ये) इत्यादि वेद और वेदांग व्याकरणके प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि प्रकरणमें भग नाम सर्वैश्वर्य्यका है और सर्वैश्वर्यवान् ईश्वर का नाम भगवान् है। यहां आर्योंसे प्रष्टव्य यह है कि क्या आर्यमत वाला ईश्वर भी कोई आर्यमतकी स्त्री है यदि कहो कि आर्यमत की वा अन्य किसी मतकी स्त्री ईश्वर नहीं हो सकता तो वस साबित यह हुआ कि स्तुति प्रार्थना और उपासना प्रकरणमें भग शब्दका अर्थ माया वा प्रकृति शक्ति ही अर्थ हैं प्रकरणके विरुद्ध भग शब्दका अर्थ गुह्यांग लेना दयानन्दकी सर्वथा भूल अथवा अविद्या है इसी व्याख्यानमें हम वर्णन कर चुके हैं कि ईश्वरकी प्रकृति शक्ति अनेक प्रकारसे भान होती है जैसे कि जीवके श्रोत्रेन्द्रियमें शब्दका ज्ञान करानेकी शक्ति है, त्वगिन्द्रियमें कोमल कठोरस्पर्शका, नेत्रेन्द्रियमें काले पीले लाल रूपका, रसनेन्द्रियमें खट्टे मीठे रसका, घ्राणेन्द्रिय में सुगन्ध दुर्गन्धके ज्ञान करानेकी शक्ति अनुभव सिद्ध है। अनुभव सिद्ध बात किसी भी युक्तिसे खण्डन नहीं हो सक्ती वागिन्द्रियमें शब्दका उच्चारण करानेकी शक्ति है हस्तेन्द्रियमें पदार्थका ग्रहण त्याग करानेकी पादेन्द्रिय में गमनागमन करानेकी पायु इन्द्रियमें मलका त्याग करानेकी उपस्थेन्द्रियमें मूत्रका त्याग करानेकी शक्ति है मनमें पदार्थका संकल्प करानेकी, वुद्धि में पदार्थका निश्चय करानेकी चित्त में पदार्थका चिंतन करानेकी अहङ्कार में पदार्थका अभिमान करानेकी शक्ति है प्राणादिकोंमें योगाभ्यास कराने की और अन्नादिके पचानेकी शक्ति है जीव में शुभाशुभ कर्म करने की और शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख दुःख भोगनेकी शक्ति है, ईश्वर में जगत्के उत्पत्ति प्रलय और संहार करनेकी तथा जीवोंको कर्मानुसार फल देनेकी शक्ति है, आकाशमें ईश्वरके रचे विचित्र विराट्को अवकाश देनेकी शक्ति और वायुमें पदार्थोंके आकर्षण करनेकी शक्ति है, अग्निमें पदार्थोंका दाह करनेकी, जलमें गीला करने प्यास मिटानेकी, पृथिवीमें आधार देनेकी शक्ति है, टेलिग्राम में हजारों कोशों तक प्रश्नोत्तर करानेकी शक्ति, भाफमें रेल चलानेकी अग्नि वोट पेच पुतलीघर में कपड़ा बनाने को इञ्जन द्वारा आटा पीसनेकी, सड़क कूटनेकी लकड़ी चीरने की इत्यादि विचित्र शक्ति है। ब्राह्मणपद में ब्राह्मणत्व जातिविशिष्ट, क्षत्रिय पद में क्षत्रियत्व जाति, वैश्यपद में वैश्यत्व, शूद्रपद में शूद्रत्व जाति विशिष्ट व्यक्ति का ज्ञान करानेकी शक्ति है। गोपद में गोत्व अश्वपद में अश्वत्व घटपद में घटत्व पटपद में पटत्व जाति विशिष्ट व्यक्ति का ज्ञान कराने की शक्ति है। सिद्धान्त यह कि ईश्वर के रचे प्रपञ्चस्थ जितने शब्द और अर्थ हैं वह सर्व भिन्न २ शक्ति से युक्त अनुभव

सिद्ध हैं यहां तक स्थालीपुलाकन्याय से हमने त्रिगुणात्मक ईश्वरकी प्रकृति शक्ति की विचित्रता और व्यापकताको दरशाया वह प्रकृति शक्ति ही दक्षिणमार्ग में उपासक लोगों की उपास्य है परन्तु वह ईश्वर की प्रकृतिशक्ति सूक्ष्म होने के कारण सर्वथा चक्षु से अगोचर है ज्ञान से उस को प्रत्यक्ष करने के लिए शक्ति के भक्त शाक्त लोगों ने देवी के मन्दिर बनाये हैं उन में चतुर्भुजी अष्टभुजी शक्तिकी मूर्त्ति रक्खी हैं। शक्ति के भक्त जब संसारकी कामनासे विरक्त होकर देवीकी मूर्त्ति का ध्यान पूजन करते हैं तो भक्तों का मन स्थिर हो जाता है शक्ति देवी की मूर्त्ति में मन को स्थिर करने की शक्ति है। स्थिर हुए भक्तों के मन में ईश्वर की विचित्र शक्तिप्रकृति देवीका भान होता है उस ध्यान के दृढ़ होने से शक्तियुक्त ईश्वर का भी भक्तों को अपरोक्ष ज्ञान होता है उस के पश्चात् वेदान्त के श्रवणादि से जीव और ईश्वरके स्वरूप में से अन्तःकरण और प्रकृतिभाग की दृष्टि भक्त त्याग देते हैं शेषभक्तोंके हृदय कमल में निराकार निर्विकार नित्यमुक्त नित्यशुद्ध ब्रह्म चेतन का स्वप्रकाश स्वरूप से भान होता है उस से भक्तों को ब्रह्मका संशय विपर्यय रहित ज्ञान हो जाता है उस ज्ञान से अविद्यात कार्य की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति स्वरूप मोक्षपद का लाभ भक्तोंको हो जाता है। युक्ति और वेदादि प्रमाणों से दक्षिणमार्ग देवीका यही सिद्धान्त सिद्ध होता है। वाममार्गको वेदान्ती लोगों ने सर्वथा खण्डन कर डाला है मन्दिरस्थ अण्डाकार जो लिङ्ग नाम चिन्ह इस खड्डे में स्थापित किया है उस खड्डे का सिद्धान्त यह है कि लिङ्ग नाम चिन्ह द्वारा सर्वशक्तिमान् शिव परमात्मा पर समर्पण किया हुआ जल सर्वत्र न फैल जावे किन्तु बाहर निकल जावे उस को गुप्तांग कथन करना दयानन्द की सर्वथा अविद्या है।

सत्यार्थप्रकाशकेग्यारहवें समुल्लासमें दयानन्दने कहा है कि हिंगुलाजमें योनियंत्र रक्खा है योनि नाम भी गुप्तांग का है दयानन्द का वह लेख भी प्रकरण और वेद के विरुद्ध है देखो—

य० अ० ३१ मं० १९ ॥ तस्ययोनिंपरिपश्यन्तिधीराः॥

इस वेदमन्त्र का सिद्धान्त यह कि ज्ञानी लोगोंको योनिनाम ईश्वर की माया वा विचित्र प्रकृति शक्ति का अपरोक्ष ज्ञान है प्रकरण में उसी ईश्वर की शक्ति के जाननेके लिये हिंगुलाजमें साकार चिन्ह रक्खा है परन्तु वेदादि सत्यविद्याका पठनपाठन छूट जानेके कारण बहुतसे वाममार्गी योगी गोसांई आदि ने भी हिंगुलाजको गुप्तांग समझ रक्खा है सो उनका बुझक्कड़पन है

बूझै २ लालबुझक्कड़ और न बूझै कोय ।
थोड़ा २ सब को दीजो गड्डम गड्डा होय ॥

विद्याहीन मूर्ख गोसांई योगियोंके बकने से हिंगुलाज वेदोक्त योनि यंत्र गुह्यांग सिद्ध नहीं हो सकता । आर्यसमाजी कहते हैं कि—

यस्यात्मबुद्धिःकुणपेत्रिधातुकेस्वधीःकलत्रादिषुभौमइज्यधीः।
यस्तीर्थबुद्धिःसलिलेनकर्हिचित् जनेष्वभिज्ञेषुसएवगोखरः॥

इस भागवतके श्लोक में साफ लिखा है कि जो मूर्त्तिमें ईश्वर बुद्धि करता है वह मनुष्य जैसे गौओं में गधा हो वैसा है आर्यों की यह शंका भी असंगत है क्योंकि उक्त श्लोकका लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण से यह सिद्धान्त सिद्ध होता है कि जो कुतार्की मनुष्य विद्वानों का संग वा विद्या का अभ्यास नहीं करता किन्तु शरीर में और जड़ पदार्थों में आत्मबुद्धि करता है वह मनुष्य विद्वानों में वैसा सिद्ध होता है कि जैसे बैलों में गधा होता है । प्रकरण में बैल का उदाहरण एकांशमें है जैसे पशुओंमें बैल सर्वोत्तम है और गधा नीच होता है वैसे ही नामका वह मनुष्य है जो कि विद्वानों के संग से हीन है उक्त भागवत के श्लोक से मूर्त्ति का खण्डन सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वेदमत में ईश्वर की मूर्त्तिका वर्णन है यह कहीं नहीं वेद में लिखा है कि शरीर आत्मा है वा मूर्ति ईश्वर है उस से उक्त शंका भी आर्यों की असंगत है पुराणमण्डन व्याख्यान में हमने पुराणों को भी वेद विरुद्ध अंश छोड़कर और वेदानुसारांश स्वीकार कर निर्दोष सिद्ध कर डाला है अवतार मण्डन व्याख्यान में हमने वेदादि प्रमाणों और युक्तियों से राम कृष्णादि अवतार सिद्ध किये हैं अवतारोंकी मूर्त्तियां ही प्रकरण में ईश्वरकी मूर्त्तियां सिद्ध हो चुकी हैं स्थालीपुलाकन्यायसे इस ईश्वर की मूर्त्तिमें पुराणों के प्रमाण भी दर्शाते हैं (तथाहि)

कलौप्राप्तेविशेषेण कृष्णमूर्त्तिषुदेवताः ।
आराध्यायानुगांश्चैतान् सर्वकामफलप्रदाः ॥

वायु पु० अ० १८ श्लो० ८६—

दशावतारानभ्यर्चेत् पुष्पधूपविलेपनैः ।
अत्रहैमीर्महार्हांश्च दशमूर्त्तीःसुलक्षणाः ॥

भविष्य पु० उत्तरार्द्ध अ० ७३ श्लो० २५ ।

सुवर्णमयींभगवतःश्रीश्रीबुद्धदेवस्यप्रतिमांस्थापयित्वा च ब्राह्मणाय दद्यात ।

(हेमाद्री० अ० १५ ब्रह्मखण्ड)

अर्चयेत्तुपरंदेवं गन्धपुष्पनिवेदनैः ।
बुद्धायपादौसंयुज्य श्रीधरायेतिवैकटिः ॥

(वराहपु० अ० ४ श्लो० ३)

मत्स्यःकूर्मोवराहश्च नरसिंहोऽथवामनः ।
रामोरामश्चकृष्णश्च बुद्धःकल्कीचतेदश ॥ १ ॥
इत्येताःकथितास्तस्य मूर्त्तयोभूतधारिणि ।
दर्शनंप्राप्तुमिच्छूनां सोपानानिसुशोभने ॥

(पद्मपु०)-ध्यानमूलंगुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलंगुरोःपदम् ॥

इत्यादि पुराणों के प्रमाणों से भी सिद्ध हो चुका है कि ईश्वर के राम कृष्णादि दश अवतारों की मूर्तियां पूजनीय हैं। आर्यसमाजी कहते हैं कि हमारे बाबाजी ने सत्यार्थप्रकाश में पुराणोंको सर्वथा मिथ्या सिद्ध कर डाला है उनके प्रमाणों से ईश्वर की मूर्ति का होना सर्वथा असंभव है। आर्यों की यह शङ्का भी अज्ञानमूलक है क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश की भूमिकामें दयानन्द ही का यह लेख है कि पुराणों को भी मैं वेदानुसार अंश में मानता हूं। दयानन्द के इस लेख से मूर्त्तिपूजा अंश में पुराण अवश्य माननीय हैं क्योंकि पूर्व इसी व्याख्यान में हमने वेद से ईश्वर की मूर्त्ति का होना और ध्यान सिद्ध करके दरशा दिया है उससे पूर्वोक्त पुराणों के श्लोकों से भी ईश्वरकी मूर्त्तिका होना और उसके ध्यान पूजनका करना सिद्ध हो चुका है।

प्रकृति शक्तिरूपी मूर्त्तियुक्त ईश्वर को निराकार कथन करना दयानन्द का सर्वथा अज्ञान और हठ है किन्तु प्रकृति शक्ति और तत्कार्य नामरूप क्रियात्मक चित्र विचित्र पदार्थ युक्त और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अनिर्वचनीय सिद्ध हो चुके हैं। परमार्थसे निराकार निर्विकार नित्यमुक्त नित्यशुद्ध ब्रह्मचेतन में उनका सर्वथा सर्वदा वाध निश्चय है। इस व्याख्यान में हमने ईश्वरकी मूर्त्ति का होना युक्ति और वेदादि प्रमाणों से सिद्धकरके दरशाया है। अब व्याख्यान समाप्त हुआ॥

ओ३म्-तमीशानंजगतस्तस्थुषस्पतिंधियं जिन्वमवसेहूमहेवयम्। पूषानोयथावेदसामसद्वृधेरक्षितापायुरदब्धःस्वस्तये॥ ऋ० १। १५। ५॥
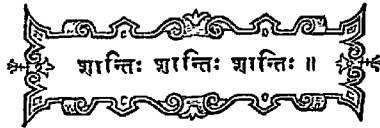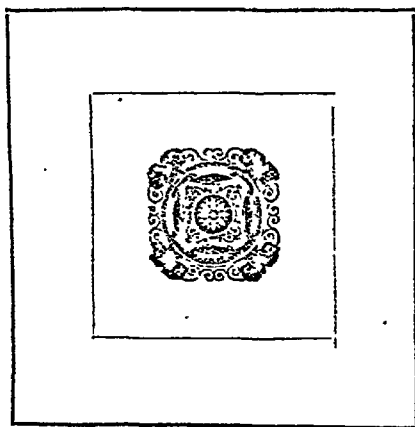
ब्रह्मयन्त्रालय इटावा की

हिन्दी और संस्कृत पुस्तकोंका

सूचीपत्र.

धर्म्म और ज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें।

१—अष्टादशस्मृति।

अत्रि, विष्णु, हारीत, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब संवर्त, कात्यायन, वृहस्पति, पाराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, और वशिष्ठ इन अठारह महर्षियों के नाम प्राचीन काल से चले आते है, इन ऋषियों ने धर्म मर्यादा और लोकव्यवहार के अनुरूप स्थापित रखनेके लिये अपने २ नामसे एक २ स्मृति की रचना की है। इनमें सनातन वैदिक धर्मकी महिमा और विधि अनेक प्रकार से ऐसी उत्तमोत्तम लिखी है कि जिस के देखने तथा कथा श्रवण करनेसे भी श्रद्धालु मनुष्यों के पापोंकी निवृत्ति पूर्वक कल्याण होता है तब लिखे अनुसार काम करने से परम कल्याण अवश्यमेव होगा। इस लिये जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं उनको धर्मशास्त्रों का अवलोकन वा श्रवण अवश्य करना चाहिये। बहुत उत्तम भाषाटीका सहित मोटे चिकने कागज पर शुद्ध छपा ८०० पेज का पुस्तक है। मूल्य प्रति पुस्तक ३) है।

२—याज्ञवल्क्यस्मृति भाषाटीका।

मनुष्य के कल्याणकारी २७ धर्मशास्त्रों में याज्ञवल्क्यस्मृति अन्यतम है स्मृतियों में इसका कैसा उच्चासन है और इसकी कैसी प्रतिष्ठा है यह किसी से छिपा नहीं है इस पर मिताक्षरा नामक संस्कृत में एक बड़ी ही उत्तम टीका है पर संस्कृतमें होनेसे वह सर्वसाधारण के उपयोगी नहीं है। वृटिश गवर्नमेण्ट ने इसी मिताक्षरा के अनुसार हिन्दुओं के दायविभाग आदि कानून बनाये हैं। ऐसी उपयोगी पुस्तक को हिन्दुस्तानों को कितनी बड़ी

आवश्यकता है पर दुःख की बात है कि इसपर हिन्दी में कोई उपयोगी भाष्य नहीं, यद्यपि दो एक प्रेसों में इसका भाषानुवाद छपा भी है पर वह अल्पज्ञों का बनाया होने से मूल के यथार्थ भावको व्यक्त नहीं करता इसके सिवाय उन टीकाओं में आवश्यक स्थलों पर न तो नोट हैं और न सन्देहास्पद शङ्काओंका समाधान है और मूल्य भी इतना अधिक है कि सर्वसाधारण खरीद नहीं सकते इन्हीं सब कारणोंको विचारकर श्रीयुत पं० भीमसेन शर्मा जी ने इसका स्वयं अनुवाद किया है। प्रत्येक श्लोक का स्पष्ट और विशद भाषानुवाद किया गया है आवश्यक स्थलों पर टिप्पणियां दी गई हैं शङ्कास्पद विषयों का समाधान किया गया है पुष्ट सफेद कागज पर उत्तम टाइप में पुस्तक छापी गई है इतने पर भी मूल्य केवल १) ही है।

३--भगवद्गीता भाषाटीका।

यद्यपि भगवद्गीताकी भाषाटीकायें अबतक बहुत प्रकारकी बहुत स्थानों में बनी और छपी हैं तथापि यह हरिदासकृत भाषाटीका ऐसी विस्तृत बनी है कि जिससे भगवद्गीता का गूढ़ाशय सर्वोपरि खुलजाता है। प्रत्येक श्लोकको उत्थानिका लिखी है, श्लोकके नीचे मूलके पदोंका कोष्ठकमें रख २ के अन्वित भावार्थ लिखकर पश्चात् तात्पर्य रूप टीका लिखी है। जहां कहीं कुछ सन्देह वा पूर्वपक्ष हो सकता है वहां वैसा प्रश्न उठाकर समाधान भी लिखा है। कई जगह इतिहासादि के दृष्टान्त भी दिये गये हैं। जहां कहीं पूर्वापर विरोध दीखा उसका भी समाधान किया है। पं० भीमसेन शर्मा ने अनेक श्लोकों पर नोट देकर गूढ़ाशय खोला है। यह टीका अद्वैत सिद्धान्त पोषक है इसमें सगुण भगवान् की उपासना मुख्य रक्खी है। चिकने उत्तम सफेद कागज पर शुद्ध और साफ छपा अठपेजा डेमी साइज ७०० पृष्ठका पुस्तक है मू० २॥) है।

४-वाजसनेयोपनिषद्भाष्य।

यह वाजसनेयी संहितोपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयीसंहिताका चालीसवां अध्याय है। संहिता के ३९ अध्यायों में कहा विधियज्ञ रूप कर्मकाण्ड का अनुष्ठान जिस पुरुष ने बहुत काल तक निरन्तर श्रद्धा से किया हो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जानेसे वह इस चालीसवें अध्यायमें कहे ज्ञानका अधिकारी है। यह पुस्तक भी डिमाई साइज अठपेजा छपा है मू० ≡)

५-तलवकारोपनिषद् भाष्य ।

यह पुस्तक भी ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी है । सामवेदीय तलवकार शाखाके नौ अध्यायोंमें से यह नवमां अध्याय तलवकार वा केन उपनिषद् कहाता है। इसमें यक्षरूपसे प्रकट होके ब्रह्म परमात्माने अग्नि आदि देवोंसे संवाद किया उसका भी वर्णन है । परमात्मतत्त्वका इसमें अच्छे प्रकार विवेचन किया गया है । अठपेजा छिपाई चिकने कागज पर बम्बइया टायपमें संस्कृत तथा भाषा दोनों प्रकारके टीका सहित छपा है मू०≡)

६—प्रश्नोपनिषद्भाष्य ।

मूलवेदान्त [वेद के सार सिद्धान्त] में से एक यह प्रश्नोपनिषद् है । अनन्त महागम्भीर वेदका सारांश इन उपनिषदों में दिखाया है। महर्षि पिप्पलादके पास आकर ब्रह्मविद्या विषयमें छः महर्षियोंने छः प्रश्न किये उनके छः प्रकारके उत्तर ही पुस्तकमें छः प्रकरण हैं । आत्मज्ञान वा ब्रह्मज्ञानके सब साधनोंमें यह उपनिषद् ही मूल तथा मुख्य है और ज्ञान ही सबसे अधिक कल्याणकारी है इससे इन उपनिषदोंका लेना देखना सबको उचित है । अठपेजा छिपाईमें छपा १९ फारम का पुस्तक संस्कृत भाषा टीका युक्त है मू० ॥)

७—उपनिषद् का उपदेश ।

प्रथम खण्ड

(अनुवादक पं० नन्दकिशोर शुक्ल)

इस समय संसारके सभी शिक्षित इस बातको सहर्ष स्वीकार करते हैं कि भारतदेशके अमूल्य धन उपनिषद् ग्रन्थोंमें जितनी तत्त्वपूर्ण बातें लिखी हुई हैं वे सब विशाल ज्ञानका अटूट भण्डार हैं हमारी प्यारी हिन्दी भाषामें उपनिषदोंको कई विद्वानोंने सटीक छापा है इनके द्वारा हिन्दीका बहुत कुछ उपकार हुआ है किसी २ ने शङ्करभाष्यका भी कुछ २ अनुवाद किया है तथापि सत्यके अनुरोधसे हमें कहना ही पड़ता है कि इन पुस्तकोंसे तत्त्वपिपासु व्यक्तियोंको जैसा चाहिये वैसा लाभ नहीं पहुंचा है क्योंकि किसी भी संस्करणमें शङ्करभाष्यका न तो मर्म ही खोला गया है और न श्रुतिके दार्शनिक एवं धर्ममतकी धाराप्रवाह समालोचना ही की गयी है, इसी कमी को दूर करनेके लिये हमने यह ग्रन्थ रत्न प्रकाशित किया है. पं० कोकिलेश्वर

भट्टाचार्य विद्यारत्न एम० ए० कूचबिहार दर्शन शास्त्रोंके बड़े अच्छे ज्ञाता हैं, उन्होंने बङ्गलामें उपनिषदेर उपदेश नामका एक महत्व पूर्ण ग्रन्थ कई खण्डोंमें लिखा है यह पुस्तक उसीके प्रथम खण्डका अनुवाद है पं० नन्द-किशोर जी शुक्ल वाणीभूषणने इसका अनुवाद किया है इसमें छान्दोग्य और वृहदारण्यक इन दो उपनिषदोंकी सब आख्यायिकायें बड़ी ही मनोरम और प्राञ्जल भाषामें लिखी गयी हैं, साथ ही शंकर भाष्यका भावार्थ भी दिया गया है पुस्तकारम्भमें एक विस्तृत भूमिका भी है जिसमें दर्शनशास्त्र सम्ब-न्धी अनेकानेक बातोंकी आलोचनाकी गयी है और शङ्कर बुद्ध और हर्बर्ट स्पेन्सर इन फिलासफरोंकी उपनिषदोंके सम्बन्धमें मौलिक एकता का वि-वेचन किया गया है हिन्दीमें इस विषयका यह बहुत ही अच्छा ग्रन्थ है मू० १) जिल्द वाली का १॥)

उपनिषद् का उपदेश ।

[द्वितीय खण्ड]

जिन विद्वानोंने स्वा० शङ्कराचार्य जी के संस्कृत भाष्य [जो उन्हों ने उपनिषदों पर किया है] को देखा है उन से यह छिपा नहीं है कि वेदान्त की गम्भीर से गम्भीर बातों पर उन्हों ने कैसा प्रकाश डाला है। वस्तुतः बात तो यह है कि सचमुच संस्कृत साहित्य में उच्च से उच्च भावों का यदि कोई आकर है यदि सुगन्धिमय प्रसूनों की कोई वाटिका है तो वह उप-निषद् है, इन उपनिषदों पर शोपनहार, अरस्तू, आदि पाश्चात्य विद्वान् इतने मोहित होगये थे कि उन्हों ने इन की प्रशंसा में पुल बांध दिये हैं, इस बीसवीं शताब्दि में यूरोप और अमेरिका में हिन्दूधर्मका महत्व इन्हीं उपनिषदों के बलसे स्वा० विवेकानन्द और स्वा० रामतीर्थने यूरुप देशवा-सियों के हृदयोंमें बैठा दिया था, प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह उपनिषदों को पढ़े विचारे और मनन करे, इस में कठ और मुण्डक उप-निषद् की स्वा० शङ्कराचार्य के भाष्य के आधार पर टीका की गई है, प्रार-म्भमें विस्तृत अवतरणिका है जिस में सभी जानने योग्य बातों का समा-वेश है मू० १) बङ्गभाषा में इसका बड़ा आदर है।

पुस्तक मिलनेका पता:-
मैनेजर—ब्रह्मप्रेस,
इटावा।